ॐ

परमात्मने नमः

प्रवचनसार प्रवचन

(भाग-2)

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत
श्री प्रवचनसार परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् 1968-69 वर्ष के शब्दशः धारावाही प्रवचन।
(गाथा 39 से 73)

: हिन्दी अनुवाद :
पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

: प्रकाशक :
श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट
सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250
फोन : 02846-244334

: सह-प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.
वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट), मुम्बई-400 056
फोन : (022) 26130820

—: प्रकाशन :—

शाश्वत् पर्व दशलक्षण (माघ माह)

दिनांक, 02 से 12 फरवरी 2025

के अवसर पर

—: प्राप्ति स्थान :—

1. श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट

सोनगढ़ (सौराष्ट्र) - 364250 फोन : 02846-244334

2. श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट

302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, नवयुग सी.एच.एस. लि.

वी. एल. मेहता मार्ग, विलेपार्ला (वेस्ट), मुम्बई-400 056

फोन : (022) 26130820, 26104912, 62369046

www.vitragvani.com, email - info@vitragvani.com

टाईप सेटिंग :

विवेक कम्प्यूटर

अलीगढ़।

प्रकाशकीय

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतमोगणी।
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं॥

उपरोक्त मंगलाचरण में शासननायक महावीरस्वामी के बाद श्री गौतम गणधर को नमस्कार करके जिन्हें तीसरे नम्बर में नमस्कार किया गया है, ऐसे भरतक्षेत्र के समर्थ आचार्य श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव वर्तमान जैनशासन के शासनस्तम्भ हैं, जिन्होंने मूल मोक्षमार्ग को शास्त्रों में जीवन्त रखकर अनेकानेक भव्य जीवों पर असीम उपकार किया है। साम्प्रत जैनसमाज श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य से सुचारूरूप से परिचित है ही। तथापि उनके प्रति भक्ति से प्रेरित होकर उनके प्रति उपकार व्यक्त किये बिना नहीं रहा जा सकता है। श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत पंच परमागमों में 'प्रवचनसार' शास्त्र 'द्वितीय श्रुतस्कन्ध' के सर्वोत्कृष्ट आगमों में से एक है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की महिमा दर्शाते हुए अनेक शिलालेख आज भी विद्यमान हैं। उनके लिखे हुए शास्त्र साक्षात् गणधरदेव के वचनों जितने ही प्रमाणभूत माने जाते हैं।

महाविदेक्षेत्र में विद्यमान त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञ परमदेवाधिदेव श्री सीमन्धर भगवान की प्रत्यक्ष दिव्य देशना सुनकर भरत में आकर भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने अनेक शास्त्रों की रचना की है। जिनशासन के अनेक मुख्य सिद्धान्तों के बीज इस 'प्रवचनसार' शास्त्र में विद्यमान हैं। अत: यह प्रवचनसार ग्रन्थ है, वह भगवान श्री सीमन्धरस्वामी के दिव्य सन्देश ही है। तीन विभाग में विभाजित हुए इस ग्रन्थ में वस्तुस्वरूप को समझाते हुए मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। जो मुमुक्षु जीव को महामिथ्यात्वरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये दिव्य प्रकाश समान ही है।

महामिथ्यात्व से प्रभावित इस दुषमकाल में ऐसे सर्वोत्कृष्ट परमागमों के सिद्धान्त समझने का अज्ञानी जीवों का कहाँ सामर्थ्य था? परन्तु भरतक्षेत्र के अहोभाग्य से तथा भव्य जीवों को तारने के लिये, इस मिथ्यात्व के घोर तिमिर को नष्ट करने के लिये एक दिव्य प्रकाश हुआ! वह हैं कहान गुरुदेव!! पूज्य गुरुदेवश्री इस काल का एक अजोड़ रत्ने हैं! जिन्होंने स्वयं की ज्ञानप्रभा द्वारा गूढ़ परमागमों के रहस्यों को प्रकाशित किया। जिनके घर में आगम उपलब्ध थे, उन्हें भी आगमों को

रहस्य उद्घाटन की शक्ति नहीं थी, ऐसे इस दुषमकाल में पूज्य गुरुदेवश्री के परम प्रभावनायोग से घर-घर में मूलभूत परमागमों के स्वाध्याय की प्रणाली शुरु हुई। द्रव्य, गुण, पर्याय, उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त इत्यादि अनेकानेक वस्तुस्वरूप को स्पष्ट करते हुए सिद्धान्तों को पूज्य गुरुदेवश्री ने प्रकाशित किया। प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन के वचनानुसार 'पूज्य गुरुदेवश्री इस काल का एक अचम्भा ही है। पूज्य गुरुदेवश्री को श्रुत की लब्धि थी। पंचम काल में निरन्तर अमृतझरती गुरुदेव की वाणी भगवान का विरह भुलाती है।' इत्यादि अनेकानेक बहुमानसूचक वाक्य पूज्य गुरुदेवश्री की असाधारण प्रतिभा को व्यक्त करते हैं। ऐसे भवदधितारणहार, निष्कारण करुणाशील, अध्यात्ममूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक मूल परमागमों पर प्रवचन प्रदान कर दिव्य अमृतधारा बरसायी है।

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचनों को अक्षरश: प्रकाशित करने का सौभाग्य प्राप्त होना, वह इस मनुष्य जीवन का अमूल्य आनन्दसभर अवसर है। प्रस्तुत ग्रन्थ में श्री प्रवचनसार परमागम पर, ई.स. 1968-69 में हुए प्रवचनों को अक्षरश: प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत द्वितीय भाग में ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन की 39 से 73 गाथा तक हुए 28 प्रवचनों को समाविष्ट किया गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना को ऑडियो टेप में उतारने का महान कार्य शुरु करनेवाले श्री नवनीतभाई झबेरी का इस प्रसंग पर आभार व्यक्त करते हैं तथा श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ ने इस महान कार्य को अविरत धारा से चालू रखा और सम्हालकर रखा, तदर्थ उनके आभारी हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री की दिव्यदेशना की उपलब्धता सी.डी., डी.वी.डी, तथा वेबसाईट (www.vitragvani.com) जैसे साधनों द्वारा श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, विलेपार्ला, मुम्बई द्वारा की गयी है। इस कार्य के पीछे ट्रस्ट की ऐसी भावना है कि वर्तमान के आधुनिक साधनों द्वारा पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा समझाये गये तत्त्वज्ञान का अधिकाधिक लाभ सामान्यजन प्राप्त करें कि जिससे यह वाणी शाश्वत् बनी रहे। पूज्य गुरुदेवश्री के प्रत्येक प्रवचन अक्षरश: ग्रन्थारूढ़ हों, ऐसी भावना के फलस्वरूप यह प्रवचन प्रकाशित किये जा रहे हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ पूज्य गुरुदेवश्री तथा तद्भक्त प्रशममूर्ति भगवती माता पूज्य बहिनश्री चम्पाबहिन के करकमल में सादर समर्पित करते हैं।

सर्व प्रवचनों को सुनकर ग्रन्थारूढ़ करने में सावधानी रखी गयी है। वाक्यरचना को पूर्ण करने के लिये कहीं-कहीं कोष्ठक किया गया है। यह प्रवचन सुनकर और ग्रन्थारूढ़ करने का कार्य गुजराती भाषा में पूजा इम्प्रेशन्स द्वारा किया गया है। गुजराती प्रवचनों को जाँचने का कार्य श्री

सुधीरभाई शाह, सूरत तथा श्री अतुलभाई जैन, मलाड द्वारा किया गया है। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण एवं सी.डी. से मिलान करने का कार्य पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियां (राज.) द्वारा किया गया है। इस प्रसंग पर ट्रस्ट सभी सहयोगियों के प्रति आभार व्यक्त करता है। जिनवाणी प्रकाशन का कार्य गम्भीर तथा उत्तरदायित्व पूर्ण होने से अत्यन्त जागृतिपूर्वक तथा उपयोगपूर्वक किया गया है। तथापि प्रकाशन कार्य में प्रमादवश अथवा आजागृतिवश कोई भूल रह गयी हो तो त्रिकालवर्ती वीतरागी देव-गुरु-शास्त्र के प्रति क्षमायाचना करते हैं। ट्रस्ट, मुमुक्षुजनों से विनती करता है कि यदि कोई अशुद्धि उनके ख्याल में आये तो ट्रस्ट को प्रेषित करे, जिससे आगामी संस्करण में समुचित संशोधन हो सके। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ www.vitragvani.com तथा vitragvani एप पर उपलब्ध है।

पाठकवर्ग इन प्रवचनों का अवश्य लाभ लेकर आत्मकल्याण को साधे, ऐसी भावना के साथ विराम लेते हैं। इति शुभम्।

ट्रस्टीगण,
श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट,
विले पार्ला, मुम्बई

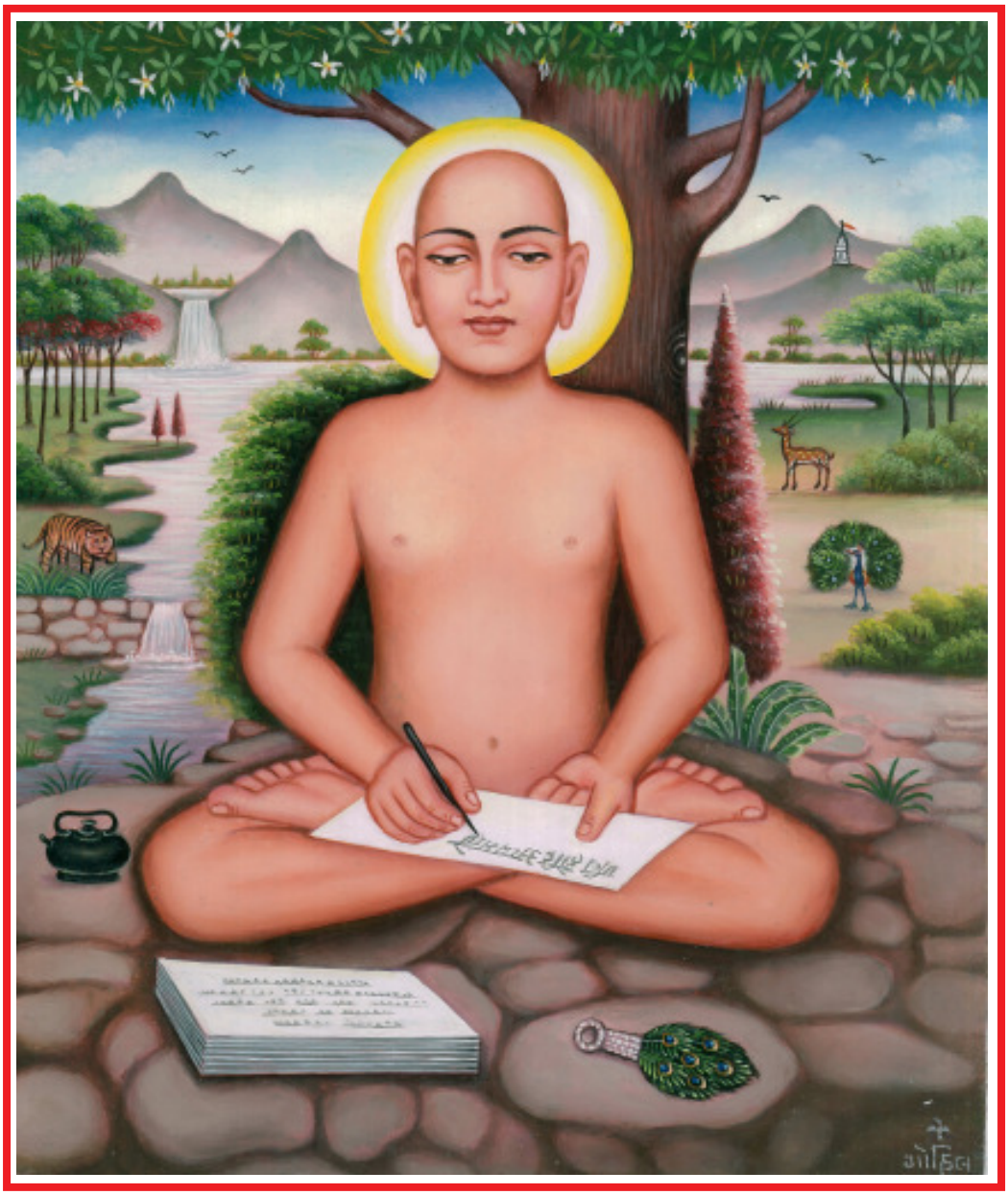

कलिकाल सर्वज्ञ श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

अध्यात्मयुगसर्जक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

श्री सद्गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

अध्यात्मयुगसृष्टा पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी

(संक्षिप्त जीवनवृत्त)

भारतदेश के सौराष्ट्र प्रान्त में, बलभीपुर के समीप समागत 'उमराला' गाँव में स्थानकवासी सम्प्रदाय के दशाश्रीमाली वणिक परिवार के श्रेष्ठीवर्य श्री मोतीचन्दभाई के घर, माता उजमबा की कूख से विक्रम संवत् 1946 के वैशाख शुक्ल दूज, रविवार (दिनाङ्क 21 अप्रैल 1890 – ईस्वी) प्रात:काल इन बाल महात्मा का जन्म हुआ।

जिस समय यह बाल महात्मा इस वसुधा पर पधारे, उस समय जैन समाज का जीवन अन्ध-विश्वास, रूढ़ि, अन्धश्रद्धा, पाखण्ड, और शुष्क क्रियाकाण्ड में फँस रहा था। जहाँ कहीं भी आध्यात्मिक चिन्तन चलता था, उस चिन्तन में अध्यात्म होता ही नहीं था। ऐसे इस अन्धकारमय कलिकाल में तेजस्वी कहानसूर्य का उदय हुआ।

पिताश्री ने सात वर्ष की लघुवय में लौकिक शिक्षा हेतु विद्यालय में प्रवेश दिलाया। प्रत्येक वस्तु के ह्रार्द तक पहुँचने की तेजस्वी बुद्धि, प्रतिभा, मधुरभाषी, शान्तस्वभावी, सौम्य गम्भीर मुखमुद्रा, तथा स्वयं कुछ करने के स्वभाववाले होने से बाल 'कानजी' शिक्षकों तथा विद्यार्थियों में लोकप्रिय हो गये। विद्यालय और जैन पाठशाला के अभ्यास में प्राय: प्रथम नम्बर आता था, किन्तु विद्यालय की लौकिक शिक्षा से उन्हें सन्तोष नहीं होता था। अन्दर ही अन्दर ऐसा लगता था कि मैं जिसकी खोज में हूँ, वह यह नहीं है।

तेरह वर्ष की उम्र में छह कक्षा उत्तीर्ण होने के पश्चात्, पिताजी के साथ उनके व्यवसाय के कारण पालेज जाना हुआ, और चार वर्ष बाद पिताजी के स्वर्गवास के कारण, सत्रह वर्ष की उम्र में भागीदार के साथ व्यवसायिक प्रवृत्ति में जुड़ना हुआ।

व्यवसाय की प्रवृत्ति के समय भी आप अप्रमाणिकता से अत्यन्त दूर थे, सत्यनिष्ठा, नैतिज्ञता, निखालिसता और निर्दोषता से सुगन्धित आपका व्यावहारिक जीवन था। साथ ही आन्तरिक व्यापार और झुकाव तो सतत् सत्य की शोध में ही संलग्न था। दुकान पर भी धार्मिक पुस्तकें पढ़ते थे। वैरागी चित्तवाले कहानकुँवर कभी रात्रि को रामलीला या नाटक देखने जाते तो उसमें से वैराग्यरस का घोलन करते थे। जिसके फलस्वरूप पहली बार सत्रह वर्ष की उम्र में पूर्व की आराधना के संस्कार और मङ्गलमय उज्ज्वल भविष्य की अभिव्यक्ति करता हुआ, बारह लाईन का काव्य इस प्रकार रच जाता है —

शिवरमणी रमनार तूं, तूं ही देवनो देव।

उन्नीस वर्ष की उम्र से तो रात्रि का आहार, जल, तथा अचार का त्याग कर दिया था।

सत्य की शोध के लिए दीक्षा लेने के भाव से 22 वर्ष की युवा अवस्था में दुकान का परित्याग करके, गुरु के समक्ष आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार कर लिया और 24 वर्ष की उम्र में (अगहन शुक्ल 9, संवत् 1970) के दिन छोटे से उमराला गाँव में 2000 साधर्मियों के विशाल जनसमुदाय की उपस्थिति में स्थानकवासी सम्प्रदाय की दीक्षा अंगीकार कर ली। दीक्षा के समय हाथी पर चढ़ते हुए धोती फट जाने से तीक्ष्ण बुद्धि के धारक - इन महापुरुष को शंका हो गयी कि कुछ गलत हो रहा है परन्तु सत्य क्या है ? यह तो मुझे ही शोधना पड़ेगा।

दीक्षा के बाद सत्य के शोधक इन महात्मा ने स्थानकवासी और श्वेताम्बर सम्प्रदाय के समस्त आगमों का गहन अभ्यास मात्र चार वर्ष में पूर्ण कर लिया। सम्प्रदाय में बड़ी चर्चा चलती थी, कि कर्म है तो विकार होता है न ? यद्यपि गुरुदेवश्री को अभी दिगम्बर शास्त्र प्राप्त नहीं हुए थे, तथापि पूर्व संस्कार के बल से वे दृढ़तापूर्वक सिंह गर्जना करते हैं — **जीव स्वयं से स्वतन्त्ररूप से विकार करता है; कर्म से नहीं अथवा पर से नहीं। जीव अपने उल्टे पुरुषार्थ से विकार करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से उसका नाश करता है।**

विक्रम संवत् 1978 में महावीर प्रभु के शासन-उद्धार का और हजारों मुमुक्षुओं के महान पुण्योदय का सूचक एक मङ्गलकारी पवित्र प्रसंग बना —

32 वर्ष की उम्र में, विधि के किसी धन्य पल में श्रीमद्भगवत् कुन्दकन्दाचार्यदेव रचित 'समयसार' नामक महान परमागम, एक सेठ द्वारा महाराजश्री के हस्तकमल में आया, इन पवित्र पुरुष के अन्तर में से सहज ही उद्गार निकले — **'सेठ! यह तो अशरीरी होने का शास्त्र है।'** इसका अध्ययन और चिन्तवन करने से अन्तर में आनन्द और उल्लास प्रगट होता है। इन महापुरुष के अन्तरंग जीवन में भी परम पवित्र परिवर्तन हुआ। भूली पड़ी परिणति ने निज घर देखा। तत्पश्चात् श्री प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, मोक्षमार्गप्रकाशक, द्रव्यसंग्रह, सम्यग्ज्ञानदीपिका इत्यादि दिगम्बर शास्त्रों के अभ्यास से आपको नि:शंक निर्णय हो गया कि दिगम्बर जैनधर्म ही मूलमार्ग है और वही सच्चा धर्म है। इस कारण आपकी अन्तरंग श्रद्धा कुछ और बाहर में वेष कुछ — यह स्थिति आपको असह्य हो गयी। अत: अन्तरंग में अत्यन्त मनोमन्थन के पश्चात् सम्प्रदाय के परित्याग का निर्णय लिया।

परिवर्तन के लिये योग्य स्थान की खोज करते-करते सोनगढ़ आकर वहाँ 'स्टार ऑफ इण्डिया' नामक एकान्त मकान में महावीर प्रभु के जन्मदिवस, चैत्र शुक्ल 13, संवत् 1991 (दिनांक 16 अप्रैल 1935) के दिन दोपहर सवा बजे सम्प्रदाय का चिह्न मुँह पट्टी का त्याग कर दिया और स्वयं घोषित किया कि **अब मैं स्थानकवासी साधु नहीं; मैं सनातन दिगम्बर जैनधर्म का श्रावक हूँ।** सिंह-समान वृत्ति के धारक इन महापुरुष ने 45 वर्ष की उम्र में महावीर्य उछाल कर यह अद्भुत पराक्रमी कार्य किया।

स्टार ऑफ इण्डिया में निवास करते हुए मात्र तीन वर्ष के दौरान ही जिज्ञासु भक्तजनों का प्रवाह दिन-प्रतिदिन बढ़ता ही गया, जिसके कारण यह मकान एकदम छोटा पड़ने लगा; अत: भक्तों ने इन परम प्रतापी सत् पुरुष के निवास और प्रवचन का स्थल '**श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर**' का निर्माण कराया। गुरुदेवश्री ने वैशाख कृष्ण 8, संवत् 1994 (दिनांक 22 मई 1938) के दिन इस निवासस्थान में मंगल पदार्पण किया। यह स्वाध्याय मन्दिर, जीवनपर्यन्त इन महापुरुष की आत्मसाधना और वीरशासन की प्रभावना का केन्द्र बन गया।

दिगम्बर धर्म के चारों अनुयोगों के छोटे बड़े 183 ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया, उनमें से मुख्य 38 ग्रन्थों पर सभा में प्रवचन किये। जिनमें श्री समयसार ग्रन्थ पर 19 बार की गयी अध्यात्म वर्षा विशेष उल्लेखनीय है। प्रवचनसार, अष्टपाहुड़, परमात्मप्रकाश, नियमसार, पंचास्तिकायसंग्रह, समयसार कलश-टीका इत्यादि ग्रन्थों पर भी बहुत बार प्रवचन किये हैं।

दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले और कुन्दकुन्दादि आचार्यों के गहन शास्त्रों के रहस्योद्घाटक इन महापुरुष की भवताप विनाशक अमृतवाणी को ईस्वी सन् 1960 से नियमितरूप से टेप में उत्कीर्ण कर लिया गया, जिसके प्रताप से आज अपने पास नौ हजार से अधिक प्रवचन सुरक्षित उपलब्ध हैं। यह मङ्गल गुरुवाणी, देश-विदेश के समस्त मुमुक्षु मण्डलों में तथा लाखों जिज्ञासु मुमुक्षुओं के घर-घर में गुंजायमान हो रही है। इससे इतना तो निश्चित है कि भरतक्षेत्र के भव्यजीवों को पञ्चम काल के अन्त तक यह दिव्यवाणी ही भव के अभाव में प्रबल निमित्त होगी।

इन महापुरुष का धर्म सन्देश, समग्र भारतवर्ष के मुमुक्षुओं को नियमित उपलब्ध होता रहे, तदर्थ सर्व प्रथम विक्रम संवत् 2000 के माघ माह से (दिसम्बर 1943 से) **आत्मधर्म** नामक मासिक आध्यात्मिक पत्रिका का प्रकाशन सोनगढ़ से मुरब्बी श्री रामजीभाई माणिकचन्द दोशी के सम्पादकत्व में प्रारम्भ हुआ, जो वर्तमान में भी गुजराती एवं हिन्दी भाषा में नियमित प्रकाशित हो रहा है। पूज्य गुरुदेवश्री के दैनिक प्रवचनों को प्रसिद्धि करता दैनिक पत्र **श्री सद्गुरु प्रवचनप्रसाद** ईस्वी सन् 1950 सितम्बर माह से नवम्बर 1956 तक प्रकाशित हुआ। स्वानुभवविभूषित चैतन्यविहारी इन महापुरुष की मङ्गल-वाणी को पढ़कर और सुनकर हजारों स्थानकवासी श्वेताम्बर तथा अन्य कौम के भव्य जीव भी तत्त्व की समझपूर्वक सच्चे दिगम्बर जैनधर्म के अनुयायी हुए। अरे! मूल दिगम्बर जैन भी सच्चे अर्थ में दिगम्बर जैन बने।

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट, सोनगढ़ द्वारा दिगम्बर आचार्यों और मान्यवर, पण्डितवर्यों के ग्रन्थों तथा पूज्य गुरुदेवश्री के उन ग्रन्थों पर हुए प्रवचन-ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य विक्रम संवत् 1999 (ईस्वी सन् 1943 से) शुरु हुआ। इस सत्साहित्य द्वारा वीतरागी तत्त्वज्ञान की देश-विदेश में अपूर्व प्रभावना हुई, जो आज भी अविरलरूप से चल रही है। परमागमों का गहन

रहस्य समझाकर कृपालु कहान गुरुदेव ने अपने पर करुणा बरसायी है। तत्त्वजिज्ञासु जीवों के लिये यह एक महान आधार है और दिगम्बर जैन साहित्य की यह एक अमूल्य सम्पत्ति है।

ईस्वीं सन् 1962 के दशलक्षण पर्व से भारत भर में अनेक स्थानों पर पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा प्रवाहित तत्त्वज्ञान के प्रचार के लिए प्रवचनकार भेजना प्रारम्भ हुआ। इस प्रवृत्ति से भारत भर के समस्त दिगम्बर जैन समाज में अभूतपूर्व आध्यात्मिक जागृति उत्पन्न हुई। आज भी देश-विदेश में दशलक्षण पर्व में सैकड़ों प्रवचनकार विद्वान इस वीतरागी तत्त्वज्ञान का डंका बजा रहे हैं।

बालकों में तत्त्वज्ञान के संस्कारों का अभिसिंचन हो, तदर्थ सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 (ईस्वीं सन् 1941) के मई महीने के ग्रीष्मकालीन अवकाश में बीस दिवसीय धार्मिक शिक्षण वर्ग प्रारम्भ हुआ, बड़े लोगों के लिये प्रौढ़ शिक्षण वर्ग विक्रम संवत् 2003 के श्रावण महीने से शुरु किया गया।

सोनगढ़ में विक्रम संवत् 1997 - फाल्गुन शुक्ल दूज के दिन नूतन दिगम्बर जिनमन्दिर में कहानगुरु के मङ्गल हस्त से श्री सीमन्धर आदि भगवन्तों की पंच कल्याणक विधिपूर्वक प्रतिष्ठा हुई। उस समय सौराष्ट्र में मुश्किल से चार-पाँच दिगम्बर मन्दिर थे और दिगम्बर जैन तो भाग्य से ही दृष्टिगोचर होते थे। जिनमन्दिर निर्माण के बाद दोपहरकालीन प्रवचन के पश्चात् जिनमन्दिर में नित्यप्रति भक्ति का क्रम प्रारम्भ हुआ, जिसमें जिनवर भक्त गुरुराज हमेशा उपस्थित रहते थे, और कभी-कभी अतिभाववाही भक्ति भी कराते थे। इस प्रकार गुरुदेवश्री का जीवन निश्चय-व्यवहार की अपूर्व सन्धियुक्त था।

ईस्वी सन् 1941 से ईस्वीं सन् 1980 तक सौराष्ट्र-गुजरात के उपरान्त समग्र भारतदेश के अनेक शहरों में तथा नैरोबी में कुल 66 दिगम्बर जिनमन्दिरों की मङ्गल प्रतिष्ठा इन वीतराग-मार्ग प्रभावक सत्पुरुष के पावन कर-कमलों से हुई।

जन्म-मरण से रहित होने का सन्देश निरन्तर सुनानेवाले इन चैतन्यविहारी पुरुष की मङ्गलकारी जन्म-जयन्ती 59 वें वर्ष से सोनगढ़ में मनाना शुरु हुआ। तत्पश्चात् अनेकों मुमुक्षु मण्डलों द्वारा और अन्तिम 91 वें जन्मोत्सव तक भव्य रीति से मनाये गये। 75 वीं हीरक जयन्ती के अवसर पर समग्र भारत की जैन समाज द्वारा चाँदी जड़ित एक आठ सौ पृष्ठीय अभिनन्दन ग्रन्थ, भारत सरकार के तत्कालीन गृहमन्त्री श्री लालबहादुर शास्त्री द्वारा मुम्बई में देशभर के हजारों भक्तों की उपस्थिति में पूज्यश्री को अर्पित किया गया।

श्री सम्मेदशिखरजी की यात्रा के निमित्त समग्र उत्तर और पूर्व भारत में मङ्गल विहार ईस्वी सन् 1957 और ईस्वी सन् 1967 में ऐसे दो बार हुआ। इसी प्रकार समग्र दक्षिण और मध्यभारत में ईस्वी सन् 1959 और ईस्वी सन् 1964 में ऐसे दो बार विहार हुआ। इस मङ्गल

तीर्थयात्रा के विहार दौरान लाखों जिज्ञासुओं ने इन सिद्धपद के साधक सन्त के दर्शन किये, तथा भवान्तकारी अमृतमय वाणी सुनकर अनेक भव्य जीवों के जीवन की दिशा आत्मसन्मुख हो गयी। इन सन्त पुरुष को अनेक स्थानों से अस्सी से अधिक अभिनन्दन पत्र अर्पण किये गये हैं।

श्री महावीर प्रभु के निर्वाण के पश्चात् यह अविच्छिन्न पैंतालीस वर्ष का समय (वीर संवत् 2461 से 2507 अर्थात् ईस्वी सन् 1935 से 1980) वीतरागमार्ग की प्रभावना का स्वर्णकाल था। जो कोई मुमुक्षु, अध्यात्म तीर्थधाम स्वर्णपुरी / सोनगढ़ जाते, उन्हें वहाँ तो चतुर्थ काल का ही अनुभव होता था।

विक्रम संवत् 2037, कार्तिक कृष्ण 7, दिनांक 28 नवम्बर 1980 शुक्रवार के दिन ये प्रबल पुरुषार्थी आत्मज्ञ सन्त पुरुष — देह का, बीमारी का और मुमुक्षु समाज का भी लक्ष्य छोड़कर अपने ज्ञायक भगवान के अन्तरध्यान में एकाग्र हुए, अतीन्द्रिय आनन्दकन्द निज परमात्मतत्त्व में लीन हुए। सायंकाल आकाश का सूर्य अस्त हुआ, तब सर्वज्ञपद के साधक सन्त ने मुक्तिपुरी के पन्थ में यहाँ भरतक्षेत्र से स्वर्गपुरी में प्रयाण किया। वीरशासन को प्राणवन्त करके अध्यात्म युग सृजक बनकर प्रस्थान किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस युग का एक महान और असाधारण व्यक्तित्व थे, उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने सत्य से अत्यन्त दूर जन्म लेकर स्वयंबुद्ध की तरह स्वयं सत्य का अनुसन्धान किया और अपने प्रचण्ड पुरुषार्थ से जीवन में उसे आत्मसात किया।

इन विदेही दशावन्त महापुरुष का अन्तर जितना उज्ज्वल है, उतना ही बाह्य भी पवित्र है; ऐसा पवित्रता और पुण्य का संयोग इस कलिकाल में भाग्य से ही दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की अत्यन्त नियमित दिनचर्या, सात्विक और परिमित आहार, आगम सम्मत्त संभाषण, करुण और सुकोमल हृदय, आपके विरल व्यक्तित्व के अभिन्न अवयव हैं। शुद्धात्मतत्त्व का निरन्तर चिन्तवन और स्वाध्याय ही आपका जीवन था। जैन श्रावक के पवित्र आचार के प्रति आप सदैव सतर्क और सावधान थे। जगत् की प्रशंसा और निन्दा से अप्रभावित रहकर, मात्र अपनी साधना में ही तत्पर रहे। आप भावलिंगी मुनियों के परम उपासक थे।

आचार्य भगवन्तों ने जो मुक्ति का मार्ग प्रकाशित किया है, उसे इन रत्नत्रय विभूषित सन्त पुरुष ने अपने शुद्धात्मतत्त्व की अनुभूति के आधार से सातिशय ज्ञान और वाणी द्वारा युक्ति और न्याय से सर्व प्रकार से स्पष्ट समझाया है। द्रव्य की स्वतन्त्रता, द्रव्य-गुण-पर्याय, उपादान-निमित्त, निश्चय-व्यवहार, क्रमबद्धपर्याय, कारणशुद्धपर्याय, आत्मा का शुद्धस्वरूप, सम्यग्दर्शन, और उसका विषय, सम्यग्ज्ञान और ज्ञान की स्व-पर प्रकाशकता, तथा सम्यक्चारित्र का स्वरूप

इत्यादि समस्त ही आपश्री के परम प्रताप से इस काल में सत्यरूप से प्रसिद्धि में आये हैं। आज देश-विदेश में लाखों जीव, मोक्षमार्ग को समझने का प्रयत्न कर रहे हैं - यह आपश्री का ही प्रभाव है।

समग्र जीवन के दौरान इन गुणवन्ता ज्ञानी पुरुष ने बहुत ही अल्प लिखा है क्योंकि आपको तो तीर्थङ्कर की वाणी जैसा योग था, आपकी अमृतमय मङ्गलवाणी का प्रभाव ही ऐसा था कि सुननेवाला उसका रसपान करते हुए थकता ही नहीं। दिव्य भावश्रुतज्ञानधारी इस पुराण पुरुष ने स्वयं ही परमागम के यह सारभूत सिद्धान्त लिखाये हैं :—

1. एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्पर्श नहीं करता।
2. प्रत्येक द्रव्य की प्रत्येक पर्याय क्रमबद्ध ही होती है।
3. उत्पाद, उत्पाद से है; व्यय या ध्रुव से नहीं।
4. उत्पाद, अपने षट्कारक के परिणमन से होता है।
5. पर्याय के और ध्रुव के प्रदेश भिन्न हैं।
6. भावशक्ति के कारण पर्याय होती ही है, करनी नहीं पड़ती।
7. भूतार्थ के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है।
8. चारों अनुयोगों का तात्पर्य वीतरागता है।
9. स्वद्रव्य में भी द्रव्य-गुण-पर्याय का भेद करना, वह अन्यवशपना है।
10. ध्रुव का अवलम्बन है परन्तु वेदन नहीं; और पर्याय का वेदन है, अवलम्बन नहीं।

इन अध्यात्मयुगसृष्टा महापुरुष द्वारा प्रकाशित स्वानुभूति का पावन पथ जगत में सदा जयवन्त वर्तो!

तीर्थङ्कर श्री महावीर भगवान की दिव्यध्वनि का रहस्य समझानेवाले शासन स्तम्भ श्री कहानगुरुदेव त्रिकाल जयवन्त वर्तो!!

सत्पुरुषों का प्रभावना उदय जयवन्त वर्तो!!!

❖ ❖ ❖

अनुक्रमणिका

प्रवचन नं.	दिनांक	श्लोक / गाथा	पृष्ठ संख्या
३२	०४-१०-१९६८	गाथा-३९-४०	००१
३३	०५-१०-१९६८	गाथा-४१-४२	०२०
३४	०६-१०-१९६८	गाथा-४२-४३-४४	०३७
३५	१३-१०-१९६८	गाथा-४४-४५	०५४
३६	१४-१०-१९६८	गाथा-४५-४६	०७३
३७	१५-१०-१९६८	गाथा-४६-४७	०९१
३८	१६-१०-१९६८	गाथा-४७-४८	११०
३९	१८-१०-१९६८	गाथा-४८-४९	१२९
४०	१९-१०-१९६८	गाथा-४९-५०-५१	१४९
४१	२०-१०-१९६८	गाथा-५१-५२	१६९
४२	२१-१०-१९६८	गाथा-५२	१८८
४३	२२-१०-१९६८	गाथा-५२, कलश-४	२०८
४४	२३-१०-१९६८	गाथा-५३	२२७
४५	२४-१०-१९६८	गाथा-५४	२४५
४६	२५-१०-१९६८	गाथा-५४-५५	२६६
४७	२६-१०-१९६८	गाथा-५५-५६	२८४
४८	२७-१०-१९६८	गाथा-५६-५७	३०३
४९	२८-१०-१९६८	गाथा-५८	३२०
५०	२९-१०-१९६८	गाथा-५९	३३९
५१	३०-१०-१९६८	गाथा-५९-६०	३५६
५२	३१-१०-१९६८	गाथा-६०-६१	३७५
५३	०१-११-१९६८	गाथा-६२-६३	३९४

५४	०२-११-१९६८	गाथा-६४	४१३
५५	०३-११-१९६८	गाथा-६५	४३०
५६	०४-११-१९६८	गाथा-६६-६७	४५०
५७	०५-११-१९६८	गाथा-६८-६९	४६९
५८	०६-११-१९६८	गाथा-६९-७०-७१	४८९
५९	०७-११-१९६८	गाथा-७२-७३	५१०

ॐ

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

प्रवचनसार प्रवचन

(भाग-२)

(श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री प्रवचनसार परमागम पर
अध्यात्मयुगप्रवर्तक पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
ईस्वी सन् १९६८-६९ के शब्दशः प्रवचन)

आसोज शुक्ल १३, शुक्रवार, दिनांक ०४-१०-१९६८
गाथा - ३९-४०, प्रवचन - ३२

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, प्रवचनसार। ज्ञानतत्त्व अर्थात् ज्ञान का स्वभाव। ज्ञान का स्वभाव, ज्ञान का सामर्थ्य।

मुमुक्षु : नौ तत्त्व में....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नौ तत्त्व में कहीं... यह तो ज्ञानगुण का तत्त्व, ज्ञान का स्वभाव—सामर्थ्य क्या है ? जीव के सामर्थ्य में—यह तत्त्व में आ जाता है। यह कहीं अलग तत्त्व नहीं। ज्ञानतत्त्व अर्थात् कि आत्मा जो वस्तु है, आत्मा वस्तु है, उसका जो ज्ञानभाव है, उसकी बात है। वह तो जीवतत्त्व में आ जाता है। परन्तु यहाँ ज्ञान की प्रधानता से सारा ज्ञान ही आत्मा है, ऐसा कथन करना है न ? तो ज्ञान, वह आत्मा। तो ज्ञान का स्वभाव-तत्त्व स्वरूप, सामर्थ्य कितना है ? जैसा है, वैसी उसकी प्रतीति करनी होगी।

★ ★ ★

गाथा - ३९

अब, इन्हीं अविद्यमान पर्यायों की ज्ञानप्रत्यक्षता को दृढ़ करते हैं: — ३९ (गाथा)। जो द्रव्य है जगत में, उसकी वर्तमान अवस्था अर्थात् पर्याय... नहीं है (अर्थात् जो) भूतकाल में पर्याय हो गयी, वह प्रलय हो गयी, भविष्य में होनेवाली अभी हुई नहीं, तो ऐसी अविद्यमान पर्याय—भूतकाल की और भविष्यकाल की, नहीं है उसकी **ज्ञानप्रत्यक्षता को...** वह ज्ञान में तो प्रत्यक्ष हो जाता है। ऐसी ज्ञान की एक समय की पर्याय का सामर्थ्य है। समझ में आया? जीव की श्रद्धा करना, तो जीव में ज्ञान क्या है और ज्ञान का सामर्थ्य कितना है? वह भी साथ में श्रद्धा करे तो जीव की श्रद्धा कहने में आती है। समझ में आया? ३९।

जदि पच्चक्खमजायं पज्जायं पलयिदं च णाणस्स।
ण हवदि वा तं णाणं दिव्वं ति हि के परूवेंति॥३९॥

इसका है उसमें। इसका हरिगीत है। हरिगीत है न? ३९।

अनुत्पन्न-पर्याय तथा जो नष्ट हुईं वे सब पर्याय।
नहीं यदि प्रत्यक्षज्ञान में, कौन उसे कह सकता दिव्य॥३९॥

गुजराती है न पीछे? वह टीका में आ जायेगा, देखो! **जिसने अस्तित्व का अनुभव नहीं किया...** क्या कहते हैं? कि अनन्त आत्मा हैं, अनन्त परमाणु हैं, असंख्य कालाणु हैं, एक धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश—यह छह द्रव्य हैं, उसमें **जिसने अस्तित्व का अनुभव नहीं किया...** पर्याय। अभी उत्पन्न ही नहीं हुई। समझ में आया? वस्तु में भविष्य की पर्याय अभी उत्पन्न नहीं हुई। जिसने अस्तित्व अर्थात् होनेपने का अनुभव नहीं किया। ठीक! जो पर्याय उत्पन्न होकर अस्तित्व का अनुभव किया नहीं। भविष्य की पर्याय अजात। **और जिसने अस्तित्व का अनुभव कर लिया है...** देखो भाषा! जिस द्रव्य की पर्याय का अस्तित्व पर्याय ने अनुभव कर लिया है। पर्याय हो गयी है। समझ में आया? गतकाल की पर्याय द्रव्य में हो गयी है, वर्तमान में है नहीं पर्यायरूप से। भविष्य की उत्पन्न हुई नहीं। जिसका अनुभव भविष्य का वर्तमान में है नहीं। ऐसी पर्याय को भी **(अनुत्पन्न और नष्ट) पर्यायमात्र को...** आहाहा! कितना आत्मा और

उसके ज्ञानगुण की एक समय की पर्याय का कितना सामर्थ्य है और ऐसा ज्ञान कैसे उत्पन्न होता है? समझ में आया? मानसज्ञान, इन्द्रियज्ञान से वह केवलज्ञान उत्पन्न नहीं होता।

जो वर्तमान पर्याय नहीं है, बीत गयी और भविष्य की उत्पन्न हुई नहीं। भूतकाल की आ गयी, पहले अनुभव करके विलय हो गयी। भविष्य की पर्याय उत्पन्न नहीं हुई। और यह **(अनुत्पन्न और नष्ट) पर्यायमात्र को यदि ज्ञान अपनी निर्विघ्न विकसित,...** देखो! ऐसी एक समय की पर्याय में जैसे वर्तमान दिखते हैं, ऐसी भूत और भविष्य की सब पर्याय को निर्विघ्न विकसित-प्रगट हुई, **अखण्डित प्रतापयुक्त प्रभुशक्ति के (-महा सामर्थ्य) द्वारा...** कितने विशेषण दिये, देखो! **बलात् अत्यन्त आक्रमित करे...** जोर से, ऐसा किया है न गुजराती में? जोर से। ज्ञान की एक समय की अवस्था में इतनी ताकत है कि अपने से निर्विघ्न विकसित-खिली है, अखण्डित प्रतापयुक्त है। उसका प्रताप अखण्ड है ज्ञान की पर्याय का। ऐसे प्रभुशक्ति—सामर्थ्य की शक्ति के द्वारा प्रगट हुई। **बलात् (जोर से) अत्यन्त आक्रमित करे...** तीन काल, तीन लोक की बीत गयी और नई उत्पन्न (होगी), ऐसी सब द्रव्य की पर्याय एक समय में जानने में आ जाती है। आक्रान्त—आक्रमित करे—प्राप्त करे। देखो! समझ में आया?

तथा वे पर्यायें अपने... अब सामने की लेते हैं। ज्ञान की पर्याय में अनुत्पन्न और नष्ट दोनों पर्यायें आत्मा ज्ञान से जोर से सबको पहुँच जाता है। समझ में आया? **अखण्डित प्रतापयुक्त प्रभुशक्ति के द्वारा...** अपने सामर्थ्य-शक्ति के द्वारा **बलात् अत्यन्त आक्रमित करे...** ऐसी ज्ञान की एक समय की अवस्था की सामर्थ्य है। उसको केवलज्ञानी कहते हैं। ऐसा आत्मा हुआ, तब परिपूर्ण आत्मा हुआ, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और ऐसे केवलज्ञान की उत्पत्ति स्वसंवेदनज्ञान से उत्पत्ति होती है। मन से ज्ञान हुआ या इन्द्रिय से ज्ञान हुआ, उससे वह केवलज्ञान की उत्पत्ति होती नहीं। यह तात्पर्य बताना है। जिसने केवलज्ञान की प्राप्ति की, उसने अपना शुद्ध चिदानन्दस्वरूप प्रचुर स्वसंवेदन द्वारा एकाकार होकर केवलज्ञान प्राप्त किया। समझ में आया? और जिसने प्राप्त करना है उसने, वह अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य ज्ञायकस्वरूप का अन्तर्मुख वेदन करके, स्वसंवेदन अपने ज्ञान को प्रत्यक्ष करके, वेदन करके, उससे केवलज्ञान प्राप्त होता है। दूसरे कोई

क्रियाकाण्ड से या व्यवहार से प्राप्त नहीं होता। केवलज्ञान प्राप्त करने का सामर्थ्य कितना? तो इसमें स्वसंवेदनज्ञान में है और स्वसंवेदनज्ञान का फल कितना है? कि केवलज्ञान एक समय की पर्याय। समझ में आया? .... समझ में आया?

ओहोहो! क्या कहते हैं! आत्मा का ज्ञानगुण, उसकी एक समय की अवस्था इतनी बड़ी कि अनुत्पन्न जो पर्याय उत्पन्न नहीं हुई और विनष्ट हो गयी, उसको भी प्राप्त कर ले। समझ में आया? ऐसा ज्ञान की एक समय की अवस्था का तत्त्व है, वह तत्त्व है। ज्ञान का वह तत्त्व है सामर्थ्य इतना। ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड तो ज्ञान है गुण और ऐसे अनन्त-अनन्त गुण का पिण्ड तो द्रव्य है। ऐसे द्रव्य की प्रतीति करने में कितना प्रयत्न का महापुरुषार्थ (चाहिए)! समझ में आया? अखण्ड द्रव्यस्वरूप चैतन्य भगवान परमात्मस्वरूप में ऐसे झुकाव करना, उसमें झुकाव करना, कितना प्रयत्न है! समझ में आया? वही करना है। करने में क्रिया करनी हो तो यह क्रिया है। बाकी सब बातें हैं।

मुमुक्षु : बातें हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोलने में, कहने में आवे कि यह करो... यह करो... फिर यह करो, भक्ति करो, व्रत करो, फलाना करो, यह सब बातें हैं। विकल्प बीच में आवे, समझावे। बाकी उससे कोई केवलज्ञान होगा या आत्मा का कल्याण होगा, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

तथा वे पर्यायें... अब सामने से लेते हैं। इस ओर ज्ञान की एक समय की अवस्था सब पर्याय को पहुँच जाती है, ज्ञान। **वे पर्यायें...** सामने अनुत्पन्न और नष्ट, भविष्य की और भूतकाल की। **अपने स्वरूपसर्वस्व को अक्रम से अर्पित करें... वे पर्यायें अपने स्वरूपसर्वस्व को...** जो पर्याय होकर विलय हो गयी। विलय हो गयी का अर्थ वर्तमान में है नहीं और जो पर्याय अभी उत्पन्न भी नहीं हुई, वह पर्याय। देखो! **अपने स्वरूपसर्वस्व को...**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ही अलौकिक स्वभाव है ऐसा! आहाहा! वह पर्याय वर्तमान में अर्पण कर देती है ज्ञान की पर्याय में, ऐसा ज्ञेय का स्वभाव है, ऐसा यहाँ बताना है। अचिन्त्य बात! अचिन्त्य बात!!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान... ज्ञेय का भी इतना सामर्थ्य है कि अक्रम से। देखो! **अक्रम से अर्पित करें...** ऐसा नहीं कि भविष्य में हो, तब जाने, भूतकाल की हो गयी तो भूतकाल से ऐसे... एक समय में, एक ही समय में जो अवस्था अनन्त काल में हो गयी, वर्तमान में है नहीं, भविष्य में उत्पन्न होनेवाली वर्तमान नहीं है, फिर भी वह पर्याय अपना सर्वस्वस्वरूप अर्पण कर दे। ज्ञान की पर्याय में सर्वस्व उसका ज्ञान हो जाये, ऐसी पर्याय अक्रम से अर्पती है।

अर्पित करें (-एक ही साथ ज्ञान में ज्ञात हो)... देखो! आहाहा! बहुत कठिन बात है। लोगों को यह लगता है कि परन्तु अभी इससे भी बड़ी तकरार करते हैं न वह? कौन? समझ में आया? क्या कहा आगम? जय? क्या कहा? जयधवल। जयधवल का दृष्टान्त देकर। जय, नहीं? वर्तमान है, वह अर्थ है, भविष्य, वह अर्थ नहीं, भूत है वह अर्थ नहीं। नहीं है अर्थात् क्या? नहीं अर्थात्? नहीं है तो वर्तमान में नहीं है। परन्तु वर्तमान में, भूत और भविष्य की पर्याय वर्तमान ज्ञान में वह पर्याय सर्वस्व अर्पती है। समझ में आया? ऐसा नहीं कि वर्तमान पर्याय प्रगट है तो उसपूर्वक भूत-भविष्य ऐसी है, ऐसा वह भी तो अनुमान हो गया। वह प्रत्यक्ष ज्ञान कहाँ रहा? समझ में आया? ऐसा कहते हैं। वर्तमान प्रत्यक्ष है अर्थ उसको। उसपूर्वक भूत की और भविष्य की जानने में आती है। वजुभाई! ऐसा नहीं है। यहाँ तो कहते हैं कि **वे पर्यायें अपने स्वरूपसर्वस्व को अक्रम से अर्पित करें...** समझ में आया? वह अनुमानपूर्वक या वर्तमान है तो (भूत में) ऐसी-ऐसी हो गयी है और वर्तमान है तो भविष्य में ऐसी होगी, वह तो अनुमान हो गया, वह प्रत्यक्षज्ञान नहीं। ऐसा सामर्थ्य एक-एक आत्मा का, एक-एक पर्याय का। ऐसे आत्मा की प्रतीति करना अलौकिक बात है। समझ में आया?

एक ज्ञानगुण, उसकी एक समय की अवस्था सबको पहुँच जाये। जोर से—क्रम से नहीं। अपने प्रताप से, निमित्त के प्रताप से नहीं। अपनी प्रभुत्वशक्ति से सबको (पहुँच जाती है)। तीन काल, तीन लोक, क्षेत्र, काल जानती है। आकाश का अमर्यादित क्षेत्र है, उसकी पर्याय वर्तमान में है और भूत की चली गयी है, उसको भी ज्ञान की पर्याय अपनी शक्ति से जोर से... जोर का अर्थ? अपने सामर्थ्य से। उस पर्याय के

सामर्थ्य से जानती है, ऐसा नहीं। अपने सामर्थ्य से जानती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : पर्याय न हो तो कहाँ से जाने?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय पर्याय पीछे। यहाँ तो अपने सामर्थ्य से अर्पण करते हैं। पर्याय का सामर्थ्य है तो उस कारण से यहाँ सामर्थ्य आया है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है। ओहोहो!

आत्मा है, ऐसे अस्तित्व की प्रतीति करना, उसमें आत्मा के एक गुण की एक समय की (पर्याय की) ऐसी प्रतीति करना कि पूर्ण जाननेवाला है, प्रत्यक्ष जाने ऐसी प्रतीति करना, वह तो निर्विकल्प दृष्टि हुए बिना प्रतीति होती नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा इतना सामर्थ्यवाला कि अपनी प्रगट पर्याय में **निर्विघ्न विकसित, अखण्डित प्रतापयुक्त...** उसका प्रताप कौन खण्ड कर सके? **प्रभुत्वशक्ति द्वारा बलात् अत्यन्त आक्रमित...** होकर प्राप्त करे। ऐसी पर्याय का—एक समय की अपनी ज्ञान की अवस्था की इतनी ताकत और सामर्थ्य है। समझ में आया? ऐसी जिसको प्रतीति बैठे उसको, राग में सुख है, पुण्य में सुख है, इन्द्रियविषय में सुख है—ऐसी बुद्धि नहीं रहती, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? एक समय में इतना जाने, वह आनन्दसहित है। ऐसी पर्याय की प्रतीति जिसको हो, उसको इन्द्रियों के विषय में सुख है, ऐसी बुद्धि रहती नहीं। अतीन्द्रिय ज्ञान में सुख है, उसके अतिरिक्त सुख है नहीं। ऐसी बात है। आहाहा! समझ में आया?

कहीं आस्था करनेयोग्य है नहीं, विकल्प में, पर में। आस्था करनेयोग्य द्रव्यस्वभाव है। उसकी पर्याय का इतना स्वभाव है, तो द्रव्य का स्वभाव ही आस्था करनेयोग्य है कि उसमें आनन्द पड़ा है और उसमें सर्व शक्ति पर्याय की पड़ी है। ओहोहो! समझ में आया कुछ? सूक्ष्म बात है। आचार्य ने देखो न ९२ गाथा का वर्णन किया। ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन की ९२ (गाथा)। ९० और २। ज्ञान का सामर्थ्य कितना है, (वह) बताना है। यह बात नहीं है। उसका इतना अस्तित्व है, इतना उसका सामर्थ्य है। एक समय में, एक समय की पर्याय का इतना सामर्थ्य है। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय एक समय में। सब उसकी

पर्याय की श्रद्धा, उसका अस्तित्व ऐसी एक-एक पर्याय में इतना अनन्त सामर्थ्य सबमें है, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड जो है, वह गुण है। और अनन्त गुण का पिण्ड, वह तो भगवान वस्तु आत्मा है। ऐसे आत्मा की अन्तर स्वसंवेदन करके, अपने ज्ञान से ज्ञान को वेदन करके अन्दर में एकाग्र होना, वही धर्म और वही धर्म अर्थात् चारित्र और उस चारित्र से आत्मा को केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। समझ में आया?

और **वे पर्यायें अपने स्वरूपसर्वस्व को...** सर्वस्व। जितनी पर्याय भूत और भविष्य की नहीं है, फिर भी वर्तमान सर्वस्व को, वर्तमान में सर्वस्व को। वर्तमान में न? या भविष्य में? यहाँ पर्याय एक समय में प्रगट हुई न? तो सामने भी सब पर्याय एक समय में अर्पण करती है। ऐई! वजुभाई!

मुमुक्षु : .... समझाओ न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ... कहते हैं न। उसकी पर्याय का इतना ही सामर्थ्य है। ज्ञेय का ऐसा ही सामर्थ्य है, पर्यायरूपी ज्ञेय।

मुमुक्षु : .... पर्याय तो अनिश्चित है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनिश्चित कब? वह तो सब गप्प मारने की बात है।

यहाँ तो निश्चित पर्याय भविष्य में वर्तमान हुई नहीं और भूतकाल में निश्चित हो गयी, वह वर्तमान में है नहीं, फिर भी वह पर्याय अपना सर्वस्वस्वरूप। देखो! **अपने स्वरूपसर्वस्व को...** स्वरूपसर्वस्व को। सर्वस्व को **अक्रम से अर्पित करें...** एक समय में अर्पित करें, तब अक्रम कहलाये न?

मुमुक्षु : बराबर।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्या बराबर? नहीं है और अर्पण करे एक समय में? ऐसा कहते हैं। भाई! नहीं है, ऐसा मत ले। आहाहा! अक्रम से अर्पण करे, इसका अर्थ क्या? और अपने स्वरूपसर्वस्व को एक समय में वर्तमान है और भूतकाल की नहीं, भविष्य की नहीं, फिर भी वह ज्ञेय का ऐसा ही स्वभाव है। समझ में आया? कि एक समय में ज्ञान में सर्वस्वस्वरूप को अर्पित करती है, इसलिए प्रमेयरूप होकर प्रमाण में उसका ज्ञान आ जाता है। आहाहा! स्वभाव... स्वभाव... स्वभाव अकेले स्वभाव का

वर्णन करते हैं। समझ में आया? अज्ञानी की हैसियत नहीं कि उसमें तर्क करके वह समझे, ऐसी चीज़ कहते हैं। वर्तमान है नहीं। आहाहा! है नहीं, उत्पन्न हुई नहीं और उत्पन्न होकर विलय हो गयी। एक समय में वह ज्ञेय, पर्याय सब अपना सर्वस्वस्वरूप अक्रम से—क्रम पड़े बिना एक समय में अर्पित करती है। देखो! आहाहा! ज्ञान की पर्याय का तो सामर्थ्य इतना है, उसको एक ओर रखो। वह तो यह कहते हैं। आहाहा! ज्ञेय का भी इतना सामर्थ्य है। वर्तमान में सर्वस्व अक्रम से अर्पण कर देता है, ऐसा ज्ञेय का स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया?

(-एक ही साथ ज्ञान में ज्ञात हों) अब कहते हैं **इस प्रकार उन्हें अपने प्रति नियत न करे...** देखो! यह तो पहले सिद्ध किया कि इस प्रकार है। अब **इस प्रकार उन्हें अपने प्रति नियत न करे...** ज्ञान। **इस प्रकार उन्हें अपने प्रति नियत...** ज्ञान में न करे। यह पहले आ गया न नियत का? ज्ञान के प्रति नियत होने से। वह ३८ में आ गया है। नियत है न नियत? समझ में आया? वह ३८ में आ गया है। नियत निश्चित। आहाहा! वह कोई ज्ञान का अपूर्व स्वभाव और ज्ञेय की पर्याय का भी अपूर्व स्वभाव है। इसमें अज्ञानी का तर्क काम नहीं करता। समझ में आया? अलौकिक बात है। ऐसे तो कहे कि उत्पन्न हुई नहीं, उत्पन्न होकर नष्ट हुई और एक समय में ज्ञान उसको पहुँच जाये, वह ठीक... ज्ञान का इतना सामर्थ्य है। ज्ञेय एक समय में उसको अर्पण कर दे, वह ज्ञेय का सामर्थ्य।

मुमुक्षु : .... कैसे अर्पण करे?

पूज्य गुरुदेवश्री : है ही। नहीं है, ऐसा प्रश्न ही नहीं यहाँ तो कहते हैं। समझ में आया? एक समय में अर्पण कर दे। आहाहा!

मुमुक्षु : हर समय अर्पण....

पूज्य गुरुदेवश्री : एक-एक समय में जो पूर्ण है, वह अर्पण कर देती है। भूत, भविष्य और वर्तमान सब पर्याय एक समय में अर्पण कर देती है। भविष्य की होगी, तब जानने में आयेगा, भूत की विलय हो गयी, तब जानी थी, अब है नहीं—ऐसा यहाँ नहीं है। ओहोहो! समझ में आया? कुन्दकुन्दाचार्य साक्षात् सर्वज्ञ भगवान के पास सुनकर आये न? ॐ ध्वनि। वह यहाँ पुकार करते हैं। भगवान! तेरा स्वभाव ऐसा है। समझ में

आया ? और ज्ञेय का भी ऐसा स्वभाव है कि एक समय में अनुत्पन्न और नष्ट, एक समय में अर्पण कर देती है। ओहोहो! ज्ञानचन्दजी! कहो, समझ में आता है ?

इस प्रकार उन्हें अपने प्रति... ज्ञेय की पर्याय **नियत न करे (-अपने में निश्चित न करे, प्रत्यक्ष न जाने), तो उस ज्ञान की दिव्यता क्या है ?** तो उस ज्ञान की दिव्यता क्या ? ओहोहो! समझ में आया ? जातिस्मरण में भी जहाँ धारणा का विषय है, (वह) स्मृति में आता है। वह भी सामनेवाले प्राणी की पर्याय वर्तमान में तो भूतकाल की बीत गयी है। फिर भी उसके ख्याल में आता है कि यह आत्मा यहाँ था। उसकी पर्याय ऐसी थी, ऐसा आता है या नहीं ख्याल में ? समझ में आया ? ऋषभदेव भगवान थे। राजकुमार को जातिस्मरण हुआ न ? श्रेयांसकुमार को। वह राजकुमार था और भगवान आहार लेने को आये ऋषभदेव भगवान। कोई खबर नहीं थी विधि की। और ऐसा देखा तो एकदम अन्दर में से जातिस्मरण हो गया। कहो, पूर्व की पर्याय में वह था, वर्तमान पर्याय में ख्याल आ गया। अपनी पूर्व की पर्याय में था धारणा में, वर्तमान में स्मृति होकर वर्तमान में आ गया। और उसका आत्मा आठ भव पहले हमारा पति था और हम दोनों ने मिलकर सन्तों को—मुनियों को आहार दिया था। कितनी ताकत! एक मति का अवग्रह, धारणा, उसके विषय की इतनी ताकत! समझ में आया ? वर्तमान तो पर्याय है नहीं वह। ऋषभदेव भगवान पूर्व में थे स्वयं, उनका आत्मा और स्वयं पूर्व में थे, उस समय आहार दिया ऐसा काल, उसका वह भाव वह स्मरण में ऐसा आया तो प्रत्यक्ष ऐसा लगे कि यह तो ओहो! यह वही आत्मा और मैं भी वही आत्मा। समझ में आया ? इसका स्वभाव ही ख्याल में आ गया। ज्ञान का स्मरण... ओहोहो!

तो कहते हैं कि जिसकी मति की भेद की धारणा में इतना सामर्थ्य है कि वर्तमान पर्याय न हो तो भी उसके ख्याल में आ जाये। यह भी भगवान (का जीव) था पूर्व में और हम भी थे। दोनों तो अरूपी हैं। शरीर की वर्तमान अवस्था दूसरी है। ज्ञान का कोई ऐसा सामर्थ्य है कि सबको जान लेता है। तो एक समय की पर्याय केवलज्ञान की अपना शुद्ध भगवान अकेला स्वभाव का पूर, स्वभाव का नूर, चैतन्यपूर, उसमें दृष्टि लगाकर साम्यभाव प्रगट किया, शान्ति प्रगट करके स्वरूप की रमणता प्रगट करके वह ज्ञान की पर्याय ऐसी प्रगट हुई (कि) सब पर्यायों को एक समय में जोर से पहुँच जाती है। और

जो न पहुँचे तो दिव्यज्ञान कैसा? ऐसा कहते हैं। नवनीतभाई! आहाहा! अन्यमत में ऐसी बात होती नहीं। अद्धर... अद्धर से बात करे। अस्तित्व कितना है द्रव्य का, गुण का, पर्याय का, उसकी सत्ता का, ऐसे सामर्थ्य का ज्ञान नहीं और ऊपर-ऊपर से विकल्प तोड़ो, विकल्प टूट जायेगा। धूल में भी नहीं टूटेगा। मिथ्यात्व पुष्ट हो जायेगा। समझ में आया? ओहो!

मुमुक्षु : अनादि का मिथ्यात्व है, ऐसा मानते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको खबर भी कहाँ है? मिथ्यात्व को कौन मानता है? अनादि का मानता है, परन्तु वह तो बिना मतलब का। बिना भान की बात करे। आहाहा!

इतना अस्तित्व—होनेपने ज्ञान की पर्याय में सामर्थ्य (है कि) अनुत्पन्न और नष्ट को भी एक समय में जान ले और ज्ञेय में भी अनुत्पन्न और नष्ट हुई, वह भी सब पर्यायें एक समय में अर्पित कर दे ज्ञान में। देखो, वस्तु का स्वभाव! स्वभाव में तर्क का अभाव है। समझ में आया?

(-अपने में निश्चित न करे, प्रत्यक्ष न जाने), तो उस ज्ञान की दिव्यता क्या है? तो दिव्यज्ञान किसको कहते हैं? दिव्यज्ञान। ओहो! प्रधान ज्ञान, उत्कृष्ट ज्ञान। **इससे (यह कहा गया है कि) पराकाष्ठा को प्राप्त ज्ञान के लिये यह सब योग्य है।** देखो! पराकाष्ठ—उत्कृष्टदशा को प्राप्त हुआ भगवान आत्मा अपनी अवस्था को, ज्ञान की दशा को अपने स्वरूप की रमणता के कारण से (प्राप्त किया)। देखो! चारित्र से केवलज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं, अकेले सम्यग्दर्शन से केवलज्ञान होता नहीं, ऐसा कहते हैं। तब वह लोग कहे, अपने '**दंसण मूलो**' लिखा है न? '**दंसण मूलो धम्मो**' उसकी टीका की। '**दंसण मूलो धम्मो**' परन्तु धर्म हो तो दर्शन। इसलिए चारित्र लो तो दर्शन की कीमत होगी। कहो, आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि दर्शनभ्रष्ट है, वह तो सबसे भ्रष्ट है और चारित्रभ्रष्ट है परन्तु दर्शन से भ्रष्ट नहीं तो वास्तव में भ्रष्ट नहीं है। देखो!

यहाँ तो आचार्य बात करते हैं। वह कहे कि नहीं। लिखावट ऐसी आयी है। '**दंसण मूलो**' आपमें है न? ऐई! हरिभाई! है न? इस बार आत्मधर्म बहुत अच्छा लिखा है, बहुत अच्छा! हरिभाई ने बहुत अच्छा (लिखा है)। इस बार तो इतना ज्यादा

हो गया। बहुत अच्छी पद्धति। बहुत अच्छा लिखा है इस बार। लोगों को रुचने लगे, ऐसा है। आज मैंने देखा। पढ़ा सब। उसमें दो मांगलिक डाले हैं न प्रवचनसार और समयसार के दोनों। रखने की पद्धति बहुत अच्छी है, बहुत अच्छी है। समझ में आया? क्या कहते हैं उसे? आत्मधर्म। आज पढ़ा था। यहाँ है न। वह देखा। आगे बराबर बहुत अच्छा किया है। समझे? २५ वर्ष हो गये। यह २५वाँ पूरा (हुआ)। समझ में आया? नवनीतभाई! हरिभाई को बहुत उत्साह है। २५। वर्ष हो गये इसमें ऐसा काम किया! बहुत अच्छा काम किया। बहुत अच्छा है। आज तो देखने के (बाद) यहाँ से जाकर उसको कह दूँ कमरे में, ऐसा हो गया था। कितनी बार पढ़ते-पढ़ते भगवान का विरह याद आ जाये। कितना अन्दर हो रहा था पढ़ते-पढ़ते। ऐसे ढंग से लिखा है, बहुत अच्छा। कहो, समझ में आया कुछ? देखो यह बीच में आ गया। बहुत अच्छा लिखा है। करने की पद्धति और शैली सब बहुत अच्छी है। प्रभावना में वह भी एक योग है न निमित्त। आहाहा!

कहते हैं कि **उस ज्ञान की दिव्यता क्या है? इससे पराकाष्ठा को प्राप्त ज्ञान के लिये यह सब योग्य है।** आहाहा! भगवान ज्ञान से खिल गया पूर्ण पराकाष्ठ—उत्कृष्ट दशा खिल गयी। उसका क्या कहना? कहते हैं। उसको सब कुछ योग्य है। जो कुछ कहो सब योग्य है। यह नष्ट और अनुत्पन्न भी वर्तमान में जानने में आये, ऐसी उसकी योग्यता है, ऐसा कहते हैं। उसके लिये सब योग्य है। समझ में आया कुछ? नष्ट या अनुत्पन्न पर्याय भी वर्तमान में जाने, ऐसी ज्ञान की दिव्यता है, पराकाष्ठा है। वह प्राप्त ज्ञान के लिये सब योग्य है। सब योग्य है। आहाहा! समझ में आया? सब योग्य है, ऐसा शब्द पड़ा है। है या नहीं? '**सर्वमेतदुपपन्नम्**' वही न? '**सर्वमेतदुपपन्नम्**' सर्व यह सब प्राप्त है, उसके योग्य है, उसको बराबर जाने। आहाहा!

भावार्थ :- अनन्त महिमावान केवलज्ञान की... देखो! अरिहन्त सर्वज्ञ की पर्याय की महिमा! आहाहा! पामर का काम नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसी केवलज्ञान पर्याय... मोक्षमार्गप्रकाशक में आया है न, भाई! कि अरिहन्त के आत्मा के विशेषों को जो जाने, फिर तो उसको आत्मा का ज्ञान होता, होता और होता ही है। समवसरण का अतिशय वह उसकी गुणदशा नहीं है। आहाहा! है न उसमें तीनों का?

देव, गुरु और शास्त्र। देव अरिहन्त, उनकी जो ज्ञान अवस्था, उनका गुण और उनका द्रव्य। वह जो आत्मा के विशेषण हैं, जितने आत्मा के विशेषण हैं, उस तरह जो आत्मा को जाने—अरिहन्त के आत्मा, को तो स्वयं को जाने बिना रहे नहीं। आहाहा! समझ में आया कुछ? ऐसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को व्यवहार समकित कहा, विकल्प। परन्तु उनका आत्मा जो है, उनका आत्मा जो है, ऐसा आत्मा, द्रव्य ऐसा, गुण ऐसा और उनकी पर्याय ऐसी। एक-एक पर्याय केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्त आनन्द, अनन्त वीर्य स्वच्छता आदि ऐसा जो उनका स्वरूप आत्मा के विशेषण का है, अतिशय और समवसरण में इन्द्र (द्वारा) पूजनीक हैं, वह बात छोड़ दो। वह कोई आत्मा का विशेषण, वह आत्मा का स्वरूप नहीं है। पर पूजे और... समझे न? ऐसा अतिशय होता है, वह कोई उनकी वस्तु नहीं है।

आत्मा का जो स्वभाव है, उसका द्रव्यस्वभाव, गुणस्वभाव और पर्यायस्वभाव, उसके विशेषण से जो अरिहन्त के आत्मा को जाने, उसको आत्मा का इतना ऐसा स्वरूप है, ऐसे अपने साथ मिलान किये बिना रहे नहीं। अपने साथ मिलाये बिना रहे नहीं। देखो! गुजराती भाषा आ जाती है। समझ में आया? ऐसे आत्मा के विशेषण ख्याल में ले, उसको अपने आत्मा का भी इतना सामर्थ्य है, ऐसा मिलान करके उसको अनुभव हुए बिना रहता नहीं। आहाहा!

गुरु के लिए ऐसा कहा है। अट्ठाईस मूलगुण विकल्प है, नग्न हैं, वह कोई आत्मा के विशेषण हैं? गुरु तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकता उनका लक्षण है। पूर्णानन्द भगवान की श्रद्धा, उसका स्वसंवेदनज्ञान और उसमें रमणता-चारित्र—मोक्षमार्ग की एकता वह गुरु का, वह लक्षण है। मोक्षमार्गी जीव है वहाँ चारित्र में। तो उसके आत्मा का जो ऐसा विशेषण है और स्वरूप है, उसको कोई जाने तो अपने आत्मा को जाने बिना रहता नहीं। जेठालालभाई! समझ में आया? अट्ठाईस मूलगुण है और नग्नपना है, वह वन्दनीक है? वह वन्दनीक है? वह आत्मा का विशेषण है? वह गुरु का स्वरूप है ऐसा?

भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, ऐसा गुण पूर्ण, ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि और अन्तर्मुख ज्ञान और स्वरूप की लीनता—चारित्र वीतरागी पर्याय, ऐसी जो मोक्षमार्ग की एकाग्रता,

वह गुरु का स्वरूप है। ऐसे आत्मा की एकाग्रता मोक्षमार्ग, ऐसा जिसको लक्ष्य में आये, ऐसा गुण और द्रव्य, तो उसको आत्मसन्मुख होकर आत्मा की दृष्टि होती, होती और होती ही है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अनेकान्त और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का कहनेवाला है। शास्त्र अनेकान्तस्वरूप है और सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र का मोक्षमार्ग का कथन करनेवाला है। उस कथन में ऐसा है, ऐसा अनेकान्तस्वरूप में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जान ले तो उसको भी आत्मा का ज्ञान हुए बिना रहता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : आत्मा का ज्ञान बिना शास्त्र को जाना नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं जाना। आया न, ऐसा ही हुआ न, यह वस्तु ऐसी है, परमात्मा ऐसे हैं, गुरु ऐसे हैं और शास्त्र को मोक्षमार्ग और अनेकान्तपना ऐसा कहना है, ऐसा उसको जँच गया है, उसको ही देव-गुरु-शास्त्र का यथार्थ ज्ञान है। समझ में आया?

ओहो! **अनन्त महिमावान केवलज्ञान की यह दिव्यता है कि वह अनन्त द्रव्यों की समस्त पर्यायों को (अतीत और अनागत पर्यायों को भी) सम्पूर्णतया...** सम्पूर्णतया **एक ही समय प्रत्यक्ष जानता है।** आहाहा! समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ४०

अब, इन्द्रियज्ञान के लिये नष्ट और अनुत्पन्न का जानना अशक्य है... बस वह सिद्ध करना है। इन्द्रियज्ञान में कितनी ताकत! अतीन्द्रिय केवलज्ञान में वह ताकत है और वह अतीन्द्रिय ज्ञान आत्मा में से प्राप्त होता है। समझ में आया? इन्द्रियज्ञान को ही नष्ट अर्थात् पर्याय हो गयी और विलय हो गयी, द्रव्य में—सब पदार्थ में अनुत्पन्न (अर्थात्) नहीं हुई। **जानना अशक्य है (अर्थात् इन्द्रियज्ञान ही नष्ट और अनुत्पन्न पदार्थों को-पर्यायों को नहीं जान सकता) ऐसा न्याय से निश्चित करते हैं।**

अत्थं अक्खणिवदिदं ईहापुव्वेहिं जे विजाणंति।
तेसिं परोक्खभूदं णादुमसक्कं ति पण्णत्तं॥४०॥

देखो! परोक्ष। भूत-भविष्य सब परोक्ष है, वर्तमान कुछ प्रत्यक्ष इन्द्रिय में होता

नहीं। समझ में आया? ४०। गुजराती में है न वह? (इसका हिन्दी पद्यानुवाद दिया जा रहा है।)

इन्द्रिय-गोचर ज्ञेयों को, ईहादिक द्वारा जो जाने।
वे परोक्ष को जान सकें नहिं, ऐसा श्री जिनदेव कहें॥४०॥

क्या कहते हैं? भूत-भविष्य तो परोक्ष हो गया। वह इन्द्रिय ज्ञान कैसे जाने? अतीन्द्रिय ज्ञान जाने, ऐसा कहते हैं।

अन्वयार्थ :- जो अक्षपतित अर्थात् इन्द्रियगोचर पदार्थ को ईहादिक द्वारा जानते हैं,... विचारणा करके इन्द्रिय द्वारा, मन द्वारा जानते हैं, **उनके लिये परोक्षभूत पदार्थ को...** परोक्षभूत की व्याख्या। **अक्ष से पर अर्थात् अक्ष से दूर होवे ऐसा; इन्द्रिय अगोचर।** समझे? इन्द्रिय से पार वस्तु है। इन्द्रियगम्य नहीं, ऐसा ज्ञान इन्द्रियगम्यवाले को होता नहीं। **अशक्य है, ऐसा सर्वज्ञदेव ने कहा है।**

टीका :- विषय और विषयी का सन्निपात जिसका लक्षण है,... देखो! **सन्निपात=मिलाप; सम्बन्ध होना वह।** विषय, है न सामने चीज़? और विषयी—जाननेवाला, उसका सन्निपात—मिलाप हो। सामने रूप है तो यहाँ मिलाप हो, शब्द है तो यहाँ विषय का मिलाप हो। **विषय और विषयी का सन्निपात जिसका लक्षण (स्वरूप) है, ऐसे इन्द्रिय और पदार्थ के सन्निकर्ष को प्राप्त करके,...** सन्निकर्ष अर्थात् सम्बन्ध, समीपता प्राप्त करके **जो अनुक्रम से...** अनुक्रम से **उत्पन्न ईहादिक के क्रम से जानते हैं...** अनुक्रम से उत्पन्न इहादिक विचारणा से जानते हैं, **वे उसे नहीं जान सकते...** वे उसे नहीं जान सकते। किसको?

जिसका स्व-अस्तित्वकाल बीत गया है... इन्द्रिय शब्द पड़ा रहा इतना। **जिसका अस्तिकाल बीत गया है...** ऐसा लेना। हिन्दी में यह शब्द पड़ा है संस्कृत में। जिसका होनेपने का काल बीत गया है। देखो! जो पर्याय होने का काल ही बीत गया है। जिस समय... देखो! वह भी क्रमसर आ गया। उसका अस्तित्व का काल जो उत्पन्न (होने का) था भूत में, उसका काल बीत गया। उसका अस्तित्व का काल जो था, वह काल तो बीत गया। जिस-जिस समय की पर्याय का उस समय का अस्तित्व का समय था,

वह समय तो चला गया। समझ में आया? अनन्त पदार्थों की जो भूतकाल में पर्याय हुई, उस समय में अस्तित्व था, उस समय अस्तित्व था। तो उस समय का अस्तित्व, अस्तित्व अर्थात् होना, उसका काल बीत गया, उसका काल है नहीं। ओहोहो!

तथा जिसका स्व-अस्तित्वकाल उपस्थित नहीं हुआ है... देखो! जिसका अस्तित्व काल होनेवाली पर्याय का काल है नहीं अभी। भविष्य काल के अस्तित्व की पर्याय वर्तमान में तो है नहीं। देखो! अस्तित्व है नहीं (तो) इन्द्रिय नहीं जान सकती है। वह अतीन्द्रिय ज्ञान जानता है।

मुमुक्षु : अस्तित्व न हो तो कैसे जाने?

पूज्य गुरुदेवश्री : अस्तित्व वर्तमान में नहीं है, वर्तमान में प्रगटरूप नहीं, परन्तु शक्तिरूप सब अन्दर में है। सब एक समय में सब जानते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : एक प्रगट और दूसरी सब....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब-सब प्रगट अन्दर पड़ी है शक्तिरूप। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब पड़ी है। एक समय में सब पड़ा है। प्रगटपने एक है सब पर्याय। केवलज्ञान में तो वह पर्याय इस समय प्रगट होगी और यह पर्याय यहाँ गयी, सबका उसको ज्ञान है, प्रत्यक्ष ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! समझ में आया?

जिसका अस्तित्व-काल बीत गया है तथा जिसका स्व-अस्तित्वकाल उपस्थित नहीं हुआ है... क्योंकि (-अतीत-अनागत पदार्थ...) भूतकाल और भविष्य का पदार्थ **(इन्द्रिय के) यथोक्त लक्षण** ऊपर कहा न? स्वरूप ऊपर कहा जैसा है। विषय-विषयी की समीपता। ऐसा कहा है **ग्राह्यग्राहकसम्बन्ध का असम्भव है।** देखो! इन्द्रियगोचर पदार्थ ग्राह्य है, इन्द्रियाँ ग्राहक हैं। वर्तमान नहीं है तो ग्राह्यग्राहक उसको होता नहीं। अतीन्द्रिय ज्ञान में ग्राह्यग्राहक होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान ज्ञान की पर्याय में ग्राह्यग्राहक केवलज्ञान में होता है। इन्द्रिय ज्ञान में ऐसा होता नहीं। वह तो विषय अर्थात् पदार्थ सामने और विषयी-जाननेवाली इन्द्रिय, उसका सम्बन्ध हो तो

जाने। वर्तमान में सम्बन्ध हो। भूतकाल की अवस्था नष्ट हुई और भविष्य की उत्पन्न हुई नहीं, उसको वर्तमान में इन्द्रिय और विषय का सम्बन्ध नहीं। सम्बन्ध नहीं है तो जाने नहीं। ओहोहो! गजब काम किया है!

कोई कहे प्रवचनसार, समयसार से कम होगा। गजब बात की है! सर्वज्ञ परमात्मा की पर्याय कैसी? और आत्मा की ऐसी पर्याय प्रगट हो और ऐसी सब पर्याय अन्दर में पड़ी है शक्तिरूप। समझ में आया? मैं अरिहन्त वर्तमान में हूँ, मैं सिद्ध वर्तमान में हूँ शक्तिरूप। समझ में आया? साधुपद प्रगट न हो, फिर भी साधु की पर्याय मेरे में वर्तमान में पड़ी है अन्दर। ऐई! पंच परमेष्ठी की पर्याय, पर्याय है न निर्मल? उसको पंच परमेष्ठी कहते हैं न? या शरीर को, समवसरण को या अतिशय को कहते हैं? या इन्द्रियों को, बहुत सुन्दर शरीर, पदार्थ परमौदारिकशरीर, उसको भगवान कहते हैं? अन्दर में पाँच परमेष्ठी की जो निर्मल पर्याय होनेवाली है, वह है। समझ में आया?

इन्द्रिय को विषय का सम्बन्ध नहीं होता। इन्द्रिय विषयी है विषयी, वह विषय है। वर्तमान में सम्बन्ध से मिलाप होता है, इतना जाने। भूत-भविष्य का मिलाप है नहीं। उसकी शक्ति में तो पड़ा है, उसका ज्ञान इन्द्रिय को है नहीं। समझ में आया? यहाँ तो ज्ञान की एक समय की पर्याय में इतनी ताकत है, ऐसा माने तो उस ज्ञान का तत्त्व उसने माना कहने में आता है। समझ में आया? और इन्द्रिय ज्ञान तो वर्तमान जानता हो, वह परोक्ष कहाँ से जाने? वह शब्द पड़ा है अन्दर? '**तेसिं परोक्खभूदं णादुमसक्कं**' परोक्षभूत का अर्थ किया है। भूत और भविष्य परोक्ष है। समझ में आया? यह परोक्षभूत का अर्थ किया वह। '**परोक्खभूदं णादुमसक्कं**' परोक्ष का अर्थ क्या किया? उत्पन्न हुई नहीं और उत्पन्न होकर नाश हो गयी। वह परोक्ष है, वर्तमान विषयी का सम्बन्ध न रहा, इन्द्रिय, वह विषयी और (विषय), वह नहीं रहा। वह तो परोक्ष हो गया। तो परोक्ष ईहापूर्वक जाननेवाला और इन्द्रिय और विषय का सम्बन्ध जाननेवाला परोक्ष कहाँ से जाने? बहुत सूक्ष्म। ऐसी धर्मकथा कहाँ से आयी? ऐई! भगवानजीभाई! ऐसी बात है।

वस्तु आत्मा है और आत्मा का गुण है और गुण की पर्याय इतनी है, ये सब अस्तित्व की प्रतीति कराते हैं। आहाहा! ऐसे आत्मा... आत्मा माने, ऐसा नहीं-ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा... ऐसी अनन्त केवलज्ञान की पर्यायें बीत गयीं। केवलज्ञान

की पर्याय भी वर्तमान एक ही है न? भविष्य में उत्पन्न होगी न नयी-नयी? वह सब वर्तमान में प्रत्यक्षवत् केवली जानते हैं। आहाहा! वर्तमान इन्द्रिय और विषय वर्तमान सम्बन्धवाला, उसको परोक्ष अर्थात् अनुत्पन्न और नष्ट ऐसी पर्याय तो वर्तमान नहीं। वर्तमान नहीं तो परोक्ष को कैसे वह जाने? इन्द्रियज्ञान जान नहीं सकता। तो इसका अर्थ यह हुआ कि केवलज्ञान प्राप्त करनेवाले को इन्द्रियज्ञान कुछ काम नहीं करता। अपना अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप चिदानन्द भगवान, उसका अन्तर ज्ञान करके स्वसंवेदन हो, वह केवलज्ञान का कारण होता है। समझ में आया? ओहोहो! लो! इन्द्रियज्ञान मोक्षमार्ग में काम नहीं करता, ऐसा कहते हैं। यह सब आपकी वकालत काम नहीं करती। पढ़-पढ़कर कितने वर्ष पढ़े? कहो, समझ में आया? आहाहा!

यह परोक्ष की व्याख्या की न भाई! भूत और भविष्य की परोक्षभूत की व्याख्या की वह। परोक्ष की व्याख्या की है कि परोक्ष अर्थात् क्या? नष्ट—अउत्पन्न वह परोक्ष। अभी वर्तमान सम्बन्ध में नहीं। वर्तमान सम्बन्ध है, उसका इन्द्रिय ज्ञान करती हैं तो परोक्षभूत कहाँ से जाने वह? इसलिए इन्द्रिय ज्ञान आत्मा के कार्य में निरर्थक है। समझ में आया? यह इन्द्रिय ज्ञान निरर्थक है। भगवानजीभाई! पैसा निरर्थक है, शरीर... आहाहा! बहुत कठिन बात, भाई! परचीज़ है तो थोड़ी मदद करे न? पैसा नहीं, शरीर नहीं, मन नहीं, विकल्प नहीं। वह तो नहीं, परन्तु इन्द्रिय ज्ञान काम न करे मोक्षमार्ग में, (ऐसा) कहते हैं। यह तो केवलज्ञान लेने में मोक्षमार्ग में इन्द्रिय ज्ञान कुछ काम नहीं करता, ऐसा कहते हैं। आहाहा! राग जो पुण्य है, वह तो मोक्षमार्ग में काम करता नहीं (परन्तु) इन्द्रिय ज्ञान (भी) काम नहीं करता। समझ में आया?

यह तो अभी व्यवहार विकल्प उठे, वह मोक्षमार्ग व्यवहार और उससे मोक्ष हो। पुरुषार्थसिद्धिउपाय में आता है न! दो मोक्षमार्ग है, दो से मोक्ष की प्राप्ति होती है। वह तो प्रमाण का कथन किया है, सुन तो सही। भगवान! क्या करे? अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं। दो मोक्षमार्ग। दोनों मोक्षमार्ग की प्राप्ति से मोक्ष होता है। दोनों से।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो दूसरी जगह पर लिया है, वहाँ कहाँ से मिलान करे?

मुख्य उपचार ऐसा लिखा है न। मुख्य, वह निश्चय है और सत्यार्थ है सो निश्चय है। वह नहीं लिखा है छहढाला में? सत्यार्थ सो निश्चय और उपचार सो व्यवहार। सत्यार्थ आता है या नहीं? छहढाला। वह छहढाला में आता है। उसका अर्थ क्या हुआ? व्यवहार असत्यार्थ है। निश्चय सत्यार्थ है; व्यवहार, वह असत्यार्थ है। उसको असत्यार्थ कहो, उपचार कहो, मुख्य में से गौण कहो। वस्तु में नहीं। समझ में आया? अरे! भगवान!

जिसका स्व-अस्तित्व काल उपस्थित नहीं हुआ है क्योंकि यथोक्त लक्षण ग्राह्यग्राहकसम्बन्ध का असम्भव है। लो! वह ज्ञान क्या काम करे? कहते हैं। वह आत्मा के कल्याण में, आत्मा के धर्म में इन्द्रियज्ञान क्या काम करे? कहो, समझ में आया? आहाहा!

भावार्थ :- इन्द्रियों के साथ पदार्थ का (अर्थात् विषयी के साथ विषय का)... ऐसे। विषयी के साथ। वह विषयी कौन? इन्द्रियाँ। पदार्थ विषय। एक के बाद एक शब्द लिखा है न कोष्ठक में? विषयी कौन? कि इन्द्रियाँ और विषय कौन? कि पदार्थ। **सन्निकर्ष सम्बन्ध हो...** दोनों का मिलाप हो सम्बन्ध वर्तमान। **तभी (अवग्रह-ईहा-अवाय-धारणारूप क्रम से)...** देखो! अवग्रह, फिर विचार, फिर निर्णय, फिर धारणा। **इन्द्रियज्ञान पदार्थ को जान सकता है।** लो! समझ में आया? ऐसा हो तो इन्द्रिय ज्ञान जान सकता है।

नष्ट और अनुत्पन्न पदार्थों के साथ इन्द्रियों का सन्निकर्ष-सम्बन्ध न होने से इन्द्रिय ज्ञान उन्हें नहीं जान सकता। परोक्ष है, इसलिए इन्द्रिय ज्ञान जान नहीं सकता, उसको प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। **इसलिए इन्द्रियज्ञान हीन है, हेय है।** देखो! इन्द्रियज्ञान हेय है, ऐसा लिखा है। समझ में आया? यह इन्द्रिय। अभी तो शुभराग हेय मानने में कठिन लगता है। जो विकल्प आया, कषाय की मन्दता का, वह हेय है। सरागसंयम राग हेय है। वीतरागचारित्र उपादेय है। तो कहे नहीं... नहीं... नहीं। वह तो पीछे की अपेक्षा से पहले को हेय कहा है। अशुद्ध पर्याय भी पीछे की अपेक्षा से व्यय हो जाती है, तो उसको हेय कहा है। ऐसे राग को हेय कहा है, ऐसा अर्थ मिलाते हैं। क्या कहा, समझ में आया?

शुद्ध पर्याय निर्मल हुई न? वह भी पहले समय की पर्याय, पीछे समय में दूसरी

रहती नहीं। वृद्धिगत होती है। तो वृद्धिगत होने के कारण से पहले की पर्याय को हेय कहा। ऐसे शुभ को उस अपेक्षा से हेय कहा। कहाँ का कहाँ ले गये। आहाहा! मोक्षमार्ग निश्चय है न? निश्चयमोक्षमार्ग हेय है या नहीं? निश्चयमोक्षमार्ग से केवलज्ञान होता है?

मुमुक्षु : उसका अभाव होकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव हुआ। अर्थात् अभाव हुआ तो हेय हुआ, ऐसे राग का अभाव हुआ, वह हेय हुआ, आदरणीय नहीं और लाभदायक नहीं, ऐसा कौन कहता है? अरे! ऐसा तो अर्थ करे। अरेरे! समझे?

यहाँ तो कहते हैं कि राग तो हेय है ही, परन्तु इन्द्रिय ज्ञान हेय है। इन्द्रिय ज्ञान से आत्मा को धर्म होता नहीं। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह इन्द्रिय ज्ञान से नहीं होता। वह अतीन्द्रिय ज्ञान से - आत्मा के अतीन्द्रिय ज्ञान से दर्शन-ज्ञान-चारित्र होता है और उसके फल में केवलज्ञान होता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १४, शनिवार, दिनांक ०५-१०-१९६८
गाथा - ४१-४२, प्रवचन - ३३

प्रवचनसार है। ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। ज्ञानतत्त्व का सामर्थ्य, उसके भाव की शक्ति कितनी है, वह बात करते हैं। उसमें वर्तमान तो अतीन्द्रिय ज्ञान की बात चलती है। आत्मा वस्तु अतीन्द्रिय है, उसका ज्ञान भी अतीन्द्रिय है और उसकी पर्याय भी अतीन्द्रिय है। तो जिसको अतीन्द्रिय केवलज्ञान उत्पन्न होता है, वह किससे? कि आत्मा अखण्ड शुद्ध चैतन्य द्रव्य है, उसके अन्तर अवलम्बन से दृष्टि होती है और ज्ञान होता है, तब स्वरूप में स्थिरता की प्राप्ति साम्यभाव—वीतरागभाव, शुद्ध उपयोग की प्राप्ति होकर उसके फलरूप अतीन्द्रिय केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। समझ में आया? उस अतीन्द्रिय ज्ञान का माहात्म्य कितना है, वह बताते हैं। ४० गाथा हो गयी। ४१ चलती है, देखो!

★ ★ ★

गाथा - ४१

अब, ऐसा स्पष्ट करते हैं कि अतीन्द्रिय ज्ञान के लिये जो-जो कहा जाता है, वह (सब) सम्भव है :- ओहो! केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान जो शुद्ध उपयोग का फल है, जो अपने आत्मा में शुद्ध उपयोगरूपी आचरण करके उसका फल अतीन्द्रिय ज्ञान केवल (ज्ञान), उस केवल (ज्ञान) के लिये जो कहा जाता है, वह सब हो सकता है। सब, कुछ भी कहो, सब जानता है इतनी उसकी ताकत है। **जो-जो कहा जाता है, वह (सब) सम्भव है :-** ऐसा कहते हैं। ४१ (गाथा)।

अपदेसं सपदेसं मुत्तममुत्तं च पज्जयमजादं।
पलयं गदं च जाणदि तं णाणमदिंदियं भणियं॥४१॥

इसका हरिगीत है। गुजराती है न?*

* गुजराती हरिगीत का हिन्दी पद्यानुवाद यहाँ दिया गया है।

बिन-प्रदेश सप्रदेश अमूर्तिक-मूर्तिक इन सबको जाने।
भूत-भावि पर्यायों को भी, उसे अतीन्द्रिय ज्ञान कहें॥४१॥

गुजराती है न, वहाँ नहीं डाला।

टीका। मूल श्लोक का अर्थ बाद में आयेगा। बाद में आयेगा। पहला श्लोक है उसका अर्थ बाद में आयेगा। पहले इन्द्रिय ज्ञान की बात करते हैं। समझ में आया? ज्ञान अपना और इन्द्रिय से उत्पन्न हो, वह ज्ञान त्रिकाल को जान नहीं सकता। समझ में आया? पाठ में तो सर्वज्ञपर्याय कैसी है, उसकी बात है, परन्तु उसके पहले बात इन्द्रिय से करते हैं।

इन्द्रिय ज्ञान... यह पाँच इन्द्रियाँ जड़ है। वह जिसमें अपने ज्ञान में जो निमित्त, वह जड़ है जड़। उसमें **उपदेश...** इन्द्रिय ज्ञान में उपदेश जो ज्ञान से विरूप कारण है। समझ में आया? उपदेश, वह जड़ है। वाणी जो आती है, वह जड़ है और इन्द्रिय ज्ञान में उपदेश निमित्त है तो उपदेश तो पुद्गल पर्याय है। ज्ञान अपना जो ज्ञानस्वरूप है, उससे उपदेश तो वि-रूप—विरुद्ध रूपवाली चीज़ है। समझ में आया? **इन्द्रियज्ञान उपदेश, अन्तःकरण...** मन-मन। **और इन्द्रिय इत्यादि को विरूप कारणता से (ग्रहण करके)...** प्राप्त होता है। तो इन्द्रिय ज्ञान तो बहुत पराधीन है। वह वास्तविक ज्ञान नहीं। वास्तविक ज्ञान नहीं और वह त्रिकाल को जान नहीं सकता। समझ में आया?

और उपलब्धि... उसमें भी निमित्त तो बाह्य कारण है, परन्तु अन्दर में क्षयोपशम इतना ज्ञान का होना चाहिए। वह अभ्यन्तर कारण है इन्द्रिय ज्ञान में। इतना उसका क्षयोपशम-विकास की योग्यता हो और बाहर में उपदेश, मन और इन्द्रिय का बाह्य विरूप कारण हो, तब ज्ञान होता है, तो वह ज्ञान त्रिकाल को जान सकता नहीं। समझ में आया? उसका अर्थ यह है कि इन्द्रिय ज्ञान से धर्म नहीं होता और इन्द्रिय ज्ञान से सर्वज्ञपद प्राप्त नहीं होता। समझ में आया? केवलज्ञान अर्थात् मुक्ति इन्द्रिय ज्ञान से नहीं होती।

मुमुक्षु : कुछ तो प्राप्त होता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख प्राप्त होता है। समझ में आया? इन्द्रिय ज्ञान से तो दुःख की प्राप्ति होती है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानमूर्ति प्रभु आत्मा है, उसकी अन्तर मन,

इन्द्रियाँ और विकल्प, उसका भी लक्ष्य छोड़कर, अपना ज्ञानस्वरूप का वेदन करके जो ज्ञान उत्पन्न होता है, वह सम्यग्ज्ञान मोक्ष का कारण है। नवनीतभाई! आहाहा! समझ में आया? ये इन्द्रियाँ मोक्ष में कारण नहीं; शुभ परिणाम दया, दान, विकल्प मोक्ष में कारण नहीं, परन्तु इन्द्रिय ज्ञान भी मोक्ष के कारण में कारण नहीं। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि इन्द्रिय ज्ञान में उपदेश, मन और इन्द्रियाँ इत्यादि बाह्य कारण का निमित्त और अन्तर कारण में उपलब्धि—उस जाति का क्षयोपशम ज्ञान उसके पास वर्तमान हो तो इन्द्रिय ज्ञान प्राप्त होता है।

(क्षयोपशम), संस्कार... क्षयोपशम और उसमें भी संस्कार होने चाहिए कि इस प्रकार की समझ होती है, उस प्रकार का संस्कार हो, वह ख्याल में संस्कार हो तो समझ में आता है। **संस्कार इत्यादि को अन्तरंग स्वरूप...** अन्तरंग स्वरूप **कारणता से ग्रहण करके प्रवृत्त होता है...** इन्द्रिय ज्ञान तो इतनी पराधीनता... बाह्य कारण और अन्तर कारण हो, इतनी पराधीनता से इन्द्रिय ज्ञान अपना ग्रहण करके प्रवृत्त होता है। इतनी पराधीनता ग्रहण करके ज्ञान उत्पन्न होता है। देखो!

और वह प्रवृत्त होता हुआ... इन्द्रिय ज्ञान इतनी पराधीनता से प्रवृत्त होता हुआ भी। देखो! यहाँ आत्मा का ज्ञानतत्त्व सीधा काम कितना करता है और उससे केवलज्ञान प्राप्ति होती है, वह भी अतीन्द्रिय कैसा है, उसकी बात चलती है। समझ में आया? तत्त्व तो जैसा तत्त्व है, वैसी प्रतीति करनी चाहिए न? जैसा आत्मा है, जैसा ज्ञानगुण है, जैसी पर्याय है, मोक्षमार्ग में भी अतीन्द्रिय ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, तब उसको मोक्षमार्ग कहने में आता है। ऐसा वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? और अपना अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, उसकी एकाग्रता द्वारा ही अतीन्द्रिय ज्ञान की केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। कहो, समझ में आया? इस बाह्य शास्त्रज्ञान से भी अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं (होता)। कहा न उपदेश में? उपदेश मिले और ज्ञान हो, वह अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं है, वह मोक्ष का कारण नहीं। कहो, भीखाभाई! इतना सब पराधीन? कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि प्रवृत्त इन्द्रिय ज्ञान इतना अन्तर कारण और बाह्य से प्रवृत्त होता हुआ भी **सप्रदेश को ही जानता है...** समझ में आया? **क्योंकि वह स्थूल को जाननेवाला**

है,... स्थूल जाने। इन्द्रिय में जाने किसको? सूक्ष्म जान सके? समझ में आया? एक परमाणु है, एक कालाणु है, उसको तो जान सकता नहीं। स्थूल को जाने। **अप्रदेश को नहीं जानता, (क्योंकि वह सूक्ष्म को जाननेवाला नहीं है)...** कहो, समझ में आया? बहुत प्रदेशवाले को जानता है, एक प्रदेश को जानता नहीं। परमाणु, कालाणु आदि। **वह मूर्त को ही जानता है...** लो! परमाणु आदि मूर्त है, उसको उपदेश आदि से इतना जानता है, कहते हैं। लो! समझ में आया?

मूर्त को ही जानता है, क्योंकि वैसे (मूर्तिक) विषय के साथ उसका सम्बन्ध है,... इन्द्रिय ज्ञान का तो मूर्त जड़ के साथ सन्निकर्ष सम्बन्ध होता है। समझ में आया? अमूर्त के साथ इन्द्रिय ज्ञान का सम्बन्ध होता नहीं। **वह अमूर्त को नहीं जानता (क्योंकि अमूर्तिक विषय के साथ इन्द्रियज्ञान का सम्बन्ध नहीं है,...)** इन्द्रिय ज्ञान आत्मा को जानता है? वह अतीन्द्रिय है, उसको नहीं जान सकता है इन्द्रिय ज्ञान, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मूर्त को जान सकता है। वह तो स्थूल हुआ। **वह वर्तमान को ही जानता है,...** इन्द्रिय (ज्ञान) तो वर्तमान सम्बन्ध में जितना समीप में लक्ष्य में आवे, इतना ही जाने, भूत-भविष्य में नहीं जाने। इन्द्रिय ज्ञान भूत-भविष्य में नहीं जान सकता। लो! **वर्तमान को ही जानता है, क्योंकि विषय-विषयी के सन्निपात सद्भाव है...** विषय सामने चीज़ और विषयी-इन्द्रिय ज्ञान दोनों का सम्बन्ध हो तो जान सकता है, नहीं तो जान सकता नहीं।

वह प्रवर्तित हो... प्रवर्तित हो **चुकनेवाले को...** देखो! **और भविष्य में प्रवृत्त होनेवाले को...** प्रवर्तित हो चुकनेवाले को। जो द्रव्य में पर्याय भूतकाल में हो गयी और भविष्य में जो पर्याय—अवस्था पदार्थ की होगी, वह इन्द्रिय ज्ञान जान सकता नहीं। समझ में आया? **भविष्य में प्रवृत्त होनेवाले को नहीं जानता (क्योंकि इन्द्रिय और पदार्थ के सन्निकर्ष का अभाव है।)** भविष्य की पर्याय और भूत की पर्याय के साथ इन्द्रिय का सम्बन्ध है ही नहीं। वर्तमान के साथ सम्बन्ध है। तो अतीन्द्रिय ज्ञान इन्द्रिय ज्ञान से प्रगट होता नहीं। वह बात ऊपर से ली है। अतीन्द्रिय ज्ञान बताना है न, तो पहले यह लिया। पाठ में तो अतीन्द्रिय ज्ञान की बात है।

अपना ज्ञानगुण और उसकी एक समय की ज्ञान की पर्याय का कितना सामर्थ्य

है, वह बताते हैं। तेरे तत्त्व का इतना सामर्थ्य है। समझ में आया? आत्मा वस्तु, ज्ञान उसका गुण और उसकी अतीन्द्रिय निर्मल पर्याय पूर्ण केवलज्ञान हो तो कितना सामर्थ्य है! ऐसा सामर्थ्य, वह तो ज्ञानगुण में ऐसी तो अनन्त शक्ति पड़ी है। अतीन्द्रिय ज्ञान जो केवलज्ञान ऐसी तो अनन्त शक्ति ज्ञान में है। ऐसी अनन्त शक्ति का धरनेवाला द्रव्य है। ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञान से आत्मा को जाने बिना सम्यग्ज्ञान होता नहीं। समझ में आया? ओहोहो!

इन्द्रिय ज्ञान से नहीं, स्वसंवेदन ज्ञान से (ज्ञात होता है)। स्वसंवेदन ज्ञान। चैतन्य भगवान अरूपी आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, उसको अन्तर्मुख दृष्टि करने से ज्ञान का ज्ञान के साथ वेदन जो उत्पन्न हो, पर की अपेक्षा बिना, इन्द्रिय और उपदेश के साधन बिना स्वतन्त्र स्वभाव के आश्रय से स्वसंवेदन उत्पन्न हो, वही ज्ञान मोक्ष का कारण और सम्यग्ज्ञान कहने में आता है। कहो, समझ में आया?

परन्तु जो अनावरण अतीन्द्रिय ज्ञान है... अब श्लोक की बात चलती है। अनावरण। केवलज्ञान की पर्याय में आवरण है नहीं। अनावरण, अणीन्द्रिय ज्ञान। ओहो! भगवान आत्मा उसके सन्मुख देखने से जो ज्ञान उत्पन्न हुआ, वह अतीन्द्रिय उत्पन्न होता है। समझ में आया? परसन्मुख से जो देखता है तो इन्द्रिय ज्ञान उत्पन्न होता है, (वह) स्थूल है, वह बन्ध का कारण है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि इन्द्रिय से सुनते हैं न, तो ज्ञान होता है न? वह ज्ञान भी यथार्थ ज्ञान नहीं। ऐसा कहते हैं। वजुभाई! ज्ञानस्वरूप तो अपना है। निज ज्ञानस्वरूप वस्तु सारा ज्ञानघन, ज्ञान में परिपूर्ण स्वभाव अपना पड़ा है तो अपने में अन्तर्मुख होकर अन्तर सन्मुख होकर-अन्तर्मुख होकर इन्द्रियादि विकल्पादि की अपेक्षा छोड़कर अन्दर स्वसंवेदनज्ञान हो, उस ज्ञान को ही ज्ञान कहते हैं और उसकी उग्रता के फलस्वरूप अतीन्द्रिय केवलज्ञान उत्पन्न होता है। यह अतीन्द्रिय केवलज्ञान अनावरण है। उसको आवरण है नहीं। अणीन्द्रिय ज्ञान।

उसे अपने अप्रदेश,... तो कहते हैं कि एक परमाणु को भी देखता है। एक परमाणु और एक कालाणु अप्रदेश। अप्रदेश का अर्थ दो प्रदेश नहीं ऐसा। है तो एक प्रदेश ही, परन्तु अप्रदेश अर्थात् दूसरा प्रदेश नहीं, इसलिए उसको अप्रदेश कहा है। नहीं तो, है तो सप्रदेश परन्तु एक ही अपेक्षा। दो आदि नहीं है तो उसको अप्रदेश कहने

में आता है। तो केवलज्ञानी के ज्ञान में अप्रदेश परमाणु, कालाणु भी देखने में आता है। समझ में आया? और **सप्रदेश...** सप्रदेश तो ज्ञान ही है वह तो। अप्रदेश और सप्रदेश। इन्द्रियज्ञान सप्रदेश को जानता है, अतीन्द्रियज्ञान अप्रदेश और सप्रदेश दोनों को जानता है। समझ में आया? सप्रदेश पंचास्तिकाय आदि। असंख्य प्रदेश है न? धर्मास्तिकाय असंख्य प्रदेश, अधर्मास्तिकाय असंख्य प्रदेश, आकाश का अनन्त प्रदेश, जीव का (असंख्य प्रदेश) इत्यादि।

मूर्त और अमूर्त... लो! परमाणु आदि मूर्त को भी जानता है, इन्द्रियज्ञान मूर्त को जानता है। अमूर्त को भी जानते हैं। धर्मास्तिकाय आदि अमूर्त, आत्मा अमूर्त उसको भी अतीन्द्रियज्ञान प्रत्यक्ष जानता है, आकाश अरूपी, अमूर्त, अमाप उसको भी अतीन्द्रिय ज्ञान अपने में जान लेता है। कहो, समझ में आया? पदार्थमात्र। **मूर्त और अमूर्त (पदार्थ मात्र) तथा अनुत्पन्न एवं व्यतीत पर्यायमात्र,...** जो पर्याय द्रव्य में उत्पन्न हुई नहीं और जो पर्याय उत्पन्न होकर व्यतीत हो गयी, नाश हो गयी, वह **ज्ञेयता का अतिक्रमण न करने से...** परन्तु वह सब ज्ञेय है, उसका अतिक्रमण नहीं करता अतीन्द्रिय ज्ञान। अतीन्द्रिय ज्ञान सबको ज्ञेय बना देता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भविष्य की पर्याय हुई नहीं, भूत की होकर विलय हो गयी, उसको अतीन्द्रिय केवलज्ञान अपने एक समय की सामर्थ्य में उसको **ज्ञेयता का अतिक्रमण न करने से...** जो ज्ञेयस्वरूप भूत, भविष्य आदि है, उसका अतिक्रमण नहीं करता, सबको जान लेता है। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञेयता का अतिक्रमण न करने से ज्ञेय ही है—वह ज्ञेय ही है। भूतकाल की अवस्था अनन्त काल में बीत गयी अनन्त और भविष्य में अनन्त होगी, वह भी अतीन्द्रिय ज्ञान में ज्ञेयपने को प्राप्त होती है। अज्ञेय नहीं रह जाता कि कोई रह गया बाकी। सारी पर्याय भूत-भविष्य की ज्ञेयता को प्राप्त हो जाती है। आहाहा! समझ में आया? भविष्य की पर्याय अनन्त काल बाद होगी और फिर चली ही जायेगी ऐसे ही। तो कहते हैं कि वह सब ज्ञेयता को प्राप्त है। ज्ञेय से अतिक्रमण नहीं होता। आदि और अन्त बिना की पर्याय। समझ में आया? द्रव्यादि है, द्रव्य की पर्याय आदि है? अनादि है। वह, और भविष्य की ऐसी पर्याय... पर्याय... पर्याय... आखिर में अन्त आयेगा या नहीं? पर्याय

भविष्य में तो ज्ञेयता को प्राप्त हो गयी न? ज्ञान में ज्ञेयपना आ गया तो ज्ञेय वहाँ है, उसका अन्त आ गया न ज्ञान में?

मुमुक्षु : नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान में नहीं आया? ज्ञान में आ गयी तो वहाँ अन्त कहाँ से आया? जैसे अनन्त है, वैसे ज्ञान में ज्ञेय आ गया। ज्ञान में ज्ञेय आ गया। अनन्त है तो अन्त आ गया ज्ञान में, ऐसा नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञान यथार्थ किसको कहे? जैसा है, वैसा जाने न। आखिरी पर्याय... यदि सर्वज्ञ ने सब देखा हो, तो आखिर की पर्याय द्रव्य की कौनसी है, वह कह दे। ऐसा प्रश्न है लोगों का। है या नहीं? समझ में आया? बाहर में त्यागी हूँ, ऐसा मनावे, अपवास आदि करे, फिर प्रश्न ऐसे करे, कि जो केवलज्ञानी ने सब देखा हो तो मेरी आखिरी पर्याय कौनसी थी, वह बता दे। ऐई! जेठालालभाई! अरे! भगवान! क्या कहता है? कुछ खबर ही नहीं चीज़ की और बाहर में बड़ा नाम धराये। क्या करे?

यहाँ तो कहते हैं कि केवलज्ञान की एक समय की सर्वज्ञपर्याय... सर्वज्ञ है न? तो किसी भी ज्ञेय को अतिक्रम में ऐसा है ही नहीं। सब ज्ञेय का ज्ञान हो जाता है। ज्ञेय है उसका ज्ञान हो जाता है तो भविष्य, भूत सभी ज्ञेय है। आखिर की पर्याय ज्ञान में न आयी, ऐसा है? आये ऐसा है ही नहीं, आखिर की है ही नहीं। समझ में आया? आखिर की पर्याय का अर्थ क्या? पर्याय आखिर की, अन्तिम। फिर क्या हुआ? फिर द्रव्य नाश हो गया? फिर पर्याय नाश हो गयी? द्रव्य भी नाश होवे न। पर्याय बिना द्रव्य नहीं, तो बाद में पर्याय बिना द्रव्य भी नहीं। समझ में आया? इतना ज्ञानतत्त्व का स्वभाव का माहात्म्य है, इतनी शक्ति है, उसको ऐसी प्रतीति करनी पड़ेगी। और इतनी प्रतीति करे, तब उसकी द्रव्यदृष्टि में जाये, तब उसको प्रतीति होगी। नवनीतभाई!

एक समय की... एक जीव की एक समय की अतीन्द्रिय एक पर्याय, एक पर्याय भूत-भविष्य की कोई भी पर्याय ज्ञेयपने को प्राप्त न हो, ऐसा है नहीं। सब ज्ञान में आ जाता है। ओहोहो! अन्त नहीं तो अन्त नहीं, आदि नहीं ऐसी सब पर्याय। समझ में आया? यह प्रश्न करते हैं, देखो! सिद्ध हुए न सिद्ध? पहले तो संसारी थे न? बाद में सिद्ध हुआ न? अनादि में पहले तो वह संसारी थे या नहीं? ऐसा है ही नहीं। सिद्ध की

पर्याय भी अनादि है, संसार की पर्याय भी अनादि है। समझ में आया? पहले संसारी था, बाद में सिद्ध हुआ, वह तो व्यक्तिगत की बात है। परन्तु सिद्ध की पर्याय भी अनादि है। ओहो! देखो तो क्या है? समझ में आया? वह अनादि सिद्ध की पर्याय है, वह ज्ञेय है, ज्ञेय को अतिक्रमती नहीं तो ज्ञान उसको जान लेता है। समझ में आया? संसार, सिद्ध से आठ वर्ष अधिक है। संसार सिद्ध से आठ वर्ष अधिक है। सिद्ध है, वह आठ वर्ष छोटा है। क्योंकि आठ वर्ष मनुष्य होकर बाद में सिद्ध होता है या नहीं? कहो, भगवानजीभाई! यह बात कहते हैं यहाँ। अनादि है। पहले संसार था, बाद में सिद्ध हुआ, वह तो व्यक्तिगत की बात है। अनादि की बात करते हैं। ओहोहो! ऐसी सिद्धपर्याय... अनादि के अनन्त सिद्ध हैं, अनन्त-अनन्त भविष्य में सिद्ध होगा, वह सबकी पर्याय ज्ञेयपने को प्राप्त है, तो केवलज्ञान में ज्ञेय को अतिक्रमते नहीं। सब ज्ञेय को ज्ञान जान लेता है। आहाहा! उसका जानना स्वभाव है। किसी को करना, किसी को बनाना या पर से अपना बने, ऐसी वह चीज़ नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? किसी को बनाना और किसी से बनना, ऐसी चीज़ आत्मा है नहीं—ऐसा कहते हैं। नवनीतभाई! कहो, यह कारखाना-बारखाना करे यह.... ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नया बनावे, उसकी रचना करे, ऐसा करे, सुहावे। कहते हैं कि यह बात ही तेरे ज्ञान की बात खोटी है वह। ज्ञान उसको बनावे नहीं, ज्ञान उससे बने नहीं और अपनी पर्याय में उसका ज्ञान हुए बिना रहे नहीं।

मुमुक्षु : आत्मधर्म में कारखाना आया था।

पूज्य गुरुदेवश्री : कारखाना आया था। ये तो अपने भाई बोले थे न। जुगराजजी बोले थे। जुगराजजी बोले थे। किसी ने प्रश्न किया था। जुगराजजी कहे कि वहाँ तो भाई... क्या कहा नाम? फैक्ट्री... फैक्ट्री। वे तो गृहस्थ व्यक्ति है न बड़े। मुम्बई में है न मार्केट। जुगराजजी। किसी ने कहा होगा कि आपको यह फैक्ट्रियाँ बहुत बढ़ गयी हैं। यहाँ ऐसी फैक्ट्री है कि भगवान होने की फैक्ट्री है। भगवानजीभाई! भगवानजीभाई के वहाँ तो वह प्लास्टिक का जोड़ा था न... उसका इसमें क्या होता होगा? घडियाल-बडियाल हो न मकान हो न वह करते हैं। कहते हैं, कुछ नहीं होता किसी से। यह

फैक्ट्री ऐसी है कि आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप ऐसा भान हुआ और उसकी दृष्टि हुई तो अतीन्द्रिय परमात्मा हुए बिना रहे नहीं। समझ में आया? ऐसी यह मशीन है। चन्दुभाई! आहाहा! यह तो ऐसी बातें करते हैं कि आत्मा ऐसा करे, फलाना करे। परन्तु आत्मा में गुण कितना है और एक-एक गुण की एक पर्याय का सामर्थ्य कितना है—ऐसी अस्ति सिद्ध किये बिना, पर से नहीं है और विकल्प से नहीं है, ऐसा कहाँ से होगा? समझ में आया? अन्धे अन्धा। विकल्प तोड़ो, शून्य हो जाओ। जड़ हो जायेगा। समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा, एक-एक आत्मा, सर्वज्ञस्वभावी उसका स्वरूप ही है स्वभाव। उसके स्वभाव-सन्मुख की अस्तित्व की प्रतीति और ज्ञान करने से सम्यग्दर्शन अर्थात् सच्ची प्रतीति और सच्चा ज्ञान होता है। वहाँ विकल्प का नाश है इतना। पश्चात् स्वरूप में रमणता करने से अस्थिरता का विकल्प का अभाव रमणता करने से सहज हो जाता है। तब उसको ऐसी रमणता का फल में केवलज्ञान अतीन्द्रिय एक समय की पर्याय प्रगट होती है। वह भी अस्तित्व, शक्ति अस्तित्व, द्रव्य अस्तित्व, गुण अस्तित्व, वह साधन किया इतना शुद्ध उपयोग का, वह भी अस्तित्व। समझ में आया? सर्वज्ञ वीतराग मार्ग क्या है लोगों को खबर नहीं है। जैन में बेचारे भ्रमणा... भ्रमणा... भ्रमणा...

देखो! आचार्य कितनी बात (करते हैं)। एक अतीन्द्रिय केवलज्ञान सिद्ध करते हैं। हमने तो साम्यभाव अंगीकार किया है, ऐसा कहते हैं। हम मुनि हैं तो हमने साम्यभाव अंगीकार किया है। बाह्य में तो नग्नदशा है। अट्ठाईस मूलगुण है, वह अंगीकार किया, ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? पहली गाथा में ऐसा लिया कि हम तो साम्यभाव अंगीकार करते हैं। ऐसा नहीं लिया कि हम नग्नपना अंगीकार करते हैं, अट्ठाईस मूलगुण अंगीकार करते हैं, पंच महाव्रत अंगीकार करते हैं। अंगीकार क्या करे? वह तो जानने की चीज़ है, वह तो जानने का ज्ञेय है। समझ में आया? ऐसे अपने स्वरूप की दृष्टि, ज्ञान की मुख्यता से पीछे उसमें स्वरूप में साम्यता शुद्ध उपयोगिता, शुद्ध आचरणरूपी उपयोग करते हैं, उसका फलरूप केवलज्ञान होगा। ऐसा स्वयं अपने को कहते हैं। इसके फलस्वरूप हमको तो अतीन्द्रिय ज्ञान होगा। समझ में आया? यह अतीन्द्रिय ज्ञान इतना सामर्थ्यवाला है कि भूत और भविष्य की पर्याय वर्तमान में है नहीं,

नष्ट और अनुत्पन्न होने पर भी ज्ञेयपने को प्राप्त ज्ञान में होती है, ज्ञेय को छोड़ती नहीं। ज्ञान उसको ज्ञान करने में छोड़ता नहीं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा तत्त्व है, ऐसा अस्तित्व-सत्ता का इतना सामर्थ्य और अस्तित्व है उसका। समझ में आया?

ज्ञेयता का अतिक्रमण न करने से ज्ञेय ही है—देखो! यह सब भूत-भविष्य की नष्ट और अनुत्पन्न अवस्था भी ज्ञेय ही है। जानने में आती है ऐसी ही है, ऐसा कहते हैं, भाई! वह ज्ञेय ही है। जानने में आती है, ऐसी ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ज्ञान का स्वभाव और ज्ञेय का स्वभाव इतना है। समझ में आया? वह जाने... जाने... जाने... जाने... एक ही समय में ज्ञान की पर्याय जितना ज्ञेय है, उसको जाने और ज्ञेय है, सब अपने सामर्थ्य से ज्ञान में जना देते हैं। समझ में आया? यहाँ तो ज्ञेयतत्त्व का सामर्थ्य, ज्ञानतत्त्व का सामर्थ्य। दो तत्त्व का सामर्थ्य जितना है, उसको प्रतीति में लेना चाहिए ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ज्ञानतत्त्व की पर्याय का इतना सामर्थ्य है कि नष्ट और अनुत्पन्न पर्याय को भी जान ले और ज्ञेय की इतनी ताकत कि नष्ट और अनुत्पन्न भी वर्तमान ज्ञेयपने होकर ज्ञान में आ जाये। आहाहा! समझ में आया? तत्त्व की श्रद्धा करना है न। 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' वजुभाई! तो यह तत्त्व है या नहीं? ज्ञान की पर्याय का तत्त्व, ज्ञेयतत्त्व की पर्याय का, द्रव्य-गुण की पर्याय का ऐसा तत्त्व, सामर्थ्य।

(जैसे प्रदीप्त अग्नि दाह्यमात्र को—ईंधनमात्र को—जला देती है,...) देखो! **जैसे प्रदीप्त अग्नि...** जलती हुई अग्नि। **दाह्यमात्र को—ईंधनमात्र को—**जितना जलनेयोग्य है, जलनेयोग्य है, सबको जला देती है। **उसी प्रकार निरावरण ज्ञान ज्ञेयमात्र को—द्रव्यपर्यायमात्र को—जानता है।** देखो! आहाहा! यहाँ तो तेरी शक्ति तो ज्ञाता-दृष्टा की है, यह बताते हैं। ज्ञाता-दृष्टा की शक्ति है तो पर्याय में ज्ञाता-दृष्टा की पूरी पर्याय प्रगट हो गई। समझ में आया? क्या उसमें राग पुण्य-पाप करने की शक्ति है? पुण्य शक्ति में पड़ा है वह? उदयभाव करना, वह शक्ति में पड़ा है? तो अतीन्द्रिय ज्ञान और पूर्ण दर्शन पड़ा है, उसकी शक्ति में पड़ा है, तो वह ज्ञाता-दृष्टा पूर्ण हो जायेगा। ऐसे आत्मा की प्रतीति करो, ऐसे आत्मा को जानो, आत्मा का अनुभव करो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **द्रव्यपर्यायमात्र को—जानता है।** ४१ हुई।

★ ★ ★

गाथा - ४२

अब, ऐसी श्रद्धा व्यक्त करते हैं... देखो भाषा! है या नहीं? '**अथ ज्ञानान्न भवतीति**' वह है न? ४२। उसमें से श्रद्धा निकाला है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ है? अन्तिम शब्द है न? '**अथ ज्ञेयार्थपरिणमनलक्षणा क्रिया ज्ञानान्न भवतीति श्रद्धाति।**' आहाहा! **अब, ऐसी श्रद्धा व्यक्त करते हैं कि ज्ञेय पदार्थरूप परिणमन जिसका लक्षण है...** क्या? कि ज्ञेय परपदार्थ का लक्ष्य करके विकल्प से परपदार्थ को जानते हैं, ऐसी क्रिया ज्ञान में से नहीं होती। ज्ञान में जो ज्ञेयपदार्थ एक जानते हैं, दूसरा जानते हैं, ऐसा विकल्प कर-करके। समझ में आया? विकल्परूप से ज्ञेयरूप पदार्थ का परिणमन करना। परिणमन तो कौन करता है पररूप? परन्तु जानने की चीज़ को लक्ष्य में लेकर विकल्प से, राग से जो ज्ञेयार्थ परिणमन क्रिया होती है, वह ज्ञान की क्रिया नहीं, वह बन्ध की क्रिया है। वह कर्म का अनुभव है, आत्मा का नहीं। वह बात करते हैं।

परिणमदि णेयमट्ठं णादा जदि णेव खाइगं तस्स।
णाण ति तं जिणिंदा खवयंतं कम्ममेवुत्ता॥४२॥

ओहोहो! ४२ (गाथा)।

ज्ञाता यदि ज्ञेयार्थ परिणमे, तो न उसे है क्षायिक ज्ञान।
उसे कर्म का अनुभव करने वाला कहते हैं भगवान॥४२॥

देखो! जिनदेव कहे, जिनदेव कहे। भगवान को साथ में लेकर बात करते हैं। परमात्मा जिनेन्द्र भगवान वीतरागी सर्वज्ञ अतीन्द्रियज्ञान प्रगट हुआ, वह जिनदेव ऐसा कहते हैं।

शब्दार्थ लेते हैं। **ज्ञाता...** अर्थात् जाननेवाला **यदि ज्ञेयपदार्थरूप परिणमन होता हो...** देखो! भाषा ऐसी है। **ज्ञेयपदार्थरूप परिणमन होता हो...** परपदार्थरूप तो परिणमन होता नहीं। परन्तु ज्ञान, ज्ञेय पदार्थ को लक्ष्य करके रागरूप से परिणमन करता है, उसको यहाँ ज्ञेयपदार्थरूप परिणमन होता हो, ऐसा कहने में आया है। समझ में आया?

शब्द संक्षिप्त है न, तो उसमें यह कहा। ज्ञानस्वरूप भगवान वह ज्ञेयवस्तु को जानते ज्ञेयरूप परिणमन करता है। उसका अर्थ—वह ज्ञेयरूप में राग-द्वेष करके ज्ञेयरूप परिणमन करता है। वह ज्ञेयार्थ परिणमन क्रिया कहने में आती है। वह ज्ञानार्थ परिणमन क्रिया नहीं है। समझ में आया?

ज्ञान ज्ञेय को जानते समय ठीक-अठीक—ऐसा राग-द्वेष विकल्प करके ज्ञेय में परिणमन करता है तो वह कर्म का अनुभव है, आत्मा का अनुभव नहीं। समझ में आया? देखो! यह ज्ञानतत्त्व की बात करते हैं, उसमें यह लिया कि ज्ञान का सामर्थ्य तो इतना है कि जितना ज्ञेय है, उसको जानना इतना, बस। परन्तु उसके उपरान्त अब यह कहा कि जो ज्ञान ज्ञेय को जानकर राग-द्वेष उत्पन्न करे तो वह ज्ञानतत्त्व का स्वरूप नहीं और ज्ञेय का ऐसा स्वरूप नहीं। समझ में आया? ज्ञेयार्थ-ज्ञेय में प्रयोजन-लक्ष्य करके राग को अनुभव करता है, वह ज्ञानतत्त्व नहीं। ज्ञेयार्थ राग की क्रिया करते हैं, वह बन्ध का भाव अनुभवते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञाता, ज्ञेय को...

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञाता, ज्ञेय को जानकर रागरूप परिणमे या द्वेषरूप परिणमन करे तो ज्ञेय के पदार्थरूप परिणमता है, ऐसा कहने में आता है। फिर से, फिर से। ज्ञान परपदार्थ को जानने के काल में, जानना और जनाना वह तो स्वभाव है, वह तो सिद्ध किया। परन्तु उसके उपरान्त ज्ञेय जानकर, यह ठीक है, यह ठीक है, अठीक है—ऐसा राग-द्वेष करके ज्ञेयपदार्थ को जानता है, तो वह ज्ञेयपदार्थ अर्थ राग की क्रिया करता है। समझ में आया?

यदि ज्ञेय पदार्थरूप परिणमन होता हो तो उसके क्षायिक ज्ञान होता ही नहीं। वह तो ज्ञेयार्थ हुआ। पर के अवलम्बन में रागादि करके, द्वेषादि करके ज्ञेयार्थ परिणमन क्रिया हुई, ज्ञानार्थ परिणमन हुआ नहीं। कठिन बात। समझ में आया? **जिनेन्द्रदेवों ने उसको कर्म को ही अनुभव करनेवाला कहा है।** भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने ज्ञेय को जानकर रागरूप और द्वेषरूप बीच में करता है, वह कर्म का अनुभव करता है, विकार का अनुभव करता है, वह बन्ध का भाव उत्पन्न करता है, वह ज्ञान का भाव उत्पन्न करता नहीं। समझ में आया? ओहोहो!

टीका : यदि ज्ञाता ज्ञेय पदार्थरूप परिणमन होता हो,... देखो भाषा! जाननेवाला भगवान आत्मा, यह ज्ञेय अर्थात् जाननेयोग्य पदार्थरूप परिणमन होता हो **तो उस सकल कर्मवन के क्षय से प्रवर्तमान स्वाभाविक जानपने का कारण (-क्षायिक ज्ञान) नहीं है;...** वह क्षायिक ज्ञान ही नहीं। वह केवलज्ञान नहीं, क्षायिक ज्ञान नहीं। एक-एक ज्ञेय को जानते-जानते रागरूप परिणमन करता है, एक-एक ज्ञेय को जानकर प्रतिकूल लक्ष्य करके द्वेषरूप परिणमन करता है, वह क्षायिकज्ञान नहीं। समझ में आया? ज्ञान ज्ञेय को जाने, ज्ञान जाने, ज्ञेय ज्ञात कराता है। इतना तो उसका स्वभाव है। उसका सत्त्व का इतना तो सामर्थ्य है। ज्ञान जाने और ज्ञेय जानने में आये प्रमेय होकर। इतना तो दोनों का स्वभाव है। परन्तु दोनों के बीच में ज्ञेय को जानकर राग और द्वेष करते हैं, वह ज्ञेय को क्रम-क्रम से जानते हैं, वह क्षायिक ज्ञान नहीं, वह विकारीज्ञान है। समझ में आया?

ऐसा जो आत्मा है, उस तरफ का ज्ञान करके पर को जाने, तब तो अपना जानपना भी हुआ, पर का भी ज्ञान हुआ, वह तो स्व-परप्रकाशक ज्ञान हुआ। उसमें कोई पर को जानते हैं, (उसमें) यह ठीक-अठीक ऐसा राग-द्वेष का परिणमन नहीं। समझ में आया? कमजोरी के परिणाम जो हैं, वह कुछ ज्ञेयार्थ के प्रेम से और ज्ञेयार्थ के द्वेष से नहीं है। ज्ञानी को ज्ञेयपने से उसका अर्थ करके राग-द्वेष होता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? ज्ञानी को राग-द्वेष होता है, तो कमजोरी की पर्याय में होता है। ज्ञान का स्वभाव ऐसा नहीं और ज्ञेय का स्वभाव ऐसा नहीं कि उसको राग-द्वेष करा दे। ज्ञाता-दृष्टा होकर ज्ञेय को जानता है तो उसमें राग-द्वेष इस कारण से यह ठीक है और यह अठीक है, ऐसी राग-द्वेष की उत्पत्ति ज्ञान के ज्ञाता में होती नहीं। समझ में आया? ऐसी दशा में भले क्षयोपशम ज्ञान हो, परन्तु वह ज्ञान अतीन्द्रिय यथार्थ ज्ञान है। परन्तु ज्ञेयार्थ में लक्ष्य करके राग-द्वेष करके ज्ञान उत्पन्न हो, वह ज्ञान ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! सूक्ष्म बात।

यदि ज्ञाता ज्ञेय पदार्थरूप परिणमन होता हो तो उसे सकल कर्मवन के... सकल कर्मवन (के) **क्षय से प्रवर्तमान...** कर्म के वन के नाश से प्रवर्तमान **स्वाभाविक जानपने का कारण (क्षायिक ज्ञान) नहीं है; अथवा उसे ज्ञान ही नहीं है;...** ऐसा कहा लो! समझ में आया? ज्ञान ही नहीं है, ऐसा कहा। ज्ञान पर को जानता है, पर का

जानना, वह तो स्वभाव है। इसके अतिरिक्त यह ठीक है, अठीक है—ऐसा जो जानता है, वह ज्ञान ही नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! अतीन्द्रिय ज्ञान तो नहीं, परन्तु वह ज्ञान भी नहीं ऐसा कहते हैं। सम्यग्ज्ञान भी नहीं ऐसा कहते हैं। भाई! समझ में आया? ऐसा कहते हैं, हों! वह ज्ञान ही नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा। ज्ञानी कहो, आत्मा कहो। ज्ञानी का आत्मा कहो, ज्ञान कहो। समझ में आया?

यहाँ तो अतीन्द्रियज्ञान सिद्ध करना है न? अतीन्द्रियज्ञान यह नये-नये ज्ञेय को जानता है, (फिर भी) राग-द्वेष उसमें है ही नहीं और ज्ञेय का स्वभाव भी राग-द्वेष कराये, ऐसा है नहीं। समझ में आया? ज्ञेय कोई इष्ट-अनिष्ट है नहीं, ज्ञान में इष्ट-अनिष्ट जाने—ऐसा ज्ञान में है नहीं। ज्ञान तो जानता है। बीच में इष्ट-अनिष्ट उठा करके जो राग-द्वेष करके ज्ञेयार्थ परिणमन करता है, वह ज्ञान ही नहीं, जाओ। आहाहा! समझ में आया? वह सम्यग्ज्ञान ही नहीं, ऐसा कहते हैं। कर्म का अनुभव है, वह कहाँ ज्ञान है? ऐसा कहा। आहाहा!

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप जानन... जानन... जानन... क्रिया में ज्ञेय है, वह तो जाने, परन्तु जानने के अतिरिक्त ऐसा कहे कि यह ठीक है, अठीक है, ऐसा राग-द्वेषरूप परिणमे तो ज्ञेयार्थ परिणमन हो गया, तो मिथ्यात्व ज्ञान हो गया, सम्यग्ज्ञान है ही नहीं। समझ में आया?

देखो! ज्ञानतत्त्व का प्रज्ञापन। ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य की सत्य को प्रसिद्ध करने की रीति। समझ में आया? ज्ञान भगवान ज्ञानस्वरूप। ओहोहो! कहते हैं कि भाई! ज्ञानतत्त्व का सामर्थ्य तो जानना-देखना ही है और ज्ञेयतत्त्व का स्वभाव जनाने का है। दो के अतिरिक्त तीसरा उसमें है नहीं। और तीसरा उसमें डाले कि ज्ञान पर को जानकर एक में ठीक, दूसरे में अठीक, ऐसे विकल्परूप-रागरूप परिणमन करता है, वह ज्ञान ज्ञान ही नहीं। वह तो विकार का ही अनुभव करनेवाला है। समझ में आया? चन्दुभाई!

देखो, यह ज्ञानतत्त्व की बात चलती है। भगवान आत्मा ज्ञानतत्त्व ज्ञानस्वभाव है, तो कहते हैं, जाने-देखे ज्ञाता अथवा आत्मा। समझ में आया? वह ज्ञेयपदार्थरूप से

विकल्प से परिणमे, समझ में आया? ज्ञेय का लक्ष्य करके 'यह ठीक है' ऐसा करके (परिणमे), वह तो विकार का ही अनुभव है, कर्म का ही अनुभव है, ज्ञान का अनुभव नहीं। ज्ञान का ज्ञान नहीं, वह ज्ञान का ज्ञान नहीं। समझ में आया? बाबूभाई! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि भगवान! तुम तो ज्ञानस्वरूप ज्ञाता हो न? समझे? वह तो केवलज्ञानी जैसा ही आत्मा है। वह तो आ गया न पहले? समझे? भगवान आत्मा केवलज्ञान जैसा ही आत्मा है। ऐसा आत्मा अपना ज्ञानस्वभाव तत्त्व है, ज्ञान का तत्त्व सामर्थ्य है कि जानना। और ज्ञेय का स्वभाव है कि जनाना। बस। उसकी शक्ति है इतना जनाये—ज्ञेय हो जाये। उसके उपरान्त कोई ऐसे अन्तर में करे कि ज्ञान जानकर वही समय यह ठीक-अठीक ऐसा विकल्प परिणमे, रागरूप परिणमे, द्वेषरूप परिणमे, वासनारूप परिणमे, भोग की अनुकूलता अन्दर यह ठीक, यह ठीक, यह अठीक—ऐसी वृत्तिरूप परिणमे तो कर्म का ही अनुभव है उसको। ज्ञान का अनुभव है नहीं। समझ में आया? ओहोहो!

सकल कर्मवन के क्षय से प्रवर्तमान स्वाभाविक जानपने का कारण (क्षायिक ज्ञान) नहीं है; अथवा उसे ज्ञान ही नहीं है;... सच्चा ज्ञान ही नहीं है, ऐसा कहते हैं। क्षायिक ज्ञान तो नहीं, उसके उपरान्त सच्चा ज्ञान भी नहीं। समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि भाई, अनुकूल वस्तु देखकर हमको तो राग आता है, प्रतिकूल देखकर द्वेष आता है। यह बात ज्ञानतत्त्व को जानती नहीं और ज्ञेय को भी जानता नहीं। ऐसा स्वभाव ज्ञेय का नहीं, ऐसा स्वभाव ज्ञान का नहीं। समझ में आया? ऊँची चीज़ पेडा, दूधपाक हो। वह तो कहते हैं कि वह तो ज्ञेयस्वभाव है उसका, यहाँ ज्ञानस्वभाव है, बस। दूसरी चीज़ है? परन्तु वह जानते हैं उसमें, ठीक ऐसा राग हुआ, वह राग का अनुभव है, ज्ञान का नहीं। क्योंकि ठीक, ऐसा ज्ञेय में नहीं है; ठीक, ऐसा ज्ञान में नहीं है। स्वभाव दोनों में ऐसा नहीं है। नया उत्पन्न किया। ठीक। और प्रतिकूल देखकर... वह तो ज्ञेय है। प्रतिकूल उसमें है नहीं। उसमें छाप है ज्ञेय में? कि यह प्रतिकूल है ऐसा। वह तो जाननेयोग्य इतना है। यहाँ जाने और वह जनाये, बस इतना है। बीच में प्रतिकूल देखकर द्वेष करते हैं तो कहते हैं कि वह तो कर्म का ही अनुभव है, ज्ञान का अनुभव नहीं। आत्मा का अनुभव और आत्मा की दृष्टि नहीं, ऐसा कहते हैं। जेठालालभाई!

क्योंकि प्रत्येक पदार्थरूप से परिणति के द्वारा... न्याय देते हैं अब। ज्ञान ही नहीं क्यों? ज्ञान ही नहीं क्यों? **क्योंकि प्रत्येक पदार्थरूप से परिणति के द्वारा...** प्रत्येक अनन्त पदार्थ में प्रत्येक पदार्थ देखते-देखते, राग-द्वेष... राग-द्वेष... राग-द्वेष... राग-द्वेष... इष्ट-अनिष्ट वृत्ति उत्पन्न करके राग-द्वेष को अनुभवते हैं, वह **प्रत्येक पदार्थरूप से परिणति के द्वारा मृगतृष्णा में जलसमूह की कल्पना करने की भावनावाला वह (आत्मा) अत्यन्त दुःसह कर्मभार को ही भोगता है, ऐसा जिनेन्द्रों ने कहा है।** देखो! आहाहा! क्या कहते हैं? देखो! यह तो अध्यात्म की बात सूक्ष्म बहुत है। कहते हैं, भाई! तेरा आत्मा तो ज्ञानस्वभाव है न? तो ज्ञानतत्त्व का स्वभाव कितना? ज्ञानतत्त्व का स्वभाव कैसा? कि जानना-देखना। और ज्ञेयतत्त्व का स्वभाव कितना? कि जनावे इतना। उसमें दूसरे में यह ठीक है, अठीक है, ऐसा कहाँ से आया? समझ में आया? जो ज्ञान परपदार्थ को जानकर, प्रत्येक को जानकर प्रत्येक-प्रत्येक पदार्थ के काल के प्रसंग में ठीक है, अठीक है—ऐसा विकल्प उत्पन्न करके ज्ञेय को जानता है, वह ज्ञेयार्थ परिणमन है, आत्मा का नहीं। समझ में आया? ओहोहो!

ज्ञानी को राग-द्वेष होता है?—कि नहीं, होता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। क्योंकि राग-द्वेष तो, ज्ञेय को जानकर यह ठीक है, अठीक ज्ञेय है, ऐसी बुद्धि है ही नहीं उसको। समझ में आया? ज्ञान की पर्याय में ज्ञानी को राग होता है न? वह राग तो कमजोरी से है। ज्ञेयार्थ—यह ठीक-अठीक है, ऐसा राग-द्वेष उत्पन्न हुआ ही नहीं। तो वास्तव में तो ज्ञान में राग-द्वेष आया ही नहीं। समझ में आया? जैसे पर को ज्ञेयरूप से जानते हैं, ऐसे राग-द्वेष को ज्ञेयरूप जानते हैं। आहाहा! समझ में आया?

प्रत्येक पदार्थरूप से परिणति के द्वारा मृगतृष्णा में जलसमूह की कल्पना... देखो! मृगजल मृगजल। मृगजल होता है न, मृगजल? क्या कहते हैं? मृगजल कहते हैं? खारेली जमीन होती है, उसमें सूर्य की किरण पड़ती है तो ऐसा जल जैसा दिखे। जल जैसा दिखे। **मृगतृष्णा में जलसमूह की कल्पना है...** आहाहा! अरे! चाहे जैसा ज्ञेय हो, इन्द्राणी जैसा शरीर दिखे। समझ में आया? सुन्दर में सुन्दर रंग आदि, गन्ध आदि, रस आदि पदार्थ हो, तो कहते हैं कि उस ज्ञेय को देखकर ठीक-अठीक का परिणमन जो होता है, वह मृगतृष्णा में जल समूह की कल्पना है। पर में ठीक-अठीक है नहीं।

आहाहा! समझ में आया? यह पदार्थ तो ज्ञेय और यह ज्ञान, बस। उसके उपरान्त मुझे ठीक पड़ता है, मजा आता है उस पदार्थ में (और) इस पदार्थ में ठीक नहीं लगता है— ऐसी जो दृष्टि उत्पन्न की वह राग-द्वेष है मिथ्यात्व का।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी जिनवाणी है। आहाहा!

ज्ञानस्वरूप आत्मा है न? तो ज्ञानस्वरूप है और सारा जगत और स्वयं द्रव्यपने ज्ञेय है। समझ में आया? वहाँ तक लिया है कि न नहीं मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में? कि स्वज्ञेय आत्मा ठीक और परद्रव्य अठीक, वह तो राग-द्वेष हुआ। आता है न? स्वद्रव्य ठीक और परद्रव्य अठीक। ऐसा आता है सातवें अध्याय में। ठीक-अठीक पर क्या है? ऐसा लिया है। वह तो राग-द्वेष हुआ। समझ में आया? कहीं आता है न, सातवें में आता है कहीं। कहीं सब याद रहता है? किस जगह आता है?

मुमुक्षु : संवरतत्त्व की भूल।

पूज्य गुरुदेवश्री : संवरतत्त्व की भूल में? सातवाँ अध्याय। संवरतत्त्व की भूल। ठीक-अठीक नहीं है। कहीं पर है तो सही।

ज्ञान तो जाने बस इतना कि यह ज्ञेय है। उसमें बीच में यह ठीक-अठीक की जो राग-द्वेष की उत्पत्ति करते हैं, मानकर हों, वह ज्ञान का अनुभव नहीं, वह तो कर्म का अनुभव है। बन्ध का कारण है, मिथ्यात्व के बन्ध का कारण, हों! समझ में आया? तो वह ज्ञान ही नहीं। उसको ज्ञान कहते नहीं। आहाहा!

मृगतृष्णा में जलसमूह की कल्पना करने की भावनावाला यह (आत्मा) अत्यन्त दुःसह... अत्यन्त दुःसह। **कर्मभार को ही भोगता है, ऐसा जिनेन्द्रों ने कहा है।** समझ में आया? अहो! तेरा ज्ञानस्वभाव, उसमें यह जानकर यह ठीक-अठीक राग-द्वेष की उत्पत्ति कहाँ से तुमने की? वह राग-द्वेष का अनुभव है, वह संसार है, बन्ध का कारण है। ज्ञाता-दृष्टा रहकर पर को ठीक-अठीक नहीं जानता और कमजोरी से राग-द्वेष आता है, उसको भी जाननेवाला है, उसका नाम सच्चा ज्ञान और सच्चा दर्शन और धर्म कहने में आता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज शुक्ल १५, रविवार, दिनांक ०६-१०-१९६८
गाथा - ४२-४३-४४, प्रवचन - ३४

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार, प्रवचनसार। इसकी ४२वीं गाथा का भावार्थ है, भावार्थ। क्या कहते हैं देखो! **ज्ञेय पदार्थरूप से परिणमन करना...** भावार्थ है। **यह हरा है, यह पीला है इत्यादि विकल्परूप से ज्ञेय पदार्थों में परिणमन करना...** स्पष्टीकरण किया। यह आत्मा... ज्ञानतत्त्व चलता है न? आत्मा ज्ञानस्वरूप है। तो परपदार्थ को जानना, वह तो उसका स्वभाव है। परन्तु जानने के उपरान्त जानने में यह ठीक है, यह हरा है, यह पीला है, यह ठीक है, यह अठीक है, इष्ट है, अनिष्ट है—ऐसा राग-द्वेष करना, वह ज्ञान का जानना नहीं, वह तो बन्ध का कारण है। समझ में आया? ज्ञानतत्त्व अधिकार है तो आत्मा तो चैतन्यसूर्य है। जानना—अपने को, जाने, पर को जाने। वह जानने का स्वभाव जाने, वह तो बन्ध का करण है नहीं। जानना करे, पर को जाने, स्व को जाने, जानना करे, वह कहीं बन्ध का कारण है नहीं। नया दोष का कारण और आवरण का करण है नहीं। परन्तु ज्ञान पर को जानते (हुए), यह पीला है, यह हरा है, ऐसा भेद करता है। यह ठीक है, यह अनुकूल है, यह प्रतिकूल है, ऐसी कल्पना विकल्प करता है, वह मिथ्यादृष्टि का विकल्प, कर्म का अनुभव, भोग-विकार का अनुभव और विकार का भोगना है। वह दुःखरूप दृष्टि और दुःखरूप भाव है। समझ में आया?

ज्ञेय पदार्थरूप से परिणमन करना अर्थात्... स्पष्टीकरण। **यह हरा है, यह पीला है इत्यादि विकल्परूप से ज्ञेय पदार्थों में परिणमन करना...** राग करके, द्वेष करके ज्ञेय को जानने में प्रेम और अप्रेम करना, ठीक-अठीक का विकल्प करना, वह ज्ञान का स्वभाव नहीं होने से ज्ञान को पर को जानने में बन्ध का कारण है। जादवजीभाई! समझ में आया? जैसे ज्ञान है आत्मा, वह तो चैतन्यसूर्य ज्ञान है, वह तो जाने। जैसे कोई पचास मकान शेरी में हो। शेरी को क्या कहते हैं? मोहल्ला। पचास मकान का हो। आत्मा ज्ञान है, वह तो जाने कि यह है इतना। परन्तु जानने के उपरान्त उसने माना है (कि) यह मेरा मकान, ऐसी जो मान्यता का विकल्प उठे, वह मिथ्या भ्रान्ति का विकल्प बन्ध का

कारण है। समझ में आया? तेरा कहाँ से आया वह? मोहल्ले में पचास मकान हैं, उसने जो बनाया था न अभिमान से राग करके, मैंने बनाया ऐसा अभिमान था, तो अन्दर जहाँ देखे, यह मेरा। एकसाथ जानने में आता है (उसमें) यह मेरा, यह कहाँ से आया? वह सब ज्ञेय हैं और ज्ञान जाननेवाला है। समझ में आया? तो वह मकान मेरा। और पचास लड़के साथ में खड़े हो। जानना है तो ज्ञान जाने। ज्ञेय जानने में आवे। बस, उतनी मर्यादा है उसकी। उसके उपरान्त यह लड़का मेरा। वह ज्ञेय का राग करके परिणमता है, वह मिथ्यादृष्टि राग का ही भोगनेवाला है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं? आहाहा!

कपड़े लो। सारा कपड़ा है। ज्ञान जानता है, ज्ञान जाने बस। वह जनाये इतना है। यह कोट मेरा, यह टोपी मेरी, वह कहाँ से आया? वह कहते हैं कि तुम ज्ञाता-दृष्टा हो तो ज्ञान-दर्शन में एकाग्र हो। जानने-देखने (वाले) रहो। उसके उपरान्त मेरा-तेरा करेगा तो मिथ्यात्व से राग-द्वेष का अनुभव होगा तुझे। कर्म का अनुभव होगा, आत्मा का अनुभव नहीं होगा, ऐसा कहते हैं। जेठालालभाई! ऐई! दास!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : चन्दू भी उसका नहीं वहाँ दास कहाँ से आया? लड़के पच्चीस खड़े हों तो ऐसा कहे, यह मेरा। वह यहाँ कहते हैं देखो! यह हरा और यह पीला। अर्थात् यह मेरा और यह तेरा नहीं। समझे? यह हरा वह ठीक है, पीला ठीक नहीं, वह जानने की चीज़ है वह तो जानने में आती है और ज्ञान जाने बस। उसके उपरान्त यह बीच में डाला यह ठीक है हरा। चश्मा हरा हो तो ठण्डी रहेगी, आँख में ठण्डी रहेगी। यह कहाँ से लाया? चश्मा हरा है, वह ज्ञान जाननेवाला और हरा वह ज्ञेय है, बस इतना। जानने में आवे, यह जाननेवाला। वह तो उसका स्वरूप। वहाँ तक तो उसको बन्ध है नहीं। और ज्ञान में निर्दोषता है। ज्ञेय भी जैसा है, ऐसा ज्ञान में आता है। परन्तु ज्ञेय में ज्ञान जानने के काल में यह मेरा, यह मेरा नहीं—ऐसा कहाँ से आया? भगवानजीभाई! बहुत कठिन बात, भाई! यह मिथ्यात्व की भूल है, हाँ! भाई! उसकी बात चलती है। आहाहा!

यह शरीर। सब शरीर है देखो! आत्मा जाने जाननेवाला और ज्ञेय जानने में आता है, इतना। यह शरीर मेरा है—ऐसा कहाँ से आया? ऐई! देवानुप्रिया! न्यालभाई! परन्तु

शरीर किसका? शरीर तो जड़ है। वह तो ज्ञेय है और आत्मा ज्ञान करनेवाला है, इतना है। उसमें इसकी सम्हाल करूँ तो (ठीक रहे)। विकल्प आये, वह दूसरी बात है, परन्तु ऐसा मेरा है और मैं उसको सम्हाल सकूँ, ऐसा कहाँ से आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतीति मिथ्यादृष्टि। ज्ञानतत्त्व की प्रतीति न रही। ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है न। तो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा उसके तत्त्व की प्रतीति कब होती है? कि आत्मा जाननेवाला है और रागादि आया, वह भी ज्ञेय जाननेयोग्य है। यह राग मेरा, यह मेरा नहीं, वह कहाँ से आया तुझे? नवनीतभाई! सूक्ष्म बात है। समझ में आया? चन्दुभाई! आहाहा! यह, वह कहते हैं, हाँ!

ज्ञेय पदार्थरूप से परिणमन करना अर्थात्... ज्ञेय को जानने के काल में यह ठीक और अठीक ऐसा हरा-पीला **इत्यादि विकल्प...** वृत्ति उठाना, राग उठाना उस ज्ञेयरूप पदार्थरूप परिणमन करना, यह कर्म का भोगना है। यह दोष का अनुभव है, मिथ्यात्व का अनुभव है, आत्मा ज्ञानतत्त्व का अनुभव है नहीं। समझ में आाय? उसकी धर्मबुद्धि नहीं रही। धर्म अर्थात् ज्ञान का धर्म क्या? जानना स्वभाव। ज्ञानतत्त्व का स्वभाव क्या? कि जानना स्वभाव। और ज्ञेयतत्त्व का स्वभाव क्या? कि ज्ञान में जनावे, वह स्वभाव। उसके उपरान्त यह ठीक है, अठीक है—ऐसा भेद करता है, यह इष्ट है, यह अनिष्ट है, यह मेरा है, यह तेरा है, यह छोटा है, यह बड़ा है—ऐसा भेद कहाँ से लाया? समझ में आया? ऐसा विकल्प करता है ज्ञेय को जानने के काल में, तो ज्ञेयार्थ विकल्प को—कर्म को ही अनुभवता है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसको उसकी प्रतीति और उसका अनुभव है नहीं। ओहोहो! समझ में आया? ईश्वरचन्दजी! कठिन बात, भाई!

पैसे के ढ़ेर के किये जगत की धूल। यह पैसा मेरा। वह तो ज्ञेय है जड़। ज्ञान जानने का स्वभाव है और वह ज्ञेय का जानने का इतना स्वभाव है। तो यह पैसे मेरे, यह पैसे मेरे, आया कहाँ से? कहो। ज्ञान में ऐसा स्वभाव है? ज्ञेय में ऐसा स्वभाव है कि तेरा हो और तेरा न हो ऐसा स्वभाव उसका है? भगवानजीभाई! कठिन बात यह तो महँगी पड़ी। प्रेमचन्दभाई! यह बात तो महँगी पडी। ऐई! धीरुभाई! आहाहा! कहते हैं

कि तुम आत्मा-आत्मा वह ज्ञानतत्त्व, जानना एक तत्त्व, जानन तत्त्व, एक ही भाव लिया है न समभाव। तो ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। तो उसका कथन करते हैं। तो ज्ञानतत्त्व आत्मा भगवान वह तो परद्रव्य जानने में जानने का कार्य करे, राग आये तो जानना, द्वेष आये तो जानना, शरीर की अवस्था निरोग हो तो जानना, रोग हो तो जानना। परन्तु रोग हुआ शरीर में, तब ठीक नहीं—ऐसा ज्ञान में कहाँ से आया? ज्ञान तो जानने का स्वभाव है। और निरोगता वह ठीक है—ऐसा कहाँ से आया? ऐसा रोग-निरोग तो जड़ की अवस्था है। ज्ञान, ज्ञेयरूप से जाने, है, बस इतना। है। तो यह निरोगता ठीक है, सरोगता ठीक नहीं, ऐसा ज्ञेय को जानकर राग-द्वेष की उत्पत्ति करता है, वह मिथ्यात्वरूपी कर्म का ही अनुभव करता है। अमरचन्दभाई! आहाहा!

बहुत संक्षेप में ज्ञानतत्त्व की स्थिति की प्रतीति यथार्थ है या नहीं? ज्ञानतत्त्व भगवान आत्मा जानने-देखने का स्वभाव है, वह तो जानना-देखना स्वभाव है तो विष्टा को देखे, कस्तूरी को देखे, लड़का हो, मनुष्य यहाँ हो और मर जाता हो तो देखे, जिन्दा हो तो देखे। वह देखना-जानना उसका स्वभाव है। परन्तु यह लड़का मेरा और मर गया, अरे! मेरा (लड़का) मर गया, यह कहाँ से आया तुझे?

मुमुक्षु : खड़ा किया।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग का खड़ा किया। ज्ञान में है नहीं, पर में है नहीं। मिथ्याभ्रम से खड़ा किया वह। आहाहा! बाबूभाई! ऐसा कहते हैं यह। मंजिल क्या समझना? मेडी किसकी? मंजिल मंजिल, क्या कहते हैं तुम्हारे में? बँगला, हवेली, मन्दिर। लो, यह २२-२२ मंजिल के मकान करते हैं। क्या करते हैं? २२-२२ मंजिल? ऐई! मंजिल। यह मकान मैंने बनाया। तो कहते हैं, वह तो ज्ञेय है। जाननेयोग्य वह तो ज्ञेय है, आत्मा जाननेयोग्य बस इतना है। मैं और मेरा, बना वह कहाँ से आया? वह तो दृष्टि विपरीत और कर्म का अनुभव करता है विकृत का। उसको अधर्म का अनुभव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भारी बात भाई!

ज्ञानतत्त्व का अर्थ ज्ञान का सामर्थ्य तत्त्व का, भाव का। तब कोई कहे कि भाई नौ तत्त्व तो है परन्तु ज्ञानतत्त्व कहाँ से आया? ज्ञानतत्त्व आत्मा में से आया। हमारे भाई थे न वह प्रश्न करते थे। प्रेमचन्दभाई! ज्ञानतत्त्व कौनसा तत्त्व? प्रवचनसार की पाँच

गाथा में संसारतत्त्व आया था न? २७१ गाथा। संसारतत्त्व नौ तत्त्व में कौनसा? पाँच गाथा आती है अन्तिम की। संसारतत्त्व। नव तत्त्व में फिर संसारतत्त्व कहाँ से आया? संसारतत्त्व, वह आस्रव और बन्ध संसारतत्त्व। आत्मा में विकारी परिणाम हो और वह मेरा, यह मिथ्यात्व और राग-द्वेष का परिणाम, वह संसारतत्त्व है। संसारतत्त्व कोई दूसरा होता नहीं। आहाहा! कहो, भीखाभाई! क्या समझाया इसमें अब?

कहते हैं कि हीराभाई यह एक ऐसे देखे और ज्ञान को जानने का स्वभाव। बस इतना है। इसके अतिरिक्त यह ठीक, यह मेरा—यह कहाँ से आया? सर्वज्ञ परमात्मा ज्ञान की पर्याय में लोकालोक जानते हैं। बस जानते हैं। उसमें कोई उसका है, ऐसा आया? समझ में आाय? वह पूर्ण जानते हैं और पूर्ण ज्ञेय उनके ज्ञान में आते हैं। तो यहाँ निश्चय ज्ञान में ज्ञान जानता है और ज्ञेय जनानेवाला, बस इतना। उसके उपरान्त यह (मेरा) कहाँ से आया? समझ में आया? ज्ञान भगवान जानन स्वभाव, ज्ञानतत्त्व-ज्ञान का सत्त्व ज्ञान का स्वरूप, ज्ञान का भाव जानना बस। वह जाने तो ज्ञेय जाने। चाहे सो ज्ञेय किसी भी प्रकार का हो। यह ज्ञेय में छाप नहीं पड़ी है कि यह इष्ट-अनिष्ट है। है कोई ज्ञेय में छाप इष्ट-अनिष्ट है? समझ में आया? गधे को शक्कर ठीक नहीं लगती है, उसको ... ठीक लगती है, तो ठीक तो कल्पना से है, ऐसा कहते हैं। ठीक-अठीक उस शक्कर में नहीं है। है? तृषा लगी हो तो आहाहा! उसमें जो कोई खारा पानी दे।

मुमुक्षु : मुँह बिगड़ जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : मुँह बिगड़ा नहीं, आत्मा बिगड़ा है।

मुमुक्षु : मुँह बिगड़ा है, उसमें आत्मा बिगड़ा है, यह सिद्ध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। भगवान! तू तो भग अर्थात् ज्ञान—लक्ष्मीवान तुम हो। तेरा स्वरूप तो भग अर्थात् ज्ञान, लक्ष्मी वह वान-स्वरूप तेरा है। तेरा तो ज्ञानलक्ष्मी सम्पदा तेरी ज्ञान है। तो ज्ञानसम्पदा का स्वभाव तो जानना-देखना है। तत्त्व जो मानना हो तो जानना-देखना है। उस तत्त्व को नहीं मानते हो, ज्ञानतत्त्व को नहीं मानते हो तो ज्ञेय ज्ञेय को नहीं मानते तुम। समझ में आया?

ज्ञेय चाहे सर्वज्ञ हो, चाहे कुदेव हो। यह ठीक और यह अठीक—ऐसा कहाँ से

भेद पड़ा? ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐई! संसार उद्भव होने में यह हेतु है। भगवान उसको यह कहते हैं, देखो न। वह कर्म का भोगना है, आत्मा का भोगना नहीं है, आत्मा की वह दशा नहीं। आत्मा की दशा नहीं, वह अनात्म दशा है। आहाहा! सुनने में आये नहीं सत्य बात, ऊपर से चले जाये। धर्म करते हैं... धर्म करते हैं... धर्म करते... क्या धर्म? धर्म का अर्थ स्वभाव, तो ज्ञान का स्वभाव क्या? कि जानना-देखना, वह तेरा धर्म। जानना-देखना, वह तेरा धर्म। ज्ञाता-दृष्टा होना, वह तेरा धर्म। तदुपरान्त ज्ञेय को जानकर... प्रतिकूलता, चारों तरफ प्रतिकूलता है। कहीं शान्ति नहीं है। शान्ति पर में होगी? अभी पुण्य के उदय से सर्वत्र ठीक है। ऐई! पुण्य का उदय है, वह भी ज्ञेय है। पुण्य के उदय में फल मिला, वह भी ज्ञान का ज्ञेय है। उसमें ठीक है, अठीक है, वह आया कहाँ से? ऐसा कहते हैं। नवनीतभाई! आहाहा!

देखो, आचार्यों ने किस प्रकार यह बात रखी है! गजब बात! कुन्दकुन्दाचार्य की कथनपद्धति सर्वज्ञ को जो कहना है, वह कहते हैं। सर्वज्ञ भगवान एक समय में तीन काल-तीन लोक को देखे। वह बात चली आती है न? कि ज्ञान सबको देखे और ज्ञेयपर्याय तीन काल की जो ज्ञेयपर्याय है, वह सब अर्पित हो जाये। (ज्ञेय) की पर्याय अर्पित हो जाये, वह बराबर है। ऐसे आत्मा ज्ञान है, तो जाने वह बराबर और ज्ञेय चाहे जिस प्रकार का हो तो जनाये, वह बराबर है। परन्तु जनाये और जाने उसके उपरान्त यह मेरा, यह उसका, यह ठीक, यह अठीक, मुझे अभी अनुकूल है, अभी प्रतिकूल—यह आया कहाँ से? यह तेरी मिथ्यादृष्टि से भ्रम उत्पन्न किया है तूने। जेठालालभाई! आहाहा! समझ में आया?

अच्छी हवा चलती हो, खिड़की में से हवा आती हो तो खिड़की खुल्ली रखे। समझे न? चिड़िया न आये तो अच्छा ... पलंग पर आराम से सोये। मच्छर भी न हो। सोने का स्थान अच्छा है। ऐई! भगवान! तू तो जाननेवाला है न? यह तो ज्ञेय है। उसमें अच्छा कहाँ से आया? छाप है अन्दर अच्छे की? ऐसा मार्ग है भगवान का। 'ऐसा मार्ग वीतराग का भासित श्री भगवान।' बाद में दो पद जोड़े हैं न भाई ने—हरिभाई ने। क्या था? भूल गये। क्या कहा? दो पद जोड़ दिये हैं उसमें। 'ऐसा मार्ग वीतराग का भासित श्री भगवान, समवसरण के मध्य में सीमन्धर भगवान।' ऐसा लिखा है उसमें—आत्मधर्म

में आया है, बहुत ठीक लिखा है। उसमें क्या, दो कड़ी जोड़ दी सही। आहाहा! 'ऐसा मार्ग वीतराग का भासित श्री भगवान।' परमात्मा त्रिलोकनाथ परमात्मा ने ऐसा मार्ग कहा है। भगवान! चाहे जिस प्रसंग में, चाहे जिस क्षेत्र में, चाहे जिस अवस्था में, चाहे जिस भाव में, तेरा तो जानना-देखना स्वभाव है, उसके उपरान्त तेरा कोई स्वभाव तो है नहीं, प्रभु! आहाहा! तू कहाँ से आया? उठावगीर कहाँ से लिया कहते हैं। समझ में आया? बहुत भर दिया है इसमें, हों!

वह भोगना कर्म का है, ज्ञान का नहीं। भगवान! वह तो विकार का, मिथ्यात्व का अनुभव है। सत्य का अनुभव नहीं, वह मिथ्यात्व का अनुभव है। आहाहा! देखो! वह अधर्म का अनुभव है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वह ज्ञान का (अनुभव) नहीं। ज्ञान का तो जानना-देखना (स्वभाव है), ऐसा जो जाने, उसको निमित्त अनुकूल हो तो मेरे में कार्य हो, ऐसी बुद्धि रहती नहीं उसको। आहाहा! ज्ञाता-दृष्टा कहे और यह ज्ञाता-दृष्टा है। और माने कि अनुकूल निमित्त हो तो लाभ होगा, प्रतिकूल हो तो नुकसान होगा, वह आया कहाँ से? आहाहा! समझ में आया? देखो! कहाँ से कहाँ लाकर रख दिया! सर्वज्ञ भगवान एक समय में शुद्ध उपयोग सर्वज्ञ की पर्याय को प्राप्त अतीन्द्रिय ज्ञान पूर्ण और सारा ज्ञेय उसमें आ जाता है।

यहाँ कहते हैं कि इन्द्रियज्ञान में ऐसा पूर्ण ज्ञान हो सकता नहीं। वह तो पराधीन ज्ञान है। इन्द्रियज्ञान में ज्ञेय को जानते (हुए) राग-द्वेष उठाते हैं, वह सब इन्द्रियज्ञान पराधीन मिथ्याज्ञान का सेवन है। आहाहा! समझ में आया? **निर्विकार सहज आनन्द में लीन रहकर सहजरूप से जानते रहना, वही ज्ञान का स्वरूप है,...** लो! तत्त्व है न? ज्ञानतत्त्व। ज्ञानतत्त्व कहो, ज्ञान का स्वरूप कहो, ज्ञान का भाव कहो। भगवान आत्मा ज्ञानभाव स्वरूप, ज्ञानतत्त्व स्वरूप, उसको जानकर उसमें आनन्द मानकर उसमें रहना, वह ज्ञान का स्वभाव है। जानना, वह ज्ञान का स्वरूप है। ऐसा ज्ञान में रहकर, आनन्द में रहकर पर को जैसा है वैसा जाने। बस। समझ में आया? यह धर्म! आहाहा! भारी धर्म भाई! यहाँ तो कहे, दया पालना वह धर्म, व्रत करना धर्म। सुन न भगवान! दया और व्रत तो विकल्प है। विकल्प करना, वह ज्ञान का स्वभाव है? ऐसा कहते हैं यहाँ। वाडीभाई! देखो, ऐसा स्वरूप है। आहाहा!

भगवान चैतन्यतत्त्व परमभावस्वभाव ज्ञानतत्त्व। वह तो चाहे तो नारकी क्षेत्र में हो, तो भी वह तो जानना-देखना और आनन्द में रहना, वह ज्ञान का स्वभाव है। समझे? सम्यग्दृष्टि को ऐसा होता है। मिथ्यादृष्टि को, जिसकी दृष्टि मिथ्या है, वह क्षण में और पल में पर को जानकर, यह ठीक-अठीक विकल्प उठाकर विकार का अनुभव करते हैं, वह मिथ्यादृष्टि है। चाहे तो भगवान की प्रतिमा को पूजने बैठा हो। समझ में आया? परन्तु वह पूजा में विकल्प उठे कि यह ठीक है, उससे मुझे लाभ हुआ, ऐसा ज्ञान तो, वह ज्ञेय है उसको जाने बस इतना। समझ में आया? उस समय राग आया, उसको भी ज्ञान जाने। आहाहा! समझ में आया? परन्तु उसके उपरान्त मैंने राग किया और यह ज्ञेय इससे मेरा भाव अच्छा हुआ, यह कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। कल्याणजीभाई! आहाहा! अरे! भगवान का सत्य स्वरूप सुनने को मिले नहीं, वह रुचि कब करे? और कब जन्म-मरण का अन्त लावे? समझ में आया?

ज्ञेय पदार्थ में रुकना... देखो! जानते समय ज्ञेय में रुक जाना। ठीक-अठीक करके रुक जाना, रुकना, वह स्वभाव उसका है? **उनके सन्मुख वृत्ति होना,...** उनके सन्मुख अकेला लक्ष्य करके राग होना, **वह ज्ञान का स्वरूप नहीं है।** वह ज्ञान का भाव नहीं। वह ज्ञानतत्त्व नहीं। आहाहा! समझ में आया? बस, यह ४२वीं गाथा पूरी हुई।

★ ★ ★

गाथा - ४३

(यदि ऐसा है) तो फिर ज्ञेय पदार्थरूप परिणमन जिसका लक्षण है, ऐसी (ज्ञेयार्थपरिणमनस्वरूप) क्रिया और उसका फल कहाँ से (किस कारण से) उत्पन्न होता है,... उत्पन्न कहाँ से हुआ? समझ में आया? ज्ञान जानकर, ज्ञेय को जानकर ज्ञेयार्थ परिणमन करता है, उस तरफ लक्ष्य कर राग-द्वेष का परिणमन करता है, वह राग-द्वेष की क्रिया आयी कहाँ से? समझ में आया? **उसका फल कहाँ से उत्पन्न होता है, ऐसा अब विवेचन करते हैं :—** ४३ (गाथा)।

उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णिणदिणा भणिया।
तेसु विमूढो रत्तो दुट्ठो वा बंधमणुभवदि॥४३॥

इसके बाद है न हरिगीत। कौनसा है? ४३।

उदय-प्राप्त कर्मांश नियम से, संसारी को कहे गये।
मोही-रागी-द्वेषी होकर, जीव बन्ध को अनुभवते॥४३॥

ओहोहो! अन्वयार्थ थोड़ा लेते हैं देखो! **(संसारी जीव के) उदय प्राप्त कर्मांश (ज्ञानावरणीय आदि पुद्गलकर्म के भेद) नियम से...** होता है। उदय तो आता है कि नहीं कर्म का? ऐसा कहते हैं। **जिनवर वृषभों ने कहे हैं।** भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप होने पर भी पूर्व के कर्म का उदय आता हैं। उदय आता तो है संसारी जीव को। **जीव उन कर्मांशों के होने पर मोही, रागी अथवा द्वेषी होता हुआ...** यह मैं हूँ, राग मैं हूँ, द्वेष मैं हूँ, पुण्य मैं हूँ, ऐसा मिथ्यादृष्टि होकर मिथ्यात्व और राग-द्वेष को अनुभवता है, वह **बन्ध का अनुभव करता है।** आत्मा का अनुभव करता नहीं। समझ में आया? इतना भरा है एक-एक गाथा में सार। अरे! अनन्त काल में मनुष्यभव थोड़ा समय रहा। किसी को तो बहुत वर्ष निकल गये हैं। ५०-५० निकले, उसे ५० निकलवाना नहीं अब। ७८ में ७८ के आधे निकलवा के नहीं अब। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं, यह तो देह की स्थिति की बात है अभी। वह तो उसकी स्थिति होती है। परन्तु यह बात यदि न करे, इस वस्तु की समझ अन्दर न करे तो कहीं अन्त नहीं। चौरासी के अवतार में कहीं तृणवत उड़ जायेगा, तिनका-तिनका। तिनका पवन में उड़कर कहाँ जाएगा? ऐसे मिथ्या भ्रम में पड़ा है। खबर नहीं मैं कौन हूँ? क्या होता है कुछ खबर नहीं। ऐसा मिथ्या भ्रम में पड़ा, वह मिथ्यात्व के जोर से कहाँ चला जायेगा? चौरासी के अवतार में चींटियां, कौआ, कुत्ते, नरक में कहाँ चला जायेगा। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि अरे! भगवान! तेरा ज्ञानतत्त्व है और तुम जानने-देखनेवाले हो न। ऐसा तू अनुभव कर न। मैं तो जानने-देखनेवाला हूँ। मैं किसी का करनेवाला नहीं और ठीक-अठीक मैं माननेवाला नहीं। समझ में आया? ऐसा माने बिना और ऐसा अनुभव करे बिना उसके जन्म-मरण का अन्त नहीं आता। आहाहा! समझ में आया?

टीका :- प्रथम तो, संसारी के नियम से उदयगत पुद्गल कर्मांश होते ही हैं।

जीव को अज्ञानभाव से निमित्त होकर जो कर्म बँधा था पूर्व में, उस कर्म का उदय तो आता ही है। समझ में आया? **अब वह संसारी (जीव) उन उदयगत कर्मांशों के अस्तित्व में,...** कर्मों के उदय की अस्ति में **चेतते-जानते-अनुभव करते हुए, मोह-राग-द्वेष में परिणत होने से ज्ञेय पदार्थों में परिणमन जिसका लक्षण है ऐसी (ज्ञेयार्थपरिणमनस्वरूप) क्रिया के साथ युक्त होता है;...** देखो! कर्म के उदय में जुड़ता है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान के साथ जुड़ता नहीं। मैं ज्ञान हूँ, मेरा तत्त्व चैतन्यप्रकाश मूर्ति है, ऐसे अन्तर में ज्ञान के साथ न जुड़कर, कर्म के उदय में जुड़कर युक्त होकर, पर के साथ युक्त होकर और मिथ्यात्व और राग-द्वेष का अनुभव करता है। समझ में आया?

मोह-राग-द्वेष में परिणत होने से ज्ञेय पदार्थों में परिणमन जिसका लक्षण है... वह ज्ञेय पदार्थ का लक्षण है। ज्ञाता का परिणमन नहीं ऐसे। क्या कहा समझे? ज्ञाता का परिणमन नहीं है। ज्ञान है, वह तो जानने-देखने का परिणमन, वह ज्ञाता का परिणमन है, वह आत्मा का परिणमन है। चाहे जो प्रसंग हो, उस प्रसंग में जानने-देखने में रहना और यह ठीक-अठीक नहीं करना, वह आत्मा के ज्ञान में आत्मा का अनुभव है। वह आत्मा का भाव है, वह ज्ञान का भाव है। और पदार्थ को देखकर ठीक-अठीक करके राग-द्वेष करना, वह कर्म का भाव है, वह आत्मा का भाव नहीं। समझ में आया?

ऐसी (ज्ञेयार्थपरिणमनस्वरूप) क्रिया के साथ युक्त होता है और इसलिए क्रिया के फलभूत बन्ध का अनुभव करता है। देखो! क्रिया का फल वह बन्ध का अनुभव करता है। जड़ का बन्ध, उसका अनुभव करता है, आत्मा का अनुभव करता नहीं। भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शन से भरा है, इसकी जिसको प्रतीति हो तो क्षण-क्षण में ज्ञान की पर्याय का ही अनुभव करता है। वह तो अबन्ध आत्मा का अनुभव करता है। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्य मैं तो हूँ, जानना-देखना स्वभाव मेरा है। राग-द्वेष भी नहीं, पर भी नहीं और पर में जुड़ना, वह मेरा स्वभाव नहीं, मैं तो अपने जुडु वह मेरा स्वभाव है। ओहोहो! समझ में आया? ऐसा अपना ज्ञानस्वभाव भगवान अपने साथ सम्बन्ध न करके, पर के साथ सम्बन्ध करके राग, द्वेष और मोह उत्पन्न करता है, वह बन्ध का ही अनुभव करता है। जड़ का ही अनुभव है उसको। आहाहा! चैतन्य का नहीं। समझ में आया?

ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप, ऐसी ज्ञान की दृष्टि हुई और ज्ञान का ज्ञान हुआ तो ज्ञान तो अपनी पर्याय अपने में एकाग्र होती है। वह तो अबन्ध का अनुभव, अबन्ध अर्थात् आत्मा का अनुभव है, उसका नाम धर्म। आहाहा! और परपदार्थ का लक्ष्य करके, मोह उत्पन्न करके, यह मेरा है, ये राग मेरा है, वह मेरा है, वह तेरा है— ऐसा ज्ञेय में विभाग करता है, ऐसा जो मिथ्यात्वभाव और उसमें राग-द्वेष करते हैं, वह बन्ध का ही अनुभव करते हैं। वास्तव में वह कर्म का ही अनुभव है, वह जड़ का ही अनुभव है, वह अचेतन का अनुभव है, वह ज्ञान का अनुभव नहीं। आहाहा! समझ में आया?

कहो, लड्डू खाता हो और दाल में मक्खी न पड़े; इसलिए स्त्री पंखा करती हो (कि जिससे) मक्खी गिरे नहीं। समझे? और सुन्दर मकान में बैठा हो। अच्छा दस लाख, बीस लाख का संगमरमर का। समझ में आया? तो कहते हैं, उस समय में ज्ञान मैं ज्ञान हूँ, जाननेवाला हूँ, मैं ज्ञान में एकाग्र होऊँ, वह मेरी क्रिया है। ऐसे न जानकर वह राग और द्वेष और वह मेरा है, ऐसी मान्यता में जुड़कर बन्ध का ही अनुभव, जड़ का अनुभव करता है। ओहोहो! दुःख का अनुभव करता है, जड़ का अनुभव, बन्ध का अनुभव है, अबन्ध का नहीं। समझ में आया?

और इसलिए क्रिया के फलभूत बन्ध का अनुभव करता है। (इससे कहा है कि) मोह के उदय से ही (मोह के उदय में युक्त होने के कारण से ही)... मोह के उदय से अर्थात् यहाँ उदय हुआ, उसमें जुड़ गया तो मोह का उदय कहने में आया। समझ में आया? अन्यथा आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसमें जुड़े तो मोह का उदय उसमें है ही नहीं। थोड़ी सूक्ष्म बात तो है। आहाहा! देखो! धर्म-अधर्म का स्वरूप, धर्म-अधर्म का रूप, धर्म-अधर्म का भाव।

भगवान आत्मा ज्ञानतत्त्व है। वह जानना-देखना होकर ज्ञान में एकाग्र हो तो आनन्द आता है, शान्ति होती है और ज्ञान में एकाग्रता है। वह तो आत्मा का ज्ञान, आत्मा का भाव और आत्मा का तत्त्व, वह तो बराबर है। उसको छोड़कर कर्म के उदय में जुड़कर, ज्ञान की पर्याय नयी उत्पन्न होती है, ऐसे ज्ञान में एकाग्र न होकर, कर्म के उदय में जुड़कर जानने की चीज़ में यह मेरा-तेरा ऐसा करके; मेरा-तेरा, वह मिथ्यात्वभाव

है और राग-द्वेष करता है, वह आसक्ति राग-द्वेष की है। समझ में आया? **(मोह के उदय में युक्त होने के कारण से ही) क्रिया और क्रियाफल होता है,...** लो! राग की क्रिया और राग का फल उस कारण से हुआ—मोह के कारण से। मिथ्यादृष्टि पर में ठीक-अठीक मानने से ज्ञान की क्रिया हुई और क्रियाफल अनुभव हुआ उसका। उसमें आत्मा की क्रिया और आत्मा का फल आया नहीं। समझ में आया?

भावार्थ :- समस्त संसारी जीवों के कर्म का उदय है, परन्तु यह उदय बन्ध का कारण नहीं है। देखो! उदय बन्ध का कारण नहीं है। कर्म का उदय तो सबको है। बन्ध का कारण हो तो कभी अबन्ध हो सकता नहीं, सदा बन्ध ही करता रहे। **संसारी जीवों के कर्म का उदय, परन्तु यह उदय बन्ध का कारण नहीं है। यदि कर्मनिमित्तक इष्ट-अनिष्ट भावों में जीव रागी-द्वेषी-मोही होकर परिणमन करे तो बन्ध होता है।** कहते हैं न कि भाई! कर्म का उदय आवे तो आत्मा को बन्ध होता ही है। ऐसा नहीं है। ज्ञान बन्ध का कारण नहीं, कर्म का उदय बन्ध का कारण नहीं, कहते हैं न अन्दर? समझ में आया? बाद में लेंगे यह। ज्ञान उदय प्राप्त होता है, है न? यह बाद में आयेगा। क्रियाफल कहा।

इष्ट-अनिष्ट भावों में जीव रागी-द्वेषी-मोही होकर परिणमन करे तो बन्ध होता है। इससे यह बात सिद्ध हुई कि ज्ञान, उदय प्राप्त पौद्गलिक कर्म या कर्मोदय से उत्पन्न देहादि की क्रियायें बन्ध का कारण नहीं हैं,... तीन शब्द लिये। देखो, यहाँ अब भगवान के ऊपर ले जाना है। भगवान तीर्थंकर को पुण्यफल मिला है, शरीर मिला है, ऐसा कहते हैं। पुण्यफल रूप शरीर मिला है, हों! शरीर की क्रिया, ... वह सब पुण्य का फल, वह क्रिया, ऐसा कहते हैं। तब वह लोग ऐसा अर्थ करते हैं, पुण्यफला अर्हंता। देखो! पुण्यफल के फलरूप अरिहन्त होते हैं। अरे! भगवान! कहाँ से कहाँ अर्थ ले गये। कहो, उसमें भी आया है वह, खानिया की चर्चा। पुण्यफल अर्हंता। यहाँ कहते हैं कि पुण्यफल अर्हंता का अर्थ (यह है कि) पुण्य के फल से उसको शरीर मिला, वाणी मिली वह पुण्य का फल है?

मुमुक्षु : केवलज्ञान नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : केवलज्ञान की बात, आत्मा की बात है? आहाहा! इसलिए तो

लेते हैं। यह क्रिया का फल वहाँ लेते हैं। आहाहा! समझ में आया? वह बता दे कि उसको मोहउदय है नहीं। शरीर हो, शरीर की क्रिया हो, वाणी को, हिलना-चलने की क्रिया हो, वह तो पुण्य का फल उदय की क्रिया है, मोह है नहीं, बन्ध है नहीं। उदय बन्ध का कारण नहीं। ज्ञान बन्ध का कारण नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप, वह बन्ध का कारण हो? जो बन्ध का कारण ज्ञान हो तो बन्ध छूटे कब? जानना-देखना बन्ध का कारण नहीं, कर्म का उदय बन्ध का कारण नहीं। और, समझे? यह देह की क्रिया, वह बन्ध का कारण नहीं। ज्ञान बन्ध का कारण नहीं। समझ में आया? जानना-देखना ज्ञान का स्वभाव, वह बन्ध का कारण नहीं।

उदय प्राप्त पौद्गलिक कर्म या कर्मोदय से उत्पन्न देहादि की क्रियायें बन्ध का कारण नहीं हैं,... कर्म का उदय है, वह बन्ध का कारण नहीं और बन्ध के उदय से देह की क्रिया, वाणी की क्रिया होती है, वह भी बन्ध का कारण नहीं। समझ में आया? **बन्ध के कारण मात्र राग-द्वेष-मोहभाव हैं।** राग-द्वेष-मोह ही बन्ध का कारण है। लो! **इसलिए वे भाव सर्वप्रकार से त्यागने योग्य है।** ज्ञानस्वरूप मैं जानने-देखनेवाला हूँ, ज्ञेय मेरे में जनाये, बस इतना। ऐसा ज्ञेय के साथ में एकाकार होना, राग से एकत्व होना, द्वेष से एकत्व होना, मोह से अपना मानना छोड़ दे। सुखी होना हो और दुःख से मुक्त होना हो तो छोड़ दे। अन्यथा दुःख के पंथ में पड़ा है। समझ में आया? यह शरीर मिला वह तो उसका है या नहीं? शरीर तो उसका है या नहीं? ये सब साथ में है न, अँगुली... ये सब क्या कहते हैं? नाक, कान सब। चिपका होगा आत्मा के साथ यह? चोंट्या क्या कहते हैं? क्या है? लगा हुआ। चिपका हुआ। वह ठीक है। आत्मा और शरीर चिपका है? बिल्कुल नहीं। अत्यन्त भिन्न। जड़ तो जड़ की पर्याय करता है, आत्मा आत्मा की करता है। कोई किसी की करता नहीं, कोई किसी में है नहीं। जड़ की अवस्था में आत्मा नहीं और आत्मा की अवस्था में जड़ नहीं। पर्याय में नहीं, द्रव्य-गुण में तो कहाँ से आया? आहाहा! चिपट गया हो, ऐसा लगे न? आहाहा!

कहते हैं कि भाई! यह देह है, वह तो पूर्व के कर्म का फल है और देह की क्रिया भी कर्म का फल है। वह पुण्यबन्ध का कारण है नहीं। तेरा ज्ञानस्वभाव जानना-देखना, वह बन्ध का कारण है नहीं। समझ में आया? तीन बात ली। जानना-देखना

बन्ध का कारण नहीं, वह तो स्वभाव तेरा है। कर्म का उदय बन्ध का कारण नहीं, वह तो परचीज़ है और उसकी क्रिया होती है कर्म के उदय से हिलना, चलना, बोलना, वह बन्ध का कारण नहीं। कहो, हिलना-चलना है, वह बन्ध का कारण नहीं। यहाँ तो भगवान के ऊपर बात ले जायेंगे। समझ में आया? भगवान को भी काय की क्रिया हिलना-चलना होता है, वाणी की क्रिया बोलन की ध्वनि उठती है, वह बन्ध का कारण नहीं। आहाहा! तो नीचे भी बन्ध का कारण नहीं। शरीर से हिलना-चलना-बोलना तो जड़ की क्रिया है। चलना, बोलना तो सब जड़ की क्रिया है, आत्मा की नहीं। समझ में आया? तो बोलने-चलने से बन्ध है नहीं, ज्ञान से बन्ध नहीं और कर्म का उदय हुआ, उससे बन्ध नहीं। बन्ध है, उसमें यह ठीक-अठीक करना—ऐसा मिथ्यात्वभाव से बन्ध है। कहो, चिमनभाई! 'ऐसा मार्ग वीतराग का भासित श्री भगवान।' भगवान ने भासित। उसमें आवे न, 'ऐसा मार्ग वीतराग का भासित... विनय करे भगवान।' ऐसा तो कहा नहीं भगवान ने। परन्तु यह तो कहा है भगवान ने। समझ में आया? छद्मस्थ का विनय करे वह तो केवली करे नहीं। यह तो केवली ने कहा है।

भाई! तुम्हारा स्वरूप तो ज्ञान है न। तो ज्ञान का जानना-देखना, वह क्या बन्ध का कारण है? तो सर्वज्ञ तो तीन काल-तीन लोक को देखते हैं, उसको बन्ध का कारण होना चाहिए। वह बन्ध का कारण है नहीं। कर्म का उदय बन्ध का कारण है? केवली को भी अघातिकर्म का उदय तो है। समझ में आया? बन्ध का कारण है? और उसका फल हिलना-चलना-बोलना, वह बन्ध का कारण है? केवली को भी हिलना-चलना-बोलना होता है। भगवान को बन्ध का कारण नहीं। ऐसे तेरे भी कर्म के उदय से जड़ की क्रिया होती है, वह तुझे बन्ध का कारण नहीं। समझ में आया? यह बोलना-हिलना-चलना, वह कर्म के उदय से होता है—ऐसा कहते हैं। कर्म का उदय है निमित्त। क्रिया उससे हुई जड़ की। आत्मा से नहीं, आत्मा की नहीं। आहा.. भारी बात, भाई!

बन्ध के कारण मात्र राग-द्वेष-मोहभाव हैं। इसलिए वे भाव सर्व प्रकार से त्यागने योग्य है। अपना आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ऐसा निर्णय करके अपने ज्ञान में एकाग्रता होना और कर्म का उदय का लक्ष्य छोड़ देना और कर्म के उदय से देहादि क्रिया हो तो

उसको जानना, मेरे से हुई ऐसे मानना नहीं। उसका नाम पर का त्याग, मोह-राग-द्वेष का त्याग है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ४४

अब, ऐसा उपदेश देते हैं कि केवलीभगवान के क्रिया भी क्रियाफल (बन्ध) उत्पन्न नहीं करती :— देखो! कहाँ ले गये अब। मुकाबला वहाँ करना है न कि केवली को भी कर्म का उदय है। सुबह में छह घड़ी, दोपहर को छह घड़ी, शाम को छह घड़ी उपदेश निकलता है, एक गाँव से दूसरे गाँव विहार करते हैं, देह की क्रिया होती है, समवसरण में विराजते हैं, ऐसा दिखता है। ध्वनि उठती है ॐ... ध्वनि। समझ में आया? वह तो कर्म की क्रिया है, आत्मा की नहीं। आहाहा! ले! कर्म से होता है बोलना? आत्मा से उपदेश...? आत्मा से उपदेश नहीं चले? ऐई! उपदेश करना, (वह) आत्मा करता है या नहीं? नहीं। वह तो वाणी है। कर्म का उदय निमित्त है और वाणी उससे निकलती है तो कर्म का कार्य कहने में आता है। तेरा कार्य नहीं। ओहोहो!

केवली भगवान के क्रिया भी क्रियाफल बन्ध... क्रियाफल बन्ध ऐसे। क्रिया होती है न शरीरादि की? उसका फल तो बन्ध। तो बन्ध सर्वज्ञ को होता नहीं।

ठाणणिसेज्जविहारा धम्मुवदेसो या णियदयो तेसिं।
अरहंताणं काले मायाचारो व्व इत्थीणं॥४४॥

४४ (गाथा)। ४४ है न?

अर्हन्त धर्म-उपदेश करें या, बैठें उठें विहार करें।
मायाचार यथा नारी को, ये सब उन्हें सहज होते॥४४॥

लो! एक बार कहते थे कि भगवान नहीं बोलते? भगवान पहले समय में भाषावर्गणा ग्रहण करते हैं और दूसरे समय बोलते हैं। पालीताणा में कहते थे एक बार, २००६ के वर्ष। देखो! ये तो कहते हैं कि भाषा भगवान बोले नहीं। भगवान को भाषा नहीं। भाषा का कार्य जड़ है। तो क्या भाषा जड़ करता है? केवली भी वचनवर्गणा

पहले समय ग्रहण करे, दूसरे में छोड़े। देखो! केवली को भी ऐसा होता है। आहाहा! वजुभाई! २००६ के वर्ष में हुआ था। थे? पालीताणा।

यहाँ तो कहते हैं, **उन अर्हंत भगवंतों के उस समय खड़े रहना,...** देखो! शरीर स्थिर हो जाना, वह कर्म के उदय की क्रिया है। आत्मा को कुछ बन्ध का कारण है नहीं। **बैठना...** कायोत्सर्ग हो जाये शरीर की क्रिया हों! सहज हो जाये बैठना। वह करते नहीं। कर्म का ऐसा उदय हो तो बैठ जाये, ऐसा उदय हो तो चले, वह तो जड़ की क्रिया है, आत्मा से होती नहीं। कहो, समझ में आया? **बैठना, विहार...** उसमें श्रीविहार लिखा है। संस्कृत है न। श्रीविहार। श्रीविहार है न? भगवान का श्रीविहार। उसमें है, इसमें नहीं है। खड़े रहना, भगवान का देह स्थिर हो जाना, बैठना, विहार **और धर्मोपदेश-स्त्रियों के मायाचार की भाँति...** स्त्री कपट बाँधकर आयी है न! तो सहज उसको माया हो जाती है। समझ में आया? यह तो सिद्धान्त इतना सिद्ध करना है। कपट का उसको अभ्यास हो जाता है। माया सब ... से क्रिया होती है मायाचार। कपट के फलरूप स्त्री है न? तो फल में कपट, मायाचार, प्रयत्न बिना भी। प्रयत्न तो है, परन्तु इतना कहना है कि उसका स्वभाव ऐसा हो गया। समझ में आया? माया करना, वह तो स्त्री का सहज स्वभाव हो गया है। ये सब स्त्री की बात नहीं, हाँ! अमुक की।

स्त्रियों के मायाचार की भाँति, (भगवान को) स्वाभाविक ही—प्रयत्न बिना ही होता है। देखो! भगवान सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, खड़े रहना, बैठना और विहार होना, धर्म उपदेश होना कर्म के उदय की क्रिया है, आत्मा वह करता नहीं। ओहोहो! आत्मा बिना होता है? आत्मा बिना होती है, ऐसा कहते हैं यहाँ। आत्मा से होती नहीं तो आत्मा बिना ही होती है। समझ में आया? तो दीवार में से क्यों ध्वनि नहीं उठती? भगवान! उस समय परमाणु की पर्याय जो उठती है, वह जड़ में से उठती है। भगवान करते नहीं वाणी को। भगवान वाणी का कर्ता नहीं है। आहाहा! ज्ञान कर्ता और वाणी कर्म, ऐसा कल आया है चर्चा में। खानिया की चर्चा। खानिया। आपका खाडिया? खानिया-खाडिया। बीच के शब्द में अन्तर पड़ा। पहला और अन्तिम एक ही है। खानिया-खाडिया। उसमें नि और यहाँ डि इतना फर्क है न? खानिया है जयपुर में खाडिया है अहमदाबाद में। खानिया की चर्चा है। दो पुस्तक है न? उसमें ऐसा लिया

है, ज्ञान कर्ता है और भाषा कार्य है। शास्त्र का आधार दिया है हाँ, घर का नहीं। लिखा है, परन्तु किस अपेक्षा से लिखा है? क्या कहते हैं? यहाँ तो यह कहते हैं, धर्मोपदेश जड़ की क्रिया है। भगवान को—आत्मा की क्रिया है? आत्मा से वाणी की ध्वनि उठती है? आत्मा में तो ज्ञान और आनन्द पड़ा है।... करे तो सर्वज्ञ होगा। सर्व आनन्द हुआ। वाणी की ध्वनि भगवान करते हैं? ऐसे नीचे भी वाणी आत्मा नहीं करता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

एक ने पूछा कि यह वाणी आत्मा बोलता है? तेरा बाप बोलता है? यह कौन बोलता है? लो उसने ऐसा जवाब दिया। नवनीतभाई! महाराज! यह भाषा आत्मा बोले? यहाँ से सुनकर गया था और पूछा कि महाराज! वाणी आत्मा बोल सके? अहमदाबाद में हुआ है। तो उसने कहा, तेरा बाप बोलता है? कौन बोलता है? बाप नहीं बोलता है परन्तु वाणी बोलती है। सुन न। आहाहा! अरेरे... भगवान!

यहाँ तो कहते हैं कि वाणी की क्रिया जड़ से होती है। आत्मा कर्ता (नहीं), अज्ञानी भी कर्ता नहीं। यहाँ तो सर्वज्ञ का दृष्टान्त देकर वह क्रिया लेना है न? कर्म के उदय की क्रिया और उदय के फल की क्रिया सब बन्ध का करण नहीं। वह पर की क्रिया है। पर की क्रिया से आत्मा को बन्ध होता है? समझ में आया? आहाहा! मैं बोलता हूँ, मेरी भाषा है—ऐसी मिथ्या मान्यता, वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? मैं उपदेश देता हूँ, उपदेश मैं करता हूँ—ऐसी मिथ्या मान्यता बन्ध का कारण है।

कहते हैं कि भगवान का विहार आदि सब पूर्व कर्म के उदय से होता है। केवली तो सर्वज्ञ हैं। वे तो सबको जानते हैं। इस समय देह की क्रिया ऐसी होगी, इस समय ध्वनि होगी। वह तो जब से केवलज्ञान हुआ तब से जानते हैं, कोई नया जानना नहीं है। तो उसको बन्ध का कारण है नहीं। तो नीचे भी कोई प्राणी को हलना, चलना, बोलने की क्रिया जड़ की है, उससे आत्मा का बन्ध है नहीं। जो मैं बोलता हूँ, मेरी क्रिया देह की मैंने बराबर की, ऐसी मान्यता करते हैं तो मिथ्यात्व से उसको नया बन्ध होता है, ज्ञानी को नया बन्ध होता नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ७, रविवार, दिनांक १३-१०-१९६८
गाथा - ४४-४५, प्रवचन - ३५

प्रवचनसार, ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन चलता है। आत्मा ज्ञानस्वरूपी है। आत्मा वह 'ज्ञ' स्वभाव है 'ज्ञ'। उस कारण यहाँ ज्ञानप्रज्ञापन अधिकार लिया है कि आत्मा 'ज्ञ' स्वभाव है, ज्ञायकस्वभाव है, ज्ञानस्वभाव है। उसका स्वभाव ही सर्वज्ञस्वभाव है। समझ में आया? आत्मा ज्ञानस्वभाव का अर्थ 'ज्ञ'-स्वभाव। वस्तु, वस्तु का स्वभाव 'ज्ञ'। 'ज्ञ' अर्थात् ज्ञान, ज्ञान अर्थात् परिपूर्ण सर्वज्ञस्वभाव ही आत्मा का है। ऐसा आत्मा के अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करके, मैं सर्वज्ञस्वभावी आत्मा हूँ। राग भी नहीं, पुण्य भी नहीं, अल्पज्ञपना नहीं। समझ में आया? ऐसा अन्तर स्वभाव पूर्ण ज्ञानमय अखण्ड एक ऐसा अन्तर में अनुभव करके ज्ञान की—आत्मा की प्रतीति—निर्विकल्प सम्यग्दर्शन प्रगट करना, वह धर्म की पहली भूमिका है। और उसके साथ स्वसंवेदनज्ञान होना, ज्ञान का ज्ञान के साथ वेदन। राग से नहीं। ऐसा स्वाभाविक ज्ञान है तो ज्ञान की पर्याय से ज्ञाता में एकाकार होकर ज्ञान का ज्ञान से स्व-अपना, सं-प्रत्यक्ष, वेदन (करना), उसको सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। उस सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक आचार्य महाराज कहते हैं कि हम साम्यभाव अंगीकार करते हैं।

शुरुआत में यहाँ से लिया है कि हमारा ज्ञानस्वरूप आत्मा, वह भी उपयोगरूप परिणमन करता है; रागादि नहीं, विकल्प नहीं। यह शुद्ध उपयोग का परिणमन, वह चारित्र है, साम्यभाव है, शुद्ध उपयोग है, वह मुनिपना है। समझ में आया? और उस मुनिपने के प्रताप से ऐसे शुद्ध ज्ञायक चैतन्य में शुद्ध उपयोग में अन्तर्मुख रमणता होने से, अन्तर्मुख में सर्वज्ञ शक्ति प्रगट जो पड़ी है, वह पर्याय में केवलज्ञान से सर्वज्ञदशा प्रट हो जायेगी। शुद्ध उपयोग का फलरूप सर्वज्ञपना प्राप्त होगा। समझ में आया? क्योंकि जो सर्वज्ञपर्याय प्रगट होगी, वह हमारे आत्मा में पड़ी है, उसका हमने ध्यान किया है। दर्शन-ज्ञान सहित में उपशमभाव, साम्यभाव से ध्यान किया है कि यह आत्मा सर्वज्ञस्वभावी

न, अरिहन्तस्वरूपी आत्मा है। समझ में आया? ऐसा शुद्ध उपयोग का आचरणरूप चारित्र के प्रताप से उसका फल सर्वज्ञपद है। शक्ति में है, ऐसा पर्याय में केवलज्ञान प्रगट हो जाता है। यह केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानता है। ऐसी उसकी शक्ति की परिपूर्ण सामर्थ्यता है।

यह केवलज्ञान हुआ, तो कहते हैं कि उसको क्रिया है न? हिलना-चलना-बोलने की क्रिया है न? तो क्रिया हो, परन्तु क्रिया का फल उसको नहीं मिलता। क्योंकि क्रिया-जड़ के उदय से जड़ की क्रिया है। समझ में आया? वह लिया न? उपदेश से केवली भगवान की क्रिया आदि क्रियाफल उत्पन्न नहीं करती। क्रिया होती है जड़ की। विहायगति के कारण हलन-चलन होता है, देह की क्रिया और भाषाप्रकृति के उदय से दिव्यध्वनि आदि होती है। वह क्रिया जड़ के उदय से है तो उस क्रिया का फल बन्धन नहीं। क्योंकि मोहभाव का यहाँ अभाव है। समझ में आया? वह दृष्टान्त देकर कहते हैं, देखो! स्त्री का दृष्टान्त किया है न? बाद में दृष्टान्त देते हैं, देखो!

और यह (प्रयत्न के बिना ही विहारादिका होना), बादल के दृष्टान्त से अविरुद्ध है। बीच में आया। ४४वीं गाथा। ४४वीं गाथा है न? बीच में आया है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर... देखो! आत्मा का चारित्र का फलस्वरूप केवलज्ञान होता है, ऐसी चीज़ है। केवलज्ञान का सामर्थ्य और केवलज्ञान होने से देह की क्रिया होने पर भी उसको बन्ध है नहीं। क्योंकि वह तो कर्म के उदय की क्रिया जड़ की है। अपने साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं। अच्छी देह और देह की क्रिया और वाणी की क्रिया केवलज्ञानी का ज्ञेय है। ज्ञेय है, अपना है नहीं। समझ में आया? तो कहते हैं कि **(प्रयत्न के बिना ही विहारादिका होना), बादल के दृष्टान्त से अविरुद्ध है। जैसे बादल के आकाररूप परिणमित पुद्गलों का गमन,...** देखो! **बादल के आकाररूप परिणमित...** होना। उसके परमाणु के स्वभाव से स्कन्ध का बादलरूप परिणमन होता है। वह **गमन...** और पुद्गलों का गमन। गमन करता है न बादल? सहज उसका स्वभाव गमन करना है। और **स्थिरता,...** बादल ठहर जाये, वहाँ स्थिर हो जाये। दो। और **गर्जन...** बादल में गर्जना होती है, आवाज। वह भी स्वभाव से उसमें होती है। **और जलवृष्टि...** गर्जन के बाद वृष्टि होती है न? न हो, फिर भी जलवृष्टि होती है, वह सिद्ध करना है।

जलवृष्टि पुरुष-प्रयत्न के बिना भी देखी जाती है,... पुरुष का प्रयत्न नहीं (हो) फिर भी उस बादल का पुद्गल आकार परिणमना, गमन होना, स्थिर होना.. समझ में आया? और गर्जन होना, जलवृष्टि होना ऐसा पुरुष के प्रयत्न के बिना सहज पुद्गल की स्वाभाविक पर्याय से ऐसा होता है। कहो, समझ में आया? वह कोई देव नहीं है, उसका कर्ता। लोग कहते हैं न, महादेव देव हैं। मेघराजा कहते हैं या नहीं? कोई देव है नहीं। वह पुद्गल का परमाणु का परिणमन उस प्रकार का होकर गमन, स्थिर होना, गर्जन होना और जलवृष्टि का होना—वह पुद्गल के परमाणु उसके (पुरुष के) प्रयत्न के बिना स्वाभाविक होता है।

उसी प्रकार केवली भगवान के खड़े रहना... देखो! पूर्ण दशा जहाँ प्राप्त हुई इच्छा के अभावरूप और इच्छा का नाश करके बाद में केवलज्ञान उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन हुआ—परिपूर्ण परमात्मा मैं हूँ—ऐसी प्रतीति ज्ञान के अनुभव में हुई और ज्ञान के वेदन में सारा आत्मा ज्ञानमय है, ऐसा आया। और बाद में स्वरूप में स्थिरता आयी। स्थिरता करके इच्छा का नाश हुआ और इच्छा का नाश होकर वीतरागता हुई। वीतरागता होकर केवलज्ञान हुआ। यह सर्वज्ञपद प्राप्त करने की क्रम विधि भी साथ में बताई। समझ में आया? तो ऐसे केवली भगवान को खड़े रहना सहज होता है कर्म के उदय से। निमित्त से कहना है न? बाकी परमाणु की पर्याय ऐसे ही वहाँ होनेवाली है। उसमें कर्म का निमित्त होता है। समझ में आया? विहायगति नाम(कर्म) प्रकृति भाई! विहायगति नाम की एक प्रकृति है नामकर्म की। उस कारण से स्थिर हो, गमन हो, विहायगति का परिणाम है। परमाणु की पर्याय विहायगति एक है, वह निमित्त है, और परमाणु का शरीर का गमन उस निमित्त में वह निमित्त है नैमित्तिक में। खड़ा रहना हो जाये। केवली तो देखते हैं, केवली को कुछ है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : केवली भगवान विहार नहीं करते?

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली भगवान विहार करते नहीं। विहार होता है (ऐसी) जड़ की पर्याय को जानते हैं। वह तो पहले समय में जाना है केवलज्ञान जब से हुआ है वहाँ से। यह शरीर बाद में ऐसा चलेगा, ऐसी वाणी निकलेगी (ऐसा) जब केवलज्ञान हुआ, तब से जाना है। ज्ञेय है। अपना ज्ञेय नहीं, परज्ञेय है। परज्ञेय का ज्ञान तो

केवलज्ञान में स्व-परप्रकाशक (ज्ञान) होते हो गया है। समझ में आया? देखो, अरिहन्तपद का ज्ञान कराते हैं कि कैसा अरिहन्तपद है और वह कैसे प्राप्त होता है? शुद्ध उपयोग की रमणता चारित्र से प्राप्त होता है। और वह चारित्र कैसे प्राप्त होता है? कि पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान हो फिर चारित्र प्राप्त होता है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान कैसे प्राप्त होता है? कि द्रव्यस्वभाव का आश्रय लेने से प्राप्त होता है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान सर्वज्ञदेव को कौन अभी पहचानता है? भगवान ने कर्म का नाश किया, भगवान को ऐसा चार अघाति बाकी है। उसको है ही नहीं। वह तो केवलज्ञानी ज्ञान का ज्ञेय करके जानते हैं। भगवान को चार कर्म हैं। नहीं। यहाँ तो ना कहते हैं। यहाँ तो ज्ञान है भगवान को। समझ में आया? भगवान ने चार कर्म का नाश किया। नहीं, उसने कुछ नाश किया ही नहीं। वह तो नाश उसके कारण से हो जाये। अपने स्वरूप की....

मुमुक्षु : शास्त्र में आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र में आता है, वह तो निमित्त का कथन है। वीतरागता जब प्रगट हुई तो कर्म उसके कारण से नाश होने की पर्याय का अपना काल था तो नाश हुआ। वीतरागता हुई तो नाश हुआ, ऐसा भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

खड़े रहना और चलना... इत्यादि शब्द है न, देखो! **खड़े रहना, बैठना, विहार...** श्रीविहार ऐसा लिखा है जयसेनाचार्य में। श्रीविहार। भगवान का श्रीविहार। श्रीविहार होता है। विहायगति नाम की नामप्रकृति है, उस कारण से ऐसा होता है। समझ में आया? भगवान तो केवलज्ञानी हैं। उनको, मैं यहाँ बैठूँ, खड़ा रहूँ—ऐसी इच्छा है? मैं बोलूँ—ऐसी इच्छा है? कठिन बात। इच्छा बिना होता है। वह ... यह इच्छा बिना बकते हैं कितना। खबर नहीं, ऐसा बकते हैं। छद्मस्थ इच्छा बिना बकते हैं। एक था हमारे पोरबन्दर। ... क्या नाम? गिरधर। गिरधर ... फिर दोपहर को जमालीका जाते थे। जमालीका अधिकार तो सुने तो कुछ याद नहीं। रात्रि को सोता हो तो बोले। जमाली! यह कौन बोलता है? जीव शाश्वत है या अशाश्वत्? नित्य है या अनित्य? रात में बोले। सोते सोते बोलता है। इच्छा बिना उस प्रकार की परमाणु की पर्याय छद्मस्थ को होती है तो केवलज्ञानी को हो, उसमें क्या आश्चर्य है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह कहते हैं। **खड़े रहना, बैठना,...** मैं बैठूँ—ऐसी इच्छा भगवान को नहीं। वह तो जानते हैं कि यह शरीर बैठ जाता है, शरीर चलता है। आहाहा! केवलज्ञान किसको कहे? **विहार करना...** चलो भाई! यहाँ महीना हो गया। चलो विहार करें।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई जाते नहीं। वह तो उसकी विहायगति का उदय है तो शरीर की क्रिया गमन (रूप) वर्तता है। भगवान करते हैं नहीं। भगवान तो जानते हैं पहले से। उस समय से नहीं, पहले से। आहाहा! एक आत्मा का कितना सामर्थ्य है कि पूर्ण केवलज्ञान, क्षायिकज्ञान हुआ, तब भी वह क्रिया होती है, वह जड़ के कारण से होती है। ज्ञान के सामर्थ्य से नहीं। समझ में आया? क्षायिकज्ञान और क्षायिकवीर्य। अनन्त वीर्य, अनन्त वीर्य। परन्तु अनन्त वीर्य तो अपनी पर्याय में परिणमन है। यह वीर्य का गमन करने का काम है? समझ में आया? ... काम करो, दिव्यध्वनि भगवान करे, पुण्यबन्ध का कारण है। अरे! ज्ञान कारण और दिव्यध्वनि कार्य—ऐसा होता है? लिखा है, ऐसा जयधवल में। वह तो निमित्त क्या है, उसका ज्ञान कराने की बात कही है। क्या कहे?

यहाँ कहते हैं देखो! **विहार करना और धर्मदेशना...** देखो! वाणी का निकलना सहज भाषाप्रकृति के उदय से सहज होता है। भगवान को नहीं (कि) मैं उपदेश कहूँ और जैसा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव देखकर मैं कहूँ। है ऐसा? दिव्यध्वनि ऐसी उठती है। सहज प्रकृति की नामकर्म की प्रकृति भाषा है, उसके उदय से सहज निकलती है। भगवान उसका कर्ता नहीं। वाणी का कर्ता नहीं, विहार का कर्ता नहीं, बैठने का कर्ता नहीं, उठने का कर्ता नहीं। ज्ञान का कार्य वह है ही नहीं। वह तो पर का कार्य है। समझ में आया? नीचे भी हिलना-चलना, वह भी जड़ की क्रिया है, आत्मा की क्रिया नहीं। समझ में आया? इच्छा हो तो मैं चलूँ तो इच्छा कर्ता और चलना कार्य—ऐसा है ही नहीं। इच्छा हो तो मैं ऐसे बोलूँ तो इच्छा कर्ता और बोलने की क्रिया कार्य—ऐसा है नहीं। जड़ की पर्याय जड़ से उस समय में होनेवाली हो, भाषा तो होती है, हलन-चलन भी जड़ की पर्याय से होती है। बहुत नाम लिये हैं उसमें। चिद्विलास में, अनुभवप्रकाश। समझ में आया?

कहते हैं **केवली भगवान के खड़े रहना इत्यादि अबुद्धिपूर्वक ही (इच्छा के बिना ही) देखा जाता है।** इच्छा बिना देखा जाता है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। छद्मस्थ भी इच्छा बिना रात्रि को बोलते हैं, ... आ जाता है। आ जाता है या नहीं ? इच्छा नहीं है पैर फिसल जाते हैं। लपसी जाते हैं कहते हैं न ? क्या कहते हैं ? फिसल जाते हैं। केला होता है केले का छिलका। सीमेन्ट का (फर्श)। केले के छिलके के ऊपर पैर आवे। इच्छा थी ? जड़ की पर्याय परमाणु की एक समय में होती है, वह अपनी इच्छा बिना होती है। आहाहा! समझ में आया ? तो भगवान को ही इच्छा बिना सब हलन-चलन होता है। आहाहा! कहो, केवली भगवान को ... होता है।

इसलिए यह स्थानादिक (-खड़े रहना, बैठने इत्यादि व्यापार), मोहोदयपूर्वक न होने से,... देखो! यह जड़ की क्रिया में राग न होने से। मिथ्यात्व और राग-द्वेष-मोह उदय का भाव न होने से। **क्रियाविशेष (क्रिया के प्रकार) होने पर भी...** देखो! विशेष क्रिया उस प्रकार की हुई फिर भी **केवली भगवान के क्रियाफलभूत...** परन्तु उस क्रिया का फल **बन्ध के साधन नहीं होते।** बन्ध का साधन क्रिया नहीं। समझ में आया ? ज्ञान बन्ध का कारण नहीं, कर्म का उदय भी बन्ध का कारण नहीं, वह क्रिया बन्ध का कारण नहीं; बन्ध का कारण मिथ्यात्व और राग-द्वेष हो तो वह बन्ध का कारण है। भगवान को तो है ही नहीं वह। मोह उदय है नहीं।

भावार्थ :- केवली भगवान के स्थान, आसन और विहार, यह काययोगसम्बन्धी क्रियायें... यह काय की क्रिया कही। विहायगति... **दिव्यध्वनि से निश्चय-व्यवहारस्वरूप धर्म का उपदेश...** देखो! भगवान का उपदेश निश्चय-व्यवहार आता है, वह वाणी दिव्यध्वनि में आता है, भगवान के ज्ञान से आता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? यह वाणी में स्व-पर कथा कहने की सामर्थ्य है। आत्मा में स्व-पर जानने की सामर्थ्य है। बस इतना। आत्मा में स्व-पर जानने की सामर्थ्य है और वाणी में स्व-पर कथा-वार्ता कहने की वाणी में वाणी के कारण से कर्ताकर्म सम्बन्ध से अपने से होती है। आहाहा! समझ में आया ? यह होशियार लोग है बहुत व्यापार करते हैं। ...चन्दजी! बहुत करते हैं। यह होशियार मनुष्य है। धन्धा करके किसी को सौंपकर चले आते हैं। धन्धे में ध्यान हो, होशियार लोग करते हैं या नहीं वहाँ ? ऐई! चन्दुभाई! वह डॉक्टर है लो। ...

क्रिया करे, दवा, इंजेक्शन ऐसे लगाये, यहाँ लगाये। यह रखे, यहाँ रखे। श्वास लो, नीचे रखो। कहते हैं ऐसा होता है या नहीं? नीचे रखो। नीचे लो। धूल में भी नहीं होता, वह तो उसके कारण से होता है। आत्मा की इच्छा कारण से श्वास ऊँचा होता है, नीचा होता है ऐसा नहीं। वह कहते हैं, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया?

दिव्यध्वनि से निश्चय-व्यवहारस्वरूप धर्म का उपदेश-वचनयोग सम्बन्धी क्रिया... वह काययोग की, यह वचनयोग की। **अघातिकर्म के निमित्त से...** भाषा से। **सहज ही होती है। उसमें केवली भगवान की किंचित् मात्र इच्छा नहीं होती,...** कहो, समझ में आया? कल्पवृक्ष होता है न, कल्पवृक्ष। कल्पवृक्ष को इच्छा है कि उसको दूँ? उसको वस्तु दूँ, ऐसी इच्छा है? वह तो मिलती है। चिन्तामणि की इच्छा है—पत्थर की इच्छा है मैं उसको कुछ दूँ? पारसमणि को इच्छा है कि लोहा को सोना कर दूँ? है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... ऐसा है? पारसमणि की इच्छा है कि लोहा सोना बन जाये। बन जाता है या नहीं? यह कल्पवृक्ष है, कल्पवृक्ष होता है न बड़ा? उसकी इच्छा है कि मैं उसका फल दूँ? ... इच्छा हो जिस चीज़ की हो वह ले जाओ। चिन्तामणि की इच्छा है चिन्तामणि रत्न को कि मैं उसको चिन्तवे ऐसा दे दूँ—ऐसा है? ऐसे भगवान की इच्छा है नहीं। सब वाणी वाणी के कारण से निकल जाती है और काययोग से काययोग की क्रिया विहार की होती है। ऐसे भगवान को परमात्मा कहते हैं, दूसरे को परमात्मा कहना, वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ मानते हैं। समझ में आया?

किंचित् मात्र इच्छा नहीं। क्योंकि जहाँ मोहनीय-कर्म का सर्वथा क्षय हो गया है, वहाँ उसकी कार्यभूत इच्छा कहाँ से होगी? लो देखो! मोहनीय की कार्यभूत इच्छा। वह तो निमित्त से कथन है। शब्द तो ऐसा पड़ा है। चन्दुभाई! **इस प्रकार इच्छा के बिना ही—मोह-राग-द्वेष के बिना ही...** इच्छा की व्याख्या चली। **मोह-राग-द्वेष के बिना ही—होने से केवली भगवान के लिये वे क्रियायें बन्ध का कारण नहीं होती।**

लो! अब यह ४५ में आया बड़ा। 'पुण्यफल अर्हंता' बड़ी विवादित गाथा है। गाथा विवादित है? आये हैं या नहीं सतनावाले? गये? गये लगते हैं। सतनावाले थे न।

... वह तो माल लेने को आये थे न। अब कहते हैं, देखो! शास्त्र में-उपोद्घात में क्या कहा? बड़ी गाथा की टीका। उसमें वह खानिया चर्चा में भी आ गयी यह गाथा। और पत्रिका में यह पत्र छपते हैं न उसमें भी आती है। जैनगजट, जैनदर्शन। बहुत आती है। देखो! भगवान पुण्यफल अर्हंता। पुण्य के फलरूप में भगवान को अरिहन्तपद प्राप्त हुआ और तुम कहते हो कि पुण्य से कुछ आत्मा को लाभ होता नहीं।

मुमुक्षु : अरिहन्तपना हुआ फिर भी लाभ नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरिहन्तपना क्या? धूल में। अरिहन्तपना तो अपनी वीतरागता से प्राप्त हुआ है। पुण्य के फल में तो शरीर, वाणी, क्रिया होती है, ऐसा कहते हैं। पुण्य के फल में शरीर, वाणी होती है, वह पुण्यफल अर्हंता। अरिहन्त को (कर्म) के पाक में शरीर में वाणी हुई वह पुण्य का फल है, ऐसा कहते हैं। अरिहन्तपना पुण्य के फल से? देखो! क्या कहते हैं, देखो!

इस प्रकार होने से... इस प्रकार अर्थात्? भगवान को केवलज्ञान होने से, हलन-चलन की क्रिया होने पर भी क्रिया का बन्ध फल उसको होता नहीं। **इस प्रकार होने से तीर्थंकरों के पुण्य का विपाक अकिंचित्कर ही है...** भोगीभाई! क्या कहा? पुण्य का फल अकिंचित्कर है। पुण्य का फल कुछ लाभ करते नहीं, नुकसान करते नहीं। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : पुण्य का फल तो उसको है ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसको कुछ है ही नहीं। वह तो जड़ की बात है। आहाहा!

मुमुक्षु : पुण्यफल तो भगवान....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान ... पाठ है। ऊपर है देखो!

★ ★ ★

गाथा - ४५

'**अथैवं सति तीर्थकृतां पुण्यविपाकोऽकिंचित्कर एवेत्यवधारयति**' भगवान परमात्मा को अपना स्वरूप पूर्णानन्द की प्राप्ति हुई, उसको पुण्यफल किंचित् नुकसान नहीं करते। लाभ करते तो नहीं परन्तु नुकसान (भी) नहीं करते। ४५। ४५-४५। हिन्दी है? गुजराती है। इस तरफ है। वहाँ कहाँ है? समझ में आया?

देखो! **इस प्रकार... इस प्रकार होने से...** का क्या अर्थ? है न? '**अथैवं सति**' है न? **इस प्रकार होने से...** इस प्रकार होने से का अर्थ? भगवान सर्वज्ञ परमात्मा अपने चारित्र से वीतरागता प्राप्तकर केवलज्ञानी हुए। उसको देह और वाणी की क्रिया कर्म के उदय से होने पर भी, मोह नहीं होने के कारण से वह क्रिया बन्ध का साधन, बन्ध का कारण होती नहीं। उस कारण से... लो! ज्ञानचन्दजी! क्या है देखो! वह तो कहे यहाँ के लोग हा...हा... कहते हैं। अरे भगवान! यहाँ तो सत्य है तो सत्य ही समझना चाहिए। बिना समझे लोग हा... हा... भोला मनुष्य इकट्ठे करते हैं। ऐई! अरे! भगवान! क्या करे? दृष्टि में अन्तर है न। तो जड़ की क्रिया... नहीं, पुण्य का फल अरिहन्त है। पाठ देखो।

यहाँ कहते हैं। यहाँ तो '**अथैवं सति तीर्थकृतां**' तीर्थकर को कर्म के उदय की क्रिया होने पर भी, वह क्रिया बन्ध का कारण है नहीं। ऐसे होने पर '**तीर्थकृतां**' तीर्थंकरों के पुण्य का फल विपाक अकिंचित्कर है। भगवान के आत्मा में उसका फल आता नहीं। समझ में आया? वह तो जड़ में आया, वाणी, विहार, स्थिर होना, रहना, वह तो जड़ में आया? भगवान में उसमें क्या आया? **(-कुछ करता नहीं है, स्वभाव का किंचित् घात नहीं करता)** देखो! स्वभाव का किंचित् घात करता नहीं। क्योंकि वह तो जड़ की क्रिया है न? **ऐसा अब निश्चित करते हैं:—'अवधारयति'** है न?

'**पुण्णफला अरहंता**' यह शब्द पड़ा है तो उलझन में आवे। तो अरिहन्त के आत्मा को शरीरादि मिलना वह पुण्य का फल है, ऐसा कहने में आया है। इसने यह लिया भाई! प्रवचन... वृन्दावन। उसमें ऐसा लिया है।... पूर्व के पण्डित को नहीं मानते लो।

मुमुक्षु : धवल में....

पूज्य गुरुदेवश्री : धवल में ... आत्मा का था नहीं?

'पुण्य ही को फल है शरीर अरहंतनी को।' यह ४५ गाथा ... है उसकी। 'पुण्य ही को फल है शरीर अरहन्तनीको फेरी तीने सोही कर्म उदय जब आवे है।' जब कर्म का उदय आता है शरीर का... गमन आदि होता है। भगवान के आत्मा में उसकी क्रिया का फल नहीं। यहाँ तो विशेष कहेंगे। समझ में आया? कि जो कोई उदय आता है, वह खिर जाता है। उदय होने पर भी भगवान को क्षायिकभाव से होता है, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु : बहुत आगे ले गये।

पूज्य गुरुदेवश्री : आगे ले गये नहीं। जैसे छद्मस्थ में कर्म का उदय होने पर भी स्वरूप तरफ का आश्रय है तो उसको निर्जरा कहते हैं। ऐसे भगवान को कर्म का उदय होने पर भी वह कर्म का उदय खिर जाता है तो उस उदय को ही क्षायिक कहने में आया है। अरे! भगवान! कैसा विवाद। मुश्किल से निकलने का अवसर मिला मनुष्यपने में। उसमें यह यहाँ-वहाँ ... करे आत्मा को। ऐसा समय! मनुष्यपना ओहोहो! अनन्त काल में मुश्किल से मिले उसमें से निकालना, भव का अभाव करने का तो भव है। उसकी जगह भव के कारण का बन्ध करके (माने) कि अभाव करते है। भगवान का हम ऐसा अर्थ समझते हैं। भगवान तो पुण्य के फल से भगवान हुए। कहो, समझ में आया?

पुण्णफला अरहंता तेसिं किरिया पुणो हि ओदइया।
मोहादीहिं विरहिदा तम्हा सा खाइग त्ति मदा॥४५॥

पीछे है न ४५।

पुण्य-फलों से भूषित अर्हन्तों की यह औदयिक क्रिया।
मोहादिक से रहित वर्तती, अतः इसे क्षायिकी कहा॥४५॥

क्षायिक केवलज्ञान हुआ है, क्षायिक केवलदर्शन हुआ है, उस समय में कर्म का जो उदय है, वह है तो उदय, परन्तु यहाँ क्षायिकज्ञान क्षायिक हुआ है तो उदय होकर खिर जाता है, तो उसको उदय की क्रिया को क्षायिक की... यह तो क्षायिक हुआ ही है।

केवलज्ञानादिक तो हुआ है, परन्तु पारिणामिकभाव में जितना अन्दर उदय आता है, वह खिर जाता है तो उसको क्षायिकभाव कहने में आता है। जब ज्ञानी को—धर्मी को, अपने स्वभावसन्मुख होने से वह आया न? उसमें अर्थ। जयसेनाचार्य में। इसमें जयसेनाचार्य की टीका नहीं है। सतनावाले का प्रश्न था परन्तु वह चले गये।

देखो! ४५। '**द्रव्यमोहोदयेऽपि**' '**परिहारमाह**' '**अत्राह शिष्यः...**' देखो! 'शिष्य कहते हैं—भगवान! उदय का भाव बन्ध कारण।' उदय को बन्ध का कारण कहने में आया है शास्त्र में। जो कोई कर्म का उदय आता है, वह बन्ध का कारण शास्त्र में कहा न, प्रभु? '**इत्यागमवचनं तर्हि वृथा भवति।**' 'तो उदय बन्ध का कारण वह तो आगम का वचन है। शास्त्र का तो वृथा नाम मृषा होता है। '**परिहारमाह-औदयिका भावा बंधकारणं भवन्ति, परं किंतु मोहोदयसहिताः**' 'जो राग-द्वेष और मिथ्यात्वभाव हो तो उदय का भाव बन्ध का कारण कहने में आता है। राग-द्वेष-मोह न हो तो उदय बन्ध का कारण है नहीं। देखो, अब आया महासिद्धान्त। '**द्रव्यमोहोदयेऽपि**' जड़कर्म मोह का उदय होने पर भी '**यदि शुद्धात्मभावनाबलेन**' '**शुद्धात्मभावनाबलेन भावमोहेन न परिणमति**' '**भावमोहेन न परिणमति तदा बंधो न भवति।**' सदा साधक जीव को, ज्ञानी को द्रव्यमोह उदय होने पर भी, स्वभावसन्मुख भावरूप कर्म करते हैं, भावमोहरूपी परिणमन करते नहीं, तो द्रव्यमोह उदय होने पर भी बन्ध होता नहीं। कहो, समझ में आाय? यह गाथा तो बहुत वर्ष से चलती है। ... नहीं? कलकत्ता। वह भी चर्चा में कहते थे। देखो! उदय बन्ध का कारण ... प्रश्न आया था, तब बताया था उसको। बाबूलाल है न? ... दूसरा राजेन्द्र के साथ में था वह। ... समझ में आया?

क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अपना शुद्ध आनन्दस्वरूप ऐसी दृष्टि हुई, उसको पूर्व का कर्म मोह है... वह पूर्व का विकारभाव से निमित्त होकर बँधा था, तो वह मोहकर्म का उदय आया, उसी समय आत्मा अपने स्वभाव-सन्मुख की क्रिया है, तब मोह उदय... भावमोहरूप परिणमन करता नहीं, शुद्धभाव से परिणमता है तो बन्ध होता नहीं। समझ में आया? वह ४५ सूत्र में जयसेनाचार्य की टीका में है। '**यदि पुनः कर्मोदयमात्रेण बन्धो भवति**' यदि जो कर्म के उदयमात्र से बन्ध हो तो '**तर्हि संसारिणां सर्वदैव कर्मोदयस्य विद्यमानत्वात्**' संसारी को तो कर्म का उदय सदा विद्यमान रहता

है। '**सर्वदैव बन्ध एव, न मोक्ष इत्यभिप्रायः ॥**' तो बन्ध होता रहे, कभी मोक्ष होता नहीं। समझ में आया? बहुत स्पष्ट किया है जयसेनाचार्य ने।

विवाद... विवाद... शास्त्र के अर्थ करने में विवाद। इसमें से कर्म से कुछ हो, कर्म से कुछ हो, और कर्म से पुण्य से कुछ आत्मा को लाभ हो, कर्म से कुछ अपने नुकसान हो, और अपने से अपने में पुण्य से कुछ लाभ हो, पुण्य के फल से अपने को कुछ लाभ हो और कर्म के उदय से अपने में कुछ विकार हो। यह सिद्ध करना। दोनों बात झूठ है। पुण्यभाव से अपने को आत्मा में कुछ लाभ होता नहीं और कर्म के उदय से आत्मा को विकार होता नहीं। कर्म तो पर चीज़ है। कर्म पर में रहते हैं। क्या आत्मा में आती है वह? अपने स्वभाव से च्युत होकर विकाररूप परिणमन करे तो पूर्वकर्म के उदय को निमित्त कहने में आता है।

'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई।' वह भी चली थी (संवत्) २०१३ के वर्ष में वहाँ। मधुबन में। बहुत चली थी। कहा कि जहाँ-तहाँ से ऐसा ही निकालते हैं कि कर्म से कुछ होता नहीं, कर्म से कुछ होता नहीं। 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई', भक्ति में आता है। चन्द्रप्रभु की भक्ति आती है न? 'कर्म बिचारे कौन भूल मेरी अधिकाई, अग्नि सहे घनघात लोह की संगति पाई।' अकेली अग्नि भिन्न है तो उसको घनघात नहीं पड़ते। अग्नि लोहे का संग करती है तो घात सहन करना पड़ता है। ऐसे भगवान चैतन्यज्योति प्रभु अकेला पर से भिन्न रहे तो उसको घनघात सहन करना नहीं पड़ता। कर्म का संग करे, कर्म का संग करके पर के आधीन हो, लोहे में अग्नि प्रवेश करे घन का दुःख सहन करना पड़ता है। आत्मा राग का-निमित्त का सम्बन्ध करे, विकार हो तो दुःख सहन करना पड़ता है। समझ में आया? अपना संग करे पर्याय में, असंग चीज़ प्रभु का संग करे, राग से रहित हो जाता है।

मुमुक्षु : कर्म का जोर....

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म का जोर कहाँ रहा? वह उसके घर में रहा। कर्म करना पर्याय में है, उदय कहो। उदय जड़ की पर्याय है, जड़ की पर्याय में आत्मा की पर्याय का अभाव है। आत्मा की पर्याय में जड़ की पर्याय का अभाव है और जड़ की पर्याय में चैतन्य की पर्याय का अभाव है। क्या करे? बहुत सूक्ष्म! ... कुछ है या नहीं? अर्थ

क्या? ... कुछ नहीं। बड़ा है। परन्तु उसके घर में या इसके घर में? उसके घर में हो तो आत्मा यहाँ कहाँ से आया? उसकी पर्याय में हो, तो पर्याय में हो तो यहाँ विकार होता है, ऐसा है कुछ? लालचन्दजी! नहीं आता ... है या नहीं? कर्म करे ऐसा विकार करना पड़ता है, ऐसा कहते हैं। नहीं ऐसा है नहीं। अपने से विकार होता है, पुरुषार्थ की उल्टी गति से और सुलटी गति से पुरुषार्थ का—विकार का नाश होता है। ऐसी बात है। पर का कुछ कारण नहीं। निमित्त कहने में आता है। विकार कहो, ... निमित्त कहो। विकार का नाश हो तो उदय आता है, वह भी खिर जाता है। तो उसमें निर्जरा को भी निमित्त कहो। समझ में आया? आहाहा!

अपने आत्मा में सामर्थ्य कितना है, कौन है, उसकी प्रतीति नहीं। यह तो पर के प्रति भरोसा उसका हो। अरे! भाई! यह कैसे कर्म का जोर आ गया है, अब क्या होगा? अरे! भाई! तेरे में इतना पुरुषार्थ है, पुरुषार्थ जग जाये तो क्या होगा? केवलज्ञान हो जायेगा। ऐसे क्यों नहीं लेता? समझ में आया? मेरे में सर्वज्ञपद पड़ा है तो कब पुरुषार्थ मेरी गति करे अन्दर में, तब क्या होगा? तब केवलज्ञान होगा। समझ में आया? कर्म पड़ा है तो उसमें क्या होगा? क्या धूल में होगा? उसमें होगा, तेरे में क्या है? लालचन्दजी! वह कहते हैं, देखो!

अन्वयार्थ लो पहले। **अरिहन्त भगवान पुण्यफलवाले हैं..** अरिहन्त भगवान का आत्मा बाह्य में पुण्यफलवाला है। ऐसा अर्थ है उसका। समझ में आया? भगवान आत्मा अन्दर सच्चिदानन्द प्रभु, जैसे कली खिलकर पूर्ण हो जाती है गुलाब की कली खिल करके, उसी प्रकार भगवान आत्मा सच्चिदानन्द स्वरूप अपनी एकाग्र होकर कली खिल गई, केवलज्ञान हुआ ऐसे भगवान आत्मा को पुण्य का फल शरीर मिलता है। देखो! **अरिहन्त भगवान पुण्यफलवाले हैं...** संयोग में पुण्य का फल उनको है, ऐसा किसी को पुण्यफल है नहीं, ऐसा कहते हैं। इसमें लिया है। पुण्यफल लिया है। पंच महाकल्याणक पूजा में ऐसा लिया है। जयसेनाचार्य ने, हों! पुण्यफल के अर्थ में वह लिया है। देखो! '**पुण्णफला अरहंता**' जयसेनाचार्य की टीका। '**पञ्चमहाकल्याण-पूजाजनकं त्रैलोक्य-विजयकरं यत्तीर्थकरनाम पुण्यकर्म तत्फलभूता अर्हन्तो भवन्ति।**' उसका फल अरिहन्त और समवसरण आदि, वाणी आदि मिले, वह पुण्य का फल।

'**पञ्चमहाकल्याणपूजाजनकं**' ऐसा कहा है। केवलज्ञान होता है उस समय। '**पञ्चमहाकल्याणपूजाजनकं त्रैलोक्य-विजयकरं यत्तीर्थकरनाम पुण्यकर्म**' वह पुण्यकर्म का फल है। '**तत्फलभूता अर्हन्तो**' अरिहन्त को उसका फल संयोग से आया है। ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरिहन्त होगा अर्थात्? होगा कहाँ लिखा है? '**अर्हन्तो भवन्ति।**' अरिहन्त को पुण्यफल होता है, ऐसा कहते हैं। '**तत्फलभूता अर्हन्तो भवन्ति**' '**अर्हन्तो भवन्ति**' ऐसा नहीं। '**पुण्यकर्म तत्फलभूता अर्हन्तो भवन्ति।**' '**तत्फलभूता भवन्ति।**' ऐई! पण्डितजी! समझ में आया? अरिहन्त के आत्मा को पुण्य का फल होता है—ऐसा है वहाँ। ऐई! वजुभाई!

भगवान पूर्णानन्द प्रभु पूर्व में शुभभाव हुआ था, प्रकृति बँध गयी। शुभभाव का नाश करके अपने स्वरूप की पूर्ण प्राप्ति हुई तो वह बन्ध पड़ा था, उसका फल आया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तो अरिहन्त को फल आया ऐसा संयोग से कहने में आता है। समझ में आया? क्या कहा? भगवान आत्मा अपना आनन्द प्रभु, अपने में आनन्द अतीन्द्रिय है आत्मा। सच्चिदानन्द प्रभु है—सत्-शाश्वत् चीज़ आनन्द ज्ञान है, उसका अन्तर में विश्वास, अनुभव, प्रतीति, स्थिरता हो गई और उसके फलस्वरूप पहले शुभभाव आया था, तीर्थंकरप्रकृति बन्ध गई। और शुभभाव को छोड़कर जब वीतराग हुए, केवलज्ञान हुआ तो उस पुण्य प्रकृति का फल तीर्थंकर को तेरहवें गुणस्थान में आता है। क्या कहा? प्रकृति का बन्ध चौथे, पाँचवें, छठवें आदि पड़ता है, तीर्थंकर का। परन्तु उसका उदय तेरहवें में आता है। पहले उसका उदय आता ही नहीं, ऐसा कहते हैं। तो ... अरिहन्त को उदय का फल आया ऐसा कहते हैं। अरिहन्त पद प्राप्त हुआ, शुभभाव का नाश कर वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा हुए तो वह प्रकृति केवली को अर्थात् अरिहन्त को पुण्यफल के रूप में बाह्य संयोग मिला। पुण्यफल तब आया। कर्म की प्रकृति का फल तेरहवें गुणस्थान में आता है तीर्थंकर प्रकृति का। यह बताना है यहाँ। क्या कहा, समझ में आया?

'**पुण्णफला अरहंता**' की व्याख्या होती है। अरिहन्त भगवान पुण्यफलवाले हैं।

और उनकी क्रिया उदयिकी है। पुण्यफलवाला अर्थात् अरिहन्तपद हुआ, सर्वज्ञपद हुआ, तब वह प्रकृति बन्ध पड़ी थी, उसका फल तेरहवें गुणस्थान में आता है, वह बताते हैं। तीर्थंकर प्रकृति का फल उदय तेरहवें गुणस्थान में संयोगरूप आता है, वह बताना है। समझ में आया? प्रकृति तो प्रकृति जड़ से, शुभभाव भी विकार था तो शुभभाव तो निमित्त पड़ा तीर्थंकरप्रकृति बन्ध में। और शुभभाव छोड़कर वीतरागभाव अन्दर में प्रगट हुआ। आनन्दस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु। अकेले समरस में परिणमन करते वह शुभराग विषयरस था, उसको छोड़कर अकेले समरस में परिणमन करके अवस्था करके केवलज्ञान हुआ उसको ही कर्म की प्रकृति का उदय आता है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : तेरहवें गुणस्थान में....

पूज्य गुरुदेवश्री : तेरहवें गुणस्थान में... प्रकृति का फल, वह यहाँ कहते हैं। अरे! भगवान! कहाँ का कहाँ ले गये? क्या कहते हैं और क्या लगाते हैं? पुण्य का फल तो अभी तेरहवें ज्ञान होकर फल आता है, ऐसा कहते हैं। केवलज्ञान पुण्य का फल आया, ऐसा नहीं है यहाँ। नवनीतभाई! ऐसा कहते हैं। लो! अरे! पण्डितों का क्या कहना? समझ में आया?

भगवान! तुम तो पवित्रता का पिण्ड हो न। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ, मैं तो पवित्र वीतरागमूर्ति हूँ—ऐसी श्रद्धा-ज्ञान हुआ, स्वरूप में स्थिरता आदि थोड़ी हुई, परन्तु जब तक पुरुषार्थ की कमी है, पूर्ण वीतरागता न हो, तब तक ऐसा शुभभाव आता है, तो शुभभाव विकल्प से बन्ध पड़ गया तीर्थंकरप्रकृति का जड़ का। तो कहते हैं कि तीर्थंकर प्रकृति का फल कब आता है? कि अरिहन्तपद प्राप्त होता है, तब आता है। जब वह शुभभाव का नाश कर वीतराग समरस पूर्णानन्द सर्वज्ञपद हुआ, तब उसका फल (तेरहवें) आया। तीर्थंकरप्रकृति का तब उदय आया। ऐसा कहते हैं। परन्तु उस प्रकृति के फल में अरिहन्तपद मिला (ऐसा नहीं)। आहाहा! नवनीतभाई! अरेरे! 'जातिअंध नो दोष नहि आकरो अे जाणे नहि अर्थ, मिथ्यादृष्टि तेथी आकरो करे अर्थना अनर्थ।'

हमारे यहाँ एक लड़की बोलती थी बहुत वर्ष पहले की बात है। ८० की, ७९ के वर्ष। एक लड़की सात साल की छोटी। तो उसके दादा ने उसको सिखाया था। 'समझाव्या समझे नहीं करे कांईनुं कांई, फानस सळगावो कह्युं, नाख्युं भडकामांही।'

नवनीतभाई! सात साल की लड़की बोलती थी। गुजर गयी। क्षय हो गया था। सात साल की लड़की को क्षय हो गया। लड़की बहुत ऐसा गाती थी। उसके दादा थे न ... वह सिखाते थे। वह भी गुजर गये। 'समझाव्यो समझे नहीं, करे कांईनुं कांई, फानस...' फानस समझे न? लालटेन। 'फानस सळगावो अेम कह्युं, नाख्युं भडकामांही।' लालटेन जलाओ। 'नाख्युं भडकामांही।' क्या कहा था?

मुमुक्षु : जलाने को कहा था न।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जलाना अर्थात् दीया कर ऐसा कहा था। लालटेन को अग्नि में डालने को कहा था? आपको कहा था न, लालटेन जलाओ? नवनीतभाई! लालटेन जलाने का क्या अर्थ है? लालटेन जलाओ। तो जलाओ का अर्थात् क्या? अग्नि में डाल देना? ऐसे कि ऐसे उल्टे अर्थ करे। वह लड़की बोलती थी बेचारी। बहुत छोटी थी। ८० के वर्ष की बात है। ४४ वर्ष हुए।

ऐसे यहाँ 'समझाव्या समझे नहीं करे कांईनुं कांई, शास्त्र कहे है कुछ और अर्थ करते हैं कुछ।' आहाहा! क्या कहते हैं देखो! **अरिहंत भगवान पुण्यफलवाले हैं...** अरिहन्त भगवान हुए हैं तो उनको पुण्यफलवाले हैं ऐसा कहते हैं। अरिहन्त भगवान हुए हैं, उनको पुण्यफलवाले हैं, ऐसा कहते हैं। पुण्यफल से अरिहन्तपद हुआ ऐसा क्या यहाँ है? आहाहा! क्योंकि तीर्थंकरप्रकृति फल तेरहवें गुणस्थान में आता है। उसकी प्रकृति का उदय तेरहवें में आता है। पहले से उदय आता ही नहीं कभी। बन्ध पड़ता है चौथे, पाँचवें, छठवें पुण्य का फल। वह यहाँ बताना है। समझ में आया? क्या करे? शास्त्र का अर्थ भी उल्टा करे तो अपना प्रयोजन अन्दर उल्टा साधे। सुल्टा प्रयोजन साध सके नहीं।

अब उनकी जो क्रिया होती है। देखो! पुण्यफलवाला हुआ, पुण्य की क्रिया जो होती है काया, वाणी दिव्यध्वनि **उनकी क्रिया औदयिकी है;...** जड़ की। **मोहादि से रहित है...** परन्तु उस क्रिया में मोह और राग-द्वेष है नहीं। **इसलिए वह क्षायिकी मानी गयी है।** यह क्रिया उदय आकर खिर जाती है तो क्षायिक कहने में आता है। ऐसा चले। समझ में आया?

टीका :- अरहन्त भगवान जिनके वास्तव में पुण्यरूपी कल्पवृक्ष के समस्त

फल भलीभांति परिपक्व हुए हैं, ऐसे ही हैं,... देखो! अरिहन्त भगवान परमेश्वर परमात्मा अपनी दशा हुई ऐसे वीतरागदेव **जिनके वास्तव में पुण्यरूपी कल्पवृक्ष के समस्त...** पुण्यरूपी कल्पवृक्ष, देखो! **समस्त फल...** तीर्थंकरप्रकृति क्या! आहाहा! तीन लोक में विजय करनेवाले, इन्द्र भी जब देखे भगवान को, ओहोहो! यह क्या! समवसरण देखकर, सभा देखकर... समवसरण रचना करता है न इन्द्र। अपने आया था न समवसरण। रचना करते थे तो आश्चर्य हो गया उसका। रचना अपने से हुई तो यह क्या हो गया! यह प्रकृति के निमित्त से समवसरण की ऐसी रचना हो गयी। समझ में आया? उनको आश्चर्य लगता है। ओहोहो! पुण्य तो देखो! भगवान का पुण्य कितना है! ऐसे कहने में आता है न निमित्त से, संयोग से तो? पुण्य तो है ही नहीं, उनका तो केवलज्ञान है। परन्तु उसकी प्राप्ति पूर्व के पुण्य से संयोग मिलते हैं समवसरण, दिव्यध्वनि, साढ़े बारह करोड़ बाजे बजते हैं। दिव्यध्वनि, देव दुंदुभी। समझ में आया?

उसका पुण्य का फल समवसरण अरिहन्त तीर्थंकर को होता है, ऐसा दूसरे को होता नहीं। भगवान तो केवलज्ञानी परमात्मा है। उसमें फल क्या आया? तो कहते हैं कि उदय हुआ, वह अरिहन्त भगवान को **उनकी जो भी क्रिया है, वह सब उसके (-पुण्य के) उदय के प्रभाव से उत्पन्न होने के कारण...** लो! उनकी सब क्रिया है, ऐसा कहा भाई! शब्द तो ऐसा पड़ा है। आत्मा की पर्याय पुण्य से प्राप्त (हो), ऐसा कहा है? उनकी जो भी क्रिया है हलन, चलन, जड़ की पर्याय, **वह सब उसके (-पुण्य के) उदय के प्रभाव से...** देखो! वह क्रिया हलन-चलन उदय के प्रभाव से है, वह कहते हैं। तो उदय के प्रभाव से वीतरागता हुई, ऐसा कहते हैं? यह खानिया चर्चा में आ गया है। खानिया चर्चा में यह चर्चा आ गयी है। ... जवाब दिया है फूलचन्दजी ने। क्रिया की बात है। वीतरागता हुई पुण्य के फल से, ऐसी बात है नहीं। तो इतनी चर्चा सब हो गयी, पढ़े तो विचार करो अब चर्चा करने का...

मुमुक्षु : .... झूठी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : झूठी है परन्तु पढ़ो तो सही। झूठी क्या? इसलिए तो यहाँ तो बाहर रखी है। वो लोग कहे, छपाना नहीं हमें। यहाँ तो छपाओ। इतनी छपाई लोग पढ़े तो सही। उसमें क्या? ... निर्णय करेगा।

उनकी जो भी क्रिया है... जो भी क्रिया ऐसा कहा न? या केवलज्ञान है, ऐसा कहा है? **अरिहन्त भगवान जिनके वास्तव में पुण्यरूपी कल्पवृक्ष के समस्त फल भलीभाँति परिपक्व हुए हैं...** पाक हो गया है, ऐसे। पाक हो गया तेरहवें में। **उनकी जो भी क्रिया है, वह सब उनके (-पुण्य के) उदय के प्रभाव से उत्पन्न होने के कारण औदयिकी ही है।** ऐसा कहते हैं। यह तो औदयिकी है, ऐसा कहते हैं। केवलज्ञान की कहा है? केवलज्ञान तो क्षायिक है।

मुमुक्षु : .... बना दिया है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या बनाया? उसको बनाना नहीं है। क्षायिक तो है ही। उदय को क्षायिक बनाना है। वह तो क्षायिक है ही। ऐई! चन्दुभाई! क्षायिक तो है ही। केवलज्ञान, केवलदर्शन, क्षायिक वीर्य वह तो क्षायिक है। वह क्षायिक बने? वह तो उदय है खिर जाता है, इतना क्षायिक में बढ़ावा होता है परमपारिणामिकभाव में, वह कहना है। समझ में आया? समय समय में उदय होकर खिर जाता है, इतना पारिणामिकभाव में क्षायिकभाव होता है। वह क्षायिकभाव तो हो गया है। केवलज्ञान, केवलदर्शन, अनन्तवीर्य, अनन्त सुख क्षायिक हो गया है। उसमें क्या? परन्तु हो गया है और वह उदय की क्रिया है। उसकी बात है। समझ में आया? आहाहा! वह तो क्षायिक होती है न? नामकर्म भाषा प्रकृति का उदय है। वह कहते हैं हलन-चलन। वह घाति का फल है? वह तो अघाति का है। और अघातिकर्म बाकी है, उसकी क्रिया है यहाँ।

किन्तु ऐसी (पुण्य के उदय से होनेवाली) होने पर भी वह सदा औदयिकी क्रिया महामोहराजा की समस्त सेना के सर्वथा क्षय से उत्पन्न होती है... देखो! मोहराजा का क्षय तो किया है। **महामोहराजा की समस्त सेना के...** देखो! भाषा कितनी पड़ी है! **महामोहराजा की समस्त सेना के सर्वथा क्षय से उत्पन्न होती है; इसलिए मोह-राग-द्वेषरूपी उपरंजकों का अभाव होने से... उपराग-मलिनता करनेवाले (विकारीभाव)।** भगवान को ऐसा भाव नहीं। **चैतन्य के विकार का कारण नहीं होती...** यह उदय जो आत्मा है भाषा, चलना, वह आत्मा का विकार का कारण नहीं होती। तो वीतराग हुआ है। परमात्मा पूर्णदशा प्राप्त है। वह क्रिया उनको विकार का कारण नहीं।

इसलिए कार्यभूत बन्ध की अकारणभूतता से... देखो! उदय का कार्य बन्ध है,

वह बन्ध का अकारणभूत होने से **और कार्यभूत मोक्ष की कारणभूतता से क्षायिकी ही क्यों न माननी चाहिए ?** ऐसा है। हलन-चलन की क्रिया मोह के अभाव से बन्ध का कार्य करनेवाली नहीं तो क्षायिक-क्षय का कारण क्यों न माना जाये ? ऐसा कहते हैं। **कार्यभूत बन्ध की अकारणभूतता से और कार्यभूत मोक्ष की कारणभूतता से...** देखो! पारिणामिकभाव कार्यभूत, उसकी **क्षायिकी ही क्यों न माननी चाहिए ? (अवश्य माननी चाहिए)।** देखो! समझ में आया ? धर्मी को जो स्वरूप-सन्मुख है, कर्म उदय आया तो उदय नहीं कहते उसको। इस तरफ स्वभाव-सन्मुख है तो उदय को निर्जरा कहते हैं। निर्जरा होती है। निर्जरा हो गई। ऐसे भगवान... मोहरहित दशा हो गयी तो उदय है तो क्षायिक होती है। यह गाथा तो बहुत रखते हैं पत्र में, जैनगजट, जैनदर्शन में। जहाँ-तहाँ जैसे। अरे! कर्म को तो मानते नहीं। कर्म के फल में वीतरागता होती है। पुण्य का फल, शुभभाव में वीतरागता होती है ? या शुभभाव का नाश करने से वीतरागता होती है ?

और जब क्षायिकी माने, तब कर्मविपाक (-कर्मोदय) भी... क्षायिकी माने तो कर्म का पाक, देखो। उदय। **उनके (अरहन्तों के) स्वभावविघात का कारण नहीं होता।** स्वभाव के विघात का कारण नहीं होता। **(यह निश्चित होता है)।** लो! यह तो यह कहते हैं। स्वभाव तो स्वभाव प्रगट हुआ है। उदय आता है जड़ का उदय अघाति का। खिर जाता है। खिर जाता है तो उदय है, खिर जाती है तो समय-समय में पारिणामिकभाव शुभ होता है उसको क्षायिकी कहने में आती है। समझ में आया ? ... अपना स्वरूप स्वतन्त्र शुद्ध, वह तो अपने द्रव्य के आश्रय से हुआ है। केवलज्ञान, केवलदर्शन है, भगवान को घातिकर्म तो है ही नहीं। अब रहा अघाति। उसका जब उदय आता है, वह समय-समय में खिर जाता है। ऐसा कहते हैं। उसके उदय में मोह नहीं तो बन्ध पड़ता नहीं। बात तो ऐसी सीधी है। समझ में आया ? तीर्थंकर प्रकृति का पुण्यकर्म अकिंचित्कर क्या कहा ? तब कहे पुण्यफल में केवलज्ञान होता है। समझ में आया ?

(यह निश्चित होता है)। लो! भगवान के केवलज्ञान में उदय भले हो अघाति का, बन्ध का कारण नहीं। ... उदय खिर जाता है तो उसको क्षायिक कहने में आता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ८, सोमवार, दिनांक १४-१०-१९६८
गाथा - ४५-४६, प्रवचन - ३६

अपना शुद्धस्वरूप ज्ञान है न, ज्ञान? ज्ञानस्वरूप जो त्रिकाल आत्मा है सर्वज्ञस्वरूप, उसकी अन्तर दृष्टि करके, उसका ज्ञान करके, शुद्ध उपयोगरूपी साम्यभाव चारित्र ग्रहण करके... चारित्र का फल केवलज्ञान है। समझ में आया? वह बात चलती है। आचार्य ने अपना स्वरूप शुद्ध उपयोगमय चारित्र में अंगीकार किया है, ऐसा पहले कहा। और शुद्ध उपयोग के चारित्र से ही केवलज्ञान की प्राप्ति है। उसके अतिरिक्त कोई उपाय दूसरी क्रियाकाण्ड से, पूर्ण साध्य केवल और पूर्ण आनन्द की प्राप्ति दूसरी कोई क्रियाकाण्ड से होती नहीं। समझ में आया? क्योंकि ज्ञानस्वरूप... ज्ञानप्रज्ञापन है न? तो ज्ञानस्वरूप चैतन्यबिम्ब वस्तु, उसकी वह ज्ञान की क्रिया... एकाकार, ज्ञानस्वरूप में स्वभाव में एकाकार होकर जो दृष्टि सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान हुआ, तदुपरान्त शुद्ध उपयोगरूपी आचरण प्राप्त किया, उसके फल में सर्वज्ञ और पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है।

यह सर्वज्ञपद में पूर्व का पुण्य का फल उसको तीर्थंकर प्रकृति का पाक आता है, ऐसा कहते हैं। जब सर्वज्ञपद प्राप्त हुआ। देखो! स्वयं अपनी बात करते हैं, उसमें तीर्थंकर को रखा, देखो! अन्यथा वह तो चारित्रपद से केवलज्ञान (होता है), उसमें तीर्थंकरों को लिया बीच में। समझ में आया? केवलज्ञानी परमात्मा को पूर्व में जो तीर्थंकरप्रकृति बँधी थी, तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान हुआ, तब उस पुण्य का फल प्राप्त हुआ। समझ में आया? वह केवलज्ञान में पूर्व की प्रकृति का उदय से जो काययोग विहाययोग वह गति की क्रिया नामकर्म से, काया की क्रिया और भाषापर्याप्ति के कारण से भाषा की क्रिया उपदेश आदि—वह क्रिया पूर्व के कर्म के उदय की क्रिया जड़ की है। वह आत्मा को बन्ध का कारण है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ....कोई कारण है नहीं। बन्ध का कारण है ही नहीं, वह कहते

हैं। वही बताना है। बन्ध का कारण नहीं, उपरान्त वह उदय आता है, खिर जाता है तो उसको क्षणिक कहने में आता है। ऐसी बात सिद्ध की है। आहाहा! समझ में आया? यहाँ तो स्वयं चारित्र के कारण से सर्वज्ञपद लेते हैं। उसमें तीर्थंकर को क्यों लिया? यह विचार आया। समझ में आया?

ऐसी बात कही थी। साम्यभाव अंगीकार करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान में मुख्य आचरण है, परमात्मा का प्राप्त करने का मठ... जैसे मठ में महात्मा विराजते हों, वहाँ जाये तो महात्मा का मिलन होता है। ऐसे यह परमात्मा पूर्णानन्द का मठ-आश्रम, उसमें पहले सम्यग्दर्शन-ज्ञान उसका प्रधान आश्रम है। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञानस्वरूप सर्वज्ञस्वभाव, उसकी अन्तर्मुख की प्रतीति निर्विकल्प सम्यग्दर्शन और स्वसंवेदनज्ञान, वह आश्रम है महापुरुष का। उसमें से केवलज्ञान की प्राप्ति होती है। चारित्र प्राप्त करे तो, केवल-अकेले दर्शन-ज्ञान से होती नहीं, वह बात सिद्ध करते हैं। समझ में आया? चारित्र तो कैसा? चारित्र की व्याख्या-शुद्ध उपयोगरूपी चारित्र। पंच महाव्रत आदि का भाव वह तो कषाय का कण है, वह कोई चारित्र नहीं। स्वरूप में चरना, वह चीज़ नहीं। बाबूभाई! वह चारित्र है।

जिस प्राणी को आत्मा का पूर्ण हित करना हो तो उसको दर्शन-ज्ञान प्राप्तिसहित चारित्र प्राप्त करना पड़ेगा और बाद में चारित्र की प्राप्ति के फल में सर्वज्ञपद परमात्मा होगा। समझ में आया? केवल दर्शन-ज्ञान से भी मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती। वह बताते हैं, देखो! अपना स्वभाव बताते हैं। साम्यभाव अंगीकार किया है, शुद्ध उपयोग अंगीकार किया है। उसकी प्रशंसा करने को उसके फल की प्रशंसा करते हैं।

यहाँ कहते हैं कि **अरहन्त भगवान के जो दिव्यध्वनि...** दिव्यध्वनि ऐसा कहते हैं। आवाज उठती है, वह प्रकृति का कार्य है। आतापपर्याप्ति प्रकृति एक है नामकर्म की, उससे दिव्यध्वनि उठती है। दिव्यध्वनि का रजकण तो स्वतन्त्र है, परन्तु उसमें भाषा प्रकृति का उदय निमित्त है, तो वह दिव्यध्वनि का कारण भाषा की प्रकृति है। आत्मा नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : तीर्थंकर....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न ... वह पुण्य। वह भाषाप्रकृति का उदय वह पुण्य, वह पुण्य। पुण्य का फल है। तीर्थंकरप्रकृति का पाक हुआ तो साथ में विहायगति का भी पाक हुआ और उसमें वह भाषा प्रकृति का भी पाक हुआ। विहायगति में काया की क्रिया, भाषा की पर्याप्ति में वाणी की क्रिया। वह पुण्य की क्रिया है सब, ऐसा कहते हैं। आत्मा के साथ सम्बन्ध नहीं। पुण्य उसको लाभ करते हैं। उसका अर्थ यह करते हैं न? खानिया में भी वह लिया है। सबमें लिया है। '**पुण्णफल अरहंता**' पुण्य के फलस्वरूप अरिहन्तपद की प्राप्ति होती है। ऐसा है अर्थ में? सौभागभाई! पुण्य के फल में अरिहन्त पद की प्राप्ति होती है, ऐसा है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकरपना। यहाँ तो अरिहन्तपद तो मिला है, उसमें। तीर्थंकर की प्रकृति के उदय से तीर्थंकरपने की प्राप्ति होती है। वह पुण्य का फल है, उसमें आत्मा में क्या आया? आहाहा! क्या करे? उसको अपनी माहात्म्यदशा, महाप्रभु है चिदानन्दस्वरूप आत्मा, उसकी महिमा आती नहीं और पुण्य के शुभभाव से आत्मा का केवलज्ञान होता है, विभाव से स्वभाव की प्राप्ति होती है—ऐसा मानते हैं। मानते हैं, परन्तु ऐसा होता नहीं।

अरिहन्त भगवान के जो दिव्यध्वनि... दिव्य प्रधान आवाज। गर्जना जैसे बादल में होती है, ऐसी गर्जना होती है, ऐसा कहते हैं। बादल की उपमा दी न? **विहार आदि क्रियायें हैं...** भगवान का विहार हो। **आदि क्रियायें हैं, वे निष्क्रिय शुद्ध आत्मतत्त्व के प्रदेशपरिस्पन्द में निमित्तभूत...** है। भगवान आत्मा तो निष्क्रिय शुद्ध आत्मतत्त्व है। समझ में आया? वह निष्क्रिय आ गया न? ३२० गाथा में आ गया। उत्तम सिद्धान्त निष्क्रिय। सेठिया! वह निष्क्रिय शब्द आ गया है वह तो व्याख्यान में ३२० में। आत्मा में, आत्मा में—निष्क्रिय वस्तु में बन्ध का कारणभूत रागादि की क्रिया नहीं और मोक्ष के कारणभूत सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्यायरूप क्रिया निष्क्रिय भगवान आत्मा में नहीं है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय परिणाम वह क्रिया, परन्तु वह क्रिया निष्क्रिय भगवान आत्मा में है नहीं और उसका कारण भी नहीं। ऐसा निष्क्रिय शुद्ध आत्मतत्त्व

उसका प्रदेशपरिस्पंद... ऐसा कहते हैं। प्रदेश कम्पन्न जो होता है, प्रदेश कम्पन्न होता है। उसमें निमित्तभूत **पूर्वबद्ध कर्मोदय से उत्पन्न होती हैं, देखो! इसलिए औदयिकी हैं।** देखो! **प्रदेशपरिस्पंद में निमित्तभूत पूर्वबद्ध कर्मोदय...** है। उससे उत्पन्न हुई है क्रिया, **इसलिए औदयिकी हैं।** उदय की क्रिया कम्पन्न है, वह उदयभाव है। समझ में आया? और खिर जाता है, समय समय में। समय-समय में खिर जाते हैं। कहा न। कल दृष्टान्त यह लिया था कि उदय को क्षायिक क्यों कहा? वही सिद्धान्त पहले से चला आता है कि अपना शुद्धस्वरूप सन्मुख झुकाव है, उस समय जो कर्म का उदय है, उसको निर्जरा कहते हैं। है तो उदय। स्वभावसन्मुख हुआ तो उसको निर्जरा कहते हैं, वहाँ क्षायिक हुआ तो उदय को क्षायिक कहते हैं। समझ में आया? वह सैद्धान्तिक तत्त्व है वह। उसमें बड़ा विवाद है। दूसरी क्रिया। पुण्यफल दूसरी... परन्तु उदय है, वह क्षायिक क्यों हो? उदय है, वह क्षायिक है, वह दूसरे सम्प्रदाय की बात है। नाम नहीं देते हैं। समझ में आया? अब दूसरे सम्प्रदाय की... उदय को क्षायिक कैसे कहते हैं? झूठ है। ऐसा कहते हैं दूसरे सम्प्रदायवाला। बड़ा पण्डित नाम है। समझ में आया?

उदय को क्षायिक कहा। क्यों? कि उदय समय-समय में आकर खिर जाता है। उसको आत्मा में परमपारिणामिकभाव, वह उदय आया खिर जाता है, तो पारिणामिकभाव क्षायिकपने विशेष शुद्धि होती है। समझ में आया? दृष्टान्त दिया था न कल, नहीं? '**द्रव्यमोहोदयेऽपि**' द्रव्यमोह का उदय होने पर भी। वह जयसेनाचार्य की टीका में है। उसमें है अन्दर। '**द्रव्यमोहोदयेऽपि**' आत्मा भावमोहरूप न परिणमन करे तो उसको बन्ध होता नहीं। कर्म उदयमात्र से बन्ध हो तो संसारी को तो सदा ही कर्म का उदय रहता है तो कभी उसको मोक्ष होने का अवसर रहे नहीं। उदय से ही बन्ध हो, संसारी प्राणी को सदैव उदय है संसारी को। उदय है तो बन्ध है तो कभी मोक्ष का फल मिलता नहीं। उदय के काल में मोहरूप परिणमन करे तो बन्ध का कारण है। उदय के काल में भगवान आत्मा का झुकाव तरफ से आनन्द का अनुभव करते हो, मोहरूप न परिणमन करे तो द्रव्य उदय है, वह खिर जाता है। समझ में आया? ऐसे यहाँ कहते हैं।

प्रदेशपरिस्पन्द में... ध्रुजा है न योग उसमें निमित्तभूत कर्म का उदय है, इसलिए उदय की है। **वे क्रियायें अरहन्त भगवान के चैतन्यविकाररूप भावकर्म उत्पन्न नहीं**

करतीं,... समझ में आया? वह क्रिया भावकर्म अर्थात् राग-द्वेष उत्पन्न नहीं करती। **क्योंकि (उनके) निर्मोह शुद्ध आत्मतत्त्व के राग-द्वेष-मोहरूप विकार में निमित्तभूत...** यह जयसेनाचार्य में डाला है न? जयसेनाचार्य में। उसमें है न यह तो हिन्दी है न। मूल पुस्तक है उसमें। **निर्मोह शुद्ध आत्मतत्त्व...** भगवान आत्मा कैसा है? निर्मोह शुद्ध आत्मतत्त्व। उसमें मोह है नहीं। केवल परमानन्दस्वरूप शुद्ध चिदानन्द निर्मोह आत्मतत्त्व भगवान राग बिना का, मोह बिना का आत्मतत्त्व है। ऐसा **तत्त्व के राग-द्वेष-मोहरूप विकार में...** ऐसा आत्मा में राग-द्वेष-मोह विकार में... जैसे पहले कहा था कि **निष्क्रिय शुद्ध आत्मतत्त्व के प्रदेशपरिस्पन्द में...** ऐसा कहा था। यहाँ कहते हैं कि **निर्मोह शुद्ध आत्मतत्त्व के राग-द्वेष-मोहरूप विकार में निमित्तभूत मोहनीयकर्म का क्षय हो चुका है। और वे क्रियायें उन्हें, राग-द्वेष-मोह का अभाव हो जाने से नवीन बन्ध में कारणरूप नहीं होती,...** इतना तो ठीक। **परन्तु वे पूर्वकर्मों के क्षय में कारणरूप हैं...** क्षय में कारणरूप है, लो! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें तो खिर जाते हैं न। बन्ध तो है नहीं (क्योंकि) मोह है नहीं।... अनुसार दृष्टान्त दिया वह जयसेनाचार्य ने। द्रव्यमोह हो अन्दर फिर भी स्वभाव सन्मुख हो, उसको बन्ध है नहीं। खिर जाता है। इसलिए नीचे का दृष्टान्त देकर ऊपर के उदयभाव की क्रिया क्षायिक की है, ऐसा कहने में आता है। पाठ में है न। '**मोहादीहिं विरहिदा तम्हा सा खाइग त्ति मदा**' इसलिए मोह के विरहवासी क्रिया उसको क्षायिक जानने में क्या दिक्कत है? ऐसा कहते हैं। टीकाकार ने ऐसा लिया है। यहाँ तो '**खाइग मदा**' कहा है। क्षायिक ही है। यहाँ जरा ऐसा लेना। समझ में आया? **चैतन्य के विकार का कारण नहीं होती, इसलिए कार्यभूत बन्ध की अकारणभूतता से और कार्यभूत मोक्ष की कारणभूतता से क्षायिकी ही क्यों न माननी चाहिए?** ऐसा लिया है न? अमृतचन्द्राचार्य ने जरा ज्यादा स्पष्ट लिया है। लोगों को समझ में आये। उसको क्यों क्षायिक न मानना? वह उदय आकर खिर जाता है। मोह तो है नहीं। तो उदय को क्षायिक क्यों न माने? ऐसे।

उसमें भी तकलीफ है। वह भी चर्चा हुई थी उसमें। उदय है, वह क्षायिक का

काम करते हैं, देखो! किस अपेक्षा से कहा, समझ में आया? एक-एक गाथा में तीन विरोधी है। एक पुण्य के फल से केवलज्ञान प्राप्ति होती है, एक ऐसा अर्थ करते हैं, दूसरा ऐसा अर्थ करते हैं कि जो उदय क्षायिक हो... समझे? ऐसे कैसे हो? गणधर को उससे थोड़ा हुआ तो उसको बहुत विशेषरूप होना चाहिए। ऐसा कहते हैं न वह? पाँच सौ धनुष ऊँचे चले जाये, गणधर को तो चार ज्ञान है, वह कितना ऊँचा चले जाये? तर्क है, भाई! अज्ञानी का तो अनादि की ऐसी चीज़ है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परम औदारिक।

यहाँ कहते हैं, **निर्मोह शुद्ध आत्मतत्त्व के...** देखो भाषा। **निष्क्रिय शुद्ध आत्मतत्त्व के प्रदेश परिस्पन्द में...** प्रदेश परिस्पन्द योग-योग है उसके सामने **निष्क्रिय शुद्ध आत्मतत्त्व...** उसमें प्रदेश परिस्पन्द हुआ, उससे विरुद्ध हुआ। वह प्रदेश परिस्पन्द में कर्म का निमित्त है तो उदय कहने में आता है, वह उदय खिर जाता है। परिस्पन्द होकर समय-समय में खिर जाते हैं। यहाँ **निर्मोह शुद्ध आत्मतत्त्व राग-द्वेष-मोहरूप विकावर में निमित्तभूत मोहनीयकर्म का क्षय हो चुका है।** उसको राग-द्वेष तो है नहीं। **और वे क्रियायें उन्हें, राग-द्वेष-मोह का अभाव हो जाने से नवीन बन्ध में कारणभूत नहीं होतीं,...** लो! कौनसी क्रियायें? दिव्यध्वनि, विहार, खड़ा होना, बैठना आदि वह क्रिया। सब जड़ की क्रिया परमाणु की है। उसमें आत्मा को मोह है नहीं।

परन्तु वे पूर्वकर्मों के क्षय में कारणरूप हैं... देखो! **क्योंकि जिन कर्मों के उदय से वे क्रियायें होती हैं, वे कर्म अपना रस देकर खिर जाते हैं।** वह कर्म उदय आया और नाश होता है। **इस प्रकार मोहनीयकर्म के क्षय के उत्पन्न होने से और कर्मों के क्षय में कारणभूत होने से अरहन्तभगवान की वह औदयिकी क्रिया क्षायिकी कहलाती है।** समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ४६

अब, केवली भगवान की भाँति समस्त जीवों के स्वभाव विघात का अभाव होने का निषेध करते हैं :—लो! भाई! भगवान को तो ऐसा है, परन्तु दूसरे को ऐसा उदय होता है तो उसको बन्ध होता है या नहीं? वह आत्मा शुभाशुभभावरूप परिणमन करते हैं या नहीं? केवली को तो हो गया है तो खिर जाते हैं, छद्मस्थ को क्या होता है? छद्मस्थ को भी उदय आवे और खिर जाये, शुभाशुभभावरूप न परिणमन करे, ऐसा है? वह मोह है वहाँ। शुभाशुभ परिणमन... वह कहते हैं। समझ में आया? खानिया चर्चा में यह बात बहुत ली है। '**पुण्णफल अरहंता**' दया की बात आ गयी उसमें। जैनगजट। जैनसन्देश में। भाई! दया को राग कहते हैं सोनगढ़वाले। आगम भी राग कहता है। कैलाशचन्दजी। मक्खनलालजी के सामने। मक्खनलालजी कहे यह दया को राग कहते हैं, राग कहते हैं। आहाहा! सोनगढ़वाले कहते हैं परन्तु आगम भी राग कहता है। दृष्टान्त दिया था वहाँ। अयथातथ की श्रद्धा और मनुष्य तिर्यंच की दया, उसकी ममता की दया, वह मिथ्यात्व का लक्षण है। प्रवचनसार में वह दृष्टान्त दिया था। बहुत तत्त्व।

अयथार्थ पदार्थ की प्रतीति एक तो वह दर्शनमोह का लक्षण। दर्शन मिथ्यात्व का। दूसरा तिर्यंच और मनुष्य में उसका मोह-उसकी ममता करके दया करना, वह तो मिथ्यात्वभाव है। वह तो ज्ञाता-दृष्टा होने से देखनेयोग्य है। उसके उपरान्त मैं उसका कर दूँ, मैं उसका कर दूँ। वह दुःखी है, उस कारण से मेरे को ऐसा भाव आता है तो सब मिथ्यात्व का लक्षण है। ओहोहो! और तीसरी आसक्ति। दो तो मिथ्यात्व के लक्षण हैं, तीसरी आसक्ति। राग की आसक्ति होना, वह तीनों बन्ध का कारण है। तो केवली को उदय आया और बन्ध का कारण नहीं तो दूसरे को ऐसा होता है या नहीं? वह कहते हैं।

केवली भगवान की भाँति समस्त जीवों के स्वभाव विघात का अभाव होने का निषेध करते हैं :—

जदि सो सुहो व असुहो ण हवदि आदा सयं सहावेण।

देखो भाषा!

संसारो वि ण विज्जदि सव्वेसिं जीवकायाणं॥४६॥

हरिगीत।

आत्मा यदि शुभ-अशुभ भावमय स्वयं परिणमित होय नहीं।
तो समस्त जीवों का भी संसार न होगा सिद्ध कभी॥४६॥

क्या कहते हैं देखो! **अन्वयार्थ :- यदि (ऐसा माना जाये कि) आत्मा स्वयं स्वभाव से (-अपने भाव से)...** देखो! स्वभाव शब्द पड़ा है। आत्मा स्वभाव से अर्थात् अपने भाव से **शुभ या अशुभ नहीं होता...** देखो! प्रमत्त-अप्रमत्त गाथा में तो द्रव्य लिया था। द्रव्य शुभाशुभभावरूप परिणमन करता नहीं। यहाँ तो पर्याय की बात करनी है। आहाहा! छठवीं गाथा में ऐसा लिया कि भगवान आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है। कारण बताया कि प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं है, उसका कारण क्या? कि शुभाशुभभावरूप होता नहीं। शुभाशुभभावरूप होता नहीं द्रव्य, तो प्रमत्त-अप्रमत्तपना उसमें भेद है नहीं। कारणसर बताया है। समझ में आया? वजुभाई! वहाँ ना कहा है। कि यदि शुभाशुभरूप परिणमन करे तो आत्मा जड़ हो जाये। कोष्ठक में पण्डित जयचन्दजी ने लिखा है। कयोंकि शुभाशुभाव वास्तव में चेतनस्वरूप नहीं है। अचेतन है, उसमें ज्ञान का किरण और प्रकाश है नहीं। तो भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्यसूर्य, वह शुभाशुभभावरूप हो तो ज्ञानस्वरूप न रहकर अचेतन हो जाये। इसलिए भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी जो दृष्टि का विषय जो ध्रुव चैतन्य है, वह शुभाशुभरूप होता ही नहीं। होता नहीं तो प्रमत्त-अप्रमत्त कहाँ से आया? समझ में आया? वह दृष्टि का विषय द्रव्य को वहाँ बताया है। यहाँ पर्याय को बताना है।

कि जो पर्याय में आत्मा स्वभाव से, स्वभाव से अर्थात् अपने भाव से—अपनी पर्याय से—अपनी योग्यता से—अपनी ताकत से। देखो! उसमें कर्म-फर्म की बात यहाँ नहीं। समझ में आया? **स्वयं स्वभाव से...** दो शब्द हैं। '**सः आत्मा स्वयं स्वभावेन**' '**स्वयं स्वभावेन**' लो! अब उसमें भी दोष निकालते हैं वह तो। परिणमन करते हैं, परिणमन करते हैं। परन्तु अपने से उसमें कहाँ निकला? अपने भाव से होता है। '**स्वयं स्वभावेन**' अपनी पर्याय का स्वयं स्वभाव विकाररूप होने का अज्ञान में होता है, वह स्वभाव से अपने से है। पर से नहीं। कर्म से नहीं और शुभाशुभरूप परिणमन किये बिना रहते नहीं। समझ में आया? मात्र द्रव्य है, वह शुभाशुभ नहीं। परन्तु पर्याय में शुभाशुभभाव

न हो तो संसार किसका? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह दु:ख किसका? जड़ का है दु:ख? पर्याय में तेरे से तेरे कारण से '**स्वयं स्वभावेन**' अपने भाव से यदि शुभाशुभ न हो तो संसार किसका? कर्म का संसार है? एक और यह और एक ओर ना कहे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों बात जाननी चाहिए न। एक ओर समझे कि भाई शुभाशुभरूप आत्मा नहीं तो उसको पकड़ रखो। दूसरी बात कि शुभाशुभरूप परिणमन करता है पर्याय में। संसार किसका? मिथ्यादृष्टिरूप से अपना द्रव्य का स्वभावभान नहीं तो अपने-स्वयं से स्वभाव विकाररूप मिथ्यात्व और शुभाशुभरूप परिणमन करता है। होता है। चैतन्य भगवान... अधिकार क्या आया? ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार है। तो ज्ञान तो प्रकाश की मूर्ति है, वह शुभाशुभरूप कैसे परिणमन करे? ऐसी शंका पड़े किसी को। इसलिए यह श्लोक लिया है। ज्ञानतत्त्व है तो भगवान ज्ञानतत्त्व है, ज्ञानस्वरूप प्रकाशमूर्ति। चैतन्यसूर्य स्वयं प्रकाशमान चीज़ है। स्व और पर को प्रकाशे, ऐसा तत्त्व है। समझ में आया? वह अपने भाव से विकाररूप क्यों हो शुभाशुभरूप? कर्म से कहो तो ठीक पड़े कि भाई! अपनी पर्याय कर्म से हुई। समझ में आया?

सुबह में ऐसा आया था (समयसार की) ७५वीं गाथा में। ऐई! भीखाभाई! क्या आया था सुबह में? वह ज्ञानी की बात कही वहाँ। धर्मी की अपने ज्ञानस्वभाव के ऊपर दृष्टि होने से उसकी ज्ञान की पर्याय, जो रागादि आया उसके ज्ञान की पर्याय को उत्पन्न करनेवाला है, राग को उत्पन्न करनेवाला नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप ऐसी अन्तर्मुख दृष्टि हुई तो स्वभाव तो ज्ञान है और आनन्द है। तो उस समय में जो रागादि उत्पन्न होता है, वह राग के ज्ञान की उत्पत्ति ज्ञानी को अपनी पर्याय में उत्पन्न होती है। राग उत्पन्न होता नहीं। राग बाह्य स्थल में रह गया। आहाहा! पोपटभाई! यह सब समझना पड़ेगा। ... समझना पड़ेगा? वस्तु का स्वरूप ऐसा है, उसका ज्ञान करना पड़ेगा। यथार्थरूप से जिसको लेना हो, विपरीतपना जिसको छोड़ना हो, यह दु:ख जिसको छोड़ना हो, सुख जिसको लेना हो, उसको ऐसा समझना पड़ेगा। आहाहा! समझ में आया?

वहाँ ७५ में ऐसा कहा कि धर्मी-ज्ञानी राग का तो कर्ता नहीं, परन्तु राग है तो

ज्ञान की पर्याय हुई, ऐसा भी नहीं। राग सम्बन्धी ज्ञान, वह राग है तो ज्ञान उत्पन्न हुआ राग का, ऐसा भी नहीं। वह तो अपने अस्तित्व में पूर्ण ज्ञान है, उस ओर दृष्टि है तो अपने कारण से स्व-परप्रकाशक विकार व्यवहारादि का ज्ञान अपनी सत्ता के अवलम्बन से उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया न सेठिया? ७५ गाथा जरा सूक्ष्म थी। आहाहा! ज्ञानी राग को जानता है, ऐसा भी नहीं। ऐसे आया उसमें ७५ में। राग का कर्ता तो नहीं, राग की पर्याय उसकी पर्याय में नहीं, परन्तु राग को जानता है, राग सम्बन्धी का अपना ज्ञान, ऐसे आत्मा को वह जानता है। आहाहा!

मुमुक्षु : .... पर्याय हुई।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय ही है न वहाँ। पर्याय पड़ी है न। द्रव्य को जाने तो वह पर्याय को जाने। राग को जाने, यह तो व्यवहार हो गया। वह नहीं। यह सिद्ध करना है। समझ में आया?

यहाँ तो सामान्य स्वभाव की बात चलती है। सम्यग्दृष्टि ज्ञान की यहाँ सामान्य उसकी पर्याय में शुभाशुभ परिणमन है या नहीं? और यह शुभाशुभ परिणमन वह उसकी स्वयंसिद्धता से अपने से है या पर से है? जैसे केवली को कर्म के उदय से कोई शुभाशुभभाव है नहीं तो सर्व जीव को ऐसा है? यह सिद्ध करना है कि नहीं, सर्व जीव को ऐसा नहीं। समझ में आया? ज्ञानी को अपना ज्ञानस्वरूप शुद्ध चैतन्यवस्तु की दृष्टि का पलटा हो गया है। राग और निमित्त कि अल्पअंश के ऊपर दृष्टि न होने से, दृष्टि द्रव्य पर होने से द्रव्य का अन्मुख परिणमन होने से द्रव्य में तो मात्र ज्ञानभाव पड़ा है, तो ज्ञानभाव की परिणति होकर ज्ञान को ज्ञानी जानता है। आहाहा! राग का कर्ता तो नहीं, परन्तु राग है तो ज्ञान हुआ, ऐसा नहीं और राग को जानता है, ऐसा नहीं। अरे रे! समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्यसूर्य है न, प्रभु! उसको रागादि उसमें है नहीं वस्तु में तो। (वह तो) आस्रवतत्त्व है। ऐसा स्वभाव शुद्ध वस्तु परिपूर्ण प्रभु ऐसी दृष्टि हुई तो दृष्टि के विषय में तो केवल ज्ञान भगवान ही पड़ा है। उसका परिणमन हो तो अस्ति में ज्ञान है तो अस्ति की ज्ञानपर्याय होती है। उसमें राग नहीं तो राग कहाँ से आया? और राग का ज्ञान है, वह भी कहाँ से आया? राग का ज्ञान नहीं, ज्ञान तो अपने अस्तित्व से ज्ञान

उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? अलेख अलख मार्ग है यह। लालचन्दजी! ऐसी चीज़ है। थोड़े-थोड़े (गाना) गाया में नहीं उतरेगा। गाते हैं न। उसमें से कुछ विशेष नहीं मिलेगा। यह समझना पड़ेगा।

गाय रे गाय, गाय घास खाती है, गाय दूध दूसरे को पिलाये। ऐसा नहीं होना चाहिए। ऐसा कहते हैं। कहते हैं न वह? 'गाय रे गाय'। गाय होती है न? 'गाय रे गाय' गाय अर्थात् गाना। गाय रे गाये, गाय घास खाये, दूध दूसरे को पिलाये। ऐसा है। यहाँ तो गाना तो अपने स्वरूप के गीत गाये अन्तर एकाग्र होकर, उसको अपनी पर्याय प्रगट होती है तो अपने दूध को पीना हुआ। समझ में आया? यह दूसरे कुछ समझे, न समझे, उसके साथ कोई सम्बन्ध है नहीं।

मुमुक्षु : आप तो समझाने की कड़ी मेहनत करते हो!

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन मेहनत करता है? करे कौन? समझ में आया? आहाहा! दूसरा समझे तो उसका यहाँ लाभ है? यहाँ समझाने का विकल्प...

मुमुक्षु : जो समझाते हैं उनको पता हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए तो कहते हैं न। और विकल्प आया, उससे लाभ है? अन्तर सन्मुख की जितनी एकाग्रता है, वही बात है। विकल्प आया पुण्यबन्ध हो जायेगा। लोग ऐसा कहते हैं न?

मुमुक्षु : समझानेवाले को गैरलाभ नहीं है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : विकल्प वह गैरलाभ है। इतना ... भले नहीं, परन्तु इतना बन्ध है। आहाहा! अबन्ध परिणाम वह नहीं।

मुमुक्षु : तीर्थंकर को ....

पूज्य गुरुदेवश्री : तीर्थंकर को भी बन्ध है छद्मस्थ में भाव... केवली को (विकल्प) कहाँ है? यह तो विकल्प आये, उसकी बात है या नहीं? समझ में आया?

कहते हैं, अहो! **यदि (ऐसा माना जाये कि) आत्मा स्वयं स्वभाव से (-अपने स्वभाव से) शुभ या अशुभ नहीं होता (शुभाशुभभाव में परिणमन ही नहीं होता)...** परिणमित ही नहीं होता **तो समस्त जीवनिकायों के... समस्त जीवों के समूह को,**

संसार भी विद्यमान नहीं है, ऐसा सिद्ध होगा। समझ में आया? आहाहा! अधिकार केवलज्ञानी का लिया है। चलेगा... तुरन्त ही केवल लेंगे ४७ में। यहाँ बीच में दो डाली दो गाथा। **पुनः प्रकृति का (-चालू विषय का) अनुसरण करके अतीन्द्रिय ज्ञान को सर्वज्ञरूप से अभिनन्दन करते हैं।** उसके बाद तुरन्त लेंगे। समझ में आया? परन्तु बीच में वह सर्वज्ञस्वभाववाले आत्मा को अघाति का उदय है और मोह नहीं है तो शुभाशुभभाव उत्पन्न होता नहीं। यह बताने को बीच में यह बात ली है। समझ में आया? कि सर्व जीव को कर्म का उदय है मोहादि का और (फिर भी) मोह नहीं होता और शुभाशुभभावरूप नहीं परिणमन करता—ऐसा है नहीं। शुभाशुभभाव न हो तो संसार किसका? संसार न हो तो मोक्ष हो जायेगा उसको। समझ में आया? आहाहा!

समस्त जीवनिकायों के समूह... 'सर्वेषां जीवकायानां' काया का अर्थ फिर निकाय-समूह। **संसार भी विद्यमान नहीं है, ऐसा सिद्ध होगा।** संसार है, वह शुभाशुभभावरूप परिणमन करता है।

टीका :- यदि एकान्त से यह माना जाये कि... एकान्त से ऐसा माना जाये। दृष्टि की अपेक्षा से द्रव्यस्वभाव शुभाशुभरूप परिणमन करता नहीं, वह बात यथार्थ है। समझ में आया? द्रव्य जो वस्तु है, पदार्थ है, वह शुभाशुभभावरूप परिणमन करता नहीं, वह यथार्थ है। परन्तु वह पदार्थ पर्याय में भी शुभाशुभरूप परिणमन करते नहीं अनादि का अज्ञानी-ऐसा है नहीं। समझ में आया? **एकान्त से यह माना जाये कि शुभाशुभभावरूप स्व-भाव में (-अपने भाव में)...** देखो! स्वभाव का अर्थ किया। अपना भाव है न वह विकारी परिणाम जब तक द्रव्य का अनुभव हुआ नहीं और संसार का अभाव किया नहीं, जब तक शुभाशुभ का परिणमन उसकी पर्याय में अपने अपराध से होता है। समझ में आया?

स्वभाव में (-अपने भाव में) आत्मा स्वयं परिणमित नहीं होता,... देखो! स्वभाव में और स्वयं परिणमित नहीं होता। अपने भाव में अपने से परिणमित नहीं होता। अपने भाव में कर्म से परिणमित होता हो, ऐसा भी नहीं और अपने भाव में विकाररूप परिणमन करता नहीं, ऐसा भी नहीं। पर से शुभाशुभ परिणमन करता है ऐसा भी नहीं और शुभाशुभ अपने से परिणमता नहीं ऐसा भी नहीं। आहाहा! समझ में

आया? **यदि एकान्त से यह माना जाये कि शुभाशुभभावरूप स्वभाव में (-अपने भाव में) आत्मा स्वयं परिणमित नहीं होता,...** अपने से पर्याय में शुभाशुभ पुण्य-पापरूप भाव होता नहीं। **तो यह सिद्ध हुआ कि (वह) सदा ही सर्वथा...** सदा ही और सर्वथा **निर्विघात शुद्धस्वभाव से ही अवस्थित है;...** सदा ही और सर्वथा निर्विघात। द्रव्यरूप अशुद्ध नहीं है। द्रव्यरूप अशुद्ध नहीं है, परन्तु पर्यायरूप ... इसलिए सर्वथा शब्द लिया है, देखो! **सदा ही सर्वथा निर्विघात शुद्धस्वभाव से ही अवस्थित है...** ऐसा हो जायेगा। सदा और सर्वथा। तीनों काल और अपनी पर्याय में शुभाशुभभाव नहीं है, ऐसा हो जायेगा। नहीं होगा तब तो मोक्ष होगा।

और इस प्रकार समस्त जीवसमूह, समस्त बन्धकारणों से रहित... देखो! एकेन्द्रिय से (लेकर) सब। **इस प्रकार समस्त जीवसमूह...** एकेन्द्रिय निगोद से (लेकर) सब **समस्त बन्धकारणों से रहित...** बन्ध के कारण मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और योग, वह बन्ध के कारण हैं, उससे रहित हो जायेगा। पर्याय में शुभाशुभरूप परिणमन न हो तो बन्ध के कारण से रहित हो जायेगा। **संसार अभावरूप स्वभाव के कारण...** वह तो संसार के अभावरूप हो गया। **कारण नित्यमुक्तता को प्राप्त हो जायेंगे अर्थात् नित्यमुक्त सिद्ध होवेंगे।** वह अन्यमति कहते हैं न? आत्मा नित्यमुक्त है। सदा नित्यमुक्त है। उसकी पर्याय से नहीं, द्रव्य से सदा नित्यमुक्त है। अस्तिरूप तो मुक्त त्रिकाल है, परन्तु पर्याय से भी नित्य सदा मुक्त है नहीं। झूठ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? द्रव्य तो मुक्त ही है। वस्तु में बन्ध का अभाव ऐसा कहाँ से आया? वस्तु तो वस्तु है। बन्ध की पर्याय और पर का व्यय, उत्पाद-व्यय, वह तो पर्याय में है, उसमें (वस्तु में) तो है ही नहीं। समझ में आया? तो कहते हैं, पर्याय में भी जो बन्धभाव न हो तो बन्ध के अभावरूप मोक्ष हो जायेगा, संसार का अभाव (होकर) शुद्ध हो जायेगा। ऐसा है नहीं। समझ में आया?

किन्तु ऐसा स्वीकार नहीं किया जा सकता... परन्तु ऐसा स्वीकार हो सकता नहीं। प्रत्यक्ष देखते हैं। जीव द्रव्यस्वभाव से नित्य मुक्त होने पर भी शुभाशुभ परिणामरूप परिणमता हो-होता है, ऐसा दिखता है। दिखता है, ऐसा कहते हैं, देखो! ज्ञानचन्दजी! कोई कहे कि आत्मा तो आस्रवतत्त्व और अजीवतत्त्व से भिन्न है। यहाँ तो आस्रवतत्त्व

उसके परिणमन में है, वह सिद्ध करना है। आस्रवतत्त्व भी उसकी पर्याय में है, वह सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा! वह पुण्य-पाप का परिणमन कोई कर्म से हुआ या उसकी पर्याय में है ही नहीं, ऐसा नहीं बताना है। समझ में आया?

किन्तु ऐसा स्वीकार नहीं किया जा सकता; क्योंकि आत्मा परिणामधर्मवाला होने से,... देखो! यह सिद्ध करना है। यह सिद्ध करना है। परिणामधर्मवाला होने से... पलटना, परिणमना, बदलना, ऐसा उसका स्वभाव है। बदलना, उसकी पर्याय में बदलना उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? विकाररूप से न परिणमे, उसका स्वरूप तो द्रव्यस्वभाव है। परन्तु पर्यायस्वभाव में परिणमना, विकाररूप परिणमना, उसका स्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? यह कारण दिया है। समझे? **आत्मा परिणाम-धर्मवाला होने से,...** परिणाम परिणमना उसका धर्म है, पलटन होना, पर्याय में पलटन होना, परिणमना—ऐसा आत्मा का पर्यायधर्म है, पर्यायधर्म है। लो, विकाररूप होना वह पर्याय-परिणामधर्म है। आहाहा!

जैसे स्फटिकमणि, जपाकुसुम और तमालपुष्प के रंग-रूप स्वभावयुक्तता से प्रकाशित होता है... स्फटिकमणि को जपापुष्प लाल और तमालपुष्प काला ऐसा रंग-रूप दो, काला और लाल। स्फटिकमणि है परन्तु काला और लाल फूल है उसके समीप में उसका परिणमन स्फटिक में लाल और काला की झांई अपने में अपने से होती है। स्फटिकमणि में उसकी वर्तमान पर्याय में काला और लाल पुष्प निमित्त है, परन्तु वह निमित्त होने पर भी परिणमन अपना है काला-लाल का, नहीं कि फूल का है। समझ में आया? **स्फटिकमणि, जपाकुसुम...** फूल। **और तमालपुष्प के रंग-रूप स्वभावयुक्तता से प्रकाशित...** ऐसे स्वभावसहित स्फटिकमणि प्रकाशित होती है। समझ में आया? वह पर्याय का उसका धर्म है। स्फटिक का पर्याय का उसका धर्म है। लकड़ी में लो। यह लकड़ी है लो। इसमें कुछ झांई पड़ी। उसका पर्यायधर्म नहीं। समझ में आया? स्फटिक में, काला और लाल फूल है तो काले और लाल फूल की झांई होती है, ऐसा नहीं। समझ में आया? उससे हो तो उसमें होना चाहिए, देखो! लकड़ी में होना चाहिए। देखो! स्फटिकमणि का द्रव्यस्वभाव तो शुद्ध है। परन्तु पर्याय में अपने से स्वयं स्वभाव लाल, काला होने का अपने से है। तब फूल को निमित्त कहने में आता है। आहाहा!

आपकी वह गाथा कहाँ गयी ? ७८। स्फटिकमणि अपने स्वभाव से नहीं परिणमन करते हैं, परद्रव्य से परिणमन करता है। लालफूल। २७८। यहाँ तो कहते हैं कि द्रव्यस्वभाव, द्रव्यस्वभाव अपने से लाल फूल (रूप) नहीं होता द्रव्यस्वभाव से। द्रव्यदृष्टिकार और द्रव्यस्वभाव, वह अपने से राग-द्वेषरूप नहीं होता। वह लाल निमित्त के आधीन पर के वश होकर राग-द्वेषादि होता है, ऐसा बताना है। समझ में आया ? वह भी चर्चा होती थी न (संवत्) २००६ के वर्ष में। ... दशा है। देखो! लिखा है। देखो ... भाई का नाम नहीं आया। ... परद्रव्य चीज़ आत्मा ऐसा स्फटिक भी परद्रव्य से है। परद्रव्य से स्फटिक लाल होता है। आत्मा भी राग-द्वेष करता है, परद्रव्य से करता है। ऐई! आहाहा! सुन तो सही, भगवान! यह तो उसका स्वभाव द्रव्यस्वभाव नहीं। द्रव्यस्वभाव, अपने से स्वभाव से राग-द्वेष हो जाये, ऐसा स्वभाव है नहीं। यह बताना है। यहाँ तो अपनी उसकी पर्याय की अपनी योग्यता से होता है, यह बताना है। आहाहा! गजब बात! यहाँ तो द्रव्यस्वभाव बताना है न, द्रव्यस्वभाव। द्रव्य अर्थात् आत्मा। आत्मा कहो, ज्ञानी कहो या द्रव्य कहो। यह अपने से द्रव्यस्वभाव से राग-द्वेष (रूप) परिणमता है ? वह तो पर्याय में राग-द्वेष होता है। द्रव्यस्वभाव से होता है ? समझ में आया ? अरे! भगवान! शास्त्र के अर्थ करने में भी कुटिलता है!

कहते हैं, **जैसे स्फटिकमणि, जपाकुसुम और तमालपुष्प रंग-रूप स्वभावयुक्तता से...** स्वभावयुक्तता, देखो! यह स्वभाव सहितता से **प्रकाशित होता है...** स्फटिकमणि लाल और काले स्वभाव से प्रकाशित होता है। समझ में आया ? स्फटिकमणि अपनी पर्याय में लाल और काली झांईं से अपने स्वभाव से प्रकाशित होता है। पर्याय स्वभाव लेना यहाँ। वहाँ द्रव्यस्वभाव लेना है। आहाहा! समझ में आया ? दृष्टान्त तो वही है। वहाँ भी है। स्फटिकमणि का। (समयसार) २७८ में। समझ में आया ? कहो, समझ में आया ? वहाँ द्रव्यस्वभाव लिया है। यह दृष्टान्त वहाँ लिया है। देखो! 'जैसे स्फटिमणि है शुद्ध, रक्तरूप से स्वयं नहीं परिणमे।' जेठाभाई! 'जैसे स्फटिकमणि है शुद्ध, रक्तरूप से स्वयं नहीं परिणमे, परन्तु अन्य जो रक्तादि द्रव्यों उन द्वारा रक्त बने। ऐम ज्ञानी पण...' ज्ञानी अर्थात् आत्मा। 'ऐम ज्ञानी पण शुद्ध रागरूपे स्वयं नहि परिणमे, परन्तु अन्य जे रागादि दोष उन द्वारा रागी बने।' कहो यह गाथा उसमें भी आयी है टेपरिकॉर्डिंग।

समझे ? ईसरी की। ईसरी की टेपरिकॉर्डिंग आयी है। देखो! उसमें लिखा है कि स्फटिकमणि अपने से लाल-काला नहीं होता है। आत्मा अपने से राग-द्वेष नहीं करता, कर्म से राग-द्वेष होता है। लो! सेठिया! ऐसा आया है। देखा है वह ? देखा है न वह ? उसमें से लिखा है। समझ में आया ? है न उसमें ? उसमें है। क्या है वह ? टेपरिकॉर्डिंग। यह कहा।

देखो! वह श्लोक दिया ... टेपरिकॉर्डिंग उतरा है १३ के वर्ष में। स्फटिकमणि, केवल स्फटिकमणि स्वयंशुद्ध है। रागादि वह रागरूप वह लाल परिणमन है स्वयं नहीं परिणमता है। देखो! स्वयं नहीं परिणमता। ... पर निमित्त ... स्फटिकमणि स्वयं रागादिरूप परिणमेगी, यह नहीं है। यह नहीं है। परिणमति स्वयं न परिणमति। इसका क्या अर्थ है ? पर के सम्बन्ध के बिना स्वयं नहीं परिणमति। समझ में आया ? परिणमति है पर उसके निमित्त बिना ... लम्बी बात कही है। उसमें यह लिया है। नहीं। समझ में आया ? आत्मा शुद्ध परिणामस्वभाव होने पर भी, स्वयं शुद्धस्वभाव होने पर भी स्वयं परद्रव्य निरपेक्ष... रागी क्रिया... अपने आप रागादिरूप नहीं होता। यह तो द्रव्य की दृष्टि, द्रव्यस्वभाव नहीं होता, ऐसा बताना है। समझ में आया ? यहाँ उसका पर्यायस्वभाव बताना है। अरे! भगवान! कहाँ का कहाँ ले जाये ? क्या करे ?

कहते हैं, देखो! वहाँ ऐसा लिया। स्फटिकमणि अपने से लाल और काली होती नहीं, उसी प्रकार आत्मा अपने से राग-द्वेष (रूप) होता नहीं। यहाँ कहते हैं कि स्फटिकमणि अपने से अपने स्वभाव से काला-लाल होता है। सेठिया! दोनों बात तो लेनी चाहिए या नहीं ? ... टेपरिकॉर्डिंग। समझ में आया ? आहाहा! भाई! वहाँ तो यह बताना है कि अपने संग से, अपने संग से क्या राग-द्वेष होता है ? वस्तु तो असंग चैतन्य राग-द्वेषरहित है। अपना स्वभाव-वस्तुस्वभाव से क्या राग-द्वेष होता है ? पर के निमित्त का संग करने से, परवश होने से राग-द्वेष होता है। स्फटिकमणि अपने द्रव्यस्वभाव से लाल-काली होती है ? उसके संग में आया तो लाल-काली होती है। यहाँ तो पर्याय सिद्ध करना है और वहाँ द्रव्य सिद्ध करना है। समझ में आया ? विवादित गाथा है यह। गाथा विवादित होती है ? आहाहा!

४५ में भी यह आया। ४६ में भी यह आया। सब विवाद-विवाद। अरे! भगवान!

विवाद नहीं है। सुन तो सही। यह चैतन्य भगवान आत्मा वस्तुस्वरूप से तो परमात्मा सच्चिदानन्द मूर्ति है, परन्तु पर्याय में यदि शुभाशुभ न हो तो संसार किसका? और स्वयं न परिणमे तो उसकी पर्याय किसकी? समझ में आया? पर को लेकर परिणमन करे तो उसकी पर्याय का काल अपनी योग्यता है या नहीं? आहाहा! समझ में आया? विवाद... विवाद... विवाद... ... क्या करे?

स्फटिकमणि जपाकुसुम और तमालपुष्प के रंग-रूप... देखो! रंग-रूप। **स्वभावयुक्तता से...** यह रंगरूप स्वभावयुक्तता से। रंगरूप स्वभाव के सहितपना से प्रकाशित होता है। देखो! समझ में आया? स्फटिकमणि लाल और काला रंगरूप अपने स्वभाव से प्रकाशित होती है, पर्याय में। **उसी प्रकार, उसे (आत्मा के) शुभाशुभ-स्वभावयुक्तता प्रकाशित होती है।** देखो! ऐसे भगवान आत्मा **उसी प्रकार (आत्मा के) शुभाशुभ-स्वभावयुक्तता प्रकाशित होती है।** देखो! समझ में आया? भगवान आत्मा भी अपनी पर्याय में शुभाशुभ स्वभावसहितपना... शुभाशुभ पर्याय। उसके स्वभावसहितपने प्रकाशित पर्याय होती है। उससे होती है। विकाररूप से प्रकाशित होती है और पर के कारण से प्रकाशित होती है, ऐसा नहीं। देखो! यह प्रवचनसार। मूलचन्दभाई! यह ... है। बहुत कठिन। वादविवाद। समझ में आया?

शुभाशुभ-स्वभावयुक्तता... स्वभावयुक्तता, स्वभावसहिततासहित पर्याय प्रकाशित होती है। समझ में आया? पर से नहीं और विकारी पर्यायसहित युक्तता नहीं, ऐसा भी नहीं। **(जैसे स्फटिकमणि लाल और काले...)** देखो! दो रंग कहा न? पुण्य-पाप बताना है न शुभ-अशुभभाव? **लाल और काले फूल के निमित्त से लाल और काले स्वभाव में परिणमित दिखाई देता है...** देखो, निमित्त से दिखाई देता है। परन्तु निमित्त से दिखाई देता है, उसका अर्थ नैमित्तिकपने में ऐसा परिणमन से दिखाई देता है। ऐसा कहते हैं। अरे! भगवान! समय-समय में विवाद। ऐई! वजुभाई! यह तुम्हारे ... विवाद, यहाँ इसमें विवाद। देखो! निमित्त से लिखा है। **निमित्त से लाल और काले...** यह तो निमित्त है, तो निमित्त, नैमित्तिक की प्रसिद्धि करता है। निमित्त, नैमित्तिक की प्रसिद्धि करता है। निमित्त से नैमित्तिक होता है, ऐसा नहीं। प्रसिद्ध करता है कि लाल फूल आदि है तो लाल आदि परिणमनरूप वहाँ पर्यायवाला जीव है बस, इतना। स्फटिकमणि में

लाल फूल है तो स्फटिक वहाँ लालरूप से परिणमा है, ऐसा प्रश्न करते हैं। ऐसे कर्म का निमित्त है। देखो यहाँ।

उसी प्रकार आत्मा कर्मोपाधि के निमित्त से... देखो! कर्म का निमित्त है, यह तो निमित्त ऐसे बताता है कि वहाँ उपाधिरूप परिणमनवाला पर्यायवाला जीव है। ऐसी बात है। ऐसी बात है। वस्तु तो ऐसी है। **शुभाशुभ स्वभावरूप परिणमित होता हुआ दिखाई देता है।** अपनी पर्याय में शुभाशुभ है, उसका आश्रय छोड़ो, रुचि छोड़ो और स्वभाव की दृष्टि करो, वह बताना है। उसका तात्पर्य बताना वह है। परिणमन तुझे है, शुभाशुभ है। तुझसे है। यह दृष्टि छोड़ दे, द्रव्य की दृष्टि कर। वस्तु की दृष्टि कर, तेरे उसमें शुभाशुभ है नहीं। तेरा परिणमन शुभाशुभ नहीं रहेगा तो शुद्ध परिणमन होगा और शुद्ध परिणमन है, वह धर्म है, मोक्ष का मार्ग है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ९, मंगलवार, दिनांक १५-१०-१९६८
गाथा - ४६-४७, प्रवचन - ३७

यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार, प्रवचनसार। इसकी ४६वीं गाथा का भावार्थ है।

जैसे शुद्धनय से कोई जीव शुभाशुभ भावरूप परिणमित नहीं होता,... क्या कहते हैं? यह जीव जो है जीव—आत्मा, वह शुद्धनय से अर्थात् निश्चयदृष्टि से वस्तु देखो तो वह आत्मा स्वयं वस्तु शुभाशुभभाव से परिणमती नहीं। द्रव्य-द्रव्य त्रिकाली द्रव्य। शुद्धनय से वस्तु देखे—पदार्थ से देखे तो वस्तु शुभाशुभ (रूप से) परिणमती नहीं। यह तो आ गया अपने समयसार में भी, छठवीं गाथा में। वही यहाँ कहते हैं। द्रव्य जो चैतन्य तत्त्व है, सत् है, शाश्वत् है, जिसका ध्रुवपना स्वरूप है, वह वस्तु स्वयं, वस्तु स्वयं शुभ और अशुभ, पुण्य और पापरूप से कहीं वस्तु परिणमती नहीं। **उसी प्रकार यदि अशुद्धनय से भी परिणमित न होता हो...** वैसे पर्याय में—अवस्था में अशुद्धनय से वर्तमान में विकारपने पर्याय में न होता हो तो संसार किसका? समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है। पर्याय में है, उसकी बात चलती है न यहाँ तो। पर्याय में संसार है, तब दुःखी है न? संसार—संसरण इति संसार। वस्तु की स्थिति से हटकर पर्याय में—अवस्था में पुण्य और पाप वे मेरे, ऐसा मिथ्यात्वभाव और पुण्य-पापरूप वह होता है, इसलिए उसे अवस्था में—पर्याय में संसार है। संसार कर्म में नहीं, संसार कर्म के कारण नहीं, संसार द्रव्य में नहीं। समझ में आया? वस्तु है द्रव्य—वस्तु, उसमें संसार नहीं, संसार कर्म में नहीं, संसार कर्म के कारण से नहीं, संसार उसकी पर्याय में अशुद्धनय से देखने से व्यवहार से भेदरूप संसार की दशा आत्मा की पर्याय में है। समझ में आया? न हो तो फिर उसे आनन्द चाहिए।

आत्मा आनन्दस्वरूप है, वस्तु तो आनन्द है। अतीन्द्रिय आनन्द का रस आत्मा है। उस अतीन्द्रिय आनन्द का रस आत्मा है, ऐसा ही यदि पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द

होवे तो दु:ख क्या? तो संसार किसका? संसार अन्दर पर्याय में है, यह वस्तुस्थिति है। यदि आनन्द हो तो संसार न हो, परन्तु वह तो है नहीं। पर्याय में आनन्द नहीं, वस्तु में आनन्द है। समझ में आया? पर्याय में दु:ख है, वस्तु में सुख है। हिम्मतभाई! आहाहा! वस्तु भगवान आत्मा पदार्थरूप से आनन्दस्वरूप है। ऐसा उसकी पर्याय में भी यदि आनन्द हो तो दु:ख किसका? राग और द्वेष, पुण्य और पाप, संकल्प और विकल्प और वह मैं, ऐसी भ्रान्ति, वह सब आत्मा की पर्याय में—अवस्था में—हालत में है। समझ में आया?

व्यवहारनय से भी समस्त जीवों के संसार का अभाव हो जाये... ऐसा। शुद्धनय से तो संसार का अभाव है ही द्रव्य में, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वस्तु में तो संसार नहीं। वस्तु में संसार हो, तब तो वस्तु विकारमय हो गयी। (परन्तु) वस्तु ऐसी हो सकती ही नहीं। सत् चिदानन्दस्वरूप वस्तु है, उसमें संसार नहीं। उसमें नहीं तो उसकी पर्याय में व्यवहार से संसार नहीं होता, ऐसा कैसे बने? निश्चय में संसार नहीं। संसार किसे कहना, समझ में आया? यह स्त्री-पुत्र, पैसा, परिवार, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति, धन्धा, वह संसार नहीं। वह तो परवस्तु है, वह संसार नहीं। तथा वस्तु द्रव्यस्वरूप है, उसमें संसार नहीं। संसार उसकी पर्याय में मिथ्यात्व और राग-द्वेष का भाव, वह संसार है। पैसा कहीं... क्या कहलाता है तुम्हारे सब? कारखाना, पावर हाऊस। पावर हाऊस संसार नहीं। वह तो पुद्गल की पर्याय है। कहो, सौभागभाई! तुम्हारे पैसा-बैसा वह करोड़ रुपये का बँगला, वह संसार नहीं। वह तो जड़ की पर्याय है। जड़ की पर्याय में संसार कैसा? स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब-कबीला, मकान, कीर्ति, उसमें संसार नहीं। वह तो परवस्तु जड़ की पर्याय, और चैतन्य की पर्याय दूसरे आत्मा हो तो।

संसार जैसा आत्मा में—द्रव्य में नहीं, शुद्धनय से नहीं, ऐसा यदि पर्याय में (भी) न हो तो व्यवहार से संसार का अभाव होने से उसे मोक्ष ही पर्याय में होना चाहिए। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! यह हीराभाई संसार नहीं, ऐसा कहते हैं। पर्याय में, यह मेरा और मैं इसका, ऐसी मान्यता खड़ी की, वह संसार है। बाबूभाई! सुमनभाई संसार नहीं। ऐई! धर्मचन्दभाई! पुत्र-पुत्री, बड़ी दुकान चले डॉक्टर की—उसमें संसार वहाँ होगा या नहीं आत्मा का? आत्मा का संसार वहाँ होगा? यही कहते

हैं यहाँ कि जैसे परमात्मा सर्वज्ञ को कर्म का उदय होने पर भी उन्हें मोह नहीं, इसलिए उन्हें बन्ध नहीं, उसी प्रकार संसारी प्राणी को कर्म का उदय है और उसे मोह नहीं, ऐसा नहीं है। मोह है, इसलिए उसे बन्ध का कारण होता है। समझ में आया?

जो अशुद्धनय से... भी। भाषा कैसी ली है? कि **शुद्धनय से कोई जीव शुभाशुभ भावरूप परिणमित नहीं होता,...** अर्थात् कि वस्तुस्वरूप दृष्टि से देखने पर तो वस्तु स्वयं संसार की अवस्थारूप नहीं, परन्तु अशुद्धनय से। ऐसा क्यों लिया? कि पर्याय में अशुद्धनय से परिणमित है। अशुद्धनय से विकार, पुण्य-पाप, काम-क्रोध आदि शुभाशुभभाव, मिथ्यात्व, वह मेरा—ऐसा संकल्प-विकल्प की भूमिका वह अशुद्धनय से उसकी पर्याय में है, उसकी दशा में है। **अशुद्धनय से भी परिणमित न होता हो तो व्यवहारनय से भी समस्त जीवों के संसार का अभाव हो जाये...** जैसे शुद्धनय से संसार नहीं, वैसे पर्याय में अशुद्धपना न हो तो व्यवहारनय से भी उसे पर्याय में संसार सम्भव नहीं।

और सभी जीव सदा मुक्त ही सिद्ध हो जावें! तो सब जीव मुक्त ही सिद्ध हों। सब मुक्त ही हों। **किन्तु यह तो प्रत्यक्ष विरुद्ध है।** संकल्प-विकल्प होता है, राग होता है, उसे राग मेरा, यह मेरे—ऐसी भ्रान्ति होती है। पर में सुख है, ऐसी भ्रान्ति होती है। पैसे में, लक्ष्मी में, शरीर में, हड्डियों में, माँस में, सुन्दरता—रूप में मुझे ठीक पड़ता है, ऐसा भाव दिखता है, वह मिथ्यात्वभाव, वह संसार है। समझ में आया? अधिक लड़के हों, उसे अधिक संसार और लड़के न हों, उसे थोड़ा संसार, ऐसा होगा या नहीं? लालचन्दजी! तुम्हारे तो लड़के-बड़के नहीं तो संसार थोड़ा। सेठिया को पाँच लड़के और लड़के के लड़के तो बड़ा संसार, ऐसा होगा? संसार का माप ऐसा होगा? लड़के किसके परन्तु? वे तो आत्मा हैं। इस आत्मा ने उसके आत्मा को उपजाया है? वह तो आत्मा जगत की चीज़ है और यह शरीर है, वह रजकण है। दोनों चीज़ें स्वतन्त्र हैं। उसमें आत्मा का यह आत्मा, और इस आत्मा का यह शरीर, वह आया कहाँ से? समझ में आया?

बाहर की संख्या के ऊपर संसार की घट-बढ़ नहीं कि भाई! बहुत लक्ष्मी, बहुत बड़ा शरीर स्थूल... हाथी का बड़ा होता है। मछली का एक हजार योजन होता है।

मच्छ का एक हजार योजन स्वयंभूरमण समुद्र। तो शरीर बहुत बड़ा अथवा विशाल बँगला हो जिसे, बहुत पैसे हों, फैलाव बड़ा हो, पाँच, दस, पच्चीस करोड़ रुपये हों और ऐसे सब फैलाव... फैलाव... फैलाव... बाग और बगीचा और ओहोहो! पाँच-पाँच मील में बाग और फलाना। कोई कहता नहीं था? अफ्रीका में या जापान में कोई राजा है। कितने मील में उसका मकान रहने का, उसी और उसी में घूमने का। ऐसा कोई कहता था। अपने सुना हुआ है। जापान का राजा, कोई कहता था। बहुत बादशाही। तो वह सब बादशाही, वह संसार होगा? वे मेरे हैं और मुझे उसके कारण से ठीक पड़ता है, ऐसा जो भाव—मिथ्यात्वभाव और उसके कारण से होती इष्ट-अनिष्ट में राग-द्वेष की वृत्ति, वह संसार। कहो, शान्तिभाई! कहो अब, यह संसार समझे बिना संसार छोड़कर बैठे बाहर के स्त्री और पुत्र। भाई छोड़ने को तैयार हो गये थे, सुना था? शान्तिभाई नग्न मुनि होनेवाले थे, दिगम्बर मुनि। दिल्ली। और (यहाँ का) सुना और रह गये। यह बैठे हैं न, सुमनभाई बैठे हैं साथ में, वे। दिगम्बर मुनि, हों! स्त्री है, पुत्र है। स्त्री ने भी तुमको आज्ञा कैसे दी उसने? जवान स्त्री है। मकान बनाया। ... परन्तु क्या करे? कहते हैं। उससे पूछा था, महिला आयी थी न। क्या करें? उस समय एकदम इनका भाव हो गया था तो आज्ञा दी। और यह सुना कि साधुपना ऐसा नहीं होता, बापू! जहाँ अभी राग से भिन्न पड़ा आत्मा, वह क्या चीज़ है, उसके भान बिना कहाँ स्थिर होना, इसकी खबर नहीं होती। उसमें स्थिर होना अर्थात् चारित्र। परन्तु कहाँ स्थिर होना और कहाँ से हटना?

भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति राग से पृथक् और भिन्न। शरीर से तो भिन्न प्रत्यक्ष है। वह तो सब छोड़कर चले जाते हैं, खबर नहीं? ऐं... ऐं... करते सब (जाते हैं)। चाहे जैसा रूपवान शरीर हो, कीड़ें पड़ें, जीवांत पड़े, यह पड़े, स्त्री-पुत्र पड़े रहें और भाग जाये, कहो, यह वस्तु कहीं इसकी है वह रहेगी? समझ में आया? एक नहीं कहा था? एक डॉक्टर था अहमदाबाद में। जवान पुत्र मर गया। जवान पुत्र मर गया। उसकी माँ उसे अर्थी में बाँधने नहीं दे। ठाठडी समझते हो? अर्थी बाँधने दे नहीं और रो... रो... रो... करे। परन्तु मर गया अब उसे अपने क्या करना? तब कहे अपने रखना है? सन्दूक बनाकर, कहो, लकड़ी की और उसमें रखें, तुझे जलाने न देना

हो तो। वह देरी होती है सब लोगों को। तो कहे नहीं... नहीं... नहीं। ले, जलाने देना नहीं और लकड़ी की पेटी बनाकर रखना नहीं। तब क्या करना है परन्तु तुझे ? धर्मचन्दजी! क्या है परन्तु तुझे यह ? यह देरी होती है सब आये हैं। वह लड़का मर गया, सब आये सगे-सम्बन्धी। अब तू बाँधने देती नहीं। अब तुझे क्या करना है ? अपने सन्दूक बनाकर रखें इसे ? सौभागभाई! भाईसाहेब! यह नहीं।

अब उसमें लड़का आया मौके से। वह इसमें नहीं आया। परन्तु दूसरी एक बात है। वहाँ तो इतनी बात थी अहमदाबाद में इतनी हुई। अन्यत्र तो लड़का मर गया जवान मनुष्य पच्चीस वर्ष का। उसमें अन्त में ऐसा कहा। आहाहा! यह स्थिति, दशा, यह सब छोड़कर। वैराग्य हो गया, थोड़े परिणाम। भूत हो गया भूत, मरकर भूत हुआ। उसके माता-पिता रोते थे, (वहाँ) आया। किसलिए रोते हो ? कहे, मेरा पुत्र (मर गया)। वह यह मैं हूँ वह। यह मैं तुम्हारा पुत्र। देखो, यह मुझे अन्तिम परिणाम, तुम अभी बाँधते नहीं, वहाँ मुझे परिणाम मेरे अच्छे थे तो मैं व्यन्तरदेव हुआ हूँ। कहो तो मैं पच्चीस वर्ष रहूँ। तुम रोओ नहीं। भाईसाहेब! तुम व्यन्तर होकर यहाँ रहो तो हमको डर लगे तो ? तो क्या करना है तुझे ? जलाना पोसाता नहीं, रखना पोसाता नहीं, जीव आवे तो कहे हमको शंका पड़े। अब करना क्या है परन्तु तुझे ? ऐई! न्यालभाई! ऐसे के ऐसे भूतड़े हैं सब। ऐई! धर्मचन्दभाई! वह कहे कि तो मैं रहूँ। तुम्हारी उम्र ५० वर्ष की हुई है। तो ३० वर्ष तक मैं रहूँ। कहो, स्त्री के पास रहूँ... परन्तु हूँ मैं ... हों! मनुष्य नहीं अब। भाईसाहेब! हमको पूरे दिन वहम पड़ जाये कि यह तो व्यन्तर है-व्यन्तर है। ऐई! सुमनभाई! पुत्र होकर आवे आत्मा तो भी रखना नहीं, मरकर यहाँ से गया तो शरीर को जलाना नहीं, गया तो शरीर को रखना नहीं, वह आवे तो रखना नहीं। करना क्या है परन्तु तुझे अब ? सौभागभाई! ऐसी दुनिया भी पागल।

कहते हैं, यह संसार इसकी दशा में है। पर में नहीं, पर के कारण नहीं और संसार नहीं पर्याय में, ऐसा (भी) नहीं। संसार नहीं द्रव्य में। वस्तुस्वरूप भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति प्रभु द्रव्य, वस्तु सत् द्रव्य-पदार्थ, उसमें संसार नहीं। तथा संसार नहीं बाहर में। यह शरीर संसार नहीं, कर्म संसार नहीं, वाणी संसार नहीं, वह तो अजीवतत्त्व है। संसार तो उसे कहते हैं कि अशुद्धरूप से परिणमना, मिथ्यात्व श्रद्धारूप से और

राग-द्वेषरूप से होना, वह संसार है। यदि वह अशुद्धनय से संसार न हो तो व्यवहार से भी संसार का अभाव हो तो जीव सदा मुक्त ही सिद्ध हो।

प्रत्यक्ष विरुद्ध है। इसलिए जैसे केवलीभगवान के शुभाशुभ परिणामों का अभाव है,... जैसे केवली भगवान को कर्म का उदय अघाति का होने पर भी शुभाशुभ पुण्य-पाप के भाव का, मोह का अभाव है। **उसी प्रकार सभी जीवों के सर्वथा शुभाशुभ परिणामों का अभाव नहीं समझना चाहिए।** उसी प्रकार सर्व जीवों को सर्वथा अर्थात्? सर्वथा क्यों लिया? कि द्रव्य में नहीं, परन्तु पर्याय में है। संसार नहीं, शुभाशुभ नहीं, सर्वथा नहीं। द्रव्य में नहीं, पर्याय में है। समझ में आया? **सभी जीवों के सर्वथा शुभाशुभ परिणामों का अभाव नहीं समझना चाहिए।** कहो, समझ में आया? लो, यह ४६ गाथा पूरी हुई।

अब वापस विषय चालू है, वह लेते हैं। चालू विषय सर्वज्ञ है। सर्वज्ञ एक समय में एक समय का ज्ञान... भगवान आत्मा में पड़ा है सर्वज्ञपना, शक्तिरूप, सत्त्वरूप चैतन्यबिम्ब का अनुभव करके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूप की स्थिरतारूप साम्य चारित्र। समझ में आया? शुद्धस्वरूप की वस्तु है, उसकी दृष्टि, उसका ज्ञान और उसकी रमणता, उसके कारण आत्मा की पर्याय में सर्वज्ञपद प्रगट होता है। उस सर्वज्ञपद का कितना सामर्थ्य है, यह बताते हैं। एक समय में एक ज्ञान की पर्याय... समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ४७

अब, पुनः प्रकृतः का (चालू विषय का).... चलता विषय सर्वज्ञ का। जो आत्मा के शुद्धभाव से, शुद्ध उपयोग से प्राप्त होता फल आत्मा में केवलज्ञान, उसकी बात चलती थी, यह बीच में थोड़ी दो गाथायें रखकर ४५-४६-४४। भाई! वीतराग को हिलना, चलना, बोलना किस प्रकार से है? कि वह तो सहज बादल जैसे परिणमते हैं, वैसे चलना है। भगवान को कहीं उसका बन्ध है नहीं। भगवान को उसका फल है नहीं, आत्मा में फल नहीं, वह तो संयोग में फल है। यह **प्रकृतः का अनुसरण करके**

अतीन्द्रिय ज्ञान को सर्वज्ञरूप से अभिनन्दन करते हैं। देखो! **(अर्थात् अतीन्द्रिय ज्ञान सबका ज्ञाता है, ऐसी उसकी प्रशंसा करते हैं) :-** ओहोहो! यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि उसका स्वभाव ही जानना है। राग करना या पर को अपना मानना या पर का कुछ करना, राग करना या पर को अपना मानना या पर का कुछ करना, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं। जानना उसके स्वरूप में है। यह जानना... जानना... जानना... ऐसा अनुभव होने पर पर्याय में जानना पूरा प्रगट हो जाता है। ऐसा जिसे विश्वास सर्वज्ञ पर्याय का आवे, उसे अन्तर्दृष्टि होकर आत्मा सम्यग्दर्शन पाये बिना रहता नहीं, ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया? ऐसी उसकी प्रशंसा करते हैं। देखो! ४७ (गाथा)।

जं तक्कालियमिदरं जाणदि जुगवं समंतदो सव्वं।
अत्थं विचित्तविसमं तं णाणं खाइयं भणियं॥४७॥

लो, यह तो आया न इसमें। यह तो प्रवचनसार है।

जो सर्वात्म-प्रदेशों द्वारा, युगपत् वर्तमान या अन्य।
विषम विचित्र सभी द्रव्यों को, जाने वह ही क्षायिकज्ञान॥४७॥

देखो, शब्द है न? **'अत्थं विचित्तविसमं'।**

जो आत्मा शुद्ध चारित्र की परिणति प्रगट करने से उसके फल में ऐसा केवलज्ञान होता है, वह तीन काल-तीन लोक को युगपद् एक समय में सब पदार्थों को विचित्रता को और विषमता को, विचित्रता अनेक प्रकार और विषमता अर्थात् चैतन्य-अचैतन्य विरुद्धभाव आदि को, सबको भगवान आत्मा का ज्ञान एक समय में पूर्ण जानता है। ऐसा ही उसका स्वभाव है।

अन्वयार्थ :- जो ज्ञान युगपद्... एक साथ। युगपद्-एकसाथ **सर्वतः (सर्व आत्मप्रदेशों से)** आत्मा के असंख्य प्रदेश सर्व प्रदेशों से। अल्पज्ञ दशा में अमुक प्रदेशों से जानने का होता है। सर्वज्ञ में असंख्य प्रदेश से जानने का होता है। आत्मा असंख्यप्रदेशी है, उसके असंख्य प्रदेश से जानने का होता है। **तात्कालिक...** वर्तमान को जाने। भगवान सर्वज्ञ का ज्ञान वर्तमान पर्याय को जाने, ऐसी **अतात्कालिक... 'इतरं'** भूत और भविष्य अतात्कालिक—वर्तमान में नहीं, उसे भी जाने। समझ में आया? **तात्कालिक**

और अतात्कालिक... अतात्कालिक अर्थात् भूत और भविष्य। अर्थात् विगत काल और भविष्य काल, उसे अतात्कालिक कहा जाता है। उसे जाने।

विचित्र (अनेक प्रकार के)... पदार्थों को जाने। अनेक प्रकार। कोई निगोद, कोई पंचेन्द्रिय, कोई एकेन्द्रिय, कोई परमाणु। कोई अनेक प्रकार, ऐसे लेना है यहाँ। एक सिद्ध, एक निगोद, एक अभव्य, एक भव्य—ऐसे अनेक प्रकार को, सर्वज्ञ की पर्याय परमात्मा हुए ज्ञान का इतना सामर्थ्य है कि अनेक प्रकार को जाने। **और विषम (मूर्त, अमूर्त आदि असमान जाति के)...** एक जाति के नहीं। चेतन और अचेतन, मूर्त और अमूर्त एक जाति नहीं, असमान जाति हुई। मूर्त अर्थात् रूपी, उससे अमूर्त असमान जाति हुई। चेतन के सामने अचेतन असमान जाति हुई। एक जाति रही नहीं। तो असमान जाति को भी भगवान का ज्ञान एक समय में जाने। देखो! केवलज्ञान को कितना वर्णन किया है! यह आत्मा की शक्ति ही इतनी है और इतना ही आत्मा हो, तब उसे पूरा ज्ञान कहा जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **'सर्वं अर्थं' समस्त पदार्थों को जानता है, उस ज्ञान को क्षायिक कहा है।** लो!

इसकी टीका। इसका विस्तार करते हैं। आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव तो पड़ा ही है। प्राप्त की प्राप्ति हो, कहीं बाहर से आता नहीं। सब आत्मायें सर्वज्ञ—सूर्य ही है जगत में। अनन्त आत्मायें अभव्य हों या भव्य हों, सभी आत्मायें अनन्त संख्या में हैं, सब सर्वज्ञ-सूर्य शक्तिरूप ही है। सर्वज्ञ। सर्वज्ञ अर्थात् अकेला ज्ञान का पूर, ज्ञान के नूर का तेज भरा हुआ है। पर्याय में अन्तर है, उसका प्रश्न अभी नहीं। जितने... यहाँ अनन्त हैं। यहाँ एक अंगुल की असंख्य भाग की जगह में लें तो अनन्त आत्मा निगोद के यहाँ हैं। परन्तु वे सब आत्मा चैतन्यसूर्यवाले हैं। उनका द्रव्यस्वरूप—तत्त्वस्वरूप—ध्रुवस्वरूप, चैतन्य प्रकाश की मूर्ति है। समझ में आया? ओहो! ऐसा चौदह राजुलोक, चैतन्यसूर्य के स्वभाव के सत् के सत्त्व से भरपूर पूरा लोक है। सत् का सत्त्व अर्थात् समझ में आया?

वस्तु चैतन्य सत् है न, उसका सत्त्व चैतन्य का सम्पूर्ण वस्तु का पूर ऐसा उसका स्वरूप है। ऐसे अनन्त आत्मायें अकेले चैतन्य के सूर्य से भरपूर परिपूर्ण प्रभु है। ऐसे अनन्त आत्मा को भी ज्ञान की एक समय की पर्याय जानती है। उसमें द्रव्य को जाने और उसमें से प्रगट हुई सर्वज्ञपर्याय हो, ऐसे जीव हैं। एक अल्पज्ञ पर्यायवाले निगोद के

जीव हैं पर्याय में और वह तो द्रव्य में कहे समान। अब पर्याय में एक निगोद के जीव अक्षर के अनन्तवें भाग में उघाड़वाले और एक पर्याय में सर्वज्ञ हुए, उन सबको सर्वज्ञ का ज्ञान जाने। आहाहा! समझ में आया?

कहते हैं कि **क्षायिक ज्ञान...** देखो! क्षायिक ज्ञान कहा। आहाहा! वह पारिणामिक ज्ञानस्वरूप त्रिकाल था। वस्तुस्वरूप रूप से पारिणामिक ज्ञानस्वभाव जो था त्रिकाल सर्वज्ञस्वभाव, सर्वदर्शीस्वभाव, वह पारिणामिकभाव से स्वभाव त्रिकाल था। उसकी पर्याय में क्षायिक ज्ञान प्रगट हुआ। पर्याय में पूर्ण ज्ञान प्रगट हुआ। उसे यहाँ क्षायिक ज्ञान कहते हैं। केवलज्ञान पारिणामिकभाव से नहीं, केवलज्ञान क्षायिकभाव से है। समझ में आया? वह उदयभाव से नहीं, वह उपशमभाव से नहीं, वह क्षयोपशमभाव से नहीं। केवलज्ञान क्षायिकभाव से है। भगवान केवली को तीन भाव होते हैं। एक वस्तुरूप का पारिणामिकभाव, ज्ञान-दर्शन-आनन्द का क्षायिकभाव और एक कर्म के असिद्धपने का उदय जरा है, उतना उदयभाव। परन्तु ज्ञान है, वह उदय नहीं, भाव प्रगट हुआ वह उदय नहीं, तथा वह पारिणामिक नहीं, प्रगट हुआ क्षायिक है। समझ में आया?

वस्तुस्वरूप जो चैतन्य भगवान आत्मा... कहाँ लोगों को अपनी सत्ता कितनी है और कैसी है, (उसकी खबर है)? और वह अनन्त-अनन्त केवलियों को जाने, ऐसी सत्ता उसकी है। वह कहीं परमाणु और कोई आत्मा का करना, ऐसी उसकी सत्ता में नहीं। परन्तु सबको कम ज्ञानवाले को, पूर्ण ज्ञानवाले को, एक परमाणु एक गुणे परिणमा हो काला, हरा, उसे और अनन्तगुणे भी उसे—सबको जानने का आत्मा का स्वभाव है। ऐसा जो क्षायिक ज्ञान प्रगट हुआ... समझ में आया? क्षायिक, वह पर्याय में प्रगट हुआ क्षायिक है। वस्तुरूप से पारिणामिकभाव से तो त्रिकाल था। ऐसा जो क्षायिकज्ञान तेरहवें गुणस्थान में प्रगटे, वह **वास्तव में एक समय में ही...** वास्तव में युगपद् एक साथ ही **सर्वतः (सर्व आत्मप्रदेशों से)...** असंख्य प्रदेश खिल गये हैं। भगवान की असंख्य प्रदेश की भूमि केवलज्ञान की पर्याय से खिल गयी है। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया?

एक परमाणु एक पॉईन्ट है यह रजकण अन्तिम, वह परमाणु रखे, उतनी जगह

के भाग को प्रदेश कहते हैं। ऐसे प्र-देश—पूरी चीज़ का एक अंश। ऐसे असंख्य प्रदेश आत्मा के हैं अरूपी। उन असंख्य प्रदेश से केवलज्ञान जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? सर्वतः पहले लिया, देखा! सर्व आत्मप्रदेश। अन्य में ऐसे आत्मप्रदेश और असंख्यप्रदेश ऐसा है नहीं। भगवान आत्मा जिसकी भूमि—जिसका सत्ता-स्थल—क्षेत्र असंख्य प्रदेश है। उन असंख्य प्रदेश में, ज्ञान की पर्याय एक समय की असंख्य प्रदेश में व्यापी है। है उसकी एक समय की स्थिति, परन्तु असंख्य प्रदेश में जिसका व्यापना—पसरना है, इसलिए वह असंख्य प्रदेश से केवलज्ञान जानता है। समझ में आया? यहाँ आँख के अमुक प्रदेश से इस रूप को जाने, अमुक से गन्ध जाने, अमुक से—कान से सुने, ऐसा भाग उन्हें नहीं, ऐसा कहना है। यहाँ से... यहाँ से सुनने का यहाँ से हो, देखने का यहाँ से हो, ऐसा उन्हें नहीं। पूरे असंख्य प्रदेश से (स्व-)पर सर्व इन्द्रिय का और सर्व अतीन्द्रिय का और सर्व वस्तु का एक समय में असंख्य प्रदेश से जानते हैं। आहाहा! समझ में आया?

(सर्व आत्मप्रदेशों से), वर्तमान में वर्तते तथा भूत-भविष्यत काल में वर्तते... अतत्काल की व्याख्या की। तत्काल अर्थात् वर्तमान अनन्त द्रव्य की पर्यायरूप से वर्तती **भूत-भविष्यत काल में वर्तते...** भूतकाल हो गया, उसकी पर्यायें अतीत काल, होगी उनका भविष्य, उन सबको **समस्त पदार्थों को जानता है जिनमें पृथक्रूप से वर्तते...** जिनमें—पदार्थों में **पृथक्रूप से वर्तते...** देखो! पृथक्पने व्याख्या करते हैं आगे। स्वलक्षण लक्ष्मी से आलोकित है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वलक्षण की लक्ष्मी से शोभायमान है। प्रत्येक पदार्थ अपने स्वलक्षण की लक्ष्मी से शोभायमान है। देखो, यह लक्ष्मी आयी। है न नीचे? **द्रव्यों के भिन्न-भिन्न वर्तनेवाले निज-निज लक्षण उन द्रव्यों की लक्ष्मी-सम्पत्ति-शोभा हैं।** लो! यह द्रव्य की सम्पत्ति और शोभा है। यह धूल इसकी सम्पत्ति और शोभा नहीं। समझ में आया? एक परमाणु की भी उसके द्रव्य-गुण की पर्याय की लक्ष्मी से उसकी सम्पदा और शोभा उसके कारण से है। आत्मा को भी अपने द्रव्य, गुण और पर्याय का स्वरूप जो है, उसकी सम्पदा की लक्ष्मी से वह द्रव्य शोभित हो रहा है। आहाहा! समझ में आया? लो! यहाँ तो भाई! शरीर को शोभित करना हो तो गहने पहनना चाहिए, यहाँ डालना चाहिए, यहाँ डाले और यहाँ डाले। सोने की अँगूठी, यह

और यह। मुर्दे को डाले जहाँ-तहाँ शृंगारित करने। क्या कहा जाता है उसे? उसे क्या कहा जाता है? उसे अजीव कहा जाता है या जीव? अजीव अर्थात्? चैतन्य बिना का मुर्दा।

मुमुक्षु : अभी से मुर्दा हो गया?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी से मुर्दा ही है। उसमें क्या है? सब अचेतन ही है। मुर्दा ही है सब। चैतन्य एक ही चैतन्य जागता चैतन्य, वह चैतन्य है। उत्तम तत्त्व कहा है न! चैतन्य उत्तम। वह तो वहाँ तो कहा परन्तु अन्त में कहा न अन्त में वह प्रवचनसार। अन्तिम शब्द। अन्तिम कलश। चैतन्य उत्तम तत्त्व को आज ही प्राप्त करो, बस। ऐसा कहते हैं वहाँ तो। आहाहा! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं न अन्तिम कलश में। प्रवचनसार है न यह? लो! उसमें ही है देखो। अन्तिम अन्तिम।

चैतन्य ही एक परम (उत्तम) तत्त्व है। अन्तिम में अन्तिम। **उस चैतन्य को ही चैतन्य आज प्रबलरूप से—उग्ररूप से अनुभव करो (अर्थात् उस चित्स्वरूप आत्मा को ही आत्मा आज ही अत्यन्त अनुभव करो)...** अन्तिम लाईन। **क्योंकि इस लोक में दूसरा कुछ उत्तम नहीं है, चैतन्य ही एक परम (उत्तम) तत्त्व है।** सौभागभाई! लो, कुछ उत्तम नहीं। यह पैसा, धूल और सोना-चाँदी और बँगला।

मुमुक्षु : .... परन्तु साधारण तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं। उसकी शोभा उसमें, चैतन्य की शोभा चैतन्यतत्त्व में। वह भी यहाँ तो परम चैतन्य एक ही परम उत्तम तत्त्व है। समझ में आया? जिसकी विद्यमानता में सब ज्ञात होता है, ऐसा भगवान चैतन्यतत्त्व, जिसकी अविद्यमानता में यह दूसरा क्या है, वह सब शून्य लगे। जिसकी सत्ता की विद्यमानता में यह है, वह ज्ञात होता है। वह जाननेवाला यह जाने, उसरूप से है नहीं। जिसकी विद्यमानता में यह है, ऐसा ज्ञात होता है। राग है... यह है... यह है... यह है... यह है। जिसकी सत्ता में—चैतन्य की विद्यमान अस्ति में यह है, ऐसा ज्ञात होता है, ऐसा चैतन्यप्रकाश का नूर तत्त्व, वही मुख्य तत्त्व है। समझ में आया?

जिसकी अविद्यमानता में कोई चीज़ है, ऐसा कोई जाने, ऐसा कभी हुआ नहीं।

जिसकी अविद्यमानता में यह चीज़ है, ऐसा किसी ने जाना, ऐसा है नहीं। भगवान आत्मा चैतन्य की सत्ता की अस्ति में—विद्यमानता में यह... यह... यह... ऐसा जाने, वह यह वह जाननेवाला मैं और यह वह जाननेवाला मैं। दोनों का जाननेवाला वह मैं हूँ। समझ में आया? ऐसे चैतन्य को यहाँ तो आचार्य अन्त में ऐसा कहते हैं। देखो! आचार्य को खबर नहीं? कि पंचम काल है, उसमें अमुक यह हो सब जीवों को। अब सुन न! तुझे उल्टा करने का प्रयत्न और विकल्प को कितना भाव होता है? उल्टा—विपरीत करने का। तो यह सुलटा करने का भाव नहीं तुझमें शक्ति? वह तो शक्ति है, वह उल्टा तो नया उत्पन्न करता है। समझ में आया?

भगवान आत्मा 'आज ही अनुभव करो', ऐसा कहते हैं, देखा! भाषा देखी! इसके पहले कलश है, उसमें भी यह है। आहाहा! अच्छे काम को... क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : अच्छे काम को ढील नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ढील नहीं, वह ढील नहीं, ऐसा कहना है। धर्म के काम में ढील नहीं, ऐसा कहते हैं। यह तो अभी ही करना पड़ेगा। ऐई! न्यालभाई! आहाहा! कहा न... नेमिनाथ भगवान ने कहा, ऐसा प्रभु जाओ श्मशान में। आहाहा! अहं। यह आता है श्वेताम्बर शास्त्र में। देवानुप्रिया! राजकुमार... राजकुमार है सुन्दर और अन्तिम शरीर। भगवान को कहते हैं, प्रभु! मैं दीक्षित हुआ प्रभु! आज आपके समक्ष, मेरी भावना ऐसी होती है यदि आपकी आज्ञा हो तो, श्मशान में द्वारिका के महाकाल श्मशान में, महाकाल श्मशान उसका नाम है। नाम होता है न श्मशान का? उसमें जाऊँ। अन्तिम में अन्तिम भिक्षु की प्रतिमा अठ्ठम है, उसे ग्रहण करके रहूँ। आहाहा! भगवान की वाणी में ऐसा आता है। यथा... देवानुप्रिया! हे देव को दुर्लभ मनुष्यपना! जैसे सुख उपजे, वैसा करो। प्रतिबन्ध करना नहीं, हों! स्वरूप में स्थिर होने में रुकना नहीं अब बाहर। आहाहा! उसमें ऐसा आता है। ऐई! न्यालभाई! ...में आता है ऐसा। आहाहा! एक तो भगवान और उनके सामने फिर यह चरमशरीरी गजसुकुमार। प्रभु कहते हैं कि भाई! यह तो यथा... भाई! प्रतिबद्ध नहीं करना कहीं कि यह ऐसा शरीर और ऐसे-ऐसे होता है। पड़ो अन्दर में एकबार कूदकर। स्वाहा। आहाहा! वस्तु तो ऐसी हो न, ऐसा कहते हैं। ऐसी वस्तु को प्राप्त करने के लिये आज ही प्रयत्न करो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

कैसा है आत्मा? कि जो पृथक् लक्षणवाले लक्ष्मी से आलोकित। समझ में आया? देखो, इसमें आया। **अनेक प्रकारों के कारण वैचित्र्य प्रगट हुआ है,...** विचित्र प्रगट हुआ है। **और जिनमें परस्पर विरोध से उत्पन्न होनेवाली असमानजातीयता के कारण वैषम्य प्रगट हुआ है।** अनेकपना प्रगट हुआ है और विरुद्धता प्रगट हुई है, ऐसा कहते हैं। भिन्न-भिन्न द्रव्य, एक निगोद और एक परमात्मा सिद्ध। समझ में आया? एक परमाणु एक गुण काला और दूसरा एक परमाणु अनन्त गुणा काला और सफेद। विचित्र। समझ में आया? विचित्र को भी भगवान का केवलज्ञान एक समय में जाने और विषमता को भी एक समय में (जाने)। विषमता अर्थात् परस्पर विरुद्ध, चैतन्य से अचेतन विरुद्ध, मूर्त से अमूर्त विरुद्ध, ऐसे को भी भगवान का ज्ञान **असमानजातीयता के कारण वैषम्य प्रगट हुआ है।** देखो! असमानजाति है। चेतन और अचेतन एक जाति नहीं। आत्मा और जड़ एक जाति नहीं, वह तो भिन्न जाति है। भगवान आत्मा की जाति और शरीर की जाति एक नहीं। एक नात के नहीं, एक जाति के नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वैषम्य प्रगट हुआ है।

उन्हें—जानते हैं। ऐसा कहना है। जिसमें विषमपना प्रगट हुआ है, चैतन्य की जाति से अचेतन अलग, अमूर्त से मूर्त भिन्न, ऐसा विषमपना, विपरीतपना प्रगट हुआ है, उसे भी क्षायिकज्ञान जानता है। ऐसा आत्मा के ज्ञान की एक समय की पर्याय का सामर्थ्य है और बल है। आहाहा! वह आत्मा कितना? द्रव्य और गुण से कितना? आहाहा! समझ में आया? उसे दुनिया के पदार्थ की अधिकता और महिमा और महत्ता दिखती है, परन्तु भगवान स्वयं कितना है और कैसे है, उसकी महत्ता नहीं दिखती। कहीं शरीर सुन्दर ऐसा और कुछ रूपवान और गहने ऐसे (पहने हों) तो ऐसा हो, आहाहा! एक महिला थी न, घर में सोने की अच्छी चूड़ी लाई। सोने की अच्छी। अब कोई दुनिया देखने आवे नहीं। तो झोंपड़ी थी, उसे जलाया। झोंपड़ी में रहती थी और सोने का जरा लायी होगी। क्या कहलाता है? चूड़ी। उसे सोने का दिया होगा। कोई देखने आवे नहीं। करना क्या? फिर था न अपना घास का। क्या कहलाता है? झोंपड़ा (उसे) जलाया। जलाया देखने तो आवे न। दौड़ते आये। ऐ भाई! मेरा झोंपड़ा (सुलगता है), बतलाना था वह।

मुमुक्षु : मकान ....

पूज्य गुरुदेवश्री : मकान भले सुलगे, परन्तु चूड़ी तो प्रसिद्ध हो। ऐ भाई! ऐसे वापस साड़ी-बाड़ी ऐसे रखी। वरना ढँक जाये तो वापस दिक्कत आवे। ऐ भाई! मेरी झोंपड़ी जल गयी रे। बहिन कैसे जल गयी? जल गयी, कुछ खबर नहीं परन्तु जलती है, देखो यह। देखो यह जलती है... यह जलती है... ऐसा करके वह बतावे। घड़ी, कलाई में घड़ी हो न सोना-चाँदी की, वह ऐसे दिखावे। आहाहा! क्या करते हो तुम? घर जलाकर प्रसिद्ध होना है। इसी प्रकार अपना घर जलाकर दूसरी की महत्ता लेनी है। दूसरे से महत्ता लेनी है। आहाहा! देखो! हमारे पुत्र कैसा है! देखो! हमारे यह ... देखने आवे तो कहे भाई! यह कैसा है देखो! यह सब पार्टी करते हैं हम ... क्या कहलाती है तुम्हारी? पार्टी। ऐई! सुमनभाई! पार्टी दे और फिर हमारा पुत्र अमेरिका जानेवाला है। ऐसा है। बाहर जानेवाला (उसमें) पार्टी दे, दो-पाँच हजार खर्च करके। सुलगाकर, घर जलाकर बाहर को बताने के लिये करता है।

मुमुक्षु : समाचारपत्र में दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : समाचारपत्र में दे। सब होली सुलगावे। ऐई! जेठालालभाई! आहाहा! अरे! भगवान! तेरी शोभा तेरे पास है न, नाथ! आहाहा! दूसरी चीज़ को दिखाकर तेरी शोभा तुझे लेनी है, भाई! यह तो झोंपड़ी सुलगाकर वह चूड़ी बतलाने जैसा है। आहाहा!

कहते हैं, भगवान का ज्ञान क्षायिकज्ञान इस प्रकार से प्रगट हुआ, ऐसा प्रगट हुआ विचित्र और विषम की जाति को भी एक समय में पूर्ण जाने, ऐसा ज्ञान है। उसे स्वयं को देखना है, उसे कुछ बतलाना किसी को नहीं। स्वयं जानता है, ऐसा उसका स्वभाव है। समझ में आया? **(इसी बात को युक्तिपूर्वक समझाते हैं :-)** समझाना है यह। यह तो गाथा में है, वह भाव तो आ गया उसमें। **(इसी बात को युक्तिपूर्वक समझाते हैं :-)** लक्ष्मी से आलोकित। आलोकित अर्थात्? शोभा? देखने में आनेवाला। देखे तो, ऐसा शब्द परन्तु 'देखने में आती' नीचे नहीं डाला। ऐसा कहता हूँ। 'देखने में आती' नीचे शब्द नहीं डाला। शंकावाला होता है, ऐसा। यह कहते हैं कि कुछ शंकावाला था, इसलिए नहीं डाला। मैं भी अटका करने में। आलोकित का अर्थ इसमें क्यों नहीं

आया? ऐसा कि लक्ष्मी से आलोकित है तो लक्ष्मी से शोभित है? ऐसा कि लक्ष्मी से देखने में आता है? ऐसा करके शंका दी, कहते हैं। इसलिए बहुत अर्थ भरा नहीं। समझ में आया? मैंने कहा, इसमें प्रत्येक द्रव्य स्वलक्ष्य का रूप लक्ष्मी से आलोकित—देखने में अनेक प्रकार के कारण आता है देखने में। ऐसा यह ठीक है। समझ में आया?

प्रत्येक पदार्थ परमाणु, आत्मा, निगोद और सिद्ध, वह प्रत्येक अपनी लक्ष्मी से ही देखने में आता है। वह अपनी सम्पदा से स्वयं पूर्ण है। ऐसा केवलज्ञान उसे जानता है। आत्मा का उसका जानने का ही स्वभाव है। किसी को उत्पन्न करना या किसी का रक्षण करना या किसी को तोड़ना या किसी से लेना, ऐसा उसमें है नहीं—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **(इसी बात को युक्तिपूर्वक समझाते हैं :-) क्रम-प्रवृत्ति के हेतुभूत,...** अब, क्षायिकज्ञान में यह नहीं, ऐसा बताते हैं। **क्रम-प्रवृत्ति के हेतुभूत,...** क्रम-क्रम से जाने न, उसके निमित्तभूत। **क्षयोपशम-अवस्था में रहनेवाले ज्ञानावरणीय कर्मपुद्गलों का उसके (क्षायिक ज्ञान के) अत्यन्त अभाव होने से वह तात्कालिक या अतात्कालिक पदार्थ-मात्र को समकाल में ही प्रकाशित करता है;...** एक बात ली। जो ज्ञान क्रम-क्रम से जाने, उसका जो निमित्त ऐसा क्षयोपशम अवस्था में रहा हुआ ज्ञानावरणीय कर्म पुद्गलों का, उन्हें तो क्षायिक हो गया है, उन्हें (कर्म) है नहीं भगवान को। **अत्यन्त अभाव होने से वह तात्कालिक या अतात्कालिक पदार्थ-मात्र को समकाल में ही प्रकाशित करता है;...** क्रमवर्ती के हेतुभूत जो ज्ञान कम था या अमुक को जाने, ऐसा जो आवरण था, वह तो नाश हो गया है। इसलिए अमुक को जाने, क्रम-क्रम से जाने, ऐसा केवलज्ञान में रहा नहीं। समझ में आया? समकाल में प्रकाशित करता है।

(क्षायिक ज्ञान) सर्वतः विशुद्ध होने के कारण... यह भगवान का—परमात्मज्ञान का सर्वतः सर्व प्रदेश से विशुद्ध होने के कारण **प्रतिनिश्चित देशों की...** प्रतिनिश्चित अर्थात् एक-एक अंश में जानने का क्षेत्र से हों क्षेत्र-प्रदेश। **(-अमुक नियत प्रदेशों की) विशुद्धि (सर्वतः विशुद्धि) के भीतर डूब जाने से...** थोड़े प्रदेश से जानने का जो था, वह पूर्ण प्रदेश से जानना हो गया तो उसमें वह बात रही नहीं। आँख से ऐसे देखे तो अकेला रूप ज्ञात हो। समझे न, इतनी विशुद्धि (थी) वहाँ। वह सब क्षयोपशमज्ञान

में ऐसा जो अमुक को जानने का था, वह क्षायिकज्ञान में डूब गया (अर्थात् कि) वह है नहीं। समझ में आया? अन्दर डूब गया वह।

(सर्वतः विशुद्धि) के भीतर डूब जाने से... अर्थात् सर्व विशुद्धि में वह रहा नहीं। **सर्वतः (सर्व आत्मप्रदेशों से) भी प्रकाशित करता है;...** सर्व प्रदेशों से वह भगवान ज्ञानस्वरूप से प्रकाशता है। उसमें असंख्य प्रदेश का चैतन्यसूर्य असंख्य प्रदेश में जम गया प्रकाश में, लो! अनन्त कहा है न! अन्त में आता है न अनन्त। सिद्ध को भी अनन्त चक्षु, केवलज्ञानी को अनन्त चक्षु-सर्वचक्षु हो गये। यह छद्मस्थ को आँख, अवधिज्ञान को भी अमुक, यह सर्वतः चक्षु। आगमचक्षु, साधु को आगम की आँख है और केवली को सर्वतः चक्षु है। असंख्य प्रदेश में आँखें खिल गयी, पूरे अंकुर फूट गये। केवलज्ञान की पर्याय के अंकुर पूरे फूट गये। ज्वाजल्यमान सूर्य असंख्य प्रदेश में प्रगट हो गया। इसलिए उन्हें थोड़े प्रदेश से जानने का जो था अथवा क्रम-क्रम से जानने का था, ऐसा जो ज्ञान, वह रहा नहीं अथवा उसे आवरण करनेवाले निमित्त का नाश हो गया, इसलिए क्षायिकज्ञान में वह है नहीं। समझ में आया? पाठ में बात है, उससे विरुद्ध बात कहकर उसे सिद्ध करते हैं। उससे विरुद्धपना अब इसमें रहा नहीं।

सर्व आवरणों का क्षय होने से,... भगवान को तो केवलज्ञान में सब आवरण के अभाव के कारण **देश-आवरण का क्षयोपशम न रहने से...** आंशिक क्षयोपशम जो है, उसका नहीं होने से **वह सबको भी प्रकाशित करता है,...** सबको जानते हैं, ऐसा। वह थोड़े को जानता था। वह थोड़े प्रदेश से और थोड़े को, यह सर्व प्रदेश से और सबको (जानता है)। समझ में आया? अल्प ज्ञान में थोड़े अमुक प्रदेश से और अमुक पदार्थ को, सर्वज्ञ ज्ञान में सर्व प्रदेश से और सर्व को (जानता है)। कितनी टीका की है! ओहोहो! जंगल में रहनेवाले मुनि। अमृतचन्द्राचार्य मुनि हैं। ओहोहो! कितनी करुणा है! विकल्प उठा है।

कहते हैं कि पूर्ण जाननेवाले को कम जानने के जो प्रदेश थे, वह समाप्त हो गया। पूर्ण आ गये और कम ज्ञान में अमुक वस्तु ज्ञात होती थी, यह वहाँ नहीं, अब पूर्ण जानते हैं। सर्व प्रदेश से पूर्ण, अल्प ज्ञान में थोड़े प्रदेश से थोड़ा और यह सर्व प्रदेश से अनन्त सब। सर्व चक्षु खुल गये हैं। ओहोहो! देखो! यह आत्मा की केवलज्ञान की पर्याय का

सामर्थ्य! आहाहा! एक समय की पर्याय। उसके गुण की क्या बात करना और उसके द्रव्य की क्या बात करना! ऐसा कहते हैं। परमात्मा स्वयं होनेवाले हैं न, आचार्य अभी से पुकार करते जाते हैं। समझ में आया? कि हमको ऐसा केवलज्ञान प्रगट होनेवाला है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! चारित्रसम्पन्न हुए हैं, उसके फल में हमको यह प्राप्त होगा। बीच में जरा स्वर्गादि रहे, उसकी कुछ बात नहीं। पंचम काल के मुनि हैं तो उसे वे जानते हैं कि यह वर्तमान पर्याय का ऐसा पूर्ण होगा नहीं, परन्तु हमारा ध्येय तो वहाँ ही है और उस वर्तमान में किसी जगह, जैसे धर्मशाला में रुकना पड़े गाँव जाते हुए, पच्चीस कोस जाने पर अठारह कोस में रात्रि हो जाये तो रात्रि में रहना पड़े, परन्तु वह रहने के लिये रहना नहीं है। क्या करे? दूसरा उपाय नहीं। इसी प्रकार वस्तुस्वरूप साधते हुए देह छूट गयी और थोड़ा राग रह गया। स्वर्ग में जाये धर्मशालारूप से, वहाँ से निकलकर केवलज्ञान साधने का अवतार है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वह दूसरे भव में यह पूरा करना है। दूसरे भव में पूरा हो जायेगा, ऐसा भगवान के निकट सुनकर भणकार आये और यह भणकार यहाँ वर्णन कर दिये। आहाहा! साक्षात् परमात्मा के निकट सुना। मुनि थे। एकदम ताजी-ताजी बात थी। ताड़पत्र के ऊपर (उत्कीर्ण हो गया)। समझ में आया?

ऐसा आत्मा है न, प्रभु! प्रभु तो ऐसा कहते हैं कि चारित्रवन्त को तो केवलज्ञान होगा। समझ में आया? वह ऐसा होगा। ऐसा कम प्रदेशों से जानना नहीं रहेगा। असंख्य प्रदेश से जानेंगे। कम जानना नहीं रहेगा, सब जानेंगे। सबमें कोई बाकी नहीं रहा। और केवलज्ञानी भविष्य में होंगा तब जानेंगे, ऐसा उन्हें नहीं—ऐसा कहते हैं। यह निमित्त हो, ऐसा न जाने, विशेष न जाने। और विशेष न जाने। विशेष न जाने कि इस समय की यह पर्याय और इस समय का यह निमित्त न जाने। अरे! इस समय की यह पर्याय भिन्न-भिन्न लक्षण से जानते हैं। केवलज्ञान किसे कहते हैं? समझ में आया?

सर्व आवरणों का क्षय होने से, देश-आवरण का क्षयोपशम न रहने से वह सबको भी प्रकाशित करता है, सर्व प्रकार ज्ञानावरण के क्षय के कारण (-सर्व प्रकार के पदार्थों को जाननेवाले ज्ञान के आवरण में निमित्तभूत कर्म के क्षय होने से) असर्वप्रकार के ज्ञानावरण का क्षयोपशम... ऐसा। सब न जाने, ऐसा जो क्षयोपशम

अमुक ही प्रकार जानने का ज्ञान का आवरण का निमित्तभूत कर्म का क्षयोपशम **विलय को प्राप्त होने से वह विचित्र को भी प्रकाशित करता है...** देखो! उस अमुक को— अमुक को जाने, यह तो विचित्र को जाने। एक निगोद की दशा, एक केवली की दशा, क्षयोपशम की दशा, एक अभव्य की दशा, एक भव्य की दशा, (ऐसे) विचित्र को जाने। एक अनन्त संसारी जीव को जाने, एक जीव वर्तमान केवलज्ञान पाया, उसे जाने; एक जीव एक भव में केवल (ज्ञान) पायेगा, उसे जाने। केवलज्ञान के ज्ञान में सब नोंध है। केवलज्ञान की पर्याय में वह सब नोंध है। सेठिया! नोंध। आता है न वह? कलशटीका में। कलशटीका में आता है चौथी गाथा (कलश) में। सवेरे चलता है न। अपने सवेरे चलता है न। उसमें आता है। केवलज्ञान की पर्याय में सब नोंध है। कौनसा जीव कितने समय में कहाँ मोक्ष जायेगा? और अर्धपुदगल (परावर्तन) में यह समकित प्राप्त करेगा, यह होगा, वह सब भगवान के ज्ञान में नोंध है। बालचन्दजी! यह नोंध करते हैं या नहीं पुस्तक में तुम्हारे खाता में? नोंधबुक रखते हैं न? नोंध रखो, शाम को फिर बही में खतौनी कर डालो। उसी प्रकार भगवान के ज्ञान में नोंध है। नोंध अर्थात् समझण है, समझण अर्थात् ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

विचित्र को भी प्रकाशित करता है... लो! यह विचित्र की व्याख्या की। **अब, असमानजातीय-ज्ञानावरण के क्षय के कारण...** यहाँ समानजाति को जानता है, नीचे। वह तो असमानजाति को भी चैतन्य को, जड़ को, मूर्त को, अमूर्त को सबको जानता है। **असमानजातीय-ज्ञानावरण के क्षय के कारण (असमान जाति के पदार्थों को जाननेवाले ज्ञान के आवरण में निमित्तभूत कर्मों के क्षय के कारण) समानजातीय-ज्ञानावरण का क्षयोपशम...** देखा! समानजाति। **(-समान जाति के ही पदार्थों को जाननेवाले ज्ञान के आवरण में निमित्तभूत कर्मों का क्षयोपशम) नष्ट हो जाने से वह विषम को भी प्रकाशित करता है।** विषम को जाने। पहले असमान को जानता था, साधारण को जानता था समान को, यह सब असमान को भी जाने। नहीं आये छोटाभाई? नहीं आये होंगे।

अथवा, अति विस्तार से बस होओ... अलम... अलम... अलम... बस होओ। क्या कहें उसकी बात? कहते हैं। केवलज्ञान की एक समय की पर्याय **जिसका**

अनिवार (रोका न जा सके अमर्यादित) फैलाव है ऐसे प्रकाशमान होने से क्षायिक ज्ञान अवश्यमेव... अवश्य **सर्वदा...** अर्थात् सब काल को **सर्वत्र...** अर्थात् सब क्षेत्र को। **सर्वथा...** अर्थात् सब भाव को और **सर्व को...** अर्थात् सर्व द्रव्यों को **जानता है।** सब काल को, सब क्षेत्र को, सब भाव को, सब द्रव्य को केवलज्ञान की पर्याय सब भाव को, सब काल को (जानती है), ऐसा कहते हैं, देखो! सब क्षेत्र को... ऐसा उसका सामर्थ्य है। एक-एक आत्मा के सर्वज्ञ की पर्याय का इतना सामर्थ्य है। ऐसी अनन्त पर्याय का धनी एक गुण है और ऐसे अनन्त गुण का धनी एक द्रव्य है। ऐसे द्रव्य की अन्तर में प्रतीति करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १०, बुधवार, दिनांक १६-१०-१९६८
गाथा - ४७-४८, प्रवचन - ३८

प्रवचनसार। भगवान के ज्ञान का पूर्ण स्वरूप जो परमात्मा को प्रगट हुआ, तब जो दिव्यध्वनि निकली, उसका सार अर्थात् प्रवचन—दिव्यवचन, उसका सार। उसमें आचार्य महाराज ऐसी शुरुआत से बात की है कि यह केवलज्ञान की प्राप्ति—सर्वज्ञ ज्ञान की प्राप्ति किसे होती है? कि जो सम्यग्दर्शन और ज्ञानपूर्वक साम्यभाव अर्थात् शुद्ध उपयोग की रमणता अर्थात् आचरण करे, उसे साम्यभाव के प्रताप से केवलज्ञान होता है। समझ में आया? यह उसके फल का वर्णन है। आत्मा सर्वज्ञस्वरूप ही आत्मा है। ऐसा सर्वज्ञ भगवान आत्मा का स्वभाव, उसकी दर्शन, ज्ञान की प्रतीति और अनुभव सहित स्वरूप में शुद्ध उपयोगरूपी चारित्र उसे कहते हैं। शुद्ध उपयोग, साम्यभाव, निर्विकल्प वीतरागी परिणति, मोक्षमार्ग दर्शन-ज्ञान-चारित्र की एकाग्र होकर अवस्था, उसे चारित्र कहते हैं। उस चारित्र के फलरूप से सर्वज्ञपना प्राप्त होता है, अर्थात् पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण दर्शन। उसकी यहाँ प्रशंसा करते हैं और उसका कैसा स्वरूप है, उसका वर्णन करते हैं।

भावार्थ। कहते हैं कि क्षयोपशमज्ञान है, अल्प जो ज्ञान है, उसमें क्रमपूर्वक जानना होता है। वह क्षायिकज्ञान पूर्ण साम्यभाव से प्राप्त हुआ, ऐसा सर्वज्ञपद, उसमें क्रमरूप से जानना हो नहीं सकता। **नियत आत्मप्रदेशों से ही जानना,...** नीचे तो थोड़े आत्मप्रदेश में अमुक विकास के साधन से जानना कि आँख के विकास का साधन आदि। वहाँ-वहाँ इन्द्रिय के क्षयोपशम प्रदेश हैं, उन-उन प्रदेशों के मर्यादित प्रदेशों से जानना, ऐसा निचली दशा में होता है। भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर अरिहन्त परमात्मा, उन्हें पूरे असंख्य प्रदेश से पूर्ण जानना होता है। कहो, समझ में आया?

अमुक को ही जानना... ऐसा। निचली दशा में सबको न जान सके। मर्यादित वस्तु को जाने। सर्वज्ञ ज्ञान नियम से जाने, मर्यादित-अमर्यादित सबको जाने। उसे

जानने का कुछ बाकी नहीं हो सकता। तीन काल-तीन लोक एक समय में द्रव्य, गुण और पर्याय की प्रगटता की विशेषतासहित भगवान आत्मा को चारित्र के फलरूप से ऐसा ज्ञान प्राप्त होता है। कहो, समझ में आया? उस चारित्र की कीमत कितनी? कि जिसके फल में सर्वज्ञ हो, परमात्मा हो, ऐसा कहते हैं। वह चारित्र कैसा?

मुमुक्षु : शुद्ध उपयोग।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्ध उपयोगरूप और शुद्ध उपयोग सम्यग्दर्शन-ज्ञानसहित ही होता है उसे। समझ में आया? निर्विकल्प भगवान आत्मा की निर्विकल्प अनुभव की प्रतीति, अन्तर्मुख की स्वभाव की प्रतीति, अन्तर्मुख का ज्ञान और अन्तर्मुख में शुद्ध उपयोगरूपी रमणता, उसे चारित्रवन्त साधु कहते हैं। यह साधुपद के फल में परमात्मा होता है। उस परमात्मा को अमुक ही मर्यादा से जाना, ऐसा रहता नहीं। तीन काल-तीन लोक (जाने), ओहो! ऐसी समय की पर्याय। ज्ञान की एक समय की अवस्था, केवलज्ञान भी एक समय की अवस्था है—पर्याय है, परन्तु उन सबको जाने। अमुक को जाने, वह तो निचली दशा में होता है। पूर्ण दशा को वह नहीं होता।

इत्यादि मर्यादायें मति-श्रुतादि क्षायोपशमिक ज्ञान में ही सम्भव हैं। भावार्थ में है न? **क्षायिकज्ञान तो अमर्यादित होने से युगपद्...** अर्थात् सब एकसाथ। वह क्रम था न क्रम? क्रम से जानना, उसके बदले एकसाथ पूर्णानन्द, पूर्ण जानना। जहाँ इच्छा नहीं, जहाँ राग नहीं, जहाँ दुःख का अभाव है और आनन्द की परिपूर्णता है। ऐसे भगवान परमात्मा के ज्ञान में युगपद जानना। **सर्व आत्मप्रदेशों से...** सब पूरे सर्व प्रदेशों से जानना। **तीनों काल की पर्यायों के साथ...** वह अमुक था, इसमें सब ही। और **सर्व पदार्थों को—** तीन काल-तीन लोक आदि-अन्तरहित चीज़ को भी एक समय में जान ले। वह **अनेक प्रकार के...** अनेक प्रकार के अर्थात् निगोद का जीव, एक सिद्ध का जीव ऐसे अनेक प्रकार, उसे भी एक समय में परमात्मा जाने। **और विरुद्ध जाति के...** चैतन्य और अचैतन्य, अमूर्त और मूर्त, वह विरुद्ध जाति है। उसे भी भगवान का केवलज्ञान एक समय में सबको पहुँच जाता है। समझ में आया? ऐसा **होने पर भी— जानता है अर्थात् केवलज्ञान एक ही समय में...** एक ही समय में **सर्व आत्मप्रदेशों से...** यह सर्व आये शब्द वे अन्तिम थे वे। **सर्व द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को...** टीका में था कि

अवश्यमेव क्षायिकज्ञान सर्व काल, सर्वत्र-क्षेत्र, सर्वथा—भाव। सर्व अर्थात् द्रव्य सर्व को। समझ में आया? कहाँ आया? ऐ... भीखाभाई!

मुमुक्षु : ज्ञान अवश्यमेव सर्वदा, सर्वत्र, सर्वथा, सर्व को जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बराबर है। सर्व को जानता है अर्थात् क्या?

मुमुक्षु : सब जीव पदार्थ सबको जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा नहीं। ऐसा बिना भान के नहीं चलता इसमें। यह सर्व को अर्थात् द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव में उसमें क्या आवे सर्व को?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह फिर अर्थ में ध्यान नहीं रखा। द्रव्य कहते हैं। द्रव्य-द्रव्य। ऐसे यहाँ उसके जैसा नहीं चलता ऐसा। तुम्हारे आगे नहीं चलता, ऐसा। नहीं, नहीं, यह तो चार बोल का कहते थे न रामजीभाई कि यह चार का चला नहीं। इसलिए कहा, चला था और अब उसे याद है या नहीं, ऐसा कहा। देखो!

है अन्तिम बोल? क्षायिकज्ञान... पहले भावार्थ के ऊपर। **सर्वदा...** सर्वदा, वह काल लागू पड़ता है। सर्वदा। सर्वदा तीन काल को जाने। **सर्वत्र...** सर्वत्र—सभी क्षेत्र को जाने। लोक-अलोक सबको भगवान का ज्ञान जानता है। तीन काल सब क्षेत्र। उसे क्षेत्र लागू पड़ता है। **सर्वथा...** उसे भाव लागू पड़ता है। समझ में आया? जो वह सर्व को तुमने कहा था न, वह वहाँ लागू पड़ता है। और **सर्व** को अर्थात् द्रव्य को लागू पड़ता है। द्रव्य। सब द्रव्य को, सब भाव को, सब क्षेत्र को, सब काल को यह पच्छानुपूर्वी हो गयी। आनुपूर्वी कहते हैं, आनुपूर्वी अर्थात् क्रम-क्रम से कहते हैं तो सर्व काल, सर्व क्षेत्र, सर्व भाव और सर्व द्रव्य को जाने।

मुमुक्षु : मूल में ऐसा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मूल है। और यदि पच्छानुपूर्वी कहें ऐसे पीछे से लें तो सर्व द्रव्य को, सर्व भाव को, सर्व क्षेत्र को, सर्व काल को। यह पच्छानुपूर्वी और पूर्वानुपूर्वी नहीं आता। पुस्तक नहीं आती ऐसी? णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं। यह पहला शब्द पूर्वानुपूर्वी का हो और अन्तिम शब्द पच्छानुपूर्वी का हो उसमें भी, समझ

में आया? णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आईरियाणं, णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व साहूणं। यह पूर्वानुपूर्वी क्रमसर कहलाता है। और णमो लोए सव्व साहूणं, णमो लोए सव्व आईरियाणं, णमो लोए सव्व उवज्झायाणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं, णमो लोए सव्व अरिहंताणं, यह पच्छानुपूर्वी, ऐसा।

मुमुक्षु : अन्तिम से शुरु करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्तिम से शुरु करना, यह पहले से शुरु करना, ऐसा। समझ में आया? इसका तो बड़ा ... में अधिकार आया है।

मुमुक्षु : बीच से शुरु करना।

पूज्य गुरुदेवश्री : बीच से शुरु करे वह अनानुपूर्वी हो गयी। आनुपूर्वी नहीं, पच्छानुपूर्वी नहीं, अनानुपूर्वी। जितने बीच के बोल हैं, वे सब अनानुपूर्वी के हैं। वह पुस्तक नहीं आती नवकार गिनने की? गिने। आती है। स्थानकवासी में बहुत पुस्तकें होती हैं। निवृत्त हो और बहुत आता न हो, बहुत आता न हो और बहुत ज्ञान न हो, वह यह गिना करे। एकड़ा। वापस ऐसे नवकार गिने। बहुत आता न हो, गिना करे पूरे दिन। अब इसके बदले तत्त्वज्ञान का पढ़े नहीं थोड़ा?

★ ★ ★

गाथा - ४८

अब ४८ गाथा। **ऐसा निश्चित करते हैं कि जो सबको नहीं जानता, वह एक को भी नहीं जानता:-** लो! यह मूलभूत यह रकमें आयी। सेठ आये थे हुकमीचन्दजी और बंसीधरजी जब, तब यह गाथा चली थी। समझ में आया? ४८ और ४९। (संवत्) २००२ की बात है। **अब, ऐसा निश्चित करते हैं कि जो सबको नहीं जानता, वह एक को भी नहीं जानता:-**

जो ण विजाणदि जुगवं अत्थे तिक्कालिगे तिहुवणत्थे।
णादुं तस्स ण सक्कं सपज्जयं दव्वमेगं वा॥४८॥

इसका हरिगीत।

जो त्रिकाल-त्रैलोक्यवर्ति, द्रव्यों को युगपत् ग्रहे नहीं।
पर्ययुत वह एक द्रव्य भी, जान सके वह कभी नहीं॥४८॥

क्या कहते हैं ? **अन्वयार्थ :- जो एक ही साथ त्रैकालिक त्रिभुवनस्थ...** देखो! काल और क्षेत्र लिया। **एक ही साथ त्रैकालिक त्रिभुवनस्थ (-तीनों काल के और तीनों लोक के) पदार्थों को नहीं जानता, उसे पर्यायसहित एक द्रव्य भी जानना शक्य नहीं है।** क्योंकि एक द्रव्य भी अनादि-अनन्त पर्यायवाला है ऐसा। आत्मा एक द्रव्य अनादि-अनन्त पर्यायवाला है तो उसकी जो अनादि-अनन्त पर्याय उसे—सर्व को न जाने तो एक को जानता नहीं। क्योंकि एक में सर्व का ज्ञान आ जाता है। आत्मा तीन काल आदि-अन्तरहित उसकी पर्याय। तो उसे जाने तो सर्व को जानना आ जाता है। समझ में आया ?

आत्मा स्वयं अनादि-अनन्त पर्यायवाला है या नहीं ? अब उसकी अनादि (-अनन्त) पर्याय में कितनी ही पर्यायें प्रगट हो, तब सर्वज्ञ पर्याय होती है और उस सर्वज्ञ पर्याय में सब ज्ञान आ जाता है। तो एक द्रव्य की भी अनादि-अनन्त पर्याय को जाने तो सर्व ज्ञात हो जाते हैं और यदि सर्व को न जाने तो उसकी अनादि-अनन्त पर्यायवाला एक द्रव्य भी जानता नहीं। समझ में आया ? क्या कहा ? न्याय से क्या कहते हैं ? कि सर्व को जानता नहीं, वह एक को जानता नहीं। क्योंकि यह आत्मा अनादि-अनन्त उसकी पर्याय है। वस्तु है न! वस्तु है न भगवान आत्मा और उसकी पर्याय त्रिकाल रहनेवाली है न। त्रिकाल रहनेवाली है तो उसकी त्रिकाली पर्यायें हैं या नहीं अनादि-अनन्त ? तो अनादि-अनन्त पर्याय में एक-एक पर्याय पूर्ण भी प्रगट जिसे होती है। तो ऐसी पूर्ण पर्याय और अपूर्ण, सबको जो जाने तो सर्व का ज्ञान उसमें आ गया। तो सर्व को न जाने वह पूरे आत्मा को भी जानता नहीं। यह यहाँ सिद्ध करना है। अन्यत्र और ऐसा कहेंगे 'एक को जाने वह सर्व को जाने।' समझ में आया ?

न्याय समझ में आता है कुछ ? पदार्थों को... पर्यायसहित एक द्रव्य भी जानना शक्य नहीं। भगवान आत्मा वस्तु है, अनन्त गुण हैं। वस्तु एक है, गुण अनन्त हैं और त्रिकाली पर्याय है अनादि-अनन्त। वस्तु को अनादि-अनन्त पर्याय हो या सादि-सान्त हो ? कहो, शान्तिभाई! कैसी ? अनादि-अनन्त। द्रव्य अनादि-अनन्त है तो उसकी

पर्याय भी अनादि-अनन्त ही होती है। अनादि-अनन्त में उसकी ज्ञानपर्याय की खिलावट जब पूर्ण हो, तब उसकी पर्याय और यह सब पर्याय का समुदाय वह द्रव्य है, तो वह पर्याय सर्व को न जाने तो सर्व को जाननेवाला जो अनादि-अनन्त एक ही पर्याय ऐसी अनन्त पर्यायवाला द्रव्य, उसे भी उसने नहीं जाना। गजब बात! समझ में आया?

टीका :- इस विश्व में... देखो! अब सिद्ध करते हैं। **एक आकाशद्रव्य है,...** जगत में एक आकाशद्रव्य है, **एक धर्मद्रव्य है,...** धर्मास्ति नाम का एक पदार्थ द्रव्य है अनादि-अनन्त। जीव और जड़ गति करने पर जिसे निमित्तरूप से गति देने का गुण है, ऐसा वह धर्मास्ति नाम का अरूपी पदार्थ है। **एक अधर्मद्रव्य है,...** अधर्मास्तिकाय नाम का एक द्रव्य है। **असंख्य कालद्रव्य हैं,...** यह जितने आकाश के प्रदेश हैं असंख्य, एक-एक प्रदेश पर एक-एक कालद्रव्य है। लोकाकाश के जितने प्रदेश असंख्यात कालाणु वस्तु-द्रव्य है। अरूपी कालाणु पदार्थ है।

मुमुक्षु : अस्ति धरानेवाला?

पूज्य गुरुदेवश्री : अस्ति धरानेवाला। समझ में आया?

अनन्त जीवद्रव्य हैं... काल की संख्या से... देखो! क्रमसर लिया है न। धर्मास्ति, अधर्मास्ति (आकाश) एक-एक है। काल असंख्य हैं, जीव अनन्त हैं। **और उनसे भी अनन्तगुणे पुद्गलद्रव्य हैं...** उनसे अनन्तगुणे रजकणों की संख्या है। समझ में आया? **और उनको ही प्रत्येक को...** द्रव्य की व्याख्या की पहले वस्तु की। अब प्रत्येक को **अतीत, अनागत और वर्तमान ऐसे (तीन) प्रकारों से भेदवाली निरवधि...** जिसकी मर्यादा नहीं। मर्यादा क्या हो अनादि-अनन्त को? **निरवधि वृत्तिप्रवाह...** जिसका अस्तित्व। **वर्तन करना; उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य; अस्तित्व, परिणति।** इतने अर्थ किये न? वह वृत्ति का अस्तित्व भी आया न? वृत्ति अर्थात् अस्तित्व। निरवधि जिसके अस्तित्व के प्रवाह का **भीतर पड़नेवाली (-समा जानेवाली) अनन्त पर्यायें हैं।** ऐसे अनन्त द्रव्यों के मर्यादारहित अस्तित्ववाले अनन्त पर्यायें-अंश-अवस्थायें हैं। कहो, समझ में आया?

इस प्रकार यह समस्त (द्रव्यों और पर्यायों का) समुदाय ज्ञेय है। क्या कहा? देखो! अब सिद्ध करते हैं अन्दर कि यह सब समुदाय, वह ज्ञेय है, जाननेयोग्य है। **उसी**

में एक कोई भी जीवद्रव्य ज्ञाता है। अनन्त ऐसे द्रव्य हैं और उनकी अनन्त अनादि-अनन्त। मर्यादा बिना की पर्यायें हैं। ऐसा जो द्रव्य और पर्यायें, वे ज्ञेय हैं। ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय हैं। परन्तु सामने एक ज्ञान है। जब ऐसी चीज़ होती है तो सामने भी सबको जाननेवाला ज्ञान एक जीवद्रव्य है। एक जीवद्रव्य का ज्ञान इतना है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? इतने सब ज्ञेय कि आकाश एक, धर्मास्ति एक, अधर्मास्ति एक, असंख्य कालाणु, अनन्त जीव और अनन्तानन्त परमाणु। उनकी अवधिरहित अनादि-अनन्त प्रत्येक द्रव्य की पर्यायें—वे सब ज्ञेय हैं। सब होकर ज्ञेय है। एक समुदाय। तब सामने उसमें से कोई भी जीवद्रव्य। कोई भी जीव ऐसा। चाहे वह जीवद्रव्य ज्ञाता है। एक ओर ज्ञेय है, तब एक ओर उसका जाननेवाला है। उसे जाननेवाले में यह ज्ञेय पूरा नहीं ज्ञात हो, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया? ज्ञात होनेयोग्य जब सत् पूर्ण है, अनन्त है, तो उसे उस प्रकार से जाननेवाला ज्ञान भी जीवद्रव्य का, एक-एक जीवद्रव्य का ऐसा है। आहाहा! समझ में आया? **इसी प्रकार यह समस्त समुदाय ज्ञेय है। उसी में एक कोई भी जीवद्रव्य** वापस सब होकर, ऐसा नहीं। क्योंकि उसमें तो अनन्त जीव तो आ गये हैं पहले। अनन्त आत्मायें आ गये और अनन्त आत्माओं की हद रहित अनन्त पर्यायें आ गयीं। उसमें का एक-एक आत्मा ज्ञाता है। आहाहा! समझ में आया?

अब यहाँ, जैसे समस्त दाह्य को दहकती हुई अग्नि... दाह्य अर्थात् जलनेयोग्य, उसे जलाती अग्नि, जलनेयोग्य को जलाती अग्नि। **समस्त-दाह्यहेतुक (-समस्त दाह्य जिसका निमित्त है ऐसा)...** जलनेयोग्य पदार्थ जिसमें अग्नि का निमित्त है। जलनेयोग्य पदार्थ जलानेवाली अग्नि को निमित्त है। ऐसे **समस्तदाह्याकारपर्यायरूप परिणमित...** समस्त दाह्य। जलने के भाव—पर्यायरूप से परिणमित। जलने के आकार के पर्यायरूप से, हों! यह तृण की अग्नि, लकड़ी की अग्नि, ऐसा कहा जाता है न? वह समस्त दाह्य जो जलनेयोग्य के आकारपर्याय से परिणमित। उसके आकार—उसका जो स्वरूप है, उस प्रकार से यहाँ परिणमित। **सकल एक दहन...** सब होकर एक अग्नि जलाना **जिसका आकार है...** —जिसका स्वरूप है। **ऐसे अपने रूप (-अग्निरूप में) परिणमित होती है,...** क्या कहते हैं? अग्नि का पूरा रूप ही इतना है कि जलनेयोग्य के आकार

परिणमे, वह अग्नि का पूरा रूप है। यह दृष्टान्त बहुत सरस है कि दाह्य—जलनेयोग्य जो पदार्थ हैं, उन्हें जलाता अर्थात् उनके आकाररूप परिणमता जितने जलनेयोग्य हैं, जितने जलनेयोग्य हैं, उतनों को जलाता हुआ स्वयं उनके आकार परिणमता अग्नि का वह पूरा रूप है। वही अग्नि का पूरा रूप और अग्नि का स्वरूप ही इतना है।

मुमुक्षु : अग्नि का स्वरूप....

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वरूप भी जाना नहीं। आहाहा!

यह तो दृष्टान्त है। सिद्धान्त तो आत्मा में लेंगे कि दाह्य आकार जलने के योग्य लकड़ी को जलाती हुई अग्नि, अग्नि में जो जलनेयोग्य पदार्थ तो निमित्तमात्र हैं और जितने जलनेयोग्य पदार्थ उसरूप के आकार अग्नि परिणमती है, उतने पूरेरूप से परिणमती है, तब वह अग्नि का पूरा रूप कहा जाता है। न्याय समझ में आता है? अमरचन्दभाई! अग्नि, यहाँ दाह्य जलनेयोग्य के आकार से यहाँ पूरा परिणमित हुआ, तब तो वह अग्नि का स्वयं का रूप हुआ, स्वयं का रूप इतना हुआ। अपना रूप ही इतना है। और उस रूप अग्नि न हो तो वह अग्नि का रूप ही पूरा हुआ नहीं। सुमनभाई! समझ में आया इसमें? यह तो लॉजिक की बात है न्याय से। कठिन पड़ता है। ठीक!

इसमें यहाँ सिद्ध क्या करना है? कि जितने ज्ञेय हैं, उतना ही उस ज्ञेय के आकार परिणमित ज्ञान जगत में होना चाहिए वस्तु का। जितने जलनेयोग्य पदार्थ हैं, उनके आकार परिणमित अग्नि है। अग्नि इतनी न हो तो वह अग्नि का पूरा रूप ही नहीं। समझ में आया? इसी प्रकार जितने ज्ञेय हैं,... यह कहते हैं, देखो! **ऐसे अपनेरूप में परिणमित होती है,...** वह अग्नि अपनेरूप परिणमती है। दाह्य के आकार, परन्तु वह अपना रूप है। दाह्य—जलनेयोग्य का वह रूप नहीं। समझ में आया? अद्वैत-द्वैत में डाला है न। क्या डाला है? उसमें डाला है? अद्वैत। ज्ञेय-ज्ञायक अद्वैत, ज्ञेय-ज्ञायक द्वैत। उसमें क्या दृष्टान्त है? है न ४७ नय। यह तो नया है न। व्यवहारनय। क्या कहा? कहाँ आया वह? अद्वैत। कितना है? २४ (वाँ नय)। **आत्मद्रव्य ज्ञानज्ञेय-अद्वैतनय से (ज्ञान और ज्ञेय के अद्वैतरूप नय से), विशाल ईंधनसमूहरूप से...** देखो, यहाँ आया। **विशाल ईंधनसमूहरूप से...** देखो! यहाँ आया। **विशाल ईंधनसमूहरूप से परिणत अग्नि की भाँति, एक है।** क्या कहते हैं, देखो! यह तो अद्वैत को दूसरी बार लक्ष्य में

लेना। वह अद्वैत तो कहा परम अद्वैत। यह नाम द्रव्यसंग्रह में नहीं आये थे? परम अद्वैत, परम अद्वैत उसे कहना। यह सब कहते हैं न, सब होकर एक अद्वैत, ऐसा नहीं। सब होकर एक आत्मा अद्वैत है, ऐसी सब गप्प मारते हैं न? समझ में आया? यह रजनीश और यह सब द्वैत-अद्वैत फैंकते हैं सबको। खोटी-खोटी गप्प। बेचारे बनियों को भान नहीं होता, इसलिए सुनने जाये। ओहोहो! बनिया अर्थात्... ? ऐई! वजुभाई! लोक में ठगने में और उसमें चतुर हों परन्तु इसमें तो ऐसे ... अब बिना ठिकाने के वहाँ सुनने जाये। अद्वैत सब होकर। आहाहा! कहाँ अद्वैत, भगवान!

अद्वैत तो परमात्मा उसे कहते हैं कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसमें एकाग्र होकर द्वैतपना, भिन्नपना, विकल्पपना न रहे, ऐसी आत्मा की निर्विकल्पदशा, उसे परमात्मा अद्वैत कहते हैं। समझ में आया? और यह अद्वैत उसमें डाला उस प्रकार का, देखो! आत्मद्रव्य कैसा है? ज्ञान-ज्ञेय अद्वैतनय से। मानो ज्ञान उन सबको पी गया हो, ऐसे **विशाल ईंधनसमूहरूप से परिणत अग्नि...** विशाल ढ़ेर ईंधन का हो, उसे जलाकर अग्नि एकरूप से परिणमी है, इसी प्रकार लोक के जितने ज्ञेय हैं, उनके ज्ञानरूप से परिणमकर एकरूप ज्ञान हुआ है, उसे अद्वैत कहा जाता है। आहाहा! यह है। समझ में आया?

आत्मद्रव्य ज्ञान-ज्ञेय-अद्वैतनय से (ज्ञान और ज्ञेय के अद्वैतरूप नय से), विशाल ईंधनसमूहरूप से परिणत अग्नि की भाँति, एक है। यहाँ तो एक सिद्ध करना है न! एक अर्थात् कि जितनी जलनेयोग्य चीज़ है, उन्हें जलाती अग्नि एकरूप है, एकरूप है, इसी प्रकार जितने ज्ञेय हैं, उन्हें जानता ज्ञान एकरूप है। समझ में आया? अरे! भगवान! तेरा मार्ग ही कोई अलग प्रकार का और दुनिया को बेचारे को सुनने को मिला नहीं। मारकर कहीं के कहीं, कहीं के कहीं। अद्वैत हो गया सब, जाओ। समझ में आया? आहाहा! विषय में वह अद्वैत हो जाता है, एकरूप विचार हो जाते हैं। मर जायेगा विषय में, सुन न! मूढ़ हो जायेगा वहाँ। अद्वैत कैसा वहाँ? समझ में आया? ऐसा। एक-दूसरे के प्रेम में दूसरे अर्पित हो जाते हैं तो दूसरा विचार रहता नहीं, इसलिए अद्वैत का दर्शन होता है। (वह तो) मिथ्यात्व का दर्शन है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान ज्ञानस्वरूप उस राग को और उस क्रिया को जानता हुआ ज्ञान एकरूप

हो, उसे अद्वैत कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! परमेश्वर वीतराग ऐसा कहते हैं। अद्वैत के दो प्रकार लिये—एक निर्विकल्परूप से आत्मा परिणमे, वह अद्वैत है, दर्शन-ज्ञान-चारित्र की, वस्तु की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय की एकतारूप से परिणमे, वह अद्वैत है, परम अद्वैत है। उसमें दूसरा भेद रहा नहीं। यह मोक्ष का मार्ग हुआ। यह परम अद्वैत है। और यह जितने ज्ञेय हैं, उन सब ज्ञेयों के ज्ञानाकाररूप से परिणमता आत्मा एकरूप होता है, उसे अद्वैत ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! तुम्हारे उस पठन-बठन में ऐसा नहीं आया होगा कहीं। वहाँ सब गप्प ही गप्प होती है। पैसा-बैसा खर्च किया है न! कहो, समझ में आया? ऐई! वजुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कि ऐसा पढ़े उसे दस हजार वेतन दे, ऐसा कहते हैं। पैसा ही अनन्त दे। क्योंकि पैसे को जानना है या नहीं? जानना है या नहीं? इसके पास तो आते नहीं, इसके पास तो ममता आती है। अब यहाँ तो पैसा और पूरी दुनिया को ज्ञान जाने। जितने ज्ञेय हैं, उसमें पैसा आ गया या नहीं? उन सब ज्ञेय के समूह को एक जीवद्रव्य ऐसा है कि सबको जाने, ऐसा एक ज्ञानरूप आत्मा है। आहाहा! कहो, समझ में आया? उसको इतने पैसे हों थोड़े आठ-दस हजार का वेतन धूल का। क्या है उसमें? यहाँ बड़ा तीन लोक का राज भी जिसकी ज्ञान की पर्याय में तुच्छ है जिसमें। आहाहा! ऐसा चैतन्य हीरा, भगवान आनन्द का कन्द प्रभु, अन्तर्मुख देखने से परमात्मा स्वयं ही स्वरूप है, ऐसे ज्ञान की जिसने कीमत और जिसने बहुमान करके अधिकपना पर से माना, जाना, देखा, उसके समक्ष तीन लोक का राज भी सड़े हुए तिनके जैसा है। समझ में आया? दूसरे प्रकार से कहें तो तीन काल-तीन लोक का ज्ञेय, वह एक ज्ञान का एक समय का विषय है। और इतना यदि ज्ञान न परिणमे तो वह ज्ञान ही नहीं, ऐसा कहते हैं। अग्नि दाह्याकार के सब जलनेयोग्यरूप से न हो तो वह अग्नि का पूरा रूप ही नहीं, इसलिए अग्नि ही नहीं, वह अग्नि का अस्तित्व ही नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

आचार्यों की कहने की पद्धति कितनी है! ऐसे भगवान आत्मा... आहाहा! चैतन्यमूर्ति प्रभु... कोई भी जीव लिया है वापस, हों! ऐसा कि वे सब होकर एक, ऐसा भी नहीं। आहाहा! क्योंकि अनन्त आत्मा तो ज्ञेय हैं, उसमें आ गये हैं। अनन्त आत्मा हैं,

उसमें केवली भी आ गये न? अनन्त जीवद्रव्य हैं, उसमें अनन्त निगोद भी आ गये और अनन्त सिद्ध भी आ गये, लाखों केवली आ गये। भगवान विराजते हैं यहाँ महाविदेह में। तीर्थंकर आ गये जीवद्रव्य में। तो उन सब ज्ञेयरूप से का एक ढ़ेर—समूह उसे जो ज्ञान एक जीवद्रव्य का एक ज्ञान पूरी रीति से परिणमकर न जाने तो वह आत्मा पूरा स्वयं हुआ नहीं। न्याय समझ में आता है? ज्ञानचन्दजी! तुम्हारा तो ज्ञानचन्दजी नाम है। कहो, समझ में आया? आहाहा! कैसी शैली दी है!

भगवान! एक बार दृष्टान्त तो समझ। अग्नि का रूप जलनेयोग्य को पूरा जलाकर अपने रूप से पूरा न हो तो वह अग्नि नहीं, वह दहन नहीं, वह ज्वलन नहीं। समझ में आया? अपूर्ण और अधूरा रूप, वह कहीं पूरा रूप है? वह अपने पूरे रूप में नहीं, इसलिए अग्नि नहीं। आहाहा! समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा... देखो! **वैसे ही समस्त ज्ञेय को जानता हुआ ज्ञाता...** देखो! आहाहा! **समस्त ज्ञेय को जानता हुआ ज्ञाता...** चाहे तो साधक हो यहाँ। समझ में आया? वह भी समस्त ज्ञेय को जानता ज्ञाता है। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ परमात्मा एक समय में पूर्ण परिणमित हुए हैं, उसी प्रकार यहाँ भी ज्ञान में पूर्ण ही परिणमन सब ज्ञेय पूरे, उनका ज्ञान है यहाँ। एक प्रत्यक्ष है, परोक्ष है, इतना अन्तर है। यहाँ तो प्रत्यक्ष क्षायिक ज्ञान की बात चलती है, अपूर्ण ज्ञान की बात नहीं। यह आगे कहेंगे। कहीं है न अर्थ में? कहेंगे। वरना तो साधकभाव में भी ऐसा है, परन्तु वह बात यहाँ सिद्ध नहीं करनी है। समझ में आया? अग्नि का वास्तविकरूप, दाह्य अर्थात् जलनेयोग्य जितनी चीज़ें हैं, उन्हें जलाते हुए अपने अग्नि के आकाररूप अग्नि होती है, ज्ञेय के आकार नहीं। उसी प्रकार जितने ज्ञेय हैं, उन्हें जानता हुआ भगवान अपने ज्ञान के आकाररूप से परिपूर्ण परिणमता है और इस प्रकार यदि परिपूर्णरूप से न परिणमे तो वह ज्ञान ही नहीं, वह आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया?

वैसे ही समस्त ज्ञेय को जानता हुआ आत्मा समस्तज्ञेयहेतुक... ज्ञेय जिसमें निमित्त हैं, ऐसे **समस्तज्ञेयाकारपर्याय....** ज्ञेय के स्वरूप की पर्याय से परिणमता हुआ, अपने स्वरूप से, ऐसा। वह कहीं पर का स्वरूप नहीं। निमित्त है न वह। **समस्तज्ञेयहेतुक समस्तज्ञेयाकार...** उसकी पर्याय। जैसा ज्ञेय का स्वभाव है, उस प्रकार से ज्ञान अपनी

पर्याय से **परिणमित सकल एक ज्ञान जिसका आकार है...** कहो, पूरा परिपूर्ण एक ज्ञान जिसका स्वरूप है। समझ में आया? **ऐसे निजरूप से**—निजरूप से, आत्मारूप से **जो चेतनता के कारण स्वानुभवप्रत्यक्ष है उस-रूप परिणमित होता है।** चेतनपने को। वापस न्याय दिया। अपनेरूप से सब ज्ञेय को जानता हुआ ज्ञान अपनेरूप से, सब ज्ञेयों को जानता हुआ ज्ञान अपनेरूप से, चेतनपने के कारण। वापस क्यों अपनेपने के कारण अपनेरूप से? कि चेतनपने के कारण। वह अग्निपने के कारण, यहाँ चेतनपने के कारण। ओहोहो! आत्मा तो देखो इतना आत्मा। वह आत्मा कितना? वह भगवान ने कहा इतना आत्मा चाहिए। अज्ञानियों ने कहा, वह आत्मा नहीं। उन्हें—अज्ञानियों को आत्मा की खबर नहीं।

एक आत्मा एक समय की पर्याय में पूर्ण ज्ञेय के समूह के आकार से परिणमे, इतना ज्ञान, ऐसी एक समय की पर्याय, ऐसा आत्मा, उसे आत्मा कहते हैं। कहो, मगनभाई! देखो यह! यह वीतरागमार्ग। लोगों को खबर नहीं होती और बाहर से लगाई, यह किया और वह किया। कर्ता... कर्ता... समझ में आया? एक बार कहा था। धर्मदासजी कहते हैं, जो कोई प्राणी सर्वज्ञ भगवान के ज्ञान से एक क्षण भी पृथक् पड़े, वह मिथ्यादृष्टि संसारी है। आहाहा! क्या कहते हैं? जो कोई सर्वज्ञ ज्ञान से पृथक् पड़े... सर्वज्ञ ज्ञान सबको जानता है और यहाँ ज्ञात होता है और वह जानता है। बस इतना। ज्ञात होता है, यहाँ जानता है इतना। इससे कोई सिद्ध भगवान से पृथक् पड़े या विकल्प का कर्ता हो और पर से मुझे ज्ञान होता है, ऐसा माने, वह सिद्ध से भिन्न पड़ा। संसारी मिथ्यादृष्टि जीव है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा, समझ में आया?

फिर से। सर्वज्ञ परमात्मा, सिद्ध भगवान एक समय में सब है, ऐसा जानते हैं। वे जानते हैं, वह अपनेरूप से होकर अपना रूप अपना इतना है, इससे जानते हैं। समझ में आया? इस प्रकार से साधकजीव पर रागादि और पर आदि को स्वयं जानने के परिणमनरूप से जानने की पर्याय का कर्ता और परिणमन है उसका। उन्हें पूरा है, इसे अधूरा है इतना। परन्तु उसमें से हटकर यह विकल्प मेरा कर्तव्य है, इस विकल्प को जाननेवाला ज्ञान वह हो गया और उसमें उपरान्त होकर विकल्प मेरा कर्ता है, विकल्प मेरा काम है, वह सर्वज्ञपद से—ज्ञानपद से भिन्न पड़ गया। अमरचन्दभाई! आहाहा!

वह मिथ्यादृष्टि संसारी है। उल्टी दृष्टिवाला संसार में भटकनेवाला है, ऐसा कहते हैं। ऐई! जेठालालभाई! धर्मदास क्षुल्लक में आता है।

न्याय तो ऐसा प्राप्त करना है वह कि जैसे सर्वज्ञ प्रभु परमात्मा एक समय में पूरे ज्ञेयों को एक समय में जानते हैं। जानते हैं बस इतना। उसी प्रकार साधक जीव का ज्ञानस्वरूप, मैं तो ज्ञान हूँ, ज्ञान हूँ। राग भी नहीं, निमित्त भी नहीं और शरीर नहीं। और ज्ञान के ज्ञेय में, द्रव्य में और पर्याय में राग नहीं। उस राग को और सबको जानता हुआ ज्ञान, जानने की क्रियावाला ज्ञान, वह तो उसका स्वरूप है, इस प्रकार से। भले अपूर्ण है। परन्तु इससे आगे जाकर, यह राग मेरा कार्य है, राग का जानना, वह पर्याय मेरा कार्य है, उसे छोड़कर राग मेरा कार्य है, ऐसा जो मानता है, वह ज्ञानस्वभाव के ज्ञाता-दृष्टा से विपरीत भाव में चला गया है। समझ में आया? सुमनभाई! समझ में आया या नहीं यह? क्या कहा बोलो?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब तुम बहुत बुद्धिवाले हो, इसलिए हमारे जरा (पूछना पड़े)। क्या कहा यह अन्तिम? ऐं... ऐं... हो जाये, ऐसा है यहाँ। भीखाभाई तो करे, यह बुद्धिवाले व्यक्ति, लो। ऐई! भीखाभाई!

मुमुक्षु : आपके आगे प्रभु सब ही....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बचाव खोटा है।

फिर से। सर्वज्ञ परमेश्वर, वह आत्मा की पूर्ण पर्याय है और पूर्ण पर्यायरूप से यदि न हो तो वह आत्मा ही पूरा नहीं। हुआ? तो वह तो सब ज्ञेय का जाननेवाला है। हुआ? ऐसे अब नीचे, साधकजीव आत्मा है, वह ज्ञानस्वरूप से ही है, शुद्ध और आनन्दस्वरूप से है, ऐसा जो ज्ञान हुआ है, उस ज्ञान में अपने अतिरिक्त जितने ज्ञेय रागादि हैं, उन सम्बन्धी का ज्ञान का परिणमन यहाँ है। वह तो उसका स्वरूप है। उसे उल्लंघकर ऐसा मानने जाये कि यह राग विकल्प है, वह मेरा कर्तव्य है, इसका अर्थ कि ज्ञेय है, वह मेरा कार्य है। ज्ञेय है, वह मेरा कार्य है। ज्ञेय का ज्ञान, वह मेरा कार्य है, ऐसा छोड़कर राग, वह मेरा कार्य है, देह वह मेरा कार्य है (—ऐसा मानता है वह) उस

ज्ञान की ज्ञाता-दृष्टा के स्वभाव की हद से आगे जाकर मिथ्यादृष्टि होकर संसारी है। चिमनभाई! समझ में आया? मगनभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञान में पूरा स्वरूप....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। क्योंकि वह स्वरूप है, वह ज्ञानस्वरूप है। तो ज्ञानस्वरूप है, ऐसा जहाँ जाना, जाना अर्थात् उसे ज्ञान का ही भाव रहा, उसे ज्ञेय सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ रहा, अपने सम्बन्धी का ज्ञान और ज्ञेय सम्बन्धी का ज्ञान। परन्तु ज्ञेय मेरा है और वह ज्ञेय मेरा कर्तव्य है अथवा ज्ञेय से मुझे यह ज्ञान होता है, यह दृष्टि तो विपरीत हो गयी। समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म आ गया। परन्तु अब... सुमनभाई तुम्हारे बड़े बुद्धिवाले कहलाते हैं, तो भी जवाब देने में ऐं... ऐं... हो गया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई! तुम कितनी बार कहते हो। ऐसा सुना है हमने तो। हमने सुना है। कोई कहता था कि रामजीभाई कहते हैं सुमनभाई...

मुमुक्षु : बापू से अधिक।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, बस ऐसा कहा था। ऐसा आया था। यह आया था। यह शब्द आया था, बस। ऐई! अपने तो यहाँ रामजीभाई बुद्धिवाले कहलायें। तो वे कहे कि यह मुझसे (अधिक) बुद्धिवाला है। ऐई! जयन्तीभाई! अपने तो शब्द सुना, ऐसी बात करते हैं। आहाहा! यह तो पूरी बात ही अलग है न, बापू! ऐई! डॉक्टर! डॉक्टर को ऐं... ऐं... हो जाता है, लो जवाब देते।

मुमुक्षु : यह बुद्धि का प्रकार अलग है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बुध्यते इति बुद्धि। जाने, वह बुद्धि। जाने, वह बुद्धि। बुध्यते इति बुद्धि।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बुद्धि ही नहीं। ज्ञेय, राग और पर, वे मेरे अथवा उनसे मुझे लाभ होता है अथवा वे हैं तो मेरी ज्ञान की पर्याय हुई, वह तो मिथ्यादृष्टि हुआ। वह

तो ज्ञेय को जाननेवाला न रहा, ज्ञेय को अपना माननेवाला रहा। समझ में आया या नहीं मास्टर? यह तो न्याय से है।

यहाँ क्या कहा? देखो! उसमें जीवद्रव्य कोई एक ज्ञाता है, ऐसा कहा है। जैसे अग्नि एक है, सामने दाह्य—जलनेयोग्य है। तो अग्नि एक है तो सबको जलाने के आकार से स्वयं परिणमकर अग्निरूप होती है। उसी प्रकार एक जीवद्रव्य। अकेला जीव, हों! वापस सब जीवद्रव्य भी नहीं। (सब इकट्ठे होकर) ऐसा भी नहीं। आहाहा! सब अनन्त जीव हैं, उनमें का कोई एकाध जीव लो कोई भी, ज्ञाता है। **समस्तज्ञेयहेतुक...** उस ज्ञाता को जितने ज्ञेय हैं, उनका निमित्तपना ज्ञान में, निमित्तपना और **समस्तज्ञेयाकारपर्याय से...** स्वयं उपादानरूप से परिणमित है, ऐसा कहते हैं। ज्ञेय के आकार की पर्याय से परिणमित अपना स्वरूप है कि **सकल एक ज्ञान जिसका आकार है...** पूरा ज्ञान जिसका स्वरूप है, पूरा ज्ञान जिसका स्वरूप है। **ऐसे निजरूप से—जो चेतनता के कारण स्वानुभवप्रत्यक्ष है उस-रूप—परिणमित होता है।** वह वास्तव में आत्मा है। समझ में आया? आहाहा! कितना हल कर डाला! यह निमित्त से होता है, व्यवहार से ज्ञान होता है, व्यवहार से निश्चय होता है, ढींकणा... कुछ नहीं, सुन न! मुफ्त का... आहाहा!

भगवान! तू ज्ञानस्वरूप है न, प्रभु! ज्ञान में यह व्यवहार तो ज्ञेय परसमुदाय में गया। तेरी पर्याय में, तेरे गुण-द्रव्य में नहीं आया यह। उस सम्बन्धी का तेरा सामर्थ्य जो है, ऐसा स्व-परप्रकाशकरूप से पूर्ण रीति से परिणमना या अधूरी रीति से परिणमना। यहाँ सिद्धान्त में तो पूरे की बात है अभी। परन्तु उसके साथ अपने नीचे मिलाना हो। भले कम ज्ञान है। वह भी ज्ञाता का ज्ञान है। वह राग का ज्ञान है, निमित्त का ज्ञान है, (ऐसा नहीं)। यहाँ तो कहा समस्त ज्ञेयहेतुक। वह तो ज्ञेय तो निमित्त है। उपादान तो अपना ज्ञानस्वरूप से अपनी दशा है। उसके बदले वह ज्ञान हूँ, ज्ञाता हूँ—ऐसा न जानकर... सर्वज्ञ जैसे तीन काल को जानते हैं, उसी प्रकार यह उस-उस काल की पर्याय को उस-उस रीति से मुझसे पर भिन्न है, उसका मेरा ज्ञान उसके सम्बन्धी का मेरा ज्ञान मुझरूप से परिणमता है। ऐसा न जानकर यह राग, वह मेरा, राग से लाभ होता है और राग है तो मुझे ज्ञान की पर्याय होती है। वह तो निमित्त था। उसके बदले उससे यहाँ

हुआ तो उपादान ज्ञान उसके कारण से हुआ। उसे ज्ञान का वास्तविक स्वरूप जो अपने से होना, उसका रूप उसने जाना नहीं। समझ में आया? कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? मगनभाई! यह बाहर की बातें सब अलग हैं, हों! ऐसे बकवास मारना यह बाहर में। बाहर में तो यह बेचो और करो, लिखो, बाहर में बहुत होशियार कहलाये लो! ऐई! वजुभाई! यह वस्तु समझे उसे ज्ञानकला कहा जाता है। आहाहा! क्या परन्तु कथनपद्धति की रीति है और वाच्य को समझाने की!

भगवान! तू तो कोई भी जीव ले न! तू जीव है या नहीं? तू जीव है न? तो चेतनपने के कारण। ऐसा कहा न वापस? चेतनपने के कारण। वह तो स्वयं से स्वयं ज्ञात हो, ऐसा है। उसे विकल्प है, इसलिए ज्ञात हो; राग है, इसलिए ज्ञात हो, ऐसा आत्मा है ही नहीं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा... आत्मा तो सब कहते हैं, परन्तु सर्वज्ञ ने कहा हुआ ऐसा आत्मा जाने बिना इसने सम्यक् आत्मा जाना, ऐसा नहीं कहा जाता। आहाहा!

समस्तज्ञेयहेतुक समस्तज्ञेयाकारपर्यायरूप परिणमित... ज्ञेय के आकार की पर्याय अपनी है, ऐसा। **परिणमित सकल एक...** सकल (एक) है न? अर्थात् पूरा परिपूर्ण। **एक ज्ञान जिसका...** स्वभाव है। एकरूप परिणमन जिसका स्वभाव है। अधूरा उसका स्वभाव नहीं, पर के कारण से होना, ऐसा स्वभाव नहीं। पर निमित्त होने पर भी नैमित्तिक पर्याय निमित्त से हुई है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? 'ऐसा मार्ग वीतराग का भाषित श्री भगवान।' केवली छद्मस्थ को विनय करे, ऐसा नहीं परन्तु 'ऐसा मार्ग वीतराग का भाषित श्री भगवान।' समझ में आया? ज्ञान में तो सब ज्ञेय हो गया, सब ज्ञात हो गया। अब उसे किसका विनय करना रहा? केवली किसका विनय करे?

मुमुक्षु : अपने ज्ञान का।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो परिणमन है वह है। विशेष ज्ञान परिणमन है, वह परिणमन है। किस गुरु का वह विनय करे? समझ में आया? ओहोहो! वस्तुस्थिति से सिद्धान्त का तत्त्व ऐसा है। सिद्ध हुआ तत्त्व ऐसा है, सिद्धान्त अर्थात्। समझ में आया? क्यों चेतनजी! बचाव करते थे न पहले बहुत इसमें से। केवलज्ञानी छद्मस्थ का विनय

करे। ऐसा पहले बहुत करते थे भाई को बचाने के लिये। खबर है। उसका ऐसा हो और उसका ऐसा हो, खबर है। तर्क करते थे न बचाव करने के लिये।

बापू! ज्ञान तो ऐसी चीज़ है। वह तो ज्ञान सर्व को जाने, वह सर्व है; इसलिए वह जानता है—ऐसा नहीं। सर्व है, वह तो ज्ञेय हो गये। वे तो निमित्त में गये और सर्व है; इसलिए यहाँ ज्ञान जानता है, ऐसा नहीं। ज्ञान का ही ऐसा पूरा सामर्थ्य है कि सर्व को और अपने को एक समय में पूर्ण रीति से परिणमकर जाने, उसका नाम ज्ञान है। यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार है। तो ज्ञान का स्वभावभाव कितना अपना, वह यहाँ प्ररूपित करते हैं। ज्ञानचन्दजी! आहाहा! अलौकिक बात अलौकिक! कहाँ पहुँचा देते हैं! समझ में आया?

भाई! तू तो आत्मा है न, और आत्मा चेतनपने के कारण। कहीं राग के कारण आत्मा राग है? चेतनपने के कारण स्वयं ज्ञेय जितने हैं, उनके आकार अर्थात् उनका जो स्वरूप है, ऐसा यहाँ जानने के स्वरूपरूप से आत्मा परिणमता है। तब पूर्ण रूप तब वह आत्मा और वह आत्मा की मर्यादा कहलाती है। इसके अतिरिक्त आत्मा की मर्यादा दूसरी हो सकती नहीं। जेठालालभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उसका स्वरूप ही इतना है। कहा न। कोई भी ज्ञाता, वह सब ज्ञेय को अपने स्वरूप से अपने में परिणमकर यदि इतना न हो तो वह आत्मा ही नहीं। वह अग्नि ही नहीं। दाह्याकार से पूर्णरूप से न जले और स्वयं अग्नि का रूप पूर्ण न हो तो वह अग्नि नहीं। उसके रूप में आयी ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा, एक-एक आत्मा प्रभु आत्मा। ओहो! चाहे जो उसे विकल्प उठो, वाणी हो, कर्म हो, वे तो सब ज्ञेय हैं न! इस ज्ञान में वे ज्ञेय हैं, वे जानने के अपने चेतनपने द्वारा वह जानता है। उस ज्ञेयपने द्वारा ज्ञान को जानता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? आहाहा! ज्ञेय के कारण से नहीं, ज्ञेय की अस्ति है, इसलिए नहीं, ज्ञेय है निमित्तरूप से, इसलिए इतनी सहायता मिली ज्ञान परिणमने को, ऐसा नहीं। आहाहा! देखो! एक तेरा ज्ञानतत्त्व कितना है, वह कहते हैं यहाँ। समझ में आया? ऐसे-ऐसे

अनन्त गुणों का रूप, अनन्त पर्याय का रूप पूरा द्रव्य, वह आत्मा है। आहाहा! जेठालालभाई! समझ में आया?

समस्तज्ञेयाकारपर्यायरूप से परिणमित... क्या? **सकल एक ज्ञान...** पूर्ण पूरा ज्ञान जिसका स्वभाव है, ऐसे निजरूप से—अपनेरूप से—आत्मारूप से चेतनपने के कारण। अपनेपने के—चेतनपने के कारण। उस ज्ञेयपने के कारण, ऐसा नहीं। **स्वानुभवप्रत्यक्ष है...** वह तो स्व अनुभव से ज्ञान अपने को प्रत्यक्षरूप से और पर को जाने उसरूप से परिणमता है, उसका नाम आत्मा कहा जाता है। समझ में आया? लो। परोक्ष रहे, वह नहीं आत्मा। क्योंकि उसमें प्रत्यक्ष होने का तो प्रकाश नाम का गुण है। प्रकाश नाम का भगवान आत्मा में एक गुण है कि जिस गुण के कारण आत्मा प्रत्यक्ष होता है। परोक्ष रहे, वह आत्मा नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान चैतन्यमूर्ति प्रभु वस्तु तो वस्तु, परन्तु उसका चैतन्यपने के गुण द्वारा अपने परिपूर्ण पर्यायरूप से परिणमता है, वह प्रत्यक्षरूप होकर परिणमता है। समझ में आया?

स्वानुभवप्रत्यक्ष है उस-रूप—परिणमित होता है। स्वयं अपने अनुभव से अपनी जो पर्याय पूर्ण है, उसे प्रत्यक्ष करता हुआ उसरूप परिणमता है। **इस प्रकार वास्तव में द्रव्य का स्वभाव है।** समझ में आया? आज वह पत्र आ गया था मौके से, भाई! पुस्तक में उसमें नहीं? तुम्हारे घर से आ गया था अभी। वह १७ वर्ष पहले नहीं था साकरलाल ने किया था कि यह भांजगढ़ खड़ी हुई है सोनगढ़ से, द्रव्य-गुण-पर्याय की। अभी तक कुछ नहीं था। अपने में ऐसा द्रव्य-गुण-पर्याय का... ऐसा लिखा है। वह पृष्ठ आज निकल गया आज। वह था न उसमें से। तुम्हारे यहाँ पड़ा था कहीं। फिर आज यहाँ आ गया। यह पढ़ता था उसमें से निकल गया। खड़ी होती नयी भांजगढ़ (सिरपच्ची)। ९१ के वर्ष से। ९१ के वर्ष। समझे? अभी मन्दिरमार्गी जैनों में द्रव्य-गुण-पर्याय की भांजगढ़ खड़ी होती आती है। समझे न? उसका कारण सोनगढ़ के सन्त कानजीस्वामी हैं। इसके कारण तो वे हैं। उन्होंने दिगम्बर जैनों के पंचास्तिकाय इत्यादि आगम और समयसार इत्यादि परमागम, लो! वाँचना शुरु किया, वह दिगम्बर जैन आगम और परमागमों में बहुभाग में द्रव्य, गुण और पर्याय की ही विचारणा है। श्वेताम्बर जैनों के ३२ या ४५ आगमों में द्रव्य, गुण और पर्याय को बहुत ही स्पष्टता से

प्रत्यक्षरूप से समझाया नहीं। ... ९१ के वर्ष से भांजगढ़ खड़ी हुई है यह सब। नहीं था सब उसके बदले (होता है) ? लो! नहीं।

श्वेताम्बर जैनों में आज से ३०० वर्ष ऊपर हो गये यशोविजय उपाध्याय ने द्रव्य-गुण-पर्याय का ... वर्णन किया है। ऐसा स्पष्ट वर्णन उनकी पूर्व के कोई आचार्य ने किया नहीं, ऐसा कहा न वापस ? दिगम्बर में द्रव्य और गुण की पर्यायें अलग-अलग होती हैं। श्वेताम्बर गुण की अलग पर्यायें नहीं स्वीकारते द्रव्य और गुण का अभेद गिनकर, इसलिए मात्र द्रव्य की पर्याय स्वीकारते हैं। इस बावत में सोनगढ़ के कानजीस्वामी का... ऐसा लिखा है। प्रचार काम बहुत जोरदार होने से... (संवत्) १९९१ के वर्ष से। काम बहुत जोरदार होने से अभी श्वेताम्बर जैनों में कोई-कोई पण्डित मुनि भी द्रव्य की पर्याय की भाँति गुण की पर्याय भी अलग पर्याय होती है, ऐसा मानने लगे हैं। बहुत लम्बा-लम्बा लेख है। उसमें उतर जाते हैं लम्बा। कहो, समझ में आया इसमें ?

यह द्रव्य, गुण और पर्याय। द्रव्य किसे कहना ? गुण किसे कहना ? पर्याय किसे कहना ? पर्याय का पूर्ण सामर्थ्य किसे कहना ? एक-एक ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन का उसका पूरा सामर्थ्य किसे कहना ? जाने बिना... फिर आगे लेंगे द्रव्य-गुण-पर्याय जाने बिना समकित होता नहीं, इसलिए वह आवश्यक है, ऐसा बहुत लिखा है। समझ में आया ? देखो न, यह बात तो यहाँ बताते हैं। ऐसी बात स्पष्ट कहीं दूसरे आगमों में नहीं। एक ज्ञाता, अनन्त ज्ञेयों को एक समय में उनकी उपस्थिति होने पर भी, उनके आश्रय बिना, उनकी अस्ति बिना चेतनपने के कारण, अस्ति उसकी चैतन्यपने की है इसलिए पूर्णरूप से परिणमता है, उसे द्रव्य का स्वभाव और आत्मस्वभाव कहा जाता है। यह उसकी यथार्थ प्रतीति करे तो द्रव्यदृष्टि हुए बिना रहती नहीं। लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १२, शुक्रवार, दिनांक १८-१०-१९६८
गाथा - ४८-४९, प्रवचन - ३९

यह प्रवचनसार। ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। ४८ गाथा। अन्तिम आया। **जो सबको नहीं जानता वह अपने को (-आत्मा को) नहीं जानता।** टीका। क्या कहते हैं? देखो, अब भावार्थ। यहाँ कहते हैं कि जो सर्व को न जाने, वह एक को न जाने। क्यों? कि ज्ञान का स्वभाव, पर्याय में सर्व को जानना, ऐसा उसका स्वरूप है। जो ज्ञानपर्याय परिपूर्णरूप से पर को जाने, वह तो अपना स्वभाव है। इस प्रकार से पर को अपनेरूप, पर का ज्ञान अपनेरूप होकर न जाने तो वह आत्मा सर्व को जानता नहीं, इससे अपने को भी जानता नहीं। क्योंकि वह तो अपना रूप इतना है। समझ में आया? ज्ञान का स्वरूप ही चेतनपने द्वारा... ऐसा आया था न ऊपर? देखो! **स्वयं चेतनता के कारण स्वानुभवप्रत्यक्ष होने पर भी—परिणमित नहीं होता,...** ऐसा। आत्मा का स्वभाव चेतनपना है, उस द्वारा परिपूर्ण तीन काल-तीन लोक के पदार्थों को जाननेरूप पर्यायपने यदि परिणमे नहीं तो वह सर्व को जानता नहीं, इसलिए एक को जानता नहीं। इसलिए स्वयं ही परिपूर्ण हुआ नहीं। समझ में आया?

दृष्टान्त दिया, देखो! **भावार्थ :- जो अग्नि...** भावार्थ। **काष्ठ,...** अर्थात् लकड़ी। **तृण, पर्ण...** अर्थात् पत्ते। **इत्यादि समस्त दाह्य को...** जलनेयोग्य जितने पदार्थ हैं, उन्हें **दाह्यपदार्थों को नहीं जलाता, उसका दहनस्वभाव (काष्ठादिक समस्त दाह्य जिसका निमित्त है ऐसा) समस्तदाह्याकारपर्यायरूप परिणमित न होने से...** अग्नि, जलनेयोग्य जो पदार्थ हैं, उस रीति से अग्नि यदि न परिणमे तो अग्नि का रूप ही पूरा होता नहीं। समझ में आया? इतना आत्मा है, ऐसा सिद्ध करते हैं।

मुमुक्षु : आत्मा चाहे जितना हो, उसमें हमारे क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : ठीक! ऐसा आत्मा है, वह उससे प्रतीति करे तो सम्यग्दर्शन होता है, ऐसा कहते हैं। तो उसे सुख होता है। खोटेरूप से आत्मा को माने तो उसे दुःख

होता है और मिथ्यात्व होता है।

मुमुक्षु : भले मिथ्यात्व होता हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो हुआ। मिथ्यात्व हो तो भटके चार गति में। वह तो है।

मुमुक्षु : सुखी तो हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:खी होता है न। दु:खी होता है चार गति में। कहो, समझ में आया?

आत्मा सर्वज्ञ ने देखा और सर्वज्ञ हुए, वे सर्व के जाननेवाले हुए, तो सर्व को जाननेवाले हुए, वे अपने रूप से ही हुए हैं। इतना ही अपना रूप है। इस प्रकार से जो सर्व को जाननेरूप न हो तो स्वयं जो है, इतना स्वयं हुआ नहीं तो उसे (स्वयं को) जानता नहीं। समझ में आया?

दाह्य जिसका निमित्त है, ऐसा समस्तदाह्याकारपर्यायरूप परिणमित न होने से अपूर्णरूप से... अर्थात् परिपूर्णरूप से परिणमता नहीं। कौन? अग्नि। इसलिए **परिपूर्ण एक दहन जिसका स्वरूप है...** दहन अर्थात् जलाना, ऐसा जिसका स्वरूप, **ऐसी वह अग्नि अपनेरूप ही पूर्ण रीति से परिणमित नहीं होती...** पूर्ण रीति से कहा वह। जलनेयोग्य पदार्थ को जलाकर स्वयं अग्नि अपने रूप से पूर्ण न हो तो अग्नि अपने रूप में ही आयी नहीं। रतिभाई! सूक्ष्म है यह सब। कहो, समझ में आया इसमें? तू कितना है और इतना है, इस प्रकार से उसे पहिचानकर प्रतीति करे, अन्तर्मुख इतने आत्मा को प्रतीति करना कि जिसके ज्ञान का परिणमन लोकालोक तीन काल-तीन लोक के पदार्थ को स्वयं पर्याय में जाने उस रूप से, तब तो उसका रूप पूरा होता है और इस प्रकार से न हो तो उसका रूप पूरा होता नहीं। तो वह पूरा आत्मा कहलाता नहीं। कहो, मास्टर! समझ में आया?

यहाँ तो आत्मा ही, सर्व को जाने, वह आत्मा को जाने, यह बोल है अभी। बाद में आयेगा (कि) आत्मा को जाने, वह सर्व को जाने। उसी प्रकार अग्नि के न्याय से। अग्नि दूसरे सबको जलाकर अग्नि अग्निरूप से—पूर्णरूप से न परिणमे तो वह अग्नि अधूरी रहती है और अधूरी रहे, वह अग्नि का परिपूर्ण रूप सच्चा हुआ नहीं। कहो, बराबर है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं हुई। उसका पर्याय का स्वभाव पूरा किया नहीं तो ऐसा स्वभाव ही नहीं। तो उसका स्वभाव अधूरा है, अधूरा उसका स्वरूप कहलाता नहीं। समझ में आया?

अग्नि दहन है। वह जलनेयोग्य दाह्याकाररूप से परिणम कर दहनस्वभावरूप से परिपूर्णरूप से न परिणमे तो अग्नि का पूरा रूप होता नहीं। वह वास्तव में अग्नि ही नहीं। क्योंकि वस्तु हो, वह परिपूर्ण स्वरूप से ही होती है। समझ में आया? **उसी प्रकार यह आत्मा समस्त द्रव्य-पर्यायरूप समस्तज्ञेय को नहीं जानता,...** जगत के तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय को अपने चेतनपने द्वारा, चेतने का स्वभाव है, इसलिए चेतनपने द्वारा पर के सब तीन काल-तीन लोक को जो जानता नहीं, जाननेरूप परिणमता नहीं। **उसका ज्ञान (समस्त ज्ञेय जिसका निमित्त है ऐसे) समस्तज्ञेयाकारपर्यायरूप परिणमित न होने से अपूर्णरूप से परिणमित होता है—परिपूर्ण रूप से परिणमित नहीं होता, इसलिए परिपूर्ण एक ज्ञान जिसका स्वरूप है, ऐसा वह आत्मा अपनेरूप से ही पूर्ण रीति से परिणमित नहीं होता...** सूक्ष्म बात है। भगवान आत्मा चेतनस्वभावपने के कारण, जितना चेतनेयोग्य अर्थात् ज्ञात होनेयोग्य तीन काल-तीन लोक के ज्ञेय हैं, उन ज्ञेय को जाननेरूप चेतनपने द्वारा, ज्ञान की पर्यायरूप से उतना परिपूर्णरूप से परिणमे नहीं तो उसका रूप पूरा होता ही नहीं। और परिपूर्णरूप से परिणमे नहीं तो वह पर को जानता नहीं और पर को जानता नहीं तो परिपूर्णपना अपना है, उसे भी जानता नहीं। समझ में आया?

यहाँ राग-द्वेष को मानना-फानना, यह बात यहाँ नहीं। उसका स्वभाव चैतन्य है। राग-द्वेष, पुण्य-पाप इसका कोई स्वभाव नहीं। तथा पर का करना या पर का टालना, ऐसा इसका स्वभाव नहीं। क्योंकि उसे पर से कुछ लेना, ऐसा इसका स्वभाव नहीं। जो लेना है, वह सब अन्दर में है। समझ में आया? ऐसा आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप, ज्ञात होनेयोग्य जितनी ज्ञेय अर्थात् ज्ञात होनेयोग्य हैं तीन काल-तीन लोक, ऐसे ज्ञेयरूप से, जिसके ज्ञान की पर्याय में वे ज्ञेय निमित्त हैं, ऐसा ज्ञान अपनेरूप से उसे जानने की पर्यायरूप से अपनेरूप से स्वयं न हो तो वह ज्ञान अपनेरूप पूरा हुआ नहीं तो आत्मा ही

पूरा हुआ नहीं। आत्मा पूरा हुआ नहीं, उसे वास्तव में आत्मा ही नहीं कहा जाता। समझ में आया? समझ में आया? रतिभाई! सब पुराने न्याय हो गये न वापस डेढ़ वर्ष से, वापस जंग लग गया हो न, पुराना हो गया हो। आहाहा!

दृष्टान्त दिया न अग्नि का, नहीं समझ में आया? कि अग्नि जो है, वह जलनेयोग्य दाह्य जो हैं, वे अग्नि के परिणमन में निमित्त हैं और नैमित्तिक वह अग्नि का दाह्याकाररूप अपने में दहनपने परिणमना, वह उसका स्वभाव है। इसलिए अग्नि स्वयं दहनरूप से परिपूर्णरूप से दाह्याकार के दहनरूप न परिणमे तो वह अग्नि ही परिपूर्ण स्वयं हुई नहीं तो वह परिपूर्ण अग्नि हुई नहीं, तो अधूरी अग्नि वह तो उसका वास्तविक स्वरूप नहीं।

इसी प्रकार चैतन्य, अग्नि—चैतन्यस्वभाव, भगवान आत्मा, वह तो वस्तु है। अब उसका स्वभाव चेतन चेतने द्वारा, चेतनस्वभाव द्वारा आत्मा, चेतन के स्वभाव में लोकालोक ज्ञेय निमित्त हैं और उसरूप से उसका जानना यहाँ परिपूर्ण परिणमना, वह अपना स्वरूप है। तो वह चेतन द्वारा ज्ञेयों को परिपूर्णरूप से जानकर परिणमे नहीं तो वह आत्मा चेतनपने द्वारा परिपूर्ण परिणमा नहीं तो उसका परिपूर्ण वस्तुरूप तो आया नहीं। ऐसी बात कैसी? जेठाभाई! ऐसा धर्म वीतराग का होगा? अब ऐसी बात! फलाना पालना, दया पालना, व्रत पालना, पूजा करना, ऐसा तो कुछ कहे। परन्तु यह तो कहते हैं, तेरा स्वभाव नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ।

तेरा स्वभाव तो चेतनस्वभाव है। चेत। वस्तु आत्मा वस्तु है, उसका चैतन्यस्वभाव है। वस्तु है, वह एक है। इसलिए उसका चैतन्यस्वभाव एकरूप अखण्ड है। अखण्ड होने से उसकी पर्याय में ज्ञात होनेयोग्य ज्ञेय भले निमित्त हों, परन्तु नैमित्तिक उस प्रकार से चेतन की परिपूर्ण परिणमित हुई (पर्याय) ज्ञेय को जाननेरूप न परिणमे तो वह चेतनपने की पूरी स्थिति सिद्ध नहीं होती। वह आत्मा सिद्ध नहीं होता। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा कहकर उसे ऐसा समझाते हैं कि तेरे चैतन्य की पर्याय तेरी शक्ति में परिपूर्ण जानने का स्वभाव है। उसके ऊपर तू दृष्टि दे। क्योंकि उसके ऊपर दृष्टि देने से तुझे पर्याय में सम्यग्दर्शन-ज्ञान होगा और वह धर्म है। धर्मी ऐसा आत्मा, उसके परिपूर्ण चैतन्य के स्वभाव में सर्व ज्ञेयों को जानने की सामर्थ्यवाला वह तत्त्व है, इसलिए सर्वज्ञ

शक्तिवाला ही वह तत्त्व है, ऐसा कहते हैं। सर्वज्ञ शक्तिवाला वह तत्त्व है—यह आत्मा। वह सर्वज्ञ शक्तिवाला तत्त्व है, उसे पर्याय में अन्तर में झुकाकर सर्वज्ञस्वभाववाले तत्त्व की प्रतीति करे तो उसे यथार्थ सम्यग्दर्शन हो। तो वह सम्यग्दर्शन है, वह धर्म और सुख के पंथ में पड़ा, ऐसा कहा जाता है। वरना तो अधूरा और रागवाला जीव को मानना, वह दु:ख के पंथ में पड़ा हुआ निगोद के रास्ते जानेवाला है। कहो, समझ में आया? भगवानभाई! ऐसा कहीं सुना था? अब यह प्रौषध करना, प्रतिक्रमण करना, सामायिक करना, यह बात इसमें कहाँ आती है? परन्तु सुन न अब! वह तो विकल्प है, कहते हैं। यह करना, वह करना विकल्प, वह तो राग है, वह कहीं तेरा स्वभाव नहीं। उस विकल्प को और जगत के सब पदार्थों को ज्ञेयरूप से गिनकर उनका जाननेवाला एक ज्ञाता ज्ञातारूप से—ज्ञानपने न परिणमे (तो) वह आत्मा स्वयं ही अपनी जातिरूप से पूरा हुआ नहीं। पूरा हुआ नहीं वह अधूरेपने परिणमे, वह कहीं आत्मा का रूप नहीं कहलाता। लोग कहते हैं न 'पोत तारूं प्रकाश' ऐसा आता है या नहीं? तेरा पोत प्रकाश। रूप तेरा प्रकाश, इतना है तू बोल न। क्रोध में आ जाता है न जब? बोल बोल तेरे रूप में आ जा ले। खोटे खोटे रूप में आवे, सच्चा है तो सच्चे रूप में आवे, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

क्रोध, मान, माया, लोभ, दया, दान, व्रत उसरूप परिणमना वह कहीं इसका स्वभाव नहीं, ऐसा कहते हैं। परिणमना, उसरूप होना कहो या उसका कर्ता होना, वह इसका स्वभाव नहीं। इसका स्वभाव तो ज्ञान चैतन्य द्वारा... ऐसा कहा न, देखो न, चेतनपने के कारण स्वानुभव प्रत्यक्ष होने से... भगवान तो चैतन्यस्वभाव चेते—जागृत होकर जागकर देखे। अपने को प्रत्यक्षरूप से जाने, ऐसा उसका स्वभाव है। और अपने को जाने तब जो ज्ञेय हैं, वे सब ज्ञान की पर्याय में उसके जानने का भाव आ गया है। उसरूप जो न परिणमे और ज्ञान की परिपूर्ण दशा को न पावे और अधूरा रह जाये तो वह आत्मा ही नहीं। अर्थात् कि जिसे धर्म करना है उसे... ऐसी एक समय की पर्याय परिपूर्ण परिणमे ऐसा इस जीव का स्वभाव है। और वह स्वभाव प्रगट नहीं तो अन्दर अप्रगट शक्तिरूप से पड़ा है। अर्थात् शक्तिरूप से जो सर्वज्ञ है, उसे निमित्त की श्रद्धा छोड़कर, पुण्य-पाप की श्रद्धा छोड़कर, अल्पज्ञ की प्रगट अवस्था की श्रद्धा छोड़कर,

सर्वज्ञ त्रिकाल है उसकी श्रद्धा करना, उसका नाम निर्विकल्प सम्यग्दर्शन कहलाता है। जेठालालभाई! आहाहा! तब वह धर्मी अर्थात् सुख के पंथ में पड़ा। वरना तो दुःख के रास्ते त्यागी हो, महाव्रतधारी हो, समझे? परन्तु वह महाव्रत के विकल्प, वह राग है, वह इसका स्वभाव नहीं। और उस राग को जानना ऐसा इसका स्वभाव है। तब तो राग से पृथक् पड़कर आत्मा को जाने तब राग को जाननेवाला हो। परन्तु राग को ही अपना कर्तव्य मानकर... कर्तव्य शब्द से (आशय) उसरूप परिणमन मेरा स्वरूप है, ऐसा। तो यहाँ कहते हैं कि राग और पुण्यरूप से परिणमना, वह तेरा स्वरूप नहीं। चेतनपने द्वारा परिपूर्ण पर को जानने का स्वरूप, वह तेरा स्वरूप है। कठिन बातें परन्तु भाई! समझ में आया? यह एक घण्टे में कहलाये, वह दस मिनिट में कह सके या नहीं? लो! भीखाभाई बहुत बोले नहीं। दस मिनिट में सार नहीं कह सकते? यहाँ बात कितनी होती है देखो न इसमें न्याय से।

आत्मा सर्व को न जाने तो वह अपने पूरे रूप को जानता नहीं। क्योंकि सर्व को जानना, वही उसका पूरा रूप है। इसमें तो सादी भाषा में ऐसा कुछ नहीं। क्योंकि चेतनपना ही उसका स्वभाव है। उसका कहीं यह शरीररूप करना और शरीर को रखना या शरीर को टालना या पुण्य-पाप के परिणामरूप परिणमना या करना, वह कहीं इसका स्वभाव नहीं। यहाँ कहते हैं न, परिपूर्ण ज्ञानरूप से परिणमना, वह इसका स्वभाव है। परन्तु राग और पुण्यरूप से परिणमना, वह कहीं उसका स्वभाव नहीं। तब जो स्वभाव नहीं उसे भी अपना मानना, वह तो मिथ्यादर्शन और अज्ञान है। मगनलालभाई! आहाहा!

मुमुक्षु : लॉजिकल बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु न्याय—लॉजिक से भी... सर्वज्ञ परमात्मा का मार्ग तो 'न्यावयम' है न। ... आता है पाँचवाँ श्लोक। 'न्यावयम'—न्यायमार्ग है।

भाई! तू आत्मा है। वह तो वस्तु हुई। तो उसका खास कोई असाधारण मुख्य गुण, जिसकी प्रधानता है, ऐसा है? वह तो गुण चेतना है। वह चेतना जिसका गुण है, और गुण है, उसका परिणमन, जितने लोकालोक के पदार्थ हैं, उतने ज्ञेयरूप से जानकर ज्ञान परिणमे नहीं तो वह चेतना की पूर्ण दशा ही हुई नहीं। समझ में आया? और पूर्ण

दशा नहीं तो वह पर्यायरूप से पूरा हुआ नहीं और ऐसे आत्मा को पूरा मानना, वह मिथ्यात्व है। कम माने, विपरीत माने या अधिक माने। ऐसा आता है या नहीं?

मुमुक्षु : प्रतिक्रमण के पाठ में।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिक्रमण के पाठ में भी आता है, भाई! मगनभाई! कम, अधिक और विपरीत। परन्तु अर्थ की खबर नहीं। पच्चीस प्रकार के मिथ्यात्व।

यहाँ तो अपने रत्नकरण्डश्रावकाचार में आता है। कम, अधिक और विपरीत। यह ज्ञान की व्याख्या की है। कम, अधिक, विपरीत टले, उसे ज्ञान होता है जैसा है वैसा। कम माने तो भूल, अधिक माने तो भूल, उलटा माने तो भी भूल।

यह अधिकार किसका है? ज्ञानतत्त्व, ज्ञान का स्वभाव, ज्ञान का भाव, ज्ञान का तत्त्व, ज्ञान का सत्त्व, ज्ञान का सामर्थ्य। तो आत्मा ज्ञानस्वभाव है, उसका सामर्थ्य इतना है कि वह सर्व को जानना, इतना तो एक पर्याय का उसका—ज्ञानतत्त्व का सामर्थ्य है। समझ में आया? किसी का करने का नहीं और जानना कुछ बाकी रहे नहीं। मुफ्त में हैरान होते हैं दूसरे के लिये कर-करके। मानकर, हों!

मुमुक्षु : करता तो कौन है?

पूज्य गुरुदेवश्री : करे कौन? धूल करे? माने कि इसका कर दूँ, पुत्र का कर दूँ, पुत्री का कर दूँ, मकान का कर दूँ, इज्जत का कर लूँ, ढींकणा का कर दूँ। ऐई! फूलचन्दभाई! यह तो दृष्टान्त, हों!

मुमुक्षु : निवृत्ति लेनी।

पूज्य गुरुदेवश्री : निवृत्ति लेनी थी न। तो अभी फँसा है।

मुमुक्षु : बहुत।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत वापस कहते हैं।

मुमुक्षु : कोई छोड़ते नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह एकदम खोटी बात है। बबूल को बाँथ में भरा है और कहता है कि बबूल ने मुझे रोका। समझ में आया? जेठालालभाई! बबूल को बाँथ में

भरा, फिर कहे, वह मुझे छोड़ता नहीं। परन्तु छोड़ दे न ऐसे तू। वह तो पड़ा ही है, छूटा ही है तू। बन्दर का दृष्टान्त नहीं दिया? बन्दर ने मुट्ठी तो डाली बोर में। छोटा सकड़ा मुख, समझ में आया? मटकी का। उसमें बड़े बोर अच्छे थे। ऐसे हाथ डाला। मुट्ठी भरकर निकालने जाये तो पकड़ा गया। पकड़ा गया तो, यह मुझे भूत ने पकड़ा अन्दर से। परन्तु तू छोड़ दे न मुट्ठी। बोर की ममता हुई तुझे। ममता (हुई कि) बोर निकालूँ। मुश्किल-मुश्किल से घुसा उसे बोरसहित निकालूँ, वह किस प्रकार निकलेगा? समझ में आया? इसी प्रकार जहाँ-तहाँ देव-गुरु-शास्त्र, कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, शरीर, वाणी, मन, कर्म फलाना, वे यह मेरे और मैं उनका। यह मुट्ठी पकड़कर रखी। अब उसमें से छूटना कैसे? वह (छोड़े तो) छूटे या तू छोड़े तो छूटे? समझ में आया? बोर की मुट्ठी हुई इतनी बड़ी, अब मुट्ठी किस प्रकार से निकले? छोड़ दे न ऐसे। बोर पृथक् पड़ जायेंगे, तू निकल जायेगा।

मुमुक्षु : बोररहित रह जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : बोररहित ही है, इसलिए तो कहते हैं। बोररहित था। वरना बोर नहीं थे तो भी वह तो रहा था। यदि बोरसहित रहे तो बोर नहीं थे, तब नहीं रह सकता। बोर नहीं थे तो भी रहा था और है तो भी स्वयं से रहा है, वह कहीं बोर के कारण से रहा है? या स्त्री, पुत्र और शरीर के कारण से रहा है? वह हो तो भी रहा है और न हो तो भी स्वयं से रहा है।

मुमुक्षु : यह निश्चित् बात होगी?

पूज्य गुरुदेवश्री : कैसे होगा? सुमनभाई! कहो, सुमनभाई नहीं थे, तब रामजीभाई का आत्मा नहीं था? या चला गया था? क्यों भीखाभाई! हीराभाई नहीं थे, तब भीखाभाई का आत्मा नहीं था?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसके बिना भी यहाँ बैठे हैं, देखो! है या नहीं? परन्तु माना है कि यह मुझे ठीक पड़ता है, मुझे ठीक पड़ने के लिये यह ठीक है। मुझे ठीक पड़ने के लिये मैं ठीक हूँ, ऐसा न मानकर, ठीक पड़ने के लिये यह ठीक है, (यह)

मिथ्याभ्रम अज्ञानी का भ्रम है। समझ में आया? बड़ा महात्मा नाम धराकर भी यहाँ भूले हैं, ऐसा कहते हैं। यहाँ तो महातत्त्व कहना है न! ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन।

भगवान आत्मा वस्तु, उसका स्वभाव असाधारण चैतन्य जो दूसरे द्रव्य में नहीं और दूसरा गुण ऐसी जाति का नहीं। ऐसा जो ज्ञानतत्त्व, उसका स्वभाव, उसका स्वरूप वर्तमान पर्याय में जितने ज्ञेय जगत के हैं, उनके ज्ञानरूप से—जाननेरूप से होना, वही उसका स्वरूप है। इस प्रकार से न हो, पर को सर्व को जाननेवाला न हो तो अपने को भी 'परिपूर्ण है' ऐसा इसने जाना नहीं। कहो, बराबर होगा यह?

अर्थात् निज को ही पूर्णरीति से अनुभव नहीं करता-नहीं जानता। अपनी जाति जितनी है, उसे अनुभव नहीं करता। **इस प्रकार सिद्ध हुआ कि जो सबको नहीं जानता, वह एक को—अपने को (पूर्ण रीति से) नहीं जानता।** ऐसा। पूर्ण रीति से अर्थात् जैसा उसका स्वरूप है पूर्ण, उस रीति से जानता नहीं। कहीं न कहीं अटककर यह राग वह मैं; पुण्य, वह मैं अर्थात् परिपूर्ण जानना मेरा स्वरूप है, सर्व को जानना मेरा स्वरूप है। किसी का करना और मेरा मानना, ऐसा उसका स्वरूप नहीं। सर्व को जानना मेरा स्वरूप है तो जाननेवाला... जाननेवाला मैं हूँ। राग हो तो भी जाननेवाला, देह हो तो भी जाननेवाला, वाणी हो तो जाननेवाला, पृथक् रहकर जाननेवाला, एक हुए बिना जाननेवाला, ऐसा जाननेवाला मैं हूँ—ऐसा यदि माने तो राग और पर से पृथक् ज्ञायकस्वरूप की प्रतीति करे। तब उसे निश्चय सम्यग्दर्शन होता है। ज्ञान को प्रत्यक्ष करे। समझ में आया? परन्तु कहाँ दरकार पड़ी है? दुनिया की पंचायत करने के कारण निवृत्त नहीं होता।

मुमुक्षु : पंचायत चिपकी हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : कौन चिपकी? धूल भी चिपकी नहीं। ऐसा देखो सब। बाबूभाई के पास गये थे। ऐसे पहले तो उनका हाथ ऊँचा हो सका नहीं। वह हो गया पहले तो। प्रसन्न हुए। आने का था न। आँख में से आँसू चले गये। मुँह फेर दिया। आये न। ... इतनी सब ... मूल तो उसे हर्ष में आँसू आ गये। कुछ नहीं। अरे! मेरे घर में महाराज! यहाँ कुछ नहीं होता। हम तो चले आये। देखने आये ऐसे घुस गये अन्दर। कुछ नहीं न। बाजा नहीं, गाजा नहीं, मण्डप नहीं कुछ नहीं। और महाराज फतेपुर आये

और ऐसा हो कभी ? अब क्या करना था परन्तु ? लो, बरामदे में आये (ऐसे) जल्दी घुस गये। उसमें तो हाथ नहीं उठा, हों! देखो! देह की स्थिति। फिर आ गये। फिर स्फूर्ति आ गयी। ओहो! बहुत उपकार किया! पधारे। एकान्त में तो कहा था। महाराज! आने का भाव है मुझे। बाहर किस प्रकार से कहना इतने सब आवे किस प्रकार ? एक ओर पौने दो सौ मील दूर। ऐई! सवा तीन सौ मील हुए जाते-आते। भाई! ... कोई कुछ नहीं। सब लोग खड़े थे। है कोई अच्छा करे ऐसा ? वैद्य आवे तो डाले ऐसा है कुछ ?

मुमुक्षु : आपने तो जाकर अच्छा डाला।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ डाला नहीं उसे वह तो। सुनाया उसे भाई। पुस्तक ले गये थे। ३२०। २० मिनिट सुनाया। दोपहर में ५० मिनिट। सब बहुत थे। यह महामांगलिक करते हैं, कहा भाई लो! आत्मा निष्क्रिय परमात्मा स्वयं है वह द्रव्य, पर्यायरूप से परिणमता नहीं। आहाहा! यहाँ तो पर्यायरूप से पूरा परिणमे, वह आत्मा। पर्याय की बात करनी है। परन्तु वह द्रव्य स्वयं पर्याय में आता नहीं। आहाहा! दो अंश में का एक अंश पर्याय का। द्रव्य तो परिपूर्ण वस्तु है, शक्तिरूप से, सामर्थ्यरूप से परिपूर्ण ही है। परन्तु पर्यायरूप से वह ज्ञान की पर्यायरूप परिपूर्ण ज्ञेय को जानता हुआ यदि न परिणमे तो पर्यायरूप से पूरा हुआ नहीं, तो अकेला द्रव्य रहा और उस पर्यायरूप से पूरा हुआ नहीं तो वास्तव में द्रव्य भी परिपूर्ण है, ऐसा उसने माना नहीं। समझ में आया ? आहाहा! ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन की व्याख्या है यह।

★ ★ ★

गाथा - ४९

अब, एक को न जाननेवाला सबको नहीं जानता:—यह ४९ में आता है। सर्व को नहीं जाननेवाला एक को जानता नहीं। समझ में आया या नहीं इसमें ? ऐई! सर्व को न जाननेवाला एक को जानता नहीं। क्योंकि सर्व का जानना, वही उसका पूरा रूप है। तो सर्व को न जाने, वह एक को जानता नहीं। अब कहते हैं कि एक को जानता नहीं, वह सर्व को जानता नहीं। आहाहा! ४९ (गाथा)।

दव्वं अणंतपज्जयमेगमणंताणि दव्वजादाणि।
ण विजाणदि जदि जुगवं किध सो सव्वाणि जाणादि॥४९॥

एक द्रव्य को जो अनन्त, पर्याय सहित नहिं जान सके।
एक साथ वह सर्व अनन्त, पदार्थों को नहिं जान सके॥४९॥

प्रकारान्तर से अन्वयार्थ... नीचे करते हैं। पहला अन्वयार्थ लेते हैं अन्दर का। **यदि अनन्त पर्यायवाले एक द्रव्य को (आत्मद्रव्य को) तथा अनन्त द्रव्यसमूह को युगपद् जानता नहीं...** दो इकट्ठे लिये एकसाथ। अपना रूप पूर्ण और ज्ञात होनेयोग्य का रूप वह यदि एक समय युगपद् सबको न जाने **तो वह पुरुष सबको (-अनन्त द्रव्यसमूह को) कैसे जान सकेगा ?** तो वह दोनों होकर पूरा है, वह तो जान सका नहीं। **(अर्थात् जो आत्मद्रव्य को नहीं जानता हो, वह समस्त द्रव्यसमूह को नहीं जान सकता।)** अर्थात् ? आत्मद्रव्य इतना है कि एक समय में पर्याय में परिपूर्ण जानना जितना स्वभाव है। ऐसे आत्मद्रव्य को अनादि-अनन्त पर्यायें सब हैं। वह अनादि-अनन्त पर्यायवाला द्रव्य, उसमें एक-एक पर्याय का, सर्वज्ञ आदि पर्याय उसमें आ गयी, उसमें सब जानने का उसका स्वभाव है। ऐसी अनन्त पर्यायोंवाला द्रव्य, वह अनन्त पर्यायवाला द्रव्य जो एक को जाने, त्रिकाली पर्याय का समूह उस एक द्रव्य को इस प्रकार से सामर्थ्यवाला न जाने तो सर्व को कहाँ से जाने ? क्योंकि सर्व को जानने का अपनी पर्याय का स्वभाव है। तो ऐसी पर्यायवाला आत्मा न जाने, वह सर्व को जानता नहीं। सुमनभाई ! यह सब सीखना पड़ेगा, हों ! अद्धर से चलेगा नहीं। वरना दुःखी होने के रास्ते हैं वहाँ। वह आठ हजार वेतन, दस हजार वेतन, बड़ी-बड़ी बातें करे, इसलिए लोगों को ऐसा हो जाये। आहाहा ! धूल में भी नहीं वहाँ कुछ। हैरान-हैरान होने के रास्ते हैं। ओहोहो ! शरीर भी काम न करे, इसका विचारा हुआ। आहाहा ! २५-२५ दिन से ऐसे शरीर। ऐसे ढँका हुआ देखा। बैठ गया है अन्दर। वस्त्र उघाड़े तो समझने जैसा था। लो ! आहाहा !

मुमुक्षु : कोई पहनावे....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। महावीर... आया था न ? क्या ? 'रंग लाग्यो महावीर तारो रंग लाग्यो।' भाषा तो ऐसी आती थी। किसकी ? जड़ की। आता न। लोग सब... 'रंग

लाग्यो महावीर तारो रंग लाग्यो, तारी भक्ति करवानो मने भाव जाग्यो।' ... कहने की भाषा नहीं थी। भाषा तो जड़ की है। भाषा कोई आत्मा बोलता नहीं। (आत्मा) के पास परमाणु नहीं कि आत्मा बोले।

मुमुक्षु : बीमार होता है तब....

पूज्य गुरुदेवश्री : बीमार क्या, तीनों काल बोलता नहीं। बोले कौन? बोले वह दूसरा। वह आत्मा से दूसरा, वह बोले, आत्मा बोलता नहीं। कहो, भीखाभाई! कौन बोलता होगा यह? तब क्या किया होगा अभी तक पटेलाई? भीखाभाई अर्थात् कौन? वाणी जड़? यह है यह? वह तो आत्मा है, आत्मा को पहिचानने की बात है। यह तो जड़ है, मिट्टी है। मलूकचन्दभाई कहते थे न, मैं गया था तब तो बोलने की शक्ति थी नहीं। बोलने का सुहावे नहीं। शरीर की रजकण की अवस्था है, क्या करे? करे कौन? समझ में आया? फिर उलझन में कुछ चलेगा वहाँ? वह तो उसकी स्थिति से रहने का रहेगा, ऐसा रहेगा। तू उलझन में आयेगा तो भी ऐसा है और नहीं उलझन में आयेगा तो भी ऐसा है। आहाहा!

तेरे ज्ञान का स्वभाव भगवान पूर्ण को जानना, वह तो तेरा पर्याय का स्वभाव है। तो ऐसे पूर्ण पर्याय को जाननेवाले द्रव्य को जिसने जाना नहीं तो वह सर्व को कैसे जाने? क्योंकि सर्व को जानना, वह तो अपना पर्याय स्वभाव है। ऐसे पूर्ण पर्यायरूप द्रव्य को नहीं जाना—एक को नहीं जाना तो सर्व को नहीं जाना।

नीचे अर्थ किया। **यदि अनन्त पर्यायवाले एक द्रव्य को (-आत्मद्रव्य को) नहीं जानता...** ऐसा। अनन्त पर्याय है न अवस्था? अनन्त अवस्थावाला एक द्रव्य है तो एक अवस्था में सब ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ ज्ञात हो जाते हैं। **तो वह पुरुष (युगपद) सर्व अनन्त द्रव्य-समूह को कैसे जान सकेगा?** जो अपने एक द्रव्य की अनादि-अनन्त। पर्याय को न जाने... अनादि-अनन्त है न पर्याय? आदि—द्रव्य की आदि है? अन्त है? तो उसकी पर्याय की आदि-अन्त है अवस्था की? तो आदि-अन्तरहित अनादि-अनन्त की पर्याय को एक को न जाने तो वह पर्याय में ज्ञात होनेयोग्य दूसरे पदार्थ को भी नहीं जान सकता।

इसकी **टीका :- प्रथम तो आत्मा वास्तव में स्वयं ज्ञानमय होने से...** देखो! भगवान आत्मा अनादि से यह वास्तव में स्वयं ज्ञानमय, ऐसा। स्वयं ज्ञानमय। ज्ञान कहीं से लाना है, आता है, ऐसा है नहीं। भगवान आत्मा तो ज्ञानमय है। उसकी आँख है ज्ञान तो। ज्ञानमय आत्मा है। वह पुण्य-पाप विकल्प करना, वह शरीरमय आत्मा नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा तो ज्ञानमय वस्तु है। ज्ञान के साथ तन्मय है। ज्ञानमय है न? ज्ञानवाला है, ऐसा भी नहीं। वह ज्ञानमय है। आत्मा ज्ञानवाला है तो यह भी भेद पड़ा। आत्मा, वह ज्ञानमय है। जानने का स्वभाव, वह ज्ञानमय आत्मा है। जानने का स्वभाव उसमय आत्मा ज्ञानमय है।

वह **ज्ञानमय होने से ज्ञातृत्व के कारण...** ज्ञानमय होने से ज्ञातापने के कारण **ज्ञान ही है...** वह। स्वयं ज्ञातापने के कारण आत्मा ज्ञान ही है। ज्ञानवाला है, ऐसा भी नहीं। आत्मा वास्तव में स्वयं—आप ज्ञानमय होने से जाननेवाला-देखनेवाला कारण से वह ज्ञान ही है। भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। यहाँ ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है न! **और ज्ञान प्रत्येक आत्मा में वर्तता (-रहता) हुआ प्रतिभासमय महासामान्य है।** वह ज्ञान प्रत्येक आत्मा में है, इसलिए वह आत्मा का भी यह ज्ञान महासामान्य है। समझ में आया? **ज्ञान प्रत्येक आत्मा में वर्तता (-रहता) हुआ प्रतिभासमय...** प्रतिभास अर्थात् उसमें ज्ञात हो ऐसा। **महासामान्य है। वह (प्रतिभासमय महासामान्य) प्रतिभासमय अनन्त विशेषों में व्याप्त होनेवाला है...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा ज्ञानमय है और वह ज्ञान उसका महासामान्य स्वभाव है और महाज्ञानसामान्य त्रिकाली स्वभाव, उसकी वर्तमान विशेष अवस्था, उसकी वर्तमान विशेष दशा, उसकी वर्तमान विशेष पर्याय में वह सामान्यज्ञान पर्याय में व्यापनेवाला है। त्रिकाली ज्ञान आत्मा ज्ञानमय है, वह ज्ञान त्रिकाली महासामान्य है, वह ज्ञान महासामान्य, वह अनेक पर्यायों में उसकी अनन्त पर्याय में वह ज्ञान व्यापनेवाला है। आहाहा! समझ में आया?

और ज्ञान प्रत्येक आत्मा में वर्तता (-रहता) हुआ प्रतिभासमय महासामान्य है। वह आत्मा के ज्ञान का गुण जो त्रिकाली महासामान्य **प्रतिभासमय अनन्त विशेषों में व्याप्त होनेवाला है...** उसमें ज्ञात होनेयोग्य विशेष अर्थात् पर्यायें। वह उसकी प्रतिभासमय अनन्त पर्यायें हैं। वह ज्ञानगुण की अनन्त पर्यायें हैं। पर्याय अर्थात् विशेष है। विशेष

अर्थात् अवस्थायें हैं। क्या कहते हैं ? आत्मा ज्ञानस्वरूप है, ज्ञानमय है, इसलिए उसकी अनन्त जो विशेष पर्यायें, उसमें वह ज्ञानगुण व्यापनेवाला है। देखो भाषा! वह ज्ञानगुण पर्याय में व्यापनेवाला है। वह पर्याय में राग के कारण ज्ञान व्यापे या निमित्त के कारण व्यापे, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? आत्मा वस्तु, उसका ज्ञानस्वभाव।... क्या कहा ? जानने का स्वभाव है या कबूतर को उड़ाने का स्वभाव है ? उड़ाना नहीं। कहो, भीखाभाई! आहाहा! कौन उड़ावे और कौन विकल्प करे ?

यहाँ तो ज्ञान का स्वभाव आत्मा है, भाई! तुझे खबर नहीं। आत्मा अर्थात् ज्ञानस्वरूप। वह रागरूप और पुण्यरूप और पापरूप तथा कर्मरूप, स्त्रीरूप, पुत्ररूप, मकानरूप और इज्जतरूप वह आत्मा है ही नहीं तीन काल में। मूढ़ जीव ने अज्ञानी ने मान रखा है। मूढ़ को भान नहीं होता, इसलिए (मान रखा है)। स्वयं किस स्वरूप से है और किस स्वरूप से उसे मैं मानता हूँ, वह मूढ़ है। बड़े राजा-महाराजा, वे बड़े मूढ़ हैं, कहते हैं। समझ में आया ? आहाहा! अरे! इसकी जाति में भात तो ज्ञान की पड़नी चाहिए न, कहते हैं। ऐसा कहते हैं। उसकी विशेष अवस्था तो ज्ञानरूप होती है। उसकी पर्याय है, वह सामान्य स्वयं पर्यायरूप परिणमती है, ऐसा कहते हैं। ज्ञान जो सामान्य त्रिकाल है, वह विशेषरूप से होता है या उसके विशेष होने में पर निमित्त हैं, इसलिए विशेष होता है ? यह श्लोक था तब। पण्डित बंसीधरजी थे न।...परन्तु उसमें क्या है, कहते हैं ? अरे! उसमें सब तेरा निमित्त उड़ जाता है, सुन न! अन्दर पूछते थे। आहाहा! फिर और...

यहाँ तो कहते हैं, आत्मा वस्तु है, उसका ज्ञानस्वभाव। क्या ज्ञानस्वभाव को लिया ? **प्रत्येक आत्मा में वर्तता (-रहता) हुआ प्रतिभासमय महासामान्य है।** ऐसा। जिसमें सब ज्ञात हो, ऐसा वह ज्ञान है। प्रतिभासमय। जितनी चीज़ें हैं, वे सब ज्ञात हो, ऐसा महासामान्य ज्ञान का स्वभाव है और वही महासामान्य ज्ञानगुण **प्रतिभासमय अनन्त विशेषों में व्याप्त होनेवाला है...** एक-एक पर्याय में प्रतिभासे, (ऐसा) उसे कहा। एक-एक पर्याय में सब ज्ञात हो, ऐसी पर्याय में ज्ञान व्यापनेवाला है। समझ में आया ? ज्ञान की पर्याय में कैसी पर्याय है ? जो गुण है, वह प्रतिभासमय है। ऐसी ज्ञान की पर्याय भी प्रतिभासमय है। प्रतिभासमय अर्थात् ? जो सामने हो, उसका ज्ञान स्वयं

से स्वयं के द्वारा हो। ऐसा ज्ञान सामान्य है और ऐसा विशेष भी विशेष ज्ञान है। वह सामान्य ज्ञान प्रतिभासमय विशेषरूप से प्रवर्तता और परिणमता है। आहाहा! समझ में आया? यह तो सरल है, हों! सुमनभाई! बोलना हो तो कुछ बाधा नहीं आवे। परन्तु जवाब माँगे तो? क्या कहा यह? यह तो तीन, चार, पाँच (बार) आज तो बात हो गयी, देखो! बालक को भी पकड़ में आये ऐसी बात है। आत्मा बालक कहाँ है? आत्मा तो ज्ञानमय है, उसकी तो यहाँ बात चलती है।

भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप है। वह ज्ञानस्वरूप महासामान्य प्रतिभासमय है। अर्थात् जितनी चीज़ें उसमें ज्ञात हो, ऐसा महासामान्य ज्ञान है। अब उसमें से प्रतिभासमय विशेषमय वह महासामान्य व्यापनेवाला है। त्रिकाल ज्ञान महासामान्य प्रतिभासमय है, उसकी विशेष ज्ञान जो प्रतिभासमय, ज्ञान का स्वभाव प्रतिभासमय है, ऐसा। उसमें जितनी चीज़ें ज्ञात हों, ऐसा उसका पर्यायस्वभाव। गुण का भी ऐसा स्वभाव और पर्याय का भी ऐसा स्वभाव।

यह गुण, पर्याय क्या होगा यह? गुण अर्थात् कायम रहनेवाले और पर्याय अर्थात् वर्तमान विशेष दशा। विशेष दशा, विशेष अवस्था। वह महासामान्य ज्ञानमय भगवान, विशेष ज्ञान के प्रतिभासमय जो पर्याय, उसरूप से परिणमती है। वह इन्द्रियों के कारण नहीं, सुनने के कारण से नहीं, पुस्तक के कारण से नहीं, समझ में आया? वह ज्ञेयों के कारण से नहीं, ऐसा कहते हैं। महासामान्य ज्ञान विशेषरूप से परिणमता है, वह ज्ञेयों के कारण से नहीं। वह महासामान्य ज्ञान के कारण से विशेषरूप परिणमता है। आहाहा! समझ में आया?

भगवान पूरा हल तीन काल-तीन लोक के पदार्थों को जानने का प्रतिभासमय, जिसमें प्रतिभास हो, ऐसा उसका गुण है। वह गुण वर्तमान प्रतिभासमय विशेष पर्यायरूप परिणमता है। उस पर्याय में भी जितनी चीज़ें ज्ञेय हैं, वे ज्ञात हों—ऐसा ही उनका स्वभाव है। परन्तु उस पर्याय में व्यापनेवाला ज्ञानसामान्य है, वह व्यापता है। ज्ञेय है, इसलिए ज्ञान की पर्याय व्यापती है, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? उसके द्रव्य, गुण और पर्याय की बात चलती है। द्रव्य है, वह आत्मा; गुण है, वह ज्ञान महासामान्य और विशेष अवस्था, वह पर्याय। महासामान्य स्वयं गुण, वह विशेषरूप से

परिणमता है। न्याय से समझे तो समझ में आये, ऐसा है परन्तु कुछ दरकार नहीं होती। आहाहा! अरे! ऐसा काल मिला। कब निकलेगा चौरासी के अवतार में से? समझ में आया?

यह ज्ञानमय ही हूँ आत्मा, उसका प्रतिभास स्वभाव है। अर्थात् कि लोकालोक जितने हैं, उसका जानना उसका स्वरूप—अपना स्वरूप है वह तो। ओहोहो! ऐसा जो ज्ञानस्वरूप गुण, वह प्रतिभासमय वर्तमान पर्याय में सब ज्ञात हो, ऐसी जो विशेष पर्याय—अंश दशा, वह महासामान्य विशेषरूप से परिणमता—व्यापता है। कहो, जेठालालभाई! आहाहा!

और उन विशेषों के (-भेदों के) निमित्त... अब तीसरी बात वापस। भगवान आत्मा ज्ञानरूप से विशेषरूप होता है, उसके निमित्त जगत के सब पदार्थ निमित्त, नैमित्तिक अपनी पर्याय। वह नैमित्तिकरूप से सामान्यज्ञान परिणमता है। निमित्त है, इसलिए वह परिणमता है, ऐसा है नहीं। परन्तु उसमें देखो, उसमें निमित्त है अवश्य, परन्तु निमित्त यहाँ परिणमाता नहीं। समझ में आया? **विशेषों के (-भेदों के) निमित्त...** अभेद जो वस्तु है, उसका ज्ञानगुण वह एकरूप अभेद सामान्य है। उसकी विशेष अवस्था में व्यापनेवाला ज्ञान, वह विशेष अवस्था में लोकालोक के ज्ञेय, वे निमित्त हैं, निमित्त हैं। परन्तु लोकालोक के ज्ञेय निमित्त हैं, इसलिए ज्ञानसामान्य विशेषरूप से परिणमता है, ऐसा नहीं। सामान्य स्वयं ही विशेषरूप से स्वतन्त्र परिणमता है। उसके परिणमन में लोकालोक के विशेष, लोकालोक के पदार्थ, वे निमित्त हैं। कहो, ज्ञानचन्दजी! आहाहा!

चार वस्तुएँ हुईं। द्रव्य, गुण, पर्याय और निमित्त। यह द्रव्य अर्थात् आत्मा, वस्तु। यह जड़, मिट्टी, धूल यह कहाँ उसकी है? द्रव्य अर्थात् आत्मा और ज्ञान, वह उसका त्रिकाली महासामान्य गुण, शक्ति, सत्त्व, सत् का सत्त्व, भाव, वह महासामान्य। उसका भी तीन काल-तीन लोक को जानने का स्वभाव, इतनी बात बस। अब वह महासामान्य जो ज्ञान है, वह वर्तमान अवस्थारूप से, विशेषपने, वह भी प्रतिभासमय पर्याय है कि जिसमें लोकालोक ज्ञात हो, ऐसा ही ज्ञान, उस पर्याय में व्यापनेवाला गुण है। तो द्रव्य, गुण और पर्याय। उस पर्याय में निमित्तभूत लोकालोक ज्ञेय है। आहाहा! कहो, समझ में

आया या नहीं इसमें? इसमें तो समझ में आये ऐसी सादी बात है। इसमें कहीं बड़ी एम.ए. की बातें नहीं। वहाँ सुमनभाई को उस तेल को धोना—साफ कैसे करना? वह तो सीखे तब समझ में आये। वह भी उसमें धूल-धाणी। यह तो इसके घर की बात। परन्तु इसने दरकार ही की नहीं कभी। यह करूँ और रखूँ ऐसे हर्ष के चस्का जहर का। उसे अपने गुण का हर्ष का चस्का ही आया नहीं। मैं एक ज्ञानस्वरूपी प्रभु हूँ और मेरी वर्तमान दशा में व्यापनेवाला मेरा ज्ञानगुण है, वह व्यापता है। सामान्य, वह विशेषरूप होता है। समझ में आया?

तब दृष्टान्त दिया था तब जयधवला का, कि इन्द्रियाँ है, इसलिए ज्ञान होता है न? इन्द्रियाँ है तो ज्ञान हो तो सामान्य ने क्या किया? इन्द्रियों ने उसका विशेषपना किया तो सामान्य ज्ञान ने क्या किया? क्या कहा यह? कि यह इन्द्रियाँ हैं और यह सब उसके शब्द हैं। अब यहाँ ज्ञान की पर्याय वह है विशेष। किसकी? कायम ज्ञानगुण की विशेष। वह विशेष अवस्था यदि यह ज्ञेय और इन्द्रियों से हो तो सामान्य ने उस काल में क्या किया?

मुमुक्षु : ज्ञानगुण ने क्या किया?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या किया? समझ में आया? ज्ञान विशेषरूप से पर्याय हुई, वह ज्ञान की पर्याय विशेष हुई? या ज्ञेय के कारण विशेष हुई? तो इन्द्रिय से ज्ञान होता नहीं, भाषा से होता नहीं। उसके ज्ञान का त्रिकाली गुण है, वह विशेषरूप से परिणमे, तब पर्याय में ज्ञान होता है। रतिभाई! यह अलग प्रकार की पाठशाला है। जगत में जहाँ कुछ कम हो जाये तो ऐसा हो जाये, अधिक हो जाये तो हर्ष हो जाये। कम हो जाये तो ऐसे शोक आ जाये। हाय... हाय... तौबा माने। हजार का वेतन हो, जहाँ दो सौ का हो जाये तो हाय... हाय... दो सौ का वेतन हो और आठ सौ का वेतन हो तो आहाहा! हाँ, पहले ऐसा था। पहले तो ३५ (रुपये) वेतन था। हमारे १२ रुपये वेतन था नागरभाई को—आणन्दजी के पिता को। १२ रुपये का वेतन मरते समय अन्त में। १२ रुपये अन्त में, हों! महीने के १२। तब तो १२ बहुत कहलाते थे न। १२ में उतर गये थे फिर। लो! १२ में पहले १० होंगे और ६ होंगे पहले। एक-एक रुपया बढ़े तो प्रसन्न हो जाये। तब कहाँ ऐसा था तुम्हारे पैसे के सब आँकड़े बड़े? समझ में आया?

मुमुक्षु : आँकड़े बड़े या लाकड़े ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आँकड़े के बड़े लाकड़े घुस गये हैं अन्दर। दो लाख हो, पच्चीस लाख हो, दस लाख हो या यह हो तो ठीक पड़े। धूल में भी ठीक नहीं, सुन न! तेरी मूर्खाई के एकड़ा कितने गिनना ? कहते हैं। समझ में आया ? योगफल कितना करना मूर्खाई का ?

भगवान! तेरा ज्ञानगुण जो त्रिकाली है, वह तेरी वर्तमान अवस्था में ज्ञेय जितने निमित्त हैं, तथापि निमित्त के कारण से उसका विशेषपना परिणमा नहीं। क्योंकि निमित्त भी सामान्य गुणवाला है, उसकी विशेष अवस्थारूप से वह निमित्त होता है और यह ज्ञानगुण सामान्य है, उसके विशेषरूप से स्वयं होता है। यहाँ तो निमित्त कैसे लिया है ? कि एक जाने, वह सर्व को जाने। क्योंकि एक जाननेवाले का, सर्व को जानने जितना स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। एक जाननेवाले को सर्व जानने का स्वभाव है। क्योंकि आत्मा सामान्यज्ञान प्रतिभास, विशेष प्रतिभास, उसमें ज्ञेय निमित्त पूरे लोकालोक जितने ऐसे, हों! अपूर्ण ज्ञान की यहाँ बात नहीं अभी। समझ में आया ? यह स्पष्टीकरण कहेंगे।

जितने लोकालोक के ज्ञेय हैं, वह ज्ञान की अवस्था में निमित्त है। निमित्त है अर्थात् क्या किया उसने ? निमित्त है अर्थात् क्या किया ? लोकालोक तो है अनादि का। जब स्वयं सामान्य केवलज्ञानरूप से—विशेषरूप से परिणमा, तब यहाँ ज्ञान को वह लोकालोक निमित्त कहा गया है। निमित्त के कारण से विशेष हुआ है, ऐसा नहीं। निमित्त में भी जीव और जड़ हैं, उनका विशेषपने परिणमना होता है या नहीं उसमें ? उसका द्रव्य और गुण सामान्य है। विशेषरूप से, वह निमित्त का भी विशेषरूप से परिणमना उससे होता है। अब उसका विशेषरूप से परिणमे और इसके विशेषरूप से परिणमावे तो दो का विशेषपना हुआ। ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया ?

यह भेदों के निमित्त। भेद अर्थात् विशेष। विशेष को भेद कहा। वह गुण को अभेद कहा त्रिकाली सामान्य। तब वह ज्ञान की पर्यायें जितनी होती हैं, उन सबको भेद कहा जाता है, अवस्था को भेद कहते हैं। उसके **निमित्त सर्व द्रव्यपर्याय हैं।** देखो! सर्व द्रव्यपर्यायें हैं। जितने द्रव्य (वे सब), स्वयं भी द्रव्य-पर्याय और सम्पूर्ण जगत के द्रव्य

और पर्यायें, द्रव्य वह सामान्य और पर्याय वह विशेष, उस ज्ञान की पर्याय में सब सामान्य और विशेष निमित्त हैं। समझ में आया? कितनों को तो ऐसा लगता है कि यह बहुत ऊँची बात है। ऊँची नहीं, भगवान! यह तो तेरे एकड़ा की बात है, सुन न! आहाहा! केवलज्ञान कितनी पर्यायवाला हो, वह परिणमे, तब एक को पूरा जाना और एक को यदि न जाने तो उसने पूर्ण केवलज्ञान में विशेष निमित्त हैं, उन्हें भी जाना नहीं। एक जाने, वह सर्व जाने; एक को न जाने, वह सर्व को न जाने।

चार बातें हुई। समझ में आया? एक ओर आत्मा, वह द्रव्य। एक आत्मा, हों! वह द्रव्य अर्थात् वस्तु; उसका ज्ञान, वह वस्तु का स्वभाव अर्थात् गुण और वह गुण वह सामान्य कायम रहनेवाला, वह प्रतिभासमय, लोकालोक को जानने के स्वभाववाला ज्ञान और वह सामान्य ज्ञान वर्तमान पर्यायरूप से, विशेषरूप से परिणमे वह तीसरा—पर्याय और उस पर्याय में लोकालोक जो द्रव्य-पर्याय (स्वरूप) है, वह उसमें निमित्त है। चारों ही वस्तु जगत की पूरी आ गयी इसमें, लो! समझ में आया?

अब जो पुरुष सर्व द्रव्यपर्याय जिनके निमित्त हैं... किसके? इस आत्मा के ज्ञान की वर्तमान विशेष अवस्था के, विशेष पर्याय के, जिसके **सर्व द्रव्यपर्याय जिनके निमित्त हैं...** जिसके अर्थात्? अनन्त विशेष व्यापनेवाला प्रतिभासमय, अनन्त विशेषों में व्यापनेवाला प्रतिभासमय महासामान्यरूप **आत्मा का स्वानुभव प्रत्यक्ष नहीं करता,...** तीनों बातें ली एक साथ। **जो पुरुष सर्व द्रव्यपर्याय जिनके निमित्त हैं, ऐसे अनन्त विशेषों में...** इतना। उस विशेष में **व्याप्त होनेवाले प्रतिभासमय महासामान्यरूप...** ऐसा। तीनों हो गये। निमित्त, जिसे विशेष में निमित्त है और विशेष महासामान्य स्वयं विशेषरूप से होता है। ऐसे महासामान्यरूप आत्मा को स्वानुभवप्रत्यक्ष करता नहीं। ऐसे महासामान्य ज्ञान को अपनी ज्ञानपर्याय से स्वानुभव प्रत्यक्ष करता नहीं।

वह (पुरुष) प्रतिभासमय महासामान्य के द्वारा व्याप्य (-व्याप्य होनेयोग्य) जो प्रतिभासमय अनन्त विशेष... अनन्त विशेष अर्थात् पर्यायें। **उनकी निमित्तभूत सर्व द्रव्यपर्यायों को कैसे प्रत्यक्ष कर सकेगा?** यहाँ तो यह सिद्ध करना है न कि एक को न जाने, वह पर को न जाने। एक को जाने वह पर को जाने, यह सिद्ध करना है न। तो कहते हैं, अपना द्रव्य, उसका जो ज्ञानगुण, उसकी विशेष अवस्था, उसमें जो अनन्त

निमित्त। अनन्त जो निमित्त लोकालोक के, उसे विशेष में निमित्त। वह सामान्य विशेषरूप से व्यापे, ऐसे महासामान्य ज्ञानगुण को जो अन्तर में जानता नहीं, वह पर को किस प्रकार जाने? समझे न? अपना पूरा रूप जाना नहीं तो पूरे रूप में सर्व द्रव्य और पर्याय आये नहीं तो पर को जानता नहीं। समझ में आया?

जो पुरुष सर्व द्रव्यपर्याय जिनके निमित्त है... कैसे? अनन्त विशेष। जिनके अर्थात् विशेष। **ऐसे अनन्त विशेषों में व्याप्त होनेवाले प्रतिभासमय महासामान्यरूप...** अर्थात् ज्ञानगुण। ऐसा ज्ञानगुण ऐसा आत्मा, ऐसा वापस। द्रव्य ले लिया वापस। ऐसे **महासामान्यरूप आत्मा का स्वानुभवप्रत्यक्ष नहीं करता,...** केवलज्ञान की अपेक्षा से बात है अभी, हों! ऐसे आत्मा को ज्ञान की पर्याय से प्रत्यक्षरूप से आत्मा को प्रगट करता नहीं, अनुभव करता नहीं, **वह प्रतिभासमय महासामान्य के द्वारा व्याप्य जो प्रतिभासमय अनन्त विशेष है, उनकी निमित्तभूत सर्व द्रव्यपर्यायों को कैसे प्रत्यक्ष कर सकेगा?** कितनी सरल और सीधी बात की है न! आहाहा! लॉजिक से, न्याय से सत् को सिद्ध किया है। कहते हैं, जो कोई जीव द्रव्य, ज्ञानगुण सामान्य और विशेष पर्याय, उसमें निमित्त वह (लोकालोक)। हुआ? अब जो कोई इतने पूर्ण आत्मा को जानता नहीं, उसे उस निमित्तभूत जो विशेष और (ज्ञान) विशेष (रूप से) परिणमनेवाला महासामान्य और महासामान्य का धारक आत्मा, उसे जिसने ऐसा जाना नहीं, वह सर्व को जानता नहीं। आहाहा!

(नहीं कर सकेगा) इससे ऐसा फलित हुआ कि जो आत्मा को नहीं जानता, वह सबको नहीं जानता। लो! आहाहा! ऐसा जो आत्मा कि जिसके विशेषों में अनन्त निमित्त द्रव्य और पर्याय है, वह विशेष, सामान्य स्वयं विशेषरूप परिणमता है, उस सामान्य का धारक आत्मा है, ऐसे आत्मा को जानता नहीं, वह सर्व को जानता नहीं। गजब बात, भाई! ऐसा योगफल करके फिर कहेंगे विशेष....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १३, शनिवार, दिनांक १९-१०-१९६८
गाथा - ४९-५०-५१, प्रवचन - ४०

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। ४९ वीं गाथा चलती है। अन्तिम हुआ न? **इससे ऐसा फलित हुआ कि जो आत्मा को नहीं जानता, वह सबको नहीं जानता।** आत्मा कितना ज्ञान की पर्याय में है, उसे यहाँ सिद्ध करते हैं। और ऐसा आत्मा एक समय की ज्ञान की पर्याय में परिपूर्ण तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसी एक पर्याय की शक्ति है। ऐसी शक्ति को व्यक्त करने के लिये, वस्तु में शक्ति पड़ी है, वह प्रगट होने की, ऐसा जो आत्मतत्त्व, उसे अवलम्बन के लिये शुद्ध श्रद्धा और ज्ञान, चारित्र चाहिए। ऐसे स्वभाव की श्रद्धा, ज्ञान और चारित्र के अवलम्बन से वह पूर्ण दशा प्रगट होती है। वह मोक्ष का उपाय इस प्रकार से है, ऐसा बताते हैं। ज्ञानतत्त्व-ज्ञानस्वरूप ही आत्मा है। वस्तु ज्ञानस्वरूप है। उसकी एक समय की पर्याय में लोकालोक न ज्ञात हो तो वह ज्ञान की पर्याय परिपूर्ण प्राप्त कहाँ? और परिपूर्ण जाना, तब उसने आत्मा को जैसा है, वैसा जाना, पूर्ण दशा से अनुभव किया। और तो उसने आत्मा को जानते हुए सर्व को जानता है, यह बात इसमें आ गयी। समझ में आया?

अन्त में आया न? **इससे ऐसा फलित हुआ कि जो आत्मा को नहीं जानता, वह सबको नहीं जानता।** आत्मा की एक समय की पर्याय में परिपूर्ण ज्ञान होने की जो सामर्थ्य, ऐसे आत्मा को जो जानता नहीं और अपूर्णरूप से जाने, वह आत्मा को जानता नहीं तो सर्व को भी जानता नहीं, परन्तु आत्मा ही सर्व को जानने की सामर्थ्यवाला तत्त्व है। समझ में आया? आत्मवादी लिखा है, उस आत्मधर्म में। कल आया था न? आत्मधर्म मासिक निकलता है न यहाँ से? सब पत्रों के नाम दिये हैं, उसमें यहाँ का दिया है आत्मधर्म। आत्मवादी ऐसा कोष्ठक में लिखा था। कल एक आयी है न एक गोष्ठी। आत्मवादी ... अकेले आत्मवादी का पक्ष कहना चाहते हैं? या क्या कहते हैं?

मुमुक्षु : अपने तो सबका....

पूज्य गुरुदेवश्री : गोम्मटसार में ऐसा आता है कि आत्मवादी एकान्त पक्ष में।

यहाँ तो आत्मा अर्थात् अन्दर परिपूर्ण सब स्वभाव भरे हैं ज्ञान के, दर्शन के, आनन्द के, शान्ति के। शान्ति अर्थात् चारित्र। अनेक शक्तियों का भण्डार आत्मा। ऐसा आत्मा अन्तर स्वभाव की दृष्टि करने से, उसका ज्ञान करने से और उसमें रमणता करने से एक समय में तीन काल-तीन लोक जाने, इतनी ही उसकी पर्याय की पूर्णता का स्वभाव है। उसे ही अकेले को न जाने तो उसने आत्मा को जाना नहीं। आत्मा को जाना नहीं तो सर्व को जानता नहीं।

अब, इससे ऐसा निश्चित होता है कि सर्व के ज्ञान से आत्मा का ज्ञान... उसके साथ मिलाया ४८ के साथ। **सर्व के ज्ञान से आत्मा का ज्ञान...** अर्थात् क्या कहा? यह लोकालोक छह द्रव्य आदि हैं, उनका ज्ञान—सर्व का ज्ञान, वह आत्मा का ज्ञान। क्योंकि इतनी तो ज्ञान की पर्याय है। समझ में आया? ज्ञान की एक समय की पर्याय का सामर्थ्य इतना है कि सर्व का ज्ञान अर्थात् पर्याय का ज्ञान, पर्याय का ज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान। सर्व का ज्ञान अर्थात् आत्मा का ज्ञान और आत्मा का ज्ञान अर्थात् सर्व का ज्ञान। आहाहा! ऐसा महा परमात्मा स्वयं उसकी ओर न देखकर, परसन्मुख देखने की जो क्रिया, वह भटकने की क्रिया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसलिए ऐसा आत्मा ज्ञानतत्त्ववाला है, उसका पूरा अध्ययन लिया, देखो! ९२ गाथा तक। देखो! पहले से ९२ तक।

सर्व के ज्ञान से आत्मा का ज्ञान... अर्थात् ज्ञान का परिपूर्ण रूप ही तब पूरा होता है। सर्व को जाने, ऐसा ज्ञानरूप परिणमे, तब उसका रूप ही स्वरूप का पूरा होता है। इसलिए सर्व का ज्ञान, वही आत्मा का ज्ञान और आत्मा का ज्ञान, वह सर्व का ज्ञान। आत्मा का ज्ञान हुआ, उसे पर्याय में सब ज्ञान आ गया। इसलिए सर्व का ज्ञान उसमें होता है। समझ में आया? **ऐसा होने से, आत्मा ज्ञानमयता के कारण...** भगवान आत्मा तो ज्ञानस्वरूप के कारण, ज्ञानभाव के कारण **स्वसंचेतक होने से...** स्व अर्थात् अपने को जानता होने से। कहो, समझ में आया? **स्वसंचेतक होने से, ज्ञाता और ज्ञेय का वस्तुरूप से अन्यत्व होने पर भी...** आत्मा ज्ञानपने के कारण स्वसंचेतक—अपने को चेतनेवाला होने से **ज्ञाता और ज्ञेय का वस्तुरूप से अन्यत्व होने पर भी...** आत्मा और ज्ञेय दो अत्यन्त भिन्न चीज़ होने पर भी **ज्ञानमयता के कारण स्वसंचेतक होने से,...**

प्रतिभास और प्रतिभास्यमान का अपनी अवस्था में अन्योन्य मिलन होने के कारण... ज्ञान और प्रतिभास होनेयोग्य वस्तु, उसका **अपनी अवस्था में अन्योन्य मिलन...** है। ज्ञातापने का ज्ञान और ज्ञेयपने का ज्ञान, दो मिलन है अन्दर में। अपना ज्ञान और ज्ञेय का ज्ञान एक समय की पर्याय में दोनों एकमेक हो गया है। वस्तु नहीं, वस्तु भिन्न, परन्तु उस वस्तु सम्बन्धी का ज्ञान ज्ञेय का और आत्मा का दोनों एक समय की पर्याय में पूरा ज्ञान एकमेक हो गया है। वस्तु अन्यत्व होने पर भी वस्तु सम्बन्धी का ज्ञान और अपना ज्ञान एक समय में मिश्र है। एक समय में पूरा ज्ञान है। उसे ज्ञेय के ज्ञान को ज्ञान में से भिन्न करना अशक्य है, हो नहीं सकता। समझ में आया?

(अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय, आत्मा की-ज्ञान की अवस्था में परस्पर मिश्रित... ज्ञान और ज्ञेय दोनों। **आत्मा की-ज्ञान की अवस्था में परस्पर मिश्रित...** कौन? ज्ञान और ज्ञेय। **एकमेकरूप होने से) उन्हें भिन्न करना अत्यन्त अशक्य होने से...** कहो, समझ में आया? ज्ञान की पर्याय में नीचे (छद्मस्थ में) भी देखो तो 'यह खट्टा है' ऐसा यहाँ ज्ञान हुआ, वह ज्ञेय सम्बन्धी का अपना ज्ञान है। वह ज्ञान और ज्ञेय सम्बन्धी का ज्ञान दोनों भिन्न कैसे करे? वह तो अपनी अवस्था है। समझ में आया? यह खट्टा है, यह मीठा है, ऐसा जो ज्ञेय, ऐसा ज्ञेयसम्बन्धी का यहाँ ज्ञान कि 'यह मीठा है' ऐसा ज्ञान और अपना ज्ञान, वह ज्ञान और ज्ञेय की अवस्था तो ज्ञान में हुई, वे दोनों पृथक् नहीं किये जा सकते। ज्ञेय के ज्ञान को और ज्ञान के ज्ञान को कहीं भिन्न नहीं किया जा सकता। वह तो दोनों एक ही वस्तु है। समझ में आया? यह मीठा है, ऐसा जो ज्ञान, वह तो ज्ञान की अवस्था हुई। उसमें जो मीठा है, ऐसा जो ज्ञान ज्ञेय सम्बन्धी का भिन्न किया जा सकता है? इसी प्रकार यह लोकालोक है ऐसा जो ज्ञान, लोकालोक है ऐसा जो ज्ञान, वह ज्ञान की अवस्था हुई, उस अवस्था में से लोकालोक का ज्ञान भिन्न किया जा सकता है? लोकालोक भिन्न है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दो वस्तु भिन्न है। परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान भिन्न नहीं पड़ता। वस्तु भिन्न है। दृष्टान्त दिया या नहीं नीचे? कहो, भीखाभाई! यह हीराभाई है, ऐसा ज्ञान आवे अन्दर में, कहते हैं। हीराभाई नहीं आते अन्दर। वह तो अन्य है। क्या

न आवे ? ऐसे हीराभाई का दृष्टान्त दिया। तुम्हारा नहीं दिया। इन्हें एक का एक है। और उसकी स्थिति से वापस अधिक स्थिति चाहिए न, पैसे की, इज्जत की। लड़के ने बड़ाई न, ऐसा मानते होंगे, लोग माने। यहाँ कहते हैं, भीखाभाई! यह परसम्बन्धी का ज्ञान, वह ज्ञान की अवस्था में ज्ञान हुआ, वह परवस्तु अन्यत्व अर्थात् भिन्न है, तथापि उस सम्बन्धी का ज्ञान, वह ज्ञान की अवस्था में से कैसे निकाल सकते हैं ? वह तो अपनी दशा है। यह शरीर है, एक दृष्टान्त शरीर। अब शरीर है, वह तो भिन्न है। परन्तु शरीर है, ऐसा जो ज्ञान में ज्ञान हुआ (कि यह) शरीर है, ऐसा ज्ञान की अवस्था में ज्ञान हुआ, वह शरीर सम्बन्धी अवस्था का अपना ज्ञान, उसे किस प्रकार भिन्न करे ? शरीर भिन्न है। समझ में आया ?

प्रतिभास और प्रतिभास्यमान अर्थात् ज्ञान और ज्ञेय, ऐसा। **अपनी अवस्था में अन्योन्य मिलन होने के कारण (ज्ञान और ज्ञेय,...** देखो! प्रतिभास का अर्थ (ज्ञान) और प्रतिभास्य का अर्थ ज्ञेय। **आत्मा की-ज्ञान की अवस्था में परस्पर मिश्रित-एकमेकरूप होने से)...** अर्थात् कि आत्मा का ज्ञान और वह ज्ञेय का ज्ञान सब एक है। मिश्रित शब्द से (आशय) एक है, उसमें कहीं भिन्न नहीं किया जा सकता। **उन्हें भिन्न करना अत्यन्त अशक्य होने से...** समझ में आया ? यह मीठा है, ऐसा जो ज्ञान हुआ, वह ज्ञान हुआ वह तो अपनी अवस्था में हुआ है न। वह अपनी अवस्था में हुआ और अपनी अवस्था से हुआ है न ? या मीठे की अवस्था में हुआ है और मीठे के कारण यहाँ हुआ है वह ? शक्कर मीठी है, ऐसा जो ज्ञान। शक्कर तो जड़ है। वह तो रंग, गन्ध, रस, स्पर्शवाली चीज़ है। उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान, वह अपनी ज्ञान अवस्था में हुआ। उस अवस्था में शक्कर नहीं आयी। शक्कर तो अन्दर में रह गयी, परन्तु शक्कर सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान है, वह तो अपना है। वह ज्ञेय सम्बन्धी का ज्ञान और अपना ज्ञान कहीं भिन्न नहीं किया जा सकता। अत्यन्त एक है। भिन्न किसी प्रकार से नहीं किया जा सकता। मानो अकेला ही आत्मा है जगत में, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा तो अकेला ही होता है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अकेला अर्थात् ? अकेला ही स्वयं है, दूसरा नहीं। ज्ञान की अवस्था में आत्मा पूर्ण ज्ञात हुआ और लोकालोक ज्ञात हुआ, वह तो एक ज्ञान की

अवस्था जितनी चीज़ ही हुई। वजुभाई! एक ही है, ऐसा कहा। यहाँ तो पर्याय में एकरूप हो गया, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? एक ही पर्याय का अस्तित्व, ज्ञान की एक समय की पर्याय का अस्तित्व, उसमें द्रव्य-गुण-पर्याय का भी ज्ञान हुआ, लोकालोक का (ज्ञान हुआ), अर्थात् एक ही समय की अवस्था से पूरा हुआ। वस्तु इतनी रही और एक ही है। इस हिसाब से सब भिन्न है। भिन्न भिन्न में भले हो, परन्तु उसमें सब आ गया है। आहाहा! समझ में आया या नहीं? क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसके लिये तो कहा जाता है यह। यह निकलने के लिये तो है।

पहले पक्का पक्ष तो करे कि यह एक चीज़ है आत्मा और उसका ज्ञान। यह ज्ञानतत्त्व की व्याख्या है न। उसका—ज्ञान का तत्त्व अर्थात् भाव-स्वभाव कितना है? उसका एक गुण ज्ञान परमभाव ज्ञान, उसकी पर्याय का एक समय का सामर्थ्य कितना है? कि मानो एक ही पर्याय पूर्ण हो और वस्तु इतनी ही हो, दूसरा, सबका ज्ञान और इसका ज्ञान आ जाये तो एक समय की पर्याय में लोकालोक और जगत की चीज़ है। वजुभाई! समझ में आया इसमें? वह तो और सब आत्मा एक है और सब एक कहते हैं, वह तो एक ओर रह गया। यहाँ तो एक समय की पर्याय ही पूरी हो गयी। बस हो गया। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा... ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है। ज्ञानस्वभाव है जिसका त्रिकाल चैतन्यसूर्य है, वह तो चैतन्यसूर्य है, ऐसी उसकी जो प्रगट दशा जितनी है, उतनी पूरी, उस पूरी में लोकालोक का ज्ञान और अपना ज्ञान एक समय में आ जाता है। अब लोकालोक का ज्ञान और यह ज्ञान दोनों भिन्न हैं कहीं अन्दर? वह तो वस्तु ज्ञान की पर्याय एक ही है। आहाहा! इतना एक आत्मा, एक समय की पर्याय में इतना आत्मा, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय का एक गुण और ऐसे अनन्त गुण का (एकरूप) आत्मा है। ओहोहो! समझ में आया? ऐसे आत्मद्रव्य के ऊपर दृष्टि करना, इसका नाम मोक्ष के मार्ग की शुरुआत वहाँ से होती है। यह सुखी होने का रास्ता और दु:ख को मिटाने का उपाय है। समझ में आया?

इसकी ज्ञान की क्रिया ही सुख का उपाय है। राग की क्रिया, राग तो ज्ञेय में जावता है। जो राग से लाभ मानता है, वह तो राग तो ज्ञेय है, तो ज्ञेय और ज्ञान एक हो जाये। यह तो अन्यत्व होने पर भी राग और वस्तुस्थिति जगत की अन्य होने पर भी... अज्ञानी को राग और मिथ्यात्व है या नहीं? वह ज्ञेय में जाता है या नहीं? वह ज्ञान में रहता है या नहीं? अज्ञानी ऐसा आत्मा निगोद का या गृहीत मिथ्यात्व, ऐसे मिथ्यात्वभाव का ज्ञान में ज्ञेयपना आता है या नहीं? समझ में आया? वह ज्ञान उस ज्ञेय सम्बन्धी का ज्ञान करे, परन्तु गृहीत मिथ्यात्व में वह ज्ञान की पर्याय एकमेक नहीं होती। तथापि उस सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ से भिन्न करना अशक्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! कहते हैं, तेरी नजरें वहाँ जाये। एक समय की पर्याय भी इतनी है कि जिसमें तेरा अल्पज्ञपना भी रहे नहीं और पूरे जगत के तीन काल-तीन लोक ज्ञात हुए बिना रहे नहीं। इतनी एक समय की पर्याय, बस उसमें से आत्मा का ज्ञान और उसका ज्ञान दोनों भिन्न (नहीं किये जा सकते)। क्योंकि वस्तु एक ही है वह। सर्वज्ञपर्याय, आत्मज्ञपर्याय एक ही है। मानो एक ही पर्याय अद्वैतरूप से जगत में हो और दूसरा कुछ उसकी अपेक्षा से नहीं। कहो, उसकी अपेक्षा से लोकालोक भी नहीं और एक समय की पर्याय की अपेक्षा से अपने द्रव्य-गुण त्रिकाल, वह भी नहीं। क्या कहा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरा द्रव्य नहीं, कहते हैं। एक समय की पर्याय ही बस है। आहाहा! जो पर्याय द्रव्यरूप से होती नहीं। परन्तु द्रव्य का ज्ञान, जैसा द्रव्य है, उसका ज्ञान पर्याय करती है। अपना द्रव्य और अपने अनन्त गुण, उन सम्बन्धी की ज्ञान की पर्याय ज्ञान करती है, वह ज्ञान के ज्ञेय दो प्रकार से हो गये—एक परज्ञेय और एक स्वद्रव्य-गुण और अपनी पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय और अपनी भी ज्ञान की पर्याय, वे सब ज्ञेय में जाते हैं। तो वह एक ही पर्याय ज्ञान का अपना अनन्त गुण और द्रव्य, उसे जानती है, अपनी अनन्त पर्याय को जानती है, लोकालोक के द्रव्य-गुण-पर्याय को एक समय की पर्याय जानती है। ओहोहो!

मुमुक्षु : पर्याय का सामर्थ्य तो गजब का है!

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय के सामर्थ्य से अनन्तगुणा पर्याय है, उसका सामर्थ्य तो

वहाँ है। यहाँ तो उसका ज्ञान आया, इतनी बात है। उसका यहाँ ज्ञान आया है, ऐसा। वह वस्तु इसमें आयी नहीं। समझ में आया? ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायों का पिण्ड है गुण, तो वस्तु वहाँ गयी। और ऐसे अनन्त गुण का पिण्ड, वह द्रव्य है। सामर्थ्य तो वहाँ है। परन्तु यहाँ अस्तित्व में सिद्ध करना है। ज्ञानतत्त्व है न यहाँ? उस ज्ञान की एक समय की पर्याय उसका और उसका पूरा जाने इतना उसका सत्त्व है। आहाहा! इससे तीन काल और तीन लोक से भी यदि दूसरा अनन्तगुणा होता तो भी एक समय में ग्रास हो जाता, इतना ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है। आहाहा! अब इसे तो इतने मकान चाहिए, इतने पैसे चाहिए। इतने किसलिए चाहिए? लोकालोक चाहिए और पूरे द्रव्य-गुण चाहिए (ज्ञान में) ऐसा ले न! ज्ञानचन्दजी! तीन काल, तीन लोक और द्रव्य और गुण सब चाहिए मेरी ज्ञान की पर्याय में, ऐसा कह न! उस सम्बन्धी का ज्ञान करता है, दूसरा क्या? अपना करता है कोई? अपने में आ जाता है कोई? और अपना हो जाता है वह? ज्ञानपर्याय का पर हो जाता है? ज्ञानपर्याय पर की हो जाती है? और पर यहाँ ज्ञान की पर्याय में आ जाता है? अन्यत्व है, ऐसा कहते हैं। ओहोहो!

ऐसा भगवान ईश्वर सम्पदा रखनेवाला। एक पर्याय में इतनी ईश्वर सम्पदा रखनेवाला। कर्ता किसका? करे कौन? जितने हैं, उन्हें जाने, ऐसी सम्पदा रखनेवाला है। आहाहा! ऐसा आत्मा जिसकी दृष्टि में आवे, ऐसी पर्याय के सामर्थ्यवाला, उसकी दृष्टि द्रव्य के ऊपर झुके बिना रहे नहीं। ओहोहो! ऐसा सामर्थ्य पर्याय का। उस पर्याय का धनी प्रजा पर्यायवान कितना? समझ में आया? ऐसा द्रव्य चैतन्य भगवान जिसकी खान में लोकालोक तो एक पर्याय जाने, ऐसे अनन्त लोकालोक हों तो भी वह पर्याय जाने, ऐसी अनन्त पर्याय का एक गुण है। और एक-एक गुण में उससे अनन्त गुणी शक्ति है और ऐसे अनन्त गुण की शक्ति के सामर्थ्यरूप परमेश्वर स्वयं आत्मा है। ऐसे आत्मा की दृष्टि करना और उसके सन्मुख होकर अनुभव करना, वह जीव का मनुष्यपने में आकर कर्तव्य है। करने का यह है। (अपना) करने का रह जाये और किसी का करने जाये, वहाँ अभिमान में भटक मरे। समझ में आया? कर सकता नहीं कुछ और जाने बिना रहता नहीं कुछ। कर सकता नहीं अपने अतिरिक्त पर का कुछ और पर को अपना जाने बिना रहता नहीं कुछ। उसे जानने का बाकी रहे, ऐसा है नहीं। आहाहा! समझ में आया?

ऐसा आत्मा है, ऐसा इसने कभी सुना नहीं। श्रुत, परिचित, अनुभूता। समझ में आया? पर से पृथक्, अपने स्वभाव से एकत्व ऐसी जो पर्याय का इतना सामर्थ्य! ओहोहो! उसकी दृष्टि अन्तर में जाये और सम्यग्दर्शन हो। जन्म-मरण छूट गये, ज्ञेय हो गये। कुछ थोड़ से एकाध-दो भव हों तो वह ज्ञान का ज्ञेय हुआ और उस ज्ञेय सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ रहा। वे भिन्न रह गये। भव और राग भिन्न रह गये। यह ज्ञान की पर्याय में उस सम्बन्धी का ज्ञान आवे, परन्तु उस ज्ञान से वह चीज़—राग और भव भिन्न रह गये। समझ में आया? ऐसा ज्ञान का स्वभाव उसे यहाँ ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन स्थापित करते हैं। ओहो! आचार्यों ने जंगल में रहकर महाकरुणा जगत की करके, प्राणी दुःखी देखकर जैसे करुणा दयावन्त को आती है न, वैसे यह करुणा का विकल्प उठा है। जन्म-मरण के गड्ढे में अरे! फँसते जीवों! तुमको उद्धार का मार्ग यह है और वह तुम्हारे पास है। तू ही उसके उद्धार का साधन है। इतनी शक्ति है। आहाहा! राग तो कहाँ गया? निमित्त कहाँ गया? व्यवहार तो कहाँ गया? समझ में आया? उत्तमचन्दभाई!

उन्हें भिन्न करना अत्यन्त अशक्य होने से मानो सब कुछ आत्मा में निखात (प्रविष्ट) हो गया हो... देखो! सब मानो कि आत्मा में... उस पर्याय को आत्मा गिनकर लेना है न यहाँ? **आत्मा में निखात...** आत्मा में जिसे निखात... है न निखात? **खोदकर भीतर गहरा उतर गया हुआ...** लोकालोक मानो ज्ञान की पर्याय में गहरे चले गये हों।

मुमुक्षु : लोकालोक का ज्ञान।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह लोकालोक का ज्ञान। वह लोकालोक का ज्ञान, वह लोकालोक है न। यहाँ तो लोकालोक वह है। वह लोक तो उसके पास रहा। ऐसा लोकालोक का जो ज्ञान-ज्ञेय का ज्ञान, ज्ञेय जाने, ऐसा कहा न? इस प्रकार भिन्न करना (अशक्य) होने से। **मानो सब कुछ आत्मा में निखात (प्रविष्ट) हो गया हो...** ऐसा। सब अर्थात्? ज्ञेय और ज्ञान। सब ज्ञान में गहरा-गहरा प्रविष्ट हो गया। आहाहा! **इस प्रकार प्रतिभासित होता है-ज्ञात होता है। (आत्मा ज्ञानमय होने से वह अपने को अनुभव करता है - जानता है,...** ऊपर आया था न **'संचेतक होने से।' और अपने को जानने पर समस्त ज्ञेय ऐसे ज्ञात होते हैं—मानों वे ज्ञान में स्थित ही हों,...** ज्ञान की पर्यायरूप से।

क्योंकि ज्ञान की अवस्था में से ज्ञेयाकारों को भिन्न करना अशक्य है।) भगवान आत्मा की दशा में से ज्ञेयों की अवस्था का ज्ञान भिन्न करना अशक्य अर्थात् हो नहीं सकता। **यदि ऐसा न हो तो (यदि आत्मा सबको न जानता हो तो) ज्ञान के परिपूर्ण आत्मसंचेतन का अभाव होने से...** तो ज्ञान को ही अपनी दशा के परिपूर्ण का अनुभव नहीं होने से। ऐसा होने से ज्ञान को परिपूर्ण आत्मा के अनुभव का अभाव होने से **परिपूर्ण एक आत्मा का भी ज्ञान सिद्ध न हो।** अपने आत्मा की पर्याय में पूर्ण जानता है, ऐसा संचेतन स्वभाव है, ऐसा यदि वह न हो तो उसे आत्मा का ज्ञान भी यथार्थ है नहीं। **आत्मा का भी ज्ञान सिद्ध न हो।** आत्मा का ज्ञान भी सिद्ध नहीं होता, लो! गजब बातें भाई! समझ में आया?

एक बार (पण्डित) लालन कहे, मुझे माँड बिना चलता नहीं। माँड होता है न माँड? क्या? गर्म-गर्म माँड। वह चावल होते हैं और उसमें दाल हो लचका। माँड गर्म-गर्म होता है न। इसलिए चूल्हे में नीचे अग्नि हो न सामने। उसमें डालकर रखे। धग-धग-धग। माँड बिना चले नहीं। अपने सिद्ध होंगे, परन्तु माँड मिले तो वहाँ सिद्ध होना है। वहाँ तो देखा तो ओहो! माँड क्या, यह तो ज्ञान में पूरा लोकालोक आता है यह तो। माँड तो कहीं रह गया। यहाँ क्या आता है? यहाँ माँड आ जाता है अन्दर? उस सम्बन्धी का ज्ञान स्वयं को होता है। मानता है कि मैं माँड को छूता हूँ और खाता हूँ। यह तो उसकी मान्यता भ्रम है।

मुमुक्षु : सब भ्रम?

पूज्य गुरुदेवश्री : भ्रम, वह कैसा भ्रम? भगवान (आत्मा) को भूलकर भ्रम। माँड को खाता है यहाँ? माँड तो जड़ है, मिट्टी, धूल है। शरीर को भोगता है यह? वह तो मिट्टी-जड़ है। वह रूपी है। वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्शवाली (चीज़) है, उसे भोगे आत्मा? ज्ञान की पर्याय में वह ज्ञात होता है, कि यह है। उसे जानते हुए इसे ऐसा हो जाता है कि मैं उसे भोगता हूँ। ऐसा मिथ्याभाव खड़ा करके, जो नहीं भोगता उसे भोगता हूँ, ऐसा मानता है।

मुमुक्षु : असद्भूत व्यवहार को....

पूज्य गुरुदेवश्री : असद्भूत का अर्थ? झूठे बोल से बोला जाता है कि उसे भोगता है। झूठा बोल झूठ बोलता है कि उससे भोगा जाता है। असद्भूत व्यवहारनय का अर्थ, वह झूठे के समय झूठा बोलना। झूठी रीति से कहना कि उसे भोगा जाता है। अर्थात् सच्ची रीति से भोगता नहीं। बस इतना। आहाहा! समझ में आया? चूरामा के लड्डू, कली के लड्डू या तेल और पूड़ी को आत्मा खा सकता है? उसे स्पर्श कर सकता है? तीन काल में स्पर्श कर सकता है कभी कहीं? कहीं किसी काल में, किसी क्षेत्र में, किसी अवस्था में, बहुत मूर्च्छा आयी हो पर में, तो भी उसे छू सकता है? उस सम्बन्धी का ज्ञान कर सकता है और उस समय उस सम्बन्धी का ज्ञान ही होता है। परन्तु ज्ञान होने के उपरान्त उसे मान लेता है, यह... यह मुझे स्पर्श कर गया, यह मैंने उसे स्पर्श किया और यह मुझे भोगा जाता है। ऐसी भ्रमणा उसे लागू पड़ी है। वह भ्रमणा उसे चौरासी के अवतार में भटकाती है। समझ में आया?

भावार्थ :- ४८ और ४९वीं गाथा में ऐसा बताया गया है कि जो सबको नहीं जानता, वह अपने को नहीं जानता,... यह ४८ में आया। **जो सबको नहीं जानता, वह अपने को नहीं जानता,...** अर्थात् कि पर्याय की परिपूर्णता उतनी ही है कि सर्व को जानना, ऐसी ही पर्याय की परिपूर्णता है। **जो सबको नहीं जानता, वह अपने को नहीं जानता, और जो अपने को नहीं जानता...** अपनी पर्याय की परिपूर्णता को जानता नहीं, वह सर्व को जानता नहीं। **अपना ज्ञान और सबका ज्ञान एक साथ ही होता है।** लो! अपना ज्ञान और पर का ज्ञान एक समय में एकसाथ होता है। परिपूर्ण की अपेक्षा से बात है यहाँ। **स्वयं और सर्व—इन दो में से एक का ज्ञान हो और दूसरे का न हो, यह असम्भव है।** अपने आत्मा की पर्याय का ज्ञान हो और पर का न हो, पर का हो और पर सम्बन्धी की अपनी पर्याय का पूर्ण का न हो, ऐसा नहीं होता। कहो, न्याय समझ में आता है इसमें? अब ऐसा धर्म किस प्रकार का? आहाहा!

दया पालना, व्रत पालना, वस्तु छोड़ो... छोड़ो... छोड़ो। कहाँ घुस गयी थी, उसे छोड़ो? तेरे जानने में आयी थी, वह जानने का ज्ञान भी कहाँ छोड़ना है? वह तो अन्दर में तेरी ज्ञान की पर्याय है। समझ में आया? 'ऐसा मार्ग वीतराग का भाषित श्री भगवान।' ऐसा स्वरूप है। तुझे तेरे ज्ञान की कला की माहात्म्य की खबर नहीं कि जिस

ज्ञान की कला में परिपूर्णता तब उसकी कहलाये कि जो लोकालोक को जानकर अपनी पर्यायरूप परिणमे तब। तब वह सर्व को जाने, वह आत्मा को जाने। क्योंकि सर्व का ज्ञान, वह अपनी पर्याय का ज्ञान है और अपनी पर्याय का पूर्ण ज्ञान, वह अपने को जाने, वह सर्व को जाने। वह तो सब एकमेक है। आहाहा! एक ज्ञानतत्त्व में इतनी बात सन्तों ने जंगल में रहकर क्षयोपशम ज्ञान में आया, वाणी वाणी के काल में परिणम गयी। विकल्प था, उसका भी ज्ञान है वहाँ। वाणी निकली, उसका भी वहाँ ज्ञान है, उस सम्बन्धी का। उस ज्ञान की पर्याय को हम ज्ञान में से भिन्न कैसे करें? विकल्प सम्बन्धी का ज्ञान और वाणी सम्बन्धी का ज्ञान और आत्मा का ज्ञान, वह मिश्रितरूप ज्ञान की अवस्था में उसका ज्ञान भिन्न कैसे पड़े? उस काल में वही होता है। उस काल में वही विकल्प, उस काल में वही वाणी की पर्याय होती है। वे ज्ञेय भिन्न होने पर भी उन सम्बन्धी ज्ञानपर्याय और अपने सम्बन्धी की ज्ञान पर्याय को भिन्न कैसे किया जाये? और कैसे इनकार किया जाये कि यह नहीं? उसमें यह नहीं, उसमें यह नहीं, ऐसा कैसे कहा जाये? कि वह है, उस सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ अपने में आया है अपने में। यहाँ है तो वहाँ है, वह है तो वहाँ है। सबके कारण से सब हैं। समझ में आया?

स्वयं और सर्व—इन दो में से एक का ज्ञान हो और दूसरे का न हो, यह असम्भव है। यह कथन एकदेश ज्ञान की अपेक्षा से नहीं, किन्तु पूर्णज्ञान की (केवलज्ञान की) अपेक्षा से है। पूर्ण ज्ञान कहना है न यहाँ।

★ ★ ★

गाथा - ५०

अब, क्रमशः प्रवर्तमान ज्ञान की सर्वगतता सिद्ध नहीं होती—क्या कहते हैं? जो ज्ञान क्रम-क्रम से प्रवर्ते और क्रम-क्रम से ज्ञेय को जाने, वह ज्ञान परिपूर्ण सर्वज्ञ ज्ञान नहीं हो सकता। सर्वगत अर्थात् सर्वज्ञज्ञान, सर्वज्ञान नहीं हो सकता। यह ५०वीं गाथा।

उप्पज्जदि जदि णाणं कमसो अट्ठे पडुच्च णाणिस्स।
तं णेव हवदि णिच्चं ण खाइगं णेव सव्वगदं॥५०॥

ओहोहो! एक ज्ञानतत्त्व के सत्त्व के सामर्थ्य की सिद्धि करने के लिये कितने न्याय द्वारा सिद्धि करते हैं!

यदि ज्ञानी का ज्ञान, ज्ञेय के अवलम्बन से क्रमशः हो।
तो वह क्षायिक नहीं, नित्य नहिं, और सर्वगत भी नहिं हो॥५०॥

सर्वगत—सर्वज्ञज्ञान ही नहीं वह।

अन्वयार्थ :- यदि आत्मा का ज्ञान क्रमशः पदार्थों का अवलम्बन लेकर उत्पन्न होता हो... क्रम-क्रम से हो और पदार्थ को अवलम्ब कर (हो)। एक साथ हो तो सब पदार्थ एक साथ अवलम्बन निमित्त कहलाये, परन्तु क्रम-क्रम से हो तो क्रम-क्रम से पदार्थ का निमित्त का अवलम्बन है। ऐसा जो ज्ञान हो तो वह नित्यज्ञान नहीं। क्रम-क्रम से ज्ञान हुआ, वह नित्य नहीं और पदार्थ को अवलम्बता है, इसलिए उस पदार्थ का नित्यपना यहाँ आया नहीं। और ज्ञान ही नित्य नहीं हुआ। क्रम-क्रम से ज्ञान हुआ, वह नित्य कहाँ रहा? और वह क्षायिक नहीं। क्षायिक ज्ञान में तो एकसाथ सब पदार्थ का अवलम्बन एक साथ होता है। अवलम्बन अर्थात् निमित्त। समझ में आया? यहाँ तो अमुक पदार्थ को ज्ञान जाने, और वह पदार्थ छोड़कर ज्ञान की पर्याय क्रम से दूसरे को जाने, यह वह ज्ञान की दशा? कहते हैं। और वह सर्वगत नहीं। जो ज्ञान की दशा क्रम-क्रम से जाने और पदार्थ का अवलम्बन ले, वह ज्ञान नित्य नहीं, क्षायिक नहीं, सर्वज्ञ नहीं। क्षायोपशमिक है, अपूर्ण है और उसमें सर्वज्ञपने का अभाव है। इसलिए क्रमिक ज्ञान, वह वास्तविक ज्ञान है नहीं, केवलज्ञान नहीं, ऐसा कहते हैं।

इसकी **टीका :- जो ज्ञान क्रमशः...** क्रम-क्रम से उपजे **एक-एक पदार्थ का अवलम्बन लेकर प्रवृत्ति करता है,...** देखो! एक पदार्थ जाना पहले, पश्चात् छूटकर दूसरा जाने। क्योंकि यहाँ क्रम से ज्ञान होता है, इसलिए पदार्थ भी क्रम-क्रम से दूसरा-दूसरा आवे। **वह (ज्ञान) एक पदार्थ के अवलम्बन से उत्पन्न होकर...** एक पदार्थ के निमित्त द्वारा उत्पन्न होकर **दूसरे पदार्थ के अवलम्बन से नष्ट हो जाने से...** दूसरा पदार्थ जाने, तब पहले पदार्थ का ज्ञान नष्ट हो जाये। दूसरे पदार्थ का ज्ञान आवे। **नित्य नहीं होता...** वह ज्ञान नित्य नहीं। एक पदार्थ को अवलम्ब कर क्रम से जाना, दूसरे क्षण में वह ज्ञान गया और दूसरे पदार्थ को अवलम्बन किया। वह ज्ञान नित्य नहीं है।

तथा कर्मोदय के कारण एक व्यक्ति को प्राप्त करे... कर्मोदय के निमित्त के कारण। एक व्यक्ति अर्थात् ज्ञान की पर्याय की प्रगटता। ज्ञान की पर्याय की प्रगटता। एक प्रगट पर्याय को पाकर **फिर अन्य व्यक्ति को प्राप्त करता है,...** वह दूसरी पर्याय की प्रगटता को प्राप्त करता है, **इसलिए क्षायिक भी न होता हुआ,...** ज्ञान क्षायिक नहीं। पदार्थ को अवलम्बते हुए क्रम-क्रम से और वह नित्य नहीं और क्षायिक नहीं। क्योंकि पदार्थ में एक को अवलम्बकर वह पर्याय नाश हुई, वैसे दूसरे को अवलम्बकर नयी हुई, वह ज्ञान क्षायिक नहीं। **क्षायिक भी न होता हुआ,...** ओहोहो! प्रवचनसार गजब। अभी तो ९२ गाथा लेंगे, हों! यह तो अभी ५०वीं चलती है। इसमें मक्खन-मक्खन माल भरा है। ज्ञानतत्त्व का मक्खन है, भाई! तेरा स्वरूप तो जानना, वही है। जानने के अतिरिक्त (वह किसी का कुछ करता नहीं)।

ज्ञानतत्त्व है यह तो। ज्ञान, आत्मा का ज्ञान सत्त्व—स्वभाव है। चाहे वह राग हो, विकार हो, सुख-दुःख की कल्पना हो या संयोग हो, वास्तव में तो उसे जानना, वही उसका स्वरूप है। उस स्वरूप में पर में एकाकार होना, वह कहीं तेरा स्वरूप नहीं। वह जाति नहीं। उस जाति को तूने खोटी कर डाला। जानने की जाति को तूने पर के साथ मिलाकर ज्ञेय का ज्ञान और उस सम्बन्धी में मैं हूँ, उस सम्बन्ध में मैं हूँ, उस सम्बन्ध के ज्ञान में मैं हूँ, ऐसा नहीं मानकर उस सम्बन्ध में मैं हूँ, (यह) विपरीत दृष्टि है। समझ में आया? वह ज्ञान क्षायिक नहीं, कहते हैं।

धर्मी को अपनी दृष्टि में अवलम्बन है दृष्टि को द्रव्य का, इससे एक के बाद एक जानने पर भी द्रव्य को अवलम्बकर जो ज्ञान होता है, वह शुद्ध है। समझ में आया? भले क्रम-क्रम से हो, परन्तु द्रव्य को अवलम्बकर होता है। ऐसे द्रव्य का अवलम्बन नहीं और अकेले परद्रव्य का ही अवलम्बन जिसे है, ऐसा जो क्रमिक ज्ञान नष्ट हो जाता है। यहाँ भी देखो न परलक्ष्यी, द्रव्य के स्वभाव बिना का, इन्द्रिय से मिला हुआ ग्यारह अंग और नौ पूर्व का ज्ञान नष्ट होता है। इन्द्रियाँ हैं, तब तक निमित्त पदार्थ का अवलम्बन रहता है। जहाँ छूटा धबो नमः। यह उघाड़ था, वहाँ गया। दूसरे को अवलम्बन किया। दूसरे को अवलम्बकर नयी दशा उत्पन्न हुई। समझ में आया? राजा, महाराजा यहाँ हो बड़े और तत्त्व का विरोधी। अन्त तक उसे क्षयोपशम ज्ञान इतना विकास दिखाई दे।

ओहोहो! परन्तु जहाँ देह छूटा, पर्याय विनष्ट हुई। वह ज्ञान परावलम्बी—परसत्तावलम्बी इन्द्रिय ज्ञान था, द्रव्य के अवलम्बन से प्रगट हुआ ज्ञान नहीं था, वह ज्ञान नष्ट हो जाता है। वह निगोद में चला जाता है। वहाँ देखो तो अक्षर के अनन्तवें भाग में उघाड़ रहता है। यहाँ हो बड़ा बादशाह कहलाता हो। समझ में आया? बेरिस्टर। दो हजार का वेतन दिन का। कोर्ट को जरा हिला डाले जज को भी। विचार में रख दे। ऐसा जो ज्ञान, वह तो भ्रष्ट ज्ञान, इन्द्रिय ज्ञान है। यह जहाँ देह छूटी, निगोद की दशा। (इन्द्रिय ज्ञान) नाशवान ज्ञान है। अविनाशी ज्ञान क्षायिक है और अविनाशी वस्तु को अवलम्बकर ज्ञान (हुआ), वह भी नाशवान नहीं, ऐसा कहते हैं वापस। भगवान अखण्डानन्द प्रभु को अवलम्बकर जो ज्ञान हो, वह ज्ञान नाश नहीं होता। समझ में आया?

ऐसा जो क्षायिक नहीं होता, वह **अनन्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को प्राप्त होने में (-जानने में) असमर्थ होने के कारण सर्वगत नहीं है।** सर्व को जाननेवाला नहीं। समझ में आया? विचारपूर्वक किया हुआ ज्ञान वह तो क्रम-क्रम से किया हुआ ज्ञान है। लाओ, मैं विचारकर देखूँ कि इसका क्या है? वह तो ज्ञान की पहली अवस्था नाश हुई और दूसरी अवस्था परद्रव्य के अवलम्बन से है। कहते हैं, वह तो सब ज्ञान नाशवान है। ऐसा ज्ञान अनन्त द्रव्य... एक साथ नहीं जानता ज्ञान, वह अनन्त द्रव्य कैसे जाने? अनन्त द्रव्य को कैसे जाने? अनन्त क्षेत्र। आहाहा! आकाश का पार नहीं, ऐसे अपार को वह क्षायिक ज्ञान के अतिरिक्त कौन जाने? ऐसा (अल्प) ज्ञान उसे नहीं जान सकता। अनन्त काल। देखो! अनन्त द्रव्य है, अनन्त क्षेत्र है, अनन्त काल है अनादि-अनन्त... ऐसा क्रम-क्रम से होता ज्ञान और पदार्थ को अवलम्बकर होता पहला ज्ञान नष्ट होकर दूसरे पदार्थ के अवलम्बन से ऐसा ज्ञान, वह ऐसे अनन्त काल को जान नहीं सकता। अनन्त भाव। एक-एक द्रव्य के अनन्त गुण, अनन्त पर्यायें। पर्याय स्वकाल में जाये काल का भाव, उसे नहीं पहुँच सकता। एक क्षण-क्षण में क्रम-क्रम से पदार्थ को अवलम्बकर होता ज्ञान, वह ऐसे तीन काल के द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को नहीं पहुँच सकता। नहीं **प्राप्त होने में (-जानने में) असमर्थ होने के कारण...** वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता। समझ में आया? आहाहा! सर्वगत अर्थात् सर्वज्ञ। सर्वगत अर्थात् सर्व को जाननेवाला, सर्व को जाननेवाला।

भावार्थ :- क्रमशः प्रवर्तमान ज्ञान अनित्य है,... क्रम-क्रम से बदलता ज्ञान अनित्य है। **क्षायोपशमिक है...** आहाहा! अनित्य तो शरीर, वाणी, मन तो कहीं (रह) गये अनित्य। समझ में आया? भाई! अनित्य हैं यह सब, शरीर, वाणी। यहाँ तो क्षायोपशमिक ज्ञान अनित्य है। आहाहा! समझ में आया? क्षणिक में बदले, घड़ीक में बदल जाये। देखो न यहाँ के भव में नहीं होता कितनों को? अकस्मात् हो जाये तो भूल जाते हैं, लो!.... वकील थे, अमरेली। वकील, हों! परन्तु ऐसा कोई अकस्मात हो गया तो फिर से पढ़ना पढ़ा वापस। अक्षर भी एक भी याद नहीं रहा। यह गुजराती बोलना कुछ न आवे। आये... यह क्या? फिर और थोड़ा-थोड़ा सीखने लगे, फिर आया।... वकील। भूल गये। इन्द्रियज्ञान था परन्तु कुछ अकस्मात् हो गया तो हो गया, समाप्त हो गया, जाओ।

मुमुक्षु : मणिभाई को....

पूज्य गुरुदेवश्री : मणिभाई का मैं कहनेवाला था परन्तु थोड़ा-थोड़ा है। वे भी भूल गये। मणिभाई भूल गये सब। याद नहीं रहता। यह ज्ञान की अवस्था इन्द्रिय से... समझ में आया?

इन्द्रिय से होता ज्ञान यहाँ कितने काल रहे? यह सब कलायें लौकिक की, यह वकालत की, यह तेल की। जेठालालभाई! यह कलेक्टर की। यह सब कलायें नाशवान हैं। आहाहा! धबो नमः। इन्द्रियाँ हैं, तब तक उसका क्षयोपशम उसे लगे। जहाँ गयी इन्द्रियाँ तो हो गया समाप्त। नये सिरे से वापस वहाँ जाकर ऐकड़ा सीखना। यदि वह पंचेन्द्रिय में आया हो तो। मनुष्य में कहा न, पंचेन्द्रिय में आया हो तो। वरना तो हो गया। हो गया। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय में गया (तो) समाप्त। आहाहा! अवतार का अन्त आ गया उसका। अन्त आ गया उल्टा, ऐसा। यह अवतार कब मिले वापस? ओहोहो! यदि वह ऐसी आत्मदृष्टि का पक्ष नहीं किया पक्ष। उसका लक्ष्य करके पक्ष की दृढ़ता यदि नहीं की, यह अवतार हो जायेगा, कहते हैं। आहाहा!

ज्ञान अनित्य है, क्षायोपशमिक है; ऐसा क्रमिक ज्ञानवाला पुरुष सर्वज्ञ नहीं हो सकता। देखो, सर्वगत है न यह? वह सर्वज्ञ नहीं हो सकता।

★ ★ ★

गाथा - ५१

अब, युगपत् प्रवृत्ति के द्वारा ही ज्ञान का सर्वगतत्व सिद्ध होता है... क्रम के सामने अब युगपद डाला। **(अर्थात् अक्रम से प्रवर्तमान ज्ञान ही सर्वगत हो सकता है) ऐसा निश्चित होता है:—** लो!

तिक्कालणिच्चविसमं सयलं सव्वत्थसंभवं चित्तं।

इसमें '**चित्तं**' फिर डाला। उसमें पहले में '**चित्तं**' बाद में विषम आया था पहली गाथा में। पहला विचित्र, बाद में विषम आया था।

तिक्कालणिच्चविसमं सयलं सव्वत्थसंभवं चित्तं।

ओहोहो! जैन परमेश्वर का ज्ञान, ऐसा कहते हैं। जैन ज्ञान। ज्ञान को जैन लागू किया। वीतरागी ज्ञान।

जुगवं जाणदि जोण्हं अहो हि णाणस्स माहप्पं॥५१॥

यह पर्याय का माहात्म्य, देखो तो सही। आहाहा! जिसकी केवलज्ञान की एक पर्याय का सर्वगतपने का माहात्म्य कितना है, देखो तो सही! एक पर्याय के इतने गीत, ऐसे द्रव्य की तो क्या बात करना! आहाहा! इतने गीत तो इसके हैं कि जो सद्भूत व्यवहारनय का विषय है कि जो अपने को हो नहीं और दूसरे को हो, उसका आश्रय करने जाये तो लक्ष्य हो तो राग हो। समझ में आया?

त्रैकालिक-त्रैलोक्यवर्ति जो, विविध विषम सब द्रव्यों को।
युगपत् जाने ज्ञान प्रभु का, यही ज्ञान माहात्म्य अहो!॥५१॥

जिनज्ञान अर्थात् तुम्हारे जैन ही ज्ञान पावे, ऐसा होगा? ऐसा नहीं यहाँ। राग बिना का जिनपने का ज्ञान वीतरागी ज्ञान, वह वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया? राग और इन्द्रिय बिना का ज्ञान, ऐसा भगवान आत्मा, ऐसा उसका स्वरूप ही है। 'जिन सो ही है आत्मा...' समझ में आया? 'अन्य सो ही है कर्म, यही वचन से समझ ले जिनप्रवचन का मर्म।' जिन सो ही है आत्मा। यह आत्मा ही जिन है। इसका ज्ञान वह जिनज्ञान— वीतरागी ज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! जनम शब्द डाला है। जिन का ज्ञान?

तुम्हारा वीतरागी का ज्ञान सच्चा और हमारा खोटा? परन्तु ऐसी वस्तु नहीं, सुन न! आत्मा जो है, वह ज्ञानस्वरूप है, इसका ज्ञान वह वीतरागी ज्ञान है। उसमें राग हो नहीं सकता। वीतरागी ज्ञान अर्थात् निर्दोष ज्ञान अर्थात् सर्वज्ञ ज्ञान।

त्रैकालिक-त्रैलोक्यवर्ति जो, विविध विषम सब द्रव्यों को।
युगपत् जाने ज्ञान प्रभु का, यही ज्ञान माहात्म्य अहो!॥५१॥

यहाँ तो अमेरिका पढ़ने जाये तो मान दे, समारम्भ दे, क्या कहलाता है वह? सन्मान दे।

मुमुक्षु : पार्टी दे।

पूज्य गुरुदेवश्री : पार्टी निकाले न ढींकणा। अब यह सब बहुत चला है। सुमनभाई! मुम्बई में बहुत चलता है तुम्हारे। दो व्यक्ति पढ़ने गये। ऐसे बुद्धिवाले थे, ऐसे गये, यहाँ पास हुए, फलाना हुआ, ढींकणा हुआ। मिलाप करके समारम्भ। ओहोहो! तुम्हारे पास हम बड़ी आशा रखते हैं, पढ़कर आना। छोटी उम्र में ऐसे हुए तो उनसे देश की सेवा आदि की बड़ी आशा रखते हैं। अभी सेवा करे दूसरे के पास। डॉक्टर-बॉक्टर का पढ़ने जाये लो न अमेरिका, या यह सुमनभाई जैसे पढ़ने (जाये)। अभी कोई दो व्यक्ति गये। ... में से कोई दो। कोई दो व्यक्ति गये। फोटो, बड़ा मान-सन्मान। अरे! होली है, जहर है, सुन न! यह ज्ञान में मिथ्यात्वभाव है। उस मिथ्यात्वभाव का ज्ञान चार गति में दुःखदायक है। आहाहा!

मुमुक्षु : यहाँ तो सुखदायक है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ दुःखदायक है। चार गति में यह गति नहीं आयी? मनुष्यपना आया नहीं? यह मनुष्यगति चार गति से बाहर होगी? कहो, समझ में आया? आहाहा!

इसका **अन्वयार्थ :- तीनों काल में सदा विषम (असमान जाति के)...** असमान अर्थात् चैतन्य और अचेतन, ऐसा। मूर्त और अमूर्त अपने पहले आ गया। **सर्व क्षेत्र के अनेक प्रकार के...** अनेक प्रकार। एक निगोद की पर्याय, एक सिद्ध की पर्याय, एक परमाणु की पर्याय, एक गुण की, अनन्त गुण की ऐसे अनेक प्रकार। विषम और

विचित्र। विषम में चैतन्य और अचेतन, मूर्त और अमूर्त तथा विचित्रता में एक समय की पर्याय निगोद की अनन्तगुणी हीन और सर्वज्ञ पर्याय पूर्ण अनन्त। इन दोनों का जो विचित्रपना... कहो, समझ में आया?

उन **समस्त पदार्थों को जिनदेव का ज्ञान...** अर्थात् कि वीतरागी ज्ञान अर्थात् कि रागरहित अकेली ज्ञान की वीतरागी दशा हुई, वह **युगपत् जानता है।** सबको एक साथ, विचित्र और विषम सबको एक साथ जानता है। **अहो! ज्ञान का माहात्म्य!** देखो! समझ में आया? यहाँ तो एक बँगला बनाये पाँच लाख का, दस लाख का कारीगरी इससे, इससे, ऐसा। देख-देखकर प्रसन्न हो सब। ओहोहो! गजब किया, हों! ४०-४० लाख के। तीन करोड़ का बँगला नहीं उसरूप से? मैसूर-मैसूर क्या? मैसूर। तीन करोड़ का खाली पड़ा है। राजा चले गये। अब सरकार के आधीन है। देखने का रहा देखने का। तीन करोड़। तीन करोड़ का क्या, अरब का हो दस अरब का। क्या परन्तु धूल के ढ़ेर बड़े। परन्तु ओहो! कारीगरी! आहाहा! क्या है परन्तु अब? वह तो सब ज्ञेय है। उसका माहात्म्य या तेरा माहात्म्य? तेरा ज्ञान इतने असंख्य प्रदेश में होने पर भी महाक्षेत्र को जाने, उसका माहात्म्य क्षेत्र का है या तेरा? आहाहा!

यहाँ तो .... ऐसा जानते हैं कि जिस ज्ञान में उसका क्षेत्र तो असंख्य प्रदेश भले है, लो। साढ़े तीन हाथ में है। यह बड़ा क्षेत्र ऐसे ज्ञात होता है। वह तो अपनी ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है। कहाँ का कहाँ तक। पर्वत के ऊपर चढ़ता हो तो कितना दिखाई दे? वह तो ज्ञान की पर्याय इतनी बड़ी जानने की सामर्थ्यवाली है। उसे कहीं क्षेत्र छोटा है, इसलिए अधिक क्षेत्र न जान सके, छोटे क्षेत्र में इसलिए छोटा क्षेत्र जाने, बड़ा क्षेत्र न जाने, (ऐसा नहीं है)। यह प्रत्यक्ष दिखाई देता है कि जानता है। और छोटा काल अर्थात् एक समय का काल, उसमें यह सब न जाने, ऐसा है? एक समय में सब जाने, ऐसी सामर्थ्य है। इतने क्षेत्र में सब क्षेत्र को जाने और एक समय में सब काल को जाने, ऐसी उसकी सामर्थ्य है। आहाहा! समझ में आया?

अहो! ज्ञान का माहात्म्य! आचार्य स्वयं ऐसा कहते हैं। देखो तो सही! अहो! यह ज्ञान का माहात्म्य जिन का! जिनज्ञान—वीतरागी ज्ञान सर्वज्ञज्ञान। अहो! परमेश्वर पूर्ण हुए, उनका ज्ञान। अजब-गजब की बात है! जगत के सब रहस्यमय का ज्ञान

परमात्मा को। वह तो उनकी अपनी पर्याय है। समझ में आया? ज्ञान से कोई जाने बिना की बात रहती नहीं। गुप्त करो, अपने गुप्त काम करो। गुप्त को सर्वज्ञ नहीं जानते?

मुमुक्षु : .... केवली को जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : केवली को तो एक समय में पहले से जानते हैं कि यह गुप्त में ऐसा करता है और ऐसा करता है। उन्हें कहीं उस समय जानना नहीं है। ओहोहो! वे ऐसा कहते हैं कि ... अपनी गली की खबर नहीं कि इस गली में कौन-कौन रहता है? यह कहते हैं कि स्वर्ग है और नरक है। ऐसे भी जगे हैं। कहो। अरे! भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो न हो, वह क्या है? परन्तु यह गली है, वहाँ मकान है, वहाँ मनुष्य है, यह खबर नहीं? यह तो कौन मनुष्य और किस नामवाला और किस जाति का, यह भले नहीं हो। परन्तु यह गली है, वहाँ मनुष्य रहते हैं, वहाँ कुछ... समझ में आया? बन्दर रहते नहीं। ऐसी खबर नहीं उसे? कहो, वजुभाई! यह घर है। पचास-सौ (घर की) वह गली हो। मनुष्य होंगे, थोड़े-बहुत मनुष्य होंगे। कोई रोगी होगा, कोई ऐसे होंगे। मनुष्य है। ऐसा ज्ञान नहीं? इसी प्रकार जब ज्ञान पुण्य के-पाप के फलरूप से जब स्वर्ग-नरक है, ऐसा न जाने? कि पुण्यरूप से जब इतना फल दिखाई देता है यह, तब अधिक पुण्य हो तो अधिक स्वर्गादि की स्थिति है। पाप के फलरूप से यहाँ महारोगी और दुःखी दिखता है। तो बहुत पाप के फलरूप से नरकगति है। ऐसी खबर नहीं पड़ती? परन्तु वह उड़ाता है। मानो अन्धा न हो? मानो खबर न पड़े आत्मा को। समझ में आया? घर की पेटी में क्या चीज़ है, वह जानता नहीं और कहता है कि स्वर्ग-नरक को जानने गया। और ऐसी बात करे। अरे! भगवान! क्या करता है तू? आहाहा! परन्तु उस पेटी में बन्दर नहीं भरे होंगे, इतनी खबर नहीं उसे? यह वस्त्र-बस्त्र हों या पैसे डाले हों, इतनी खबर है या नहीं उसे? वजुभाई! इतनी खबर है या नहीं? पेटी में क्या रोटियाँ डाली होंगी अकेली वे पेटी में पड़ी होंगी? रोटियों का दूसरा हो, दूसरा हो, फलाना हो। ऐसा जानता है या नहीं? अरे! भगवान! तू जानता है इतना

और ऐसा कहना चाहते हैं कि अब स्वर्ग-नरक की बातें करे। सुन न! स्वर्ग-नरक नहीं, मोक्ष की। मोक्ष की नहीं परन्तु एक समय की पर्याय में तीन काल-तीन लोक को जाने उसकी। आहाहा! ऐसे एक ज्ञानगुण की। एक समय में तीन काल-तीन लोक ज्ञात हों, ऐसी पर्याय की, उसके गुण की और उसके द्रव्य की। आहाहा! अन्धे ऐसे... हो गया। अपने को कुछ खबर पड़ती नहीं और ऐसी बातें करते हो? समझ में आया?

टीका :- वास्तव में क्षायिक ज्ञान का, सर्वोत्कृष्टता का स्थानभूत परम माहात्म्य है;... भाषा देखो! अहो! आत्मा की वीतराग दशा हो अर्थात् कि राग टलकर पूर्ण ज्ञान हो, ऐसे **क्षायिक ज्ञान का, सर्वोत्कृष्टता का स्थानभूत...** है। सर्वोत्कृष्ट का ठिकाना वह है। क्षायिक ज्ञान का सर्वोत्कृष्ट का स्थान-ठिकाना है। ओहोहो! बड़ी पदवी का स्थान है वह। **परम माहात्म्य है;...** जिसका महामाहात्म्य है। वह माहात्म्य जिसे बैठे, उसे आत्मा अन्तर की दृष्टि किये बिना रहे नहीं और अन्तर की दृष्टि कराने के लिये यह सामर्थ्य का वर्णन, शुद्ध उपयोग का माहात्म्य का फल वर्णन करते हैं कि जो आत्मा अपने स्वभाव की दृष्टि करके, ज्ञान करके शुद्ध उपयोगरूप से रमेगा, उसे ऐसा केवलज्ञान होगा और हुए बिना रहेगा नहीं और ऐसा केवलज्ञान उसे अधूरा नहीं रहेगा। समझ में आया? पूर्ण पद को प्राप्त करेगा। सर्वोत्कृष्टता के पदभूत। उसके जैसा उत्कृष्ट कोई पद है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण १४, रविवार, दिनांक २०-१०-१९६८
गाथा - ५१-५२, प्रवचन - ४१

यह प्रवचनसार। ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, ५१वीं गाथा। अधिकार ऐसा चलता आता है कि यह आत्मा त्रिकाल शुद्ध ध्रुवस्वरूप ज्ञायक है, उसकी अन्तर सन्मुख दृष्टि—सम्यग्दर्शन प्रगट करके, स्वसंवेदन ज्ञान प्रगट करके शुद्धात्मा की भावनारूप चारित्र—साम्यभाव, शुद्ध शुद्ध उपयोग, उस भावना द्वारा अर्थात् चारित्र द्वारा केवलज्ञान और अनन्त आनन्द प्राप्त होता है। यह ज्ञान अधिकार है, पश्चात् सुख अधिकार लेंगे। समझ में आया? आत्मा में परिपूर्ण ज्ञान, आत्मा के साथ तादात्म्य त्रिकाल अभेद ज्ञान है और आनन्द भी आत्मा के साथ अभेद त्रिकाल है। ऐसा अभेद ज्ञानस्वरूप आत्मा, उसकी प्रतीति स्वसन्मुख की करके, स्वसंवेदनज्ञान करके, साम्यभाव—समताभाव, शुद्ध उपयोग प्रगट करके जिसके फलरूप से यह क्षायिकज्ञान प्रगट होता है, उस क्षायिकज्ञान की यह प्रशंसा करते हैं। समझ में आया?

इसलिए जीव को खण्ड-खण्ड ज्ञान जगत के हैं, उसकी भावना छोड़कर, पुण्य-पाप के विकल्प की भावना छोड़कर, निमित्त को मिलाना और अनुकूल करना, यह भावना छोड़कर, आत्मा के साथ त्रिकाल अभेद ज्ञान है, उसकी भावना करना। समझ में आया? कहो, यह समझ में आता है या नहीं? अभेद ज्ञान अर्थात् क्या? आत्मा है वस्तु-पदार्थ, उसके साथ ज्ञानस्वभाव गुण है, वह तादात्म्य—अभेद है। ऐसे अभेद ज्ञानस्वरूप आत्मा की भावना अर्थात् एकाग्रता करना, यह उसका फल है—यह सब कहने का (तात्पर्य है)। बाकी सब जंजाल छोड़ना। समझ में आया? ऐसे अभेद ज्ञानस्वभाव आत्मा की एकाग्रता होने पर आत्मा को सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है, चारित्र होता है, शुक्लध्यान होता है और केवल(ज्ञान) होता है। यह उसका—सुख का उपाय है, बाकी सब दु:ख के उपाय हैं। समझ में आया?

वास्तव में क्षायिक ज्ञान का, सर्वोत्कृष्टता का स्थानभूत परम माहात्म्य है;...

ओहो! आत्मा भगवानस्वरूप, उसका ज्ञान परिपूर्ण। केवलज्ञान तो एक समय की पर्याय है, परन्तु ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय का समूह, ऐसा जो ज्ञानगुण, वह ज्ञान और आत्मा अभेद एकमेक—तन्मय है। उसके सन्मुख की एकाग्रता, वह यह केवलज्ञान प्राप्ति का उपाय है। कहो, समझ में आया? यह केवलज्ञान का माहात्म्य वर्णन करते हैं। अहो! **वास्तव में क्षायिक ज्ञान का, सर्वोत्कृष्टता का स्थानभूत परम माहात्म्य है; और जो ज्ञान एक साथ ही समस्त पदार्थों का अवलम्बन लेकर प्रवृत्ति करता है,...** लोकालोक के जितने पदार्थ हैं, उनका अवलम्बन अर्थात् निमित्त है। उसमें थोड़े पदार्थ पहले जाने और फिर विशेष जाने, (ऐसा नहीं)। ऐसा पूर्ण ज्ञान की अपनी अभेदज्ञान की भावना करने से जो पर्याय पूर्ण अभेद प्रगट हुई, उसमें परद्रव्य के जितने प्रकार हैं, तीन काल-तीन लोक द्रव्य, गुण और पर्याय का एक समय में सबका अवलम्बन अर्थात् निमित्त है। थोड़ा पहले जाने, फिर अधिक जाने—ऐसा क्रम ऐसे क्षायिकज्ञान में नहीं। समझ में आया?

इसीलिए कहते हैं, **जो ज्ञान एक साथ ही समस्त पदार्थों का अवलम्बन लेकर प्रवृत्ति करता है, वह ज्ञान—अपने में समस्त वस्तुओं के ज्ञेयाकार...** अपने में समस्त वस्तुओं के ज्ञेय जितने लोकालोक है उनके **टंकोत्कीर्ण—न्याय से स्थित होने से... पत्थर में टांकी से उत्कीर्ण आकृति की भाँति।** भगवान ज्ञान की एक समय की पर्याय में लोकालोक मानो आकृतिरूप से अन्दर परिणम गये हों। जितने लोकालोक के द्रव्य-गुण-पर्याय है, क्षेत्र, काल, भाव, भव सब ज्ञान एक समय की ज्ञान की अवस्था में आ जाता है। समझ में आया? इतना तो एक समय की पर्याय का माहात्म्यभाव है। एक समय के ज्ञान की पर्याय का माहात्म्यभाव है। ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायें जिसके ज्ञानगुण में है और वह ज्ञानगुण आत्मा के साथ अभेद है—आत्मा के साथ एक है—आत्मा के साथ तादात्म्य है। इतना आत्मा। ऐसे आत्मा के सन्मुख देखने से कल्याण का मार्ग निकलता है। बाहर से कोई ऐसा हो और वैसा हो और अनुकूल पड़े, प्रतिकूल हो, यह हो और धूल हो, कुछ मुझे यह अनुकूल हो तो मुझे यह हो। मर गया हैरान होकर, कहते हैं। समझ में आया? दुनिया से प्रसन्न हो और दुनिया को प्रसन्न करे, यह सब उल्टे रास्ते हैं।

अपना भगवान आत्मा वस्तु है न, पदार्थ। ज्ञान उसके साथ जड़ा हुआ है। जड़ा हुआ है अर्थात् जड़ता है वह? जड़ता नहीं, यह वस्तु जड़े नहीं? जड़े। ऐसा होगा इसमें? जैसे यह देखो, यह लकड़ी है न, इसमें सुगन्ध जड़ी हुई है—एकमेक है। यह सूखड़ है सूखड़। एकमेक अभेद है। भगवान आत्मा का ज्ञान अभेद एकरूप जड़ा हुआ एकाकार है। आहाहा! ऐसी ज्ञान की दीवाररूपी भगवान आत्मा अन्तर्मुख होकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र प्रगट करके, उस ज्ञान की पूर्ण दशा प्रगट करे, उसका क्या कहना! कहते हैं। जिस ज्ञान की एक समय की पर्याय में लोकालोक मानो अन्दर टाँकी की भाँति पत्थर में उत्कीर्ण हो गये हों, ऐसे ज्ञान में सब लोकालोक उत्कीर्ण हो गये हैं। ज्ञान की (एक समय की पर्याय)। आहाहा! एक समय में कितना! कितने द्रव्य, उनके अनन्तगुणे गुण, उनकी पर्यायें, उनका क्षेत्र, उनका त्रिकालपना। आहाहा! ऐसी जो केवलज्ञान की एक समय की पर्याय (उसका) अद्भुत माहात्म्य है! ऐसे माहात्म्य के भण्डार की खानवाला तू है और तू जहाँ-तहाँ भटकता है। यहाँ पुण्य करूँ तो ऐसा होगा, पाप करूँ तो ऐसा होगा, परसन्मुख का खण्डज्ञान प्रगट करूँ तो मुझे लाभ होगा, भिखारीपन द्वारा भ्रम रहा है। जेठालालभाई! आहाहा!

भाई! तुझमें क्या कमी है? तेरे खजाने में तो अनन्त परमात्मा का केवलज्ञान ऐसा ज्ञान अन्दर में पड़ा है। वह कहीं बाहर से लाना नहीं पड़ता। ऐसा जो आत्मा, उसकी एकाकार ज्ञानदशा में एकाकार हुई दशा, उससे होती एकाकार केवलज्ञानदशा में, कहते हैं कि लोकालोक मानो जड़ गये हों, अन्दर उत्कीर्ण होकर प्रविष्ट हो गये हों। ऐसी एक समय की ज्ञान की पर्याय का सामर्थ्य है।

जिसने नित्यत्व प्राप्त किया है... इस न्याय से स्थित होने से। टंकोत्कीर्ण न्याय से एक समय में सब जानने में आ गया होने से, उस ज्ञान ने नित्यपना प्राप्त किया है। नित्यत्व प्राप्त किया है। ऐसा का ऐसा ज्ञान कायम रहता है। देखो! उस ज्ञानपर्याय ने नित्यत्व प्राप्त किया है, ऐसा कहा। आहाहा! समझ में आया? ऐसे पदार्थ को अवलम्बकर क्षण-क्षण में नया होता है और पुराना जाता है, वह सब अनित्य ज्ञान है। ले! ज्ञान में भी अनित्य और नित्य! पर्याय में भी अनित्य और नित्य। पर्याय तो अनित्य ही है। नवरंगभाई! द्रव्य तो नित्य है। उसका त्रिकाली ज्ञानगुण नित्य है। यह केवलज्ञान तो पर्याय एक

समय की है। परन्तु कहते हैं कि वे अनन्त जितने पदार्थ हैं, उतने एक समय में जाने हुए और अनुभव किए हुए होने से उस ज्ञान में अब क्षणिकपना अर्थात्? यह जाना और यह गया... यह जाना और यह गया... ऐसा रहा नहीं। एक साथ पूर्ण जाना, इसलिए उस ज्ञान को नित्यत्वपना प्राप्त हुआ है। समझ में आया? रतिभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : समय की पर्याय की... पर्याय की बात है न यहाँ? नित्य तो त्रिकाली। उसकी कहाँ बात है? इसके लिए तो प्रश्न रखा है।

आत्मा और ज्ञान जो नित्य है, उसकी यहाँ कहाँ बात है? यह तो पर्याय प्राप्त की, उसने नित्यत्वपना प्रगट किया है, ऐसा। बातें भारी सूक्ष्म! भगवान आत्मा वस्तुरूप से प्रभु स्वयं पूर्ण, उसका ज्ञान पूर्ण नित्य-नित्य। वह यहाँ बात नहीं। ऐसा जो अभेद नित्य ज्ञानस्वरूप भगवान, उसमें एकाग्र होकर, उसमें एकाग्र होकर जो कुछ दर्शन-ज्ञान-चारित्र प्रगट किये, उसके फलरूप से केवलज्ञान प्रगट किया, उस केवलज्ञान ने नित्यपना प्राप्त किया, ऐसा यहाँ कहते हैं। क्षयोपशमज्ञान है, वह अनित्य है, क्षण-क्षण में बदलता है। एक अमुक पदार्थों को लक्ष्य में ले, तब और फिर दूसरी पर्याय नाश होकर फिर दूसरे पदार्थ लक्ष्य में ले। ऐसे क्षण-क्षण में बदलता ज्ञान, वह अनित्य है, ऐसा कहते हैं। इस अपेक्षा से अनित्य है।

यहाँ एक समय में पूरे लोकालोक को जान लिया है, इसलिए वह ज्ञान ऐसा का ऐसा एक समय में, दूसरे में ऐसा का ऐसा, तीसरे में ऐसा का ऐसा—ऐसा नित्यपना प्रगट किया है। आहाहा! समझ में आया? लो! पर्याय ने नित्यपना प्रगट किया है, ऐसा कहा। आहाहा! पर तो कहीं रहा। भगवान आत्मा की खान में ऐसे तो अनन्त नित्यत्वरूप केवलज्ञान की पर्यायें जिसमें पड़ी हैं। ऐसा वह नित्य है। ऐसा भगवान आत्मा जिसमें ज्ञान अविनाभावी तत्त्व है, वह नित्य है, द्रव्य नित्य है, उसका ज्ञानगुण नित्य है। वह बात यहाँ नहीं। ऐसे नित्य के आश्रय से जो शक्ति में नित्यपना था, वह पर्याय में अनित्यरूप से पर्याय केवलज्ञान की प्रगट हुई, परन्तु वह पर्याय वह की वह बदलकर वह की वह रहनेवाली है, कम-ज्यादा होनेवाला नहीं। इस अपेक्षा से उसने नित्यपना प्राप्त किया, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? आहाहा!

जिसने... जिसने अर्थात्? क्षायिकज्ञान ने—केवलज्ञान ने। आहाहा! वह पर्याय अरिहन्त की पर्याय कितनी केवलज्ञान की, उसकी इसे खबर नहीं होती। जैन में जन्मे। हो गया। णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं। पहाड़े बोले जाये। आहाहा! परन्तु णमो अरिहंताणं तू कहता है, उन अरिहंत के ज्ञान की स्थिति की अवस्था कितनी और कैसी है, उसे जाना है? जाने बिना णमो अरिहंताणं? तू नमस्कार करनेवाला कौन? और तू किस दशावन्त को नमस्कार करता है? समझ में आया? अन्ध का अन्ध चलता है। यहाँ तो कहते हैं कि देखता भगवान हो गया। देखता त्रिकाली देखता है, उसका अन्तर अवलम्बन लिया। पुण्य-पाप नहीं, खण्ड ज्ञान नहीं, उसका आश्रय नहीं। यह प्रगट हुई ज्ञान की अवस्था का भी आश्रय नहीं। ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... वस्तु है, ऐसे एकदम वस्तु ध्रुव, उसे ध्यान में ध्येय बनाकर जो अन्दर से प्रवाह परिणमित हुआ, उसकी पूर्ण दशारूप केवलज्ञान हुआ, वह नित्यपना ऐसा का ऐसा रहता है। ऐसा का ऐसा सादि-अनन्त। वह तो क्षयोपशमज्ञान भी बहुत काल रहता है, वह यहाँ अपेक्षा नहीं। यहाँ तो फेरफार नहीं होता, इसलिए उस अवस्था से नित्यपना अंगीकार किया है। समझ में आया? वरना तो अभव्य का क्षयोपशमज्ञान भी अनादि-अनन्त है।

मुमुक्षु : एक सरीखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक सरीखा नहीं, इतना कहना है। क्या कहा, समझ में आया? अभव्य है, उसे ज्ञान है तादात्म्यस्वरूप से, अभेद ज्ञानमय मूर्ति अभव्य है। परन्तु उसकी वर्तमान दशा में क्षयोपशम अवस्था है। चाहे तो निगोद में हो, चाहे तो नौवें ग्रैवेयक में जाये, परन्तु उसकी क्षयोपशम दशा है। वह क्षयोपशम उसे अनादि-अनन्त है। परन्तु पलटता... पलटता... पलटता... अमुक द्रव्य को अवलम्बकर हो और फिर दूसरे द्रव्य को अवलम्बकर वह जाये, नष्ट हो, नया उत्पन्न हो, नष्ट हो। वह नित्य नहीं कहलाता। समझ में आया?

यहाँ तो भगवान आत्मा की वर्तमान दशा एकरूप पूरी प्रगट हो गयी, थोड़े को अवलम्बकर दूसरे को अवलम्बूँ, ऐसा रहा नहीं, एकरूप लोकालोक के द्रव्य-गुण-पर्याय मानो अन्दर टाँकी से उत्कीर्ण होकर पत्थर में से जैसे मूर्ति निकाली हो, वैसे एक समय की पर्याय में उत्कीर्ण हो गये हैं। ऐसी की ऐसी पर्याय पूर्ण बदले नहीं ऐसी।

एकरूप पर्याय रहती है, उसे यहाँ नित्यत्व कहते हैं। पंचास्तिकाय में कूटस्थ भी कहा है। वहाँ कूटस्थ अर्थात् ऐसी की ऐसी रहती है, इसलिए (कहा है)। समझ में आया? संस्कृत टीका में है उसमें। जयसेनाचार्य की टीका में है। '**ज्योतिष्कमन्त्रवादरस-सिद्धयादीनि खण्डविज्ञानानि मूढजीवानां चित्तचमत्कारकारणानि परमात्मभावना-विनाशकानि च।**' उसका आग्रह छोड़ दे। वह धूल में भी नहीं कोई चमत्कार, सुन। समझ में आया? इसमें है, देखो! '**यत्समस्तरागादिविकल्पजालेन रहितं सहज-शुद्धात्मनोऽभेदज्ञानं तत्र भावना**' देखो! यह भावना अर्थात्? विकल्प होगा चिन्ता? शुद्धात्म अभेद ज्ञान। वस्तु है, उसके साथ ज्ञान एकमेक। वह द्रव्य और गुण हुए और भावना, वह पर्याय हुई। क्या कहा, समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु, उसका ज्ञान अभेद, अभेदरूप और नित्य दोनों। उसकी भावना, वह पर्याय है, उसकी भावना पर्याय है। वह भावना करने से केवलज्ञान होता है। समझ में आया?

और समस्त व्यक्ति को प्राप्त कर लेने से... वह सामने से लिया। **समस्त वस्तुओं के ज्ञेयाकार टंकोत्कीर्ण—न्याय से स्थित होने से...** ऐसा लिया था। कम-ज्यादा ज्ञेयाकार रहे नहीं। एक साथ पूरे **टंकोत्कीर्ण—न्याय से स्थित होने से जिसने नित्यत्व प्राप्त किया है...** ऐसा लिया है। कायम रहेंगे, इसलिए ऐसा नहीं, भाई! ऐसा पूरा टंकोत्कीर्ण सब पदार्थ का एकरूप गिनना, इसलिए नित्य है, ऐसा कहा। फिर व्यक्ति की—प्रगटता की अवस्था बाद में कहेंगे। समझ में आया? यह भी समझने, सुनने के लिये भी अमुक प्रकार की पात्रता चाहिए। यह तो भगवान के घर की बड़ी बातें हैं।

अहो! आत्मा सर्व से उदास, पर से भिन्न है। कुछ लेना-देना किसी के साथ कुछ है नहीं। खण्डज्ञान के साथ सम्बन्ध नहीं तो यह पर के साथ क्या सम्बन्ध है? ऐसा भगवान आत्मा अपने अभेद अखण्ड ज्ञान के साथ एकाकार दृष्टि से ज्ञान करके होने से वह भावना कर्तव्य है और उस भावना के फलरूप से उसे क्षायिकज्ञान होता है। समझ में आया? बीच में दया, दान, व्रत, परिणाम विकल्प आवे, उससे कहीं ज्ञान क्षायिकज्ञान होता नहीं। वे तो बन्ध के कारण हैं। समझ में आया?

द्रव्य और ज्ञान तादात्म्य अभेद, वह अबन्धस्वरूप है और अबन्धस्वरूप की एकाकारता की भावना, अबन्धभावी भावना है। उस अबन्धभावी भावना में से अबन्ध

पूर्णरूप पूर्णस्वरूप केवलज्ञान की प्राप्ति होती है कि जिस ज्ञान में लोकालोक एक साथ मानो आ गये हों, इसलिए उस ज्ञान ने सब पदार्थों को अवलम्बकर एक परिपूर्णपना ग्रहण किया है, लोकालोक का, हों! ऐसा। इसलिए उस ज्ञान ने नित्यत्व प्राप्त किया है। अब यहाँ इस ओर। **समस्त व्यक्ति को प्राप्त कर लेने से जिसने स्वभावप्रकाशक क्षायिकभाव प्रगट किया है...** जितनी पर्याय की पूर्णता, वह सब पर्याय की पूर्णता प्रगट हो गयी है। थोड़ी प्रगट पहले और फिर थोड़ी बाद में, बाद में थोड़ी, ऐसी प्रगटता नहीं। एक साथ व्यक्ति—पूर्ण दशा प्रगट हो गयी है। ऐसे लोकालोक का एक साथ यहाँ प्रगट हुआ ज्ञान, ऐसे देखो तो उसकी व्यक्ति—परिपूर्ण पर्याय प्रगट हो गयी है। समझ में आया?

समस्त व्यक्ति को प्राप्त कर लेने से... अर्थात्? जिस पर्याय की परिपूर्णता है, वह सब परिपूर्णता प्रगट हो गयी है। व्यक्ति अर्थात् पर्याय की प्रगटता। समझ में आया? **होने से...** जिसे ऐसा होने से **जिसने स्वभावप्रकाशक...** स्वभावप्रकाशक **क्षायिकभाव प्रगट किया है...** देखो! दोनों की शैली में न्याय देखो! समझ में आया? यह तो भगवान आत्मा के घर की बातें हैं, भाई! यह जगत के बाहर के प्रेम और प्रीति और द्वेष और... यह तो अन्तर की चीज़ भगवान पूर्णानन्द प्रभु, उसकी जिसे प्रीति और प्रेम लगा, उसे खण्डज्ञान और राग की प्रीति टूट जाती है। समझ में आया? और वैसे ज्ञान द्वारा, वैसी व्यक्तियाँ अर्थात् जो ज्ञान की पर्याय की परिपूर्णता है, परिपूर्ण दशा हो गयी है। कोई अवस्था अब व्यक्त करना बाकी नहीं। इस ओर कुछ बाकी रहा नहीं जानने का, इस ओर व्यक्ति में पूर्ण ज्ञानदशा प्रगट हो गयी है। ज्ञान की अवस्था पूरी है, ज्ञेय अवस्था पूरी प्रगट यहाँ जानने में आ गयी है। आहाहा! समझ में आया?

समस्त व्यक्ति को प्राप्त कर लेने से जिसने... देखो! इस कारण से, ऐसा। **जिसने स्वभावप्रकाशक क्षायिकभाव...** स्वभावप्रकाशक क्षायिकभाव। जैसा स्वभाव है शक्तिरूप से, पर्याय में पूर्ण प्रगट हो गया है। **स्वभावप्रकाशक क्षायिकभाव प्रगट किया है, ऐसा - त्रिकाल में सदा विषम रहनेवाले...** ऐसा इतना अब। ऐसा जो ज्ञान, ऐसा। **त्रिकाल में सदा विषम रहनेवाले और अनन्त प्रकारों के कारण विचित्रता को प्राप्त सम्पूर्ण सर्व पदार्थों के समूह को जानता हुआ,...** क्या कहते हैं अब? आचार्यों ने जंगल में रहकर

केवलज्ञान के साथ बातें करके केवलज्ञान का वर्णन कर डाला है। आहाहा! (श्रुत)ज्ञान से केवलज्ञान के साथ क्रीड़ा की है, केवलज्ञान के साथ क्रीड़ा की है। ऐसे एकाग्र होते हैं न? पूर्ण प्रगटने का ध्येय है। साध्य यह (त्रिकाली) है, परन्तु पूर्ण प्रगट करना, ऐसा ध्येय है। वह पूर्ण प्रगट होगा तब कैसा होगा? यह बात पहले से प्रतीति में लेते जाते हैं कि ऐसा केवलज्ञान हमको प्रगट होनेवाला है, ऐसा कहते हैं।

हमने चारित्रभाव को—साम्यभाव को, शुद्ध उपयोग को अंगीकार किया है। पंचम काल के सन्त मुनि अपनी दशा को कहते हैं। और उस शुद्ध उपयोग के फलरूप से हमको केवलज्ञान होगा। इसलिए कोई ऐसा कहे, केवलज्ञान होगा, तब उसका शुद्ध उपयोग कहलाये, ऐसा नहीं। समझ में आया? वह शुद्ध उपयोग अभी है, उसका फल ही केवलज्ञान है। भले थोड़ी देर लगे परन्तु उसमें फल उसका फल है। उसमें कुछ अन्तर है नहीं। ऐसा केवलज्ञान जब प्राप्त होता है, तब का जो शुद्ध उपयोग, उसे यहाँ वर्णन किया है, ऐसा नहीं। अरे! भाई! इसलिए ऐसा शुद्ध उपयोग है, ऐसा अभी नहीं होता, ऐसा कितने ही कहते हैं। अरे! ऐसा नहीं, भाई! यहाँ तो शुद्ध उपयोग की रमणता भगवान के साथ, अरे! भगवान के साथ भेंट की जिसने। आहाहा! समझ में आया? और उसमें से चारित्र के शुद्ध उपयोग की क्रीड़ा की। भगवान आत्मा में चरना, रमना, क्रीड़ा की भगवान आत्मा के साथ अन्दर। कहते हैं कि ऐसे शुद्ध उपयोग के फलरूप से केवलज्ञान ही होगा, ऐसा ही होगा। समझ में आया? भले कदाचित् स्वर्ग में जाये, परन्तु उसके फलरूप से तो उसे केवलज्ञान होनेवाला, होनेवाला और होनेवाला है। आहाहा! समझ में आया?

अहो! माहात्म्य तो देखो, कहते हैं। ऐसा जो ज्ञान **त्रिकाल में सदा विषम रहनेवाले (-असमान जातिरूप से परिणमित होनेवाले)...** असमानजाति अर्थात् एक चेतन, दूसरा अचेतन, एक मूर्त, दूसरा अमूर्त, यह असमानजाति कहलाती है। असमानजाति को भी केवलज्ञानी एक समय में पूर्ण जानते हैं। समझ में आया? **जिसने स्वभावप्रकाशक क्षायिकभाव प्रगट किया है ऐसा - त्रिकाल में सदा विषम रहनेवाले...** तीनों काल सदा ही विषम रहते। चेतन तो चेतन रहे और अचेतन, वह अचेतन रहे; मूर्त, वह मूर्त रहे और अमूर्त, वह अमूर्त रहे। तीनों काल में ऐसे रहते हैं। **और अनन्त प्रकारों के**

कारण... भेद के कारण। कहाँ एक निगोद की अवस्था और कहाँ एक सिद्ध की अवस्था और कहाँ परमाणु के एक समय की अवस्था और कहाँ दूसरे समय की दूसरी अवस्था और दूसरे परमाणु की दूसरी अवस्था। ऐसे विचित्र प्रकार से परिणमते दूसरे द्रव्यों को एक समय में जान लेता है, ऐसा कहते हैं।

अनन्त प्रकारों के कारण... प्रकार कितने! ओहोहो! एक आत्मा देखो तो अक्षर के अनन्तवें भाग उघाड़वाला। एक आत्मा देखो तो केवलज्ञान की प्रगट दशावाला। देखो! विचित्रता! समझ में आया? एक आत्मा देखो अभव्य का तो मिथ्यात्वभाव में परिणमित, एक देखो तो केवलज्ञान से परिणमित। ऐसे विचित्र प्रकार की पर्याय की अनेकता, उस अनेकता को एक समय में जान लेता है, ऐसा कहते हैं। विषमता को, विचित्रता को। पहले में विचित्र पहला था। पद की रचना। समझ में आया? यह समझ में आये ऐसा है, हों! ऐसी कोई भाषा कठिन नहीं। परन्तु लोगों को दरकार नहीं होती, अभ्यास नहीं होता अभ्यास। वह भटकने का अभ्यास अकेला। फड़ाक... फड़ाक... फड़ाक... यदि ब्याज निकालना हो चक्रवृद्धि का तो निकाल डाले बनिया।

मुमुक्षु : ऐ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... ले कहाँ, पैसे इतने कहाँ हैं? समझ में आया? यह आवे नहीं थोड़े को। ऊपर से कह दे लो रुपये का, डेढ़ रुपये का प्रतिशत अभी होता है न बहुत? डेढ़-डेढ़ प्रतिशत देते हैं कहते हैं साहूकारी। बातें करते हैं। हमने सुना हुआ है। यह जादवजीभाई रहे, कहाँ गये? रुपये का लेन-देन करनेवाले।

मुमुक्षु : कलकत्ता में तो अधिक उपजे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अधिक उपजे। परन्तु डेढ़ से अधिक नहीं उपजता होगा। होगा? कौन जाने? यह जाने वह सब करे। अरे! दो प्रतिशत तक चलता होगा? लो, ठीक! उसे खबर हो न। बात भी सच्ची है। ऐसे कोई हों गरजवान (तो ले)।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब न कहे, परन्तु यह तो ऐसा विचित्रपना ब्याज में आता है इतना।

यहाँ कहते हैं कि अकेले केवलज्ञान में ऐसे खण्डपने का ज्ञान नहीं होता। अकेला परिपूर्ण। पूरा उसकी ओर और पूरी व्यक्ति की परिपूर्णता। ऐसे विचित्रता और विषमता को भी एक समय में पहुँच जाये, ऐसा ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ वीतराग का केवलज्ञान ऐसा होता है और वह केवलज्ञान शुद्ध उपयोग के प्रताप से प्राप्त हैं, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! समझ में आया? शुद्ध उपयोग को अंगीकार किया है। ऐसा आया है न?

त्रिकाल में सदा विषम रहनेवाले... जड़, वह जड़ और चैतन्य, वह चैतन्य; मूर्त और अमूर्त, इस प्रमाण रहते हुए वे विषम कहलाते हैं। **अनन्त प्रकारों के कारण विचित्रता को प्राप्त...** ओहो! एक अक्षर भी याद न रहे, ऐसा भी एक जीव होता है। बनिये का पुत्र था, कहा था, अभी अमरेली। (संवत्) १९७० में दीक्षा लेकर गये थे। उपाश्रय में काम करता था। तीन आना की आमदनी थी प्रायः। दस पैसा होगा तब। (संवत) १९७० में तीन आना तो अभी थे यहाँ, हों! तब कम होंगे—दो आना होंगे। ७० के मागसर महीने की बात है। दशाश्रीमाली बनिया था २०-२५ वर्ष का। ... खींचे। वह पहना हुआ। कोली पहने ऐसा क्या कहलाता है तुम्हारे वह? चड्डी नहीं, चोरणो। ... मैंने कहा यह कौन है? उपाश्रय में कुछ काम चलता था। ... कौन है? कहे, मैं दशाश्रीमाली बनिया हूँ। तब यह क्या? ७० के मागसर की बात है। दहीथरा का। कैसा कहलाये गाँव? दहिरा। अमेरली के पास दहिरा है न। जादव... बनिया हो परन्तु यह क्या तुझे दो आना की मजदूरी? दस वर्ष पढ़ा विद्यालय में, सौ अंक आये थे। दस वर्ष पढ़ा, पिता ने पढ़ाया सौ अंक आये। परन्तु आगे नहीं गया तो क्या करना?

मुमुक्षु : एक को दस अंक ही आते थे, ऐसा था न।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो ऐसा सुना है अपने।

मुमुक्षु : हमारा .... घेलो...

पूज्य गुरुदेवश्री : घेलो, हाँ वह। उसे दस तक। उसे बेचारे को कुछ आता नहीं। एक पैसे की पाई कितनी? चार। ऐसा कहता था। बैठा देखो तो ऐसे होशियार रूपवान लगे। बैठा हो तो ऐसा लगे कि यह सेठ का पुत्र है। बुलावे भाई! पैसे की पाई कितनी घेला? चार। चार पैसे की? दस। उसे फिर जो आया वह (बोले)।

मुमुक्षु : वापस बहुत विचार करके कहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, थोड़ा विचार करके। रतिभाई का डेला है न वहाँ? रतिलाल सेठ, दामनगर। उसका डेला। वहाँ हम गये और वह आया बेचारा। कोई नहीं था, मैंने पूछा था। चार पैसे की कितनी? कहे, दस। वापस विचारकर। गप्प ही गप्प। आहाहा!

देखो! यह एक उघाड़ और एक ओर केवलज्ञान। आहाहा! कहते हैं कि परन्तु सबको, एक समय का ज्ञान, उसे भी जाने और इसे भी जाने। केवलज्ञान की पर्याय ऐसी अनन्त सिद्ध हैं, उन्हें भी क्षायिकज्ञान की पर्याय जाने और ऐसे जो अल्पज्ञ जैसे हैं, उन्हें भी केवलज्ञान क्षायिकज्ञान की पर्याय जाने। विचित्रता होने पर भी, विविधता होने पर भी एक समय में सब ज्ञात हो जाता है। विषमता और विचित्रता होने पर भी (एक) समय में सब ज्ञात हो जाता है। ऐसा अरिहन्त का क्षायिकज्ञान है। समझ में आया? कितनों को यह बैठता नहीं। यह केवलज्ञान ही बैठता नहीं। अभी कितने ही विवाद उठाये हैं। वह महेन्द्र था, वह कहे नहीं। महावीर विचारक—विशिष्ट विचारक थे। केवलज्ञानी। केवलज्ञानी को मानने जाये तो दिक्कत आवे और बैठे कैसे? एक समय में ऐसी शक्ति! ओहोहो! काल कितना? कि 'क' बोलने में असंख्य समय जाये। एक समय में यह सब तीन काल-तीन लोक की पूर्ण व्यक्ति से पूर्ण व्यक्त दशाओं को सबको जान सके। आहाहा! अरे! बापू! स्वभाव किसे कहे? आहाहा! समझ में आया? यह बात इसे बैठे तो, मुझमें ऐसी सामर्थ्य है पर्याय में, ऐसी अनन्त पर्याय मुझमें पड़ी हुई हैं, वे मेरे ज्ञान में। वह ज्ञान भगवान के साथ जड़ा हुआ, आत्मा के साथ तादात्म्य एकरूप अभेद है। उसकी दृष्टि और उसका माहात्म्य करके स्थिर होऊँ, वह उसका आचरण और मोक्ष का मार्ग है। समझ में आया? दुनिया से लेना नहीं और दुनिया को देना भी नहीं। आहाहा!

कहते हैं, **अनन्त प्रकारों के कारण विचित्रता को प्राप्त सम्पूर्ण सर्व पदार्थों के समूह को जानता हुआ,...** लो! विचित्र और विषम दोनों। ऐसे **सम्पूर्ण सर्व पदार्थों के समूह...** ढ़ेर को **जानता हुआ, अक्रम से अनन्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को प्राप्त होने से...** लो! कितनी बात को सिद्ध किया है! अक्रम से अर्थात् एक समय में भगवान आत्मा की केवलज्ञानदशा, यह आत्मा की दशा पूर्ण हो, तब और पूर्ण सम्यग्दर्शन

जिसकी मुख्यता है और जिसमें प्रधानता शुद्ध उपयोग की है, ऐसे शुद्ध उपयोग द्वारा ऐसा केवलज्ञान हुए बिना रहता नहीं। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि यह सब विचित्रता और विषमता को... कितनी व्यक्ति प्रगट हुई है अपने को? अक्रम से अनन्त द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव को पहुँचता हुआ। लो! एक समय में क्रम बिना अक्रम से अनन्त द्रव्य, अनन्त क्षेत्र, अनन्त तीन काल, अनन्त उसकी शक्तियाँ गुण, उन्हें पहुँचता अर्थात् कि उन्हें जानता हुआ, ऐसा। **जिसने अद्भुत माहात्म्य प्रगट किया है,...** अद्भुत माहात्म्य प्रगट किया है, ऐसा सर्वज्ञ ज्ञान है। **ऐसा सर्वगत ही है।** सर्वगत ही अर्थात् सर्व को जाननेवाला ही है। आहाहा! समझ में आया? यह सर्वज्ञ ज्ञान की ऐसी दशा जिसे प्रगट होने की भावना हो, वह निमित्त, राग और अंश की ओर से विमुख होता है और स्वभाव-सन्मुख होता है। यह यहाँ कहना है। समझ में आया? आहाहा! ज्ञान का यह वर्णन पूरा करेंगे, पश्चात्....

मुमुक्षु : पश्चात् सुख का।

पूज्य गुरुदेवश्री : पश्चात् सुख का करेंगे। मूल ज्ञान और सुख दो ही हैं न वस्तु, बाकी तो उसके साथ सब गुण भले हो।

ऐसा **अद्भुत माहात्म्य प्रगट किया है, ऐसा सर्वगत ही है।** समझ में आया? आहाहा! कहा था न एक बार? यहाँ बैठे थे नहीं अपने वहाँ हीराभाई के मकान में। वह आया था न एक पण्डित? स्थानकवासी साधु हुआ और फिर पाँच वर्ष होकर बाद में आया। यहाँ केवलज्ञान की बात चलती थी द्रव्यसंग्रह की। द्रव्यसंग्रह की बात चलती थी। केवलज्ञान सबको जाने तो फिर पुरुषार्थ करना कहाँ रहा वहाँ? ऐसा प्रश्न किया था। (संवत्) १९९२ में हीराभाई के मकान में।

मुमुक्षु : हम बैठे थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : बैठे थे। वे बैठे ऐसे, हम ऐसे बैठे थे। द्रव्यसंग्रह चलती थी। ऐसा प्रश्न किया। एक केवलज्ञान सबको जाने (और) उस प्रकार से हो, उसमें पुरुषार्थ कहाँ रहा? कहा, केवलज्ञान है—ऐसा मानते हो तुम? मेरा प्रश्न यह है। यह उत्तर है पहला। पहले तुमने प्रश्न तो यह किया है कि केवलज्ञान है, वह तीन काल को जाने।

तो फिर केवलज्ञान है, ऐसी अस्ति से तो तुमने बात की है। तो यदि तुमको वह अस्तिपना न बैठता हो तो प्रश्न ऐसा होना चाहिए कि केवलज्ञान हो सकता नहीं। केवलज्ञान हो सकता नहीं, यह प्रश्न होना चाहिए। यह तो केवलज्ञान कैसे हो सकता है? यह प्रश्न होना चाहिए। तुमने तो प्रश्न इस प्रकार से किया है कि केवलज्ञान तीन काल-तीन लोक को जाने तो करनेवाले को पुरुषार्थ कहाँ रहा? यह बात तुम्हारी प्रश्न में तो यह थी। ऐई! नवरंगभाई! मूल तो उसे केवलज्ञान उड़ाना था।

मुमुक्षु : केवलज्ञान स्वीकारना नहीं था।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, केवलज्ञान हो तो सब हो, ऐसा और ऐसा हो तो फिर करने का क्या रहा? सुन न! केवलज्ञान है, ऐसा निर्णय करे, तब ही उसे अनुभव-सम्यग्दर्शन होता है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो और निमित्त का उड़ाया। ईश्वर चाहिए बीच में। ऐसा कि बाहर निकले बैल। बैल का सींग लगा एक व्यक्ति को। अब वह कर्म को कहाँ से खबर पड़ी कि अभी उसे लाना? और उसे कहाँ से खबर पड़ी कि इसको उदय ऐसा, इसलिए सींग मारना? ऐसा कहकर निमित्त को उड़ाया। ऐई! नवरंगभाई! दीक्षा ली थी। पाँच वर्ष रहा स्थानकवासी साधु। ... जैन का। उसमें कुछ ठिकाना नहीं। ऐसे के ऐसे। बाद में तो वेदान्ती हो गया और रामायण वाँचता था। फिर विवाह किया था।

अरे भाई! आहाहा! अभी आत्मा इतना है वह मानता नहीं, वह आत्मा को मानता नहीं। आत्मा इतना है, ज्ञानस्वरूपी है और एक है और परिपूर्ण है, इसलिए तादात्म्य स्वभाव से ज्ञान भरा है, उसकी एकाग्रता होने से अखण्ड ज्ञान और परिपूर्ण दशा हो, ऐसी तो उसकी पर्याय है। गुण परिपूर्ण है, द्रव्य परिपूर्ण है, एकाग्र होने पर पर्याय परिपूर्ण (प्रगट होती है)। तीनों परिपूर्ण हैं, ऐसा तो आत्मा है। ऐसा आत्मा न माने, उसने आत्मा माना नहीं। समझ में आया? केवलज्ञान और पुरुषार्थ। केवलज्ञान मानते हो, कहा केवलज्ञान? केवलज्ञान है, ऐसा यदि तुम मानो तो उसमें पुरुषार्थ आ गया। केवलज्ञान ने देखा, ऐसा होने से दूसरा पुरुषार्थ करने का रहता नहीं, ऐसा होगा।

परन्तु तुम केवलज्ञान को मानो, मानो कि केवलज्ञान है तो अकेला केवलज्ञान का जहाँ प्रतीति पुरुषार्थ हुआ तो स्वभाव-सन्मुख हो, तब वह पुरुषार्थ होता है। तब उसकी प्रतीति आती है। इसलिए फिर तुझे, केवली ने देखा, वह बदलेगा नहीं, वह तेरी श्रद्धा में आ जायेगा। क्योंकि वे जानने-देखनेवाले हैं, मैं भी एक जानने-देखनेवाला हूँ। समझ में आया? बातें भारी कठिन!

जिसने अद्भुत माहात्म्य प्रगट किया है,... लो! **ऐसा सर्वगत ही है।** सर्वगत ही है अर्थात् सर्व को पहुँच ही गया है अर्थात् सर्वज्ञ ही है। समझ में आया? लो, यह केवलज्ञान के गीत हैं, यह अच्छे दिन में लो यह। यह धनतेरस में कहते हैं न। धन की पूजा, वह नहीं। केवलज्ञान की पूजा। वह लक्ष्मी केवलज्ञान है। धूल में भी नहीं तेरे धन के ढ़ेर अब। सब होली पड़ी हो और प्रार्थना कर रोग आवे तब कि भाईसाहेब! मर गये, यह बुखार उतरता नहीं। ३८ दिन का अब यह टाईफाईड हुआ, डॉक्टर कहते हैं कि ३८ दिन चलेगा। हाय... हाय... ऐसे करवट बदलने पर ऊं... ऐसे करने पर ऊं... अब उसमें से ३७ में से किसको ४२ हो जाये, ४६ हो जाये, परन्तु वह तो रोग साधारण है, परन्तु नरक के रोग देखो! ओहोहो! जन्मे तब से सोलह रोग। ३३ सागर की स्थिति। मर नहीं गया वहाँ। सत्, वह मरता होगा? सूरज मर गया होगा? सूरज का स्नान निकालते होंगे कोई? सूरज मरे? चन्द्र मरे? तारा मरे? कौन मरे? प्रकाश का पुंज है, वह मरे कौन? इसी प्रकार यह तो चैतन्यप्रकाश का पुंज आत्मा है। मरे कौन और जन्मे कौन? समझ में आया? उसका कोई स्नान नहीं निकाला अस्त हुआ तब। मर गया, हाय... हाय... समझ में आया? चन्द्र-सूर्य तो गये, अस्त हो गये। अस्त हो गये तो उसे ख्याल है कि वह है, मर नहीं गये। इसी प्रकार इसे ख्याल में न आवे तो कहे आत्मा नहीं। नहीं नहीं, मर गया तू। पर्याय में है वस्तु। वस्तु तो ऐसी की ऐसी जीवित ज्योति है। इनकार करे तो भी है। आहाहा! भावार्थ। यह यहाँ देखे तो चले ऐसा है। वहाँ बराबर अंक ऊपर आया है वस्त्र का टुकड़ा—ध्वजा। यहाँ है न। ऐसा बहुत बार होता है। आवे न परन्तु दो-तीन दिन में एक में से एक आवे ही न यहाँ।

भावार्थ :- अक्रम से प्रवर्तमान ज्ञान एक ज्ञेय से दूसरे ज्ञेय के प्रति नहीं बदलता, इसलिए नित्य है,... देखा! वापस स्वयं ने स्पष्टीकरण किया है। **अक्रम से प्रवर्तमान...**

भगवान आत्मा का ज्ञान पूर्ण होने पर केवलज्ञान, वह **अक्रम से प्रवर्तमान ज्ञान एक ज्ञेय से...** एक जाननेयोग्य पदार्थ से। **दूसरे ज्ञेय के प्रति नहीं बदलता, इसलिए नित्य है,...** समझ में आया? और **अपनी समस्त शक्तियों के प्रगट हो जाने से...** ऐसा। शक्तियाँ कही, व्यक्ति कही। **प्रगट हो जाने से...** शक्तियाँ सब खुल गयी, व्यक्त हो गयी। **क्षायिक है, ऐसे अक्रमिक ज्ञानवाला पुरुष ही सर्वज्ञ हो सकता है। सर्वज्ञ के इस ज्ञान का कोई परम अद्‌भुत माहात्म्य है।** ओहोहो! बहुत सरस बात!

★ ★ ★

गाथा - ५२

अब, ज्ञानी के (-केवलज्ञानी आत्मा के) ज्ञप्तिक्रिया का सद्‌भाव होने पर भी... 'भी' भाषा है। जानने की क्रिया की अस्ति होने पर भी... सर्वज्ञ परमेश्वर ज्ञान की पर्याय में ऐसा तीन काल-तीन लोक जानने की क्रियारूप से परिणमते हैं, तथापि **उसके क्रिया के फलरूप बन्ध का निषेध करते हुए उपसंहार करते हैं...** उन्हें बन्धन नहीं होता। क्योंकि राग-द्वेष-मोह नहीं है। ज्ञप्ति प्रवर्तन हो, परिणमे, जानने की क्रिया हो। वह जानने की क्रिया कोई बन्ध का कारण नहीं। पूरा जाना उन्होंने तो और। यहाँ तो कम जाने। तीन काल-तीन लोक को पूर्ण जाने। व्यक्ति पूर्ण हो गयी, उस ओर पूर्ण जाना। ऐसी ज्ञप्ति-जानने की क्रिया में कोई बन्धन है? दूसरा कोई फल है? कि नहीं। उसके फल में तो आनन्द है। उस आनन्द का अधिकार लेंगे। समझ में आया? भगवान आत्मा अपनी पूर्ण दशा को प्राप्त होने से, उसमें ज्ञप्तिपना अर्थात् सब जानने का होने पर भी उसे राग-द्वेष-मोह नहीं, इसलिए बन्धन है नहीं। उसे ऐसा कहकर यह ज्ञान अधिकार पूरा करते हैं।

(अर्थात् केवलज्ञानी आत्मा के जानने की क्रिया... देखो! ज्ञप्ति थी न, उसका स्पष्टीकरण किया। **जाननक्रिया...** जानने की क्रिया **होने पर भी...** देखो! यह एक क्रिया है एक यह। राग की क्रिया, जड़ की क्रिया और जाननक्रिया। यह परमाणु आदि जो ऐसे पलटते हैं और ऐसे होते हैं, वह जड़ की क्रिया; अन्दर विकल्प उठे पुण्य-पाप का, वह विकार की विभाविक क्रिया; जानने की पर्याय हो, वह जाननक्रिया। जाननक्रिया, वह

तो उसका स्वभाव है। वह बन्ध का कारण नहीं। **बन्ध नहीं होता, ऐसा कहकर ज्ञान-अधिकार पूर्ण करते हैं)—** ५२ (गाथा)।

ण वि परिणमदि ण गेण्हदि उप्पज्जदि णेव तेसु अट्ठेसु।
जाणण्णवि ते आदा अबंधगो तेण पण्णत्तो॥५२॥

'**पण्णत्तो**' (अर्थात्) भगवान ने ऐसा कहा है।

ज्ञान जानता सब द्रव्यों को, किन्तु ज्ञेयमय कभी न हो।
ग्रहता और उपजता भी नहिं, अतः अबन्धक उसे कहो॥५२॥

लो! प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य आया। परिणमे और आता है न, '**गेण्हदि**' यह शब्द भाई ने रखे हैं। भावार्थ में रखे हैं। यह शब्द है? उसमें भी है।

'**ण वि परिणमदि ण गेण्हदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए...**' (समयसार, गाथा ७७) ऐसा शब्द है। यहाँ '**अट्ठेसु**' ओहोहो!

अब इसका **अन्वयार्थ :- (केवलज्ञानी) (भगवान) आत्मा...** अरे! आस्था तो करे कि ऐसा एक समय की पर्याय का धारक मैं और तीन काल-तीन लोक जानूँ, इतना मैं। एक समय की पर्याय अर्थात् कि पूरे द्रव्य को जाने, गुण जाने। वह द्रव्य और गुण उसमें—पर्याय में नहीं आते, परन्तु द्रव्य और गुण का ज्ञान पर्याय में आ जाता है। लोकालोक पर्याय में नहीं आते, परन्तु पर्याय में लोकालोक का ज्ञान आ जाता है। समझ में आया? आहाहा! एक समय की पर्याय है, वही पूरी पूर्ण है, ऐसा कहते हैं, लो! लोकालोक का ज्ञान और अपने द्रव्य का एक समय का (ज्ञान) पर्याय (मिलकर) एक ही वस्तु है। समझ में आया? उस पर्याय को देखने से, अपने द्रव्य-गुण और लोकालोक सब, पर्याय देखने से ज्ञात हो जाते हैं। इतनी एक समय की ज्ञानगुण की पर्याय परिपूर्ण है, ऐसे **(केवलज्ञानी) आत्मा पदार्थों को जानता हुआ भी...** जानो। जानने की क्रिया तो अपनी स्वतः है। **उसरूप परिणमित नहीं होता,...** यह विकार्य लिया। समझ में आया? प्राप्य, विकार्य और निर्वृत्य, ऐसे कार्य के तीन प्रकार हैं। यह और दूसरा आया इसमें। कहाँ इसमें कहीं... कितना कहाँ था इसमें कुछ। क्या कहा? यह ७६ गाथा में आ गया है अपने। ७६, ७७, ७८ (गाथा समयसार)। बहुत विस्तार आ गया। अभी ही आ गया। समझ में आया?

भगवान आत्मा ज्ञान की पर्याय से परिणमित पदार्थरूप परिणमता नहीं, ऐसा इसका अर्थ है। देखो! **आत्मा पदार्थों को जानता हुआ भी उसरूप (पदार्थरूप) परिणमित नहीं होता,...** अर्थात् पदार्थरूप परिणमकर विकार्यरूप होता नहीं। विकार्य शब्द है वह। **उन्हें ग्रहण नहीं करता...** प्राप्य शब्द है। पर को जानने पर भी उसे ग्रहण नहीं करता। पदार्थ को ग्रहण नहीं करता। प्राप्य कर्म है। प्राप्य कर्म। पर्यायरूपी कार्य के तीन प्रकार हैं—एक प्राप्यरूपी ग्रहण करना, एक परिणमना और एक उपजना। यह तीनों एक समय की क्रिया है। है, उसे प्राप्त होता है, उसे ग्रहण कहते हैं। है, वह बदलकर उत्पन्न हुआ है, इस अपेक्षा से उसे (विकार्य) कहते हैं, उपजा इस अपेक्षा से उसे निर्वृत्य कहते हैं। आहाहा! कठिन बात भाई! यह तो उसमें भी आता है संस्कृत व्याकरण में आता है। व्याकरण में आता है। कमलाशंकर व्याकरण लाये थे एक बार, उसमें भी आता है। अपने ७६-७७ में बहुत विस्तार किया है।

मुमुक्षु : राजकोट में हुआ था न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, राजकोट में हुआ था। यहाँ भी हुआ था। बहुत बार हुआ। राजकोट में लालूभाई ने यह वँचाया था न। कहे, यह हमारे सुनना है कर्ता-कर्म का अधिकार। देवशीभाई! (समयसार गाथा) ७५-७६-७७-७८। वहाँ ऐसा लिया है कि आत्मा का प्राप्य, आत्मा की ज्ञान अवस्था उस काल में हो, वह उसका प्राप्य है। राग प्राप्य नहीं। वह ज्ञानरूप परिणमता है बदलकर, वह उसका विकार्यरूपी कार्य है। विकार्य अर्थात् बदलावरूपी कार्य है और वह ज्ञान की पर्यायरूप से उपजता है, वह निर्वृत्यरूपी वह उसका कार्य है। समझ में आया?

(केवलज्ञानी) आत्मा पदार्थों को जानता हुआ भी... पदार्थरूप से परिणमता नहीं, बदलता नहीं, पदार्थरूप से बदलता नहीं। उनको पकड़ता नहीं। लोकालोक के ज्ञेय को जानने पर भी भगवान आत्मा उसे पकड़ता नहीं। यहाँ भी क्या है? यहाँ वास्तव में परपदार्थ को जानने पर भी परपदार्थरूप से जीव परिणमता नहीं। परपदार्थरूप से परिणमे? और परपदार्थ को जानता होने पर भी परपदार्थ को ग्रहण नहीं करता, उसे पहुँचता नहीं, उसे प्राप्त नहीं होता। उसे पहुँचे, ऐसा नहीं यहाँ वह। पहुँचे, वह सम्बन्ध से यहाँ ज्ञान को पहुँचता है। और उस पदार्थरूप से उपजता है, ऐसा है? परपदार्थरूप

से उपजता है ? आहाहा ! वास्तव में तो रागरूप से उपजता नहीं, रागरूप से परिणमता नहीं और राग को ग्रहता नहीं, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ? विभाव को ग्रहे, विभावरूप से परिणमे और विभावरूप से उपजे, वह आत्मा ? वह तो अनात्मा है, कहते हैं। आहाहा ! समझ में आया ?

जब निचली दशा में भी व्यवहार को जाना हुआ होने से प्रयोजनवान है, ऐसा भगवान ने कहा। धर्मी जीव को व्यवहार विकल्प आता है, ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। उसे आता नहीं। उसे उस सम्बन्धी का ज्ञान आता है। आहाहा ! समझ में आया ? उस धर्मी जीव को स्वयं को राग का ज्ञान होता है। वह रागरूप से परिणमता है, ऐसा नहीं। ज्ञानरूप से परिणमता है, ऐसा है। राग को ग्रहता है, ऐसा नहीं। अपनी उस समय की पर्याय ज्ञान, उसे पहुँचता है। राग को पहुँचता नहीं धर्मी, तथा रागरूप से उपजता नहीं, परन्तु राग सम्बन्धी के ज्ञानरूप से उपजता है। आहाहा ! बहुत सूक्ष्म, भाई ! सूक्ष्म नहीं, परन्तु इसके घर का है, परन्तु इसने कभी दरकार की नहीं। जब पूर्ण स्वरूप में ऐसा है तो फिर केवलज्ञानी भी उसरूप से परिणमे पदार्थरूप से, ऐसा नहीं, उसे प्राप्त करे, ज्ञान में वह ज्ञात हो गया, इसलिए लोकालोक को प्राप्त करे, ऐसा है ? नारकी भाव को प्राप्त करे ? नारकी के दुःख को प्राप्त करे, ऐसा है ?

और उन पदार्थों के रूप में उत्पन्न नहीं होता,... अपनी पर्यायरूप से उत्पन्न होता है, परन्तु उस पदार्थरूप से केवलज्ञानी उत्पन्न नहीं होता। **इसलिए उसे अबन्धक कहा है।** इसलिए भगवान सर्वज्ञ परमात्मा अबन्ध है, उन्हें बन्ध है नहीं। मोक्ष ही है, मोक्ष की पर्याय प्रगट होगी, भावमोक्ष है। ओहोहो ! देह में रहे होने पर भी, चार अघाति कर्म पड़े हैं तो भी... समझ में आया ? वह केवलज्ञान की पर्याय, वह तो अबन्धक ही है।

टीका :- यहाँ 'उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया। तेसु विमूढो रत्तो दुट्ठो वा बन्धमणुभवदि॥' इस गाथासूत्र में,... ४३वीं गाथा आ गयी। उसमें ४३ गाथा आ गयी। '**उदयगत पुद्गलकर्मांशों के अस्तित्व में...** कर्म का उदय हो, उसकी अस्ति में **चेतित होने पर—जानने पर—अनुभव करने पर मोह-राग-द्वेष में परिणत होने से ज्ञेयार्थ परिणमनस्वरूप क्रिया के साथ युक्त होता हुआ आत्मा क्रियाफलभूत बन्ध का अनुभव करता है, किन्तु ज्ञान से नहीं'...** क्या कहते हैं ? कहते

हैं, कर्म का उदय,... बतावे तब सामने बतावे न? कर्म का यहाँ उदय है, उसमें जो जुड़ता है, जानते हुए उसमें जुड़ता है, यह मेरा, ऐसा मिथ्यात्वभाव होता है और राग-द्वेष होता है, ऐसे **मोह-राग-द्वेष में परिणत होने से ज्ञेयार्थ परिणमनस्वरूप क्रिया...** वह ज्ञेयरूपी पदार्थ और परिणमनस्वरूप क्रिया राग की। उस राग में जुड़ता हुआ **आत्मा क्रियाफलभूत बन्ध का अनुभव करता है,...** वह राग और विकार को अनुभव करता है।

क्या कहा? कि आत्मा आत्मा है और कर्म का उदय जड़ में है। यहाँ नहीं। परन्तु उसमें ऐसे न जुड़कर वहाँ जुड़ता है। जानने के काल में जानना चाहिए, उसे और परपदार्थ को और उदय को जानना चाहिए। वह जानना चाहिए, इतना तो बराबर है। परन्तु जानने के काल में वह उदय के साथ जुड़ जाता है। ऐसे जुड़ान नहीं तो ऐसे जुड़ जाता है। ऐसे जुड़ जाने से विपरीत अभिप्राय होता है कि यह राग मैं। तथा राग और द्वेष, इष्ट-अनिष्ट को देखकर राग-द्वेष होता है। इसलिए वह भावबन्ध को अनुभव करता है। वह अज्ञानी बन्ध को अनुभव करता है, अधर्म को अनुभव करता है। समझ में आया? है न?

किन्तु ज्ञान से नहीं'... वह ज्ञान से नहीं, ज्ञान तो जाननेवाला है। जाननेवाले में तदुपरान्त राग, द्वेष और मोह किया, इससे बन्ध होता है। जानना-देखना बन्ध का कारण नहीं। **इस प्रकार प्रथम ही अर्थपरिणमनक्रिया के फलरूप से बन्ध का समर्थन किया है...** अर्थपरिणमनक्रिया के फलरूप से **(अर्थात् बन्ध तो पदार्थरूप में परिणमनरूप क्रिया का फल है, ऐसा निश्चित किया गया है)...** विशेष आयेगा, लो, समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

आसोज कृष्ण ३०, सोमवार, दिनांक २१-१०-१९६८
गाथा - ५२, प्रवचन - ४२

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, प्रवचनसार। क्या कहते हैं? कि केवलज्ञानी का आत्मा, उसकी बात चलती है। भगवान आत्मा जब सर्वज्ञपद केवलज्ञान को प्राप्त करता है, अरिहन्तपद कहो, केवलज्ञानपद कहो, उसे प्राप्त करने के पहले उसे प्राप्त करने की क्रिया कौन सी होती है, वह पहले आ गयी है। आत्मा त्रिकाल ज्ञान का, आनन्द का स्वरूप जो त्रिकाली ध्रुव है, वस्तु है आत्मा पदार्थ, वह भी त्रिकाली ही है और उसका ज्ञान और आनन्द आदि गुण स्वभाव भी त्रिकाली है। ऐसे आत्मा को अन्तर में अवलम्बकर, ऐसे आत्मा का परिपूर्ण द्रव्य का या परिपूर्ण स्वभाव का श्रद्धा-ज्ञान सम्यग्दर्शन-ज्ञान और स्वसंवेदन का परिणमन करे, तब उसे सम्यग्दृष्टि और ज्ञानी, तब धर्म की शुरुआतवाला कहा जाता है। समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु है, और वह वस्तु है, उसका स्वभाव—शक्ति-गुण-भाव वह त्रिकाली है आनन्द और ज्ञान आदि स्वभाव। ऐसे स्वभाव के सन्मुख होकर; निमित्त, राग और अल्पज्ञ दशा से विमुख होकर, पूर्ण स्वभाव सन्मुख होकर जो कुछ सम्यग्दर्शन और स्वसंवेदनज्ञान होता है, उसे धर्म की अथवा परमात्मा को प्राप्त करने के आश्रय की पहली भूमिका वह है। परमात्मा अर्थात् स्वयं, हों! दूसरा कोई परमात्मा नहीं।

ऐसे दर्शन-ज्ञानपूर्वक स्वरूप में शुद्ध उपयोग की साम्यभाव की, शुद्ध आचरण की, रागरहित वीतरागी अर्थात् चारित्र के परिणाम का आचरण करने से उसे केवलज्ञान की प्राप्ति शुद्ध उपयोग द्वारा हुई। दया, दान, व्रतादि के विकल्प वे शुभ हैं, उनके द्वारा चारित्रपद नहीं और उनके द्वारा केवलज्ञान की प्राप्ति भी नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप, सत् अर्थात् शाश्वत् और चिद् और आनन्द की मूर्ति, ऐसे परिपूर्ण भगवान की दृष्टि, ज्ञान और उसमें शुद्ध उपयोग की रमणता अर्थात् चारित्र। चारित्र अर्थात् कहीं वस्त्र छोड़ना (आदि) क्रिया, वह कहीं चारित्र नहीं, तथा कोई

दया, दान, व्रत के विकल्प उठें, वह कहीं चारित्र नहीं। वह व्रत तो पुण्यबन्ध का कारण है। आहाहा!

चारित्र अर्थात् चरना। किसमें? कि जो ज्ञानानन्द मूर्ति प्रभु आत्मा ध्रुव है, उसकी दृष्टि और ज्ञानपूर्वक उसमें चरना, रमना, जमना—आनन्द का भोजन करना, जमना अर्थात्। समझ में आया? उस दशा को चारित्रदशा कहते हैं। और उस चारित्र के फलरूप से केवलज्ञान—पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द प्राप्त होता है। कहो, इसमें सब व्याख्या आ गयी। द्रव्य की, गुण की, श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र की पर्याय की, उसके फलरूप से पूर्ण अरिहन्त के केवलज्ञान और आनन्द की। समझ में आया?

ऐसे भगवान केवलज्ञान प्राप्त को अब ज्ञप्ति—जानने की क्रिया रही है, परन्तु उन्हें राग, द्वेष और मोह नहीं, इसलिए उन्हें बन्धन है नहीं। ऐसा यहाँ सिद्ध करना चाहते हैं। समझ में आया? क्यों?-कि पूर्ण ज्ञान की पर्यायरूपी परिणमन हो गया। भगवान आत्मा जैसा पूर्ण ज्ञान और आनन्दस्वरूप ही उसका ध्रुव-नित्य है। उसकी रुचि, दृष्टि और आचरण करके जो पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द हुआ, अब उनके ज्ञान में नया जानना रहा नहीं कि कोई पदार्थ अधूरा रहा है जानने में, ऐसा नहीं है। तीन काल-तीन लोक के पदार्थ, उस ज्ञान की पर्याय में उनके ज्ञेय का जो ज्ञान है, वह यहाँ परिणम जाता है। समझ में आया? अब कहते हैं कि उन्हें बन्ध नहीं है। जानने की इतनी बड़ी क्रिया हुई न? तीन काल-तीन लोक के पदार्थों को जानने की पर्याय की अन्दर दशा की क्रिया होती है, उसे कोई बन्ध है नहीं। यह सिद्ध करना चाहते हैं।

टीका :- 'उदयगदा कम्मंसा जिणवरवसहेहिं णियदिणा भणिया। तेसु विमूढो रत्तो दुट्ठो वा बन्धमणुभवदि॥' यह ४३वीं गाथा में कहा जा चुका है। **'उदयगत पुद्गलकर्मांशों के अस्तित्व में...** क्या कहते हैं? पूर्व के बाँधे हुए कर्म के उदय के अस्तित्वकाल में, पूर्व के बाँधे हुए कर्म के उदय के अस्तित्व—विद्यमान के काल में **'चेततां'**-आत्मा जाने। **जानने पर—अनुभव करने पर मोह-राग-द्वेष में परिणत होने से...** स्वयं वस्तु पर को जानने पर, 'पर मेरे और पर में ठीक या अठीक'—ऐसे मोह और राग-द्वेषरूप यदि आत्मा परिणमे तो कर्मबन्धन होता है। उसका ऐसा एक गुण कि... स्वयं प्रकाशमान। समझ में आया?

वह **मोह-राग-द्वेष में परिणत होने से ज्ञेयार्थ परिणमनस्वरूप...** भाषा देखो! ज्ञेय पदार्थ। अर्थ अर्थात् पदार्थ। ज्ञेयरूपी पदार्थ में परिणमनस्वरूप। अर्थात्? जाननेयोग्य जो पदार्थ हैं ज्ञेयपदार्थस्वरूप, उन्हें जानने पर **क्रिया के साथ युक्त होता हुआ...** अर्थात् कि कर्म के उदय में राग और द्वेष करे और कर्म के उदय में जुड़ जाये, वह मेरे और मैं उनका। समझ में आया? सब चीज़ है ऐसे सामने। समझ में आया? एक गली है, उसमें सौ मकान हैं। अब मकान सौ है, उसमें जानना, वह तो उसकी जानने की क्रिया आत्मा की है। वह सब, ऐसा जानता है। परन्तु तदुपरान्त उसे ऐसा हो जाये कि यह मकान मेरा। जानने में सौ ही हैं, उसमें मेरा-तेरा उसमें—ज्ञेय में भी नहीं, जानने के ज्ञान में भी नहीं। समझ में आया? जाननेवाले ज्ञान में भी वह सौ जानता है, उसमें मेरा है, ऐसा ज्ञान में भी नहीं। तथा सौ घर हैं, एक यह, वह ज्ञेय है, उसमें नहीं कि यह ज्ञेय, वह (मेरा), ऐसा उसमें नहीं। ऐसा जानते हुए। जानना और ज्ञेय ज्ञात हो, वह भी बन्ध का कारण नहीं। परन्तु तदुपरान्त ऐसा जानने पर यह मेरा मकान। देखो! कहाँ से हो गया? है नहीं न! सौ ही जानने का है। समझ में आया? और सौ ऐसे लड़के खड़े हों सौ। ज्ञान जाने और ज्ञेय ज्ञात हो। ज्ञेय पदार्थ है, ज्ञेय है, वह ज्ञात हो, यह जाने, बस इतना। तदुपरान्त इसे ऐसा हुआ कि यह लड़का मेरा। कहाँ से आया यह?

मुमुक्षु : बीच में से।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ था धूल में? ऐई! सुमनभाई! धूल में भी वहाँ नहीं किसी का। हैरान होकर ... कमाकर पाप किया और पैसे खर्च किये लड़के के लिये और रोटियाँ खाये घर की, दूसरी महिला पकाकर (दे)। कहो, सुमनभाई! आहाहा!

यहाँ तो भगवान क्या सिद्ध करते हैं? परमात्मा केवलज्ञानस्वरूप है, वे ऐसे लोकालोक जितने ज्ञेय हैं, उसे वह जाने, अनन्त को। अनन्त को जाननेरूप ज्ञान परिणमे। उसमें यह मेरे और यह ठीक-अठीक करे तो उसे मोह और राग-द्वेष होता है। केवली को है नहीं। अनन्त को अनन्तरूप से जानने पर अनन्त ज्ञेय के लिये जो उसका स्वरूप है, वैसा ज्ञान में यहाँ ज्ञात हो जाता है। परन्तु वह जानना, वह कहीं बन्ध का कारण नहीं। तथा ज्ञेय जो हैं, वे बन्ध के कारण नहीं। दो बात हुई। तीसरा, कर्म का उदय अन्दर जो है, उसे और देह की हिलने-चलने की क्रिया हो, वह बन्ध का कारण

नहीं। समझ में आया? तीन बातें हुईं। ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा है, वह जाने। यहाँ भी वह जाने। वह जानना कहीं बन्ध का कारण नहीं, परन्तु ज्ञेय—जगत के पदार्थों को जाने, वह ज्ञेय बन्ध का कारण नहीं। दो (बात)। तीसरा, पूर्व के कर्म का उदय आने से देह की क्रिया हिलना-चलना, वाणी क्रिया आदि हो, वह जड़ की क्रिया है। वह कहीं बन्ध का कारण नहीं है। उसमें यह मुझसे होती है, यह राग मेरा, यह चीज़ मेरी, देह की क्रिया मैं करता हूँ, ऐसा जो जानने के उपरान्त यह अतिरेक, यह माना, वह मिथ्यात्व और राग-द्वेष उसे बन्ध का कारण है। समझ में आया? कहते हैं कि भगवान को तो वह है ही नहीं।

ज्ञेयार्थपरिणमन। ज्ञेयार्थपरिणमन अर्थात्? ज्ञेयरूपी पदार्थ का परिणमन। अर्थात् कि परपदार्थरूप से परिणमन ज्ञानी को होता नहीं और अज्ञानी को भी होता नहीं। शब्द तो ऐसा है। **ज्ञेयार्थपरिणमनस्वरूप क्रिया...** अर्थात्? कि ज्ञेय में लक्ष्य करके राग और मोहरूप से होना, ऐसी जो ज्ञेयार्थपरिणमनक्रिया **के साथ जुड़ता हुआ...** राग में जुड़ता हुआ, पुण्य में, पाप में, विकल्प में जुड़ता हुआ। **आत्मा क्रियाफलभूत बन्ध का अनुभव करता है,...** उस क्रिया का फल जो जुड़ानवाला राग और द्वेष और मिथ्यात्व को अनुभव करता है। वह मिथ्यात्व का अनुभव है, वह बन्ध का अनुभव है। **किन्तु ज्ञान से नहीं,...** जानने से बन्ध नहीं। जानने से बन्ध नहीं, ज्ञेय से बन्ध नहीं। देह की क्रिया... भगवान सर्वज्ञ परमात्मा को अघातिकर्म बाकी हैं, उनके उदय से वाणी निकले, हिले-चले, वह तो जड़ की क्रिया है। वह तो ज्ञान में ज्ञेय है, ज्ञान में ज्ञेय है। एक समय में ज्ञान में वह तो ज्ञेय हो गया है। अब उसके लिए 'यह मैं बोलता हूँ और यह देह की क्रिया मेरी है'—ऐसा भाव तो है नहीं। समझ में आया?

वह **बन्ध को अनुभव करता है, किन्तु ज्ञान से नहीं,...** जानने से बन्ध नहीं, ऐसा कहते हैं। जानना, वह बन्ध का कारण नहीं तथा ज्ञेय ज्ञात हो, वह बन्ध का कारण नहीं। स्त्री, पुत्र, परिवार पूरा जगत है। यहाँ पूरा जगत है, ऐसा ज्ञान जाने और ज्ञेय ज्ञात हो। वह तो ज्ञान प्रमाण और ज्ञेय प्रमेय, ऐसा सम्बन्ध है। परन्तु सम्बन्ध होने से कहीं प्रमेय बन्ध का कारण है? तथा प्रमाण बन्ध का कारण है? बात—न्याय समझ में आता है?

आत्मा की ज्ञान अवस्था, वह प्रमाण है। प्र—माण—विशेष माप करनेवाला।

जैसी चीज़ है, वैसा ऐसे ज्ञान जाने और सामने चीजें प्रमेय है, ज्ञेय है, प्रमेय है—ज्ञेय है—ज्ञान में ज्ञान होनेयोग्य है। बस, वह तो दो का स्वभाव इतना हुआ। वह ज्ञान पर का और पर ज्ञात होनेयोग्य उसमें हो, वह कहीं बन्ध का कारण नहीं। तदुपरान्त अन्दर में यह मेरा, मैं इसका, यह कहाँ से आया? समझ में आया? यह ठीक। यह ज्ञेय है, उसमें ठीक-अठीक है कोई? पूरे जगत के अनन्त ज्ञेय हैं और अनन्त को जाननेवाला ज्ञान है। उसमें अनन्त ज्ञेय में दो भाग पड़े हैं कि यह ठीक और अठीक? अज्ञानी, यह मेरा मानकर ठीक-अठीक, ऐसी राग-द्वेष और मिथ्यात्व की कल्पना करता है, वह बन्ध का कारण है। वही केवली को नहीं है। समझ में आया? केवली चले, बोले, हजारों कोस ऐसे विहार करे, ... छह-छह घड़ी सवेरे ध्वनि उठे। दोपहर में ध्वनि, शाम को ध्वनि। कहो, वह तो जड़ की क्रिया है। वह तो केवलज्ञान हुआ, तब से जानते हैं कि इस प्रकार से यह पर्याय होनेवाली होगी। वे तो पहले से जानते हैं। उसमें फिर मैं करता हूँ। ...है? केवली को इच्छा है? इच्छा है कि मैं बोलूँ? इच्छा हो तो केवली नहीं होते। समझ में आया?

यह केवली की बात करके आत्मा की बात करते हैं। आत्मा भी उनके जैसा है, तीन काल-तीन लोक को जाननेवाला। वह जानने की क्रिया करे, वह उसका स्वरूप है और वह उसका धर्म है स्वभावभाव को देखना वह। तदुपरान्त ज्ञेयों को जानने से, यह मुझे ठीक पड़ता है, यह मुझे ठीक नहीं पड़ता—ऐसी जो राग-द्वेष की उसकी वृत्तियाँ और यह मेरे और मैं इनका, ऐसा मिथ्यात्वभाव, वह बन्ध का कारण और संसार है। वह दुःखरूप भाव और परिभ्रमण का कारण है। न्याय समझ में आता है कुछ? कहो, रतिभाई! समझ में आया या नहीं? भगवान को वह नहीं, इसलिए ज्ञान से बन्ध नहीं।

इस प्रकार प्रथम ही अर्थपरिणमनक्रिया के फलरूप से बन्ध का समर्थन किया है... अर्थपरिणमनक्रिया, ऐसा कहा था। अर्थात् क्या? अर्थ अर्थात् पदार्थ, परिणमन की क्रिया। पदार्थ परिणमनरूप होता नहीं, परन्तु पदार्थ को जानने पर विकल्प करता है, वह पदार्थ अर्थपरिणमनक्रिया कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया? **प्रथम ही अर्थपरिणमनक्रिया...** अर्थ अर्थात् पदार्थ की परिणमन क्रिया। तो परपदार्थ के परिणमन की क्रिया जीव कर सकता नहीं। परन्तु भाषा ऐसी है कि अर्थपरिणमनक्रिया। अर्थात्

पदार्थ को जानने पर ठीक-अठीक, ऐसा राग-द्वेष करे, उसका नाम पदार्थ अर्थपरिणमनक्रिया कहा जाता है। भारी सूक्ष्म! समझ में आया? मार्ग ऐसा है परन्तु मार्ग अन्दर इसे हाथ आया नहीं। कभी सुनने को मिलता नहीं। यह करो... यह करो... करो... पूजा करो और भक्ति करो, दया करो और व्रत पालन करो। अब करना... करना... करना... वह तो विकल्प है। उस विकल्प का करना है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। यह ज्ञान विकल्प को करे? वह तो ज्ञानस्वरूप चैतन्यबिम्ब प्रभु है, चैतन्यसूर्य है। यह राग करता हूँ और राग मेरा कर्तव्य है, ऐसा मिथ्यादृष्टिपना मिथ्यात्व और बन्ध का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

अर्थपरिणमनक्रिया के फलरूप से बन्ध का समर्थन किया है (अर्थात् बन्ध तो पदार्थरूप में परिणमनरूप क्रिया का फल है... पदार्थरूप से परिणमना, उसका अर्थ यह। पदार्थरूप से, कहीं परपदार्थरूप से आत्मा परिणमता नहीं। परन्तु पदार्थ को जानता हुआ राग-द्वेष-मोहरूप से परिणमे, वह पदार्थरूप से परिणमता है, ऐसा कहा जाता है। न्याय समझ में आता है? शब्द तो ऐसा पड़ा है अन्दर कि **बन्ध तो पदार्थरूप में परिणमनरूप क्रिया...** परपदार्थरूप से परिणमनेरूप क्रिया, तो परपदार्थरूप से परिणमे, ऐसा तो बनता नहीं। परन्तु उसका अर्थ यह कि परपदार्थ को जानते हुए, राग और द्वेष और मिथ्यात्वभावरूप से परिणमे, विकल्परूप से, वह परपदार्थरूप से परिणमनक्रिया कही जाती है। समझ में आया? है न उसमें शब्द, देखो! इन शब्दों का कैसा अर्थ किया है? सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा!

ऐसा निश्चित किया गया है) तथा 'गेण्हदि णेव ण मुञ्चदि ण परं परिणमदि केवली भगवं। पेच्छदि समंतदो सो जाणदि सव्वं णिरवसेसं॥' यह गाथा ३२वीं कही गयी। **इस गाथा सूत्र में शुद्धात्मा के अर्थ परिणमनादि क्रियाओं का अभाव निरूपित किया गया है,...** वहाँ भी यह आया। भगवान आत्मा शुद्ध है और अर्थ अर्थात् पदार्थ की परिणमन आदि क्रिया। अर्थात् कि पदार्थ को जानने पर विकल्प की क्रिया, ऐसा। तो उस विकल्प में मिथ्यात्व—मोह और राग-द्वेष तीनों आ गये। समझ में आया? **शुद्धात्मा के अर्थ परिणमनादि क्रियाओं का अभाव निरूपित किया गया है,...** कथन किया गया है। **इसलिए जो (आत्मा) पदार्थरूप में परिणमित नहीं होता,...** अब देखो! पदार्थरूप

से परिणमता नहीं **उसे ग्रहण नहीं करता...** उस पदार्थरूप से परिणमता नहीं, उस शब्द को विकार्य लागू पड़ता है। कल बात कही जा चुकी है। विकार्य अर्थात् कि परिणमना, परिणमना—विशेषरूप से परिणमना, उसे विकार्य कहते हैं। पहले शब्द आयेंगे अन्दर तीन। परन्तु उन तीन में पहला प्राप्य कहा है, वह इसमें—टीका में दूसरे में आता है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कुछ समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं न, फिर से कहते हैं। यहाँ कहीं एकदम जाने देना नहीं। कल प्राप्य के समय ख्याल नहीं था, यह ख्याल है। प्राप्य अर्थात् क्या, यह तीन अर्थ हो गये थे। क्या कहा? अर्थ में कहेंगे। उसके ... यह अर्थ हैं।

(आत्मा) पदार्थरूप में परिणमित नहीं होता,.. अर्थात् क्या? कि परपदार्थरूप से विकसती अवस्थारूप से अर्थात् विकार्य अर्थात् परिणमना, विकार्य अर्थात् विशेष कार्यरूप से होना, वि-कार्य-विशेष परिणमनरूप से होना अर्थात् परपदार्थरूप से परिणमना, वह आत्मा में नहीं। ग्रहता नहीं अर्थात् प्राप्त। परपदार्थ को प्राप्त करता नहीं। परपदार्थ को प्राप्त करता नहीं, इसका नाम प्राप्य। प्राप्य का अभाव है, ऐसा। **और उसरूप उत्पन्न नहीं होता...** निर्वर्त्य। पदार्थरूप से उपजता नहीं। अपनी पर्याय में उपजे, पररूप से उपजता नहीं। **उस आत्मा के ज्ञप्तिक्रिया का सद्भाव होने पर भी...** ऐसे आत्मा को जानने की क्रिया की अस्ति होने पर भी, जानने की क्रिया का अस्तित्व होने पर भी, **भी वास्तव में क्रियाफलभूत बन्ध...** क्रिया का फल ऐसा जो मिथ्यात्व और राग-द्वेष, वह उसे होता नहीं। इसलिए उसे बन्ध है नहीं। **बन्ध सिद्ध नहीं होता।** आहाहा! थोड़ा सूक्ष्म तो है, भाई!

कहो, आज भगवान मोक्ष पधारे हैं। परमात्मा महावीर प्रभु २४९४ वर्ष हुए। आज २४९५ वाँ (वर्ष) लगा सिद्धपद प्राप्ति को। वे भगवान जब देह था, तब वाणी ऐसे निकली थी। वाणी निकली थी, हों! भगवान बोलते नहीं। भगवान तो ज्ञानस्वरूप है। आहाहा! समझ में आया? दिव्यध्वनि—आवाज निकलती थी। दिव्य अर्थात् प्रधान आवाज जिनकी। वाणी की पर्याय प्रगट होती थी, उसमें यह प्रवचनसार। प्र-वचन। प्र अर्थात् विशेष वचन। दिव्यध्वनि। दिव्य अर्थात् प्रधान आवाज या प्रवचन कहो, उसका

यह सार है इसमें। समझ में आया? **वास्तव में क्रियाफलभूत बन्ध सिद्ध नहीं होता।**

अब भावार्थ। भावार्थ जरा... **कर्म के तीन भेद किये गये हैं...** अब वह कर्म अर्थात् क्या? वापस वह।

मुमुक्षु : वह समझाओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : समझाना पड़ेगा? कर्म अर्थात् कार्य। कर्म अर्थात् कार्य। कर्म अर्थात् जड़कर्म और ... वह यहाँ बात नहीं। कार्य उसका नाम कर्म। कर्म अर्थात् करना-कार्य। वह कर्म अर्थात् कार्य के तीन प्रकार। कल बात हो गयी है अन्तिम। ... तीन किये जाते हैं। **प्राप्य...** अर्थात् जैसे गाँव हो, उस गाँव को उपजाना नहीं, गाँव को छोड़ना नहीं। जहाँ है, उसे प्राप्त करना है। है, उसे पहुँचना है। है, उसे पहुँचना है। उसी प्रकार आत्मा में या जड़ादि में... यहाँ तो आत्मा की बात है। आत्मा में जो पर्याय जिस समय में होनेवाली है, उसे प्राप्त करता है, उसे ग्रहण करता है आत्मा, उसे प्राप्य कर्म कहा जाता है। कर्म अर्थात् कार्य, कार्य अर्थात् अवस्था। आहाहा!

किसी भी द्रव्य की क्रिया हो पर्याय की, उसे कर्म कहा जाता है। समझ में आया? कर्म शब्द से यह जड़ नहीं। जड़ में भी तीन प्रकार है। परमाणु कर्म अवस्थारूप से होते हैं, वह भी उनका कर्म अर्थात् कार्य है। उस कार्य में भी तीन प्रकार। परमाणुओं में कर्म अवस्थारूप से जो होना, वह प्राप्य है, प्राप्य है। होनेवाली थी उसे परमाणु ने प्राप्त कर ली, पहुँच गया है। इसी प्रकार आत्मा में जो कुछ पर्याय-अवस्था होनेवाली है, उसे आत्मा पहुँचता है। बदलता नहीं, उपजता नहीं। पहुँचता है, ऐसे कार्य को प्राप्त किया, कहा जाता है। अपने तो बहुत आ गया है (समयसार गाथा) ७६-७७-७८ में। अभी वाँचन हो गया है वह कक्षा (शिविर) था तब। समझ में आया? इतने अधिक दिन का याद रहता होगा? नाम तो बहुत याद रहे, गाली बहुत याद रहती है। किसी ने गाली दी हो तो बहुत याद रहती है। परन्तु गुण की दशा क्या है, वह याद नहीं रहती।

यहाँ कहते हैं, जगत में छह द्रव्य हैं—छह वस्तुएँ। भगवान के ज्ञान में छह द्रव्य देखे हैं भगवान केवली ने। अनन्त आत्मायें, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति, एक अधर्मास्ति और आकाश। छह द्रव्य। उन द्रव्यों में जो वर्तमान अवस्था

हो, वह हो, वह ध्रुवरूप से होने की थी वहाँ निश्चय, उसे वह द्रव्य प्राप्त करे, इसलिए उसे प्राप्य और ग्रहण किया, ऐसा कहा जाता है। और उस अवस्था को, पूर्व की अवस्था बदलकर हुआ, इसलिए उसे विकार्य कहा जाता है। है तो वह की वह अवस्था। बदलकर हुई, इसलिए विकार्य। थी और पहुँची, वह प्राप्य। बदलकर हुई वह विकार्य। और उस अवस्थारूप से उपजा, ऐसा कहना, वह निर्वर्त्य है। वस्तु तो एक की एक है। आहाहा! समझ में आया? ... इतिहास में आता है... क्या कहलाता है? संस्कृत। व्याकरण में आते हैं ये बोल। कमलाशंकर व्याकरण यहाँ बहुत लाये थे। होता है न!

मूल चीज़ जो वस्तु है, उसकी पर्याय होती है या नहीं? द्रव्य है, वह तो त्रिकाली है, उसका गुण है, वह त्रिकाली है। अब उसकी अवस्था—हालत... हालत... हालत / दशा होती है, वह पर्याय है। उस पर्याय को कर्म कहा जाता है। उस कर्म की तीन प्रकार से पहिचान की जाती है। वस्तु एक ही। तीन प्रकार से पहिचाना जाता है। एक तो हुई पर्याय, वह होनेवाली है ध्रुवरूप से वह अवस्था, उसे द्रव्य ने प्राप्त किया अर्थात् ग्रहण किया, उसे प्राप्य कहा जाता है। वह अवस्था पूर्व की बदलकर हुई है, इसलिए वह की वह अवस्था को विकार्य कहा जाता है। वह अवस्था नहीं थी और हुई, ऐसे उत्पन्न हुई, इस अपेक्षा से उसे निर्वर्त्य कहा जाता है। उत्पाद, व्यय और ध्रुव तीनों (कार्य में) लागू किये। समझ में आया या नहीं? वह ध्रुव त्रिकाली ध्रुव, वह यहाँ नहीं। वह यहाँ नहीं। (प्रवचनसार गाथा) ९९ में विस्तार किया था राजकोट में।

यह वस्तु है। देखो, यह लकड़ी है यह सूखड़ की। ऐसे हुई। अब ऐसे हुई, वह एक अवस्था हुई वहाँ अवस्था। वस्तु तो कायम रही। अवस्था (हुई)। अवस्था को जो यह रजकण हैं, उस अवस्था को प्राप्त किया, ग्रहण किया और उसे पहुँचा, उस अवस्था को कर्म कहा जाता है। कर्म अर्थात् कार्य। उसे वे रजकण पहुँचे हैं, इसलिए प्राप्य। वह अवस्था बदलकर हुई। पहली अवस्था ऐसे थी और ऐसे हुई, इसलिए, उस अवस्था को विकार्य कहा जाता है। उस अवस्थारूप से हुआ, वर्तमान हुआ, इस अपेक्षा से उसे निर्वर्त्य कहा जाता है। वस्तु तो एक की एक। तीन प्रकार से देखने की कर्म की पद्धति है। कर्म अर्थात् कार्य। नवरंगभाई!

मुमुक्षु : परीक्षा लेने जैसा है। बहुत स्पष्ट समझाया।

पूज्य गुरुदेवश्री : कल तो ध्यान नहीं था, यह मुझे खबर है। उस समय पूछा होता तो नहीं आता। बराबर ख्याल है। प्राप्य के समय ख्याल नहीं था इनको। इसलिए अभी अधिक स्पष्ट करना पड़ता है। परन्तु समझ में आया? यह तो भाई सब नजर-नजर से परीक्षा हो इसकी। चन्दुभाई! आहाहा! देखो न, वह कल यह अधिकार कहा था थोड़ा। समझ में आया? तीनों का अर्थ किया था। ... अपने (समयसार गाथा) ७६, ७७ में आ गया है। ७६, ७७ ... ऐसा कहा था। क्या कहा? ७६-७७ कर्ताकर्म (अधिकार) है न समयसार में? वहाँ ऐसे तीन प्रकार हैं प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य।

ज्ञानी को धर्मस्वरूप आत्मा शुद्ध ज्ञान है, ऐसा भान हुआ तो उसकी वर्तमान जो ज्ञान और श्रद्धा, आनन्द की अवस्था जो है, उस समय होनेवाली थी ध्रुवरूप से निश्चय, उसे द्रव्य पहुँचा, इसलिए उसे प्राप्यरूपी कर्म, उसे ग्रहण किया, ऐसा कहा जाता है। और वह अवस्था पहले से ऐसे बदलकर हुई है, इसलिए उस अवस्था को विकार्य-विशेष कार्य बदला और परिणमा, ऐसा कहा। देखो, इसमें परिणमन पहला लिया। पहला शब्द है। पदार्थरूप से परिणमता नहीं। अर्थात् पर के कार्यरूप से होता नहीं। फिर ग्रहता नहीं, यह प्राप्य आया। पहले आया विकार्य, फिर आया प्राप्य और तीसरा आया निर्वर्त्य। समझ में आया? जयसुखभाई! यह सब सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो अभ्यास करना चाहिए इसे। यह तो मुद्दे की रकम की बात है। ओहो! परमेश्वर वीतराग के मार्ग में जन्मे, उसे भी अभी क्या वीतराग को कहना है, इसकी खबर नहीं होती और उसे धर्म हो जाये, (ऐसा नहीं हो सकता।) यह तो कहीं परमेश्वर ने कहा है, इसलिए ऐसा है—ऐसा नहीं। यह तो ऐसा है। वस्तु जैसी है, वैसी ज्ञान में आयी है। ज्ञान में आयी, ऐसी वाणी में आयी है और वाणी में आयी, ऐसी वस्तु है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ... ही है। ....

उस-उस द्रव्य को, चैतन्य हो, जड़ हो, ज्ञानी हो या अज्ञानी हो। उस समय की जो पर्याय वहाँ ध्रुवरूप से होनेवाली है, उसे आत्मा पहुँचता है, परमाणु पहुँचता है, धर्मास्ति पहुँचता है, वह द्रव्य उसे प्राप्त करता है। बस, यह प्राप्य कर्म। कर्म अर्थात्

अवस्था। उस अवस्था को तीन अपेक्षा से देखना। है ध्रुवरूप से, उसे प्राप्त किया, बदलने की अपेक्षा से उसे विकार्य कहना और उपजने की अपेक्षा से... पूर्व का ऐसा बदला और ऐसे उपजा, ऐसी अवस्था को निर्वर्त्य कर्म कहा। उस प्रत्येक द्रव्य में समय-समय में ऐसा हो रहा है। आहाहा!

मुमुक्षु : तेल में (रिफाईनरी में) भी ऐसा होता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : तेल में सुमनभाई करते होंगे कुछ?

मुमुक्षु : मशीनरी करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मशीनरी धूल में भी न करे। मशीनरी में उसमें ... मशीनरी की एक समय की पर्याय तीन प्रकार से देखना। प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य। उस-उस अवस्थारूप से वहाँ अवस्था ध्रुवरूप से होनेवाली थी, उसे द्रव्य ने प्राप्त किया है। ऐसे हिले और ऐसा, वह भी अवस्था ध्रुवरूप से वहाँ होनेवाली थी, उसे प्राप्त किया। बदलकर हुई, इसलिए उस अवस्था को विकार्य। उपजी ऐसे उपजी, ऐसे उपजना, उसे निर्वर्त्य (कहते हैं)। है तो एक की एक अवस्था, उसे तीन प्रकार से देखने की आँख। समझ में आया?

मुमुक्षु : निश्चितरूप से वही होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसी समय में और उसी प्रकार। उसमें दूसरा कोई प्रकार नहीं। वास्तव में तो द्रव्य-गुण के कारण से नहीं, ऐसा है। आहाहा! ऐसा काम है। सत्य का ऐसा काम है। अलौकिक काम है। नवरंगभाई! समझ में आया इसमें?

यह भाषा होती है या नहीं? यह भाषा के परमाणु में उस जाति की पर्याय उस समय होनेवाली ही थी, वह उसका प्राप्य हुआ। प्राप्य अर्थात् ध्रुव को परमाणु पहुँचे। और वह भाषा की पर्याय पहले दूसरी थी, अभी भाषारूप हुई, वह की वह अवस्था को विकार्यरूप से देखना और वह की वह अवस्था नहीं थी और उत्पन्न हुई, ऐसा कहना उपजी, उसे निर्वर्त्य कहना। प्रत्येक द्रव्य में तीन प्रकार से देखना, ऐसा उसे कर्म अर्थात् पर्याय अर्थात् कार्य है। आहाहा! समझ में आया?

अब आज भगवान मोक्ष पधारे हैं तो सूक्ष्म तो होगा या नहीं? लो! योग का

अयोग करके भगवान मोक्ष पधारे, लो। मुक्त हुए, मोक्ष हुआ। देह में हुआ। भगवान केवलज्ञान में तो थे ही। अकम्प अयोगदशा, पूर्ण सिद्धदशा हो गयी। एक समय में ऊर्ध्वलोक गति हुई। सिद्ध यहाँ हुए मार्ग में, और पहुँचे, उसमें एक ही समय लगता है। सेकेण्ड का असंख्यवाँ भाग एक समय में तीन प्रकार। आहाहा! ऐसा भगवान! पर्याय का स्वरूप है। द्रव्य का, वैसा पर्याय का स्वरूप है। तेरा भी ऐसा स्वरूप है। समझ में आया?

यहाँ तो केवलज्ञानी की बात करते हैं, परन्तु प्रत्येक पदार्थ की स्थिति ऐसी ही है अनादि-अनन्त... आहाहा! समझ में आया? महँगा लगे, ऐसा नहीं मानना, नहीं समझ में आये, ऐसा नहीं मानना। आत्मा केवलज्ञान का कन्द है। तीन काल और तीन लोक में चादर में ले लेवे ऐसा है। ऐसी जिसकी सामर्थ्य है, वह ऐसा न समझे, ऐसा कैसे बने? समझ में आया? परन्तु दरकार नहीं। भीखाभाई! दरकार की नहीं लोगों ने। अहो! मैं प्रभु। मेरे द्रव्य में वास्तव में तो भगवान के ज्ञान में यह अंश आनेवाला, वह अंश आया अन्दर से एकदम, वह ध्रुव। उसे विकार्य कहा पूर्व की अपेक्षा से। यह वर्तमान अपेक्षा से निर्वर्त्य कहा। प्राप्य को ... कहा? नहीं। प्राप्य तो पहले ग्रहण में आ गया। ... तो नहीं। पूछे तो क्या हो जाये? सुमनभाई! तीन-चार बात जितनी बात चलती है। प्राप्य उसे कहना कि उस तत्त्व की उस समय की जो पर्याय जो होनेवाली है, वह होती है, उसे द्रव्य पहुँचता है, इसलिए उसे ग्रहे उसका नाम प्राप्य।

मुमुक्षु : बहुत सीधी बात करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सीधी बात है, सीधी बात ही है परन्तु अब... यह तो शास्त्रीय शब्द हैं। यह तो व्याकरण में आते हैं यह। समझ में आया?

मुमुक्षु : व्याकरण याद किसे हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : याद भी किसे हो? कहते थे न सवेरे। कि वह कल तो एकड़िया का प्रश्न किया। ठीक तर्क किया। रामजीभाई की अपेक्षा बुद्धि इसमें लगाना। ऐसा कि पहले सीखे थे। परन्तु पहले सीखे, वह आया क्यों नहीं तब? ऐई! सुमनभाई! वहाँ रास्ते में... खबर है न? तर्क करना आवे लोगों को। ऐसा कि बचाव किया। परन्तु

वह तो एकडिया की बात थी पहली। .... एकड़िया में... द्रव्यभाव, द्रव्य वह भाववान है, यह नहीं आया। तो एकड़िया का याद न हो तो फिर ऊपर कहाँ से चले गये? ऐई! यहाँ तो ऐसी बात है। तर्क... तर्क तो आता है, कहा। यह तो एकड़िया का बोल था। परन्तु एकड़िया का नहीं आया, तब दूसरे का किसका आवे यह? ऐसी बात है।

मुमुक्षु : एकड़िया का न आवे और दो का आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री : दो का आवे, क्या हुआ? पहला धूल में ... हुआ। कहो, समझ में आया इसमें? भाई! यहाँ तो न्याय से तौल है। ऐसी चीज़ ही है। आहाहा! क्या कहते हैं यह? देखो! आहाहा!

भगवान! यहाँ केवली की बात लेनी है कि केवलज्ञानी की पर्याय एक समय में जो प्रगट हुई, उसे वह प्राप्य करते हैं। वह आत्मा उस पर्याय को प्राप्य करता है अर्थात् ग्रहण करता है। परपरमाणु को ग्रहण नहीं करता, ऐसा सिद्ध करना है। पर को जाननेरूपी अपना जो ज्ञान उस समय का, उसे प्राप्त करता है। परमाणु को और परद्रव्य ज्ञेय लोकालोक है, उसे वह प्राप्य अर्थात् ग्रहण करता नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? ऐई! भीखाभाई! प्राप्य केवली को लागू करना है, परन्तु आता है सब तीनों काल के द्रव्यों को। समझ में आया?

प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य। अन्दर में पहला ऐसा नहीं था। टीका में ऐसा नहीं। टीका में विकार्य, प्राप्य और निर्वर्त्य है। समझ में आया? परिणमन... और उसमें भी ऐसा है अपने, भाई! वहाँ भी ऐसा है। **'ण वि परिणमदि ण गिह्णदि'** ७६-७७-७८-७९ (गाथा समयसार)। यह उस गाथा में **'ण वि परिणमदि ण गिह्णदि उप्पज्जदि ण परदव्वपज्जाए।'** कोई भी आत्मा परद्रव्यरूप से परद्रव्य को ग्रहण करता नहीं, वह तो प्राप्य। पररूप से-विकाररूप से परिणमता नहीं, वह विकार्य और पररूप से उपजता नहीं, वह निर्वर्त्य। अपनी पर्यायरूप से अपनी पर्याय जो होती है, उसे ग्रहण करता है, उसरूप परिणमता है, उसरूप उपजता है। पर को ग्रहण नहीं करता, पररूप से उपजता नहीं और पररूप परिणमता नहीं। आहाहा! वहाँ भी पाठ में ऐसा लिया है। विकार्य, प्राप्य, निर्वर्त्य। टीका में तो स्पष्ट डाला है अमृतचन्द्राचार्य ने ७६ में। ७६ (गाथा)

समयसार में। प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य। यहाँ यह तो वह पद है न, इसलिए मिलाने के लिये (ऐसा लिया है)। यहाँ भी मिलाने के लिये... यह गद्य-गद्य वह भी गद्य टीका है। परन्तु वह भाग है न पद, इसलिए ऐसी टीका की। क्या कहा? पाठ है न पद्य। '**ण वि परिणमदि**' ऐसा पाठ है न, इसलिए गद्य में भी ऐसा अर्थ किया। '**ण वि परिणमदि**' यह पहला शब्द है। ... '**ण वि परिणमदि**' यह विकार्य का अर्थ है। '**ण गिह्णदि**' यह प्राप्य का अर्थ है और '**ण उप्पज्जदि**' यह निर्वर्त्य का अर्थ है। इसमें विकार्य, प्राप्य और निर्वर्त्य, ऐसा डाला है। इसलिए टीकाकार ने तत्प्रमाण अर्थ किया। परन्तु भावार्थ में उसका क्रम जो है, वह भावार्थ में डाला। यह वहाँ अमृतचन्द्राचार्य ने टीका में ऐसा डाला है। प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य। समझ में आया? धर्म को समझना, उसमें ऐसा सब कितना?

भाई! उसमें धर्म की अवस्था वास्तव में तो सम्यग्दर्शन की पर्याय उस समय में वह हुई और उसे ग्रहण किया, उसका नाम प्राप्य कहा जाता है। उसने पर को ग्रहण किया है या विकल्प से ग्रहण किया है, ऐसा नहीं। वह तो भगवान शुद्ध चिदानन्दस्वरूप, ऐसी दृष्टि होने पर, वह होने पर उस काल में वही पर्याय प्राप्य है अर्थात् ग्रहण करनेयोग्य हुई। उसी पर्याय को विकार्य कहा, ऐसे बदली, इस अपेक्षा से। उसी पर्याय को निर्वर्त्य कहा। समझ में आया?

आत्मा में धर्म अर्थात् सुख का पंथ पकड़ने में पहला, भगवान शुद्ध द्रव्य और शुद्ध गुण त्रिकाल, उसकी रुचि होने पर जो परिणमन हुआ, उस समय की उस पर्याय को प्राप्य कहा जाता है। वह ध्रुवरूप से होनेवाली ही थी। आहाहा! उस समय में वह अंश और वह भी द्रव्य-गुण के कारण बिना। भारी कठिन! ऐई! नवरंगभाई! उसे प्राप्य कहा जाता है। और वह धर्म की पर्याय प्रगट हुई, वह पहली ऐसी होकर बदलकर हुई, उसे विकार्य कहा जाता है और सीधे उपजने की अपेक्षा से, उपजी अर्थात् नहीं थी और हुई, इसलिए उसे निर्वर्त्य कहा जाता है। कहो, समझ में आय इसमें? अरेरे! गजब बात भाई! धर्म समझने के लिये कितना इसमें कुछ ज्ञान की शिक्षा करनी पड़ती होगी या नहीं?

मुमुक्षु : करनी पड़े।

पूज्य गुरुदेवश्री : करनी पड़े ? पड़े तब तो जोर देना पड़े...

भावार्थ :- कर्म के... कर्म शब्द से कोई ऐसा ले कि जड़कर्म, वह यहाँ बात नहीं। तथा कर्म शब्द से भावकर्म कहे (तो) अकेले भावकर्म की भी बात नहीं। भावकर्म विकारी है न, अकेले उसकी बात नहीं। कर्म शब्द से वर्तमान पर्याय।

मुमुक्षु : किसी भी द्रव्य की।

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी भी द्रव्य की। यहाँ तो केवली की बात की है, परन्तु किसी भी द्रव्य की। वर्तमान होती पर्याय, उस पर्याय को प्राप्य कहकर, वह होनेवाली थी, उसे पहुँचा, इसलिए प्राप्य। समझ में आया ? वह कर्म अर्थात् पर्याय अथवा कर्म अर्थात् कार्य। आता है न ? परिणामी द्रव्य... क्या कहा ? 'कर्ता परिणामी द्रव्य कर्मरूप परिणाम।' यह १००वीं गाथा में आयेगा इसमें आगे, समयसार। 'कर्ता परिणामी द्रव्य...' अर्थात् क्या कहा ? प्रत्येक द्रव्य परिणामी है, इसलिए उसके परिणमनरूपी कर्म अर्थात् कार्य का वह द्रव्य कर्ता है। कर्ता परिणामी द्रव्य, बदलनेवाला द्रव्य उसकी वर्तमान अवस्थारूपी कर्म का कर्ता होता है। 'कर्ता परिणामी द्रव्य, कर्मरूप परिणाम।' यह उसका परिणाम जो हुआ, उसे कर्म कहा जाता है। केवलज्ञान को कर्म कहा जाता है, सिद्धदशा को कर्म कहा जाता है, समकित की पर्याय को कर्म कहा जाता है, चारित्र की पर्याय को कर्म कहा जाता है, मिथ्यात्व के परिणाम को कर्म कहा जाता है।

मुमुक्षु : सब पर्याय को आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब पर्याय तो पहली सामान्य बात कर गये हैं। जेठालालभाई !

देखो, आया न ? 'कर्ता परिणामी द्रव्य...' यह छहों की बात की। छहों द्रव्य-छहों पदार्थ। पूर्ण हुए केवली या अपूर्ण रहे हुए साधक, विपरीत ऐसे मिथ्यादृष्टि या जड़। 'कर्ता परिणामी द्रव्य।' वह कर्ता अर्थात् बदलनेवाला स्वयं कर्ता, वह परिणामी द्रव्य। 'कर्मरूप परिणाम।' उसकी अवस्थारूपी कर्म, उसका परिणाम, उसे कर्म कहते हैं। 'क्रिया पर्याय की फेरणी...' यह पहली अवस्था से बदलकर (दूसरी हुई वह) क्रिया हुई। क्रिया पर्याय की फेरनी 'वस्तु एक त्रय नाम।' वस्तु तो एक और तीन नाम लागू पड़े। कर्ता परिणामी, परिणाम वह कर्म और पूर्व की अवस्था बदलकर हुई

इसलिए उसे क्रिया कहा गया। है न उसमें? है न यहाँ है। है या नहीं? एक परिणामी द्रव्य। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि तेरा अधर्मभाव है न, वह भी कर्म है। लो! यह कर्म में जड़ में जो कर्मरूप अवस्था हुई, वह भी कर्म। यह पुण्य-पाप के भाव हों, वह भी कर्म और धर्म की पर्याय हो, वह भी कर्म। मोक्ष का मार्ग जो प्रगट हो, वह भी कर्म, यह मोक्ष प्रगट हो पर्याय, वह भी कर्म। कर्म अर्थात् अवस्था। सामान्य कहा न पहला। प्रत्येक द्रव्य की वर्तमान अवस्था प्रत्येक की, उसे कर्म कहा जाता है। उस कर्म को तीन प्रकार से देखने में आता है। वह अवस्था उस क्षण में वही थी, वह होनेवाली, वह ध्रुवरूप से नित्य अवस्था, उसे प्राप्त करती है वह वस्तु, इसलिए उसे प्राप्य कहते हैं; परिणमा है, इसलिए उसे विकार्य कहते हैं; उत्पन्न हुआ है, इसलिए निर्वर्त्य कहते हैं। वस्तु तो एक ही है, तीन कार्य नहीं, कार्य तो एक है। कार्य को तीन अपेक्षा से देखना, उसके लिये प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : द्रव्य-गुण के आश्रय बिना....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, द्रव्य-गुण बिना। गुण के बिना भी पर्याय प्राप्त हो, ऐसी बात है।

मुमुक्षु : द्रव्य कर्ता कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहा कर्ता, परन्तु वास्तव में वह पर्याय का अंश है न, वह कर्ता है वहाँ। पर्याय स्वयं कर्ता, पर्याय स्वयं कर्म, पर्याय स्वयं करण, पर्याय स्वयं सम्प्रदान, एक पर्याय में छह बोल लागू पड़ते हैं। परन्तु यह समझाना है द्रव्य को, इसलिए इस प्रकार से बात करते हैं। दोनों बातें (की हैं)। आश्रय किसका था? ... प्रगटी है, वह स्वतन्त्र अंश है, उस अंश के षट्कारक एक-एक समय के षट्कारक स्वतन्त्र एक पर्याय को लागू पड़ते हैं। यहाँ तो प्राप्य लेना है न? पहुँचता है, ऐसा है न, इसलिए उस पर्याय को द्रव्य पहुँचता है, इसलिए उसे प्राप्य कहा जाता है, बदलता है, इसलिए उसे विकार्य कहा जाता है, उत्पन्न हुआ इसलिए उसे निर्वर्त्य कहा जाता है।

कर्म के तीन भेद किये गये हैं—प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य। केवली भगवान

के प्राप्य कर्म, विकार्य कर्म और निर्वर्त्य कर्म ज्ञान ही है,... लो! अब इसमें सिद्धान्त सिद्ध करना है। केवलज्ञानी भगवान अपनी ज्ञानपर्याय में उसे प्राप्त करते हैं, ज्ञेय को नहीं, ज्ञेय को नहीं। केवली का आत्मा... उसमें तो प्रत्येक को (ऐसा है), परन्तु अभी केवली को सिद्ध करना है। केवली के गुण हैं न? समझ में आया? बापू! जैन आगम के अर्थ समझना सूक्ष्म है, कठिन है। ऊपर-ऊपर से कुछ का कुछ समझ ले, वह कहीं वस्तुस्थिति नहीं है। जयसुखभाई! इसकी मूल बात जब तक ख्याल में न आवे, तब तक उसे कहना है, वह भाव समझ में नहीं आता। समझ में आया?

केवली भगवान के प्राप्य... अर्थात् केवली भगवान अपनी ज्ञानपर्यायरूपी प्राप्य को पहुँचते हैं, उसे ग्रहण करते हैं, ज्ञेयों को नहीं। लो, यहाँ तो यह आया। उस भाषा को ग्रहते नहीं, यह आया। (संवत्) २००६ के वर्ष में आया था न? ... नाम रखा हुआ। वह तो एक ... कहना है न? केवली पहले समय में भाषा को ग्रहे, दूसरे समय में छोड़े। बिल्कुल झूठी बात है। केवलज्ञानी की ज्ञान पर्याय स्वयं अपने को प्राप्त करती है, उसे ग्रहण करती है, ऐसा कहा जाता है। पर को ग्रहण करती नहीं। आहाहा! कठिन बात, भाई! नवरंगभाई! केवली बोले तब भाषा पहली ग्रहण करे और फिर छोड़े या नहीं? अरे! भगवान! सुन न! यह तो भाषा की पर्याय आने की-जाने की सब ज्ञान में पहले से समा गया है। तो उसे तो ज्ञानरूपी प्राप्य है। केवली का ज्ञानरूपी प्राप्य ग्रहण है। भाषारूपी प्राप्य ग्रहण है—ऐसा नहीं है। और उस भाषा में भी उसके परमाणु रजकण हैं, अनन्त रजकण का पिण्ड द्रव्य है, वह वस्तु। वह भी उस समय में भाषा की पर्यायरूप से होने की ध्रुव है, इसलिए उसके परमाणुओं ने उसे प्राप्त किया है, केवलज्ञानी ने नहीं। समझ में आया?

यह तो वीतरागविज्ञान है। पदार्थविज्ञान, परन्तु वीतरागी पदार्थविज्ञान है। जगत की कल्पना से लोगों ने कहा है, ऐसा नहीं। यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ और वस्तु ऐसी ही है। समझ में आया? भगवान का प्राप्य—केवलीभगवान का प्राप्य कर्म ज्ञान ही है, विकार्य कर्म ज्ञान ही है, निर्वर्त्य कर्म ज्ञान ही है—ऐसा ले लेना। सबके साथ लेना। समझ में आया? केवलीभगवान का प्राप्य कर्म ज्ञान ही है, ऐसा लेना। विकार्य कर्म ज्ञान ही है, निर्वर्त्य कर्म ज्ञान ही है। आहाहा! समझ में आया? चन्द्रकान्तभाई! समझ में

आया या नहीं इसमें? समझ में आता है, लो। ध्यान तो रखते हैं। क्या करे परन्तु यह? वस्तु पूरी... कल्पना जैसा लगे। यह तो परमसत्य यह है। इसे निर्णय करना पड़ेगा। ....

मुमुक्षु : करना पड़ेगा नहीं, करना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : करना ही चाहिए, करना ही चाहिए। करना पड़ेगा अर्थात् मानो दबाव से करना पड़ेगा, ऐसा नहीं। जिसे हित करना है, उसे यह निर्णय करना पड़ेगा। भाई! यह तो अहित से भटक मरता है। चौरासी के अवतार में कहीं शरण नहीं। शरण भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसका आश्रय लेने से जो पर्याय प्रगट हो, कहते हैं कि वह ज्ञान की पर्याय, श्रद्धा की पर्याय, शान्ति की पर्याय, वह आत्मा का प्राप्य है। समझ में आया? ज्ञानी को प्राप्य वह श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति है। धर्मी का प्राप्य वहाँ विकल्प है, उसे ग्रहण नहीं करता। व्यवहारनय का विकल्प आवे, देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति आदि का, ज्ञानी उसे ग्रहण नहीं करता, उसे प्राप्त करके उसे पहुँचता नहीं। आहाहा! यही है यहाँ बात। यह तो अपने ७६-७७ में आ गयी है सब। ७६-७७-७८ (गाथा समयसार)।

धर्मी का प्राप्य, यह आत्मा सच्चिदानन्द प्रभु, इसकी श्रद्धा, ज्ञान और रमणता, वह पर्याय उसका प्राप्य है। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प, वह ज्ञानी का प्राप्य नहीं, ज्ञानी उसे ग्रहता नहीं। वह ज्ञेय है। उस ज्ञेय को पकड़ता नहीं। जैसे केवलज्ञानी लोकालोक को जानते हुए अपनी ज्ञानपर्याय, उसे प्राप्य है। ज्ञेयपदार्थ प्राप्य है नहीं। रतिभाई! जरा समझना पड़ेगा यह, हों! मात्र वेतन के लिये हैरान होकर मर जाता है ऐसा का ऐसा। वहीं का वहीं फँसकर। ऐई! आहाहा!

साधक जीव को, धर्मी का कार्य—कर्म क्या है? धर्मी का कर्म क्या? यहाँ तो धर्मी का कार्य क्या? धर्मी का कर्तव्य क्या? कि धर्मी का कर्तव्य यह है कि शुद्ध आनन्दकन्द की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति प्रगट करना, वह (कर्तव्य है)। वह उसका प्राप्य कर्म है, उसे वह ग्रहण करता है, उसे विकार्य अर्थात् कर्म नहीं था और परिणमा, इसलिए उसे विकार्य कहा जाता है। और वह उत्पन्न हुआ, उसे निर्वर्त्य कहा जाता है। धर्मी का वह प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य अपनी पर्याय है। व्यवहाररत्नत्रय का राग धर्मी का प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य नहीं। आहाहा! न्याय से तो पकड़ में आता है या नहीं?

लॉजिक से तो बात चलती है यहाँ। ऐसा का ऐसा पकड़ ले, ऐसा नहीं। न्याय से 'नि' धातु है। जैसा स्वरूप है, वैसा उसे ज्ञान को ले जाना, उसका नाम न्याय। आहाहा!

कहते हैं, **केवली भगवान के प्राप्य कर्म ज्ञान ही है,...** अर्थात् केवली भगवान स्वयं ज्ञान की वर्तमान पर्याय को प्राप्त करते हैं। केवली भगवान का विकार्य कर्म ज्ञान ही है। वे अपनी पर्यायरूप से परिणमते हैं। केवली भगवान का ज्ञान ही निर्वर्त्य है। वह निपजा है, वह ज्ञान की पर्यायरूप से निपजा है। वह कहीं ज्ञेयरूप से निपजता है और (ज्ञेय को) प्राप्त करता है और ज्ञेयरूप से परिणमता है, ऐसा नहीं। कहो, समझ में आया? यह तो दीवाली का दिन है तो ऊँचा पकवान आया है! दीवाली में अच्छा-अच्छा खाते हैं न लोग? खायें हो... वह तो विष्टा है। यह तो आनन्द का अमृत है। आहाहा!

देखो! **क्योंकि वे ज्ञान को ही ग्रहण करते हैं,...** यह प्राप्य का अर्थ किया, प्राप्य का अर्थ किया। भगवान केवलज्ञानी एक समय में ज्ञानरूप से परिपूर्णरूप से परिणमते हैं, उस ज्ञान को ही ग्रहते हैं, ज्ञेय को नहीं। **ज्ञानरूप ही परिणमित होते हैं...** यह विकार्य। ज्ञानरूप से ही परिणमते हैं। ज्ञानरूप से ही परिणमते हैं, ज्ञेयरूप से नहीं। ज्ञानरूप से उपजते हैं, ज्ञेयरूप से नहीं। समझ में आया? **इस प्रकार ज्ञान ही उनका कर्म है...** लो! सर्वज्ञ परमात्मा केवलज्ञानी भगवान को ज्ञान की पर्याय, वह उनका कार्य और कर्म है। **और ज्ञप्ति ही उनकी क्रिया है।** ठीक! यह जानने की क्रिया परिणमती है न, वही उनकी क्रिया है। कहीं ज्ञेय की क्रिया उनके पास नहीं। जानने की क्रिया बदलती है, वह उनकी क्रिया है। समझ में आया? केवली को भी क्रिया है। समझ में आया? परन्तु जानने की क्रिया, वह उनकी क्रिया है। किसी का कर देना या भाषा करना, वह उनकी क्रिया है ही नहीं। दूसरे को समझाना, वह क्रिया ज्ञानी केवली की है ही नहीं, वह तो वाणी की क्रिया है। समझ में आया? आहाहा! भगवान बिना वाणी निकलती होगी? भगवान है इसलिए वाणी निकलती है? नहीं, नहीं। भगवान बिना वाणी निकलती है। भगवान बिना वाणी निकलती है, तुझे खबर नहीं। वाणी के परमाणु, उस समय में उस अवस्था के प्राप्य को ग्रहण करते हैं, उसे परिणमते हैं और उसरूप से निपजते हैं। भगवान वहाँ वाणी में प्राप्य करता नहीं, परिणमता नहीं। ... आहाहा!

यहाँ भी ऐसा ही है। भगवान आत्मा अपने स्वरूप की दृष्टि के कारण जो ज्ञान है, श्रद्धा है, उसकी प्रगटता हुई, उसे वह प्राप्य करता है और वह उसकी क्रिया है। वह उसका कर्म है और वह उसकी क्रिया है। धर्मी को राग की क्रिया, शरीर की क्रिया, वह धर्मी की है नहीं। अज्ञानी की राग की क्रिया उसकी है, ऐसा वह मानता है। शरीर की क्रिया तो उसकी है नहीं। माने तो भी उसकी नहीं। जो जड़पदार्थ है, वह तो पर है। उसकी क्रिया माने कि मुझसे हुई, तो वह माने तो भी नहीं। राग माने तो, रागरूप मान्यता करता है अज्ञानी। ज्ञानी की क्रिया राग को जानना, ऐसी ज्ञानी की क्रिया है। उसे प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य कहते हैं। केवली की प्राप्य, निर्वर्त्य की क्रिया जानने की है, पर के साथ कुछ सम्बन्ध है नहीं।

ऐसा होने से केवली भगवान के बन्ध नहीं होता, क्योंकि ज्ञप्तिक्रिया बन्ध का कारण नहीं है... थोड़ा बाकी है, हों! बाद में आयेगा। एकदम चला नहीं देना।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १, मंगलवार, दिनांक २२-१०-१९६८
गाथा - ५२, कलश-४, प्रवचन - ४३

प्रवचनसार। ज्ञानतत्त्व का प्रज्ञापन। अर्थात् क्या ? कि यह आत्मा है, वह ज्ञानस्वरूपी चैतन्यसूर्य है। उसका चैतन्य का सामर्थ्य पर्याय में प्रगट होने पर तीन काल-तीन लोक को जाने, ऐसा उसका सामर्थ्य है। समझ में आया ? उसका यहाँ ज्ञानतत्त्व का अर्थात् ज्ञानस्वभाव का सामर्थ्य वर्णन करते हैं। यह कहते हैं भावार्थ देखो। जरा सूक्ष्म बात पड़ेगी, परन्तु अब समझनी तो पड़ेगी या नहीं इसे ? कहते हैं कि इस जगत में कार्य जो होता है, जगत के जड़ में, आत्मा में कार्य; कार्य अर्थात् पर्याय। पर्याय समझ में आती है ? जो वस्तु कायम रहती है, उसकी वर्तमान अवस्था—दशा-हालत-पर्याय होती है। उस पर्याय को यहाँ कर्म अर्थात् कार्य और कर्म कहा जाता है। समझ में आया ? उस कार्य को तीन प्रकार से पहिचानना, ऐसा बताते हैं।

देखो! **भावार्थ :- कर्म के तीन भेद किये गये हैं...** कर्म अर्थात् कार्य, कार्य अर्थात् अवस्था, अवस्था अर्थात् दशा। किसी भी आत्मा की, साधक जीव की, अज्ञानी की, केवली की या सिद्ध की या परमाणु की। यह रजकण पॉईन्ट है, परमाणु, उसमें जो पर्याय होती है, उस पर्याय को कर्म गिना है और उसके तीन भेद किये गये हैं। उसे तीन प्रकार से पहिचाना जाता है। जड़ कर्म की यहाँ बात नहीं। यहाँ तो कर्म शब्द से कार्य, कार्य शब्द से अवस्था। उसके तीन प्रकार—**प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य।** प्राप्य अर्थात् ? उस-उस वस्तु में उस-उस समय में वह अवस्था जो होनेवाली है, उसे वह वस्तु पहुँचती है, प्राप्त करती है; इसलिए उसे प्राप्य कर्म कहा जाता है। केवलज्ञानी एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानते हैं। वह जानने की ज्ञान की पर्याय उस काल में वह है, उसे प्राप्त करता है। ज्ञेय अर्थात् ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ को प्राप्य अर्थात् ग्रहण नहीं करता। समझ में आया ? ऐसे मिथ्यादृष्टि भी अपने स्वरूप को भूलकर उसकी वर्तमान दशा में जो कुछ विकारी पुण्य और पाप आदि विकार-अधर्म आदि भाव हों, वह-वह

अज्ञानी का प्राप्य है। प्राप्य अर्थात् उस अवस्था को वह अज्ञानी अज्ञानभाव से प्राप्त करता है, ग्रहण करता है। समझ में आया?

धर्मी, धर्मी सुखी होने के पंथ में पड़ा हुआ, उसका प्राप्य कर्म क्या है? कि राग और पुण्य के विकल्प और पुण्य-पाप के विकल्प और शरीरादि से भिन्न भगवान आत्मा है, ऐसी जिसे अन्तर में कीमत हुई है। चैतन्यनिधान सधन लक्ष्मी का धनी मैं हूँ। वैसी चैतन्यलक्ष्मी का जिसे भान है, जिसे कीमत है और जिसे राग और राग के फल और बन्धन की कीमत उड़ गयी है। समझ में आया? उसे धर्मी कहते हैं, उसे सुखी कहते हैं। वह सुख के साधन के रास्ते चढ़ा है, ऐसा कहते हैं। कौन? जो कोई आत्मा... यह शरीर, वाणी, मन जड़, वे तो उनके होकर रहे हैं, इसलिए उन्हें अपना मानता नहीं। लक्ष्मी आदि परवस्तु है, वह उसकी होकर रही है, इसलिए उसे भी अपना मानता नहीं। अन्दर में शुभ और अशुभ के भाव पुण्य-पाप के होते हैं, उनसे भिन्न, ज्ञायक चैतन्य शुद्ध आनन्द और ज्ञान की मूर्ति मैं हूँ, ऐसा धर्मी को—धर्म करनेवाले को भान है और वह भान है, इसलिए उस काल में जिस प्रकार का राग और विकल्प उठता है, उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान करता है, वह ज्ञान उस ज्ञानी का प्राप्य अर्थात् ग्रहण करनेयोग्य उसका कार्य है। क्या इसमें पकड़ में आता है? प्रवीणभाई! अता-पता हाथ नहीं आता। कभी सुना नहीं। यह तुम्हारा काका भी इनकार करता है। क्या बराबर है?

उस दुःखी होनेवाले प्राणी का प्राप्य क्या है? कि उसे पुण्य और पाप के विकल्प जो उठते हैं, उनके ऊपर उसकी दृष्टि है। क्योंकि इतना मैं हूँ, ऐसा माना है। उससे भिन्न हूँ, चिदानन्द हूँ, यह तो प्रतीति में, भान में नहीं। इसलिए अज्ञानी को जिस क्षण में उसे, पुण्य और पाप का विकल्प और रागादि हों, वे मेरे हैं, मैं उनका हूँ, ऐसी मान्यता और उस मान्यता के परिणाम को वह प्राप्य अर्थात् ग्रहण करता है। उसे आत्मा की पर्याय और आत्म द्रव्य-गुण है, उसकी उसे खबर नहीं। समझ में आया इसमें? आहाहा! अज्ञानी का प्राप्य उस प्रकार का विकार्य। परवस्तु को तो ग्रहण कर सकता ही नहीं अज्ञानी भी। शरीर, वाणी, कर्म (आदि) वस्तु, वह तो पर स्वतन्त्र जगत की चीज़ है। उसे जीव ग्रहे, उसरूप परिणमे या उसरूप उपजे, वह तो है नहीं। मात्र अपने चैतन्य सच्चिदानन्द प्रभु ज्ञानानन्द निधान लक्ष्मी का स्वभाव का भण्डार प्रभु, उसकी जहाँ

अन्तर दृष्टि का श्रद्धा और ज्ञान का भान नहीं, इससे उसकी श्रद्धा में वर्तमान में होते पुण्य और पाप के राग, वे मेरे हैं—ऐसा मानकर, उन्हें ग्रहण करता है। वे मेरे हैं—ऐसा ग्रहण करता है। वह मिथ्यादृष्टि, झूठा, पापी प्राणी के वे पाप परिणाम, वह उसका प्राप्य है। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... दूसरे नाम से बुलाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो फिर शब्द बहुत प्रयोग होते हैं। बड़ा मूर्ख और खोटा। आहाहा! प्रभु! तुझे तेरी खबर नहीं, भाई! तेरी लक्ष्मी ज्ञान और आनन्द की अन्तर में परिपूर्ण भरी है। भगवान आत्मा गुण और सुख से खाली नहीं। क्या कहा? कहो, समझ में आया इसमें?....

क्या कहा? पापी प्राणी किसे ग्रहण करता है? धर्मी प्राणी किसे ग्रहण करता है? और पूर्ण हुए परमात्मा किसे ग्रहण करते हैं? इन तीन की व्याख्या है। पापी प्राणी अर्थात् कि अपना चैतन्य अनन्त आनन्दकन्द ज्ञानानन्दस्वरूप जिसे श्रद्धा में नहीं, जिसे ज्ञान में नहीं, जिसकी कीमत नहीं, जिसका आदर नहीं—ऐसा जो पापी, वह पुण्य-पाप के परिणाम को अपना मानकर स्वयं है, ऐसा पापी अपने विकार के परिणाम को ग्रहता है। परवस्तु तो कहीं ग्रह सकता नहीं। तथा वस्तु की खबर नहीं, इसलिए निर्मल की पर्याय का प्राप्य उसे है नहीं। आहाहा! परवस्तु शरीर, वाणी, कर्म या पैसा, लक्ष्मी, कीर्ति को तो आत्मा ग्रह सकता नहीं। क्योंकि वह जड़ है, पर है, उसे क्या ग्रहे? छोटाभाई! हिम्मतभाई! बराबर है?

सत् भगवान आत्मा अपना सत् निधान शाश्वत् शान्ति आनन्द ऐसी जो चीज़ अपनी, उसके सन्मुख न देखकर, उसे विश्वास में न लेकर, उसे अपनी ज्ञान की दशा में ज्ञेय न बनाकर अज्ञानी पुण्य और पाप के विकल्पों को मेरे, यह दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध भाव, वे मेरे और मैं उनका, ऐसे उस भाव को मिथ्यादृष्टि पापी पाप के परिणाम को ग्रहण करके खड़ा है। कहो, रतिभाई!

मुमुक्षु : मन्दिर में दर्शन करता हो तब?

पूज्य गुरुदेवश्री : दर्शन करता हो तो वह राग हो, वह मेरा है, ऐसा मानता है

इसलिए वह पाप के परिणाम में खड़ा है। जिसमें जिसे अपना माने, उसे उसमें खड़ा रहा कहा जाता है। न्याय से समझना पड़ेगा या नहीं इसे? आहाहा! दुकान में बैठा, दो-पाँच-दस लाख की पूँजी की आमदनी हुई सुनता है, हर्ष होता है। उस हर्ष के परिणाम में सुखी होता है, मुझे यह ठीक है, ऐसा जो भाव, वह मिथ्याभ्रान्ति का पाप का भाव, उसे वह अज्ञानी ग्रहण करता है, वहाँ वह खड़ा है। समझ में आया? कहो, भीखाभाई! यह तो गजब बात, भाई! यह पापी की बात की।

धर्मी, अपना प्राप्य अर्थात् ग्रहण करनेयोग्य चीज़ क्या है उसे? उसने तो पुण्य और पाप के राग से भिन्न भगवान चिदानन्दस्वरूप की कीमत की है। राग से अधिक जिसने भिन्न आत्मा को जाना, अनुभव किया है। ऐसा जो धर्मी, ऐसे धर्मी को स्वभाव के भान में से स्वभाव की अवस्था जो ज्ञाता-दृष्टा और आनन्द की प्रगट होती है, होती है, उसे वह ग्रहण करता है अर्थात् पहुँचता है। वह ज्ञानी का, धर्मी का वह कर्म, कर्म अर्थात् कार्य, ग्रहण करनेयोग्य वह प्राप्य है। उसे रागादि हो, वह भी उस ज्ञानी का ग्रहण करनेयोग्य कार्य नहीं। आहाहा! कठिन बातें, भाई! ऐई, धीरुभाई! यह आये हैं न भाई, इसलिए स्मरण किया। कहा, यह तुम्हारे भाई समझते हैं या नहीं? ऐसा सूक्ष्म लेकर बैठे हैं। अभी तो सूक्ष्म है, भाई! तुम्हारे सामने हाथ करते हैं ऐसे। वहाँ बैठे हैं। परन्तु यह कभी सुना नहीं हो तो क्या करे?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसके लिये तो यह बात चलती है न! अन्दर आये थे। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

और जब धर्मी का प्राप्य—ग्रहण करनेयोग्य... उसे तो पुण्य-पाप के विकल्पों के ऊपर दृष्टि नहीं, इसलिए उसे पर के ऊपर तो दृष्टि नहीं, पर मेरे हैं, यह तो दृष्टि उड़ गयी है धर्मी को। उसे तो पुण्य-पाप के विकल्परहित निर्विकल्प चिदानन्द ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसका भान होने से उसे उस प्रकार के ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम उस काल में वे होते हैं, उसे वह ग्रहण करता है। केवली को... पहले पापी का कहा, पश्चात् धर्मी का कहा, अब केवली का। यह बात केवली की चलती है अधिक। केवली को, जो सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा अरिहन्तदेव हुए, जिन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान है, अनन्त

ज्ञेयों को जानने का जो ज्ञान है, ऐसा जो केवलज्ञान उन केवली का वह प्राप्य है। ज्ञान की अवस्था जो केवल पूर्ण हुई, स्व-पर को जानने की, वह उन्हें ग्रहण करनेयोग्य है। परन्तु जो अनन्त ज्ञेय हैं, उन्हें केवली ग्रहण नहीं करते और उन्हें ग्रहण करनेयोग्य है नहीं। कहो, नेमिदासभाई! एक बोल हुआ।

दूसरा, **विकार्य...** विकार्य अर्थात् परिणमना। है न दूसरा बोल? विकार्य अर्थात् परिणमना। अज्ञानी का परिणमना पुण्य और पाप के विकारीभाव, उसरूप होता हूँ, उसरूप परिणमता हूँ, ऐसा अज्ञानी का वह विकार्य है। पररूप होना तो है ही नहीं। अज्ञानी भी शरीररूप हो, कर्मरूप हो, स्त्रीरूप हो, पुत्ररूप हो, कीर्तिरूप हो, पैसारूप हो—(ऐसा नहीं है)। होता है? कभी नहीं? परन्तु उसरूप हो कहाँ से? परवस्तु स्वतन्त्र उसरूप हो कब? अज्ञानी पापी प्राणी अपने विकार परिणाम के ऊपर उसकी दृष्टि है, इसलिए वह विकाररूप परिणमता है, वह उसका परिणमन है। परिणमन अर्थात् होना, विकाररूप से परिणमना। धर्मी का परिणमन, राग और पुण्यरहित चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसे स्वभाव का भान होने से धर्मी का निर्मल निर्विकारी परिणमन है। वह उसका निर्मल विकार्य परिणमन कहा जाता है। केवली का, केवलज्ञानरूपी पर्यायपने परिणमते हैं, वह उनका विकार्य है। समझ में आया? यह विकार्य की बात की।

अब, **निर्वर्त्य...** निपजना। अज्ञानी, भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति निधान आनन्द का कन्द है, उसका आदर नहीं करके, यह पुण्य और पाप के विकल्प का आदर करके,उसरूप से उपजता है। विकाररूप से उपजता है, वह अज्ञानी का निर्वर्त्य—निपजा हुआ वह उसका कार्य है। वस्तु तो एक की एक है। प्राप्य—परिणमना और निपजना वस्तु एक, परन्तु तीन को पहचान कराने की पद्धति है। समझ में आया? यह इस नूतन वर्ष की बोहनी है। आहाहा! अरे! उसकी इसे खबर नहीं होती। दुःखी होकर, हैरान होकर मर गया चौरासी के अवतार में। ऐई! देवानुप्रिया! अर्थात् तीन के परिणमन कहे। अज्ञानी के, धर्मी के और केवली के। समझ में आया?

अज्ञानी आत्मा के शुद्ध चैतन्य के स्वभाव का आदर नहीं करता, उसे तो पुण्य और पाप के भाव का आदर है। आहाहा! कैसा सीखना इसे, कितना सीखना इसे? समझ में आया? अज्ञानी का निर्वर्त्य, वस्तु सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा अखण्ड आनन्द का

कन्द है, उसका आदर छोड़कर पुण्य और पाप मेरे, उसरूप से उपजता है, वह उसका निर्वर्त्य कर्म है। उसने वह उपजाया। उसने वह निपजाया दु:ख का पंथ। धर्मी का निर्वर्त्य, यह पुण्य-पाप होते हैं, उनका ज्ञान करता है और अपना ज्ञान करता है, ऐसी ज्ञाता-दृष्टा की पर्याय उसरूप से ज्ञानी उपजता है। वह उसका निर्वर्त्य—निपजा हुआ कार्य है। केवली तीन काल-तीन लोक के ज्ञेय को जानता हुआ ज्ञान, उस ज्ञान की पर्यायरूप से उपजते हैं। वह उपजते हैं ज्ञान की पर्यायरूप से, वह उनका उपजा हुआ कार्य है। न्यालभाई! बहुत सूक्ष्म है यह। घड़ी की मशीन-बशीन में थोथा भी नहीं वहाँ। समझ में आया? आहाहा! अरे! इसे घर में क्या है, इसकी—घर की खबर नहीं होती और परघर को अपनेरूप से मानकर भटक रहा है। समझ में आया? यह प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य, वह केवली भगवान का प्राप्य कर्म ज्ञान ही है। अन्तिम शब्द है, ऐसा लो। है अन्दर देखो! इस शब्द के सामने देखो तो खबर पड़े, वरना अता-पता सूझे, ऐसा नहीं कहीं इसमें। गज का आंक सूझे, ऐसा नहीं।

केवली भगवान के प्राप्य कर्म,... फिर शब्द है। **ज्ञान ही है...** है? सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा अरिहन्तदेव केवली परमात्मा का प्राप्य कर्म ज्ञान है। जानना केवलज्ञानरूप से जानना-जानना, वह उनका प्राप्य कर्म है। **विकार्य कर्म ज्ञान ही है,...** यह परिणमना करना, वह भी ज्ञानी का ज्ञान ही परिणमना है। **और निर्वर्त्य कर्म ज्ञान ही है,...** आहाहा! समझ में आया? प्राप्य, विकार्य, निर्वर्त्य कभी सुना नहीं होगा इसने। ऐई! मलूकचन्दभाई! बहियों में आता नहीं, उपाश्रय जाये तो सुनाई दे नहीं, मन्दिर में जाये तो मिले नहीं। यहाँ सुनने का समय मिले। ऐसा कहा। आहाहा!

भगवान! यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! वह है तो अवस्था। केवलज्ञानी की केवलज्ञान एक दशा है, वह कहीं गुण नहीं, गुण तो त्रिकाल है। गुण और द्रव्य वह त्रिकाल है, उसकी अवस्था है। वह अवस्था उसका प्राप्यकर्म है, वह अवस्था उसका विकार्य परिणमन कर्म है, निर्वर्त्य वह उसका ज्ञान कर्म है। वह ज्ञान ही उसका निर्वर्त्य है, ज्ञान ही उसका प्राप्य है, ज्ञान ही उसका परिणमन है। **क्योंकि वे ज्ञान को ही ग्रहण करते हैं...** है? वे ग्रहते हैं अर्थात् प्राप्य। केवलज्ञानी परमात्मा अपने ज्ञान की पर्याय को पकड़कर स्थित हैं, वह उनका प्राप्य है। अज्ञानी राग को पकड़कर पड़े हैं, वह राग

उसका प्राप्य। चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो। क्योंकि यह वस्तुदृष्टि नहीं, इसलिए अंशदृष्टि है। अंश की दृष्टि लम्बाती है तो राग के ऊपर जाती है। वस्तु की तो खबर नहीं। समझ में आया? कहो, दास! लो, यह नूतन वर्ष २५वाँ। २०२५। यह समझे तो वर्ष लगा, वरना उसे वर्ष अस्त हो गया है। आहाहा!

कहते हैं, भगवान! केवली भगवान वे ज्ञान को ही ग्रहते हैं। परमेश्वर केवलज्ञानी तो उनकी ज्ञान की पर्याय को ही पकड़ते हैं, ज्ञानरूप से परिणमते है और ज्ञानरूप से उपजते हैं। तीन हुए—प्राप्य, विकार्य और निर्वर्त्य। धर्मी, पुण्य-पाप के राग से, देह से, क्रिया से, पर से भिन्न ऐसा भगवान आत्मा है, ऐसा अन्दर भान के कारण धर्मी का सम्यक् श्रद्धा-ज्ञान और शान्तिरूपी परिणाम, वही उसका प्राप्य, वही उसका परिणमना, वही उसका निवर्तना है। समझ में आया? अज्ञानी का, क्षण-क्षण में जो कुछ पुण्य और पाप के विकल्प होते हैं, वह उसका प्राप्य है, उसरूप से परिणमता है और उस-उस रूप से निपजता है। कहो, समझ में आया इसमें? यह तो सादी भाषा से बात है। है ऊँची परन्तु भाषा सादी है या नहीं? ऐई! धीरुभाई! तुम्हारे भाई को न कहें तो तुमको कहते हैं, लो! भाषा तो सादी है या नहीं? सादी में सादी और सत्य के सत्य को प्रकाशित करे ऐसी है। एकदम इसमें कोई शास्त्र की कोई ऊँची (दाँव) पैंच की बात भी नहीं।

तू है या नहीं? कहे, हाँ। क्या है तुझमें? तू है तो तुझमें है क्या? तुझमें क्या राग-द्वेष है? तुझमें शरीर, वाणी, मन है? पैसा तुझमें है? कहाँ है? नहीं। तब है क्या? तुझमें है ज्ञान, दर्शन, आनन्द, शान्ति, वह तुझमें है। जो तुझमें है, उसे अपना न मानकर, जो इसमें नहीं, (ऐसे) पुण्य-पाप, विकल्प, देह, वाणी, मन को अपना माने उसे—अज्ञानी को तो पापभाव मिथ्यात्वभाव उसका प्राप्य है, मिथ्यात्वभाव उसका परिणमन है, मिथ्यात्वभाव उसका निपजना-उपजना है। समझ में आया? कहो, चन्दुभाई! यह तो सादी भाषा है। परन्तु अब लोगों को दरकार ही नहीं होती कुछ। आहाहा! ऐसा अवसर—समय मिला, मनुष्य देह। उसमें क्या करने का है और क्या करता हूँ, इसकी खबर नहीं होती। आहाहा!

जगत की चीज़ों को देखकर हर्ष का सड़का आता है, और प्रतिकूल देखकर शोक आता है, यह अज्ञानी के-मिथ्यादृष्टि के-पापी के परिणाम पाप हैं ये। पाप

परिणाम को ग्रहे, पापरूप से परिणमे और पापरूप से उपजता है। दुःखरूप से उपजता है, दुःख को ग्रहता है, दुःखरूप से परिणमता है और दुःखरूप से उपजता है। लो, ऐसा है। क्या होगा तब पाप दुःख होगा या सुख होगा? सुमनभाई! यह तो सादी भाषा से बात है। शुभ-अशुभभाव है, देह आदि एक ओर रखो, वह तो जड़ है, वह कहीं तेरे होकर रहे भी नहीं। वे तो उनके होकर रहे हैं और उनके होकर आये हैं। उनके होकर रहे हैं और उनके होकर आये हैं। लक्ष्मी भी लक्ष्मी की होकर रही है और उसकी होकर आयी है। तेरी होकर आयी नहीं और तेरी होकर रही नहीं। अब अन्दर में पुण्य-पाप के भाव भी वास्तव में तो इसके होकर आये नहीं, इसके होकर आवे तो इसके स्वभाव में प्रविष्ट हो जाना चाहिए। समझ में आया?

त्रिकाल भगवान का स्वभाव सत् आनन्दकन्द और शान्ति का स्वभाव ऐसा अविकारी वीतराग विज्ञानघन भगवान आत्मा में पुण्य-पाप के विकल्प जो उठे राग, वह तो दूसरे प्रकार से कहा न! उसमें आया न कि विकल्प का कर्ता, वह उसका कर्म और विकल्प वह उसका कर्म है। कर्ता-कर्म (अधिकार) में। अज्ञानी का दूसरा कोई कर्म नहीं। वह विकल्प उठा है पुण्य-पाप का, वही उसका—अज्ञानी का कार्य है। पर का कार्य तो तीन काल में नहीं। और विकल्पकर्ता, वह मेरा काम, वह उसका कर्ता है। पुण्य-पाप की वृत्ति उठती है विकार की वृत्तियाँ, वह अज्ञानी का (कार्य है)। अज्ञानी उसका कर्ता है। क्योंकि उसे विकल्प से रहित निर्विकल्प दृष्टि का भान नहीं। और विकल्पकर्ता वह करनेवाला विकल्प करे, वह उसका कार्य है। यह शुभ-अशुभ जो राग किया, वह अज्ञानी का कार्य है। इसके अतिरिक्त बाहर की क्रिया वह करता है हिलने की, चलने की, बोलने की या लेने-देने की, हराम तीन काल में नहीं। वह तो जड़ की क्रिया है। समझ में आया? कठिन बातें, भाई! वहाँ सीधी लाईन में है कुछ? धूल में भी नहीं वहाँ अकेला।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ अभी तो मुश्किल-मुश्किल से कभी फिर आये। वहाँ फँसे हैं अन्दर। तुम्हारा बचाव करते हैं थोड़ा-थोड़ा, वकालत करते हैं थोड़ी। लड़के की करते हैं ऐसे तुम्हारी भी करते हैं। कहो, समझ में आया?

कहते हैं,... आहाहा! भारी बात परन्तु गजब बात है! ५२ गाथा का ज्ञान का पूर्ण अधिकार पड़ता है। फिर सुख का अधिकार शुरु होता है। फिर शिष्य ने कहा, परन्तु अब सुख तो ज्ञान में आ जाता है। तो फिर यह सुख का अधिकार नया किसलिए लिया? भाई! ज्ञान के साथ आनन्द होता है, इसके लिए बात करते हैं। सुन न! जब ज्ञान सम्यक् होता है, तब आनन्द भी साथ में होता है। जब मिथ्याज्ञान है तो दुःख साथ ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहा? भगवान आत्मा में ज्ञान और आनन्द त्रिकाली वस्तु पड़ी है। उसका भान नहीं, वहाँ आगे पुण्य और पाप के विकल्प वह उसका कर्म और उसका कर्ता, वह दुःख के कार्य का कर्ता और दुःख उसका कार्य। वह ज्ञान स्वयं दुःखरूप है। आहाहा! वह दुःखरूप ज्ञान है, वह दुःखरूप दशा है। समझ में आया? आहाहा!

सुखरूप दशा और पूर्ण सुखरूप दशा, भगवान आत्मा शुभ और अशुभराग से भिन्न है, वह विकल्परूप हुआ नहीं। विकल्परूप हो तो विकल्प कभी छूटे नहीं। समझ में आया? वह चैतन्यबिम्ब भगवान आत्मा पुण्य-पाप के विकल्परूप नहीं। तब है क्या? ज्ञान और आनन्दरूप है वह। अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्दरूप है। ऐसा जहाँ भान नहीं, उसे तो विकारी परिणाम, वह मेरा प्राप्य, निर्वर्त्य कर्म और उसे दुःखरूप से पकड़ा, दुःख को पकड़ा, दुःख में परिणमा और दुःखरूप से निपजा। पर को पकड़े, पर को परिणमे और पररूप से उपजे, यह बात तो तीन काल में है नहीं। समझ में आया? आहाहा! कठिन बातें, भाई!

क्योंकि वे ज्ञान को ही ग्रहण करते हैं,... कौन? केवली। ऐसे धर्मी भी अपनी निर्मल पर्याय को ही ग्रहता है, निर्मल पर्यायरूप से परिणमता है, निर्मल पर्यायरूप से उपजता है। केवली पूर्ण निर्मल पर्याय को ग्रहते हैं, पूर्ण निर्मल पर्यायरूप से परिणमते हैं, निर्मल पूर्ण पर्यायरूप से उपजते हैं—निपजते हैं। कहो, रतिभाई! **इस प्रकार ज्ञान ही उनका कर्म है...** किसका? केवलज्ञानी का। केवलज्ञानी परमात्मा का जानना, वही उनका कार्य है। जगत के ज्ञेय वे उसमें आ जाते हैं या उनका कार्य है, ऐसा है नहीं। एकदम भिन्न अनन्त पदार्थ केवलज्ञानी ने जाने, परन्तु जानने की पर्याय से अनन्त पदार्थ भिन्न हैं। अनन्त पदार्थ वे उनका कर्म नहीं, उन्हें ग्रहे नहीं। इसी प्रकार अज्ञानी ने भी

अनन्त पदार्थ पर हैं, उन्हें ग्रहे नहीं, परन्तु मेरे हैं—ऐसी मान्यता को पकड़ा है, उस अज्ञान को उसने ग्रहण किया है। समझ में आया? ऐई! नेमिदासभाई! आहाहा! गजब!

जगत में क्या करता हूँ और क्या होता है, इसकी खबर नहीं होती। दुःखी हूँ, दुःख को परिणमता हूँ और दुःख को ग्रहण करता हूँ और दुःखरूप से उपजता हूँ, उसकी खबर नहीं होती और माने कि मैं सुखी हूँ। भ्रम है, भगवान को भूलकर मिथ्यात्व का (भ्रम है)। समझ में आया? हम अभी पैसे-टके से, कीर्ति से सुखी हैं। मूढ़ है? मूर्ख है? मूर्ख का मूर्ख है। बड़ा बादशाह मुनि हो, साधु होकर बैठा हो। परन्तु जिसके परिणाम विकल्प उठे हैं शुभ-अशुभ, उसमें अपनापन मानता है और उनसे मुझे लाभ (है, ऐसा) मानता है, वह मूढ़ में मूढ़ दुःख की दशारूप से उपजता है। भले बाहर से त्यागी स्त्री-पुत्ररहित दिखाई दे। समझ में आया? अन्दर में पुण्य के एक विकल्प दया, दान, व्रत की वृत्ति उठी है, उसे अपनेरूप से मानता है, वह भी तीन काल-तीन लोक के पदार्थ मेरे हैं, ऐसा माने, ऐसे मिथ्यात्वरूप से परिणमता है। समझ में आया? कहो, प्रवीणभाई! बहुत सूक्ष्म परन्तु। यह नूतन वर्ष का दिन ऐसा होगा? नूतन वर्ष का अच्छा माँगता होगा या बड़ा माँगता होगा या खोटा माँगता होगा?

मुमुक्षु : अच्छे में अच्छा माँगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : अच्छे में अच्छा माँगे? तो अच्छे में अच्छा यह है। आहाहा! है?

इस प्रकार ज्ञान ही उनका कर्म और ज्ञप्ति ही उनकी क्रिया है। गजब बात! क्या कहते हैं? कि केवलज्ञानी की क्रिया क्या? बोलना, चलना, उपदेश देना, वह उनकी क्रिया है? वह तो जड़ की क्रिया है, वह भगवान की क्रिया नहीं। भगवान की क्रिया जाननेरूप परिणमना, वह ज्ञप्ति जानने की क्रिया है। समझ में आया? है? **इस प्रकार ज्ञान ही उनका कर्म है...** अर्थात् कार्य है। **और ज्ञप्ति ही उनकी क्रिया है।** अब अज्ञानी को भी लेते हैं कि वह पाप के परिणाम और पुण्य के परिणाम 'मेरे' मानता है, उसे वह पाप परिणाम ही उसका कर्म है और वह पाप परिणाम ही उसकी अज्ञप्ति अर्थात् नहीं जानने की क्रिया है। स्वरूप को नहीं जानने की क्रिया है। क्रिया है रागरूप होने की, पुण्यरूप होने की, बदलकर होने की, वह अज्ञानी की क्रिया है, दुःख की क्रिया है। यह क्रिया-क्रिया लोग कहते हैं या नहीं? ऐई! धीरुभाई! क्रिया उड़ाता है सोनगढ़, और

ऐसा कहते हैं सब। अब सुन न! तुझे क्या खबर पड़े कि क्रिया उड़ाते हैं? तुझे तो उसकी खबर नहीं।

आत्मा में शुद्धता का पिण्ड प्रभु है, उसकी जिसे खबर नहीं, वह पुण्य-पाप के परिणामरूप से पलटा मारता है, वह अज्ञान उसकी क्रिया है, वह दुःख की क्रिया उसके पास है। धर्मी को ज्ञानानन्दस्वरूप शुद्ध हूँ, ऐसा जो परिणमना, पहली अवस्था से दूसरी रूप से अवस्था होना, वह ज्ञानी की ज्ञप्ति—जानने की क्रिया है। केवली की? पहले केवली की अवस्था जैसे दूसरे रूप से परिणमे ज्ञप्ति, वह उनकी क्रिया है। पर की क्रिया है और पर को बोलते हैं, भगवान बोलते हैं, भगवान उपदेश देते हैं, वह भगवान में है नहीं। कठिन बात, भाई! कहो, समझ में आया इसमें?

इस प्रकार ज्ञान ही उनका कर्म और ज्ञप्ति... अर्थात् जानने की क्रिया, वह **उनकी क्रिया है।** आहाहा! भगवान तो छह-छह घड़ी तक बोले, भाषण दे, समवसरण में बैठे। नहीं। वह तो जड़ की क्रिया है, वह भगवान की क्रिया है ही नहीं। वह तो ज्ञान में, ज्ञेय क्रिया हो, उसे जानते हैं वे तो। वह ज्ञेय की क्रिया ज्ञान में नहीं आयी। उस सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ आया है। उस सम्बन्धी की ज्ञान की क्रिया केवली की है। समझ में आया? भाई! सूक्ष्म पड़े परन्तु यह जानना ही पड़ेगा। वरना चौरासी के चक्कर में से यह नहीं निकलेगा। दुःखी... दुःखी... दुःखी... दु.खी... इसके दुःख यह वेदता है, इसकी इसे खबर नहीं। भगवान उसे देखते हैं, ज्ञानी उसे जानते हैं (कि) प्राणी दुःखी हैं। समझ में आया? अपने चैतन्य के आनन्दनिधान को न देखकर अन्तर्मुख आत्मा की श्रद्धा, ज्ञान, शोभा में विषय क्या है, ऐसा उसे नहीं मानते, अकेले पुण्य और पाप बाह्य वस्तु को मानते हैं, वे दुःखी हैं, दुःखी हैं। निर्धन दुःखी, सधन दुःखी, साधु हुआ बाहर में, परन्तु राग और पुण्य की क्रिया मेरी माननेवाला, वह मिथ्यादृष्टि दुःखी है। समझ में आया? मलूकचन्दभाई! पैसेवाले को कितने को सुखी कहना? कितने पैसे हों तो सुखी कहना? अंक होगा कुछ? निर्धन किसे कहना? आहाहा!

भगवान आत्मा केवलज्ञान की लक्ष्मी से भरपूर भण्डार है प्रभु! उसका जिसे आदर नहीं और पुण्य-पाप के विकल्प का आदर है, वह निर्धन प्राणी दुःखी है। ऐई! रतिभाई! सब व्याख्या अलग प्रकार की है यह। यह निर्धन प्राणी दुःखी है। और जंगल

में अकेला एकदम काला जैसा शरीर, धूप-गर्मी सिर पर पड़ी हो। पर्वत की टोंच पर जिसे ऐसे सूर्य की किरणें सिर पर छूती हो, पसीना बहता जाता हो, धूल उड़कर चिपकती हो। अन्तर में... अरे! गृहस्थाश्रम में रहा हुआ, छियानवें हजार रानियों के मध्य में। जिसने राग और पर से भिन्न आत्मा का अन्तर ज्ञान किया है, उस क्षण में वह जीव सुखी है। वह राग के कारण से नहीं, स्त्री के कारण से नहीं। वह स्त्री और उस सम्बन्धी के राग से भिन्न पड़े हुए ज्ञान और दर्शन के आनन्द के कारण सुखी है। समझ में आया? आहाहा! कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? यह नूतन वर्ष के दिन आये, उसका आता है यह।

मुमुक्षु : यह लोकोत्तर व्याख्या है।

पूज्य गुरुदेवश्री : लौकिक व्याख्या है दुःखी होने की, ऐसा कहते हैं। ऐसा क्या कहते हैं यह? वे लोग उसे सुखी कहते हैं, यह लोकव्याख्या है, ऐसा कहते हैं वे। अन्दर गर्भित में रखी हुई बात। लोग उसे सुखी कहते हैं, वह लौकिक व्याख्या है अर्थात् मूर्खाई की व्याख्या है वह। देवानुप्रिया! यह प्रश्ननारद है। प्रश्ननारद अर्थात् एक प्रश्न में दूसरा रखे अन्दर इकट्ठा। वह लौकिक व्याख्या है, ऐसा। पैसेवाले सुखी, रूपवान सुखी, स्त्रीवाले सुखे, धूल भी नहीं। लौकिक व्याख्या अर्थात् पापी के पाप परिणामवाले की व्याख्या है। कहो।

यह धर्मी के धर्म के परिणाम की व्याख्या। अहो! जहाँ मैं हूँ, वहाँ तो आनन्द है। जहाँ मैं हूँ, वहाँ तो अकेला ज्ञान का भण्डार है। जहाँ मैं हूँ, वहाँ तो पुण्य और पाप और शरीर नहीं। इस प्रकार से मैं नहीं और वे मेरे हुए नहीं और मैं उनका हुआ नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह छियानवे हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा, कहते हैं कि मैं वहाँ नहीं। मैं जहाँ हूँ, वहाँ राग नहीं; मैं जहाँ हूँ, वहाँ स्त्री नहीं; मैं जहाँ हूँ, वहाँ राग नहीं। मैं जहाँ हूँ, वहाँ ज्ञान और आनन्द है। ऐसी दृष्टिवन्त धर्मी वह गृहस्थाश्रम में स्त्री के निकट बैठा, परन्तु वह सुखी अपनी दशा के कारण से है, उसके कारण से नहीं। समझ में आया? और अज्ञानी अनुकूलता के ढ़ेर में पड़ा है, स्त्री अनुकूल, सब अनुकूल। ऐसे मक्खी उड़े तो खाने बैठा हो तो पंखा लेकर बैठी हो ऐसे हिलाने को। मक्खी न पड़े और यह न पड़े। आहाहा! दो-पाँच-दस करोड़ की पूँजी, रूपवान शरीर,

लड्डू खाता हो और अरबी के (भुजिया) खाता हो। खाता नहीं, मात्र उस ओर का उसे विकल्प उठा है। क्रिया जड़ की है। विकल्प उठा है कि मैं खाता हूँ और मुझे ठीक है, यह विकल्प दु:ख की दशारूप परिणम रहा है। वह दु:खी है वहाँ। वह दु:खी है। रतिभाई! अरर! ऐ, धीरुभाई! परन्तु यह तो बैठे ऐसा है न, भाई! यह तो न्याय से बात चलती है न। न समझ में आये ऐसी बात नहीं। फिर अन्दर रुचे, न रुचे, वह अलग बात है। परन्तु क्या कहना चाहते हैं, यह तो ख्याल में आ सकता है या नहीं? समझ में आया? उसे वह अन्दर रुचे और परिणमे, वह और अलग चीज़ है। यह बात ऐसी है और ऐसी नहीं, ऐसी बात इसके ख्याल में आवे या नहीं? आहाहा! यह कहीं जड़ है? चैतन्य है। और क्षयोपशमज्ञान का उघाड़ लेकर तो आया है इतना। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा की **ज्ञान ही उनका कर्म और ज्ञप्ति ही उनकी क्रिया है।** ऐसे अज्ञानी का पुण्य-पाप ही उसका काम है और पुण्य-पाप का पलटना वह उसकी क्रिया है। धर्मी का, शुद्ध चिदानन्दस्वरूप की श्रद्धा, ज्ञान और शान्ति, वह उसका कर्म है और उसरूप से परिणमना, वह उसकी क्रिया है। यह बाहर की क्रिया ज्ञानी की है ही नहीं। आहाहा! अज्ञानी कर सकता नहीं तो फिर ज्ञानी कहाँ से लाया? कठिन बात, भाई! यह २५वें वर्ष का प्रभातिया है यह। आहाहा!

ऐसा होने से... देखो! **ऐसा होने से केवली भगवान के बन्ध नहीं होता,...** परमेश्वर केवलज्ञानी एक समय में तीन काल-तीन लोक को जानने की क्रियावाला, जानने के कार्यवाला है, इसलिए उसे राग और मोह नहीं, इसलिए उसे बन्धन नहीं होता। अबन्धस्वरूपी मोक्ष पर्याय है उसकी। **केवली भगवान के बन्ध नहीं होता, क्योंकि ज्ञप्तिक्रिया बन्ध का कारण नहीं है...** क्या कहते हैं? जानना... जानना... जानना... जानना... वह क्रिया कहीं बन्ध का कारण नहीं। इससे यहाँ नीचे भी ज्ञानस्वरूप जाने... जाने... जाने... पर को जाने, स्व को जाने, वह जानना बन्ध का कारण नहीं। जानने के उपरान्त 'यह मेरा और मुझे यह'—ऐसी मान्यता, वह मिथ्यात्व और बन्ध का कारण है। नेमिदासभाई! जानना बन्ध का कारण नहीं, तथा वह ज्ञेय क्रियाएँ हैं, वह कहीं बन्ध का कारण नहीं। समझ में आया? तथा कर्म के उदय से बोलने, चलने की क्रिया हो, वह बन्ध का कारण नहीं। मात्र बन्धन का कारण जानना... जानना, तदुपरान्त

आगे बढ़कर 'यह मेरा, यह राग मेरा, यह पुण्य मेरा, यह मैंने पुण्य किया, मैंने पाप किया, यह क्रिया मेरी'—ऐसी जो मान्यता, ऐसा जो विकारी भाव, वह बन्ध का कारण है। समझ में आया? है?

क्योंकि ज्ञप्तिक्रिया बन्ध का कारण नहीं है किन्तु ज्ञेयार्थपरिणमन... ज्ञेयार्थपरिणमनक्रिया। अर्थात् क्या? कि जो जाननेयोग्य पदार्थ हैं ज्ञेय, उन पदार्थों के सन्मुख वृत्ति होना, उनके ओर की वृत्ति विकल्प उठना। उनका जानना होना, ऐसा नहीं। जानना होना, वह तो ज्ञान का स्वभाव है और ज्ञात होना वह तो उसका (ज्ञेय का) स्वभाव है। परन्तु उसे जानते हुए यह ठीक-अठीक ऐसी वृत्ति उठना, यह मेरे, यह तेरे—(ऐसे) भाग करना, ऐसी जो ज्ञेयपदार्थों के सन्मुख वृत्ति होना। समझ में आया?

दृष्टान्त दिया नहीं था कल? एक गली में सौ घर हों। अब वह तो आत्मा जानता है कि यह सौ घर हैं। बस, वे ज्ञेय हैं और यह जानता है। परन्तु जहाँ इसे वह इसका घर आया और ऐसा लगे, यह मेरा। इसमें मेरा कहाँ से आया? वह तो सब ज्ञेयरूप से है और तू ज्ञानरूप से है। तेरा जानना और उसका ज्ञात होना इन दो के बीच तीसरा कहाँ से आया यह? यह मेरा आया कहाँ से? 'यह मेरा' जो विकल्प उठा है, वह मिथ्यात्वभाव है, वह बन्ध का कारण और दुःख का कारण है। समझ में आया?

एक गाय बेची हो न। दो वर्ष बाद गाय मिले। यह यह गाय मेरी बेची हुई यह मेरी गाय। होता है न बहुतों को? वह ... यह बहुत करता हो। बेची हुई बहुत हो उसने रबारी में गाय। यह मैंने गाय दी। परन्तु कहाँ से आयी तेरी यह? गजब भाई! इसी प्रकार जगत के पदार्थ शरीर, लक्ष्मी, इज्जत, कीर्ति आवे और जाये उसके कारण से ऐसे। वहाँ बीच में चिपके (कि) यह गहना मेरा, यह कपड़ा मेरा, यह मकान मेरा, यह कीर्ति मेरी। वे ज्ञात होनेयोग्य, यह जानने का स्वभाव आत्मा का और ज्ञात होने का उनका। बीच में डाले कि 'यह मेरा'—ऐसा मिथ्यात्वभाव बन्धन और संसार—भटकने का कारण है। ज्ञानी को वह भाव होता नहीं। केवली को तो होता ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : योगफल आया।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाई कहते हैं योगफल पूरे वर्ष का आया। पूरे वर्ष का योगफल डाला। तुमने अभी तक क्या किया? ऐसा कहते हैं यह। आहाहा! वर्ष का योगफल लिखते हैं या नहीं? ऐई! जयन्तीभाई! यह योगफल।

भगवान! तू तो आनन्द और ज्ञानमूर्ति है न! तूने अभी तक राग और पुण्य को मेरा माना, उसके योगफल में तुझे मिथ्यात्व का परिणाम यह योगफल... समझ में आया? यह योगफल तेरे योगफल में है, तेरे योगफल में यह योगफल है। आहाहा! धर्मी के योगफल में, अरे! मैं तो राग नहीं, पुण्य नहीं, मेरी चीज़ जो ज्ञानस्वरूप आनन्द है। मेरे आनन्द की अपार शक्ति है। मैं अन्तर में आनन्द जिसका स्वभाव है, जिसका स्वरूप है, उसे माप क्या? बेहद अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति हूँ। समझ में आया? ऐसे अतीन्द्रिय आनन्दरूप से अपने को मानता, उसे अतीन्द्रिय आनन्द की मान्यता होने से, अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय हो, वह उसके योगफल का परिणाम है। वह सुखदशा है, वह पर्याय की प्राप्ति उसकी सुखदशा है। वह उसका योगफल है। उसे किसी के पास देखने जाना नहीं पड़ता। मैंने धर्म किया या नहीं? किसी के पास देखने जाना नहीं पड़ता, ऐसा कहते हैं।

वस्तु भगवान शुद्ध चिदानन्द की मूर्ति है, परमेश्वर तीर्थंकर केवली ने देखा, वह आत्मा। उसे पर्याय में प्राप्त किया, यहाँ पर्याय में प्रतीति में आया। समझ में आया? पूर्णानन्द का नाथ ज्ञानानन्दस्वरूप हूँ। यह ध्रुव बिम्ब चिदानन्दस्वरूप, ऐसी श्रद्धा और ज्ञान होने पर, उस ज्ञानी के ज्ञान और श्रद्धा के परिणाम, बस, वे सुख के परिणाम, वह उसका योगफल। वे सुखी हैं। वह अविवाहित सुखी है, बांझ सुखी है। जंगल में पड़ा, शरीर में रोग का पार न हो, वह सुखी है। ऐई! यह किस प्रकार के दृष्टान्त होंगे यह? मलूकचन्दभाई! ऐई! हिम्मतभाई! भाई! अब यह सब पण्डित हैं हमारे। यह बड़े पण्डित के भाई हैं। बड़े लड़कों के पिता हैं लो न! मान्यता ऊपर है। बाहर की कहाँ वस्तु है धूल में? आहाहा! समझ में आया? बहुत समझने जैसी बात है, जानने जैसी बात है और जानकर क्या करना—उसका कर्तव्य क्या है, वह भी साथ में आता है। आहाहा!

अरे! इसकी इसे दया नहीं। इसकी इसे दया नहीं। अरे! मैं कहाँ दुःखी होऊँगा?

मैं यहाँ से छूटकर... अनन्त काल... अनन्त काल... आहाहा! यह तो एक २५-५०-६०-७०-८० (वर्ष)। यहाँ से जाकर अनन्त काल। मैं वस्तु हूँ, वह वस्तु कहीं नाश हो, ऐसी नहीं। वह तो अनन्त काल रहेगी। तो अनन्त काल कहाँ रहेगी? किस प्रकार से रहेगी? कैसे भाव में रहेगी? किस क्षेत्र में रहेगी? किस संयोग में रहेगी? है विचार इसे कभी? समझ में आया?

जिसने, अपना सच्चिदानन्दस्वभाव शुद्ध अन्तर्मुख प्रभु विराजता है, उसका आदर न करके एक शुभविकल्प का भी आदर किया है, उसने आत्मा की पूर्णता का जीवन का उसने खून किया है। ऐसा मैं नहीं, मैं ऐसा। ऐसा मैं नहीं, मैं ऐसा। आहाहा! अपने जीवन का जीवत्व उसने गला दिया, जला दिया है। आहाहा! समझ में आया? न्याय से समझ में आता है या नहीं? लॉजिक से, न्याय से वस्तु तो कहनेयोग्य है, वह कही जाती है। न समझ में आये ऐसा होगा? आत्मा है, बापू! वह दुःखी है, इसका भी इसे ख्याल नहीं, ऐसा न समझ में आये तो सुख का पंथ कब लेगा यह? आहाहा! वर्ष चले गये ४०-४०, ५०-५०-, ६०-६०, ७०-७० जाते हैं। कितनों को ५०-६० गये, वे ५० आनेवाले हैं? ५० रहनेवाले हैं? आहाहा! किस क्षण में पत्ता गिर जायेगा? पक्का पान खिरकर कहाँ पड़ेगा? ऐसे शरीर की स्थिति पूरी होकर कब छूट जायेगी। उसमें यह आत्मा क्या है, उसका ज्ञान-श्रद्धा आदि नहीं की, भटकने का कहीं अन्त नहीं आये। समझ में आया?

और यह अन्दर का पक्ष किया, मैं तो शुद्ध आनन्दघन ज्ञायक हूँ। रागादि विकल्प भी मेरे नहीं, शरीर मेरा नहीं, स्त्री, कुटुम्ब, कीर्ति मेरी तीन काल में मुझमें नहीं, इसलिए मेरी नहीं। मुझमें तो आनन्द और ज्ञान शुद्ध चिदानन्दस्वरूप है। ऐसी जिसने श्रद्धा की पकड़ और अनुभव किया, (वह) छूटा। भविष्य में वह केवलज्ञान पानेवाला है। कहाँ जायेगा और क्या होगा? कि केवलज्ञान पायेगा और सिद्ध होगा। समझ में आया? और राग और पुण्य के, पाप के विकल्प को मेरे माननेवाला कहाँ जायेगा? उसे क्या होगा? वह दुःख में है और दुःख की अधिक दशा होगी, वहाँ जायेगा। कहो, समझ में आया या नहीं इसमें? ऐई! जगुभाई! यह तो सब सूख जाये ऐसा है अन्दर से अभिमान इसका।

भाई! तू कौन है? नाथ! तेरी चीज़ में क्या है, इसकी तुझे खबर नहीं, तेरे घर की खबर नहीं और बाहर घर में व्यभिचारी होकर किसी की चीज़ को अपनी मानकर परिभ्रमण करता है और तेरी चीज़ को भूल जाता है। इस भूल का परिणाम ही तूने चार गति में भोगा है। उस भूल का परिणाम ही इसने चार गति में भोगा है। उस भूल को समझकर भूल छोड़ दे और आत्मा में दृष्टि कर, इसके लिये यह बात कही जाती है। आहाहा! भाई! तेरी शरण का उपाय तो आत्मा क्या है? उसे देखना, मानना और अनुभव करना। आहाहा! समझ में आया?

ज्ञेय पदार्थों के सन्मुख वृत्ति होना... अर्थात् क्या? कि **(-ज्ञेय पदार्थों के प्रति परिणमित होना)...** अर्थात् क्या? यहाँ तो ज्ञेय पदार्थरूप से परिणमना। परन्तु इसका अर्थ यह है कि रागादि, पुण्यादि ज्ञेय हैं, उसरूप परिणमे। यह तो उसे है नहीं। सर्वज्ञ भगवान को राग नहीं, इसलिए रागरूप नहीं होते, पररूप परिणमते नहीं। ज्ञेय तो सब भिन्न रह गये। जानने की क्रिया अकेली रह गयी है। इसलिए उसे परसन्मुख की वृत्ति उत्पन्न नहीं होती। जो पर है, उस सम्बन्धी का, अपने सम्बन्धी का ज्ञान है। वह ज्ञान तो स्वलक्ष्य की चीज़ है, वह बन्ध का कारण नहीं। '**वह बन्ध का कारण है।**' क्या कहा? ज्ञेय—ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ के प्रति की वृत्ति उत्पन्न हो, यह ठीक, यह अठीक, यह मेरी, यह तेरी—ऐसी वृत्ति उत्पन्न हो, वह बन्धन, वह दुःख का रास्ता, दुःख के बन्धन के कारण हैं। केवली को है नहीं। कहो, जयसुखभाई! न्याय से समझ में आता है या नहीं? यह वस्तु है, हों! समझनी पड़ेगी, हों! ऐसे आयुष्य चले जाते हैं। आहाहा! समय-समय करते अनन्त काल बीता, परन्तु इसने आत्मा का काम नहीं किया और पर के विकारी परिणाम करके अपना उत्साह उसे सौंप दिया। समझ में आया?

★ ★ ★

कलश - ४

(अब पूर्वोक्त आशय को काव्य द्वारा कहकर, केवलज्ञानी आत्मा की महिमा बताकर, यह ज्ञान-अधिकार पूर्ण किया जाता है।) ऊपर श्लोक।

(स्त्रग्धरा)

जानन्नप्येष विश्वं युगपदपि भवद्भाविभूतं समस्तं।
मोहाभावाद्यदात्मा परिणमति परं नैव निर्लूनकर्मा॥
तेनास्ते मुक्त एव प्रसभविकसितज्ञप्तिविस्तारपीत-
ज्ञेयाकारां त्रिलोकीं पृथगपृथगथ द्योतयन् ज्ञानमूर्तिः ॥४॥
— इति ज्ञानाधिकारः ॥

पृथक्-अपृथक्। सभी वस्तुओं को पृथक्-पृथक् प्रकाशित करता हुआ अर्थात् प्रत्येक वस्तु पृथक्-पृथक् उसे जानता है और अपृथक् सामान्य है, उसे भी जानता है।

अर्थ :- जिसने कर्मों को छेद डाला है... यह भगवान केवलज्ञानी की पर्याय की महिमा है। ऐसा ही यह आत्मा केवलज्ञान को प्रगट करे, ऐसा ही यह आत्मा है। उसमें कुछ अन्तर नहीं। राग को और पुण्य को उत्पन्न करे, वह कहीं आत्मा कहलाये? बाहर को उत्पन्न तो तीन काल में नहीं करता। लोग ऐसा कहते हैं न, हमने बाहुबल से पैसे इकट्ठे किये। पिता के पास नहीं थे और मैंने इकट्ठे किये। विवाह किया और पहट्या ऐसी अपनी भाषा है काठियावाड़ में। ऐई! फूलचन्दभाई! तुम्हारे पिता तो छोड़ गये थे। परन्तु किसी का ऐसा भी होता है। फिर बड़े हुए और सब किया। देखो, यह सब हमने... बावळ क्या कहलाता है यह? बाहुबल से विवाह किया, बाहुबल से पहट्या। पहट्या अर्थात् यह मौज मनाया, ऐसा। मूर्खों की भाषा भी भारी भाई! बाहुबल से विवाह किया, बाहुबल से पहट्या और बाहुबल से बढ़े हैं, बापू! धूल में भी बढ़े नहीं, सुन न अब। ऐई! रतिभाई! नहीं कहते अपने? कहते हैं न विवाह किया, पहट्या। यह पहट्या अर्थात् क्या? यह क्या कहा? सब भोगा। पिता के पास कुछ नहीं था, लो। तेरे पास नहीं था। यह सब तेरे पास नहीं था और उनके पास नहीं था। आहाहा! तेरे पास जो लक्ष्मी है, ऐसी तेरे पिता के पास थी आत्मा के पास और उसके पिता के पास थी,

वह तेरे पास है, ले न! आहाहा! उसकी तो खबर नहीं होती। अनन्त केवलज्ञान का धनी वह भिखारी होकर फिरता है। एक विकल्प आया, वहाँ प्रसन्न... प्रसन्न... पुण्य का परिणाम हो तो... आहाहा! क्या हुआ तुझे यह? कहते हैं, ऐसा भगवान केवलज्ञान पाने पर कर्मों को छेद डाला। वस्तु का भान होकर केवलज्ञान पाये।

भूत, वर्तमान और भविष्य समस्त विश्व को एक ही साथ जानता हुआ... लो! एक समय में भगवान जाने सब। तीन काल-तीन लोक को जानने पर भी **मोह के अभाव के कारण पररूप परिणमित नहीं होता,...** रागरूप से या परपदार्थरूप से होता नहीं। **इसलिए अब, जिसके समस्त ज्ञेयाकारों को अत्यन्त विकसित ज्ञप्ति के विस्तार से...** वह जानने की क्रिया का इतना विस्तार हुआ कि लोकालोक ज्ञान उसमें सब आ गया। ओहोहो! **समस्त ज्ञेयाकारों को अत्यन्त विकसित ज्ञप्ति के विस्तार से स्वयं पी गया है...** लोकालोक जगत का पदार्थ, उसका ज्ञान पी गया अन्दर। सब ज्ञान। इतनी उसकी—आत्मा की शक्ति है। एक समय में लोकालोक पी गया।

ऐसे तीनों लोक के पदार्थों को पृथक् और अपृथक् प्रकाशित करता हुआ वह ज्ञानमूर्ति मुक्त ही रहता है। लो! ज्ञान प्रत्येक को पर्याय पर्याय भिन्न-भिन्न जानता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इस समय की यह पर्याय, इस समय का यह दोष, इस समय का यह गुण, इस समय में यह मुक्ति और अपृथक् सब एकरूप सामान्य, उन सबको जानकर मुक्त रहता है। लो, ऐसा परमात्मा। यह क्या कहा यह? कि आत्मा का स्वरूप जो शुद्ध चिदानन्द पूर्णानन्द है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान और सम्यग्दर्शन—ज्ञान प्राप्त करके फिर शुद्ध उपयोग की रमणता साम्यभाव चारित्र प्रगट करके उसके फलरूप से ऐसा केवलज्ञान प्राप्त होता है। यह उसके फल की महिमा की है। समझ में आया? भगवान आत्मा ऐसी अनन्त केवलज्ञान की लक्ष्मी का भण्डार है। ऐसे पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, उसकी अन्तर अनुभव की प्रतीति करके, उसका ज्ञान करके, पश्चात् उसमें स्वरूप की रमणतारूप चारित्र शुद्ध उपयोग करके उसके फलरूप से ऐसी दशा प्राप्त होती है। ऐसे उसके फल की इस प्रकार से प्रशंसा की है। शुद्ध उपयोग के फलरूप से बतलाने के लिये।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल २, बुधवार, दिनांक २३-१०-१९६८
गाथा - ५३, प्रवचन - ४४

प्रवचनसार। ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। ५३ गाथा, मूल श्लोक।

अत्थि अमुत्तं मुत्तं अदिंदियं इंदियं च अत्थेसु।
णाणं च सहा सोक्खं जं तेसु परं च तं णेयं॥५३॥

नीचे इसका हरिगीत है।

ज्ञेयों का है ज्ञान अतीन्द्रिय-इन्द्रिय अथवा मूर्त-अमूर्त।
इसी भाँति है सुख भी द्वयविध, इनमें उत्तम सुख ही ग्राह्य॥५३॥

टीका...

मुमुक्षु : उपोद्घात।

पूज्य गुरुदेवश्री : उपोद्घात वाँचन हो गया है।

अब, ज्ञान से अभिन्न सुख का स्वरूप विस्तारपूर्वक वर्णन करते हुए ज्ञान और सुख की हेयोपादेयता का विचार करते हैं:— लो! कौन ज्ञान और सुख आदरणीय है तथा कौन सा ज्ञान और सुख छोड़नेयोग्य है, उसकी बात इस गाथा में कहते हैं। यह आ जायेगा इसमें।

टीका है न, टीका। **यहाँ, (ज्ञान तथा सुख दो प्रकार का है—)...** ध्यान रखना। **एक ज्ञान तथा सुख मूर्त और इन्द्रियज है...** क्या कहते हैं? जो यह पाँच इन्द्रियाँ हैं, उनसे होनेवाला ज्ञान... यह (इन्द्रियाँ) निमित्त हैं, ज्ञान होता है स्वयं की पर्याय में, परन्तु उनसे होनेवाला ज्ञान और इन्द्रिय के निमित्त से होता कल्पना का सुख। यह विषयों में, पैसे में सुख—ऐसा इन्द्रियों से होनेवाला सुख, वे दोनों दुःखरूप दशा है। इन्द्रिय से होता ज्ञान,... पुण्य-पाप के भाव तो दुःखरूप हैं, तदुपरान्त यह बात डालते हैं अब। समझ में आया?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की मूर्ति आत्मा है। उसे जो कुछ पुण्य और पाप के विकल्प होते हैं, वे दु:खरूप हैं, हेय हैं, उनमें एक भी आदरणीय नहीं। समझ में आया? परन्तु तदुपरान्त यहाँ यह पाँच इन्द्रियाँ... वस्तु स्वयं चैतन्यबिम्ब आत्मा है और अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द है, उसे... यह पाँच इन्द्रियाँ जो हैं, उनके निमित्त से होनेवाला ज्ञान, वह मूर्त है, दु:खरूप है, हेय है, आदरणीय नहीं।

मुमुक्षु : उस ज्ञान से पैसा कमाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी पैसा नहीं कमाते। कौन कमाता है? न्यालभाई! पैसा इन्द्रिय से कमाया है? इन्द्रियज्ञान से पैसे मिलते हैं?

ऐसा कहते हैं कि भगवान आत्मा, देखो! यह नौ तत्त्व के अन्दर के पुण्य-पाप के विकल्प तो हेय हैं, दु:ख है। समझ में आया? धर्मी को राग की मन्दता का शुभभाव आवे सही, परन्तु वह मेरा कर्तव्य है, ऐसा न जाने। उस शुभभाव का होनेवाला ज्ञान अपने लक्ष्य से, उस ज्ञान को अपना स्वरूप जाने।

धर्मी जीव को अपना चैतन्य ज्ञानानन्दस्वरूप है, ऐसा अन्तर में भान होने से, धर्मी को शुभभाव हुए, उस शुभ का ज्ञान, वह आत्मा का ज्ञान है। उस शुभभाव का ज्ञान, वह स्व के लक्ष्य से होता है, इसलिए उस शुभभाव का ज्ञान, वह आत्मा का ज्ञान है। वह शुभभाव आत्मा का नहीं। समझ में आया? उस शुभभाव (को) भी अपना माने और अपना कर्तव्य माने तो वह पापदृष्टि, अधर्मदृष्टि, मिथ्यादृष्टि है। ऐई! बात तो यह है। और धीरे से कहो तो यह है और जोर से कहो तो यह है और मीठे शब्द से कहो तो यह है। इसे खबर नहीं।

भगवान आत्मा...! यहाँ तो कौन सा सुख और ज्ञान हेय है तथा कौन सा सुख और ज्ञान आदरणीय है? भगवान आत्मा वह तो ज्ञानप्रकाश की चैतन्य की मूर्ति है। अतीन्द्रिय आनन्द का... अविनाभावी कहा न? जहाँ ज्ञान है, वहाँ आनन्द है आत्मा में। ऐसे ज्ञान और आनन्द के स्वभाव को भूलकर, यह इन्द्रियाँ पाँच हैं... यह श्रवण होकर जो ज्ञान होता है, वह इन्द्रिय ज्ञान है, वह मूर्तज्ञान है, वह दु:खरूप है, वह हेय है।

मुमुक्षु : मनुष्य को विचार में रख दे, ऐसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विचारने के लिये तो यह बात है। कहो, समझ में आया? जेठाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पराधीन है। यह मिट्टी जड़ है और ज्ञान अपना है और निमित्त के लक्ष्य से हो, वह इन्द्रियज्ञान है। वह दुःखरूप है, वह मूर्त है। है तो अरूपी, परन्तु मूर्त इन्द्रियों के लक्ष्य से हुआ, इसलिए उसे मूर्त कहा गया है। इन्द्रियज्ञान हेय है, ऐसा यहाँ कहते हैं। धर्मी को इन्द्रियज्ञान हेय है। आहाहा! शरीर, वाणी, मन तो पर है, वे तो पर हैं। पैसा, कीर्ति, वह तो जड़ है, धूल है, पर है। उनका स्वामी आत्मा नहीं, उनका कर्ता-हर्ता नहीं। परन्तु आत्मा में होनेवाले शुभ-अशुभभाव, उनका यदि कर्ता-हर्ता और स्वामी हो तो भी वह दृष्टि में आत्मा का विराधक है। वह मिथ्यादृष्टि है, अज्ञानी है, चाहे तो बाह्य त्याग करके साधु होकर बैठा हो बाह्य व्यवहार, परन्तु अन्तर में उन महाव्रतादि के भाव—अहिंसा, सत्य, अचौर्य के भाव, उन्हें जानता हुआ ज्ञान स्वभाव को छोड़कर (हो), तो वह ज्ञान भी दुःखरूप है और वह भाव भी दुःखरूप है। यह वस्तु वीतराग के घर की है। समझ में आया?

क्या कहा? **यहाँ, (ज्ञान तथा सुख दो प्रकार का है—)...** है टीका कोष्ठक में? **एक ज्ञान तथा सुख मूर्त और इन्द्रियज है...** अर्थात् कि पाँच इन्द्रियाँ हैं। नीचे है इन्द्रिय। **इन्द्रियों द्वारा उत्पन्न होनेवाला; ऐन्द्रिय।** यह पाँच जड़, मिट्टी। वस्तु चैतन्य भगवान आत्मा स्वयं ज्ञानमूर्ति है। परन्तु उसकी वर्तमान पर्यायबुद्धि में, पर्याय अर्थात् अंशबुद्धि में रहा, उसे इन्द्रिय से होता ज्ञान और इन्द्रिय से होता सुख। समझ में आया? यह पैसा और कीर्ति और धूल, मकान और मोटर और उसमें बैठा, उसे ठीक लगता है, ऐसा जो सुख, वह दुःख है, वह मूर्त है, वह हेय है। आत्मार्थी धर्मी को वह आदरणीय नहीं। गजब बात! कहो, चन्दुभाई! इन्द्रियज्ञान छोड़ने योग्य? पुण्य तो छोड़नेयोग्य सही। गजब बात, भाई! कहो, मनसुख! समझ में आया या नहीं?

इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख मूर्त और ऐन्द्रिय है। क्या कहा? आत्मा तो चैतन्यगोला है अन्दर। चैतन्यगोला, चैतन्यमूर्ति। और भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दकन्द है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने आत्मा को ज्ञान और आनन्दमय देखा है।

ऐसा ज्ञान और आनन्दमय आत्मा, उसे वर्तमान दशा में यह पाँच इन्द्रियों के निमित्त में, ज्ञानपर्याय होती है उसमें, परन्तु निमित्त से होता ज्ञान, वह मूर्त है, निमित्त से होता सुख कल्पना में—मैं सुखी हूँ, अभी मजा है, अभी बादशाही है, ऐसी इन्द्रिय की कल्पना से होता सुख, भगवान कहते हैं कि वह मूर्त है, जड़ है, अचेतन है। आहाहा! भगवानजीभाई! कठिन बात, भाई! आहाहा! समझ में आया? परमेश्वर सर्वज्ञदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव को जो एक समय में तीन काल-तीन लोक का...

ज्ञान अपनी चीज़, वह ज्ञान वर्तमान दशा में—वर्तमान हालत में—वर्तमान पर्याय में इन्द्रिय के निमित्त से हो, वह ज्ञान दुःखरूप है, जड़ है, अचेतन है, मूर्त है। आहाहा! रतिभाई! और यह पाँच इन्द्रियाँ जो मिट्टी, उनके लक्ष्य से ऐसे पैसा, इज्जत-कीर्ति, कल्पना होती है कि अभी हमको ठीक है, ऐसी जो सुख की कल्पना, वह इन्द्रिय के सुख की कल्पना वह जड़ सुख है, अचेतन है, मूर्त है, दुःख है, हेय है। समझ में आया? देखो, ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन में ज्ञान कौन सा? ज्ञान का स्वभाव कौन सा? और दूसरा ज्ञान अब जो कहते हैं वह।

दूसरा (ज्ञान तथा सुख) अमूर्त और अतीन्द्रिय है। वह कौन सा? कि भगवान आत्मा ज्ञान की ज्योति है, उसका ज्ञान में ज्ञान का वेदन होना। समझ में आया? वह ज्ञानस्वरूप है, उसे वर्तमान ज्ञान की अवस्था से उस ज्ञान में एकाकार होकर ज्ञान प्रगट करना, अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट करना, वह ज्ञान। वह ज्ञान अमूर्त है, वह चेतन है, वह चैतन्य का ज्ञान है, अमूर्त है, वह ज्ञान सुखरूप है। क्या कहा इसमें? इसमें तेल-बेल का ज्ञान सब दुःखरूप है, ऐसा कहते हैं। ऐसा आया या नहीं इसमें? अरे... कठिन बात भाई! दस-दस हजार का वेतन हो, बड़ा होशियार हो, प्रोफेसर कहलाता हो। दुःखी है।

मुमुक्षु : कितने प्रतिशत?

पूज्य गुरुदेवश्री : सौ प्रतिशत। न्यालभाई! आहाहा!

भाई! प्रभु स्वयं आत्मा है न! वह आत्मा अतीन्द्रिय सुख से खाली है वह? सुख से तो भरपूर है प्रभु, तुझे खबर नहीं। उसमें आनन्द पड़ा है। आनन्द, वह कैसा आनन्द? शकेन्द्र, जिसे इन्द्राणियाँ करोड़ों और दो सागर का आयुष्य और कहीं उसके धान के पिण्ड नहीं वे। वैक्रियक जिसका शरीर, ऐसे जिसके भोग, उसके भोग में जो विकल्प

है, वह दु:ख और जहर है। उससे भिन्न भगवान आत्मा अन्तर आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, वह आत्मा जो अतीन्द्रियस्वरूप है, उसे सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर के ज्ञान में से ज्ञान प्रगट करे, उसे अतीन्द्रिय ज्ञान कहते हैं, वह ज्ञान सुखरूप कहते हैं और उस अतीन्द्रिय ज्ञान में से एकाग्र होकर सुख प्रगट करे, उसमें सुख, ज्ञान के साथ अविनाभाव है, ऐसा सिद्ध करना है। ज्ञानतत्त्व के साथ आनन्द है, वह धर्मी जीव अन्तर एकाग्र होकर आनन्द की दशा अतीन्द्रिय प्रगट करे, उस आनन्ददशा को सुख कहा जात है और अतीन्द्रिय ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। न्यालभाई! यह पकड़ में आये ऐसा है या नहीं? यह समझ में आये ऐसा है। होशियार व्यक्ति है, परन्तु घुस गये हैं उसमें—घानी में। आहाहा!

गाथा बहुत सरस आयी है। इसका नाम प्रवचनसार है। प्रवचन—प्र अर्थात् उत्कृष्ट के वचन, दिव्यध्वनि। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव समवसरण में बिना इच्छा के वाणी—दिव्यध्वनि खिरी। भगवान के पास खिरती है अभी। महाविदेहक्षेत्र में सीमन्धर परमात्मा विराजते हैं। उन्हें इच्छा बिना ॐ ध्वनि पूरी (खिरती है), उसे दिव्यध्वनि (कहते हैं)। ध्वनि अर्थात् आवाज। दिव्य आवाज। दिव्य आवाज कहो या प्रवचन कहो। प्र—प्रकृष्ट प्रधान ऊँचे वचन, उसका यह सार है इसमें। समझ में आया? भगवान के दिव्यध्वनि के प्रवचन का यह सार है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ऐसा फरमाते थे। समझ में आया? भगवान के पास कुन्दकुन्दाचार्य गये थे। संवत् ४९। आठ दिन वहाँ रहे थे। वहाँ से आकर यह पुस्तक (शास्त्र) बने हैं।

कहते हैं, भाई! एक बार सुन न तू! ऐसा कहते हैं, हों! आहाहा! यह आत्मा, उसकी वर्तमान दशा में ज्ञान और सुख की कल्पना जो होती है, उसमें इन्द्रियाँ जिसमें निमित्त हैं। इन्द्रियज ज्ञान, इन्द्रियज सुख। चाहे तो चक्रवर्ती का राज हो या चाहे तो नारकी के दु:ख हों संयोग, उसकी कल्पना में जो इन्द्रिय से हुआ कि यह मुझे सुख है, और यह मुझे दु:ख है, वह सब कल्पनायें इन्द्रियजन्य दु:ख है, हेय है, जड़ है। उसे चैतन्य नहीं कहते। आहाहा! चैतन्य का भाव तो अतीन्द्रिय ज्ञानमूर्ति है, उसे अतीन्द्रिय ज्ञान का ज्ञान और अतीन्द्रिय ज्ञान का आनन्द, उसे चैतन्य और आत्मा कहते हैं। उसे ज्ञानतत्त्व का स्वरूप कहते हैं। आहाहा! देखो! यह परमेश्वर की वाणी! लोगों को समझने में, सुनने में नहीं मिलती कि क्या मार्ग है और किस प्रकार से आत्मा को

सम्यग्दर्शन और धर्म होता है। खबर नहीं होती। वह खबर बिना चल निकले हैं अपने आप। गिरधरभाई! आहाहा!

कहो, यहाँ तो (अज्ञानी) कहते हैं कि पर की जहाँ दया पाले, उसे धर्म होता है। यहाँ कहते हैं कि पर की दया का भाव है, वह राग है, वह दुःख है। परन्तु पर की दया का जो ज्ञान होता है इन्द्रिय द्वारा, वह दुःख है। आहाहा! भगवान की दिव्यध्वनि कान से सुने कान से और जो इन्द्रिय के निमित्त से वह ज्ञान होता है, वह ज्ञान, ज्ञान नहीं। वह ज्ञान मूर्त और जड़ है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : यह तो भगवान ही ऐसा कहे, दूसरा कोई कहे नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान कहते हैं। ... पामर। दुनिया तो... वीतराग का मार्ग और वीतराग ऐसा फरमाते हैं। अज्ञानी अपनी कल्पना से दूसरा रूप करे और माने (तो वह) स्वतन्त्र है अनादिकाल के भटकने में। समझ में आया? आहाहा! कहाँ ले गये, देखो! ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। देवानुप्रिया! क्या है अब?

मुमुक्षु : सिंह ने दहाड़ मारी....

पूज्य गुरुदेवश्री : बात सच्ची है।

एक बार श्लोक नहीं कहा था? सेठिया थे और कहा था। 'जिस दिशा में सिंह संचरे, वह रज लागी तरणा, वे तरणा खड़े सूखेंगे, उन्हें नहीं चरे हिरना।' सिंह जिस दिशा में जाता है, उसके पैर की रज उड़कर तृण से चिपके, हिरण उस दिशा में जा नहीं सकते, ऐसी उस रज की गन्ध है। समझ में आया? सिंह निकलता हो जहाँ केसरी सिंह ऐसे मलकता चलता हो, उसकी उड़ी हुई रज तृण को चिपटे, उन तृण के पास हिरण नहीं जाते। वे तृण सूखेंगे परन्तु हिरण उन्हें नहीं चरेंगे। उसी प्रकार परमात्मा की दिव्यध्वनि की आवाज, समझ में आया? जहाँ कान में पड़े, अज्ञानी को त्रास हो जाये कि आहाहा! अरर! ऐई! केशुभाई! हिरण उसे नहीं मान सकते।

मुमुक्षु : सातवें नरक के दरवाजे उघड़ जाते हैं। ऐसा कि भगवान के पास केवलज्ञान हुआ ... नहीं माननेवाले हैं न... नहीं मानकर विरोध करके सातवें नरक में जानेवाले हैं न...

पूज्य गुरुदेवश्री : धार रखा है। हाँ... हाँ। बात सच्ची। ऋषभदेव भगवान जब केवलज्ञान पाये, उस समय (पहले) अठारह हजार कोड़ाकोड़ी सागरोपम जुगलिया स्वर्ग नहीं जाते थे। मोक्ष में नहीं, (नरक में) नहीं, परन्तु जहाँ भगवान का ज्ञान हुआ और दिव्यध्वनि खिरी ॐ आवाज, वहाँ नरक में जानेवाले शुरु हो गये, निगोद में जानेवाले शुरु हो गये और मोक्ष में जानेवाले शुरु हो गये। दोनों पट्टा शुरु हो गये। यह ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ऐसा दिव्यध्वनि का—सिंह का नाद सुन एकबार। भगवान आत्मा को यह पाँच इन्द्रियों के लक्ष्य के निमित्त से जो ज्ञान हो, उस ज्ञान को हम जड़ कहते हैं, वह चैतन्य को लूटनेवाला ज्ञान है। आहाहा! ऐई! गिरधरभाई! यहाँ तो जहाँ बाहर की बुद्धि थोड़ी हो तो कहे, आहाहा! हम हो गये होशियार। जड़ है। होशियार किसके? ऐई! चिमनभाई!

मुमुक्षु : .... जड़बुद्धि कहलाये?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखा है, हों! लिखा है? मूर्त लिखा है न। मूर्त अर्थात्? जड़। मूर्त को दूसरी भाषा से स्पष्ट-स्पष्ट करने के लिए जड़ (कहा है)। आहाहा!

यहाँ तो यह तो ठीक लौकिक का ज्ञान, परन्तु शास्त्र का ज्ञान कान से सुने और परलक्ष्यी जो ज्ञान वहाँ हुआ, उसे भी परमात्मा जड़ और मूर्त कहते हैं। वह आत्मा का ज्ञान नहीं और आत्मा को सुखरूप नहीं। आहाहा! ऐई! जेठालालभाई! ऐसी वाणी तो वीतराग की कहीं हो, हों! कहीं हो कहीं। आहाहा! अरे! जैन सम्प्रदाय में जन्मे और जैन परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा क्या कहते हैं, उसकी खबर न हो और जिन्दगियाँ चली जाये। निरर्थक व्यर्थ जाती है। समझ में आया? हरिभाई! गाथा देखो, ऐसी आयी है। बावन कल पूरी हुई चलते-चलते। भाद्र शुक्ल ११ से शुरु किया है यह प्रवचनसार। ओहोहो! प्रभु तुझे क्या कहना है?

हमारे यह कहना है कि जो दूसरा ज्ञान और सुख अर्थात् आत्मा ज्ञान की मूर्ति, उसे अन्तर में इन्द्रिय के ज्ञान से हुए ज्ञान को भूलकर अन्तर के ज्ञान से स्पर्शकर, अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति को—ज्ञान को स्पर्शकर जो ज्ञान आवे, उस ज्ञान को हम अरूपी और चैतन्य का और उसे सुखरूप ज्ञान कहते हैं, वह अतीन्द्रिय ज्ञान है। और वह अमूर्त

तथा अतीन्द्रिय। कौन ? ज्ञान और सुख। और भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द प्रभु है, उसकी अन्तर में दृष्टि देकर जो आनन्द का कण अन्दर से प्रगट करे, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर आत्मा है, उसमें से अतीन्द्रिय आनन्द को खींचकर प्रगट पर्याय में करे, उसे सुख और आनन्द कहते हैं। उसे चैतन्य का सुख और चैतन्य का आनन्द कहते हैं। उसे चैतन्य कहते हैं। बाकी उन (इन्द्रिय) सुख और ज्ञान को जड़ कहा जाता है। आहाहा! गजब परन्तु भगवान। वजुभाई! आहाहा!

देखो! यह परमात्मा मोक्ष पधारे, उससे पहले भगवान ऐसा कहते थे। वीर परमात्मा तो दीपावली को मोक्ष पधारे। भगवान वाणी में ऐसा कहते थे। परमात्मा अभी विराजते हैं, वे भी ऐसा कहते हैं, भाई! भगवान! 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता...' हे नाथ! आपके जानने की पद्धति ऐसी है प्रभु! 'प्रभु तुम जाणग रीति सौ जग देखता, निज सत्ताये शुद्ध सौने पेखता हो लाल।' हे नाथ! आपके केवलज्ञान में हमारा आत्मा कैसा आप देखते हो ? हमारा आत्मा इसका कि अकेला ज्ञान और सुखरूप है। निज सत्ता से शुद्ध है। सत्ता से अर्थात् निज-अस्तित्वरूप से ज्ञान और आनन्दरूप है, ऐसा भगवान आपके ज्ञान में हमारा आत्मा ऐसा देखते हो। वे भगवान इसके आत्मा को ऐसा देखते हैं, ऐसे आत्मा को आत्मा देखे, तब भगवान के ज्ञान का और अपने ज्ञान का एकपना सच्चा हो। समझ में आया ? आहाहा! कनुभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान कहते हैं, तत्प्रमाण यहाँ। भगवान ऐसा देखते हैं (कि) तेरा आत्मा आनन्द और ज्ञान की मूर्ति है। इन्द्रियज्ञानवाला तू नहीं, इन्द्रिय सुखवाला तू नहीं, तू पुण्यवाला नहीं, तू कर्मवाला नहीं, तू शरीरवाला नहीं। ऐसा हम तेरे आत्मा को केवलज्ञान से देखते हैं। इस प्रकार जो अपने ज्ञान से अपने अन्दर राग के-विकल्प के निमित्त के अवलम्बन बिना और इन्द्रिय से होते श्रवणज्ञान—वीतराग की वाणी श्रवण होकर इन्द्रियज्ञान हुआ, उसका लक्ष्य छोड़कर। आहाहा! क्या कहते हैं यह ? चैतन्यस्वभाव परमात्मा विराजता है कि तू भी सत्... सत्... तेरी अस्ति है या नहीं ? तेरी मौजूदगी है या नहीं आनन्द और ज्ञान की ? उस मौजूदगी के अन्दर में दृष्टि देने से जो ज्ञान अतीन्द्रिय, अतीन्द्रियस्वरूप का अतीन्द्रिय ज्ञान, अतीन्द्रिय आनन्द का

अतीन्द्रिय आनन्द ऐसी दशा में प्रगट हो, उस सुख और ज्ञान को आत्मा कहते हैं, चेतन कहते हैं, अमूर्त कहते हैं और वही ग्रहण करनेयोग्य और उपादेय है। गिरधरभाई!

अमूर्त और अतीन्द्रिय है। उसमें जो अमूर्त और अतीन्द्रिय है, वह प्रधान होने से उपादेयरूप जानना। क्या कहते हैं? इन दो में, भगवान आत्मा अपने अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप को भूलकर... अन्तर में जो ज्ञान द्वारा ज्ञान का ज्ञान किया और ज्ञान द्वारा ज्ञान का आनन्द प्रगट किया, वह अतीन्द्रिय ज्ञान है, वह अतीन्द्रिय सुख है, वह अमूर्त है। वह प्रधान है, वह मुख्य है, वह मुख्य होने से उपादेय है, वही आदरणीय है। आहाहा! स्त्री-पुत्र आदरणीय नहीं, कर्म आदरणीय नहीं, धर्मी को पुण्य-पाप के विकल्प आदरणीय नहीं, इन्द्रियजन्य ज्ञान और इन्द्रियसुख आदरणीय नहीं। जेठालालभाई! आहाहा! यह वकालत का ज्ञान हुआ, वह कौनसा कहलाता होगा?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... कहलाये? मूर्त है न। तो यहाँ तो किसी के लिये की बात है कुछ? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, यह ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा हो तो वह इन्द्रियज्ञान है, वह जड़ है। आहाहा! भगवान आत्मा अकेला ज्ञान का सरोवर प्रभु है, उसका पिपासु होकर अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट करे और अतीन्द्रिय आनन्द है, उसकी दशा प्रगट करे, तो वह ज्ञान आत्मा का, वह सुख... वह आदरणीय है। सम्यग्दृष्टि को वह आदरणीय है, दूसरा आदरणीय है नहीं। आहाहा! समझ में आया? सब सुख को चाहते हैं न? देखो न! यह सवेरे (बोले) शालिभद्र की ऋद्धि होओ, अभयकुमार की बुद्धि होओ, बाहुबली का बल होओ। परन्तु इतना डालेगा कहाँ तू? निन्यानवें पेटियाँ उतारे और तेरे घर में मकान भी इतना नहीं। ममता तेरी... आहाहा! अरे! तेरी ममता तो देख, तेरी भावना में कैसा भाव जहर का भरा है, वह तो देख। आहाहा!

परन्तु यहाँ, परमात्मा मैं हूँ और मुझमें से आनन्द आओ, मैं पूर्ण होऊँ, मुझमें से ज्ञान प्रगट होकर केवलज्ञान हो। ऐसी भावना चाहिए या ऐसी भावना हो उल्टी? समझ में आया? परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव ऐसा फरमाते हैं, जिसे सुखी होना हो,

जिसे दु:ख टालना हो तो उसे इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख को छोड़ना चाहिए और अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय सुख को प्रगट करना चाहिए। सुखी होने का यह रास्ता है। कहो, रतिभाई! यह हेडमास्टर में कहीं ऐसा समझाने का नहीं होगा, नहीं? हिम्मतभाई भी नहीं समझाते हों वहाँ ऐसा? ... ऐसा है, फलाना आता है और ढींकणा ऐसा है। सृष्टि ऐसी है और ... ऐसा है। यह तेरी सृष्टि कौनसी, वह तो देख। ... कहा था या नहीं?

आत्मा के ज्ञान की सृष्टि अन्दर उत्पन्न हो, वह उत्पाद, वह आत्मा का प्रभात है, सुप्रभात है। आहाहा! अरे! ज्ञान का समुद्र है न। अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द से तो परिपूर्ण अनन्त-अनन्त स्वभाव से भरपूर भगवान है, भाई! उस प्रभु को अन्तर में देखने से बहिर्मुख का ज्ञान और बहिर्मुख के सुख की कल्पना को हेयरूप से छोड़कर अर्थात् कि उसका लक्ष्य छोड़कर भगवान पूर्णानन्द प्रभु की दृष्टि करके जो ज्ञान होता है, वह अतीन्द्रिय ज्ञान है और उसमें एकाग्र होने से जो अतीन्द्रिय आनन्द आवे, वह अतीन्द्रिय आनन्द सुखरूप और अमूर्त है। वह मुख्य है। धर्मी को वही मुख्य है। दृष्टि मुख्य, वह अभी लेना नहीं यहाँ। यहाँ पर तो पर्याय में आनन्द और ज्ञान आत्मा से प्रगट हो, वह मुख्य है, प्रधान है। समझ में आया? आहाहा!

वहाँ, पहला ज्ञान तथा सुख... अब स्पष्टीकरण करते हैं। पहला ज्ञान कौन? इन्द्रिय से (होनेवाला ज्ञान)। यह पाँच इन्द्रियाँ मिट्टी, वह तो परवस्तु है, जड़ है और आत्मा स्वयं चैतन्य। अब चैतन्य और यह मूर्त, **ज्ञान तथा सुख मूर्तरूप ऐसी क्षायोपशमिक उपयोगशक्तियों से उस-उस प्रकार...** देखो! यहाँ तो **उपयोगशक्तियों से उस-उस प्रकार की इन्द्रियों के द्वारा उत्पन्न होता हुआ...** आहाहा! अपना जानने का व्यापार, क्षयोपशम का व्यापार, उस द्वारा क्षायोपशमिक शक्ति द्वारा। **उस-उस प्रकार की इन्द्रियों के द्वारा उत्पन्न होता हुआ पराधीन होने से...** वह ज्ञान पराधीन है, वह सुख पराधीन है, वह ज्ञान और सुख मूर्त है।

कादाचित्... अर्थात् किसी समय होनेवाला। समझ में आया? है न? कभी-कभी (होनेवाला) अनित्य है। **क्रमशः प्रवर्तन होनेवाला...** लो! **मूर्तिक इन्द्रियज ज्ञान क्रम से प्रवृत्त होता है; युगपत् नहीं होता; तथा मूर्तिक इन्द्रियज सुख भी क्रमशः होता**

है, एक ही साथ सर्व इन्द्रियों के द्वारा या सर्व प्रकार से नहीं होता। ऐसा श्रवण करने के काल में उसे जो ज्ञान और सुख होता है, उस काल में कुछ देखने का कारण, देखने का ज्ञान और देखने के सुख की कल्पना होती नहीं। भिन्न-भिन्न खण्ड-खण्ड क्रमशः होता है। एक-एक इन्द्रिय क्रमशः (प्रवर्तती है)। ऐसा जो **क्रमशः प्रवृत्त होनेवाला, सप्रतिपक्ष...** अर्थात्? ज्ञान इन्द्रिय का और उसमें सुख कल्पना। उससे विरुद्ध कौन? दुःख। **विरोधी सहित। (मूर्त इन्द्रियज ज्ञान अपने प्रतिपक्ष अज्ञानसहित ही होता है,...** वह ज्ञान उस अज्ञानसहित (होता है), वह ज्ञान आवृत्त हो जाये, ऐसा है। **और मूर्त इन्द्रियज सुख उसके प्रतिपक्षभूत दुःख सहित ही होता है।)** क्या कहते हैं? कि यह पाँच इन्द्रिय से जो ज्ञान हुआ, चाहे तो ग्यारह अंग का जानपना हो या चाहे तो यह सब मोटरकार और तुम्हारे क्या कहलाता है? घड़ी, पाट और फलाना और ढीकणा। ... वह सब यहाँ उसका रास आया, उसका यहाँ रुचना वह ज्ञान कैसा है? मूर्तिक है, क्रमशः प्रवर्तता है। समझ में आया? और प्रतिपक्ष सहित है। अर्थात्? वह ज्ञान ढँक जायेगा। वह ज्ञान ढँक भी जायेगा, अज्ञान हो जायेगा। है तो अज्ञान यहाँ। परन्तु उघड़ा हुआ ज्ञान ढँक जायेगा, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : क्षयोपशम ज्ञान का अभाव होने से।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। वह इन्द्रिय का ज्ञान अज्ञान के प्रतिपक्षसहित है। इतना उघाड़ हो, ढँक जाये। कुछ याद न रहे। यह देखो न कितनों को हो जाता है न! अकस्मात् मोटर का हो। भूल जाते हैं। चत्रभुज वकील को हुआ था यहाँ। अमरेली। बड़े वकील। अकस्मात् हुआ। भूल गये। एक, दो, तीन, चार आवे नहीं। क, ख, ग आवे नहीं। यह क्या? इन्द्रियज्ञान ... जड़ का, पर का। सामने अज्ञानसहित है वह तो। सप्रतिपक्ष ज्ञान का नाश होकर अज्ञान हो जाता है। समझ में आया?

और इन्द्रियसुख प्रतिपक्ष है। सुख की कल्पना है, वहाँ दुःख की कल्पना आकर खड़ी रहती है। हाय... हाय... अरे! लोग ऐसा कहे कि जवान अवस्था में यदि प्रतिकूलता आयी होती तो सहन होती। अब वृद्धावस्था में होता नहीं। और ऐसी चिल्लाहट मचाये। ६०-७० का हो न। इससे पहले जवान अवस्था में सब इन्द्रियाँ ठीक थीं, तब तक यदि प्रतिकूलता आयी होती न तो अपने सामने खड़े रहते सहन करने को। परन्तु अभी सब

ढीला पड़ गया। परन्तु अभी और उस समय दोनों दुःख है, सुन न! ऐई! न्यालभाई! ऐसी चिल्लाहट मचाते हैं यह। जवान अवस्था के समय यदि प्रतिकूलता आयी होती न, भले पैसा न हो तो भी हम सहन करने की शक्ति रखते। खोटा बड़ा। परन्तु यह ७०-८० हुए, शरीर शिथिल पड़ा, पैसे गये, इज्जत गयी, समय बदले सब बदला। ऐसा अभी सहन होता नहीं। मूर्ख है, कहते हैं, सुन न! उस समय और अभी जो इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख प्रतिपक्षवाला है अर्थात् दुःख की उपस्थिति तुरन्त हो जायेगी। आहाहा! बाहर की सामग्री सब हो, शरीर शिथिल पड़े, आहाहा! पूरे शरीर में दाह हो, दाह। आहाहा! वह क्या है कुछ खबर पड़ती नहीं। समझ में आया?

एक सेठ को मरते हुए ऐसी व्याधि। वह कहे, यह क्या होता है अन्दर? सेठ! क्या होता है तुमको? कोई खींचता है... खींचता है... ... कौन खींचता है? अन्दर ज्ञान की हीन विपरीत दशा होने लगी। आहाहा! समझ में आया? और पैसे होने पर भी जहाँ अन्दर हाय... हाय... एक बिच्छू काटा हो ठीक सा ठाकरिया, सब पड़ा हो उसे जो कहलाये वह सामग्री। सामग्री अर्थात् लकड़ी, बाहर के पैसे, गहने, सोना के झूले, उसमें खाने बैठा हो और जरासा लकड़े का पाटिया चौड़ा हो जरा और उसमें नीचे से बिच्छू ऐसे टपका हो नीचे। हाय... हाय... यह मुझसे सहन नहीं होता। भाई! मार डाला। सुखी कहता था न तू? सुखी है न? यह सब नहीं जल गया, सब है देख। मुझसे अभी कहीं झेला जाता नहीं। क्या हुआ तुझे? वह दुःख की कल्पना, सुख की कल्पना सामने पड़ी है। वहाँ होली नहीं कुछ, सुन न! कहो, समझ में आया? आहाहा! उसमें वहाँ ठीक से काटे नीचे बैठक में। बताना कठिन पड़े।

एक बाई को इतना कपड़ा पहने न पकाने के समय। इतना कपड़ा पहनकर जहाँ पाट पर बैठी वहाँ नीचे बिच्छू और चटका मारा। हाय... हाय... बताना, किस प्रकार कहना? परन्तु यह बिच्छू काटा कठोर। अरे! यह लड्डू होते हैं न, चूरमा होता है, मेहमान आवे पचास, उनका होता है। बापू! मुझे कहीं चैन नहीं पड़ता। बिच्छू ऐसे होते हैं कितने ही, हों! ... मर गया नहीं लड़का? बिच्छू गढडा में। लड़का जवान १८ वर्ष का, बिच्छू ने काटा। छह घण्टे में मर गया। इतने कड़क बिच्छू होते हैं। छह घण्टे में समाप्त। ठाकरिया बिच्छू। हमने देखे हैं सब बिच्छू। यहाँ तो घूमने जायें न, इतने बड़े

बिच्छू। इतना बड़ा एकदम काला। मैं दिशा को अकेला जाता था न दिशा को पहले जाता था तो निकलते थे। ओहोहो! कहा, यह तो काटे तो मार डाले इतना जहर। यह सब उसकी सामग्री होली पड़ी हो। होली सब समझे न लकड़े की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : साहेबो कहे उसे। वह बिच्छू के समय खबर पड़े उसे।

मुमुक्षु : सामग्री सब।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब। ऐसी खून थोड़ा आया है उसमें। बिच्छू ने थोड़ा डंक मारा। (जहर) डाला है थोड़ा। ले नहीं गया कोई। रजकण डाले हैं थोड़े। सहन नहीं होता, बापू! आहाहा! चिल्लाहट... चिल्लाहट। कहते हैं न सुखी। पैसे और लड़के आठ-आठ बड़े योद्धा जैसे खड़े हैं छह-छह हाथ के लम्बे और यह सब पैसे और है न यह? सुलगाये होली न तुझे। बापू! कहीं (सुख) नहीं, मुफ्त का मूढ़ होकर माना है। आहाहा! कैसे होगा धीरुभाई! तुम्हारे भाई को उन्हें लड़का नहीं इसलिए फिर... सुखी कहलाये या नहीं? लड़के की तो उपाधि देना मिटे। लड़का हो तो विभाजन करके सब व्यवस्थित देना पड़े। स्वयं भले पाप किया हो। आहाहा!

कहते है वह **सप्रतिपक्ष...** सहित है। है न? ९२वें पृष्ठ पर है, तीसरा बोल है। **क्रमशः प्रवृत्त होनेवाला, सप्रतिपक्ष...** कौन सामने प्रतिपक्ष? यह ज्ञान और सुख इन्द्रिय का। यह ज्ञान के सामने अज्ञान बन्द हो जाये। मूढ़ जैसा हो जाये। कुछ भान न रहे और उसके सामने सुख के सामने दुःख। आहाहा! **और सहानिवृद्धि है...** लो! यह ज्ञान कम-ज्यादा हो इन्द्रिय से और सुख की कल्पना भी कम-ज्यादा हो। वह हानि-वृद्धिवाला ज्ञान और सुख है। मूर्त है, **इसलिए गौण है...** देखो, भाषा! गौण है अर्थात् हेय है। हेय है अर्थात् वह कहीं सुख है नहीं। गौण है, इसका अर्थ वह ज्ञान और सुख नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पाँच इन्द्रिय से होनेवाला ज्ञान और सुख, वह सुख और ज्ञान नहीं। गौण है।

भगवान आत्मा, उसके अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति प्रभु को स्पर्श कर जो अन्तर में से ज्ञान निकाले, वह ज्ञान अतीन्द्रिय ज्ञान। और अन्तर स्पर्शकर अतीन्द्रिय आनन्द का

स्वाद ले सम्यग्दृष्टि, वह अतीन्द्रिय सुख वह उपादेय है, वह मुख्य है, वह प्रधान है। समझ में आया? यह किसकी बात चलती है? यह मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि का क्या विवेक, उसकी बात चलती है यह। आहाहा! ... परन्तु इन्द्रिय का ज्ञान ... यह भारी कठिन बातें। ऐई! जेठालालभाई! आहाहा! क्या परमात्मा की वाणी को अन्तर में भेद पाड़कर विवेक करता है—भगवान! यह पाँच इन्द्रिय सम्बन्धी ज्ञान और सुख, वह गौण है, हेय है, मूर्त है, अचेतन है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव का तत्त्व है, वह तो परमात्मा स्वयं, उसे स्पर्शकर जो सम्यग्ज्ञान-आत्मा का ज्ञान हुआ, आत्मा का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान अतीन्द्रिय है और उससे जो सुख हुआ, वह अतीन्द्रिय सुख है। वह धर्मी को अनुभव करनेयोग्य है। समझ में आया? बाहर तो भोगने जैसा नहीं, क्योंकि भोग सकता नहीं, परन्तु उसके इन्द्रियज्ञान और सुख भोगनेयोग्य ज्ञानी को नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! देखो, यह धर्म की पद्धति की रीति। धर्म कोई बाहर से कोई क्रियाकलाप से हो जाये, ऐसा धर्म नहीं। आहाहा!

ऐसा समझकर वह हेय है अर्थात् छोड़ने योग्य है... है? लक्ष्य बदल देने योग्य है, ऐसा कहते हैं। इन्द्रिय से होते ज्ञान और इन्द्रिय से होता सुख, वहाँ लक्ष्य बदल देनेयोग्य है। वहाँ से लक्ष्य को ले लेनेयोग्य है और भगवान आत्मा में लक्ष्य को लगाने योग्य है। समझ में आया? **और दूसरा ज्ञान तथा सुख...** अर्थात् अतीन्द्रिय। अर्थात्? कि इन्द्रिय की ओर के विकल्प का ज्ञान और लक्ष्य को छोड़कर भगवान आत्मा अमूर्त, अतीन्द्रियस्वरूप है, उसमें स्पर्शकर जो ज्ञान हो, वह ज्ञान और वह सुख अमूर्त, अमूर्त **ऐसी चैतन्यानुविधायी एकाकी आत्मपरिणामशक्तियो से...** देखो! उसमें इन्द्रिय शक्तियाँ ली थी, इन्द्रियाँ और वह बात। यहाँ चैतन्य अनुविधायी। नीचे स्पष्टीकरण है। **चैतन्यानुविधायी = चैतन्य के अनुसार वर्तनेवाली;...** क्या? वह ज्ञान की परिणति और सुख। और '**चैतन्य के अनुकूलरूप से—विरुद्धरूप से नहीं वर्तनेवाली।' स्वाभाविक-चिदाकार-परिणामों के द्वारा उत्पन्न होता हुआ...** भगवान आत्मा अन्तर्मुख देखने से, बहिर्मुख के ज्ञान और सुख की बुद्धि छोड़कर भगवान आत्मा अन्तर्मुख देखने से जो चिदाकार अतीन्द्रिय स्वाभाविक ज्ञानाकार परिणामों द्वारा उपजता हुआ। देखो!

आत्मपरिणामशक्तियो से तथाविध अतीन्द्रिय स्वाभाविक-चिदाकार-परिणामों

के द्वारा उत्पन्न होता हुआ अत्यन्त आत्माधीन होने से... वह तो आत्मा के आधीन सम्यग्ज्ञान है, आत्मा के आधीन आनन्द है। वह आनन्द और ज्ञान आत्मा के आधीन है, पर के आधीन नहीं। वह ज्ञान और आनन्द कहलाता है। आत्मा के आधीन प्रगट हो, वह ज्ञान और आनन्द कहलाता है। निमित्त से, विकल्प से उत्पन्न हो, वह ज्ञान और आनन्द नहीं। कहो, समझ में आया? कठिन बात! वीतराग की वाणी ऐसा कहती है, परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि हमारी दिव्यध्वनि सुनने में इन्द्रिय से जो तुझे ज्ञान हो, वह ज्ञान इन्द्रियज्ञान है। उसमें तुझे मजा आवे, ठीक (लगे), वह भी इन्द्रियसुख है।

मुमुक्षु : वह दुःख ही है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह सुख है अर्थात् इन्द्रिय का माना हुआ, ऐसा। परन्तु उसका लक्ष्य छोड़कर तेरे आत्मा में अन्तर में उसका ज्ञान और आनन्द को प्रगट कर, यह उसे अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द कहते हैं। इसे चैतन्यपने का ज्ञान और चैतन्य का आनन्द, इसे चैतन्य कहते हैं। उनको जड़ कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : शास्त्र में तो आता है कि साक्षात् अमृत प्रवाहित किया जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शब्द तो आता है। भाई! बात सच्ची। सब सुना है न यहाँ का? यहाँ का सुना यहाँ देते हैं। बात सच्ची। भगवान की वाणी मानो साक्षात् अमृत बहाती हो। अर्थात्? वह व्यवहार वाणी है न, इसलिए वहाँ सुख की कल्पना का ज्ञान होता है, इसलिए उसे व्यवहार कहा। परमार्थ से तो आत्मा में से अतीन्द्रिय आनन्द प्रवाहित हो तब—आवे, तब उसे अतीन्द्रिय आनन्द कहा जाता है। ऐसा है न? प्रश्ननारद है न? परन्तु याद रखता है, हों! याद रखता है। मौके-मौके से मेलवाला प्रश्न आता है। बात सच्ची। वह तो वाणी, दूसरे की अपेक्षा वीतराग की वाणी कैसी है, ऐसा बताने को (कहा)। परन्तु उस वाणी से जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान कहीं यथार्थ ज्ञान नहीं, इन्द्रियज्ञान है।

मुमुक्षु : वहाँ भी ऐसा ही बतलाना है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसमें ऐसा कहा है। यह वाणी जहाँ कही, वहाँ ऐसा कहा है। भगवान! हमारी वाणी सुनकर तुझे जो ज्ञान और मजा लगता है, वह वस्तु नहीं।

वह हमारी भक्ति नहीं और हम कहते हैं, वह ज्ञान नहीं और हम कहते हैं, वह आनन्द नहीं। समझ में आया? चैतन्य भगवान चैतन्य अनुविधायी परिणाम:। चैतन्य को अनुसरकर, ज्ञानानन्दस्वभाव को अनुसरकर, चैतन्य के परिणामों द्वारा अपने ज्ञान की पर्याय द्वारा उत्पन्न होता ज्ञान और आनन्द, वह अमूर्त (ज्ञान) और सुख, ज्ञान और सुख, वही आदरणीय है। वह करनेयोग्य हो तो यह है। धर्मी को धर्म करनेयोग्य हो तो यह है। कठिन बात, भाई! समझ में आया?

चिदाकार-परिणामों के द्वारा उत्पन्न होता हुआ अत्यन्त आत्माधीन होने से नित्य... है यह तो। वह अनित्य था। आया था न इसमें? उसमें आया था, कदाचिक आया था, उसके सामने यह है। समझ में आया? वह तो कदाचित् ज्ञान इन्द्रिय द्वारा होता है। भूल जाये किसी समय। यह तो नित्य ज्ञान है। भाषा देखो! ज्ञान तो त्रिकाली नित्य है। परन्तु नित्य ज्ञानानन्द भगवान के लक्ष्य से हुई दशा, वह निर्मल ज्ञान है, इसलिए कायम रहनेवाला है। वह अज्ञान होनेवाला नहीं। इसलिए वह ज्ञान की पर्याय होने पर भी उसे नित्य कहा जाता है। समझ में आया?

आत्माधीन होने से नित्य... है? क्यों?—कि वह टिकी रहेगी। आत्मा चिदानन्दमूर्ति अन्तर स्पर्शकर जो ज्ञान हो, वह टिका रहता है, परन्तु उससे हुआ, वह उसमें रहेगा। इन्द्रिय से हुआ, वह अनित्य है, रहेगा नहीं। सुख भी नित्य है। वह सुख नित्य है। आहाहा! नित्यानन्द भगवान आनन्दस्वरूप शाश्वत् प्रभु को स्पर्शकर जो आनन्द (आवे), वह नित्य आनन्द है। उसमें टिकेगा अब। क्योंकि आत्मा से उत्पन्न हुआ आनन्द आत्मा में टिकेगा। पर से कल्पना से उत्पन्न हुआ सुख का दु:ख हो जायेगा। वह दु:ख। सुख भी है तो दु:ख, परन्तु सुख के स्थान में वापस दु:ख आकर खड़ा रहेगा। समझ में आया? भारी टीका, भाई! गजब बात करते हैं। कितना विवेक सत्य-असत्य का! ज्ञान में सत्य-असत्य का विवेक, सुख में सत्य-असत्य का विवेक। समझ में आया?

युगपद् प्रवर्तमान... अर्थात् क्या कहा? आत्मा के आश्रय से जो ज्ञान और सुख एक साथ प्रगट होता है। वह इन्द्रिय में तो एक इन्द्रिय का, फिर दूसरी इन्द्रिय का, फिर तीसरी इन्द्रिय का नम्बर से होता है। कल्पना ज्ञान में और सुख में। इन्द्रियों की ओर में पाँच ... है न। यह तो युगपद् एकसाथ अतीन्द्रिय ज्ञान की श्रद्धा-ज्ञान हुआ तो ज्ञान और

आनन्द एक साथ आये हैं। क्योंकि द्रव्य एकरूप है, इससे उसका आनन्द और ज्ञान एकरूप साथ में आता है। उसे भिन्न-भिन्न इन्द्रिय की अपेक्षा है नहीं। सूक्ष्म तो है थोड़ा, परन्तु अब गाथा आयी हो, वह वाँचना पड़े न, आवे न।

मुमुक्षु : ऐसा ही सुनना चाहिए न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा सुनना चाहिए न। अब यह २५वाँ वर्ष लगा। चले गये वर्ष कितनों के मुफ्त में। पानी में गये बहुत। दुःख में। दुःख में-दुःख में। आहाहा!

कहते हैं, भगवान आत्मा का अन्तर से प्रगट हुआ ज्ञान, आत्मा को स्पर्शकर, आत्मा के ध्येय से प्रगट हुआ ज्ञान युगपद् है—एकसाथ है। स्वयं अतीन्द्रिय है, अर्थात् अतीन्द्रिय का ज्ञान एक साथ है, ऐसा। निःप्रतिपक्ष है (अर्थात्) उस आनन्द के सामने अज्ञान और दुःख है नहीं। वह तो ज्ञान और सुख ही रहनेवाला है। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द की मूर्ति की दृष्टि होने से जो ज्ञान और आनन्द (होता है), वह तो कायम रहनेवाला ही है। प्रतिपक्षरहित है, हानि-वृद्धि (रहित है)। हानि-वृद्धि हो, ऐसा नहीं। एकधारा से ज्ञान और आनन्द रहनेवाला है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए मुख्य है,... आत्मा में से ज्ञान और आत्मा का जो आनन्द, वह सम्यग्दृष्टि को मुख्य है, प्रधान है, वही है। **ऐसा समझकर वह उपादेय अर्थात् ग्रहण करनेयोग्य है।** लो! वह आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान ही प्रगट करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया? अब यह बाहर की मशीनें इकट्ठी करना, यह फलाना करना, ढींकणा करना, वह तो कुछ कर सकता नहीं, ग्रहण कर सकता नहीं, वह तो सब धूल की पर की चीज़ है। यहाँ तो कहते हैं कि कर्म को बाँध सकता नहीं, शरीर को रख सकता नहीं। वह जड़ चीज़ है। यह पुण्य-पाप के परिणाम को रख सकता नहीं। क्योंकि वह विकार है। उसे रखने जाये तो मिथ्यादृष्टि होता है। समझ में आया? परन्तु यह इन्द्रिय सम्बन्धी का ज्ञान और सुख यदि रखना चाहे तो भी मिथ्यादृष्टि है, मूढ़ है, मूर्ख है, ऐसा कहते हैं। कठिन बात, भाई! पाँच-पाँच हजार के वेतनदार हों, दस-दस हजार के वेतनदार और लाख-लाख का वेतन महीने में, लो! कहते हैं कि तेरी इन्द्रियों की बुद्धि, सुखकल्पना, वह तेरी मूर्खाई भरपूर ज्ञान है। जड़ है, जड़ है, तू जड़ है। चैतन्यस्वभाव भगवान आत्मा की

तुझे दृष्टि और स्पर्श नहीं। तेरी दृष्टि में विकार और इन्द्रिय का ज्ञान और सुख वर्तता है, इसलिए सब जड़ तेरी दृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? यह ५३ गाथा कही, लो, ठीक! बहुत सरस बात आयी है।

यह तो मिट्टी है, यह तो अजीव होकर रहे हैं यह। ये आत्मा के होकर रहे हैं यह? आत्मा के होकर रहे तो अरूपी हो जाये और आत्मा के होकर रहे तो आत्मा शाश्वत् है, वह यह भी शाश्वत् हो जाये साथ में। वे तो उनके होकर रहे हैं। उनके होकर, उनकी रीति से, उनकी रीति से, उनकी रीति जो है, उस रीति से होकर रहे हैं, तेरे होकर तेरी रीति से वे रहे नहीं। आहाहा! इसी प्रकार कर्म भी कर्म की रीति से होकर कर्म अजीव होकर रहे हैं और बाहर की स्त्री, पुत्र के आत्मायें और शरीर, उनका आत्मा उनका आत्मा का होकर रहा है और उनका शरीर भी उनका शरीर होकर रहा है, तेरा होकर रहा नहीं। कठिन बात, भाई! यह तो ठीक! परन्तु यहाँ तो कहते हैं कि इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख भी तेरा होकर रहा नहीं। प्रतिपक्षसहित विरोधवाला है। आहाहा! तूने माना है कि यह मुझे मेरा ज्ञान और मेरा सुख। परन्तु वह तेरा नहीं, तेरा हो तो जाये नहीं। समझ में आया इसमें?

मुमुक्षु : सब आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : सब आ गया। ऐसी बात है। इस महीने आये तुम फिर से वापस? भले शरीर के कारण से।

यहाँ तो कहते हैं, आहाहा! क्या कहते हैं? कि यह इन्द्रिय का ज्ञान और इन्द्रिय से सुख है, वह भी तेरे स्वभाव का होकर रहा नहीं। तेरी कल्पना से मान्यता करके रखा है। परन्तु वह रखने से रहे, ऐसा नहीं है। और आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञानमूर्ति है, उसका ज्ञान और सुख, वह रखने से रहे ऐसा है। क्योंकि वह नित्य है, आत्मा से प्रगट हुआ विरोधतारहित है। इसलिए वह ज्ञानी को, धर्मी को वही ग्रहण करनेयोग्य है, वही उत्पन्न और प्रगट करनेयोग्य है। दूसरा कोई करनेयोग्य है नहीं। ऐसी दृष्टि में होना चाहिए। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ३, गुरुवार, दिनांक २४-१०-१९६८
गाथा - ५४, प्रवचन - ४५

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। प्रवचनसार। ५३ गाथा पूरी हुई।

★ ★ ★

गाथा - ५४

अब, अतीन्द्रिय सुख का साधनभूत... आत्मा जो अतीन्द्रिय आनन्द है, उसके **(-कारणरूप) अतीन्द्रिय ज्ञान उपादेय है - इस प्रकार उसकी प्रशंसा करते हैं :—** ५३ में ऐसा कहा था कि इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख, वह दुःखरूप है। आत्मा ज्ञान और आनन्द वस्तु अनादि सम्बन्ध से होने पर भी पर्याय में इन्द्रियजन्य ज्ञान, इन्द्रिय से होता ज्ञान और इन्द्रिय से कल्पना में माना जानेवाला सुख, वह सब दुःखरूप है। सुखरूप तो, वह इन्द्रिय से होता ज्ञान और इन्द्रिय से कल्पना में आता सुख, वह पर्यायबुद्धि में रुचि छोड़कर अतीन्द्रिय आत्मा जो है ज्ञान के साथ और आनन्द के साथ अविनाभावी सम्बन्ध अनादि, ऐसे अनादि ज्ञान और आनन्द से भरपूर भगवान आत्मा है, उसकी अन्तरदृष्टि करके अतीन्द्रिय की और उससे अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट होता है और इससे आगे बढ़ने पर अतीन्द्रिय केवलज्ञान होता है। समझ में आया?

इसलिए यहाँ तो अतीन्द्रिय केवलज्ञान की व्याख्या करेंगे कि अतीन्द्रिय सुख के साथ जिसे सम्बन्ध है, ऐसा जो अतीन्द्रिय ज्ञान। देखो! **अतीन्द्रिय सुख का साधनभूत अतीन्द्रिय ज्ञान उपादेय है - इस प्रकार...** कहते हैं। आत्मा का स्वभाव अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द ही है उसका। ऐसा जो आत्मा पर्याय में इन्द्रियों से श्रवण करे, इन्द्रियों से देखे, जाने—ऐसी जो ज्ञान की पर्याय है, वह सब पराधीन, दुःखरूप है। इसलिए जिसे हित करना है आत्मा का, उसे अतीन्द्रिय सुख का कारण ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान उसे प्रगट करना चाहिए।

वह अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट कैसे हो ? कि आत्मा अखण्डानन्द द्रव्यस्वभाव, द्रव्य, फिर स्वभाव उसका भाव। उसके साथ ज्ञान और आनन्द, अतीन्द्रिय गुण और अतीन्द्रिय वस्तु वह अनादि-अनन्त है, उसके ऊपर दृष्टि करने से अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति होती है। उसका नाम धर्म और उसका नाम आत्मा के मोक्ष का साधन कहा जाता है। समझ में आया ? इससे अतीन्द्रिय ज्ञान की प्राप्ति पूर्ण हो, वही प्रगट करनेयोग्य है, उसे बताने के लिये यह गाथा है। ५४ (गाथा)। सूक्ष्म तो है, यह सब अधिकार सूक्ष्म है। वे भाई कल आये थे न। वे कहे, यह सवेरे सूक्ष्म और दोपहर में सूक्ष्म। ऐसा तो कुछ हो ? परन्तु मार्ग ही ऐसा है, उसकी खबर नहीं होती।

यह सब जड़, मिट्टी, धूल, अब जड़ है यह तो। कर्म जड़ मिट्टी जड़, यह सब अजीव है। अब अजीव के साथ जीव का सम्बन्ध कैसा ? वह चीज़ तो अत्यन्त भिन्न है। परन्तु उसे वर्तमान पर्याय के अंश के ऊपर बुद्धि होने से उसका लंबाण जाये तो यह इन्द्रियाँ और शरीर और उन्हें देखने वहाँ जाता है। परन्तु वस्तु स्वयं अखण्डानन्द द्रव्य ध्रुव सच्चिदानन्द प्रभु शुद्ध आनन्दकन्द सिद्ध समान जिसका स्वरूप है, उसके ऊपर वह दृष्टि करता नहीं। धर्म के बहाने भी वह क्रियाकाण्ड, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, वह सब पर्यायबुद्धि के कर्तव्य हैं। समझ में आया ? उनमें इसकी रुचि है, परन्तु आत्मा अन्दर ज्ञायक चिदानन्दस्वभाव, वस्तु है तो वस्तु का आनन्दस्वभाव और ज्ञानस्वभाव त्रिकाल पड़ा हुआ है, उसकी अन्तर-सन्मुख दृष्टि, निर्विकल्प दृष्टि करके निर्विकल्प आत्मा को पकड़ना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, उसका नाम सम्यग्ज्ञान और उसका नाम सम्यक् शान्ति और आनन्द है। बाकी इसके बिना सब थोथा है। कहो, समझ में आया ?

यह अतीन्द्रिय ज्ञान को सुख का कारण होने से उसे अनुमोदन के लिये उपादेय कहना चाहते हैं। ५४ है न ?

जं पेच्छदो अमुत्तं मुत्तेसु अदिंदियं च पच्छण्णं।
सयलं सगं च इदरं तं णाणं हवदि पच्चक्खं॥५४॥

नीचे इसका हरिगीत है।

जो अमूर्त को, मूर्तिक में भी गहे अतीन्द्रिय अरु प्रच्छन्न।
इन सबमें निज-पर को जाने, होता है वह ज्ञान प्रत्यक्ष॥५४॥

इसका **अन्वयार्थ :- देखनेवाले का जो ज्ञान... 'प्रेक्षमाणस्य यत्'** ऐसा। भगवान आत्मा देखनेवाला है, उसका ज्ञान, **अमूर्त को,...** जानता है। ऐसा उसकी पर्याय का पूर्ण ज्ञानदशा का स्वभाव है। अमूर्त को जानता है, मूर्त में भी अतीन्द्रिय को जानता है। मूर्त पदार्थ को तो जाने, परन्तु मूर्त में अतीन्द्रिय कालाणु और परमाणु आदि बारीक—सूक्ष्म है, उसे भी केवलज्ञान जानता है। इन्द्रियज्ञान में वे ज्ञात नहीं होते, इसलिए ज्ञात नहीं होते, उसका इन्द्रियज्ञान में खेद वर्तता है। समझ में आया? और अतीन्द्रिय ज्ञान में सब ज्ञात होने पर वहाँ आनन्द वर्तता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया इसमें? यह इन्द्रियों से जानने में आवे, इसके अतिरिक्त जानने में न आवे, उसका उसे दुःख है, खेद है। यह क्या होगा? यह क्या होगा? यह क्या होगा? परन्तु अतीन्द्रिय ज्ञान जहाँ पूर्ण हुआ, उसके साथ तो आनन्द है, कहीं जानने का यह क्या? वह अब वह कुछ बाकी नहीं। पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द साथ ही प्रगट होते हैं। समझ में आया? इसलिए कहते हैं कि मूर्त में भी अतीन्द्रिय को जाने और ढँके हुए को—प्रच्छन्न को जाने। यह स्पष्टीकरण करेंगे आगे।

इन सबको—स्व तथा पर को देखता है, वह ज्ञान प्रत्यक्ष है। ऐसा केवलज्ञान ही आत्मा को प्रगट करनेयोग्य है। कहो, समझ में आया? यह धर्मी को—आत्मार्थी को अपने ज्ञान और आनन्दस्वभाव के ऊपर दृष्टि करके, उसका ज्ञान प्रगट करके आगे बढ़कर केवलज्ञान प्रगट करनेयोग्य है। यह करनेयोग्य है, यदि मनुष्यपना पाया और करना हो तो।

मुमुक्षु : न करना हो तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : न करना हो उसे क्या यह? कहते हैं। ... मानकर लहर करता है, ऐसा मानता है। लो! है दुःखी। नहीं कहा था एक बार? उस उमराला के पास क्या? ... मुम्बई व्याख्यान चलता होगा कि फिर महाराज कहते हैं कि हम दुःखी, परन्तु हम कहाँ दुःखी हैं? हमको पैसा है, रोटियाँ मिलती हैं, दाल-भात मिलते हैं, सब्जी मिलती है, पैसे मिलते हैं। ऐई! मलूकचन्दभाई! वह वडोद का-वडोद का (था।) वडोद है न हमारे उमराला के पास। उसे मुम्बई में ... सगा नहीं? जुमभाई कापडियावाला। महाराज कहते हैं कि तुम दुःखी हो, इसलिए धर्म समझो। यहाँ कहाँ दुःखी हैं? दुकान चलती

है, दो-पाँच-दस हजार पैदा होते हैं, पाँच पचास हजार की पूँजी। तुम्हारी पूँजी नहीं गिनना परन्तु पचास हजार, लाख, दो लाख बहुत कहलाये न?

मुमुक्षु : उसकी हैसियत प्रमाण।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसकी हैसियत प्रमाण। तुम्हारे और बड़ी जेब हो गयी। गंजु अर्थात् गुंजुं डालने में। कहो, परन्तु हम ऐसा कि इसमें दुःखी कहाँ है? परन्तु भान नहीं तुझे कि आत्मा को जो कुछ इच्छा होती है कि यह हो... यह हो... यह हो, वह दुःख है, वह खेद है, वह आकुलता है, वहाँ आत्मा की शान्ति लुटती है। तुझे भान नहीं। समझ में आया? कोई भी इच्छा उत्पन्न हो कि यह हो तो ठीक, यह हो तो ठीक, उसको जानूँ तो ठीक, इसे न जानूँ तो ठीक, इतना प्राप्त करूँ तो ठीक। अरे! सब इच्छा वह स्वयं आकुलता... आकुलता... आकुलता है। भगवान अनाकुल आनन्द का कन्द है, वह आकुलता उसे लुटती है। आनन्द लुटता है, वह इसे भान नहीं (और मानता है) कि हम सुखी हैं। मूढ़ को क्या खबर पड़े? समझ में आया?

एक बालक था वह दो सौ रुपये का गहना पहनकर... दीपावली का दिन था। २००-३०० का गहना सोना का पहना। एक व्यक्ति निकला दो-चार, मानो कि यह लड़का घूमता है। दुकान से पेड़ा ले लाया व्यवस्थित। चार, छह आना के, आठ आना के। और वह (बालक) खेलता था, घूमता था। हाथ में पेड़ा दिया। खाने गया, खाने के स्वाद में वह गहना ले गया। लड़के को कुछ कीमत है? कि यह पेड़ा खाता जाता है ऐसे २००-३०० रुपये का गहना। उसमें तो बहुत पेड़ा आवे (ऐसा)। भान है उसे? न्यालभाई! क्या कहा यह दृष्टान्त? गहना पहना हुआ था। यह बना हुआ है, हों! लड़के को डाले ऐसे। उसे कुछ ध्यान नहीं रहा। बरामदे में घूमता है, बरामदे में घूमता है यों ही बाहर घूमता है। उसमें कोई निकला... दिवाली का दिन था। पेड़ा दिया इतना बड़ा। ऐसे हाथ में चखाया, वहाँ चखने के स्वाद में रहा तो गहना निकाल लिया उसने। खबर है बालक को भान है कि इसके तो बहुत पेड़ा आवें?

इसी प्रकार यह राग के रंग में रंगा हुआ आत्मा का चैतन्य पेड़ा अन्दर आनन्द खो जाता है। आनन्द को लूट करता है। आनन्द आता है, हमको मजा पड़ता है। शुभ-अशुभ राग में लुटता है, उसकी इसे खबर नहीं। समझ में आया? उसके स्वाद में वह

आनन्द लुट गया, आनन्द का गहना चला जाता है। जेठालालभाई! उस बालक की भाँति यह लुटता है।

मुमुक्षु : बालक का दृष्टान्त यह चतुर पुरुषों को लागू पड़े?

पूज्य गुरुदेवश्री : चतुर किसे कहना? किसे कहना चतुर? ऐई! न्यालभाई! यह पैसेवाले हुए, इसलिए चतुर कहलाये? बड़े हुए, इसलिए यह सब कलेक्टर है, लो! होशियार कहलाये? जेठाभाई! यह कलेक्टर थे, लो! यह हेडमास्टर थे बड़े-बड़े, देखो यह सब है न! यह भी थे बड़े इंजीनियर।

मुमुक्षु : यह तो बड़े ... इंजीनियर थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहना किसे चतुर? जिसे आत्मा में आनन्द है और आत्मा का ज्ञान है, उसे लूटे, लुटने दे और फिर उसे चतुर कहना! रतिभाई!

भगवान आत्मा आनन्द और ज्ञान से ऐसे वस्तु के साथ, वस्तु है न द्रव्य? उसके साथ ज्ञान और आनन्द ऐसे जड़े हुए अविनाभावी स्वभाव है। ध्रुव स्वभाव जिसका पूरा पड़ा है। अब उसकी दृष्टि न करके, पुण्य, पाप और वर्तमान अंश की बुद्धि और राग और हर्ष (करता है, उसमें) लुटता है, आनन्द का आनन्द खो जाता है। इस राग के स्वाद के समक्ष पूरा गहना अनन्त करोड़ों-करोड़ रुपये में न मिले ऐसी चीज़, उस चीज को लूटता है। और प्रसन्न होता है। लड़का प्रसन्न हुआ। (पेड़ा) मीठा लगा। घर में जहाँ घुसा, ... गहना कहाँ गया? वह पेड़ा खाते-खाते घर में घुसा। ... परन्तु गहना कहाँ गया? निश्चित कोई पेड़ा देकर गहना ले गया लगता है। अब उसे खोजना कहाँ? समझ में आया? इसी प्रकार भगवान आत्मा इन्द्रिय के ज्ञान और इन्द्रिय के सुख की बुद्धि में उसके चैतन्य को लुटाता है। समझ में आया?

कहते हैं, परन्तु जो अतीन्द्रिय ज्ञान है, वह आत्मा में से प्रगट हुआ... आत्मा अतीन्द्रिय और उसके आश्रय से प्रगट हुआ अतीन्द्रिय ज्ञान केवल, वह तो केवलज्ञान सुख का कारण है, सुख का साधन है। क्योंकि उसे कुछ जानना बाकी नहीं रहता। ऐसा जो केवलज्ञान, वह अमूर्त है, उसे जानता है। टीका। यह अमूर्त है जगत की चीज़ अरूपी, उसे भी केवलज्ञान जानता है। अतीन्द्रिय ज्ञान है वह और उस अतीन्द्रिय ज्ञान

की पर्याय आत्मा में पड़ी है, ऐसा कहना है। समझ में आया? वह अतीन्द्रिय केवलज्ञान जो है, प्रगट होगा वह आत्मा में पड़ा है। उसका ध्यान कर तो अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट होगा।

ज्ञान और आनन्द से भरपूर तत्त्व है। अतीन्द्रिय ज्ञान जिसे प्रगट करना है, वह अतीन्द्रिय पर्याय प्रगट कहाँ से होगी? बाहर से आयेगी? राग में से आयेगी? अल्प पर्याय जो है पूर्व, उसमें से—अल्प पर्याय में से पूर्ण केवलज्ञान पर्याय आयेगी? आयेगी कहाँ से? वह केवलज्ञान आत्मा वस्तु भगवान आत्मा में केवलज्ञान की ऐसी अनन्त पर्यायें अन्दर ज्ञानगुण में पड़ी हैं और अनन्त ज्ञान के साथ जो आनन्द प्रगट हो, ऐसा अनन्त आनन्द एक पर्याय में, ऐसे अनन्त आनन्द की अनन्त पर्याय आत्मा के आनन्द(गुण) में पड़ी है वर्तमान में। समझ में आया?

एक बार नहीं कहा था? एक बार उस तत्त्वानुशासन में आया है न? शिष्य ने प्रश्न किया, कि तुम अरिहन्त का ध्यान करते हो परन्तु अरिहन्त है कहाँ अभी? अरिहन्त का ध्यान करते हो, सिद्ध का ध्यान करते हो, यह हो कहाँ अरिहन्त सिद्ध? सुन! उन अरिहन्त का जो केवलज्ञान और अरिहन्त का जो अनन्त आनन्द उसका हम ध्यान करते हैं (कि) अरिहन्त का ज्ञान और अरिहन्त का आनन्द हमारे में है। हमारे में है—वस्तु में है। समझ में आया? उसका हम ध्यान करते हैं, जिससे ध्यान का फल सफल शान्ति और आनन्द आता है। अरिहन्त हम स्वयं हैं। आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट (करना)। परन्तु अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट कैसे हो? कहाँ रहा है, वह हो? समझ में आया? इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख की बुद्धि छोड़। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का पिण्ड, कन्द है, उसका ध्यान कर, उसकी दृष्टि कर और एकाग्र हो। वह अरिहन्त स्वयं ही आत्मा अभी है, सिद्ध स्वयं आत्मा अभी है। शक्ति में पड़ा है सब। समझ में आया? साधुपद, आचार्यपद, उपाध्याय, वह सब निर्मल वीतरागी पर्याय के पद हैं। वे कहीं वस्त्र और बाहर वह कुछ पद नहीं। तथा अन्दर पंच महाव्रत के विकल्प उठे साधु को, वह कुछ पद नहीं। अन्तर में आत्मा के आनन्द की दृष्टि, आनन्द का ज्ञान, आनन्द में रमणता जो प्रगटी है, वह पूरी प्रगटी हुई अरिहन्त और सिद्ध। अधूरी प्रगटी हुई आचार्य, उपाध्याय और साधु—वे सब पर्यायें

आत्मा के अन्तर में पड़ी है अभी। समझ में आया? कैसे जँचे? इसे विश्वास नहीं आता। वह प्रगटेगा केवलज्ञान। अतीन्द्रिय की व्याख्या करे, परन्तु वह अतीन्द्रिय ज्ञान तुझमें अभी है। समझ में आया? उसका ध्यान करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र, वह वस्तु का ध्यान है। ध्येय लक्ष्य में लेकर एकाग्र होना, वह ध्यान है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अनादि... अनादि... अनादि... अथवा आदिरहित, अन्तरहित वस्तु और वस्तु का स्वभाव जो पूर्ण है, उसका ध्यान अर्थात् उसमें एकाग्र होना। वह अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द में एकाग्र होता है। इसलिए पर्याय में—अवस्था में अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द थोड़ा पहले प्रगट होता है। विशेष एकाग्रता से पूर्ण अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द प्रगट होता है, ऐसे केवलज्ञान की यह प्रशंसा चलती है। उसकी प्रशंसा के अर्थ में ऐसा केवलज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द तुझमें पड़ा है। वह तेरी प्रशंसा है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? गजब यह। घर में पूँजी पड़ी है, कहते हैं। उसमें से निकालना है, कहीं बाहर से लाना नहीं। कहो, समझ में आया? वह अमूर्त को जाने आत्मा, ऐसा ज्ञान अन्दर में पड़ा है और प्रगट हो तो ऐसा है, ऐसा कहते हैं।

मूर्त पदार्थों में भी अतीन्द्रिय है,... परमाणु आदि। **और जो प्रच्छन्न है,...** आगे स्पष्टीकरण करेंगे, हों! **गुप्त; अन्तरित; ढंका हुआ।** काल आदि है न? उसे जाने। **उस सबको - जो कि स्व और पर इन दो भेदों में समा जाता है,...** एक ओर भगवान आत्मा तथा एक ओर यह सब जगत पूरा, उन दोनों को जानने की ज्ञान की पर्याय में एक समय में सामर्थ्य है। समझ में आया? आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड और उसकी अनन्त पर्याय और सामने अनन्त पदार्थ पर, उन दोनों को जानने के लिये आत्मा की ज्ञान की पर्याय प्रगट पूर्ण जो है, वह दोनों को जानने के लिये समर्थ है और ऐसी दो को जानने के लिये समर्थ है, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्यायों का पिण्ड आत्मा स्वयं है। समझ में आया?

उसे - अतीन्द्रिय ज्ञान अवश्य देखता है। अतीन्द्रिय ज्ञान अवश्य देखता है। पूर्ण... पूर्ण... पूर्ण... देखने का कुछ बाकी रहता नहीं। बाकी नहीं रहता, ऐसा तेरा स्वभाव है। आहाहा! यहाँ तो थोड़ा देखकर तो आहाहा! ऐसा हो जाये अन्दर। देखते हैं न? दूसरा क्या करते हैं? शरीर और पैसा और दाल, भात को यह सब जड़ अवस्थायें और जड़ की क्रियाओं को वास्तव में तो आत्मा जानता है। जानने के अतिरिक्त उन्हें

स्पर्श भी नहीं करता अभी भी। जड़ को स्पर्श करे? शरीर को स्पर्श करे? वह तो मिट्टी है। वह तो अरूपी भगवान है, चैतन्य अरूपी रंग, गन्ध, रसरहित चीज़ है। शरीर को स्पर्श करे? माँस को स्पर्श करे? दाल-भात को स्पर्श करे? लड्डू को स्पर्श करे? मौसम्बी को स्पर्श करे? किसे स्पर्श करे? गहनों को स्पर्श करे? वस्त्र को स्पर्श करे? जवाहरात सब यहाँ लटकावे गहने सब, उन्हें स्पर्श करे?

ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा उन्हें जानता है कि यह है। मैं हूँ, यह है। उन्हें जानता है और इसे जानता है। बस है तो इतना। परन्तु तदुपरान्त जानते हुए ऐसा मानता है कि यह मेरा, यह मैं उसका, यह मिथ्याभ्रम अज्ञान है। समझ में आया? बड़ी मशीन, आहाहा! चलती हो, पाँच-पाँच हजार लोग काम करते हों। दस हजार, लो। आत्मा वास्तव में तो जाननेवाला है, ज्ञान है और यह जानता है। दस-दस हजार लोगों की उसे हम पूरते हैं, क्या कहलाता है? आजीविका-रोजी। हम कहीं धन्धा हमारे लिये करते हैं, ऐसा नहीं, बहुत लोगों को रोटी मिले। हराम है, सुन न! हरामजादगी की दृष्टि तूने खड़ी की है और उसकी पर्याय को रोजी तू कर देता है? उसके पास जो परमाणु आनेवाले हैं, वे आनेवाले हैं और नहीं आनेवाले, वे नहीं आवे। उसके कारण से आते हैं। तू तो जाननेवाला है कि उसे हुआ, इसे नहीं हुआ। फलाना। जाननेवाला है। जाननेवाले के उपरान्त इसने यह विपरीतता अन्दर घुसाई (मैं) सबको रोजी देता हूँ। वह मिथ्यात्वभाव संसार भटकने का दुःखी होने का भाव है। रतिभाई! कठिन काम, भाई! बड़े गृहस्थ होते हैं, वे पैसे से सबको निभाते होंगे या नहीं?

एक व्यक्ति को कहा था, तुम किसलिए कमाते हो? इनके बहनोई से। समझ में आया? इतने-इतने पैसे हैं और तुम कमाते किसलिए हो? तुम्हारे पास चालीस करोड़ रुपये और अस्सी करोड़ आनेवाले हैं। अब कमाते किसलिए हो? अस्सी करोड़। क्या हम हमारे लिए कमाते हैं? पैसे की खुमारी फट जाती है। हम हमारे लिये कमाते हैं? यह सात-सात हजार, आठ-आठ हजार लोगों को रोजी मिलती है, इसके लिए (करते हैं)। उनके लिये होगा यह? कहाँ गये? जयन्तीभाई! क्या होगा यह? ऐसा जवाब दिया सामने। पागल वह भी कितना पागल। हम हमारे लिए कमाते हैं? पैसे बहुत और प्रताप बड़ा हो, कपड़े-बपड़े वैसे पहने हों, जूते ऊँचे पहने हों चमड़े के। जूते खाता है ठीक

से। जूते पहनते हैं न? जूते पहनते हैं न? बड़ा टोप पहनते हैं ऐसे। ऐसे पैसेदार अरबों रुपये। आहाहा! आँखें फट जाये बनिया को। बनिया को अरबों रुपये।

मुमुक्षु : पैसा बनिया सँभाल सकता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सँभाल सकता है या यह तो अजीर्ण होता है यह तो? इनके बहनोई से कहा, हों! हम हमारे लिए कमाते हैं? हम हमारे से कितनी रोजी लोगों को मिलती है, इसके लिए करते हैं। बहुत अच्छी बात। मर जायेगा तब कहाँ रोजी कराने जायेगा? और वह रोजी पर को दे सकता है? उसके दाने जो मिलने के उसके पास, वह तो उसे आये बिना रहेंगे नहीं। मनुष्य—लोग नहीं कहते? कि खानेवाले का नाम दाने-दाने पर है। इसका अर्थ क्या? खानेवाले का दाने दाने पर नाम, इसका अर्थ क्या? कि जो दाना और जो उसके पास आनेवाला है, वह आनेवाला है, आनेवाला है, तुझसे नहीं। बराबर होगा न्यालभाई? यह लोग नहीं कहते? ऐई! जयन्तीभाई! परन्तु भारी अभिमान के पुतले को। हम ऐसा कर देते हैं। राजाओं को ऐसा हो जाये, हों! हम कितनी सेवा करते हैं, फलाना करते हैं, ध्यान रखते है इतना। प्रजा के ऊपर हमारी अनुकम्पा कितनी! दया कितनी! ऐसा हो जाये।

एक व्यक्ति राजा को मक्खन चुपड़ता थो। वह ... बारह महीने का हो न। कुछ करता होगा। अहो साहेब! आपके राज्य में तो आपकी कितनी वे! कितनी मछलियाँ न मारने में आप ... करते हो। आपने तो बहुत काम किया। अब वह मछलियाँ खाता हो, माँस खता हो और ऐसे वापस मक्खन चुपड़नेवाले हों बनिया इकट्ठे। तुम तो कितना काम करते हो, ओहोहो! ऐसा करते हो, ऐसा करते हो। मर गया वह कहनेवाला, मरनेवाला, सुननेवाला दोनों। अरे! कौन किसका करे, बापू! तुझे खबर नहीं, भाई! एक रजकण भी बदले, वह तेरे कारण से नहीं। एक रजकण परमाणु बदले ऐसे से ऐसे, वह तेरे कारण से नहीं। वह तो उसके कारण से बदलता है और उसके कारण से रहता है।

यहाँ क्या कहना है? **अतीन्द्रिय ज्ञान अवश्य देखता है।** भाई! इतनी बात यहाँ से उठाई। यह आत्मा भी अतीन्द्रिय है वास्तव में और अतीन्द्रिय पदार्थ को देखनेवाला ही है यह। देखने के अतिरिक्त क्या करे? भगवान! तुझे खबर नहीं, भाई! आहाहा! जिसके पास चैतन्य आँख पड़ी है ज्ञान की, वह देखे, दूसरा क्या करे? यहाँ केवलज्ञान की बात

है परन्तु वह केवलज्ञान की पर्याय आत्मा में है, इसलिए आत्मा की भी (बात) इकट्ठी है।

मुमुक्षु : श्रुतज्ञान को भी लागू पड़ा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : श्रुत(ज्ञान) तो फिर पर्याय में है, परन्तु यह तो अन्दर में पूर्ण पड़ा है। श्रुतज्ञान भी अतीन्द्रिय है। अतीन्द्रिय श्रुतज्ञान भी जानता है। साधकजीव सम्यग्दृष्टि में जो सम्यग्ज्ञान हुआ, वह राग हो उसे जानता है, वस्तु में जो क्रिया हुई, गयी-आयी, उसे जानता ही है। मुझसे यह हुई है और मुझसे यह नहीं हो सकती, ऐसा श्रुतज्ञान में होता नहीं। समझ में आया? आहाहा! भारी कठिन काम, भाई!

अमूर्त ऐसे जो धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय इत्यादि,... भी देखता है। अतीन्द्रिय को देखता है अर्थात् कि उसका स्पष्टीकरण (किया कि) अमूर्त ऐसे जो धर्मास्ति। भगवान के ज्ञान में धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल चार अरूपी हैं और आत्मा अरूपी पाँच। तथा परमाणु आदि रूपी है। भगवान अतीन्द्रिय को भी देखते हैं। ओहोहो! वह ज्ञान की पर्याय सर्वज्ञ परमात्मा केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ तीर्थंकर का आत्मा उनकी पर्याय में यह सब दिखता है, और वह पर्याय तुझमें पड़ी हुई है।

मुमुक्षु : घातिकर्म का अभाव हुआ। निमित्त में....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें निमित्त का क्या है परन्तु निमित्त में? हुआ किसके कारण? स्वयं केवलज्ञान प्रगट किया? घातिकर्म के अभाव के कारण से हुआ, आत्मा के कारण से नहीं। अब इसमें कुछ रहा नहीं।

मुमुक्षु : घातिकर्म का अभाव हो जाये, वह ज्ञान में ज्ञात होता होगा या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह तो अभाव हुआ पहले ही समय में जानता है केवलज्ञान में कि यह पर्याय परमाणु की थी, वह बदलकर, कर्म की थी वह बदलकर अकर्म की हो गयी। उसमें भगवान ने उसका क्या किया? और उसके कारण से यहाँ क्या हुआ? ऐसा है। मुखाग्र किया हुआ है न। तो इसका अर्थ क्या? आत्मा ने, अपने में अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द का भण्डार है, उसमें एकाकार होने से जहाँ केवलज्ञान प्रगट हुआ, उस समय कर्म की पर्याय कर्मरूप से थी, वह पलटकर अकर्मरूप कर्म के

कारण से—स्वयं के—जड़ के कारण से हुई है, आत्मा के कारण से नहीं। और जड़ की अवस्था बदली, इसीलिए केवलज्ञान हुआ, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु : यह जरा सा विवाद इसमें पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : विवाद कुछ नहीं पड़ता। यह तो नारद है। यह तो प्रश्ननारद। कहो, समझ में आया? घातिकर्मविहीन वह क्या आता है? आता है न वह। उत्कृष्ट है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। बात सच्ची। वह यहाँ बात करते हैं। यह ६२ में आयेगा। समझ में आया? आहाहा!

अरे! तू कितना कहाँ है, भाई! तुझे खबर नहीं। तुझमें तो केवलज्ञान की पर्याय ऐसी तो अनन्त पड़ी हैं। आहाहा! समझ में आया? क्योंकि केवलज्ञान की एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक को अमूर्त को देखे, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय केवलज्ञानी को नयी... नयी... नयी... प्रगट हुआ करती है। क्योंकि वह पर्याय है, कहीं गुण नहीं। केवलज्ञान गुण नहीं। गुण तो त्रिकाल ज्ञान है। उसकी एक समय की अवस्था केवलज्ञान उत्पन्न हुआ। और एक समय में उत्पन्न होकर व्यय होकर दूसरे समय में नया केवलज्ञान हुआ। ऐसी-ऐसी केवलज्ञान की पर्याय जब से प्रगट होती है, वह अनन्त काल द्रव्य रहेगा तब तक केवलज्ञान नया... नया... नया... प्रगट हुआ ही करेगा। ऐसी अनन्त केवलज्ञान की पर्याय का पिण्ड आत्मा में—ज्ञानगुण में अभी पड़ा है। आहाहा! समझ में आया?

अमूर्त ऐसे जो धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय इत्यादि,... को जानता है। ओहो! जाननेवाला किसे न जाने? जाननेवाला जिसका ज्ञान पूर्ण हुआ, वह किसे न जाने? समझ में आया? अग्नि किसे न जलाये। जलनेयोग्य सब वस्तुओं को अग्नि जलाकर अग्नि के आकार अग्नि होती है। यह दृष्टान्त देंगे अन्त में। अन्त में देंगे। ऐसे ज्ञानाकार में ज्ञेय जितने हैं, उतने आत्मा जाने, उसे जानने का बाकी क्या हो? समझ में आया? एक समय की पर्याय अनादि-अनन्त काल को एक समय में जान लेता है। अनादि-अनन्त। द्रव्य को, अनादि-अनन्त। क्षेत्र को, अनादि-अनन्त। काल को, अनादि-अनन्त। उसके गुण को और पर्याय को।

मूर्त पदार्थों में भी अतीन्द्रिय परमाणु इत्यादि,... भगवान तो... एक रजकण पॉईन्ट है न यह अन्तिम में (अन्तिम)। यह (शरीर) तो बहुत पॉईन्ट का (बना हुआ है), यह एक चीज़ नहीं, यह तो बहुत रजकण का जत्था दल इकट्ठा हुआ है। परमाणु हों, मिट्टी, जड़, धूल। उसमें अन्तिम पॉईन्ट जो है एक रजकण रूपी कहलाता है, उस रूपी को भी भगवान देखते हैं। एक परमाणु को भी देखते हैं। **मूर्त पदार्थों में भी अतीन्द्रिय परमाणु...** न! वास्तव में तो छहों द्रव्य अतीन्द्रिय ही हैं। क्या कहा? छहों द्रव्य अतीन्द्रिय हैं। इन्द्रियग्राह्य है नहीं। समझ में आया? उसका विचार बहुत तुम्हारे... में किया था। एक बार नागनेश की ... में। है न वह नागनेश नहीं? ऊपर गये थे, वहाँ फिर बैठे थे। नहीं वह ... वह श्मशान की उस ओर। वह दिखता है, वह तो सब स्थूल है, मूल वस्तु अतीन्द्रिय है। समझ में आया? लगभग (संवत्) १९७८ का वर्ष होगा। अतीन्द्रिय है यह वस्तु तो। परमाणु भी अतीन्द्रिय है। यह (स्कन्ध) तो विभावरूप पर्याय है और विभावरूप पर्याय के संयोग के निमित्त में यह दिखता है। समझ में आया? छहों द्रव्य अतीन्द्रिय हैं। आत्मा अतीन्द्रिय अरूपी, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, काल अरूपी और एक पॉईन्ट परमाणु भी अरूपी है अर्थात् अतीन्द्रिय है। कहो, समझ में आया? और वह अतीन्द्रिय द्वारा ही आत्मा जानने में आता है। स्वयं अतीन्द्रिय है, जगत की चीज़ें अतीन्द्रिय हैं और स्वयं अतीन्द्रिय से ज्ञात होता है और जगत के पदार्थों को भी, अतीन्द्रिय से अतीन्द्रिय पदार्थ जाने। आहाहा! समझ में आया? अरे! इसकी अपनी सम्पदा में क्या पड़ा है, उसकी इसे खबर कहाँ है? बाहर की धूल जहाँ इकट्ठी हो, वहाँ गिनने लगे कि इतने लाख हुए, इतने करोड़ हुए, इतनी धूल हुई और इतना यह हुआ। क्या कहा?

मुमुक्षु : मजा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मजा है। कहा नहीं था एक बार? ज्येष्ठ महीने की तेज धूप हो और लड़के को दूध अधिक पिलाया हो, फिर पतले दस्त हों। पतले दस्त हों और नरम विष्टा निकले। फिर ठण्डा लगे तो ऐसे चोपड़े, चाटे, ऐसा मजा है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : पूरा-पूरा इससे अनन्त गुणा कठोर। दुःख को चाटता है। ऐई! आनन्द में से दुःख निकालकर चाटता है। आहाहा! धूल में भी मजा नहीं। कहाँ मजा? मजा किसमें है? मजा अर्थात् सुख। सुख कहाँ रहता है, खबर है इसे? सुख पर में रहता है? राग में रहता है? सुख तो आत्मा में है अन्दर। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। उसमें से निकालकर आनन्द को वेदे, वह मजा है। उसे आवृत्त कर, ढँककर कल्पना खड़ी करता है। विष्टा को चाटता है, उसकी अपेक्षा जहर को चाटता है यह तो। उस विष्टा को तो शूकर भी खाये, यह तो जहर को चाटता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : .... धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह क्या है? किसमें आया है यह? यह खबर है तुमको? यह किसमें आया है? भूल गये यह। अष्टपाहुड़ में आया। सुना है न। यहाँ पहले रहे थे। ...साताशीलिया थे न, तब रहे थे। अनुकूल... भगे। स्त्री मर गयी। रसोई वहाँ अच्छी मिले। कहे, ऐसा रसोईया कर देता है, इसने बात की थी, हों!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अपने को दूसरी खबर क्या हो? किसने कहा यह? क्या कहा पहला?

धर्म, अर्थ और काम। धर्म का अर्थ कि आत्मा का ज्ञान और श्रद्धा और अनुभव करने से निर्जरा हो, वह धर्म। उसमें राग की मन्दता हो, वह पुण्य धर्म, और उस पुण्य के कारण अर्थ और काम आवे, पैसा और भोग, परन्तु सुख उन पैसा और भोग में भी नहीं और उस पुण्य परिणाम में भी नहीं। सुख तो आत्मा के आनन्द में, जानने-देखने में है। कहो, धर्म अर्थ और काम, वह दुःखरूप है। धर्म शब्द से पुण्य परिणाम वहाँ। शुभभाव, शुभभाव है न? उसे व्यवहार से धर्म कहते हैं। दुःखरूप है, वह कषाय की मन्दता। आहाहा!

कुन्दकुन्दाचार्य तो कहते हैं कि वह तो जहर है। कहो, वह शुभभाव दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के विकल्प उठते हैं, वह जहर है। आत्मा के अमृतानन्द को लूटनेवाला विकल्प है। क्या चाहिए है तुझे? जहर? जहर तो अनादि से कर रहा है, अब क्या

करना है तुझे ? अतीन्द्रिय ज्ञान जो आनन्द का कारण है, ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान तुझमें पड़ा है। ऐसे ज्ञान की नजर कर तो अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द प्रगट होगा, वह मोक्ष का कारण, वह मोक्ष का वास्तविक है। बाकी सब धूलधाणी है। समझ में आया ?

मजा, ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने सात सौ वर्ष मजा मनाया। कहो, ऐसा तो दूसरे को होता नहीं। चक्रवर्ती छह खण्ड का राज, छियानवें हजार स्त्रियाँ। वह सात सौ वर्ष के मिनिट गिनो तो एक-एक मिनिट (के फल में) असंख्य अरब वर्ष के रवरव नरक में पड़ा है अभी ब्रह्मदत्त। सातवें नरक का अपरिठाणा नारकी है। जिसकी ३३ सागर की स्थिति है। रवरव नरक कहलाता है। यहाँ सात सौ वर्ष रहा चक्रवर्ती। मात्र सात सौ वर्ष। सात सौ वर्ष के मिनिट संख्यात होते हैं। उसे छियानवें हजार (स्त्रियाँ), हीरा-माणेक के पलंग पर सोता था वह। हीरा-माणेक के पलंग, हों! उसमें एक-एक हीरा की करोड़ों की कीमत ऐसे, समझ में आया ? पलंग। ऐसे चारों ओर। ओहोहो! जिसका पुण्य बिछा हुआ इतना लगे कि रानियाँ वे कैसी! एक (मुख्य) रानी की एक हजार देव सेवा करें। ऐसी रानी के भोग। एक मिनिट का सुख कल्पित, उसके फल में एक मिनिट में असंख्यात अरब वर्ष का रवरव नरक का दुःख। सातवें नरक में पड़ा है ब्रह्मदत्त अभी। समझ में आया ? लो, यह मजा माना उसने। चन्दुभाई! आहाहा!

अरे! उसका माप सुनते हुए भी उसे ऐसा हो कि आहाहा! यह क्या है ? भगवान आत्मा ज्ञान का पिण्ड प्रभु और अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव सागर, अरे! उसका अनादर करके उस शुभ और अशुभभाव का आदर किया, उस आदर में चैतन्य की असातना (की) महास्वभाव का घात किया। ऐसे घात में, ऐसे पाप के तीव्र परिणाम हुए कि जिसके फल में जिसे सातवें नरक में जाना पड़ा। ओहोहो! जिसे चौदह हजार देव तो जिसकी सेवा करते थे रत्न की। समझ में आया ? एक-एक रत्न के एक हजार और दो हजार तो अंगरक्षक (उसके) साथ खड़े हों। वह स्वयं कुछ पहने नहीं। वस्त्र-बस्त्र देव पहनावे। यहाँ होता है न ऐसा... स्वयं खड़ा रहे ऐसे मुर्दे की भाँति। न्यालभाई! यह तो सब नाटक है। फिर वह नीचे जूते पहनावे। नीचे एक मनुष्य हो न ऐसे से ऐसे जूते पहनावे। लम्बा कोट पहनावे और कोट में हाथ डाले वह, हों! ऐसा करके हाथ डाले।

मुमुक्षु : हाथ वह पकड़कर डालता होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सब देखा हुआ है न! यह सब करते हैं वहाँ कहीं गये हों न बड़े उसमें। यह तो मुर्दा है। मुर्दे को पहनाते हैं मर गया हो उसे। आहाहा!

उसके दो हजार देव तो अंगरक्षक थे। (चौदह) रत्न के (रक्षक) चौदह हजार देव थे। वह मरकर सातवें रवरव नरक में पड़ा है अभी। ३३ सागर। यह अभी तो बहुत थोड़े वर्ष गये। अभी तो असंख्य वर्ष गये नहीं। पल्य का असंख्यवाँ भाग में असंख्य अरब वर्ष जाते हैं। ऐसे पल्योपम दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम का एक सागर... ऐसे दस क्रोड़ाक्रोड़ी (पल्योपम का) सागर, ऐसे ३३ सागर की स्थिति है उसकी। आहाहा! ऐसा अनन्त बार मजा मानकर सातवें नरक में अनन्त बार गया है। धूल में भी मजा नहीं।

भगवान आत्मा... देखो न, यहाँ तो कहते हैं, अतीन्द्रिय ज्ञान की मूर्ति प्रभु, वह अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द आया कहाँ से? भगवान को अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द प्रगट हुआ, वह अन्तर खान में पड़ा था, उसमें से खोदकर निकाला, अन्दर में से निकला। समझ में आया? ऐसे भगवान को, कहते हैं, **मूर्त पदार्थों में भी अतीन्द्रिय परमाणु इत्यादि,...** जाने। जानना... जानना... जानना। कोई परमाणु मेरा है, ऐसा है उसमें? जाना। ऐसे यह जगत की चीज़ें जानने पर कोई चीज़ उनकी है, ऐसा है? ऐसा ज्ञान में स्वभाव है कि यह मेरी है, ऐसा मानना? ज्ञेय का स्वभाव है कि तेरी है, ऐसा मान, ऐसा ज्ञेय में है? पैसा का स्वभाव है ऐसा कि तू मुझे मान, ऐसा उसमें भरा है? ज्ञान का स्वभाव है कि यह मेरे हैं, ऐसा मानना, ऐसा ज्ञान में है? उठाईगीर ने खड़ा किया नया। भ्रमणा का मिथ्यात्व का असत्य झूठा भाव खड़ा करके, वह ज्ञान जाननेयोग्य, वे ज्ञात होनेयोग्य, (उसमें) झूठा भाव किया, (कि) वे मेरे। बस, वह मिथ्यात्वभाव अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द को प्रगट नहीं करने देता और दुःख को उत्पन्न करता है। आहाहा! समझ में आया? इसमें तो सादी बात है। इसमें कहीं बहुत ऐसी नहीं (कि) न समझ आये ऐसी। बहुतों को ऐसा लगता है कि ऐसा सब सूक्ष्म होगा। नहीं समझ में आये तो? कल कहते थे न वे। ऐसा राजकोट (में) व्याख्यान चलता है, मुम्बई में चलता है। ऐसा नहीं हो। परन्तु वह भाई अब यह बात अभी ऐसी आयी। मूल बात तो हकीकत तो यह है। उसमें क्या? मूल हकीकत तो यह है। धर्म के लिये समझना हो तो

इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख, वह सब हेय है। आहाहा! जहाँ निधान पड़ा है, वहाँ नजर डाला और इन्द्रियज्ञान की रुचि छोड़, ऐसा कहने के लिये तो यह बात थी। यह सुनना, ऐसा जो ज्ञान, वह हेय है, कहते हैं। यह लोगों को कठिन पड़ता है।

मुमुक्षु : सुने बिना हो नहीं वापिस।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुने बिना ही होता है उसे। सुनना आवे अवश्य और इसके ख्याल में—ज्ञान में आवे कि ऐसा कहते हैं, परन्तु वह ख्याल अतीन्द्रिय ज्ञान का ख्याल नहीं, वह इन्द्रियज्ञान का ख्याल है। उस अतीन्द्रिय ज्ञान के ख्याल के लिये वह सहायक नहीं। ऐसी बात है। वीतराग का मार्ग परमेश्वर त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव का कहा हुआ तत्त्व, वह उसका सत्त्व है। लोगों को बेचारों को सुनने को मिलता नहीं। इसलिए उसकी गति कहाँ करना और क्या वीर्य को स्फुरित करना, इसकी खबर नहीं। यह तो अटककर मान बैठे, यह धर्म करते हैं, पूजा करते हैं, भक्ति की, दान किये, व्रत पालन किये, तपस्या, अपवास किये। धूल में भी धर्म नहीं, सुन न! वह तो सब विकल्प है, राग है। समझ में आया?

जिसमें अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द पड़ा है, उस राग के पीछे भगवान आत्मा स्वयं उसमें पड़ा है। उसकी दृष्टि और उसका अनुभव न करे, तब तक उसे धर्म नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! धर्म की क्रिया में विधिविधान का ध्यान इतना रखे (कि) कहीं भूल न पड़े। है वह सब क्रिया के भाव। उनमें भूल न पड़े, उसका ध्यान रखे। वह आत्मा अन्दर कौन है, पीछे (उसे देखता नहीं)।

मुमुक्षु : वह तो तीनों काल ऐसा का ऐसा रहे।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तीनों काल है, उसे कहाँ आया है प्रतीति में? उसे प्रतीति में यह आया, है वर्तमान ज्ञान, इन्द्रियाँ और वह। है तीनों काल, परन्तु वह प्रतीति में कहाँ आया? प्रतीति में जब तीनों काल है ऐसा का ऐसा, उसके ऊपर नजर जाये, तब उसे (भान होता है कि) यह तो ओहोहो! यह तो अनादि-अनन्त ऐसा का ऐसा तत्त्व है। यह तो क्षणिक माना है राग और पुण्य जितना आत्मा। यहाँ से नीचे जाये धबो नमः आहाहा! इन्द्रियज्ञान तो समाप्त हो जायेगा, होगा, काम नहीं करेगा वहाँ। इन्द्रिय में लक्ष्य

था, तब तक रहा, पश्चात् आवृत्त हो जायेगा। भगवान को ऐसा ज्ञान होता है कि सब ढँके हुए को भी जाने। लो, समझ में आया?

तथा द्रव्य में प्रच्छन्न काल इत्यादि... जाने। लो, ठीक! बहुत काल का है न सूक्ष्म। **(- द्रव्य अपेक्षा से गुप्त ऐसे जो काल धर्मास्तिकाय वगैरह),...** को जाने। **क्षेत्र में प्रच्छन्न अलोकाकाश के...** ओहोहो! यह लोकालोक है अरूपी यहाँ। आकाश अर्थात् यह गुलाबी रंग दिखता है, वह नहीं, हों! वह तो परमाणु है। यहाँ अरूपी एक आकाश है, अरूपी पूरी चीज़ जगत में व्याप्त हो गयी है। उसके अतिरिक्त खाली अलोक। जो गुप्त है। वह तो बाहर में है, ऐसा कहते हैं। खाली एक अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... अनन्त... आकाश पड़ा है, उसे भी अतीन्द्रिय ज्ञान की एक समय की पर्याय पूरा जाने। समझ में आया? ऐसा का ऐसे चारों ओर लो, यह चौदह ब्रह्माण्ड है चौदह लोक। पश्चात् क्या? ऐसे जाओ आगे... आगे... आगे... नजर करके, हों! चलकर नहीं। चले कहाँ? नजर करते हुए ज्ञान को ऐसे फैला कि ओहो! पश्चात्... पश्चात्... पश्चात्... पश्चात्? अनन्त योजन, अनन्त योजन, अनन्त योजन को अनन्त वर्ग करो पश्चात्... पश्चात्... पश्चात्... क्या? उस अलोकाकाश का पार नहीं होता दसों दिशाओं में। अपार अनन्त... अनन्त... अन्त जहाँ नहीं ऐसा नहीं आवे। दसों दिशाओं में है... है... है... है... है... है... है... है... आकाश। ऐसे है... है के पाररहित, परन्तु अतीन्द्रिय ज्ञान जान लेता है। समझ में आया? वह है... है... और इतना है, यह निश्चित किसने किया? वह तो ज्ञेय है। ज्ञान में वह सब ज्ञात हो जाता है। आहाहा! अलोकाकाश जो ढँका हुआ है अर्थात् बाहर से गुप्त है, उसे भी केवलज्ञान की पर्याय जानती है। ऐसी पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय जिसके ज्ञानगुण में पड़ी है और उस गुण का धारक पूरा तत्त्व है, उसका माहात्म्य करके, दृष्टि करके अनुभव करना, उसका नाम धर्म है। समझ में आया?

क्षेत्र में प्रच्छन्न अलोकाकाश के प्रदेश इत्यादि, काल में प्रच्छन्न असाम्प्रतिक पर्यायें... वर्तमान के अतिरिक्त की। वर्तमान अवस्था है न, यह जड़-चैतन्य की, वह तो ऐसे बाह्य, उसके अतिरिक्त भूत और भविष्य की अवस्थायें बीत गयी। भूतकाल में अनन्त अवस्थायें बीत गयीं प्रत्येक द्रव्य के ऊपर और प्रत्येक पदार्थ के ऊपर भविष्य

की अनन्त पर्यायें अभी होंगी। इस वर्तमान की अपेक्षा से वे गुप्त हैं। असम्प्राप्त पर्यायें प्रच्छन्न हैं। **तथा भाव-प्रच्छन्न स्थूल...** वह पहला यह लो। **प्रच्छन्न असाम्प्रतिक पर्यायें...** को जाने। आहाहा! अनादि पर्याय हो गयी, उन्हें जाने, अनन्त काल पर्याय होगी, उन्हें भी केवलज्ञान की पर्याय जानती है। समझ में आया?

तथा भाव-प्रच्छन्न स्थूल पर्यायों में अन्तर्लीन सूक्ष्म पर्यायें हैं,... एक-एक समय की पर्याय है ज्ञेय की, उसके अन्दर में सूक्ष्म अगुरुलघु (गुण की) षट्गुण हानि-वृद्धि जो सूक्ष्म है, उसे भी केवलज्ञान जाने। क्या कहा और यह? आत्मा के प्रत्येक द्रव्य की एक समय की पर्याय—अवस्था है, एक समय की पर्याय में भी अगुरुलघु की षट्गुण हानि-वृद्धि सूक्ष्म है, बहुत सूक्ष्म... बहुत सूक्ष्म। एक समय में अनन्तगुणी वृद्धि, अनन्तगुणी हानि, ऐसी षट्गुणी की पर्याय होती है। भगवान तो कहते हैं कि एक समय की पर्याय में षट्गुण हानि-वृद्धि सूक्ष्म, उसे भी केवलज्ञान की पर्याय जानती है। आहाहा! ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड, वह तेरे जेब में, घर में लेकर पड़ा है तू, कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? परन्तु गजब ऐसा धर्म का रूप! ऐसा भारी धर्म समझना कठिन पड़े अन्दर से। करना तो बाद में। यह करते हैं, भक्ति की, यात्रा कर आयें। बारह महीने में। कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा को, लो तूफान करके। ... ऊपर से। एक बार हम गये थे तो एक लड़की बारह वर्ष की थी, तीन बार चढ़ी और उतरी। नीचे से चढ़कर ऊपर, ऊपर से नीचे। तीन बार। क्या है परन्तु यह, कहा? तीन बार दादा के दर्शन हों तो बहुत धर्म हो गया। वहाँ कहाँ दादा था? दादा तो यहाँ है। इसे जानने की जो पर्याय है, ऐसी अनन्त पर्याय तो आत्मा में पड़ी है। जानने की है या नहीं? कुछ करना है? वहाँ कहाँ करना था? आहाहा! अब वह अन्तर में जाने की यात्रा की महिमा इसे आती नहीं। बाहर कूदाकूद करे, वहाँ तो आहाहा! तीन बार जा आये, एक बार घेटी (एक गाँव) से चढ़े थे, दो बार यहाँ से चढ़े थे। घेटी है न उस ओर? है न ऊपर। वह तो विकल्प करता है। ऐसी तो होनेवाली हो जड़ की पर्याय होती है। भारी कठिन बात है। ऐसे शुभभाव हों कदाचित्। अभिमान और दूसरे को दिखलाने के लिये नहीं हो तो। उस शुभभाव से पुण्य है। उसमें आत्मा कहाँ? धर्म कहाँ आया? उस पुण्य का भी जाननेवाला आत्मा है। ऐसी जानने की अनन्त पर्यायें आत्मा में पड़ी हैं। उस चैतन्य के

पर्वत पर चढ़े, तब उसकी यात्रा सच्ची होती है। ऐ.., न्यालभाई! वहाँ कहीं स्वीट्जरलैण्ड में कुछ नहीं होता वहाँ। फोटो देखे और थोड़ी देर भक्ति ॐ... ॐ करे, जाओ। गये थे या नहीं तुम? नहीं गये वहाँ? जयन्तीभाई! नहीं गये ये? ठीक। अरे! भगवान! ...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो गत वर्ष कहा था इसने। गत आये तब कहा था या नहीं? अरे! नाम यहाँ का याद आवे वहाँ तो मुझे रोना आता है। तब यहाँ रो पड़ा था। कहो, खबर है या नहीं? पूनमभाई और ये दोनों थे। बाहर बैठे थे। कहे, याद आता है, आपका नाम याद आता है। यहाँ तो सब छोटे-छोटे थे न! अब सब करोड़ोंपति होकर बड़े लम्बे हो पड़े लगते हैं। हो पड़े लगते हैं, ऐसा कहा। समझ में आया?

मुमुक्षु : सच्चे लगते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा अर्थात्? रुपये होंगे परन्तु उसमें उसके कहाँ हैं वे? जड़ के हैं। पूछो तब जड़ के पैसे हैं या चैतन्य के?

मुमुक्षु : तत्त्व की अपेक्षा से तो जड़ के।

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे, वे जड़रूप हैं और जड़ के हैं या आत्मा के हैं? आत्मा के हों तो जड़ अरूपी हो जाये।

मुमुक्षु : असद्भूतव्यवहारनय से।

पूज्य गुरुदेवश्री : असद्भूत अर्थात्? झूठाबोला ने झूठा 'मेरे हैं' ऐसा कहा जाता है। मलूकचन्दभाई! कोई कहता था तुम्हारा वह नहीं वह? व्यक्ति वहाँ आया था न पूनमचन्द का राजेन्द्र। कि न्यालभाई का वैभव वहाँ! सब कहे, उसके पास पैसे पूनम के पास दो करोड़, ढाई करोड़। ऐसे दो करोड़ उसके पास। परन्तु वैभव कि ओहोहो! उसका मुख फाट हो गया था। अब धूल में भी नहीं। वह किसी ने की थी। किसने की थी नहीं? किसी ने की थी। किसी ने बात की। अपने कहाँ सुनने गये थे? राजेन्द्र वह? कैसा नाम? ठीक। वह वहाँ गया था भाई के पास, न्यालभाई के पास। और यहाँ तुम्हारे पूनम का वैभव। आहाहा! न्यालभाई का वैभव! करोड़ों रुपये तो ठीक परन्तु उसका वैभव! ढींकण और फींकणा होगा सब धूल का।

वैभव तो यहाँ आत्मा में है। यह अभी पुस्तक पढ़ी या नहीं? आयी है या नहीं आत्मवैभव? आयी? आत्मवैभव ली? आत्मवैभव नहीं होगा। देना एक। देना तो सही। उसमें धूल के वैभव के समक्ष यह वैभव कैसा है, यह (खबर पड़े)। आत्मवैभव अभी प्रकाशित हुआ है। आत्मप्रसिद्धि होगी या नहीं? पहली नहीं होगी। नहीं। इसे कहाँ दरकार है सब? पुस्तकें यहाँ की कितनी, वे भी नहीं रखी घर में? कहो, समझ में आया? पुस्तक सब रखते हैं, हों! केशवभाई तो बहुत रखते हैं। पुस्तकें रखते हैं।

यहाँ कहते हैं, काल, भाव से। ओहोहो! क्या परन्तु सूक्ष्म वस्तु आत्मा! एक परमाणु है न, यह परमाणु इसका? एक रजकण पृथक्, उसमें अनन्त गुण हैं। उसमें एक समय की रंग की पर्याय, एक पर्याय में अनन्त सूक्ष्मता पड़ी है। क्या कहा यह? एक परमाणु है वह टुकड़ा—पॉईन्ट, एक परमाणु में अनन्त गुण-शक्ति(रूप) स्वभाव। उसकी एक समय की एक गुण की एक पर्याय। एक पर्याय में अनन्त षट्गुणी हानि-वृद्धि की सूक्ष्मता अविभाग प्रतिच्छेद पड़े हैं। भारी कठिन! क्या कहा, समझ में आया यह? कहा जाता है वह पकड़ में आता है या नहीं? ऐसे-ऐसे अनन्त गुण में एक-एक पर्याय, एक-एक पर्याय में अनन्त सूक्ष्म हानि-वृद्धि प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण की प्रत्येक पर्याय में हो रही है। उसे भगवान जानते हैं, ऐसा कहना है। आहाहा!

ऐसी केवलज्ञान की पर्याय, ऐसी अनन्त पर्यायें भगवान आत्मा में है अन्दर घर में। आहाहा! उस अतीन्द्रिय की बात करके अन्दर द्रव्य के स्वभाव का आश्रय ले, ऐसा कहना है मूल। समझ में आया? बापू! तेरे खजाने में कमी नहीं। खजाना भरा है बड़ा परन्तु अब उस खजाने की खबर नहीं होती, खजाने की महत्ता नहीं होती। महिमा इस धूल की बाहर की। और या तो पुण्य कुछ किया हो दया, दान और व्रत। आहाहा! हमने तो धर्म किया। समझ में आया? धूल में भी धर्म नहीं, सुन न! वह तो पुण्य है, विकल्प है। समझ में आया? पोरो करे पोरो। अभी अट्ठाई की थी, अभी सोलह उपवास किये थे, अभी शान्तिसूत्र बैठाये थे और पचास हजार, ईक्यावन हजार खर्च किये अभी आठ दिन में। क्या है परन्तु अब? पैसे कहाँ तेरे बाप के थे तो तूने खर्च किये? वे तो जड़ के हैं। बाप के न कहे। मलूकचन्दभाई के न कहे। सुमनभाई के पास हो तो रामजीभाई के पास हो, ऐसा कहे। उसके बाप के नहीं, परन्तु उसके नहीं, ऐसा कहते हैं। पैसे उसके

कहाँ थे? वे तो जड़ के हैं। उस जड़ को मैंने प्रयोग किया, ऐसा स्वामीपना, वही मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया? झूठा भाव है। जड़ का स्वामी तू है? जड़ स्वतन्त्र जगत के पदार्थ हैं। इसकी टीका (आलोचना) आयी है, पत्र (आया है)। महाराज कहते हैं, सब स्वतन्त्र द्रव्य है, स्वतन्त्र द्रव्य है। इसलिए फिर उसे मुनिपना हो तो उसे वस्त्र (त्याग) बिना भी मुनिपना हो। क्योंकि द्रव्य स्वतन्त्र है। ऐसा करके आलोचना की है जैनगजट में। भगवान! गजब परन्तु तेरी बात! द्रव्य स्वतन्त्र है। चारित्र भी वस्त्र-पात्र हो तो हो सकता है, उसमें द्रव्य स्वतन्त्र है। अरे... भगवान! तू क्या कहता है यह? क्योंकि वह द्रव्य कहाँ कोई अवरोधक है? ऐसा कहे। अरे! भगवान! सुन तो सही प्रभु! तुझे खबर नहीं।

आत्मा की दृष्टि और ज्ञान की दशा और जहाँ अन्तर में चारित्रदशा हो, उसे वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प होता नहीं। विकल्प हो, वहाँ तक साधुपना है नहीं। उसे वस्त्र-पात्र की वृत्ति नहीं होती। इससे वृत्ति उसे छोड़नी चाहिए। वस्तु तो छूटी हुई पड़ी है। चारित्र हो अन्तर में हो और बाह्य में वस्त्र-पात्र पड़े हों, उन्हें लेने की वृत्ति (आवे तो) तीन काल में वह साधुपना नहीं। समझ में आया? यह वस्त्र-पात्र है इसलिए साधुपना नहीं, ऐसा नहीं। परन्तु वह वस्त्र-पात्र रखने की वृत्ति जो खड़ी है, तब तक साधुपना नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! कठिन बातें, भाई! बात को समझे नहीं और जहाँ-तहाँ चुभन उल्टा डाले।

यहाँ कहते हैं कि भाई! उन सबको सूक्ष्म अन्तर्लीन पर्याय पड़ी है, उसे भी भगवान का ज्ञान जानता है। **उन सबका—जो कि स्व और पर के भेद से विभक्त हैं,** लो! **उनका वास्तव में उस अतीन्द्रिय ज्ञान के दृष्टापन है;...** लो! उस अतीन्द्रिय ज्ञान से सब दिखता है। **(अर्थात् उन सबको वह अतीन्द्रिय ज्ञान देखता है)...** लो! **क्योंकि वह (अतीन्द्रिय ज्ञान) प्रत्यक्ष है।** लो! समझ में आया? ऐसी अतीन्द्रिय ज्ञान की समय की अनन्त पर्यायें आत्मा के ज्ञान में और ऐसा साथ में अनन्त आनन्द, वह आत्मा के अन्दर वर्तमान आनन्द में पड़ा है। इसलिए ऐसे द्रव्य की अन्तर दृष्टि कर, अनुभव कर तो तुझे आनन्द और धर्म होगा, इसलिए यह कहा जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ४, शुक्रवार, दिनांक २५-१०-१९६८
गाथा - ५४-५५, प्रवचन - ४६

...यह अतीन्द्रिय आनन्द का कन्द भगवान अन्दर में फँस गया है। शरीर मेरा, यह मेरा मानकर। भाई! तेरा है, वह तुझमें पूर्ण है। तेरा वह तुझसे दूर नहीं हो सकता। वह यहाँ अतीन्द्रिय ज्ञान की बात की है। ... ओहो! मुझमें अतीन्द्रिय ज्ञान इतना पड़ा है कि एक समय में अतीन्द्रिय ज्ञान-आनन्द के कारण सहित प्रगट हो। वह प्रगट हुए वे परमात्मा इस प्रकार से सुखी हुए हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि **जिसे अनन्त शुद्धि का सद्भाव प्रगट हुआ है, ऐसे...** उसके प्रति जो नियत है। कौनसा? यह प्रगट हुआ ज्ञान। आत्मा के... है न अक्षर? उसके अर्थ में है, देखो! उसके अर्थ में है। **(अर्थात् जो ज्ञान आत्मा के साथ ही लगा हुआ है - आत्मा के द्वारा सीधा प्रवृत्ति करता है),...** ऐसा। वह आत्मा का अतीन्द्रिय एक समय का ज्ञान, वह आत्मा के साथ लगा हुआ है। आत्मा के साथ सम्बन्ध धराता है, दूसरे के साथ सम्बन्ध धराता नहीं। समझ में आया? **जिसे अनन्त शुद्धि का सद्भाव प्रगट हुआ है,...** देखो! यह बात सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त ऐसी बात कहीं पर्याय की बात तीन काल में कहीं होती नहीं। सब गप्प गप्प मारते हैं सब ही। आत्मा को ऐसा करो, आत्मा को ऐसा करो, ध्यान करो, पहिचाना और यह करो। सब उल्टी दृष्टि है। समझ में आया?

आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट करने के लिये उसका साधन जो अतीन्द्रिय ज्ञान, उसका साधन वह आत्मा। ऐसा आत्मा भगवान पूर्णानन्द प्रभु शक्ति का ध्रुव सत्त्व है, उसके साथ केवलज्ञान पर्याय सम्बन्ध धराती है। केवलज्ञान, वह आत्मा-आश्रित है। और उसके साथ लगा हुआ है। त्रिकाल आत्मा ज्ञानानन्द, उसके साथ केवलज्ञान की पर्याय लगी हुई है। समझ में आया? ओहोहो! दुनिया कहाँ हैरान-हैरान हो जाती है। उसमें शरीर कुछ ... हो, २० वर्ष का और २५ वर्ष का शरीर... इन्द्रियाँ फूटे वह तो जड़ के अंकुर फूटे। जैसे वृक्ष के फूटते हैं न। जैसे वृक्ष के अंकुर फूटते हैं, उसी प्रकार यह

जड़ के फूटे इन्द्रियाँ। प्रभु तो अन्दर भिन्न चैतन्य है। उसे फूटना कहीं बाहर के फूटने से है नहीं। उसका फूटना उसके अंकुर में उसकी पुष्टि तो अन्दर आनन्दकन्द अनादि-अनन्त जो ज्ञानस्वरूप सम्बन्ध है, उसके साथ सम्बन्ध पर्यय करे, उसे ज्ञान लगे तो शान्ति हो। तो समकित हो, ज्ञान हो, चारित्र हो, शान्ति हो, अतीन्द्रिय ज्ञान-आनन्द हो। समझ में आया? दूसरा कोई उपाय तीन काल में है नहीं। समझ में आया?

जिसे अनन्त शुद्धि का सद्भाव... अस्ति **प्रगट हुआ है,..** ऐसा। अहो! आत्मा की ज्ञानदशा एक समय की आत्मा के अवलम्बन से प्रगट हुई, जिसकी अनन्त शुद्धि है और ऐसा जो ज्ञान, सामान्य जो आत्मा अनादि-अनन्त चैतन्य है, ऐसा जो आत्मा उसे लगा हुआ, उसके आश्रय से प्रगट हुआ है और उसके सम्बन्ध में रहा हुआ अतीन्द्रिय ज्ञान है। कोई शरीर और इन्द्रिय और मन तथा विकल्प के सम्बन्ध में नहीं। समझ में आया? **'अक्ष' नामक आत्मा के प्रति...** अक्ष है न आत्मा का नाम अक्ष भी है, इन्द्रियज्ञान अक्ष अर्थात् इन्द्रिय द्वारा जानता है। अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष ज्ञान अक्ष अर्थात् आत्मा द्वारा जानता है, ऐसा। अक्ष तो दोनों को कहा जाता है। इन्द्रिय और आत्मा को। यहाँ आत्मा को अक्ष कहना है।

'अक्ष' नामक आत्मा के प्रति जो नियत है (अर्थात् जो ज्ञान आत्मा के साथ ही लगा हुआ है - आत्मा के द्वारा सीधा प्रवृत्ति करता है),... प्रत्यक्ष है न। समझ में आया? लोकालोक है, इसलिए यह केवलज्ञान होता है, ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो आत्मा के साथ लगा हुआ है, आत्मा से सीधा प्रगट हुआ है। ओहो! ऐसा जो एक समय में तीन काल-तीन लोक जिसकी पर्याय में समा जाते हैं, स्व और पर दोनों। अरे! उसके माहात्म्य की दृष्टि कहाँ है इसे? बाहर के पदार्थ के माहात्म्य के समक्ष अन्तर का माहात्म्य इसे आता नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ज्ञान ज्ञेयप्रमाण है, ऐसा....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह आया है, वह क्या है? जितना ज्ञेय है, उतना यहाँ ज्ञान स्वयं ज्ञेय का ज्ञान करता है आत्मा। ऐसा है। जितना ज्ञेय है, उसका ज्ञान करता है। इसलिए ज्ञान ज्ञेय प्रमाण है, ऐसा कहा है। परन्तु उससे क्या ज्ञेय में घुस गया है पर में? ज्ञेय के आधार से ज्ञान है? कहो। परज्ञेय है, इसलिए ज्ञान है? वह ज्ञान की पर्याय

आत्मा के साथ सम्बन्ध धराती है, ऐसा कहते हैं। आत्मा को लगा हुआ है। आहाहा! समझ में आया? वह आत्मा इतना है कि जो अतीन्द्रिय ज्ञान की पर्याय प्रगट करे और आनन्द का साधन वह है और वह ऐसा का ऐसा ज्ञान और आनन्द अनन्त काल रहा करे, उसका साधन वह आत्मा है। समझ में आया? ओहोहो! जिसे आत्मा के अतिरिक्त परपदार्थ में कुछ भी विशेषता, अधिकता, सुन्दरता, विचित्रता, मनोज्ञता लगे, उस जीव को आत्मा प्रिय नहीं लगता। समझ में आया?

आत्मा भगवान, उसके द्रव्य-गुण-पर्याय शुद्ध, उसकी महिमा के अतिरिक्त जो बाहर की चीजों में ललचाये... ललचाये... ललचा जाये कि आहाहा! यह सुन्दर शरीर, यह सुन्दर इन्द्रियाँ और सुन्दर मकान और सुन्दर कीर्ति और सुन्दर चेष्टा शरीर की। कहते हैं कि भगवान! वह सब तेरे आत्मा को खून करने की दृष्टि है। मैं ऐसा आत्मा, मैं सुखी का आदर करूँ, ऐसा नहीं, ऐसा माना। मैं तो इसे (बाह्य चीज़ को) आदर करूँ, ऐसा आत्मा हूँ। समझ में आया? 'क्षण क्षण भयंकर भावमरण प्रवाह में चकचूर हूँ।' श्रीमद् ने तो १९ वर्ष में कहा। भगवान! वह विकल्प जो रागादि, शुभादि उठे, उसमें मुझे मिठास है, वह मुझे ठीक है—ऐसी दृष्टि क्षण-क्षण में चैतन्य के आनन्द के ज्ञानप्राण को लूटती है, मरण होता है। समझ में आया? ऐसा भगवान अतीन्द्रिय ज्ञान, ऐसा जो आत्मा, उसकी प्रेम और दृष्टि, रुचि छोड़कर जगत के पदार्थ की जिसे अन्तर में प्रियता और महत्ता—महिमा और मान आता है, वह आत्मा के स्वभाव की अस्ति इतनी अतीन्द्रिय ज्ञान है, उसे मानता नहीं। समझ में आया? वह यहाँ बतलाते हैं, ऐसा ज्ञान।

ओहो! ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान जो आनन्द का साधन, ऐसी-ऐसी अनन्त पर्याय ज्ञान और आनन्द की, भगवान! तेरे पेट में, गर्भ में पड़ी है। ओहोहो! यह उसमें से प्रसूत होती है। गर्भ में हो, वह प्रसव हो न? तेरे पेट में आत्मारूपी चैतन्य पेट बड़ा ज्ञानानन्द, वह अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द, उसमें सब अनन्त-अनन्त गुण पड़े हैं। ओहोहो! ऐसा आत्मा, उसकी रुचि और प्रेम छोड़कर अनादि से इन्द्रियज्ञान और इन्द्रियसुख में प्रेम किया, वह भटकने का रास्ता आदर किया है। दुःखी होने का रास्ता ग्रहण किया है। समझ में आया?

जो (इन्द्रियादिक) अन्य सामग्री को नहीं ढूंढता... कैसा है भगवान आत्मा का

ज्ञान और वह आत्मा? कि अपनी ज्ञान और आनन्द की दशा के लिये अन्य इन्द्रियों आदि के साधन को, निमित्त को शोधता नहीं। समझ में आया? देखो! आत्मा मानना, आत्मा मानना, वह तो दुनिया सब बहुत कहती है। परन्तु ऐसा आत्मा मानना, उसने आत्मा माना कहलाये। मूल तो सब आत्मा आत्मा करे, लो! ध्यान करो आत्मा का, बस ध्यान करो। आँख बन्द करके ऐसा करो। क्या करे परन्तु? आत्मा कौन है, उसकी खबर बिना ध्यान किसका करे? समझ में आया? आँख बन्द कर जाओ, शून्य हो जाओ, लो! शून्य ही है। भान बिना का आत्मा चैतन्य राग में पड़ा है, वह शून्य ही है।

अहो! उसकी सम्पदा! अहो! उसका ज्ञान! अहो! उसका आनन्द! अहो! उसकी ऋद्धि! अहो! उसके स्वभाव की अनन्तता का बेहद का माहात्म्य! ऐसे आत्मा की जिसे अन्तर रुचि और दृष्टि नहीं, उसे अतीन्द्रिय ज्ञान का माहात्म्य नहीं आता। समझ में आया? आहाहा! देखो न, यहाँ तो इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ शास्त्रज्ञान की भी जिसे अधिकाई लगे, विशेषता लगे (कि) वृद्धि हो गया हूँ, वृद्धि में अधिक हुआ, ऐसा लगे, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ओहोहो!

भगवान के स्वभाव में भरा हुआ तत्त्व, उसकी समझ करने से तो, एकाग्र होने पर तो स्वयं के आश्रय से ही अनन्त ज्ञान और आनन्द प्रगट होता है। उसे कोई इन्द्रिय आदि या इन्द्रिय से होते मन के ज्ञान का भी उसे आधार नहीं, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया इसमें? ऐसा वीतरागमार्ग है, ऐसा मार्ग ही है। वीतराग ऐसा मार्ग है, इसलिए मार्ग ही ऐसा है। परन्तु उस मार्ग की जिसे खबर भी नहीं। ... के ऊपर आया नहीं, वह किसकी—आत्मा की खबर किस प्रकार ले? ओहो! मेरी पूँजी, पूँजी तो मैं स्वयं आत्मा हूँ। वह तो अनन्त-अनन्त ज्ञान और आनन्द अतीन्द्रिय से भरपूर है। मेरे अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द के प्रगट होने के लिये, अरे! सम्यग्दर्शन प्रगट होने के लिये इन्द्रिय आदि के साधन की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। जैसे अतीन्द्रिय केवलज्ञान इन्द्रियों को शोधता नहीं, वैसे सम्यग्दृष्टि जीव अपने आत्मा को अवलम्बता हुआ विकल्प को भी पकड़ता और शोधता नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

और जो अनन्तशक्ति के सद्भाव के कारण... भगवान आत्मा अपने में जो बेहद आनन्द और ज्ञान पड़ा है, उसके अवलम्बन से जो दशा प्रगट की, कहते हैं अनन्त

शक्ति का सद्भाव है, उसे पर्याय में। समझ में आया? जिसकी पर्याय में अनन्त शक्ति प्रगटी है। स्वभाव है न उसका। बेहद ज्ञान जिसे प्रगट हुआ। कितना? अनन्त को पाया है, बेहदपने को प्राप्त है। उसे हद क्या? ओहो! बेहद ऐसा भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का सागर उसे लगा हुआ, उसके आश्रय से हुआ जो ज्ञान पूर्ण, उसकी क्या बात करना? बेहद है, हद ही नहीं, उसकी कोई मर्यादा नहीं। समझ में आया?

(-बेहदता को) प्राप्त है, ऐसे उस प्रत्यक्ष ज्ञान को—ऐसा जो भगवान आत्मा, उसके ज्ञान की परिपूर्ण पर्याय को **जैसे दाह्याकार दहन का अतिक्रमण नहीं करते,...** जलनेयोग्य लकड़ी आदि अग्नि को छोड़ते नहीं। अग्नि सबको जलाकर भस्म करके अग्नि का आकार हो जाता है। **उसी प्रकार ज्ञेयाकार ज्ञान का अतिक्रम न करने से...** ज्ञेयाकार ज्ञान को उल्लंघ नहीं सकते। जितने ज्ञेय हैं, वे आत्मा की ज्ञान की शक्ति को उल्लंघते नहीं, ज्ञान की हद से बाहर नहीं जा सकते। वे ज्ञान की हद बाहर नहीं जा सकते। क्या कहते हैं? ज्ञेय तीन काल के द्रव्य-गुण-पर्याय है, उनका यहाँ ज्ञान हो जाता है। उस ज्ञान की पर्याय में ज्ञेयाकार हद को उल्लंघते नहीं। उसी प्रकार से वहाँ उनका परिणमन होता है। समझ में आया? यह ज्ञान की मर्यादा के बाहर नहीं जा सकते। ज्ञान में ज्ञात हो जाते हैं, यह सरल अर्थ कर दिया। समझ में आया?

यथोक्त प्रभाव का अनुभव करते हुए... देखो! ऐसी ज्ञान की ... उसे ज्ञान अनुभवता हुआ। उसका प्रभाव ज्ञान की पर्याय का अनन्त है। एक समय की दशा, हों! ऐसी अतीन्द्रिय सर्वज्ञदशा परमात्मदशा प्रगट हुई, वह एक समय के ज्ञान का प्रभाव उसे अनुभवता अथवा **(-उपर्युक्त पदार्थों को जानते हुए कौन रोक सकता है।)...** ज्ञान अपनी पर्याय से जहाँ पूर्णता से प्रगट हुआ, उसे जानने में न आवे कोई, ऐसा कैसे हो सकता है? सब जाने। उसके जाननेवाले को कौन रोक सके? समझ में आया? ऐसा आत्मा एक समय में परिपूर्ण ज्ञान, आनन्द को प्राप्त करे, ऐसे आत्मा को आत्मा पूरा हुआ, ऐसा कहा जाता है। समझ में आया?

... दूसरा कुछ प्रगट करनेयोग्य (नहीं)। आहाहा! इसमें व्यापार-धन्धा कब करना? नौकरी कब करना? ... पास में जाना, करना... यह ग्रहण करना, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। भाई! यह कहाँ कर सकता है पर को? अन्दर में संकल्प-विकल्प होते हैं,

उन्हें छोड़कर, रुचि उसे आत्मा अखण्डानन्द प्रभु है, (उसकी करना)। समझ में आया? वस्तु स्वभाव ऐसे अतीन्द्रिय अनन्त पर्याय से भरपूर भगवान, उसके ऊपर जिसकी दृष्टि है और उसमें एकाग्र होने की भावना है, उससे अतीन्द्रिय ज्ञान प्रगट होता है, इसलिए वह स्वभाव-सन्मुख ढला हुआ ज्ञान स्वभाव में एकाग्र होता है। सम्यग्दृष्टि का ज्ञान द्रव्य की ओर सदा झुका हुआ ही होता है, ऐसा कहते हैं। पर्याय हो, रागादि हो, निमित्त हो, परन्तु उस ओर ढला हुआ नहीं। उसे जानता हुआ ज्ञान झुका है स्वभावसन्मुख। समझ में आया? बहुत बात बड़ी और बहुत बात थोड़ी। आहाहा!

कहते हैं कि जिसकी ज्ञान की एक समय की पर्याय बेहदरूप से परिणमी है। बेहदरूप से परिणमी है। उसके ज्ञानगुण की बेहदता का क्या कहना? जिसकी आनन्द की पर्याय बेहदपने को प्राप्त है, उसके आनन्दगुण के बेहदपने का क्या कहना? जिसकी वीर्यदशा बेहदपने को पर्याय में ज्ञान के साथ प्राप्त है, उसके वीर्यगुण की बेहदता का क्या कहना? जिसकी प्रभुता एक समय में पूरी प्रगट हो गयी है, बेहद दशा हुई है, ऐसी प्रभुता के अन्तर गुण की शक्ति प्रभुता की, उसे क्या कहना? समझ में आया? जिसकी पर्याय में स्वच्छता प्रगटी है, अनन्त-अनन्त बेहदवाली, ऐसी अनन्त स्वच्छता का जो स्वच्छता नाम का गुण है, उसकी बेहदता का क्या कहना? आहाहा! कहो, समझ में आया? परन्तु बाहर में कमाने के लिये, घूमने के लिये, खाने के लिये कहीं से सुख मिले, कहीं से यह मिले। देखो न, कहाँ और कहाँ अमेरिका से भटक आये न? यह अमेरिका बहुत जाता है। जहाँ-तहाँ सुनते हैं। यह फलाना अमेरिका जाता है, फलाना अमेरिका गया। लो ठीक!

मुमुक्षु : वहाँ वेतन अधिक मिलता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह तो कहते थे। दो हजार और तीन हजार वेतन मिले। यहाँ गिनती एक व्यक्ति कहता था।

मुमुक्षु : १३-१३, १४-१४ हजार का वेतन।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, मिले ऐसा। वहाँ भी मिलता है मुम्बई में नहीं भाई यह दलीचन्द का पुत्र? छोटा। अपने यहाँ है न। १०-१२ हजार वेतन है, लो! १२ हजार कहता था एक बार।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ होकर आया परन्तु अब यहाँ है न। अभी वहाँ होंगे।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा हो भले, परन्तु वह कितना कहते हैं। एक व्यक्ति कहता था अभी कोई। वहाँ ३-३ हजार वेतन। यहाँ यदि ७००-८०० मिले तो यहाँ रह जायें। एक व्यक्ति कहता था। कोई कहता था। कोई कहता था। यहाँ बहुत लोग आते हैं न। वहाँ ३-३ हजार वेतन मिले, ४ हजार मिले, ५ हजार। परन्तु इस देश में यदि हमको हजार, पन्द्रह सौ, बारह सौ मिलें तो हम (यहीं) रह जाये। परन्तु नौकरी बहुत खोजी, किन्तु कहीं मिलती नहीं। अन्त में वहाँ जाना पड़ेगा। आहाहा! बहुत बातें करनेवाले यहाँ आते हैं न। भाई! अब क्या है यह? यहाँ आर्यदेश में जो सत् का साधन है श्रवण, ऐसा वहाँ कहीं है नहीं। वेतन बड़ा दस हजार का या पन्द्रह हजार का हो या बीस हजार का हो, उसमें क्या है परन्तु अब? धूल का ढ़ेर श्मशान के लड्डू हैं। आहाहा!

महा परमात्मा स्वयं। आहाहा! क्या कहते हैं, देखो न! कहते हैं कि जिसकी ज्ञान की पर्याय बेहदता को प्राप्त है। तो उस प्रमाण आनन्द की पर्याय बेहदता को प्राप्त है। बेहद-अपरिमित दशा को प्राप्त है। ओहो! ऐसी जिसकी पर्याय की प्राप्ति, उसका जो लाभ जिसमें से हो, उसके द्रव्य और गुण की बेहदता को क्या कहना? वहाँ से आते हैं। उस अमेरिका में नौकरी से आते हैं, ऐसा कहे न, यहाँ द्रव्य में से आते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अरे! ऐसे द्रव्य का इसने माहात्म्य कभी किया नहीं। पर का माहात्म्य तो ठीक, परन्तु एक समय की पर्याय का माहात्म्य करने जाये तो द्रव्य का माहात्म्य उड़ जाता है। कहो, समझ में आया? आहाहा! केवलज्ञान की पर्याय इतनी! उसका जहाँ बहुत माहात्म्य करने जाये तो द्रव्य में ऐसी अनन्त पर्यायें पड़ी, उसका माहात्म्य उड़ जाता है। वह तो प्रगट करने के लिये उपादेय कहा है। समझ में आया? आश्रय लेने और माहात्म्य के लिये नहीं। माहात्म्य तो भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु है, उसका आश्रय और माहात्म्य करनेयोग्य है। आहाहा!

(अतीन्द्रिय ज्ञान) उपादेय है। अर्थात् प्रगट करने के योग्य है। प्रगट वह करनेयोग्य

है, बाकी कोई (प्रगट करनेयोग्य नहीं)। प्रगट हो कहाँ से? कि द्रव्यस्वभाव में से। गजब बातें, भाई! यह मार्ग ऐसा लगता है लोगों को... दूसरे उन त्यागी को ऐसा लगता है कि यह तो एक निश्चय की बातें करते हैं। परन्तु उसके साथ यह सब होता है और उससे लाभ होता है, यह बात करते नहीं। परन्तु उससे होता नहीं, सुन न! संथारा करना, अपवास करना... समझ में आता है न? विधिपूर्वक हमेशा कियायें करना, सामायिक विधिपूर्वक की (करना), प्रौषध, सामायिक विधिपूर्वक करना। परन्तु सामायिक, प्रौषध आये कहाँ से तेरे घर में? अभी आत्मा कौन है, उसका भान नहीं होता और यह सामायिक, प्रौषध आये कहाँ से? समझ में आया? आहाहा! दाना पानी में डाले तब तो दाना चौड़ा हो। पत्थर पानी में डाले तो? यह क्या कहते हैं वह नहीं? पानी में ऐसे डालते हैं न। सब्जी बनाना हो तो डाले न पानी में डुबोवे। दाना चौड़ा हो। पत्थर? प्रौषध यहाँ तो प्रौषध के ऊपर से विचार आया। ऐसा कि आत्मा पोषण पावे। परन्तु कहाँ पोषण पावे? पत्थर के ऊपर से? विकल्प करे उसमें?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि होकर उसमें रमे तब पोषित और पुष्ट हो। समझ में आया? यह प्रौषध करके बैठे हैं, लो! अभी आठ पहर के प्रौषध हैं और बारह पहर के प्रौषध हैं। किसके प्रौषध परन्तु? पत्थर के? पत्थर को पानी में डाले, छुयेगा नहीं पानी उसे। पुष्ट तो कहाँ से होगा? इसी प्रकार विकल्प की क्रिया और बाह्य के त्याग के ऊपर की दृष्टि, वह तो दृष्टि मिथ्यात्व है। वहाँ आत्मा पुष्ट कहाँ से होगा? ऐई! भगवानजीभाई! प्रौषध-बौषध कितने किये हैं न! बहुत किये हैं। वे ऐसा कहते हैं। पोषण अर्थात् पोषो अर्थात् प्रौषध-पोषण-पोषण। परन्तु पोषण किसका? वस्तु के स्वभाव की पर्याय का? वस्तु की तो खबर नहीं। जिसमें से आनन्द आवे, जिसमें से ज्ञान आवे, वह चीज़ कौन है, उसकी तो खबर नहीं। तो खबर बिना एकाग्रता का पोषण आयेगा कहाँ से? उसकी एकाग्रता विकल्प में है। वृत्ति में राग में एकाग्र है, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह बात सच्ची। यह तो बात सच्ची, उसकी नजर वहाँ है। इसलिए कुछ स्त्री, पुत्र छोड़े, यहाँ बैठे हैं, मन्दिर में बैठे हैं, उपाश्रय में बैठे, ऐसा लगे।

परन्तु लगे, तू कहाँ बैठा है, ऐसा लगता है उसे ? वह तो शरीर बैठा वहाँ। परन्तु तू कहाँ दृष्टि में बैठा है ? तेरी दृष्टि में क्या बैठा है ? उसे विकल्प और वृत्ति जो उठी, वहाँ उसकी दृष्टि बैठी है, वह तो मिथ्यात्व में बैठा है। कहो, समझ में आया ?

भगवान आत्मा... यह देखो न कितनी बात करते हैं ! अतीन्द्रिय ज्ञान बेहदपना, उसे प्रगट कर, उसे उपादेय जान। प्रगट करने की अपेक्षा से, हों ! उपादेय तो द्रव्यस्वभाव है। क्योंकि ऐसा जहाँ केवलज्ञान प्रगट करने के लिये उपादेय जाने, अंगीकार (करने के लिये जाने), तब उसे द्रव्यस्वभाव अंगीकार हुए बिना केवलज्ञान की पर्याय उपादेयरूप से प्रगट होती ही नहीं। समझ में आया ?

★ ★ ★

गाथा - ५५

अब, इन्द्रियसुख का साधनभूत (-कारणरूप) इन्द्रियज्ञान हेय है—उसमें अतीन्द्रिय ज्ञान के सुख के साधनभूत अतीन्द्रिय ज्ञान उपादेय है, ऐसा कहा। वहाँ अतीन्द्रिय सुख के साधनभूत अतीन्द्रिय ज्ञान उपादेय है, ऐसा कहा था। यहाँ **इन्द्रियसुख का साधनभूत इन्द्रियज्ञान हेय है...** ऐसा कहते हैं। लो, ठीक ! ५५ (गाथा)।

जीवो सयं अमुत्तो मुत्तिगदो तेण मुत्तिणा मुत्तं।
ओगेण्हित्ता जोग्गं जाणदि वा तं ण जाणादि॥५५॥

स्वयं अमूर्तिक जीव किन्तु यह, मूर्तिक तनगत इन्द्रियगम्य।
मूर्तिक को अवग्रहादि क्रम से, जाने अथवा रहे अगम्य॥५५॥

आहाहा ! अरे ! मूर्त शरीर को प्राप्त हुआ, तब लक्ष्य और दृष्टि वहाँ पहुँची है, देखो। इन्द्रियज्ञानवाले को यह शरीर के ऊपर लक्ष्य है। क्योंकि इन्द्रियाँ शरीर के अवयव हैं। समझ में आया ? भगवान ज्ञानानन्द शरीर के ऊपर उसकी दृष्टि नहीं।

कहते हैं, **अन्वयार्थ :- स्वयं अमूर्त ऐसा जीव...** स्वयं भगवान तो अरूपी है। रंग, गन्ध, रस, स्पर्शरहित प्रभु आत्मा अमूर्त वस्तु है। ऐसा **मूर्त शरीर को प्राप्त होता हुआ,...** यह मूर्त जड़ है, उसमें उसका लक्ष्य जाता है इन्द्रियों के ऊपर, इन्द्रियज्ञान में,

ऐसा कहते हैं। भगवान अरूपी, यह रूपी। इस रूपी को प्राप्त हुआ **मूर्त शरीर के द्वारा योग्य मूर्त पदार्थ को अवग्रह करके...** मूर्त पदार्थ का अवग्रह करके **उसे जानता है,...** है न नीचे? **मतिज्ञान से किसी पदार्थ को जानने का प्रारम्भ होने पर पहले ही अवग्रह होता है...** अवग्रह अर्थात् क्या है, ऐसा पकड़े। **क्योंकि मतिज्ञान अवग्रह, ईहा, अवाय, और धारणा—इस क्रम से जानता है।** थोड़ा पकड़े पहले अवग्रह, फिर विचारणा हो इसके लिए। फिर अवाय-निर्णय हो, फिर धारे। यह क्रमसर होता है। तो शरीर को प्राप्त हुआ अवग्रह से होता ज्ञान क्रम से उसे जाने अथवा नहीं जानता। वह उघाड़ ऐसा न हो तो जाने भी नहीं। जितना जाना, उससे आगे न बढ़ सके। क्योंकि वह पराश्रित वस्तु इन्द्रिय आधीन उघाड़ आधीन है। समझ में आया?

अथवा नहीं जानता (-कभी जानता है और कभी नहीं जानता।) लो! ख्याल बाहर वस्तु रह जाये, फिर ख्याल में आवे, और ख्याल बाहर चली जाये। क्या यह था? क्या यह था? फलाने का नाम क्या था? मैं कहाँ था यह पाँच वर्ष पहले? इसे स्मरण करने जाये कि दिन में कहाँ था उस दिन? उस दिन... और अवग्रह में कहीं ख्याल आया, वरना ख्याल नहीं आया। ऐसा इन्द्रियज्ञान पराधीन है। समझ में आया?

टीका - इन्द्रियज्ञान को उपलम्भक भी मूर्त है... इन्द्रियज्ञान में निमित्तरूप ज्ञात होनेवाला, जानने में निमित्तभूत ऐसे। ज्ञान होनेवाले अर्थात् निमित्तभूत। इन्द्रियज्ञान को पदार्थ जानने में निमित्तभूत उपलंभक मूर्त हैं, यह शरीर है। इन्द्रियज्ञान में जानने के निमित्तभूत में धूल है यह शरीर। आहाहा! जिसमें ज्ञान नहीं और जिसमें लक्ष्य करे ज्ञान सच्चा होता नहीं। समझ में आया? ऐसा लगे कि ऐसी सूक्ष्म बात धर्म की, बहुत सूक्ष्म। केशुभाई ने कहा, राजकोट और मुम्बई ऐसा व्याख्यान नहीं सुना था। साथ में रामजीभाई ने स्पष्टीकरण किया कि भाई ... मुख्यपना यहाँ है। कुछ भाषा कही थी न अंग्रेजी? हेड ऑफिस। ऐसा कहा रामजीभाई ने, हेड ऑफिस शब्द कहा था। समझ में आया? यहाँ तो मुख्य है, इसलिए सूक्ष्म यहाँ से आवे। ऐई! भीखाभाई! वहाँ कहीं मुम्बई में ऐसा वर्णन करने बैठे? पन्द्रह दिन रहना और यह उपलंभक है और यह है। उपलंभक अर्थात् उपलभ्य क्या है और यह? आहाहा! कहते हैं, यह आत्मा भगवान तो अरूपी है और इन्द्रियज्ञान हो, उसमें मूर्त ऐसे जो शरीर, वह उपलंभक अर्थात् निमित्त है। उपलंभक—

निमित्त है। भगवान आत्मा को इन्द्रियज्ञान होने में इन्द्रियों के अवयवों का पिण्ड ऐसा जो शरीर, वह निमित्त है।

उपलभ्य भी मूर्त है। और ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ भी मूर्त-जड़ है। वहाँ कहीं उसमें चैतन्य नहीं। उपलंभक निमित्त है और उपलभ्य ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ भी मूर्त है। समझ में आया? यह क्या होगा उपलम्भक और उपलभ्य? कहते हैं कि आत्मा तो अरूपी है, भिन्न तत्त्व है पूरा अन्दर। अब इन्द्रियज्ञान में शरीर जो मूर्त है, वह निमित्त है। वह निमित्त है, लो! उपलम्भक है अर्थात् ज्ञात होने में निमित्त है और ज्ञात होनेयोग्य चीज़, वह भी मूर्त है। ज्ञान होनेयोग्य चीज़ कहीं अमूर्त है, उस चीज़ में—इन्द्रियज्ञान में? समझ में आया? लो!

यह तो ललकार कर आवाज करके पुकार करके नकार करते हैं। इन्द्रियज्ञान, वह मूर्त है। तेरे पठन का ज्ञान, शास्त्र का ज्ञान, वह सब मूर्त शरीर के निमित्त से हुए, वह मूर्तज्ञान है और उस ज्ञान में मूर्तपने का ख्याल आता है। ज्ञान उघड़ा, यहाँ उघड़ा, तो कहते हैं कि मूर्त का ख्याल आता है। भगवान अरूपी, उसके ऊपर कहाँ उसकी दृष्टि गई है? आहाहा! समझ में आया? वह ज्ञान की पर्याय पर से उत्पन्न हुई, वह मूर्त है, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। बन्ध का कारण है न। आहाहा! बन्ध का कारण न हो और कुछ भी लाभ का कारण हो तो वह आगे बढ़कर आगे बढ़ना चाहिए। वह तो वापस इन्द्रियज्ञान समाप्त हो जाता है, समाप्त। वह निगोद में गया या यहाँ से अन्यत्र गया, ईयळ-कीड़ी में गया, हो गया। यहाँ बड़ा बादशाह, राजा का ऐसा क्षयोपशम हो, परन्तु इन्द्रियज्ञान है, अतीन्द्रिय का भान नहीं, वह ज्ञान आच्छादित हो जायेगा। एकेन्द्रिय में जायेगा, ईयळ में जायेगा। हो गया। ऐसे हो जायेगा। आहाहा! समझ में आया? इन्द्रिय से कहीं आत्मा ज्ञात हो, ऐसा है? इन्द्रिय के ज्ञान से आत्मा ज्ञात हो, ऐसा है? इन्द्रिय (कि) उसके ज्ञान से नहीं। समझ में आया? आहाहा!

बीच में विचार आया, आ गया कि जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय है। अतीन्द्रिय, अतीन्द्रिय के आश्रय से प्रगटी है, वास्तव में तो वह अतीन्द्रिय ज्ञान ही मोक्ष के लिये निमित्त है। समझ में आया? और उस ज्ञान तथा दर्शन में उपलभ्य है आत्मा। समझ में आया? मोक्ष के लिये सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह निमित्त है और प्राप्त करनेयोग्य जो

द्रव्य है, वह उपलभ्य है। आहाहा! समझ में आया? इन्द्रियज्ञान में शरीर प्राप्य है उपलम्भक निमित्त और उपलभ्य प्राप्त करनेयोग्य जड़ है। भगवान आत्मा अपने अतीन्द्रिय ज्ञान सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र में जो मोक्ष का निमित्त कारण है, वह उसका निमित्त है। उसको शरीर निमित्त है, इसको यह निमित्त है मोक्ष के लिये। और वह मोक्ष प्रगट करने के लिये उपलभ्य जो है, प्राप्त करनेयोग्य है, वह तो आत्मा अतीन्द्रिय है। समझ में आया?

मुमुक्षु : उपलम्भ में....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपलम्भ कहा न मतिज्ञान आदि। कहा न? उसे निमित्त कहा। मोक्ष के लिए वह निमित्त है। निमित्त है, मोक्षमार्ग निमित्त है। मोक्ष का निमित्त है न वह तो, निमित्त है। उपादान कहाँ? उपादान तो ध्रुव है। सूक्ष्म है थोड़ा। समझ में आया? अपनी पूर्ण पर्याय प्रगट करने में निमित्तपना तो उसे अतीन्द्रिय ज्ञान की दशा है और वह पूर्ण पर्याय प्रगट करने में उपलभ्य प्राप्त करने (के लिये) द्रव्य के ऊपर दृष्टि है। तब वह मोक्ष की पर्याय प्राप्त होती है। इस इन्द्रियज्ञान में भगवान अरूपी होने पर भी मूर्त को लक्ष्य जाता है, प्राप्त है। प्राप्त अर्थात् लक्ष्य जाता है, ऐसा। प्राप्त है, ऐसा कहते हैं न देखो! समझ में आया?

इन्द्रियज्ञान को उपलम्भक भी मूर्त है... उपलम्भक होगा न। **(इन्द्रियज्ञान को पदार्थों के जानने में निमित्तभूत मूर्त पंचेन्द्रियात्मक शरीर है)।** और **उपलभ्य भी मूर्त है।** वह ज्ञात होनेयोग्य भी जड़ है। आहाहा! परन्तु धर्मास्ति, अधर्मास्ति सब ज्ञात होता है न? ज्ञात हो वह क्या है? वह सब पर है पर। वह ज्ञान ही मूर्त है, कहते हैं। समझ में आया? **वह इन्द्रियज्ञानवाला जीव स्वयं अमूर्त होने पर भी...** भगवान स्वयं इन्द्रियज्ञानवाला तो स्वयं अमूर्त है, जिसमें रंग, गन्ध, रस, स्पर्श है नहीं, ऐसा अरूपी है। बादशाह महापदार्थ जगत का, वह तो मानो कुछ नहीं, हो गया। जो नहीं कुछ, वह सब समृद्धिवाला, रसवाला, सरस। पूरा भगवान अमूर्त तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-गुण-पर्याय को एक पर्याय में रजाई में लेकर पड़ा है। इतनी जानने की उसकी शक्ति एक समय की, हों! अभी भी, हों! द्रव्य-गुण-पर्याय छह द्रव्य के एक समय की पर्याय में जाने। ऐसी अनन्त-अनन्त पर्यायें अतीन्द्रियमय। यह तो और मूर्त, वह पर्याय भी मूर्त है

वास्तव में। छह द्रव्य के सन्मुख होकर इन्द्रियगम्य से ज्ञान है, वह भी वास्तव में तो मूर्तज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

अमूर्त होने पर भी मूर्त-पंचेन्द्रियात्मक शरीर को... लो! स्वयं अमूर्त होने पर भी मूर्त ऐसे पंचेन्द्रियरूप शरीर। लो, यह शरीर पंचेन्द्रिय है न? आँख, कान, नाक, यह सब पंचेन्द्रिय है। यह शरीर के अवयव जड़ शरीर है मिट्टी यह तो। जड़ पिण्ड है। मूर्त है। **शरीर को प्राप्त होता हुआ,...** शरीर को प्राप्त होता हुआ। देखो! क्योंकि उसकी प्राप्ति, पर्याय के लक्ष्य में तो शरीर के ऊपर लक्ष्य है उसका। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दमूर्ति की खबर है नहीं। **ज्ञप्ति उत्पन्न करने में बल-धारण का निमित्त होने से...** यह जानने की क्रिया में बल धारण। बल तो अपना है, उसमें निमित्त होता होने से। जानने की पर्याय में वीर्यवाला ज्ञान—बलवाला ज्ञान अपनी पर्याय का उसमें **निमित्त होने से जो उपलम्भक है,...** कौन? जड़। **ऐसे उस मूर्त (शरीर) के द्वारा मूर्त ऐसी स्पर्शादिप्रधान वस्तु को—जो कि योग्य हो...** उसे जाने। लो! कहो, **बल-धारण का निमित्त होने से जो उपलम्भक है,...** समझ में आया? उपलम्भक अर्थात् यह शरीर निमित्त है।

ऐसे उस मूर्त (शरीर) के द्वारा मूर्त ऐसी स्पर्शादिप्रधान वस्तु को—'स्पर्शादिप्रधान=जिसमें स्पर्श, रस, गन्ध, और वर्ण मुख्य हैं, ऐसी। वह तो सब स्पर्शगुण, उसमें है ही वस्तु में। **जो कि योग्य हो अर्थात् जो (इन्द्रियों के द्वारा)...** योग्य हो **उपलभ्य हो...** ज्ञात होनेयोग्य हो **उसे—अवग्रह करके, कदाचित् उससे आगे-आगे की (अवग्रह से आगे-आगे की) शुद्धि के सद्भाव के कारण...** उससे ऊपर-ऊपर की अवग्रह से आगे-आगे की शुद्धि के सद्भाव के कारण **उसे जानता है...** ऐसा कुछ अवग्रह योग्य हो उघाड़ तो जाने।

और कदाचित् अवग्रह से आगे-आगे की शुद्धि के असद्भाव के कारण नहीं जानता,... अवग्रह, ईहा आदि न जाने, पकड़ न सके। समझ में आया? नहीं था, उस लड़के की बात की? दस वर्ष पढ़ा तो सौ अंक पढ़ा था, लो! दशाश्रीमाली अमरेली। दहीरा। दहीरा न? दहीरा। दशाश्रीमाली का बनिया। दस वर्ष पढ़ा। दस वर्ष उसके पिता

ने पढ़ाया। सौ अंक पढ़कर पर उतर गया फिर। क्या करे, कहाँ तक पढ़ाना इसे? बीस वर्ष पढ़ेगा तो दो सौ अंक सीखेगा।

मुमुक्षु : तो भी सौ के ऊपर नहीं जायेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : सौ के ऊपर नहीं जायेगा। आगे बुद्धि नहीं होती बेचारे को। फिर गमला खींचता था। (संवत्) १९७० की बात है। अमरेली में उपाश्रय में कुछ कमरा चिना जाता था। और हम गये बराबर दीक्षा लेकर तुरन्त। ७० के। गमला सिर पर ताने। ... परन्तु तू कौन है? कहे, मैं दशाश्रीमाली बनिया हूँ। परन्तु यह क्या तुझे? यह मजदूरी? तीन आना, ढाई आना होगा तब तो। मेरे पिता ने मुझे पढ़ने भेजा परन्तु मैं सौ अंक सीखा दस वर्ष में। कहो, समझ में आया? उस जाति का जो उघाड़ हो तो जाने और उघाड़ न हो तो न जाने।

मुमुक्षु : .... उघाड़ की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो उघाड़ की बात है। इस जाति का उघाड़ हो तो जाने। यह सब अमेरिका पढ़-पढ़कर आये, यह उस जाति का उघाड़ था, इसलिए जाना है। वह कहीं वहाँ आत्मा का ज्ञान नहीं। वह कहीं नया उघाड़ हुआ है, ऐसा नहीं। वह तो उस जाति के उघाड़ का ज्ञान हो, इतना वह जाने। आगे पढ़ने जाये तो पढ़ ही न सके। उसका ही विचार बन्द हो कि अब फिर इतने बस है। उस जाति का उघाड़ हो उतना जाने। ... तो है न सुमनभाई! नहीं कहा था? तुम्हारे देवचन्दभाई बेरिस्टर। देवचन्दभाई, खबर है न! सुमनभाई को इतना पढाओ, कहे। तब की खबर है। आगे, कहे। वहाँ से इतना पढ़कर चले आये। क्योंकि आगे बढ़ने का क्षयोपशम अन्दर हो तो जाये न। क्षयोपशम ही उस जाति का है। वह कहाँ धर्म का क्षयोपशम है? ऐई! देवानुप्रिया! बाहर के ज्ञान के लिये जितना उघाड़ हो, उतना जाने। वह कहीं वहाँ पुरुषार्थ नहीं, वह तो उल्टा पुरुषार्थ है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : भले यही कहा न। वह तो आत्मा की बात है वहाँ। उसे बाहर के पदार्थ का उसके ज्ञान का उघाड़ नहीं, शब्द को धारना वह, परन्तु चिदानन्द आत्मा

अतीन्द्रिय ज्ञान का तो अनुभव है, उसका ज्ञान है, तुष मा-रुष मा, उसका ज्ञान है। वह तो शब्द का ज्ञान उसके लक्ष्य में नहीं। समझ में आया? है न, ठीक से रखते हैं न! यह तो उसे बाह्य पदार्थ को जानने की इतनी क्षयोपशमदशा नहीं थी, अन्दर में तो सच्चिदानन्द को पकड़ा है, अनुभव किया है, आनन्द में है और भावज्ञान भी उघड़ा हुआ है। स्वरूप को पकड़े, ऐसा भावज्ञान उघड़ा हुआ है। आहाहा! पर को पकड़े, ऐसा ज्ञान उघाड़ नहीं।

मुमुक्षु : वीतराग चारित्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वीतराग चारित्र है। वह क्या है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहते हैं। ज्ञान आत्मा के लिये उघड़ा हुआ है। भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसे पकड़ने की जो योग्यता है, उतनी तो लब्धिरूप दशा हो गयी है। आहाहा! और चारित्रदशा वीतरागीदशा भी है। वीतरागीदशा हो, इसलिए ज्ञान बहुत उघाड़ हो, ऐसा कुछ नहीं। मुनि है, वह चारित्रदशा है और अवधिज्ञान नहीं, मति-श्रुत का विशेष उघाड़ नहीं। मन:पर्यय नहीं। और चौथे गुणस्थान के समकिती हों, गृहस्थाश्रम में हों और मति-श्रुत और अवधिज्ञान हो। वह आत्मा के अपेक्षित जितनी उघाड़ की योग्यता हो, उतना उघड़े। वहाँ कहीं पर की अपेक्षा उसमें नहीं। समझ में आया? कदाचित् उघड़े और कदाचित् न उघड़े। ... क्यों अभी लगी? सायरन लगी।

कहते हैं, **शुद्धि के सद्भाव के कारण...** शुद्धि शब्द से कौन बोला? हाँ, वह शुद्धि शब्द से उघाड़। शुद्धि (अर्थात्) वह शुद्धि नहीं। बोले थे और मैंने कहा यह क्या है? शुद्धि के सद्भाव का अर्थ, उस जाति के उघाड़ की योग्यता, उसे शुद्धि और उसे योग्यता नहीं और शुद्धि का असद्भाव ऐसा। शुद्धि अर्थात् वहाँ सम्यग्ज्ञान और सम्यग्दर्शन की शुद्धि है नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह दु:खदायक है। परन्तु शुद्धि शब्द पड़ा है न, इसलिए (प्रश्न) होवे तो सही न, कि **शुद्धि के सद्भाव के कारण...** ऐसा। अज्ञानी को भी शुद्धि का सद्भाव है या नहीं? ऐसा कहते हैं। उसका प्रश्न तो बराबर है न। जो हो उस स्थान में है। वहाँ तो अज्ञानी को मिथ्यादृष्टि को भी इन्द्रियज्ञान में शुद्धि

तो ली है। शुद्धि का अर्थ उतना उघाड़, उसे शुद्धि कहा जाता है। आत्मा को लाभदायक है, वह कुछ नहीं। समझ में आया?

शुद्धि के सद्भाव के कारण उसे जानता है... उघाड़ की योग्यता के कारण जानता है। है न? ऊपर-ऊपर की कही न वह? उघाड़ अवग्रह का हो, उस उघाड़ को शुद्धि कहा। **और कदाचित् अवग्रह से आगे-आगे की शुद्धि के असद्भाव के कारण नहीं जानता,...** समझ में आया? **क्योंकि वह (इन्द्रियज्ञान) परोक्ष है।** परोक्ष ज्ञान है, उसे आत्मा का आश्रय नहीं। निमित्त—उपलम्भक भी जड़ और उपलभ्य—ज्ञान होनेयोग्य भी मूर्त। उसमें भी कितना उघाड़ हो, तत्प्रमाण जाने, इससे ऊँचे का उघाड़ न हो तो न जाने। पराश्रित वस्तु है।

परोक्षज्ञान, चैतन्यसामान्य के साथ (आत्मा का) अनादिसिद्ध सम्बन्ध होने पर भी... देखो! अब उसमें प्रत्यक्ष ज्ञान कहा था। वह आत्मा को लगा हुआ और आत्मा के आश्रय से होता। यह **परोक्षज्ञान, चैतन्यसामान्य के साथ (आत्मा का) अनादिसम्बन्ध...** है। किसे? चैतन्यसामान्य शक्ति के साथ आत्मा को अनादि सम्बन्ध है **(होने) पर भी जो अति दृढ़तर अज्ञानरूप तमोग्रन्थि द्वारा...** कौन? परोक्ष ज्ञान। परोक्ष ज्ञान, ऐसा लेना। परोक्ष ज्ञान वह। इतनी बात। अब **चैतन्यसामान्य के साथ (आत्मा का) अनादिसिद्ध सम्बन्ध होने पर भी...** ज्ञाता-दृष्टापने का आत्मा को अनादि सम्बन्ध है। **होने पर भी जो अति दृढ़तर अज्ञानरूप तमोग्रन्थि द्वारा...** देखो! अन्धकार का गठ्ठा हो गया वह तो—इन्द्रियज्ञान तो। **अज्ञानरूप तमोग्रन्थि द्वारा आवृत हो गया है, ऐसा आत्मा...** आहाहा! कहते हैं कि बाहर के उघाड़ में स्वरूप को जानने के लिये ढँक गया है, आवृत्त हो गया है। भगवान आत्मा इन्द्रियज्ञान के उघाड़ में तमोग्रन्थी—अन्धकार का गठ्ठा हो गया वहाँ, उसके द्वारा आत्मा जान नहीं सकता।

अति दृढ़तर अज्ञानरूप... भाषा देखी! दृढ़, दृढ़तर। **अज्ञानरूप तमोग्रन्थि द्वारा आवृत हो गया है, ऐसा आत्मा पदार्थ को स्वयं जानने के लिये असमर्थ होने से...** पदार्थ को स्वयं के आश्रित जानने में असमर्थ होने से। अपने आश्रय से जानने में असमर्थ हो गया परोक्ष ज्ञान में, इन्द्रिय ज्ञान में। यह शब्द कल आये थे वे। १३ में थे न

(समयसार गाथा) १३वीं गाथा में। **उपात्त और अनुपात्त...** १३वीं में आये थे ये शब्द। प्राप्त और प्रकाश आदि अप्राप्त। है न नीचे, देखो! **प्राप्त। (इन्द्रिय, मन इत्यादि उपात्त पर पदार्थ हैं।)** उसमें भी यह आया था। १३ वीं गाथा में आया था। **अनुपात्त=अप्राप्त। (प्रकाश आदि अनुपात्त परपदार्थ हैं।)** प्रकाश इत्यादि हो, और इन्द्रिय मन आदि उपात्त, उसके आधीन है, ऐसा कहते हैं।

परपदार्थरूप सामग्री को ढूँढने की व्यग्रता से... समझ में आया? देखो! आँख से जानना हो तो आँख की यह पलक पूरी उघड़े, ऐसा हो... ऐसा हो... ऐसा करने के लिये प्रयास करे। उस पदार्थ का उघड़ना, परिणमना, वह तो पर जड़ के आधीन है, वह कहीं तेरे आधीन नहीं। परपदार्थ को परिणमने की बुद्धिवाला इन्द्रियज्ञान है, कहते हैं। समझ में आया? **उपात्त और अनुपात्त परपदार्थरूप सामग्री को ढूँढने की व्यग्रता से...** कुछ प्रकाश हो, दीपक हो, आँख बराबर स्पष्ट हो। देखो न, उसके लिये कितनी मेहनत करता है। अंजन आँजे, वह करे, मलहम चोपड़े, फलाना, ढींकणा। उसमें वापस लुसी डाले, और उसमें से उघड़े नहीं तो ऐसा कैसे होता है? ऐसे आँख ऐसा करे। करे नहीं, कर सकता नहीं, कहते हैं। वह तो रजकण की पर्याय है। यह डोळो ऐसे-ऐसे होना, वह भी आत्मा की क्रिया नहीं, आत्मा कर सकता नहीं। और पलक ऐसे करना, वह कहीं आत्मा कर सकता नहीं। देखना हो तो ऐसे ऊँचा करने के लिये प्रयास करे। परन्तु उस परमाणु का ऊँचा होना, न होना, वह कहीं तेरे आधीन नहीं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कहा न। मोतिया आवे, कान का पर्दा फटे, नाक में वह हो। क्या कहलाता है वह? 'फोड़ा।' फूल डाले और यह डाले और बकरे का मूत्र डाले। आता है न, प्रवचनसार में आयेगा। सब यहाँ है। यहाँ तो शास्त्र में सब भरा है। आँख में अंजन डाले। छोटे लड़के को नहीं डालते? बड़े को डाले, मलहम फलाना डाले और ढींकणा। परपदार्थ को परिणमने को इन्द्रिय का ज्ञान लोलुपी रहा है, कहते हैं। सूरमा आंजे बराबर। वह तो परपदार्थ है। उस परपदार्थ का होना, आना, वह कहीं आत्मा के इन्द्रियज्ञान के आधीन नहीं। इन्द्रियज्ञान ऐसा पराधीन है, कहते हैं। और क्षण-क्षण में ठगाता है। समझ में आया?

अत्यन्त चंचल-तरल-अस्थिर वर्तता हुआ,... लो! **अनन्त शक्ति से च्युत होने से...** अपनी शक्ति है, उससे भ्रष्ट होता हुआ। **अत्यन्त विक्लव वर्तता हुआ,... खिन्न; दुःखी, घबराया हुआ। 'महामोह-मल्ल के जीवित होने से...'** इन्द्रियज्ञान में मिथ्यात्व जीवन्त है। उस परपरिणति को परिणमाने का अभिप्राय करता हुआ इन्द्रिय को फिराना, आँख को फिराना, कान को फिराना, ऐसा करूँ, शरीर को ऐसा करूँ। मुफ्त में ठगा जाता है। वह तो शरीर की पर्याय तो उसकी होनी हो, वह होती है। वह **पद पद पर ठगाता हुआ,...** लो! पर्याय पर्याय में ठगाता है इन्द्रियज्ञान। **परमार्थतः अज्ञान में गिने जानेयोग्य है।** लो! वह इन्द्रियज्ञान वास्तव में अज्ञान है, इसलिए छोड़नेयोग्य है। अतीन्द्रियज्ञान, वह आदरणीय है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ५, शनिवार, दिनांक २६-१०-१९६८
गाथा - ५५-५६, प्रवचन - ४७

टीका हो गयी नहीं थी ५४ की ? शीघ्रता से वाँचन हुआ अन्त का, हों। खबर है। अन्तिम लाईन। **उपात्त और अनुपात्त परपदार्थरूप सामग्री को ढूँढने की व्यग्रता से...** फिर सब शीघ्रता थी। पूरा करना था न वह। **तमोग्रन्थि द्वारा आवृत हो गया है,...** लो, ठीक! क्या कहते हैं ? देखो! परोक्ष ज्ञान, लो। यह इन्द्रिय ज्ञान, वह परोक्ष ज्ञान है। यह वस्तु ज्ञान (स्वरूप) है, वह अपना स्वरूप है और उसमें इन्द्रिय के निमित्त से हो, वह तो परोक्ष ज्ञान है, वह पराधीन है, भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय, उसमें निमित्त है। अर्थात् ? मन से होता ज्ञान, वह (भी) परोक्ष है। वह सब इन्द्रिय में ही जाता है। वह परोक्ष ज्ञान... देखो, किसलिए कहते हैं ? अपने स्वरूप का शुद्ध चैतन्य का आलम्बन-आधार लेकर अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द प्रगटे और उसकी भावना से अतीन्द्रिय ज्ञान और आनन्द पूर्ण प्रगटे, इसके लिये यह इन्द्रिय ज्ञान हेय और दु:खरूप कहा जाता है। समझ में आया ?

वह परोक्ष ज्ञान कैसा है ? देखो! दूसरी बात। कषाय की मन्दता, निमित्त, वह तो आत्मा को धर्म के लिये कुछ काम के नहीं। समझ में आया ? परन्तु मन और इन्द्रिय से होनेवाला ज्ञान, वह धर्म के लिये काम का नहीं। यहाँ तक बात है। आहाहा! समझ में आया ? क्योंकि धर्म तो आत्मा का स्वभाव अतीन्द्रिय शुद्ध आनन्द ज्ञायकस्वरूप है। उसकी दृष्टि करने में सीधा ध्येय चैतन्यमूर्ति है, वह आधार है। उसे यह मन और राग की मन्दता, कषाय की मन्दता या इन्द्रियाँ-(द्रव्य) इन्द्रिय और भावेन्द्रिय से होता ज्ञान, वह काम का नहीं। समझ में आया ? वह तो अपने परोक्ष में सब आ गया न, १३वीं गाथा में, भाई! परोक्ष प्रमाण और वे सब विकल्प हैं। प्रत्यक्ष का निर्णय करना कि ऐसा केवलज्ञान होता है और ऐसा होता है, वह सब निर्णय भी विकल्पात्मक हैं। वह कहीं आत्मा के अन्तर हित के लिये काम का नहीं। कहो, देवानुप्रिया! यह अकेले इन्द्रिय

और मन से शास्त्र की धारण कर ले, वह कहीं आत्मा के हित के (लिए) काम का नहीं, ऐसा कहते हैं। क्या है जवाब-उत्तर? खोजो कहीं से। राग की मन्दता, वह आत्मा के हित के लिये धर्म के लिये काम के नहीं। वह तो नहीं, परन्तु यह इन्द्रियाँ जड़ और भावेन्द्रियाँ काम के नहीं। तथा भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय जो ज्ञान होने पर निमित्त उसमें हो, ऐसा ज्ञान भी आत्मा के हित के लिए काम का नहीं। कहो, समझ में आया?

ऐसा **परोक्षज्ञान, चैतन्यसामान्य के साथ (आत्मा का) अनादिसिद्ध सम्बन्ध होने पर भी...** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा, उसे चैतन्यसामान्य त्रिकाली का सम्बन्ध अनादि का है।

मुमुक्षु : उसे सम्बन्ध कहा?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्बन्ध है न वह, सम्बन्ध है। सम्बन्ध है न, गुण-गुणी का सम्बन्ध है न। गुणी को गुण का सम्बन्ध अथवा गुण को गुणी के साथ सम्बन्ध है। सामान्य स्वभाव लेना है न? स्वभाव स्वभाववान के साथ अभेद है, ऐसा सम्बन्ध है, ऐसा कहते हैं। वस्तु स्वयं आत्मा है उसे... देखो, आत्मा है न?

चैतन्यसामान्य के साथ (आत्मा का) अनादिसिद्ध सम्बन्ध होने पर भी... अर्थात् क्या? कि आत्मा वस्तु है अनादि-अनन्त। उसे चैतन्यसामान्य ज्ञाता-दृष्टा आदि ज्ञानगुण ज्ञातापना अनादि सम्बन्ध से उसमें है। ऐसा होने पर भी **जो अति दृढ़तर अज्ञानरूप तमोग्रन्थि द्वारा आवृत हो गया है,...** पर्याय में इन्द्रिय ज्ञान होने में अति दृढ़तर अज्ञानरूप तमोग्रन्थी। अन्धकार का गठ्ठा। भगवान अनादि ज्ञानसामान्य के साथ सम्बन्ध होने पर भी पर्याय में—पर्यायबुद्धि में इन्द्रियजन्य ज्ञान में मिथ्यात्व की गाँठ पड़ी है। उसके कारण ज्ञान आवृत्त हो गया है। अपने कारण से, हों! कर्म के कारण से नहीं। आहाहा! समझ में आया? **दृढ़तर अज्ञानरूप तमोग्रन्थि द्वारा आवृत हो गया है,...** भाषा देखो! ज्ञानावरणीय द्वारा आवृत्त हो जाने से, ऐसा नहीं लिया। समझ में आया? **अज्ञानरूप तमोग्रन्थि...** अन्धकार। भगवान चिदानन्द ज्योति चैतन्यसूर्य ऐसा होने पर भी, पर्याय में इन्द्रिय और पर के लक्ष्य में मिथ्यात्व की गाँठ साथ में बँध गयी है, उससे ज्ञातापना वहाँ अवृत्त हो गया है। समझ में आया? सामान्य ज्ञान त्रिकाल है, वह अज्ञान की ग्रन्थी में ढँक गया है, सामान्य ज्ञान प्रगट नहीं होता। समझ में आया?

मुमुक्षु : .... अज्ञान खड़ा किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : खड़ा किया है उसने। विकल्प, एक समय की पर्याय और इन्द्रियज्ञान की जो बुद्धि, वह अज्ञानभाव है, तमोग्रन्थी है, अन्धकार की गाँठ है, अन्धकार का गठ्ठा है। भगवान चैतन्यसूर्य है, तब यह अन्धकार का गठ्ठा है। इससे चैतन्यसूर्य प्रगट नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

दृढ़तर अज्ञानरूप तमोग्रन्थि द्वारा आवृत हो गया है,... ढँक गया अर्थात्? सामान्य तो है, पर्याय में ढँक गया है, आच्छादित हो गया है। वह तो वस्तु है वह है। परन्तु पर्याय में उसका जो विकास होना चाहिए चैतन्यसामान्य का आश्रय लेकर, वह विकास अटककर ढँक गया है। ज्ञान की पर्याय संकुचित हो गयी अर्थात् ढँक गयी, आच्छादित हो गयी है। कहो, समझ में आया? अर्थात् कि ज्ञातापने का त्रिकाली स्वभाव होने पर भी, पर्याय में इन्द्रिय और निमित्त का आश्रय लेकर मिथ्यात्वभाव से— अज्ञान अन्धकार से ढँक गया है। पर्याय में प्रकाश है नहीं। ओहोहो! समझ में आया? **तमोग्रन्थि द्वारा आवृत हो गया है,...** ऐसा है वहाँ। देखा! **दृढ़तर अज्ञानरूप तमोग्रन्थि...** ली है। पर्याय अंश में इतना एकाकार है कि यह इन्द्रियज्ञान, मानसिक ज्ञान में एकाकार हुआ ज्ञान अन्धकार है। भगवान चैतन्यसूर्य बिम्ब को देखने में वह आवरण करता है। उस गाँठ को तोड़ने के लिये स्वभाव का आश्रय लेकर वह गाँठ टूटती है और चैतन्यसामान्य में से विशेष विकास सम्यग्ज्ञान और आनन्द का होता है। समझ में आया?

ऐसा आत्मा... आवृत हो गया है, ऐसा आत्मा... ढँक गया अर्थात्? वह तो आत्मा तो कहा पहला चैतन्यसामान्य के साथ सदा ही सम्बन्ध है, परन्तु पर्याय में ढँक गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वस्तु मानो चैतन्यसामान्य ज्ञानस्वरूप त्रिकाल है, वह मानो वस्तु ही नहीं। वह अज्ञानरूपी अन्धकार में वह वस्तु ही ढँक गयी। समझ में आया? अंशबुद्धि में अटका हुआ ज्ञान त्रिकाल सामान्य को प्रकाशता नहीं, इसलिए ढँक गया है, कहते हैं। आहाहा! कैसी शैली से बात की है! ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है न!

ऐसा आत्मा पदार्थ को स्वयं जानने के लिये असमर्थ होने से... देखो! इन्द्रिय और मन के आलम्बन से जाने परन्तु **स्वयं जानने को...** यह इन्द्रिय और मन और अल्प

अंश में एकाग्र हुआ अन्धकार मिथ्यात्व (द्वारा) आत्मा स्वयं जानने को असमर्थ है। समझ में आया? **उपात्त और अनुपात्त परपदार्थरूप सामग्री को ढूँढने की व्यग्रता से...** देखो! इन्द्रियाँ, मन लो आया उसमें। समझ में आया? मन हो तो इन्द्रियों... पाँच इन्द्रिय का ज्ञान है न, उसमें किसी भी इन्द्रिय का ज्ञान होने में मन तो वहाँ होता ही है। पंचेन्द्रियपना न हो और जहाँ मन नहीं, यह बात अलग है। परन्तु जहाँ पाँच इन्द्रियाँ हैं और मन है, उसे किसी भी इन्द्रिय के ज्ञान के समय मन तो उपस्थित होता ही है। इसलिए मन और इन्द्रिय के अवलम्बन से जो होता ज्ञान, उससे मन और इन्द्रिय शोधने को प्रयास करता है कि मन है न? इन्द्रिय है न? यह ज्ञान उसके अवलम्बन को शोधता है।

सामग्री को ढूँढने की व्यग्रता से... आकुलता से **अत्यंत चंचल-...** हो गया है। इन्द्रियाँ व्यवस्थित हों तो ठीक, मन व्यवस्थित हो तो ठीक। ऐसे पर को शोधने के लिये (अत्यन्त चंचल हो गया है)। अरे! भगवान! ज्ञान अपना और अपनी पर्याय प्रगट करने के लिये पर को शोधने का मिथ्या प्रयास कर रहा है, व्यग्रता चित्त में खेद है, कहते हैं। समझ में आया? अत्यन्त चंचल है। वह ज्ञान तो महा चंचल... चंचल... चंचल। इसका अर्थ किया है चंचल का। **तरल-अस्थिर...** है। कहो, समझ में आया? '**विसंष्ठुलत्वमव-लम्बमानमनन्तायाः**' यह? आहाहा! '**विसंष्ठु**' **व्यग्रता से अत्यन्त चंचल...** इसका अर्थ किया है यह। **तरल...** तरल-तरल। **अस्थिर वर्तता हुआ...** भगवान आत्मा आनन्द का कन्द और ज्ञातापने का स्वभाव अनादि-अनन्त। उसके ऊपर नजर न डालता, इन्द्रिय और मन और पर के ऊपर नजर डालता हुआ अस्थिर ज्ञान **अनन्त शक्ति से च्युत होने से...** भगवान आत्मा में तो ज्ञान का स्वभाव बेहद अनन्त-अनन्त है। ऐसी अज्ञानदशा में रहा, वह अनन्त शक्ति से च्युत हुआ है।

अत्यन्त विक्लव वर्तता हुआ,... लो! **खिन्न; दुःखी, घबराया हुआ।** कहो, समझ में आया? कठिन बात! दुःखी ऐसा घबराया हुआ ज्ञान, कहते हैं। समझ में आया? **महामोह-मल्ल के जीवित होने से...** क्योंकि इतने ज्ञान के अंश को, मन और इन्द्रिय के अंश के ज्ञान को अपनेरूप से मानता है, वह महामिथ्यात्व मोहमल्ल जीवित है। वहाँ आत्मा मर गया। महामोह जीवित हो गया है। समझ में आया? अल्प ज्ञान और रागादि

की ओर ढला हुआ वह ही मैं हूँ, ऐसी मान्यता में महामोह मिथ्यात्व वहाँ जीवित है। और ज्ञाता-दृष्टापने का स्वभाव वहाँ दृष्टि में मार डाला है।

मुमुक्षु : उसमें रुक गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुक गया, मार डाला उसे। समझ में आया इसमें? देखो! कैसी बात की है! ज्ञान का तत्त्व सामर्थ्य तो त्रिकाल है, कहते हैं। उसके ऊपर नजर न डालकर, नजर की वर्तमान पर्याय ज्ञान में, इन्द्रिय और मन में रुके तो मिथ्यात्व का मोह जीवित है, जीवित जागता मिथ्यात्व है वहाँ। आहाहा! अब किसी भी क्रिया में जहाँ स्वसन्मुख के लक्ष्य का ज्ञान नहीं, इसलिए पर सन्मुख के लक्ष्यवाला ज्ञान और रागादि मिथ्यात्व जीवित, वहाँ मिथ्यात्वभाव जीवित है। समझ में आया? वस्तु अनादि-अनन्त। ज्ञाता-दृष्टा के भाव से भरपूर बेहद शक्ति का तत्त्व, उससे च्युत हुआ है। फिर चाहे तो ग्यारह अंग का ज्ञान करे, नौ पूर्व का करे, पंच महाव्रतादि पालन करे परन्तु मिथ्यात्व मोह जीवित है। समझ में आया? बात है गहरी और बात है ऊँची। आहाहा!

अब इस वस्तु की खबर नहीं होती कि यह वह मैं अज्ञान में कहाँ हूँ? और मेरा ज्ञान त्रिकालस्वरूप है, वह कैसे प्रगटे? उसकी खबर नहीं होती। समझ में आया? और धर्म करने का प्रयास करे। कहते हैं कि उसके इन्द्रिय और मन को शोधता वह ज्ञान अति चंचल है, अस्थिर है, दुःखी है, खेदखिन्न है। क्यों? कि वहाँ महामोह मिथ्यात्व, अंशबुद्धि में अटकता ज्ञान के साथ मिथ्यात्वभाव, उसका ही जीवन है, उसका चलन है। समझ में आया? उस मिथ्यात्वभाव का वहाँ चलन है। ... कहो, समझ में आया? ओहोहो! जिसकी नजरें पर्याय के ऊपर है, इन्द्रिय के ऊपर है, मन के ऊपर है, ज्ञान की नजर, हों! उसमें वह अज्ञानतम से ढँक गया और महामोह से जीवित, वही स्वयं चलनवाला है। क्षण में और पल में मिथ्यात्व ही वहाँ पुष्टि पाता है। समझ में आया? फिर भले वह पंच महाव्रत के परिणाम हों उसे। दया, दान के विकल्प हों, तपस्या महीने-महीने के, दो महीने के अपवास की वृत्ति हो, परन्तु उसकी दृष्टि तो वहाँ एक समय के ज्ञान और राग के ऊपर पड़ी है। इससे महामोह जीवित है वहाँ। कहो, देवानुप्रिया! क्या है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, ऐसा है। देखा! भगवान के पास कहाँ जायेगा वहाँ? यहाँ भगवान है, उसके पास तो जाता नहीं। क्या है? महामिथ्यात्व के पास तो अभी बसता है और वही के वही महामिथ्यात्व में जहाँ जायेगा वहाँ बसेगा। और भगवान के पास कहाँ जायेगा? समवसरण में गया तो वह भगवान के पास गया है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है। निषेध किसका? यह मन और इन्द्रिय के ज्ञान का निषेध किया जा सकता है, ऐसा कहते हैं। क्या? वहाँ जाये तो इन्द्रिय और मन से ज्ञान करे तो महामिथ्यात्वभाव वहाँ जीवित है। इसलिए वहाँ जाने-आने की क्रिया उसकी नहीं है। वहाँ जाकर बैठा परन्तु उसका लक्ष्य इन्द्रिय और मन के ऊपर से ज्ञान करता है सुनने आदि को, वह महामिथ्यात्व जीवित है, तमोग्रन्थी में पड़ा है वह। वह ज्ञाता-दृष्टा त्रिकाली स्वभाव का वह अनादर और नाश करता है। अनन्त शक्ति का नाश करता है। क्या कहते हैं? कहाँ जाना और कहाँ आना? वह तो भगवान के पास जाये, वह कहीं इनकार किया जाये? ऐसा। देवानुप्रिया! कहो, समझ में आया इसमें? भगवान कौनसा परन्तु? भगवान तो वे भगवान भगवान के हैं, वे भगवान इसके कहाँ हैं? यह भगवान जो अनादि-अनन्त ज्ञानानन्द प्रभु आत्मा, उसके समीप में जाता नहीं, उसे जीवित जागता आत्मा है, ऐसा मानता नहीं और एक समय की पर्याय के ज्ञान को जीवित और टिकता तत्त्व वह मैं हूँ, ऐसा मानता है, तमोग्रन्थी और मिथ्यात्व मोहमल्ल वहाँ जीवित और टिकता है, उसका चलन है। कहो, समझ में आया? आहाहा!

लोग नहीं कहते कि हमारे घर में हमारा चलन है अभी। होता है या नहीं? जेठाभाई! स्त्री ऐसी कोई बलवान की हो, कुछ वैसी हो तो कहे, हमारे घर में हमारी यो अमुक बलवान की है। समझे न? सासु-बासु पड़ी रहे एक ओर। बहू ऐसी हो तो उसका चलन चले घर में। उसी प्रकार यहाँ कहते हैं, आत्मा के घर में अनादि-अनन्त। ज्ञानानन्द के ऊपर नजर नहीं, वहाँ उसे मिथ्यात्व का चलन पर्यायज्ञान में जितना उघाड़ है, उसमें मिथ्यात्व का भी चलन है। उसमें कुछ दूसरी चीज़ है नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लो! यह कल शीघ्रता से वाँचन हो गया था न! यह धीरे-धीरे चला। ... संक्षिप्त करके कहा था पूरा करने के लिये। ओहोहो!

महामोह-मल्ल के जीवित होने से... मल्ल, देखा! कुचल डालता है, कहते हैं। आहाहा! ज्ञाता-दृष्टा का स्वभाव, वह मन और इन्द्रिय के ज्ञान को अपनेरूप से मानना, उसका महामोहमल्ल ज्ञाता-दृष्टा को कुचल डालता है। मल्ल... मल्ल जैसे कुचलता है न? हड्डियाँ-हड्डियाँ तोल डाले, मल्ल हो न आमने-सामने। इसी प्रकार कहते हैं कि भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप त्रिकाल आनन्द परमपारिणामिकस्वभाव का भण्डार पूरा। ओहो! वहाँ उसकी दृष्टि नहीं। अर्थात् उसकी दृष्टि तो पर्याय में, उघड़े हुए ज्ञान में, मन-इन्द्रिय के सहाय में ही पड़ी है उसकी बुद्धि। उस बुद्धि में दो बातें लीं—तमोग्रन्थी से ढँक गया, ऐसा कहा और महामहोमल्ल जीवित कहा। समझ में आया? ओहोहो! टीका, वह भी टीका है न!

भगवान आत्मा महासमुद्र है। ज्ञान का सूर्य चैतन्यबिम्ब बेहद स्वभाव का सागर आत्मा है। अनादि सम्बन्ध से स्वरूप ऐसा ज्ञानस्वरूप है। उसकी नजर न करके ऐसे अनन्त ज्ञान के बेहद ज्ञान से च्युत-भ्रष्ट हुआ, इन्द्रियज्ञान को अपना ज्ञान मानता हुआ, महामोह जिसे जीवित है, उसे क्षण-क्षण में मिथ्यात्व की ही पुष्टि होती है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? चाहे तो जैन साधु हो, चाहे तो जैन-द्रव्यश्रावक हो, बारह व्रतादि हो, परन्तु वह पर्यायबुद्धि में उघड़े हुए ज्ञान में, राग में बुद्धि जिसकी है, उसे मिथ्यात्व जीवित होने से चैतन्य भगवान वहाँ कुचल जाता है। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप से त्रिकाल (उसका) मर्दन हो जाता है, कहते हैं। समझ में आया? यह खून का पानी हो जाता है। आहाहा!

मुमुक्षु : मेहनत व्यर्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : मेहनत ही खोटी है, मुफ्त कहाँ जाये? मुफ्त कुछ नहीं। दुःख उत्पन्न करती है। मुफ्त में नहीं, सफल है। सफल कहा है। लिया है अपने। अज्ञानी का भाव सफल है। समझ में आया? क्योंकि जो फल अनादि से उपजता आता है, वह फल उसे उपजेगा, निष्फल नहीं जायेगा। आगे आयेगा। इस प्रवचनसार में है, हों! देखा है या नहीं? कितने में है? देखो! कुछ अफले-सफले है। यह हमारे वीर्य में ... यह तो पुस्तक बदल गयी है न। सफलं होई... कौन सी गाथा है, देखो! ११६वीं गाथा? ११६। आया, आया देखो!

एसो त्ति णत्थि कोई ण णत्थि किरिया सहावणिव्वत्ता।
किरिया हि णत्थि अफला धम्मो जदि णिप्फलो परमो॥११६॥

यह क्रिया नहीं अफल, (परन्तु) फलवाली है। समझ में आया? देखो! है टीका में? देखो! **परम धर्म अफल है तो क्रिया अवश्य अफल नहीं है (अर्थात् एक वीतरागभाव ही मनुष्यादिपर्यायरूप फल उत्पन्न नहीं करती; राग-द्वेषमय क्रिया तो अवश्य वह फल उत्पन्न करती है।)** है? देवानुप्रिया! ११६। सफल है उसकी क्रिया भटकने के लिये।

मुमुक्षु : फली ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : फली ही नहीं। फल है। जो दु:ख के फल अनादि के लगते हैं, वह उसे अफल नहीं, वह फल लगने का है उसे। आहाहा! समझ में आया? धर्म जब सफल है तो क्रिया भी सफल है, अफल नहीं।

मुमुक्षु : यहाँ तो धर्म को अफल कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : धर्म अफल अर्थात् वह दु:ख का फल नहीं धर्म में, ऐसा कहते हैं। धर्म में, दु:ख की क्रिया का फल चार गति के दु:ख का भाव जो है, वह धर्म में नहीं। इसलिए धर्म जो अनादि का फल पाता आता है, वह धर्म इसमें अफल है। उस धर्म से यह फल आता नहीं और यह मन ज्ञान, इन्द्रिय ज्ञान और कषाय की मन्दता, उससे स्वयं को सफल है, चार गति भटकने का भाव वहाँ उत्पन्न होता है। वह क्रिया उसकी सफल है। अनादि से जहर फलता है, वह जहर का वृक्ष फलेगा वहाँ, ऐसा कहते हैं। यह आता है, उसमें भी—सूयगडांग में, श्वेताम्बर में। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... आवे। 'जे अबुद्धा महाभागा वीरा असमत्त दंसीणो अशुद्धं तेसी परम्... सफलंग होही...' वह तो इसमें से लिया हुआ है न। वस्तु तो यह थी न अनादि की। उसमें लिया है। 'जे अबुद्धा...' उसे तत्त्वज्ञान की खबर नहीं, त्रिकाल आत्मा आनन्द हूँ, ज्ञान हूँ, उसका भान नहीं। 'अबुद्धा है महाभागा' दुनिया में लाखों-करोड़ों मनुष्यों में प्रसिद्ध ऐसे भाग्यवान हैं। भगवानजीभाई! 'जे अबुद्धा महाभागा।'

समझ में आया? 'वीरा असमत्त दंसीणो' है वीर। महीने-महीने के अपवास, बारह-बारह महीने के अपवास, ग्यारह अंग का उघाड़, सभा को रंजन करे, लाखों लोग तुंही तुंही हो, ऐसा जिसका वीर्य काम करे अज्ञान में। समझ में आया? जे अबुद्धा महाभागा। भानरहित हैं, तत्त्वदृष्टिरहित हैं, परन्तु हैं पुण्यशाली। लोग लाखों और करोड़ों जिसे स्वीकारते हैं। उसके जैसा हो और उसे माननेवाले, ऐसा कहते हैं। देवानुप्रिया! ठाठबाठ से हुआ यह। आहाहा! ठठारो ठठारो। वह तो ऐसी बात ली, देखो! 'जे अबुद्धा महाभागा वीरा असमत्त दंसीणो' है अतत्त्वज्ञानी परन्तु है पुण्यशाली और वीर। वीर अर्थात् पुरुषार्थ करने में दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, मास मास खमण के पारणा, बारह-बारह महीने के अपवास। समझ में आया? एक आसन को लगाना हो तो दो-दो महीने तक आसन लगा दे। ऐसे वीर अज्ञान में है क्रिया में। परन्तु है 'असमत्त दंसीणो' सम्यग्दर्शनरहित है। 'असुद्धं...' उसका जितना पराक्रम, वह सब अशुद्ध है। 'सफलं न हो ही सव्वसो' उसका फल वह अनादि से आवे, वह सफल होगा। वह का वह फल फलेगा, फले बिना नहीं रहेगा। भगवानजीभाई!

उससे फिर दूसरी गाथा है। 'जे बुधा महाभागा वीरा समत्त दंसीणो सुद्धं ते सिं... अफलं हो ही सव्वसो।' जे बुधा—तत्त्वज्ञानी है, वस्तु ज्ञाता-दृष्टा का भान है। है महाभाग्यवाले। ज्ञानी भी हैं और पुण्यशाली भी हैं। दोनों हैं। 'जे बुधा महाभागा वीरा समत्तं दंसीणो' पुरुषार्थ से जो आत्मा की क्रिया और अन्तर में एकाग्र होने में वीर हैं। है समत्तं दंसीणो। सम्यग्दृष्टि है। 'सुद्धं तेंसि...' जो कुछ पराक्रम करते हैं स्वभाव में, वह सब शुद्ध है। स्वभाव सन्मुख का ही उसका पुरुषार्थ है। 'सुद्धं तेसिं परगत्तं' पराक्रम उसका शुद्ध है सब अन्तर में एकाग्र होना। 'अफल न होई सव्व' सर्वथा उसे संसार का फल आयेगा नहीं। लो! ठीक! समझ में आया?

जीवित होने से परपरिणति का (-पर को परिणमित करने का) अभिप्राय करने पर भी... वह ज्ञान, हों! यहाँ ज्ञान का वर्णन है न! इन्द्रियज्ञान मन के ज्ञान से होता, परपरिणति का अभिप्राय करता हुआ। आहाहा! आँख ऐसी रहे, ऐसे रहे और ऐसे उघड़े और ऐसे हो, और (आँख का) गोलक ऐसे रहे, काला ऐसे रहे, ढींकणा ऐसा रहे, कान में ठीक से सुनाई दे न, ऐसे करूँ तो ऐसे रहे और पर्दा व्यवस्थित रहे न परन्तु वह तो

परद्रव्य है। कहो, समझ में आया? यह इन्द्रिय स्पर्श ऐसी रहे न। आता है न उस मोक्षमार्ग (प्रकाशक) में। इन्द्रिय से ज्ञान होता है, इसलिए इन्द्रिय की पुष्टि करो, पोषण दो कि जिससे मेरा ज्ञान बढ़े, ऐसा। इन्द्रिय ऐसे कि ज्ञान में निमित्त है न, इसलिए उसकी पुष्टि करो तो ज्ञान (बढ़े) धूल भी नहीं बढ़ता, सुन न अब। ठगा जाता है। समझ में आया? पाँच इन्द्रियों को व्यवस्थित रखो, अंजन बराबर सवेरे उसे सूरमा डालना, उसे पलक ऊँची रखना, चौड़ी ऐसे करना, फलाना करना, कहो, समझ में आया? इन्द्रियाँ यदि पुष्ट होंगी तो अपना ज्ञान स्पष्ट रहेगा। मूढ़ हो? ज्ञान वह इस (प्रकार से) बढ़ता होगा या ज्ञान अन्तर एकाग्र हो तो बढ़े? तेरे इन्द्रिय में पुष्ट होने से ज्ञान कहाँ बढ़ता था? समझ में आया? आहाहा! भाषा का अभ्यास रखो, बोलने का अभ्यास रखो तो बोलने की क्रिया का ज्ञान खिलेगा। ऐई! देवानुप्रिया!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यही कहते हैं। सब मूढ़ है, कहते हैं यहाँ तो। क्या भाषण करे? वह तो परपदार्थ की परिणति है। परपदार्थ में ठगाये, कहते हैं। परपरिणति का अभिप्राय करता हुआ। जीभ ऐसे चले, कण्ठ ऐसे चले, फलाना ऐसा चले। कहो, समझ में आया? आता है या नहीं? वह श्लोक भी आता है भाषण करनेवाले का। 'दूध, साकर ने ऐलची, वरियाळी ने द्राक्ष जो गायानो खप करे तो पांचेय वस्तु...' व्यर्थ प्रयास करे बेचारा वहाँ। धूल। यहाँ नहीं वे शीतलप्रसादजी नहीं आये थे? तो खाकर फिर बादाम खाये थोड़ी। नोकर्म है न वह? परन्तु नोकर्म कब? गोम्मटसार में आता है नोकर्म, नहीं? अभी किसी ने प्रश्न किया था, नहीं? नोकर्म का स्पष्टीकरण करो। हेमराजजी, भिण्ड में से। नोकर्म अर्थात्? यहाँ तो उसे एक निमित्त है, ऐसा बताते हैं। क्या उससे बादाम-पिस्ता खाये न, क्या कहलाती है वह? ब्राह्मी। ब्राह्मी तेल नहीं आता? मगज को—ज्ञान को तेज करे। धूल भी न करे।

मुमुक्षु : अक्कलखरो खाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, अक्कलखरो खाये। अक्कल बढ़ेगी वहाँ से? (संवत्) १९८१ में हमारे शिवलाल था न, वह गुप्तरूप से मँगावे। बुद्धि बहुत नहीं। क्योंकि उसमें वह एक बार खबर पड़ी कि ... कहाँ से यह शीशी आयी? क्या नाम, अपने को खबर

नहीं। ब्राह्मी। किसलिए? कि मस्तिष्क में तर हो, बुद्धि बढ़े। ऐसे के ऐसे इन्द्रियज्ञान। वह शिवलाल था न। है न वहाँ ... में। जामनगरवाला नहीं? अभी दीक्षा ली नहीं थी। बुद्धि बहुत नहीं थी, इसलिए फिर ब्राह्मी मँगावे गुप्तरूप से। ब्राह्मी से बुद्धि बढ़े, इन्द्रियज्ञानवाले परद्रव्य को परिणमाने के मिथ्या प्रयास करे, उससे मेरा ज्ञान बढ़े, वह मिथ्यात्व को बढ़ाता है। आहाहा! समझ में आया?

.... सीखो, भाषा सीखो, ऐसा बोला जाता है, यह बोलने की पद्धति सीखो। अरे! परन्तु वह तो जड़ का परिणमन है। वह तेरे सीखने से होता नहीं। परन्तु इन्द्रियज्ञानवाले को वह दृष्टि हटती नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परपरिणति का अभिप्राय करता हुआ... अभिप्राय, हों! कर सकता नहीं उसे। अभिप्राय करे कि ऐसा हो... इसका ऐसा हो... इसका ऐसा हो... रसोई व्यवस्थित जीमी जाये तो नींद आवे और फिर ज्ञान काम करे। ऐई! देवानुप्रिया! रसोईया को अधिक पैसा दे, अच्छा बनाकर देगा। दूसरे खाने आवे तो रोटी तैयार हो, उसमें से दे और यह आवे तो तैयार गर्म-गर्म सीधे थाली में पड़े सीधी। इसलिए ... और घी रखा हो साथ में, खा ले एकदम ऐसे लेकर। आहाहा! जड़ है, वह तो जड़ की परिणति है। वह जड़ की परिणति तुझे करनी है? तुझसे होती है? तू कर सकता है? और वह जड़ की परिणति से तुझे इन्द्रियज्ञान में लाभ होता है? बिल्कुल नहीं। वह तो क्षयोपशम हो उतना ज्ञान होता है। आहाहा! ऐ... जेठालालभाई! कठिन मार्ग, भाई! आहाहा!

देखो न! **जीवित होने से परपरिणति का (-पर को परिणमित करने का)...** मिथ्यात्व है न, इसलिए उसे किसी प्रकार से इन्द्रियाँ ऐसी हों, ऐसी रहे, ऐसा हो तो ऐसा हो, ऐसा हो तो ऐसा हो—यह अभिप्राय उसका हटता नहीं। आँख ऐसी रहे, कान ऐसे रहें, नाक ऐसा रहे, जीभ ऐसी रहे। समझे न? देखो न, कितने राजा, महाराजा छोटे लड़के हों और बोलने की ... न हो तो चिड़े की जीभ खिलावे। लड़का बोलता न हो छोटा लड़का फिर ... चिड़े की जीभ बहुत बारीक होती है और आवाज बारीक तीखी हो चिड़े की। इसलिए चिड़े की जीभ, मारकर, भले मर जाये परन्तु वह जीभ निकालकर पचास-सौ चिड़े की जीभ लेकर उसका हलुवा बनाये। घी-शक्कर डालकर खिलावे तो वह कण्ठ वैसा हो। मर जायेगा।यह अभिप्राय मिथ्यात्व का क्षण-क्षण में जीव को

मार डालता है। और हमारी भाषा तेज होगी, ऐसा होगा, यह होगा। इन्द्रियज्ञान में मिथ्यात्व जीवित होने से परपदार्थ की परिणति को परिणमा दूँ, ऐसा अभिप्राय करता होने पर भी **पद पद पर ठगाता हुआ,...** पर्याय-पर्याय में ठगा जाता है। वह इन्द्रियाँ परिणमना, नहीं परिणमना, वह कहीं तेरे आधीन नहीं। परन्तु ऐसा करूँ तो ऐसा होगा, ऐसा करूँ तो ऐसा होगा, भोग लेने के लिये ऐसा होगा, भोग विषय का लूँ तो ऐसा होगा, फलाना यह स्पर्श की इन्द्रिय को ऐसे स्पर्श करूँ तो ऐसा होगा, ऐसा स्पर्श करूँ तो ऐसा होगा, ऐसा हो तो ऐसा होगा। मर गया, अभिप्राय इन्द्रिय के ज्ञानवाला उस अभिप्राय से घात हो जाता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! क्या परन्तु आचार्य ने भी एक-एक बात को कितनी खुल्ली रखी है!

पद पद पर ठगाता हुआ, किसके साथ ठगाता है? स्वयं अपने को ठगाता है। तू पर को कहाँ ठगता है? आहाहा! ऐसे इन्द्रियज्ञान को **परमार्थतः अज्ञान में गिने जानेयोग्य है।** लो! समझ में आया? ऐसा इन्द्रियज्ञान को **परमार्थतः अज्ञान में गिने जानेयोग्य है। इसलिए वह हेय है।** लो! यह कल शीघ्रता से हो गया था न! बाकी है, ख्याल था। इसमें भाव बहुत भरे हैं। बहुत भरा है अन्दर। कहो, समझ में आया? मनसुखभाई! कहो, ऐसा है यह। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ। ओहोहो! आचार्यों ने भी कैसी ज्ञान की क्षयोपशमदशा जिसमें निमित्त हुई है, उस वाणी की धारा शब्दों से निकली है। उसमें ज्ञान की निमित्तता, ज्ञान का क्षयोपशम कैसा अन्दर था, वह अन्दर प्रसिद्ध होता है। समझ में आया? कर्ता नहीं, हों! परन्तु ऐसा आवे वाणी से, उसके पीछे क्षयोपशमज्ञान कैसा था, ऐसी प्रसिद्धि को पाता है।

भावार्थ :- इन्द्रियज्ञान इन्द्रियों के निमित्त से मूर्त स्थूल इन्द्रियगोचर... अर्थात् इन्द्रिय से ज्ञात हो ऐसा। इतने **पदार्थों को ही क्षायोपशमिक ज्ञान के (उघाड़) अनुसार जान सकता है।** लो! ओहो! इन्द्रियाँ और इन्द्रियज्ञान का लक्ष्य छोड़ दे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? अतीन्द्रिय ऐसा भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु ऐसे आनन्दस्वरूप ज्ञाता त्रिकाल, उसकी दृष्टि कर, तो सुख होने का रास्ता है, बाकी हैरान होने के रास्ते हैं, ऐसा कहते हैं। ओहोहो!

इन्द्रियज्ञान... पाँच इन्द्रिय और मन से परोक्ष होता। अभी परोक्ष की व्याख्या में डालेंगे यह सब। समझ में आया? आता है न फिर? परोक्ष ज्ञान आता है या नहीं? देखो! १००वें पृष्ठ पर। बाद में आता है, देखो! '**जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्खं ति भणिदमट्ठेसु।**' यह कहते हैं, लो! '**परदो**' वहाँ परोक्ष की व्याख्या है। मन और इन्द्रिय सब पर, उससे होता ज्ञान सब परोक्ष है। समझ में आया? ज्ञानी को इन्द्रिय के निमित्त का परोक्ष ज्ञान थोड़ा होता है परन्तु वह हेयबुद्धि से वर्तता है। समझ में आया? ज्ञान चिदानन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि से और उसके ज्ञान से हुआ ज्ञान, वही उपादेयरूप से वर्तता है। आहाहा! कहो, व्यवहार, मन्द कषाय आदि तो हेय, परन्तु इन्द्रिय के निमित्त से होता ज्ञान भी ज्ञानी को हेय है। वहाँ मिथ्यात्व जीवित नहीं, परन्तु कमजोरी का भाव, उसके कारण ऐसा मति इन्द्रिय, मन से होता है, वह सब हेय है। आहाहा! कठिन बात!

यह ऐसे आँख से जो ऐसा होता है, सब होता है वह, कहते हैं, वह ज्ञान हेय है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जो भगवान आत्मा अनाकुल ज्ञान और आनन्द का कन्द है, उसके आश्रय से होती जो ज्ञान आदि दशा, वह सच्चा ज्ञान है कि जो ज्ञान सुख का साधन है। साथ में आनन्द लेता आता है। उस ज्ञान को ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! सूक्ष्म बात पड़े ऐसी हों! बड़ी, उस मुम्बई में और...

इन्द्रियज्ञान इन्द्रियों के निमित्त से मूर्त स्थूल इन्द्रियगोचर पदार्थों को ही (अपने) क्षायोपशमिक ज्ञान के अनुसार जान सकता है। परोक्षभूत वह इन्द्रिय ज्ञान इन्द्रिय, प्रकाश, आदि बाह्य सामग्री को ढूँढने की व्यग्रता के... उसमें बाह्य सब आ गया मन आदि में। उपात्त में आया था न। **बाह्य सामग्री को ढूँढने की व्यग्रता के कारण अतिशय चंचल-....** लोग कहते हैं न कि भाई! यदि मन मिले न, तब धर्म हो। मनरहित प्राणी को कहीं धर्म होओ? परन्तु उसका अर्थ क्या? कि वह जहाँ मनवाले प्राणी हैं, उनकी दृष्टि जब द्रव्य के ऊपर जाये, तब उसे धर्म हो। ऐसी दृष्टि मनरहित प्राणी को जाने का अवसर नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह जहाँ मन नहीं, ऐसे प्राणी को अन्तर दृष्टि होने का अवकाश उसे है ही नहीं। और मनवाले को अन्तर दृष्टि होने का अवकाश है, वह मन

है, इसलिए नहीं। आहाहा! समझ में आया? जितने प्राणी मनरहित एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय मनरहित हैं, उन्हें तो अन्तर दृष्टि होने का अवकाश ही नहीं, योग्यता ही नहीं उनकी। परन्तु जिन्हें मन प्राप्त है, ऐसे जो प्राणी, मन मिला है और मन से क्षयोपशम है, उस कारण से दृष्टि का अवकाश है, ऐसा नहीं, परन्तु उस काल में उसे दृष्टि होने की योग्यता, वह हो सकती है। कठिन बात!

मुमुक्षु : उसे अवकाश है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे अवकाश है। जहाँ मन नहीं, उसने तो कुछ सुना नहीं, विचार किया नहीं। यह सुना और विचार किया है, तथापि वह कहीं अन्तर की दृष्टि में काम नहीं करता। अरे.. अरे..! गजब बात भाई! 'ऐसा मार्ग वीतराग का भासित श्री भगवान, समवसरण के मध्य में सीमन्धर भगवान।' लो! कहो, समझ में आया? आहाहा! 'धार तलवार की सोह्यली दोह्यली, चौदहवें जिन तणी चरण सेवा। धार पर नाचता देख बाजीगरा, सेवना धार पर रहे न देवा।' भगवान आत्मा की सेवा, परमात्मा की सेवा अर्थात् ही आत्मा की सेवा। समझ में आया? वह ज्ञानानन्द भगवान आत्मा उसे अन्तर्मुख होकर उसकी सेवा करना, वह महाअलौकिक पुरुषार्थ है। उसमें मन था और मन से ज्ञान होता था, इसलिए उसे यहाँ ज्ञान होने का अवकाश है, ऐसा नहीं। परन्तु उसे ऐसा हो, वहाँ अवकाश है, इतनी बात है। वह स्वतन्त्र होने का काल है वह। गजब बात! समझ में आया?

इन्द्रिय, प्रकाश, आदि बाह्य सामग्री को ढूँढने की व्यग्रता के (-अस्थिरता के) कारण अतिशय चंचल-क्षुब्ध है, अल्प शक्तिवान होने से खेद खिन्न है,... लो! **'चित्तखेदकारणं भवति'** है न? संस्कृत टीका में है। उसमें भी है संस्कृत। परन्तु इसमें **'चित्तखेदकारणं'** मन को खेद का कारण। देखा, यह इन्द्रियज्ञान वह। **परपदार्थों को परिणमित कराने का अभिप्राय होने पर भी...** क्षण में और पल में इन्द्रियज्ञान, यह आँख को ऐसे रखूँ, कान को ऐसे रखूँ, फलाने को ऐसे रखूँ अथवा दूसरे पदार्थ देखने के लिये, वह जहाँ पदार्थ पड़े हों, वहाँ प्रकाश रखूँ, वह पदार्थ वहाँ प्रकाश के नजदीक में रखूँ तो मुझे बराबर ज्ञान होगा, वह परपदार्थ को परिणमाने का अभिप्राय करता ज्ञान है। समझ में आया?

मुमुक्षु : कोटि वर्ष का स्वप्न भी जागृत होत शमाय।

पूज्य गुरुदेवश्री : शमाय, परन्तु जागृत होत शमाय न? वह जागृत होना, उससे पहले यह हुआ था, इसलिए होता है, ऐसा है नहीं। स्वप्न आया था, इसलिए जागृत हुआ, ऐसा है?

मुमुक्षु : स्वप्न आया हो तो जागृत होगा ही।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु स्वप्न आया था, इसलिए जागृत हुआ, ऐसा है? जागृत होने की स्वतन्त्रता भिन्न है। ऐसा कहते हैं यह तो। क्या कहा? बाहर का क्षयोपशम है मन-इन्द्रिय आदि का, इसलिए चिन्तन में, दृष्टि में काम करता है जरा भी? आहाहा! ऐसा मार्ग चैतन्य का है। निरालम्ब मार्ग है, निरपेक्ष मार्ग है। जिसे मन और इन्द्रिय से होने ज्ञान की भी अन्तर्मुख दृष्टि में जिसकी अपेक्षा नहीं। ऐसा भगवान आत्मा निरपेक्ष तत्त्व है। आहाहा! कायर का कलेजा काँपे ऐसी बात है। भीखाभाई! 'वचनामृत वीतराग के परम शांत रसमूल, औषध जो भवरोग के कायर को प्रतिकूल।' कायर को तो अरेरे! ऐसा अर्थ! अरे! एकान्त हो जाता है और ऐसी चिल्लाहट मचाये। एकान्त हो जाता है। अब सुन न, यह एकान्त ही हो, तब उसे सम्यग्ज्ञान होता है। स्वसन्मुख ढले, तब ही उसे सम्यग्ज्ञान होता है। स्व एकान्त स्वधर्म को एकान्त में पकड़े, तब धर्म होता है। आहाहा! समझ में आया?

परपदार्थों को परिणमित कराने का अभिप्राय होने पर भी पद पद पर ठगा जाता है... आहाहा! इन्द्रियज्ञान से कुछ क्षयोपशम कुछ दिखाई दिया। उसमें कुछ काम करे न। उसमें यदि पाँच, पचास (हजार), लाख, दो लाख मिल गये वहाँ तो आहाहा! वह ठगाता है, सुन न! वह तो पूर्व का पुण्य था तो आया, तेरी बुद्धि से आया नहीं। अब तो अपने ऐसा किया न भाई, अब उसे ऐसा रखो। एक मशीन ऐसी की तो इतना मिला तो अपने अब पाँच मशीन कर डालें तो बहुत मिलेगा। ठगाता है, धूल में भी नहीं, सुन न! परपदार्थ से मिलता होगा? वह तो आनेवाला हो आवे उस काल में परमाणु, उसमें तुझे क्या है? परन्तु ठगाता है, कहते हैं। ऐई! मलूकचन्दभाई! ठगाता है? इन्द्रिय से देखे न ऐसे। आहाहा! देखो, ऐसा हुआ था न, ऐसा हुआ था न, ऐसा हुआ था न। हुआ था न परन्तु? या किया था तूने?

मुमुक्षु : किये बिना हुआ?

पूज्य गुरुदेवश्री : किये बिना हुआ है, ऐसा कहते हैं। तेरा इन्द्रियज्ञान ऐसा मान ले कि मानो यह मैंने किया, इसलिए हुआ, ऐसा किया न, बुद्धि लगायी न। बुद्धि लगायी (इसलिए हुआ)।

मुमुक्षु : नजर पहुँचूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, नजर पहुँचूँ। समझे न? क्या कहलाता है तुम्हारे उस सट्टा में कुछ कहते हैं न? वेरावळ के गिरधरभाई नहीं कहते थे? टोन। वे टोन कहते थे न! गिरधरभाई कहते थे। टोन लगाना। कौन सा भाव है, वह मस्तिष्क में आना चाहिए। ओहोहो!

मुमुक्षु : नजर पहुँच जाती होगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहुँच जाये। ब्रह्मचारी व्यक्ति था और उसमें से स्वप्न भी ऐसे आ जाते भाव में कोई। ऐसा भाव आवे। उसे बहुत रुपया न आवे। जिसे कहे, उसे पैसा आवे। उसे तो सौ रुपये चाहिए बारह महीने में। सौ रुपये कमाता था बस। सौ रुपये, हों! बारह महीने में। महीने में सौ कितने थे? यह तो सब अभी के फटे हुए हैं। पाँच सौ। रात्रि में पूछा था कल, कितना किराया आता है? पाँच सौ। क्या करते हो? महीने में पाँच सौ। अकेले हैं अविवाहित अपुत्र। मैंने पूछकर देखा था कल। मैंने कहा, यह कितना क्या करते हो तुम? कि किराया सवा सौ आता था महीने का। मकान है न बड़ा पचास ... अकेले हैं। पचास-साठ हजार का मकान है, पाँच सौ का किराया आता है महीने में। फिर क्या? सब खा जाये और उड़ा दे। मर गया बाद? वह लिख दिया है। मर जाने के बाद करेंगे। पाँच सौ चाहिए खाने के। ... कितनी? ऐई! वह तो दस रुपया, पन्द्रह। अभी और हो तो पच्चीस रुपये। परन्तु इतनी सब छत और अछत सुहाती है। वह इन्द्रियज्ञान ऐसा है, ऐसा कहते हैं। ठगाता है। यह तो शरीर अच्छा रहता है, अपने ऐसा है और अपने ऐसा करते हैं, उसमें ऐसा रहता है।

(क्योंकि परपदार्थ आत्मा के आधीन परिणमित नहीं होते)... यह सब्जी और रसोई कहीं आत्मा ने कल्पना की, इसलिए आते नहीं। गजब बात, भाई! आहाहा!

कच्चा आम लो सस्ता पहले, उसे डाला बाफ में, पकती हो न व्यवस्थित। वहाँ बफ जाये सब। होता है बहुत बार ऐसा होता है। कच्चा आम हो न पहला। बड़ा सस्ता हो, फिर चार, छह दिन, आठ दिन रखे उसमें वहाँ सब सड़ जाये।

मुमुक्षु : वह तो पक्का आम दोनों होशियार।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वे दोनों होशियार सब समझने जैसे हैं। उसमें पका हो तो खट्टा हो जाये अकेला। वह मानो पका होगा तो मीठा होगा, वहाँ अकेला खट्टा। आहाहा! खट्टा बड़ा। वह मानो कि ऐसा रखूँगा, फलाना करूँगा और फिर सस्ता मिल जाता है अभी। दो रुपये में मण। फिर वह तो बीस रुपये में मण होता है। करो, धूल भी नहीं होगा, सुन न! तेरे सब जायेंगे। इन्द्रियज्ञान क्या करे? वह तो वहाँ परिणमने का हो, वह परिणमेगा। आहाहा! ऐई! मलूकचन्दभाई! भारी ठगाता है।

इसलिए परमार्थ से वह ज्ञान 'अज्ञान' नाम के ही योग्य है। लो, वह अज्ञान ही है, कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा जिसमें ज्ञान भरा हुआ है अनन्त बेहद का ज्ञान जिसमें है, उसमें दृष्टि देने से जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान कहा जाता है। इन्द्रिय और मन से ज्ञान ठगा हुआ ज्ञान, उसे अज्ञान कहा जाता है। ओहोहो! आचार्य देखो न, हेय-उपादेय यहाँ (वर्णन करते हैं)। अभी उसको विवाद उठता है। देह की क्रिया हो जड़ की? जड़ की क्रिया है। भाई! जड़ की क्या, लाख जड़ की। यह तो मूर्त कहना ज्ञान, वह भी जड़ है, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। सुन न! अब तेरी देह की क्रिया तो जड़ है और कषाय की मन्दता, वह भी जड़ है। परन्तु इन्द्रिय और मन से होनेवाला ज्ञान, उसे मूर्त ज्ञान कहकर अचेतन कहा है। यदि चेतन हो तो आत्मा को लाभ होना चाहिए। लाभ होता नहीं, इसलिए उसे अचेतन कहा जाता है। आहाहा! यह ५५ (गाथा) हुई, लो!

★ ★ ★

गाथा - ५६

अब, इन्द्रियाँ मात्र अपने विषयों में भी युगपत् प्रवृत्त नहीं होतीं,... लो! एक इन्द्रिय भी उसके विषय में युगपद् प्रवर्तती नहीं। **इन्द्रियज्ञान हेय ही है, ऐसा निश्चय करते हैं :—** इसलिए इन्द्रियज्ञान छोड़नेयोग्य है।

फासो रसो य गंधो वण्णो सद्दो य पोग्गला होंति।
अक्खाणं ते अक्खा जुगवं ते णेव गेण्हंति॥५६॥

गन्ध वर्ण स्पर्श और रस शब्द सभी पौद्गलिक कहे-
इन्द्रिय-गम्य, तथापि इन्द्रियाँ इनको युगपत् नहीं ग्रहे॥५६॥

एक स्पर्श को देखने जाये, वहाँ रस नहीं आता और रस का चखने का लक्ष्य करे, वहाँ स्पर्श नहीं होता, ऐसा कहते हैं। एक इन्द्रिय एक-एक को जाने। कौवे का दृष्टान्त देंगे न! कौवे का दृष्टान्त देंगे। कौवे को एक ही गोलक होता है। कोडा दो होते हैं, ऐसे फांका, परन्तु गोलक एक हो। एकदम बदले। समझ में आया? शीघ्ररूप से (बदले), अर्थात् मानो दूसरे को ऐसा लगे दो गोलक होंगे अन्दर। गोलक तो एक ही होता है उसे। इसी प्रकार पाँच इन्द्रियों में एक इन्द्रिय की ओर लक्ष्य जाये, तब उस इन्द्रिय का काम करे, दूसरी इन्द्रिय से ज्ञान हो नहीं। कौवे की आँख की भाँति। समझ में आया? ऐसे मानो ऐसा लगे (कि) सुनता भी हूँ और देखता भी हूँ। एकदम बदलता है न। ऐसा कहते हैं। कौवे की आँख एकदम ऐसे चक्कर-फक्कर शीघ्र-शीघ्र ऐसे होकर ऐसा। उसे भी ऐसा लगता है कि सुनता भी हूँ और देखता भी हूँ। ऐसा नहीं है। सुनने के समय देखने का ज्ञान नहीं और देखना (हो), तब सुनने का नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहाँ ले जाते हैं, देखो न बात को।

अन्वयार्थ : स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द... भाषा (जो) **पुद्गल हैं, वे इन्द्रियों के विषय हैं (परन्तु) वे इन्द्रियाँ उन्हें (भी) एक साथ ग्रहण नहीं करतीं (नहीं जान सकतीं)।** एक साथ पाँचों ही को जान नहीं सकती। वह राजा नहीं कहता था,... कुछ नहीं? मोहम्मद ऐसा कोई। मोहम्मद बेगडो नहीं था? हीराचन्द मास्टर कहते कि पाँच इन्द्रिय के विषय एक साथ भोगना। ऐसे लड्डू खाता हो, वेश्या नाचती हो, फूल

के वृक्ष के मध्य में बैठा हो, सुगन्ध... सुगन्ध... समझ में आया? स्पर्श में ऐसी ठण्डी हवा आती हो स्पर्श की, एक ओर बाजा बजता हो। पाँचों इन्द्रिय के एक साथ लेता हूँ, ऐसा मानता था वह मोहम्मद बेगडो। गृद्धि हो, सुन न! एक इन्द्रिय की ओर का लक्ष्य करे, तब दूसरी इन्द्रिय का लक्ष्य होता नहीं। कौवे को डोले की भाँति। तुझे ऐसा लगता है कि सब एक साथ ऐसे खाता भी हूँ, देखता भी हूँ, सूँघता भी हूँ, सुनता भी हूँ। समझ में आया? स्पर्श भी करता हूँ, गन्ध भी लेता हूँ, रस का स्वाद (लेता हूँ)। वह सब तुझे लगता है, ऐसा है नहीं। यह पराधीन में एक इन्द्रिय का एक ही ज्ञान होता है। विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ६, रविवार, दिनांक २७-१०-१९६८
गाथा - ५६-५७, प्रवचन - ४८

यहाँ ऐसा कहते हैं कि यह ज्ञानतत्त्व ऐसा जो आत्मस्वभाव, वह अन्तर्मुख होकर उसकी ज्ञानदशा प्रगट हो, वह अतीन्द्रिय ज्ञान, और वह अतीन्द्रिय ज्ञान सुख का साधन है। समझ में आया? इन्द्रियज्ञान तो दुःख का साधन है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? क्योंकि ज्ञान है अपना और इन्द्रियों के निमित्त से होता है, वह तो पराधीन है। इसलिए वह इन्द्रिय से होता ज्ञान, वह हेय है, वह भी आत्मा के कल्याण के लिये काम का नहीं। अतीन्द्रिय आत्मा ज्ञायकस्वरूप चैतन्य जो ज्ञानतत्त्व है न? ज्ञान का सत्त्व है, ज्ञानभाव है अन्तर, वह वस्तु अतीन्द्रिय है, उसे ज्ञान की पर्याय अतीन्द्रिय द्वारा उसे अन्तर में स्पर्शता जो कुछ ज्ञान हो, वह सुख और आनन्द का कारण अथवा साधन है। वह ज्ञान उपादेय है, प्रगट करने की अपेक्षा से। समझ में आया? इन्द्रियज्ञान अपने विषयों में भी एक साथ व्यवस्थित सब इन्द्रियाँ जानती नहीं। एक इन्द्रिय जाने तो दूसरी इन्द्रिय का ज्ञान बाहर पड़ा हो खाली यह, आँख ऐसे जाने, कान तो पड़ा हो तो भी उस द्वारा ज्ञात नहीं होता। उस इन्द्रिय द्वारा जानने का ज्ञान, वह सब हेय है। यह बात करते हैं, देखो!

५६ वीं गाथा की **टीका :-मुख्य ऐसे स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण तथा शब्द—जो कि पुद्गल हैं...** पुद्गल के मुख्य गुण। गण अर्थात् कि जो दूसरे में है, ऐसे उसमें है। पुद्गलों में अस्तित्व, वस्तुत्व, प्रमेयत्व आदि गुण हैं, परन्तु वे मुख्य नहीं, पुद्गल की मुख्यता नहीं। क्योंकि ऐसे गुण तो दूसरे में भी है। पुद्गल जो यह शरीर, वाणी आदि, उसके मुख्य गुण स्पर्श, रस, गन्ध और वर्ण—रंग, शब्द कि जो पुद्गल हैं। **वे इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण होने योग्य (-ज्ञात होनेयोग्य) हैं।** जड़ जो शब्द, रूप, रस, गन्ध यहाँ से लिया है। इन्द्रिय स्पर्श से लिया है। यहाँ से नहीं लिया। स्पर्श, रस, रंग, गन्ध और शब्द। समझ में आया? क्योंकि स्पर्श बिना तो कभी रहता नहीं। चार बिना और शब्द बिना तो

होता है एकेन्द्रिय में। इसलिए स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, शब्द वे पुद्गल के मुख्य गुण हैं, वे इन्द्रियों द्वारा ज्ञात होनेयोग्य है।

(किन्तु) इन्द्रियों के द्वारा वे भी युगपद् (एकसाथ) ग्रहण नहीं होते (-जानने में नहीं आते),... समझ में आया? पुद्गल में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द, यह इन्द्रियों द्वारा ज्ञात होने पर भी वे एक साथ इन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं होते। **क्योंकि क्षयोपशम की उस प्रकार की शक्ति नहीं है।** ज्ञान के उघाड़ की इस प्रकार की योग्यता नहीं कि एक इन्द्रिय को जानने से दूसरी इन्द्रियाँ साथ में जाने, ऐसी उनमें योग्यता नहीं। **इन्द्रियों के जो क्षयोपशम नाम की अन्तरंग ज्ञातृशक्ति है,...** क्षयोपशम। यह शक्ति अर्थात् प्रगट है, हों! क्षयोपशम नाम की कही है न? उघाड़ नाम की शक्ति है अन्दर में विकास, ऐसी **शक्ति वह कौवे की आँख की पुतली की भाँति...** कौवे को दो छिद्र होते हैं, पुतली एक ही होता है कौवे को। घड़ीक में ऐसे घूमे। काम उसे एक पुतली से लेना है। यहाँ जब हो तो यहाँ से जाने, यहाँ हो तो यहाँ से जाने। **कौवे की आँख की पुतली की भाँति क्रमिक प्रवृत्तिवाली होने से...** इन्द्रियाँ क्रम से ज्ञात हो। इस प्रकार देखो।

अनेकतः प्रकाश के लिये (-एक ही साथ अनेक विषयों को जानने के लिये) असमर्थ है,... एक साथ सब इन्द्रियों का ज्ञान होने की उसकी योग्यता नहीं। देखो! निमित्त हेय, द्रव्यकर्म आदि हेय, पुण्य-पाप के विकल्प हेय, परन्तु इन्द्रियज्ञान भी हेय। समझ में आया? अतीन्द्रिय भगवान आत्मा जिसमें ज्ञानस्वरूप ही, स्वयं ज्ञानतत्त्व ही है पूरा। उसका आश्रय करने से जो ज्ञान हो, वह ज्ञान सुखरूप और सुख का कारण है। कहो, समझ में आया इसमें? कहो, यह संसार के सब पठन यह एल.एल.बी. और बी.ए. और डॉक्टर के सब क्या कहलाते हैं, समझ में आया? ऐई! एम.बी.बी.एस. और बी.एस.सी., यह वकालत का जानपना वह सब, कहते हैं कि दुःखरूप है, इन्द्रियज्ञान है सब। दास! यह सब मील के ज्ञान होशियारीपना मील का ऐसा करे, कपड़े का ऐसा करे, ढींकणा ऐसा करे, मशीन ऐसी करना। कर सकता नहीं, हों! परन्तु उसका ज्ञान उसमें काम करे कि इसका ऐसा हो, वह इन्द्रियज्ञान एक साथ सभी इन्द्रियों को जानने में क्षयोपशम की शक्ति इतनी ऐसी ताकतवाली नहीं।

क्रमिक प्रवृत्तिवाली होने से अनेकतः प्रकाश के लिये असमर्थ है, इसलिए

द्रव्येन्द्रिय द्वारों... क्या कहते हैं ? यह फांफा है सब छिद्र। **द्रव्येन्द्रिय द्वारों के विद्यमान होने पर भी...** द्रव्येन्द्रिय द्वार विद्यमान होने पर भी। यह द्रव्येन्द्रिय है सब जड़। उसकी अस्ति होने पर भी। द्रव्येन्द्रिय के द्वार खुल्ले होने पर भी। वह तो खुल्ले हैं या नहीं ? भाव अन्दर खुल्ला नहीं। **द्रव्येन्द्रिय द्वारों के विद्यमान होने पर भी समस्त इन्द्रियों के विषयों का ज्ञान एक ही साथ नहीं होता,...** कहो, समझ में आया ? ज्ञान इन्द्रिय द्वारा एक का करे, तब दूसरे का नहीं होता, दूसरे का करे तब पहले का नहीं होता। क्योंकि क्षयोपशम की ऐसी ही योग्यता है। समझ में आया ?

क्योंकि इन्द्रिय ज्ञान परोक्ष है। ऐसा। क्योंकि इन्द्रियज्ञान पर का आश्रय लेने को मिथ्या प्रयास करता है। आ गया था न पहले ? कल ही आया था न ? परपरिणति का अभिप्राय करता होने से। आँख व्यवस्थित रहे, ऐसा रहे... ऐसा रहे... लो, समझ में आया ? आहाहा! लो! आँख में कैंसर होता है, कहते हैं। मैंने आज सुना आँख का कैंसर। एक भाई आये थे न। रतिभाई का साला। मास्टर नहीं ? रतिभाई का साला। यहाँ आँख का कैंसर हुआ है। अभी गये। कैंसर आँख का कैंसर यहाँ। यदि निश्चित होगा कैंसर तो यह पुतली निकाल देना पड़ेगा। लो, द्वार है खुल्ला, तथापि उसे निकालना पड़ेगा उस पुतली को। देखो, यह पराधीनता। और होने पर भी कहते हैं कि एक इन्द्रिय के द्वार में इसका लक्ष्य जाये, दूसरे इन्द्रिय द्वार ऐसे के ऐसे पड़े रहें। समझ में आया ?

मकान की खिड़की हो पाँच-छह, तो एक खिड़की में से नजर करे तो एक का लक्ष्य जाये। दूसरी खिड़कियाँ खुल्ली होने पर भी उनका ख्याल आवे नहीं। किस प्रकार आवे ? एक साथ आवे ? इसी प्रकार यह सब खिड़कियाँ हैं पाँच। एक ओर लक्ष्य जाये तो एक खिड़की में और बाकी दूसरी खिड़कियाँ ऐसी की ऐसी पड़ी रहे। समझ में आया ? वह तो चैतन्य है जाननेवाला उस ओर से देखने पर एक का ज्ञान हो तो दूसरे का होता नहीं। इसलिए वह इन्द्रियज्ञान परोक्ष है। समझ में आया ? परोक्ष है अर्थात् कि छोड़नेयोग्य है, हेय है; आदरणीय नहीं। समझ में आया ? आहाहा! कठिन, भाई! कहाँ ले गये ? निमित्त हेय, जड़ हेय, दूसरे आत्मा भी उस आत्मा के लिये हेय। विकल्प उठे पाप का, वह हेय; दया, दान विकल्प उठे वह हेय, यह इन्द्रियज्ञान भी हेय। आहाहा! छोड़नेयोग्य है, कहते हैं। उसकी ओर का आश्रय करनेयोग्य नहीं।

भावार्थ :- कौवे की दो आँखें होती हैं... उसे आँख दो होती हैं। **किन्तु पुतली एक ही होती है।** जैसे अपने दो कीकी हैं। यह दो कीकी (पुतली) है न यह? उसे दो नहीं, उसे कीकी एक होती है। आँख दो, कीकी एक, यहाँ आँख दो और कीकी दो। **कौवे को जिस आँख से देखना हो, उस आँख में पुतली आ जाती है;...** ऐसे आ जाती है फट-फट। **उस समय वह दूसरी आँख से नहीं देख सकता।** दूसरी आँख ऐसी की ऐसी पड़ी रहे। ऐसे फिर से वहाँ देखे, ऐसे फिर से यहाँ देखे। **ऐसा होने पर भी वह पुतली इतनी जल्दी दोनों आँखों में आती-जाती है कि लोगों को ऐसा मालूम होता है कि दोनों आँखों में दो भिन्न-भिन्न पुतलियाँ हैं;...** लोगों को लगता, वहाँ नहीं। देखो! दृष्टान्त देकर सिद्धान्त (सिद्ध) करेंगे, हों! **किन्तु वास्तव में वह (पुतली) एक ही होती है।**

ऐसी ही दशा क्षायोपशमिक ज्ञान की है। अब अन्दर उघाड़ जो ज्ञान का है, वर्तमान विकास का अंश, उसका भी उस प्रकार पुतली जैसा है। एक इन्द्रिय में लक्ष्य करे तो दूसरी इन्द्रिय में हो नहीं, परन्तु एकदम फिरे न तो उसे ख्याल में न आवे। देखो! सुनते समय उसे कान है और सामने देखता है। वह मानो कि एक साथ दोनों का ज्ञान होता है। सुनने का भी ज्ञान साथ में होता है और यह देखने का ज्ञान होता है। परन्तु ऐसा नहीं। उसकी पुतली जो एकदम फिरती है, वैसे ज्ञान की दशा इन्द्रिय में एकदम फिरती है, एकदम बदलाव होता है। समझ में आया?

वास्तव में वह एक ही होती है। ऐसी ही दशा क्षायोपशमिक ज्ञान की है। द्रव्य-इन्द्रियरूपी द्वार तो पाँच हैं,... पाँच है न? यह स्पर्श है, जीभ, नाक, आँख, कान। **क्षायोपशमिक ज्ञान एक समय एक इन्द्रिय द्वारा ही जाना जा सकता है; उस समय दूसरी इन्द्रियों के द्वारा कार्य नहीं होता।** जानने का कार्य होता नहीं, ऐसा। **जब क्षायोपशमिक ज्ञान नेत्र के द्वारा वर्ण को देखने का कार्य करता है, तब वह शब्द, गन्ध, रस या स्पर्श को नहीं जान सकता; अर्थात् जब उस ज्ञान का उपयोग नेत्र के द्वारा वर्ण के देखने में लगा होता है, तब कान में कौन से शब्द पड़ते हैं...** इसकी उसे खबर नहीं। क्या कहा? ऐसा कहे। ऐसे आँख से देखने का उपयोग है, तब शब्द में उसका उपयोग नहीं। इसलिए उसे क्या कहा? ऐसा कहते हैं। अथवा कान से ख्याल

आया तब क्या गया? क्या हुआ? ऐसा कहे। आँख से देखा नहीं। एक ही इन्द्रिय। देखो! ऐसा खण्ड-खण्ड ज्ञान। क्षयोपशम ज्ञान पाँच इन्द्रियों द्वारा एकसाथ काम नहीं कर सकता। एक द्वारा (करता है) परन्तु एकदम फिरता है न, इसे ऐसा लगे। भगवान को देखता भी हूँ और किसी के शब्द सुनता भी हूँ। कहो, यहाँ भी मानो सुनता हूँ और देखता हूँ।

जब उस ज्ञान का उपयोग नेत्र के द्वारा वर्ण के देखने में लगा होता है, तब कान में कौन से शब्द पड़ते हैं... इसकी उसे खबर होती नहीं। कान पर क्या शब्द पड़ते हैं। इसकी उसे खबर होती नहीं। देखो! यह इन्द्रियज्ञान पराधीन और यह मानता है कि हम सुखी हैं। मानता है कि नहीं? यह कीर्ति सुने, रूप देखे। कहो, रस चखने के उपयोग में हो, मजा है, अभी तो हमारे बादशाही है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु अपने निर्णय करना चाहिए कि यदि दुःख न हो तो उसे आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होना चाहिए। अतीन्द्रिय आनन्द जो ज्ञान में नहीं, वह ज्ञान दुःखरूप है, ऐसा तो सिद्ध होता है उसके साथ। और यह दृष्टान्त इसके लिये सिद्ध करते हैं। सुख का साधन ऐसा अतीन्द्रिय ज्ञान, वह उपादेय है; दुःख का साधन ऐसा जो इन्द्रियज्ञान, वह हेय है। इसलिए तो यह गाथायें ली हैं। ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है न। कहो।

जब उस ज्ञान का उपयोग नेत्र के द्वारा वर्ण के देखने में लगा होता है, तब कान में कौन से शब्द पड़ते हैं या नाक में कैसी गन्ध आती है... खबर न हो उसे। नाक में गन्ध आती हो, परन्तु उपयोग वहाँ नहीं होता, देखने में होता है, इसलिए गन्ध का ज्ञान होता नहीं। **इत्यादि ख्याल नहीं रहता। यद्यपि ज्ञान का उपयोग एक विषय में से दूसरे विषय में...** वह पुतली शीघ्रता से फिरती है न? ऐसे **एक विषय में से दूसरे में अत्यन्त शीघ्रता से बदलता है, इसलिए स्थूलदृष्टि से देखने में ऐसा लगता है कि मानों सभी विषय एक ही साथ ज्ञात होते हों,...** समझ में आया? लड्डू है। देखो! गर्म हो जरा गर्म ताजा हो। इसलिए गर्म का ज्ञान हो, तब रंग का भी ज्ञान होता है, यह शक्कर का है, ऐसा ज्ञान साथ में होता है, ऐसा लगता है। समझ में आया? गर्म का ज्ञान हो, साथ में

मीठे का, शक्कर का यह लड्डू, ऐसा भी ज्ञान होता है और यह गेहूँ का लड्डू है, ऐसा ज्ञान होता है, लो! या यह चने का लड्डू है। यह आँख से होता है और स्पर्श से होता है। वह मानो एकसाथ होता हो, ऐसा लगता है परन्तु ऐसा है नहीं। स्पर्श इन्द्रिय में ऐसे जब स्पर्श करता है, तब जो ज्ञान उपयोग है, उस काल में देखने का उपयोग काम करता नहीं। आँख ऐसी की ऐसी कोडा पड़े होते हैं, ऐसा कहते हैं। कोडा ऐसे के ऐसे रहें। ऐसे स्पर्शता नहीं। गर्म-गर्म होता है न लड्डू तो गर्म-गर्म बादाम का। उसका ज्ञान हो तब आँख ऐसी की ऐसी हो, तो भी यह लड्डू सफेद है, ख्याल में नहीं होता, सामने पड़ा है तो भी ख्याल में नहीं होता। बराबर होगा? परन्तु एकदम शीघ्रता से उपयोग फिरता है, इसलिए लगता है मानो दोनों का एक साथ ज्ञान होता है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह इन्द्रियज्ञान की पराधीनता की पद्धति बताते हैं।

तथापि सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर क्षायोपशमिक ज्ञान एक समय में एक ही इन्द्रिय के द्वारा प्रवर्तमान होता हुआ स्पष्टतया भासित होता है। इस प्रकार इन्द्रियाँ अपने विषयों में भी क्रमशः प्रवर्तमान होने से परोक्षभूत इन्द्रियज्ञान हेय है। ओहोहो! उस ओर के झुकाववाला ज्ञान लक्ष्य छोड़नेयोग्य है, उसके ऊपर से दृष्टि छोड़ देनेयोग्य है।

★ ★ ★

गाथा - ५७

अब, यह निश्चय करते हैं कि इन्द्रियज्ञान प्रत्यक्ष नहीं है :- लो! इन्द्रियज्ञान प्रत्यक्ष नहीं। परोक्ष है, इसलिए प्रत्यक्ष नहीं। क्यों नहीं प्रत्यक्ष? उसे सिद्ध करते हैं। ज्ञानतत्त्व अधिकार है न यह सब। भगवान आत्मा ज्ञानस्वभावरूप है, ज्ञानतत्त्वरूप है। समझ में आया? उस ज्ञानतत्त्व में अपने स्वभाव को पर की जितनी अपेक्षा रहे निमित्त की, वह सब परोक्ष ज्ञान है, हेय है, आश्रय करनेयोग्य नहीं। ओहोहो! गजब बात! भगवान को सुने तब वह कान से सुने, तब आँख से दिखे नहीं, ऐसा है। भगवान समवसरण में विराजते हों, लो! दिव्यध्वनि। नारद गये न? वरना कहते हैं न कि अमृत बहता है मानो। ऐसा आता है या नहीं?

मुमुक्षु : समयसार में भी आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : समयसार। भगवान की वाणी मानो कान में अमृत प्रवाहित होता है, ऐसा लगता है, लो! और रूप तो मानो ओहोहो! इन्द्र हजार आँख से देखे, तो भी तृप्ति नहीं होती, ऐसा कहते हैं। हजार आँख करके देखे भगवान को, लो, तीर्थंकर के शरीर को। शरीर को ऐसे देखता जाता है... समझ में आया? तब उसे शब्द क्या पड़ते हैं, उसकी खबर होती नहीं। कान तो ऐसे के ऐसे पड़े हैं फांका यह। उपयोग एक जगह जाये और दूसरी जगह जाता नहीं। इसलिए इन्द्रियज्ञान हेय है। ओहोहो! समझ में आया? यह ५७ में कहते हैं।

परदव्वं ते अक्खा णेव सहावो त्ति अप्पणो भणिदा।
उवलद्धं तेहि कधं पच्चक्खं अप्पणो होदि॥५७॥

वे इन्द्रियाँ परद्रव्य हैं... यह सब इन्द्रियाँ परद्रव्य। यद्यपि भावेन्द्रिय भी उसमें आ जाती है, हों! आ गयी देखो, उसमें कहा था न? भावेन्द्रिय कहा, देखो! जयसेनाचार्य में आता है। '**मूर्तशरीराधारोत्पन्नमूर्तद्रव्येन्द्रियभावेन्द्रियाधारणे**' है। ९६ पृष्ठ पर है। संस्कृत जयसेनाचार्य की बीच की लाईन। तीसरी लाईन में बीच की लाईन। ... उसे मूर्त कहा है। यह द्रव्येन्द्रिय यह फांका उसे मूर्त कहा है और वह भावेन्द्रिय है, उसे भी मूर्त कहा है। समझ में आया? '**मूर्तशरीराधारोत्पन्नमूर्तद्रव्येन्द्रियभावेन्द्रियाधारणे**' मूर्त ज्ञान है। आहाहा! मूर्त निमित्त है न, इसलिए ज्ञान को मूर्त कहा गया है। वह अमूर्त ज्ञान नहीं। अमूर्त ज्ञान तो ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा अन्तर में लक्ष्य करके जो ज्ञानपर्याय प्रगट हो, वह द्रव्य अमूर्त, गुण अमूर्त और पर्याय अमूर्त। उस ज्ञान को—अमूर्त ज्ञान को सुख का साधन कहा जाता है। समझ में आया? पैसा सुख का साधन नहीं, यह कुटुम्ब, कबीला, इज्जत, शरीर आदि सुख के साधन नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि इन्द्रियज्ञान सुख का साधन नहीं। कहाँ गये? लोगों को भी ऐसा रस लग जाये। धूल इकट्ठी हो ... आहाहा! परन्तु क्या है सब? वह तेरे दुःख के निमित्त हैं। वह तो है, परन्तु इन्द्रिय का ज्ञान दुःख का साधन है। अब तेरा आनन्द या सुख कहाँ आया? आहाहा!

मुमुक्षु : मूर्त ज्ञान तो जड़ जैसा।

पूज्य गुरुदेवश्री : जड़ जैसा कहा, अचेतन कहा, अचेतन कहा। चेतन को लाभ नहीं, वह अचेतन। आहाहा! भावेन्द्रिय को अचेतन कहा, जड़ को अचेतन कहा। आहाहा! मूर्त, अज्ञान वह मूर्त है न, मूर्त। आहाहा! पहले कहा था न! आहाहा! तो भी यह सब साधन बाहर है, वह कहाँ इसका है। प्रयास करता है, प्रयास कितना? मरकर भी बाहर की इन्द्रिय की बुद्धियाँ विकसित करना, उसे यह सुख का साधन। मिथ्यात्व को पोषता है, कहते हैं। उसमें और दो-पाँच लाख पैदा हो। आहाहा! उसमें से लाख, डेढ़ लाख, दो लाख जाये। झटका आये अन्दर। झटका आ जाये। क्या है परन्तु यह? सब भ्रमणा किसकी लगी यह?

यहाँ तो कहते हैं कि इन्द्रिय के निमित्त में जो लक्ष्य जाता है, वह एक जगह जाये और दूसरी जगह न जाये, इसलिए वह ज्ञान दुःखरूप है, वह आदरणीय नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

इसका हरिगीत

आत्मस्वभाव नहीं हैं वे इन्द्रियाँ, उन्हें परद्रव्य कहा।
उनसे जो उपलब्ध ज्ञान वह, कैसे कहें प्रत्यक्ष भला?॥५७॥

अन्वयार्थ :- वे इन्द्रियाँ परद्रव्य हैं... यह तो सब परद्रव्य परमाणु, मिट्टी, धूल है। आत्मा को और उसे कुछ सम्बन्ध नहीं। आत्मा अरूपी भिन्न और यह रूपी जड़ भिन्न। मृतक कलेवर है।

मुमुक्षु : मृतक कलेवर कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर। यह शरीर मृतक कलेवर है अभी। परमाणु में चेतना नहीं है, इसलिए मृतक है। इसमें चेतना है इस परमाणु में? चेतना तो भिन्न अन्दर है। मृतक कलेवर से जानता है यह? आँख, वह मृतक है लो! मर गया हुआ मुर्दा। यह सफेद-काला। सफेद-काला वह तो परमाणु मिट्टी है, मृतक है। सफेद-काल में चैतन्य का अंश नहीं। सफेद-काला दिखता है न मिट्टी? उसमें चैतन्य का अंश नहीं। मरा हुआ मुर्दा है।

वे इन्द्रियाँ परद्रव्य हैं... यह तो परवस्तु है यह तो। भगवान भिन्न स्ववस्तु है।

दोनों अत्यन्त भिन्न। स्ववस्तु में परवस्तु का अभाव है। भगवान आत्मा में द्रव्येन्द्रियों का ही अभाव है। समझ में आया? आत्मा सच्चिदानन्दस्वरूप अरूपी, उसमें यह जड़ मिट्टी का अभाव है। मिट्टी परद्रव्य है। **उन्हें आत्मस्वभावरूप नहीं कहा है;...** इस जड़ को आत्मा का स्वभाव कहा नहीं। यह तो जड़ का स्वभाव है पूरा। कहाँ बात उतारी! भावेन्द्रिय भी ऐसी है वास्तव में तो, हों! खण्ड-खण्ड, पर है। **आत्मस्वभावरूप नहीं कहा है; उनके द्वारा ज्ञात आत्मा का प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है?** देखो! जो आत्मा का स्वभाव नहीं, वह पाँच जड़। कान, आँख, नाक जड़ है। आत्मा का स्वभाव कहा नहीं। वह तो परद्रव्य है। उससे होता ज्ञान प्रत्यक्ष कैसे हो? उसके लक्ष्य से, निमित्त से होता ज्ञान, वह आत्मा के आश्रय से हुआ प्रत्यक्ष कैसे कहलाये? वह तो परोक्ष है। आहाहा!

मुमुक्षु : ....भावेन्द्रिय-द्रव्येन्द्रिय दोनों समान?

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों। दोनों समान। वे परद्रव्य। समझ में आया? आहाहा! यदि स्वद्रव्य हो तो भव्य-अभव्य को ग्यारह अंग का ज्ञान होता है। यदि स्वद्रव्य हो तो सुखरूप हो अन्दर। समझ में आया? ग्यारह अंग, नौ पूर्व। ओहोहो! कितनी बात इसमें आ जाती होगी, लो! जीवद्रव्य की आ जाती है इसे। पर्याय के अंश में खड़ा, द्रव्य ऐसा है, ऐसा ज्ञान उसे आ जाता है। द्रव्य को स्पर्शकर करता नहीं। समझ में आया? अनादि मिथ्यादृष्टि भव्य या अभव्य ग्यारह अंग और नौ पूर्व के ज्ञान में यह सब बात आयी नहीं इसे? खबर नहीं कि जीव ऐसा है? परन्तु वह अपने अंश में खड़ा रहकर द्रव्य ऐसा है, ऐसा अनुमान से उसने किया है। वह सब ज्ञान परोक्ष है, इन्द्रियज्ञान हेय है। आहाहा! समझ में आया?

उससे जरा भी सम्यग्ज्ञान का यदि अंश हो, तब तो मुक्ति हुए बिना रहे नहीं। वह तो मिथ्या ज्ञान हुआ। भगवान की वाणी सुनी, समवसरण में जाये। वह भव्य जीव समवसरण में जाये, भगवान की वाणी सुने। समझ में आया? इन्द्रिय से लक्ष्य वह करे और उघाड़ उसे हो। परन्तु वह इन्द्रियज्ञान सब परोक्ष है। ओहोहो! समवसरण में नहीं जाता? सुनता नहीं? शास्त्र सुनता है। परन्तु यह जड़ परद्रव्य है, इसलिए उसे आत्मा का स्वभाव कहा नहीं, इसलिए उससे होता ज्ञान, उसे परोक्ष कहा जाता है। उसे प्रत्यक्ष

कैसे कहा जाये? वह सब ज्ञान परोक्ष है, कहते हैं। ओहोहो! परोक्ष अर्थात् अपने आश्रय से हुआ नहीं, पर आश्रय से हुआ। ओहोहो! समझ में आया?

ज्ञान में क्षयोपशम का ज्ञान पर्याय में इतना उघड़ा हुआ हो कि ऐसे लाखों-करोड़ों श्लोक तो जिसे कण्ठस्थ पानी के प्रवाह के पूर की भाँति चलता हो। परन्तु भाई! यहाँ तो कहते हैं न! यह तो परद्रव्य है न? यह तो परद्रव्य है। आत्मद्रव्य है वह? और उसका आत्मस्वभाव है वह? परद्रव्य है, इसलिए आत्मभाव है वह? आत्मभाव नहीं, इसलिए उससे होता ज्ञान, उसे प्रत्यक्ष कैसे हो? परोक्ष है। गजब बातें! दूसरे को ऐसा लगे कि यह भगवान का ज्ञान सुनता है न। भगवान का ज्ञान उनकी वाणी में नहीं आता होगा? वाणी यहाँ सुनकर कहीं ज्ञान नहीं होता होगा सच्चा? किसलिए कहा? सुनो! लो, ऐसा कहते हैं या नहीं शास्त्र भी? सुनो! यहाँ कहा न वोच्छामि समयपाहुड़ं कहता हूँ समयसार। इसका अर्थ कि सुननेवाले को कहता हूँ न। किसे? दीवार को कहते हैं। वोच्छामि समयपाहुडं। शास्त्र कहूँगा। कहूँगा का अर्थ यह कि सुननेवाले को सुनाता हूँ। यह सब आत्मा से परलक्ष्यी है। उस उघाड़ में स्व चैतन्य भगवान आया नहीं और चैतन्य स्वयं आये बिना उस ज्ञान को प्रत्यक्षपना या अतीन्द्रियपना या सुख का साधन लागू पड़ता नहीं। ओहोहो! कायर को तो कंपकंपी छूटे, ऐसा है यह। पुण्य, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम, वे हेय! यह अभी हमको कठोर पड़े, वहाँ इन्द्रियज्ञान हेय।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इन्द्रियज्ञान हेय। वह और हेय तो कैसे? कि दुःख का कारण है वह। वह दुःख का साधन है। आहाहा! कठिन बात, भाई! ग्यारह अंग और नौ पूर्व किये न भव्य ने अनन्त बार। वह ज्ञान कौनसा था? परोक्ष था, इन्द्रियज्ञान था, दुःखरूप था। ओहोहो! सुखरूप हो तो आनन्द का अंश आना चाहिए। वह तो है नहीं। क्योंकि सुख का साधन वह नहीं। वह तो दुःख का साधन है। वह यहाँ सिद्ध करना है न। इन्द्रियज्ञान दुःख का साधन है। अतीन्द्रिय ज्ञान सुख का साधन है। आहाहा! लो!

उनके द्वारा ज्ञात... अर्थात् कि जो यह परद्रव्य है और आत्मस्वभाव नहीं यह। उसके निमित्त से ज्ञात हुआ ज्ञान, वह प्रत्यक्ष कैसे हो सकता है? वह आत्मा का ज्ञान

कैसे हो सकता है? वह आत्मा की श्रद्धा कैसे हो सकती है? वह आत्मा में से ज्ञान आया, ऐसा कैसे कहा जाये? वह तो सब पर से आया। आहाहा! ऐई! समझ में आया? 'ऐसा मार्ग वीतराग का भाषित श्री भगवान।' भाषित आया है न। है और कहा है न। किस प्रकार होता है? भाषित नहीं उन्होंने। देखो न! भगवान ने नहीं कहा। '**णेव सहावो त्ति अप्पणो भणिदा**' भणिदा है न भणिदा। भगवान ने नहीं कहा ऐसा। भगवान ने ऐसा कहा है कि इन्द्रियज्ञान, भगवान चैतन्य गोला अन्दर उसका वर्तमान विकास का अंश एक-एक इन्द्रिय को, जो इन्द्रिय परद्रव्य है कि जो इन्द्रिय आत्मस्वभाव से रहित है, उससे होता ज्ञान, उसे आत्मा का ज्ञान प्रत्यक्ष कैसे कहलाये? यह तो परोक्षज्ञान है। वह आत्मा का ज्ञान कैसे कहलाये? इन्द्रिय का ज्ञान है। आत्मा का ज्ञान नहीं। गजब ज्ञानतत्त्व अधिकार में ऐसी सूक्ष्मता से बात ली है। वस्तु है न आत्मा? ज्ञानस्वरूप है न? ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है यहाँ। यह वस्तु में ऐसा ही होता है। समझ में आया?

टीका :- जो केवल आत्मा के प्रति ही नियत हो... वहाँ तो पाठ में तो मात्र परोक्ष की व्याख्या है। परन्तु अब उसमें से पहले प्रत्यक्ष की बात निकालते हैं। समझ में आया? **जो केवल आत्मा के प्रति ही नियत हो, वह (ज्ञान) वास्तव में प्रत्यक्ष है।** भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति है, चैतन्यबिम्ब चिद्घन है, उसके आश्रय से जो ज्ञान हो, वह ज्ञान प्रत्यक्ष, वह ज्ञान सुखरूप, वह ज्ञान सम्यक्, उस ज्ञान की परिणति सच्ची। समझ में आया? भाई! संसर में भी निगोद में से जीव आया हो एकेन्द्रिय में से, लो! तो उसे उघाड़े थोड़ा होता है, पश्चात् राग को मन्द करके उघाड़ बहुत करे। ग्यारह अंग और नौ पूर्व भी पढ़ जाये, इतना उघाड़ करे। इससे आत्मा में से आया हुआ ज्ञान नहीं वह, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह निगोद में जीव था, आलू, शक्करकन्द में इसे वहाँ कहाँ (उघाड़) था? बहुत अक्षर के अनन्तवें भाग उघाड़। वहाँ से कोई शुभभाव ऐसे हुए, मनुष्यरूप से आया, और एकदम साधु हुआ, त्यागी और ग्यारह अंग तथा नौ पूर्व पढ़ा, लो! वहाँ कहाँ था? तो वह सब आया कहाँ से? कहते हैं कि आत्मा में से नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! समझ में आया? क्योंकि वह सब ज्ञान परोक्ष है। इसलिए आत्मा के आश्रय से आया नहीं। आहाहा!

आत्मा ज्ञानमूर्ति स्वयं है, उसके आश्रय से जो ज्ञान हो, वह ज्ञान आत्मा का, वह

ज्ञान प्रत्यक्ष और वह ज्ञान सुख का साधन और वह ज्ञान अतीन्द्रिय, वह ज्ञान, वह ज्ञान है। समझ में आया? आहाहा! यहाँ तो अभी इन्द्रियज्ञान के अमुक उघाड़ में उसे अभिमान आ जाये। अपने कितना पढ़े! कितना जाना! दूसरे न जान जाये, इसलिए अपनी... यदि दूसरे जान जाये तो फिर उसकी अधिकता हो जायेगी, मेरी अधिकता घट जायेगी। अब यहाँ अभी अटके। समझ में आया? वह ज्ञान, ज्ञान ही नहीं। आहाहा!

जो केवल आत्मा के प्रति ही नियत हो... निश्चय। लगा हुआ, चिपका हुआ, उससे हुआ। **वह (ज्ञान) वास्तव में प्रत्यक्ष है।** यह नीचे मति-श्रुत को भी प्रत्यक्ष कहा। आहाहा! भले तत्त्वार्थसूत्र में इनकार किया हो कि मति-श्रुत परोक्ष है। समझ में आया? अपवाद का स्पष्टीकरण यहाँ कर डाला। कहते हैं कि भाई! जो आत्मा से ज्ञान हो, उसे प्रत्यक्ष (कहते हैं)। सम्यग्दृष्टि को मति-श्रुत है न? वह तो शास्त्र में तो ऐसा आवे (कि) पाँच इन्द्रिय और मन से हो, वह मति, अकेले मन से हो वह श्रुत। ऐसा आता है न? यह तत्त्वार्थसूत्र में ऐसा आता है। आता है या नहीं? पाँच इन्द्रियाँ और मन से हो, वह मतिज्ञान। वहाँ ऐसा कहा।

यहाँ कहते हैं कि आत्मा से जो प्रगट हो, वह मतिज्ञान सम्यक् कहलाता है। पाँच इन्द्रिय, मन से हो, वह परोक्ष ज्ञान कहलाता है। कथन में कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं, उनके शिष्य ऐसा कहते हैं। वीतरागी मुनि हैं, वे तो समझाते हैं (कि) व्यवहार की स्थिति क्या है, वह कहा। समझ में आया? यहाँ कहते हैं कि केवल आत्मा के प्रति नियत, निश्चय, लगा हुआ, चिपटा हुआ हो, वह वास्तव में प्रत्यक्ष है। तब मति-श्रुत की व्याख्या तो तत्त्वार्थसूत्र जो दसलक्षणी पर्व में सुनने में आवे वर्षोंवर्ष, वहाँ तो ऐसा आवे। एक-एक अध्याय पूरा करना पड़े न। एक दिन में नौ अध्याय वाँच जाये और एक अध्याय पूरा करे। दस दिन में दस अध्याय। फिर भले अर्थ समझे नहीं कुछ एक भी उसका, परन्तु गड़गड़ाते जावे। अब वहाँ ऐसा कहा है कि भाई, आत्मा में पाँच इन्द्रियाँ जड़ और उनसे ज्ञान हो वह मति-श्रुत कहलाता है। यह तो परोक्ष की व्याख्या हुई। यहाँ कहते हैं कि आत्मा के प्रति जो नियत हो, वह प्रत्यक्ष होता है। तो इस प्रत्यक्ष की व्याख्या में मति-श्रुत निकाल दिये होंगे? वास्तव में यह अतीन्द्रियज्ञान पूर्ण की बात करते हैं, परन्तु यह उसमें आ जाता है। समझ में आया?

केवलज्ञान प्रत्यक्ष है तो उसका साधन जो मति-श्रुत, वह भी प्रत्यक्ष ही है। अपने आत्मा के आश्रय से हुआ जो ज्ञान है, आत्मा के प्रति नियत है, निश्चय है, चिपटा हुआ है, उसका आश्रय होकर प्रगट हुआ है। समझ में आया? आत्मा के प्रति निश्चय हो, वह वास्तव में प्रत्यक्ष है। यह लोगों को बैठता नहीं, लो! प्रत्यक्ष, वह तो अतीन्द्रिय केवलज्ञान ही होता है। यह तो राजमार्ग कहा है। समझ में आया? परन्तु चौथे गुणस्थान में भी आत्मा के प्रति जितना स्वाश्रय से प्रगट हुआ, वह प्रत्यक्ष ज्ञान है। वह प्रत्यक्ष ज्ञान स्व को प्रत्यक्ष करता है।

मुमुक्षु : सवेरे आ गया शुद्धनय।

पूज्य गुरुदेवश्री : शुद्धनय का आया था। शुद्धनय अभ्युदेति। चौथा पद था। प्रकाशयन् शुद्धनयोभ्युदेति.. आया था न? 'आतमस्वभावं परभाव भिन्नं। आत्मस्वभावं परभाव भिन्नं आपूर्ण आदि-अंत विमुक्तं एकं। विलीन संकल्प विकल्प जालं, प्रकाशयन् शुद्धनयो अभ्युदेति।' शुद्धनय प्रगट होता है। यह चौथे की बात है या किसकी बात है? आठवें की बात है? आठवें गुणस्थान में (हो), ऐसा लोग कहते हैं।

मुमुक्षु : यह .... कुछ नहीं होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह परोक्ष (कहे) सब। आहाहा! अपनी दृष्टि में फेर से पूरी वस्तु-शास्त्र के अर्थ भी बदल डाले। स्वयं फेर में है न, (इसलिए) सबको फेर डाला। आहाहा! समझ में आया?

पहली लाईन यह। समझ में आया? यह लाईन निकालकर यह बताना है, उसके विरुद्ध का पहला। बताना है परोक्ष। गाथा में वह है न? **जो केवल आत्मा के प्रति...** अकेला आत्मा, भगवान आत्मा एक केवल अन्तर्मुख होकर एक केवल आत्मा के प्रति से जो ज्ञान प्रगट हो, उस ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा जाता है। मति-श्रुतज्ञान भी केवल आत्मा को स्वयं नियत-निश्चय से प्रगट होता है, इसलिए इसे भी प्रत्यक्ष कहा जाता है। कहो, समझ में आया? तो अवधि, मन:पर्यय को प्रत्यक्ष कहा है न? समझ में आया? वह कहीं आत्मा को जानता नहीं। पर के उघाड़—विकास की अपेक्षा से उसे प्रत्यक्ष कहा है। वह तो वैभव है बीच का, किसी को हो और किसी को न हो। यह मति, श्रुत और

केवल तीन तो होते ही हैं। गजब बात! समझ में आया? भगवान आत्मा के आश्रय से हो तो अवधि, मन:पर्यय आत्मा को जानना चाहिए। मति-श्रुत है तो जानता है, केवली जानते हैं, अवधि, मन:पर्यय का विषय आत्मा है ही नहीं। वह प्रत्यक्ष पर की अपेक्षा से ज्ञान का उघाड़ है, उसे कहा है। उघड़कर उसे हो सम्यग्दृष्टि को ही होता है वह। समझ में आया? परन्तु भगवान आत्मा चैतन्यस्वभाव अकेला ज्ञायकभाव, उसके आश्रय से, उसे नियत-निश्चय करके प्रगट हुआ वह ज्ञान प्रत्यक्ष है, वह ज्ञान सुख का साधन है, वह ज्ञान दु:ख का नाश करनेवाला है। वह ज्ञान दु:ख का नाश करनेवाला है। कहो, समझ में आया?

यह (इन्द्रियज्ञान) तो,... अब उसके सामने लिया। पाठ में है वह। **यह (इन्द्रियज्ञान) तो, जो भिन्न अस्तित्ववाली होने से...** जिसका अस्तित्व ही आत्मा से भिन्न है, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप से अस्ति है और यह द्रव्येन्द्रियाँ तो उसके अस्तित्व से, उसकी सत्ता से उनकी सत्ता भिन्न है। उनकी तो सत्ता भिन्न है। भगवान आत्मा की सत्ता जो है, वह ज्ञानानन्दस्वभाव की सत्ता से विराजमान है। उससे यह द्रव्येन्द्रिय का अस्तित्व—उनका अस्तित्व-उनकी सत्ता-उनकी अस्ति आत्मा से अत्यन्त भिन्न जाति की है। देखो, समझ में आया? शरीर भिन्न कहो या शरीर की इन्द्रियाँ कहो, क्योंकि वे सब शरीर के अवयव हैं। पाँच इन्द्रियाँ शरीर के अवयव हैं, अंश हैं। पूरा शरीर ही जहाँ परद्रव्यरूप से अस्तित्व पर अस्तिरूप से रहा हुआ है। अपनी अस्तिरूप से यह शरीर नहीं रहा, ऐसा कहते हैं। यह... यह... कहते हैं, भिन्न होनेवाली होने से परद्रव्यपने को प्राप्त है। आत्मा की वस्तु से वहाँ भिन्न अस्तिरूप से अत्यन्त भिन्न वस्तु है। समझ में आया?

अपना जो अस्तित्व है चैतन्य का, उससे भिन्न अस्तिरूप से रही हुई इन्द्रियाँ हैं। भगवान आत्मा स्वयं रहा हुआ स्वद्रव्य है, तब भिन्न अस्तिरूप से रही हुई वे परद्रव्य हैं। समझ में आया? यह सवेरे-दोपहर दोनों चलता है, मनसुखभाई! यह सब एक-दो दिन में समझ में आये ऐसा। यह बहुत व्यापार करे और कभी यहाँ आवे तो मुश्किल से थोड़ा-थोड़ा पकड़ में आये इसे ऊपर से। वहाँ हमारे वाँचनेवाले पण्डित हैं यह पालेज में। इन्हें तो यह सब पहलू जानने पड़ेंगे या नहीं इन्हें? कहो, समझ में आया?

यह (इन्द्रियज्ञान) तो, जो भिन्न... होनेवाली जो यह परद्रव्यपने को प्राप्त है, जो परद्रव्यरूप है **और आत्मस्वभावत्व को किंचित्मात्र स्पर्श नहीं करतीं...** पाठ में है सही न यह ? वे यह पाँच जो हैं, वे आत्मा के स्वभाव को जरा भी स्पर्श नहीं करती। क्योंकि भिन्न तत्त्व है, यह तो मिट्टी। आहाहा! समझ में आया ? आत्मा अपने आत्मस्वभाव में स्वयं अस्तित्वरूप से है और यह इन्द्रियाँ परद्रव्यरूप से अस्तित्वरूप से है, आत्मा के स्वभाव से अन्य स्वभावपने है। उस आत्मा के स्वभाव को यह पाँच इन्द्रियाँ जरा छूती नहीं, स्पर्शती नहीं। समझ में आया ? वास्तव में पुण्य-पाप का विकल्प जो है, वह भी आत्मस्वभाव को जरा भी स्पर्शता नहीं, छूता नहीं। उसमें पाँच इन्द्रियाँ तो प्रत्यक्ष जड़ हैं, वे तो चैतन्य की विकृत अवस्था है। वे भी त्रिकाली आत्मस्वभाव... लो, यह आत्मस्वभाव आया इसमें। समझ में आया ? जीवस्वभाव न ? सवेरे यह आया था न ? आत्मस्वभाव परभाव भिन्नं। ऐसा। आत्मस्वभाव लिया स्वभाव। उसमें यह लिया है जीवस्वभाव लिया है, लो! 'जीव स्वभाव भाख्युं न तेमने...' यह जड़ को जीवस्वभाव भगवान ने कहा नहीं। इतना इसे भेदज्ञान हो तो इसे स्व का आश्रय होकर सम्यग्दर्शन हो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? परन्तु गजब भाई! विपरीत मान्यता के पहलू बहुत और अविपरीत मान्यता का कारण एक द्रव्यस्वभाव। आहाहा!

कहते हैं, यह पाँच जो है, सब परद्रव्यस्वरूप है। यह भावेन्द्रिय वास्तव में आत्मस्वभाव को स्पर्शती नहीं। इसलिए वहाँ कहा न ३१वीं गाथा में। '**जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' देखो न, यह जीवस्वभाव, वह ज्ञानस्वभाव। जो कोई आत्मा भावेन्द्रिय का अंश, द्रव्येन्द्रिय की जड़ता और उनके विषय बाह्य। देखो! उन विषयों में तो भगवान की वाणी भी (आ जाती है)। लोग चिल्लाहट मचा जाते हैं। एक बार आया था न तो चिल्लाहट सुनकर अरर..र..! शब्द को भी कान का विषय सुनाकर ऐसा कहे। अरे! परन्तु सुन न भगवान! यहाँ तो द्रव्येन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रिय का विषय शब्द, रूप चाहे जो शब्द हो, उसके ऊपर से उसे जीतना है। जीतना है, उससे लक्ष्य छोड़ना है। जीतने का अर्थ उसका लक्ष्य छोड़कर ज्ञान को अधिकरूप से अनुभव करना है। अधिकरूप से अर्थात् ? खण्डज्ञान, इन्द्रिय और उसके विषय, उनसे भिन्न अखण्ड ज्ञान का अनुभव, उसका नाम भगवान, आत्मा और उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। समझ में आया ?

जीव स्वभाव अखण्ड है, एकरूप स्वभाव है, उसका अनुभव और इसकी प्रतीति, उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। वह सब अतीन्द्रिय है। और यह इन्द्रियाँ, भाव और जड़ उन्हें तो जीतने का कहा है। जीतना अर्थात्? उनकी रुचि और लक्ष्य छोड़ना है। जिसका लक्ष्य छोड़ना है, वह कैसे मदद करे वहाँ उसे? समझ में आया? इसलिए यहाँ कहते हैं कि **आत्मस्वभावत्व को किंचित्मात्र स्पर्श नहीं करतीं...** भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय। **(अर्थात् आत्मस्वभावरूप किंचित्मात्र भी नहीं हैं)...** ओहोहो! आत्मा का स्वभाव वह भावेन्द्रिय और द्रव्येन्द्रिय लेशमात्र नहीं। **ऐसी इन्द्रियों के द्वारा उपलब्धि करके (ऐसी इन्द्रियों के निमित्त से पदार्थों को जानकर) उत्पन्न होता है, इसलिए वह (इन्द्रियज्ञान) आत्मा के लिये प्रत्यक्ष नहीं हो सकता।** वह सच्चा ज्ञान हो नहीं सकता, सत्यज्ञान हो नहीं सकता। इन्द्रियज्ञान, वह दुःखरूप है, वह प्रत्यक्ष सुखरूप कैसे हो सकता है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भारी कठिन काम! और लोग ऐसा कहे न, परन्तु यह शिक्षा पावे, उतना समझा हो तो शास्त्र समझे न! न पढ़ा हो तो समझे किस प्रकार? और वहाँ लगावे। अरे! सुन न भाई! तेरी शिक्षा... ऐसा कि अक्षरज्ञान सब हुआ हो तो फिर उसे सूत्र समझने में सरल पड़े। वह यहाँ बात ही नहीं। यह सूत्र समझने में सरल पड़े, वह भी आत्मा को समझने के लिये सरल नहीं, ऐसा कहते हैं। ऐई! गजब बातें भाई! समझ में आया? क्योंकि वह पर अत्यन्त परवस्तु। भगवान (आत्मा) अत्यन्त चैतन्यमूर्ति अरूपी भिन्न-पृथक्। वह अत्यन्त (भिन्न है)। अब यह भिन्न चीज़ है, वह अस्तित्व धराती है परन्तु परद्रव्यरूप रूप से अस्ति है। परद्रव्यरूप का तो इसमें अभाव है। इसलिए वह परद्रव्यस्वरूप इस आत्मा के स्वभाव को जरा भी स्पर्श नहीं करती। तो उस ज्ञान को पर इन्द्रिय से, उसे क्षयोपशम से भावेन्द्रिय से हुआ, उसे प्रत्यक्ष कैसे कहा जाये? समझ में आया? वह प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। अर्थात् कि वह आत्मा का ज्ञान नहीं हो सकता। समझ में आया? कठिन बात, भाई! सत्य बात सुनने को मिलती नहीं, वह सत्य के रास्ते कब जाये? भटका भटक... भटका भटक किया करे।

वे तो भड़कते हैं अभी तो। भगवान के दर्शन से धर्म नहीं होता? समकित नहीं पाते? जिनबिम्ब के दर्शन से समकित पावे, ऐसा है धवल में। यहाँ कहते हैं कि जिनबिम्ब

परद्रव्य है। उसका इन्द्रिय से लक्ष्य हो, उसका ज्ञान हो, वह परोक्ष है, वह ज्ञान छोड़नेयोग्य है। कठिन बात, भाई! वीतराग की बातें पूरी दुनिया से अलग प्रकार है।

मुमुक्षु : दिक्कत उठावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : घर-घर में दिक्कत उठावे। घर में उठा तेरे घर में। यहाँ कुछ है नहीं। आहाहा! जिनबिम्ब के दर्शन से मिथ्यात्व का नाश होता है। आता है न धवल में? किस अपेक्षा से कहा, सुन न! समझ में आया? जिनबिम्ब का लक्ष्य करके और फिर लक्ष्य किया कि यह उनके जैसा वीतरागबिम्ब आत्मा है। वीतरागी बिम्ब आत्मा है, एकदम अक्रियबिम्ब है। ऐसी दृष्टि हो, उसे सम्यग्दर्शन होता है। जिनबिम्ब के दर्शन नहीं किये? अनन्त बार किये हैं मूर्ति के। देव में जन्मा, वहाँ तो बहुत पूजा और भक्ति की है। समझ में आया? ऐसे देखे। भगवान बिम्ब देखे तो क्या हो? कहते हैं कि इन्द्रिय का बीच में निमित्त है, वह तो जड़ है, उनकी अस्ति आत्मा से भिन्न है। वह जड़ है, वे आत्मा के स्वभाव को स्पर्शती नहीं। तो उनसे ज्ञान हो, वह आत्मा का ज्ञान कैसे कहलाये? वह परोक्ष ज्ञान है, इसलिए आदरणीय नहीं। आहाहा! भगवान के निमित्त हैं, वह आदरणीय नहीं, वह उनसे शुभ विकल्प अपना हुआ, वह आदरणीय नहीं, उनके लक्ष्य से ज्ञान हुआ, वह आदरणीय नहीं। आहाहा! 'ऐसा मार्ग वीतराग का भासित श्री भगवान। समवसरण के मध्य में सीमंधर भगवान' लो! कहो, समझ में आया? यह उसे पहली समझण और पहली पहिचान करनी पड़ेगी। पश्चात् उसके कल्याण का मार्ग हाथ आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ७, सोमवार, दिनांक २८-१०-१९६८
गाथा - ५८, प्रवचन - ४९

५८ गाथा। भावार्थ है, वह आ गया।

गाथा - ५८

अब, परोक्ष और प्रत्यक्ष के लक्षण बतलाते हैं:— यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार है। परोक्ष ज्ञान इन्द्रिय आदि गुण से उत्पन्न होता, वह दु:खरूप है। अतीन्द्रिय ज्ञान आत्मा के आश्रय से उत्पन्न होता, वह सुखरूप है, ऐसा सिद्ध करना है।

जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्खं ति भणिदमट्ठेसु।
जदि केवलेण णादं हवदि हि जीवेण पच्चक्खं॥५८॥

पर-निमित्त से होता है जो, पर-पदार्थ सम्बन्धी ज्ञान-
है परोक्ष, जो जीव मात्र से ज्ञात, वही प्रत्यक्ष सुज्ञान॥५८॥

अन्वयार्थ :- पर के द्वारा होनेवाला... अर्थात् मन, इन्द्रिय आदि के निमित्त से होता। होता है स्वयं के उपादान से। समझ में आया? तो उसमें निमित्त इन्द्रियाँ और मन पड़ते हैं। भाषा ऐसी है **पर के द्वारा होनेवाला...** यह टीका में कहेंगे न निमित्तपने को प्राप्त। निमित्त '**निमित्तभूतात्तथैव**' जयसेनाचार्य की टीका में ऐसा है। निमित्त पाकर होता है। यह कहते हैं, वह ... लो। निमित्त पाकर होता है। यह रहा निमित्त पाकर। यहाँ तो यह सिद्ध करना है कि होता है अपनी पर्याय से, परन्तु उसमें इन्द्रियाँ और मन निमित्त पाता है, निमित्त होता है। वह ज्ञान परोक्ष है। कहो, दूसरी चीज़ तो कहाँ रह गयी। राग-द्वेष की ममता, पुण्य-पाप के भाव, वे तो दु:खरूप कषाय-अग्नि। समझ में आया? शुभ-अशुभभाव विकल्प की जाति, वह तो कषाय है, दु:खरूप है, वह आनन्दरूप नहीं। परन्तु यहाँ तो परत: इन्द्रियाँ और मन से (होनेवाला) ज्ञान (है तो) अपनी जाति, परन्तु कषाय है, वह तो अपनी जाति नहीं। समझ में आया? शरीर, वाणी, मन तो पर,

परन्तु पुण्य-पाप के भाव, वे कहीं आत्मा की जाति नहीं, वे तो विरुद्ध हैं। अब यहाँ जो ज्ञानस्वरूप जो अपना ज्ञान है, वह ज्ञान उपजने में निमित्त पाकर जो उपजे, वह परोक्ष ज्ञान दुःखरूप है। ओहोहो! कहो, समझ में आया? अर्थात्कि वह अधर्मरूप है।

पर के द्वारा होनेवाला... इसका अर्थ कोई ले ले कि निमित्त द्वारा ही ज्ञान होता है, देखो! इसमें आता है। अर्थात् कि परोक्ष है अर्थात् स्व के आश्रय से होता नहीं, परन्तु पर्याय में होता है स्वयं से, परन्तु वहाँ इन्द्रिय और मन निमित्त है। समझ में आया? वह **पर के द्वारा होनेवाला जो पदार्थ सम्बन्धी विज्ञान है,...** भाषा ऐसी है न? '**अर्थेषु विज्ञानं**' शब्द पड़ा है। पर द्वारा होता और पदार्थ का विज्ञान, ऐसा शब्द पड़ा है वापस। है तो वह ज्ञान। ... विज्ञान, वह ज्ञान नहीं। समझ में आया? **वह तो परोक्ष कहा गया है, यदि मात्र जीव के द्वारा ही जाना जाये...** अकेला भगवान ज्ञानस्वरूप अपने आश्रय से जो ज्ञान स्व-आश्रय से हो, उस ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा जाता है। समझ में आया? जैसे पुण्य और पाप के विकल्प, वे पराश्रित हैं तो दुःखरूप हैं, धर्मरूप नहीं। इसी प्रकार आत्मा का अविकारी स्वभाव शुद्ध चिदानन्द स्व आश्रय से जो निर्मल पर्याय प्रगट हो, वह धर्मरूप और सुखरूप है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र, वह आत्मा के चैतन्य त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से प्रगट होते हैं, इसलिए वह धर्म और सुखरूप है। इसी प्रकार ज्ञान भी चैतन्य के आश्रय से प्रगट हो, वह सुखरूप और धर्म है। समझ में आया? **मात्र जीव के द्वारा ही जाना जाये तो वह ज्ञान प्रत्यक्ष है।**

टीका :- निमित्तता को प्राप्त... ऐसा है न? '**निमित्ततामुपगतात्**' ऐसा है। '**मुपगतात्**' ऐसा है न? '**निमित्ततामुपगतात्**' **निमित्तता को प्राप्त...** कौन? यह इन्द्रियाँ और मन निमित्तपने को प्राप्त ही हैं, ऐसा कहते हैं। आत्मा ज्ञान के समय निमित्तपने को प्राप्त... ऐसे परलक्ष्य से प्राप्त, इतनी बात सिद्ध करनी है। कौन? **(निमित्तरूप बने हुए) ऐसे जो परद्रव्यभूत...** देखो! इसमें आया। वह तो अकेली इन्द्रियों की बात थी न? इन्द्रियज्ञान परोक्ष है, दुःखरूप है। तो यहाँ डाला कि **अंतःकरण...** मन से होता। ज्ञान होता है अपनी पर्याय में अपने से, परन्तु जिसमें मन निमित्त प्राप्त है, वह ज्ञान दुःखरूप और आकुलतावाला है, परोक्ष है। कहो, कहाँ उसकी प्रत्यक्षता, स्व-आश्रयता और कहाँ उसकी पर-आश्रयता!

देखो! यह देव-गुरु-धर्म की भक्ति, आश्रय, वह सब पराश्रय है, पराश्रयभाव है। वह पराश्रयभाव है, वह धर्म नहीं। समझ में आया? जिसमें देव, गुरु और शास्त्र निमित्त पड़ते हैं, ऐसा जो पराश्रयभाव, भले शुभ हो, परन्तु वह पराश्रयभाव है, वह धर्म नहीं। वजुभाई! कठिन बात, भाई! आहाहा! धर्म नहीं, कहते हैं। स्वाश्रयभाव, वह धर्म है। सम्मेदशिखर के आश्रय से हो या शत्रुंजय के आश्रय से हो या अरिहन्त परमात्मा समवसरण में विराजते हों, उनके आश्रय से भाव हो, वह सब भाव धर्म नहीं। न्यालभाई! गजब यह तो सब। यह बदले, ऐसा नहीं, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसे पराश्रयपने का ज्ञान, वह भी दुःखरूप है, धर्म नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! कितनी बात है! अहो! यह बात साधारण लोगों को तो सुनने को मिलती नहीं। सुने, परन्तु कायर को ऐसा होता है, यह क्या कहते हैं? भाई! वस्तु स्वयं सच्चिदानन्द शाश्वत् आनन्द का कन्द ज्ञानमूर्ति है। उसे पराश्रय जितना लक्ष्य जाये, उतना स्त्री, कुटुम्ब, परिवार आदि का लक्ष्य जो जाये, वह तो पापभाव है, परन्तु देव-गुरु-शास्त्र के लक्ष्य में जाये, वह भी पुण्यभाव और वह भी धर्मभाव नहीं। धर्म तो स्वाश्रय से हो सकता है। समझ में आया?

भगवान चैतन्यस्वभाव आनन्दस्वभाव त्रिकाली के आश्रय से प्रगट दशा हो, वह धर्म है। इससे वह भाव उड़ाते हैं और वापस कि वह व्यवहार, दया, दान, व्रत, या भक्ति के परिणाम, वे नहीं चाहिए। नहीं चाहिए बराबर है, परन्तु आये बिना रहते नहीं। पूर्ण वीतराग न हो, तब तक आवे सही। धर्म नहीं न? धर्म नहीं तो भी पूर्ण धर्म वीतरागता जब तक न प्रगटे, उसे ऐसा व्यवहार बीच में आता है। परन्तु वह व्यवहार बन्ध का कारण है। समझ में आया?

इसलिए यहाँ कहते हैं कि ऐसा निमित्त ज्ञान होने में आवे, परन्तु वह ज्ञान **ऐसे जो परद्रव्यभूत अंतःकरण...** अन्तःकरण अर्थात् मन। **इन्द्रियाँ...** पाँच। **परोपदेश,...** अन्य का उपदेश। देखो! यह निमित्त है। उपदेश है, वह निमित्तपने को पाकर ज्ञान हो, वह भी परोक्ष है। आहाहा! देखो! इसमें डाला न, स्पष्ट डाला। वीतराग का उपदेश-वाणी आवे, वह भी परोपदेश है। आहाहा! समझ में आया? पर-उपदेश। चाहे तो वीतराग त्रिलोकनाथ परमात्मा की वाणी हो या चाहे शास्त्र हो या चाहे तो ज्ञानी का

उपदेश हो, परन्तु उपदेश है, वह परवस्तु है और पर की अपेक्षा को प्राप्त, निमित्तपने को प्राप्त ऐसा जो ज्ञान... न्यालभाई! कठिन बात, भाई! यह तो लोग चिल्लाहट मचा जाये।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह कहना चाहते हैं, तू भगवान पूर्णानन्द है, उसका आश्रय कर, तब धर्म होगा। 'लाख बात की बात निश्चय उर आणो।' तब तक स्थिर हो नहीं (तब तक) ऐसा भाव (बीच में) हो भले, परन्तु वह भाव स्वयं धर्म है, पराश्रयभाव धर्म है, यह नहीं। समझ में आया? और इससे उसे वीतराग हुए बिना पराश्रयभाव आवे नहीं, ऐसा भी नहीं। इतना व्यवहार का अवकाश, पूर्ण न हो, वहाँ होता है, परन्तु है वह बन्ध का कारण। पराश्रय भाव। यहाँ तो पराश्रय उपदेश हुआ, वह ज्ञान बन्ध का कारण कहा, फिर प्रश्न क्या? दुःखरूप कहा फिर (प्रश्न क्या)? ओहाहो!

यह बात तो वीतरागभाव प्राप्त और वीतराग में भाव हो ऐसा। जिसे कुछ लोभ हो कि हमको कुछ दो और हमको हो तो तुम्हारा कल्याण होगा, यह मार्ग इसमें नहीं। वीतराग तो कहते हैं कि हमारे साधु सन्त, धर्मात्मा सच्चे, उन्हें भी आहार दो तो पराश्रयभाव शुभ है; धर्म नहीं। वह यह बात। ऐई! न्यालभाई! वह अधःकर्मी... ठिकाना नहीं, उसकी तो बात ही नहीं यहाँ। इन सब सेठियाओं ने यह किया था वहाँ। उसमें प्रमुख में थे, क्या करे? उसमें ... यह सब व्यवस्थित कर दिया। वह तो लेनेवाला और देनेवाला दोनों खोटे। सच्ची बात?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह तो सच्चे सन्त धर्मात्मा नग्न दिगम्बर मुनि छठवें गुणस्थान में विराजमान भिक्षा के लिये निकले और उनके लिये निर्दोष, उनके लिये बनाया हुआ नहीं और तैयार हो, उसे दूँ, वह भी शुभभाव है, धर्म नहीं। आहाहा! ऐसा यह मार्ग! समझ में आया? उससे परित् संसार हो, ऐसा लिखा है उसमें। यह बड़ी चर्चा चली थी (संवत्) १९७७ में। तुम्हारे थे न भाई वे पोपटभाई। पोपट जादवजी। समधी। पोपट जादवजी। ७७ में कहा, भाई! आहार-पानी देने से धर्म नहीं होता। यह भगवती (सूत्र) में आया है। ७७ के वर्ष। भगवती (सूत्र) में, बापू! यह चला अवश्य है, परन्तु

वह परित् संसार हो, यह बात सच्ची नहीं। परित संसार आया था। रेवती आहार लेने गये थी भगवान के लिये। रेवती ... रेवती के घर में। सिंहअणगार लेने गये थे भगवान के लिये, हों! वापस भगवान के लिये आहार लेने गये थे तो परित संसार (किया)। फिर भगवान ने उसे कहा, हे सिंहा! मेरे लिये बनाया हुआ आहार तू लाना नहीं, परन्तु उसके घर के घोड़े के लिये बनाया हुआ है, वह लाना। कोळापाक। समझे न? बिजोरा पाक उसके लिये बनाया हुआ होगा। यह नाम में अन्तर हो या चाहे जो हो। परन्तु वह लाना। इसलिए वे लेने गये। जहाँ आहार दिया वहाँ परित संसार। आहार देनेवाले ने संसार को काट दिया, कम कर दिया, यह बात सच्ची नहीं। वह शास्त्र ही खोटी बात है। ऐई! न्यालभाई! ऐसा तो आता है तुम्हारे वहाँ कथन में बहुत सब। भगवती सूत्र में ऐसा आता है। यह चर्चा ७७ में बहुत हुई। अरे भाई! है तो सही कहा, उसमें लेख तो है परन्तु....

पराश्रय भाव है, वह तो देने का विकल्प है। वह कहीं आत्मा आश्रय की निर्विकल्पदशा नहीं, इसलिए वह धर्म नहीं। इसलिए उससे परित संसार होता ही नहीं। समझ में आया? ऐसे तो दस अधिकार हैं। यह तो भगवती (सूत्र) का, इसके अतिरिक्त दस पूरा विपाक, पूरा विपाक है। यह थे मिथ्यादृष्टि वे देनेवाले, परन्तु साधु लेनेवाले पात्र थे तो उन्हें आहार देते परित संसार किया, ऐसा लेख है और पूरे विपाक में सब झूठा कथन है। समझ में आया? सुबाहुकुमार होता है, बड़ा धनाढ्य है, वह मुनि को आहारदान देता है। क्या आता है? विधि, दान और पात्र आता है न? दातार और पात्र सब मिलान खा गया तो संसार परित हो गया। वह वस्तु ही खोटी है, वह मार्ग ही नहीं। यहाँ तो कहते हैं कि उपदेश से हुआ ज्ञान भी दुःखरूप और परोक्ष है, उसके बदले पर को देने का आहार का विकल्प है, वह संसार का नाश करे, यह तीन काल में नहीं होता। न्यालभाई! ऐसा मार्ग है, हों! आहाहा! समझ में आया? छोटाभाई! कहो, समझ में आया? देखो, इसमें है?

परोपदेश,... देखो! लो! अन्य का उपदेश। तो अन्य में फिर भगवान, साधु सब आ गये या नहीं? या भगवान को बाकी रखकर उनका उपदेश (बाकी रखा)? यह सब निमित्तपने को प्राप्त है। पर का उपदेश है, वह ज्ञान की पर्याय में निमित्तपने को प्राप्त है। आहाहा! यह वीतराग कहे, हों! समझे? हमारा उपदेश तुमको निमित्तपने को प्राप्त है,

इसलिए परोक्ष है। इसलिए वहाँ परलक्षी है, इसलिए दु:खरूप है। वह ज्ञान सुख का साधन नहीं। आहाहा! गजब बात है न! वस्तुस्थिति ऐसी है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब अब भगवान साक्षात् लिये, पश्चात् उनकी वाणी ली, पश्चात् (बाकी क्या रहा?) समवसरण (आ गया)। ऐसा मार्ग है, भाई! समझ में आया?

परोपदेश, उपलब्धि,... उघाड़। है न? **ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के निमित्त से उत्पन्न पदार्थों को जानने की शक्ति। (यह 'लब्ध' शक्ति जब 'उपयुक्त' होती है, तभी पदार्थ ज्ञात होता है।)** यह भी देखो, निमित्तपने को प्राप्त, हों! उसे निमित्तपना कहा, भाई! किसे? उस क्षयोपशम ज्ञान को। जानने में वह उघाड़ है, वह निमित्तपने को प्राप्त है, ऐसा कहते हैं। है तो इसका स्वयं का भाव। समझ में आया? परन्तु वे पदार्थ **ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के निमित्त से उत्पन्न पदार्थों को जानने की शक्ति। (यह 'लब्ध' शक्ति जब 'उपयुक्त' होती है, तभी पदार्थ ज्ञात होता है।)** ऐसा। वह उघाड़ है न उघाड़? ऐसा। वह उपयोग निमित्त है, व्यापार का निमित्त है, ऐसा कहना है। उघाड़ जो है, वह उपयोग होने में निमित्त कारण है, ऐसा। इसलिए वह उघाड़ निमित्त होकर जो मिला, वह सब परोक्ष है। ओहोहो! कायर का तो कलेजा छूट जाये ऐसा है अन्दर से। ऐसा मार्ग! यह क्या? आहाहा!

उपलब्धि, संस्कार... पूर्व ज्ञात पदार्थ की धारणा। जाना हुआ हो, धारणा हो, तब उसे ख्याल आवे कि यह कैसा कि यह फलाना। समझ में आया? **संस्कार या प्रकाशादिक हैं,...** बाहर का प्रकाश हो। समझ में आया? **चक्षुइन्द्रिय द्वारा रूपी पदार्थ को देखने में प्रकाश भी निमित्तरूप होता है।** यहाँ से ऐसे देखे न? परन्तु प्रकाश हो तो दिखाई दे न। अन्धेरे में वस्तु हो तो आँख न देख सके। आँख स्वयं भले अन्धेरे में हो परन्तु जिस चीज़ को देखना है, वहाँ प्रकाश होना चाहिए। तो वह प्रकाश भी उसमें निमित्त है। ऐसे **उनके द्वारा होता...** उनके द्वारा होता... क्या? निमित्तपने को प्राप्त अन्त:करण द्वारा होता, इन्द्रिय द्वारा होता, परोपदेश द्वारा होता... ऐसा सब लेना। उस परोपदेश द्वारा होता, उपलब्धि द्वारा होता, संस्कार द्वारा ज्ञान की पर्याय होती। **वह पर के**

द्वारा प्रादुर्भाव को प्राप्त होने से 'परोक्ष' के रूप में जाना जाता है,... वह पर द्वारा प्रगट होता होने से, उत्पन्न होता होने से, पर द्वारा उत्पन्न होता होने से। भाषा देखो! उत्पन्न तो वास्तव में निश्चय से तो उसकी पर्याय का उत्पाद वहाँ है। समझ में आया? परन्तु यह निमित्त के ऊपर लक्ष्य जाता है न, उतना पाता है न, इतनी परोक्षता बतलाने के लिए पर द्वारा से उत्पन्न होता, ऐसा कहा जाता है। निमित्तवाले को तो मानो...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें से निकाल सके, परन्तु इसमें दूसरी बात सिद्ध करनी है। होता है तो स्वयं से, परन्तु निमित्तपना वहाँ है, उस द्वारा हुआ है, अकेले आत्मा द्वारा हुआ नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा!

मुमुक्षु : स्व विषयभूत लिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। स्व विषयभूत पदार्थ का। अर्थात् इसके ज्ञान का विषय ऐसा। उसका जानने के विषयभूत जो पदार्थ, उनका ज्ञान, ऐसा।

वह पर के द्वारा प्रादुर्भाव को प्राप्त होने से... स्वविषयभूत अर्थात्? उसका विषय जितना हो, वह ज्ञात हो न, ऐसा। उसका विषय है न। **वह पर के द्वारा प्रादुर्भाव को प्राप्त होने से 'परोक्ष' के रूप में जाना जाता है,...** ओहोहो! कषाय की मन्दता दुःखरूप, कषाय की तीव्रता दुःखरूप, मिथ्यात्व का विपरीत भाव दुःखरूप। परचीज़ दुःखरूप नहीं, पर तो निमित्त होता है। यहाँ तो कहते हैं कि भगवान आत्मा का जो ज्ञानस्वभाव त्रिकाली चिदानन्द, ऐसे अन्तर के आश्रय किये बिना जो कुछ निमित्त को प्राप्त के आश्रय से प्रगट हुआ ज्ञान परोक्ष... परोक्ष... परोक्ष... दुःखरूप (ज्ञान है)। यह प्रवचनसार—यह प्रवचन का सार है। दिव्यध्वनि भगवान ने कही हुई तीर्थंकर परमात्मा की वाणी में यह सार आया था, वह यह कहा गया है। ओहोहो! मध्यस्थ से देखना चाहिए। ऐसा नहीं देखना कि लो! ऐसा है और वैसा है। यहाँ निमित्त से कहा है, परन्तु उसका अर्थ होता है स्वयं से, परन्तु निमित्त द्वारा लक्ष्य वहाँ है न इतना। और परोपदेश से भी उत्पन्न हुआ ज्ञान, वह निमित्तपने को प्राप्तकर पर द्वारा प्राप्त कर उत्पन्न हुआ है, ऐसा कहा। सीधे ऐसे ज्ञानमूर्ति भगवान आत्मा के लक्ष्य से जो ज्ञान उत्पन्न हो, वह

सम्यग्ज्ञान, वह सुखरूप ज्ञान और वह आनन्द का कारण है। वह धर्मध्यान, वह धर्मज्ञान। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब परोपदेश। वह ज्ञान की पर्याय पर के उपदेश द्वारा हुई, वह सब दुःखरूप। सिर घूम जाये ऐसा है। कल आये थे उलझकर। बिल्कुल चैन पड़ता नहीं चार बजे से। ऐसा है और वैसा है। शाम को आये थे छह बजे। चैन पड़ता नहीं। मैंने कहा, क्या है परन्तु? यह भी निकाल दिया, अब हमारे खड़े कहाँ रहना? हमको कुछ मन ऐसे स्थिर होता था कि ठीक! अब ठीक होता है। वहाँ कहे, यह नहीं। और ऐसा कहना कि सुनो। अरे... अरे! बात देखो न! ऐसा कोई मार्ग प्रभु का। यह 'प्रभु का मारग है शूरों का, कायर का नहीं काम।' यह कायर वहाँ खड़े नहीं रहते। आहाहा!

कहते हैं, कितनी पराधीनता के शब्द रखे। समझ में आया? यह उपलब्धि उघाड़ के साथ में वापस संस्कार होना चाहिए जो चीज़ जानने के काल में तो वह जानने में आवे। वह तो सब पर द्वारा... वह संस्कार भी पर द्वार, उपलब्धि लब्ध पर द्वार, पर उपदेश पर द्वार, इन्द्रिय, अन्तःकरण। ओहोहो! कितनी बात रखी है बहुत संक्षिप्त में! समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञान की मूर्ति है और वह तो चैतन्यबिम्ब है। वह चैतन्यसूर्य प्रभु है। उसका ज्ञान होने के लिये निमित्त की प्रधानता और मुख्यता हो जहाँ... समझ में आया? उस ज्ञान को पराधीन ज्ञान (कहते हैं)। अब यह शिक्षा का ज्ञान और सब बड़े-बड़े पढ़ते हैं न बड़े एल.एल.बी. के यह सब ज्ञान दुःखरूप ज्ञान है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

भगवान आत्मा वस्तु का स्वभाव तो प्रभु चैतन्यमूर्ति है। ऐसा चैतन्य भगवान आत्मा अपने ज्ञान और अन्तर आश्रय से जो ज्ञान प्रगट करे, वह अतीन्द्रिय ज्ञान और वह सुख का साधन ज्ञान, वह धर्मज्ञान। जो ज्ञान की दशा पर निमित्त द्वारा हो; हो भले स्वयं की पर्याय में, परन्तु जिसमें निमित्त की उपस्थिति हो, ऐसा जो ज्ञान, वह तो परोक्ष है, दुःखरूप है, पराधीन है। वह आत्मा की शान्ति को लूटनेवाला है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा 'मार्ग वीतराग का भासित श्री भगवान।' त्रिलोकनाथ परमात्मा ने समवसरण

में यह कहा है। पचाना पड़ेगा इसे। समझ में आया? इसे उकताहट या यह क्या, ऐसा नहीं करना।

ओहो! इसे स्वाधीनता बताते हैं। भगवान! तुझे निमित्त और परलक्ष्यी ज्ञान, वह तो सब पराधीनता है। उसे ज्ञान ही नहीं कहते, ऐसा यहाँ कहते हैं। दुःखरूप ज्ञान को ज्ञान ही नहीं कहते। आहाहा! वह तो अज्ञान है, मूर्त है, अचेतन है, जड़ है। आहाहा! यदि चैतन्य की जाति हो, तब तो उसे सुख होना चाहिए। क्योंकि आत्मा ज्ञान और आनन्द से भरपूर तत्त्व है। यदि उस जाति का ज्ञान हो तो साथ में आनन्द हो। उस चैतन्य की जाति का ज्ञान पर उपदेश से और पर के निमित्त से हुआ, वह चैतन्य की जाति का ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया? वह कहे ॐ... ॐ... करो, ऐसा करो, ऐसा करो, फिर ऐसे ध्यान करना। वह सब विकल्पवाला ज्ञान पराधीन दुःखरूप है, उस द्वारा अन्तर का ध्यान नहीं हो सकता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

'परोक्ष' के रूप में जाना जाता है, और अन्तःकरण, इन्द्रिय, परोपदेश, उपलब्धि, संस्कार या प्रकाशादिक सब परद्रव्य की अपेक्षा रखे बिना... लो! है न? पर उपदेश, समझे न? निरपेक्षरूप से होता, पर की अपेक्षा बिना होता। समझ में आया? क्या कहा? जो ज्ञान मन की अपेक्षा बिना होता है, अन्तःकरण अर्थात्। जो ज्ञान इन्द्रिय की अपेक्षा बिना होता है, जो ज्ञान पर के उपदेश बिना होता है। आहाहा! जो ज्ञान उपलब्धि बिना होता है, लब्धरूप उघाड़ है, उसके बिना होता है। क्या कहा? ज्ञान की लब्धि है न विकास—उघाड़ उसके बिना ज्ञान होता है। परद्रव्य के आश्रय से, उस लब्ध के आश्रय से नहीं। आहाहा! कथन पद्धति की रीति तो देखो! वीतरागता को सिद्ध करने की कला, कला है।

परोपदेश, उपलब्धि, संस्कार... नहीं। पूर्व में धारा हो कि यह ऐसा होता और यह ऐसा होता है, ऐसी धारणा वह तो उसके बिना होती है। पूर्व में धारा हो कि ऐसा और ऐसा और ऐसा, उसके बिना होता है। ओहोहो! समझ में आया? और वापस सर्वत्र कहे, शास्त्र का अभ्यास करना। आता है या नहीं? इसमें आयेगा ८६ गाथा में। जीव... परपदार्थ का ज्ञान होता है। ऐसा होता है। उस भावज्ञान के लक्ष्य से निमित्त से कथन है वे सब। समझ में आया? है न! मोक्षमार्गप्रकाशक में पहले अध्याय में है। शास्त्र का

अभ्यास करना। आठवें में कहा, उपदेश अधिकार नहीं कहा? आठवाँ उपदेश (का स्वरूप)। आगम अभ्यास करना, आगम अभ्यास से तुम्हारा कल्याण होगा। यहाँ कहते हैं कि आगम अभ्यास परोपदेश है, वह कल्याण का कारण नहीं। ऐई! विरोध होगा कहीं? वह तो वहाँ निमित्त से कहते हैं कि यह अभ्यास तो कर। ऐसा। तथापि पर उपदेश से प्राप्त ज्ञान, वह आत्मा के लाभ को कारण भी नहीं। देखो न, यहाँ बहुत डाल दिया है।

लो! **परोपदेश, उपलब्धि, संस्कार या प्रकाशादिक...** यह तो बाहर की स्थूल बात है। **सब परद्रव्य की अपेक्षा...** देखो! यह उपलब्धि परद्रव्य है। ऐई! उघड़ा हुआ ज्ञान, वह परद्रव्य है, वह वस्तु कहाँ स्वद्रव्य की कहाँ है? आहाहा! समझ में आया? जो लब्धरूप क्षयोपशम है, जो उपयोगरूप हो लब्धरूप, वह लब्धरूप उपयोग ज्ञान को भी परद्रव्य कहा है। मन को परद्रव्य, परोपदेश ज्ञान को, परद्रव्य है न? वह परद्रव्य है। और यह लब्धि परद्रव्य, संस्कार परद्रव्य। धारणा हुई कि ऐसा है... ऐसा है। अरे! आत्मा ऐसा है ऐसे अवग्रह, ईहा में पकड़ा। समझ में आया? परलक्ष्यी। कहते हैं कि वह सब परद्रव्य है। आत्मा ज्ञायक है, चिदानन्द है, अभेद है, ऐसा लब्धज्ञान में स्वयं से वहाँ पकड़ा, कहते हैं। समझ में आया? वह भी परद्रव्य है। समझ में आया?

अहो! उसकी स्वाधीनता की दशा तो देख! भगवान अपने अन्तर गुणस्वरूप सहजानन्द मूर्ति प्रभु के आश्रय से होता ज्ञान, यह सुखरूप है। उसकी अपेक्षा रखे बिना। निरपेक्ष से, उसकी निरपेक्ष से। देखो! और बिल्कुल अपेक्षा नहीं? नहीं। उससे विपरीत। समझ में आया? '**बहिरंग निमित्त भूतात्**' है न कहीं? कहीं था सही। किसमें? निरपेक्ष। एक लाईन में निरपेक्ष कहाँ है? निरपेक्ष कहीं है।

मुमुक्षु : परद्रव्य की अपेक्षा से कहा न।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह बाद में है। १०३ पृष्ठ पर है। १०३ पृष्ठ पर अन्तिम लाईन, देखो! '**तथाहि-परनिरपेक्षत्वेन**' '**परनिरपेक्षत्वेन**' है न। यह तो वे शब्द हैं सब, यह तो उसमें आये वे शब्द ही हैं। परन्तु यह तो '**परनिरपेक्षत्वेन**' है न अन्त में? कि यह सबकी अपेक्षा ही जहाँ नहीं, ऐसा कहते हैं, यहाँ सिद्ध करना है। है? संस्कृत में है,

भाई! भगवानजीभाई! जयसेनाचार्य की संस्कृत की टीका में है। ऊपर की जयसेनाचार्य की टीका में। यहाँ तो यह सब बिना कहा न? समझ में आया?

अन्तःकरण, इन्द्रिय, परोपदेश,... यह सुना और उघड़ा, सुना और उघड़ा हुआ, वह परद्रव्य की अपेक्षा बिना, वह भी अपेक्षा नहीं जहाँ। ओहोहो! 'लक्ष थवाने तेहनो कह्यां शास्त्र सुखदायी।' आता है न? तथापि यह लक्ष्य में आया कि शास्त्र ऐसा कहते हैं, ऐसा। उस ज्ञान को भी परद्रव्य कहा जाता है। उसकी अपेक्षा बिना ज्ञान हो, उसे ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! अलौकिक बात है न, लोकोत्तर बात है न। समझ में आया? उस **परद्रव्य की अपेक्षा रखे बिना...** बस हो गया। अपेक्षा रखे बिना कहो या निरपेक्ष कहो, ऐसा। समझ में आया? अर्थात्? कि आत्मा को आत्मा का ज्ञान होने के लिये मन की आवश्यकता नहीं, इन्द्रिय की आवश्यकता नहीं, पर के उपदेश से हुए ज्ञान की आवश्यकता नहीं, लब्ध की आवश्यकता नहीं, धारणा की आवश्यकता नहीं, ऐसे सबकी अपेक्षा रखे बिना **एकमात्र आत्मस्वभाव को ही कारणरूप से ग्रहण करके...** लो! समझ में आया?

एकमात्र आत्मस्वभाव को ही कारणरूप से ग्रहण करके... लो! देखो! भगवान ज्ञानस्वरूप त्रिकाल आत्मस्वभाव को कारणरूप से ग्रहण करके। **सर्व द्रव्य-पर्यायों के समूह में एक समय ही व्याप्त होकर प्रवर्तमान...** ... लेना है न यहाँ? पूरा केवलज्ञान लेना है न! नीचे भी जितना ज्ञान हो प्रत्यक्ष, वही ज्ञान है। उसकी अपेक्षा बिना का स्वसमय में हुआ वह स्वयं से हुआ है। यह पूर्ण और यह प्रत्यक्ष, उसे गर्भित में रखा है स्वसमय का। समझ में आया? **एकमात्र आत्मस्वभाव को ही कारणरूप से ग्रहण करके सर्व द्रव्य-पर्यायों के समूह में एक समय ही व्याप्त होकर...** कारणरूप से ग्रहण करके भले। ऐसा कहते हैं। द्रव्य को कारणरूप से ग्रहण करके ऐसा। उसे कारणपने नहीं, ऐसा अब। यह सब जो कारण कहे, उनसे निरपेक्ष। तब अब **एकमात्र आत्मस्वभाव को ही कारणरूप से ग्रहण करके सर्व द्रव्य-पर्यायों के समूह में...** जितने तीन काल-तीन लोक के द्रव्य-पर्यायें हैं, उन्हें एक समय में व्यापकर **एक समय ही...** जानकर, ऐसा, व्यापकर अर्थात्। **एक समय ही व्याप्त होकर... द्रव्य-पर्यायों के समूह में एक समय ही व्याप्त होकर...** पाठ ऐसा है। **सर्व द्रव्य-पर्यायों के समूह में एक समय ही व्याप्त**

होकर... द्रव्य-पर्याय के समूह में व्यापता होगा? है न। एक समय में ही व्याप्त होकर अर्थात् उस जाति का ज्ञान होकर।

प्रवर्तमान ज्ञान वह केवल आत्मा के द्वारा ही उत्पन्न होने से... ओहोहो! वह केवल भगवान आत्मा द्वारा अन्तर से उत्पन्न होता होने से। समझ में आया? लो, यहाँ तो केवलज्ञान हुआ, वह तो पूर्व की चार ज्ञान की पर्याय द्वारा भी नहीं, ऐसा कहा। आहाहा! कैसी शैली रचते हैं, देखो न! भगवान आत्मा अकेला केवलज्ञानस्वरूप, उसे एक आत्मस्वभाव को कारणरूप से ग्रहण करके। अर्थात् पूर्व की चार ज्ञान की पर्यायों को कारणरूप से ग्रहण करके केवलज्ञान, वह नहीं। समझ में आया? भगवान अकेला ज्ञानपुंज प्रभु, उसे कारणरूप से ग्रहण करके जो ज्ञान **सर्व द्रव्य-पर्यायों के समूह में एक समय ही व्याप्त होकर प्रवर्तमान ज्ञान...** व्यापकर अर्थात् जानता हुआ प्रवर्तता वह ज्ञान **वह केवल आत्मा के द्वारा ही उत्पन्न होने से...** वह केवल आत्मा द्वारा अर्थात् त्रिकाली द्रव्यस्वभाव द्वारा उत्पन्न होता होने से। कोई निमित्त नहीं, पूर्व की पर्याय नहीं, उपलब्धि, संस्कार आदि बिल्कुल नहीं। भाई! अब इतना सुना इसने। सुनकर उसके ख्याल में बात आयी कि यह अभेद चैतन्य है, द्रव्य एकरूप है, उसकी अपेक्षा... इतना वहाँ कुछ काम करे या नहीं सहायता? नहीं। ऐसा है। वह वस्तु ऐसी है कि पर की अपेक्षा रखे नहीं, ऐसी चीज़ है। आहाहा! समझ में आया?

यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, प्रवचनसार, आहाहा! भगवान की दिव्यध्वनि का सार। भाई! तू भगवान है न! पूर्ण ज्ञानघन है न, त्रिकाली ज्ञानघन को कारणरूप से ग्रहण करके, ऐसे निमित्तपने के कारणपने की अपेक्षा छोड़कर। छोड़कर, यह व्यवहार है। यहाँ कारणरूप से ग्रहण करके तो वहाँ वह अपेक्षा छूट गयी। समझ में आया? आहाहा! पूर्व की चार ज्ञान की पर्याय हो न मोक्षमार्ग पहले मति-श्रुत (आदि), वह भी नहीं। मति, श्रुत, अवधि, मनःपर्यय। यह तो मोक्षमार्ग की पर्याय है न? उसे कारणरूप से ग्रहण करके मोक्ष की पर्याय अर्थात् केवलज्ञान की पर्याय हो, ऐसा नहीं। केवल द्रव्यस्वभाव जो है, उसे कारणरूप से ग्रहण करके सीधे आत्मा द्वारा केवलज्ञान होता है। वह महाप्रत्यक्ष अतीन्द्रिय ज्ञान कहा जाता है। आहाहा! महाप्रत्यक्ष (शब्द) प्रयोग किया। समझ में आया? क्योंकि वह इस प्रकार से कहते हैं न। भाई! ज्ञानचेतना तेरहवें

(गुणस्थान) में होती है, ऐसा कहते हैं न पंचास्तिकाय में? ज्ञानचेतना तेरहवें में होती है अर्थात् वह परिपूर्ण की बात है। क्रमरूप से नीचे चौथे से शुरु हुई है ज्ञानचेतना। यह महाप्रत्यक्ष ज्ञान, उसे यह शब्द प्रयोग किया यहाँ। महाप्रत्यक्ष वहाँ। इसलिए उसके पहले प्रत्यक्ष है स्वसंवेदन प्रत्यक्ष, वह गौण में रखकर उसकी बात की है। आहाहा! पंचास्तिकाय में आता है न। तब वे लोग सामने कहते हैं, ज्ञानचेतना केवलज्ञानी को ही होती है। अरे! भगवान! स्वसंवेदन अन्दर आत्मा के आनन्द का अनुभव, वह तो केवलज्ञानी को ही होता है। अरे! भगवान! क्या करता है यह? देखो, इसीलिए तो आचार्य ने महाप्रत्यक्ष पहले कहा न, भाई! महाप्रत्यक्ष शब्द प्रयोग किया है, वह हेतु से है। महाप्रत्यक्ष केवलज्ञान है। महाप्रत्यक्ष है। इससे चौथे-पाँचवें (गुणस्थान में) प्रत्यक्ष नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया?

जैसे पंचास्तिकाय में ज्ञानचेतना अर्थात् ज्ञान का वेदन तेरहवें में कहा है। इससे चौथे, पाँचवें, छठवें में मुनि को ज्ञानचेतना नहीं, ऐसा नहीं है। महाचेतना। जैसे यहाँ महातत्त्वज्ञान, वह महाचेतना ज्ञान वहाँ होता है। नीचे स्वसंवेदन चेतना होती है। समझ में आया? लो! अब इसमें कहाँ वाद-विवाद से पार पड़े, ऐसा है कुछ इसमें? चलो, होता है या नहीं? यह होता है या नहीं? ऐसा कहे, लो! लब्धरूप इसके ख्याल में हो, सुनकर भगवान ने कहा, उसके ख्याल में होता है या नहीं? कि यह अभेद है। यह ख्याल में न हो और होता है? वह ख्याल न हो और होता है? लो, यह विवाद! ऐई! चेतनजी! लो, इसमें क्या करना यह विवाद—वाद-विवाद? वे और कहे, यह होता है या नहीं? अपने आप हो जाता होगा? सुने बिना हो जाये सीधे? और सुनकर उसके ख्याल में आया है कि यह अभेद ज्ञान है, ऐसा ख्याल आया है लब्धरूप, उसके बिना होता है यह? यहाँ कहते हैं, उसके बिना होता है, सुन न। आहाहा! ऐसा भगवान आत्मा ज्ञानानन्द की मूर्ति प्रभु है, उसके अन्तर ज्ञान होने के लिये, कहते हैं, पर की अपेक्षा बिल्कुल नहीं। उसे तो अपना त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव है, उसे कारणरूप से ग्रहण कर प्रत्यक्ष ज्ञान, महाप्रत्यक्ष ज्ञान होता है। और नीचे भी मति-श्रुतज्ञान, वह द्रव्यस्वभाव को कारण ग्रहण कर स्वसंवेदन होता है। आहाहा! समझ में आया? बहुत समेटकर बहुत बात करते हैं। कितनी टीका वह गजब टीका है न! आहाहा!

सब परद्रव्य की... सभी परद्रव्य कहे न? वे सब परद्रव्य अर्थात् सब अन्तःकरण से लगाकर प्रकाश तक। जैसे प्रकाश परद्रव्य है, इन्द्रिय परद्रव्य है, मन परद्रव्य है, पर-उपदेश परद्रव्य है, उपलब्धि परद्रव्य और संस्कार परद्रव्य। ले! आहाहा! समझ में आया? यह विकल्प को तो परद्रव्य कहा। यह विकल्प दया, दान, व्रत, भक्ति या देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का जो व्यवहार समकित, वह विकल्प तो परद्रव्य है, परन्तु यह तो उघड़ा हुआ लब्धज्ञान, वह परद्रव्य है। ओहोहो! है या नहीं उसमें? वे कहे, घर के अर्थ करते हैं। और यह बात आयी। भाई! यह देखो न, इसमें क्या है? कितनी बात करते हैं!

सब परद्रव्य की अपेक्षा रखे बिना... यह सभी परद्रव्य हैं। एक, दो, तीन, चार, पाँच और प्रकाश छह और आदि डाला बाद में। समझ में आया? देखने के समय अंजन-बंजन डाला हो। यह डालते हैं न मैल? वह आड़ा न हो। मैल डालते हैं न मेल क्या कहलाता है? अंजन-अंजन—अंजन—काजल यह लड़कों को नहीं डालते, काली आँख रहने के लिये? इसलिए वह भी ... लगा, उसके बिना ... वह आड़ा हो तो ज्ञात नहीं हो वापस, लो! वह तो लब्ध है, उघाड़ है, परन्तु यहाँ वापस जरा वह मैल (काजल), गीजड़ आ गयी हो, वह सब गीजड़। वह मैल-बैल, चीपड़ो-बीपड़ो न हो, वह आदि में जाता है। समझे न? उसका अभाव हो तब यह जानता है। इसमें कहते हैं कि उसकी आवश्यकता है नहीं। आहाहा!

नारकी के जीव को अग्नि के दुःख... अतीन्द्रिय स्वसंवेदनज्ञान होता है, उसे पर की कोई अपेक्षा है नहीं। आहाहा! समझ में आया? अरे! उसे तो ... पृथक्-पृथक् परिणम जाता है, और इकट्ठा हो। ऐसा सब होता है न! क्या कहलाता है? पारा। पारा पृथक्-पृथक् हो और इकट्ठा हो। उसी प्रकार यह सब ... न रहे। ऐसी सरीखी और ऐसा सरीखा उसे तो ऐसे फट जाये, टूट जाये, टुकड़े हो जाये। समझ में आया? उसके और ... न रहे। यहाँ कहते हैं कि जब स्वसंवेदन ज्ञान प्रगट करता है, उसको इसकी आवश्यकता नहीं। आहाहा! समझ में आया? नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं। वह तो द्रव्यस्वभाव ज्ञायकरूप से ग्रहकर जो ज्ञान का वेदन हुआ, वह स्वतन्त्र है। समझ में आया? लो, कान में वे पड़े हों, कीले मारे हों। समझ में आता है न? टुकड़े हो जाये।

वह तो रोग होता है सब। अन्तर अतीन्द्रिय सम्यग्ज्ञान होने के लिये किसी की अपेक्षा है ही नहीं। समझ में आया?

सातवें नरक का नारकी, रवरव नरक अपरिठाणे ३३ सागर की स्थितिवाला, वह भी अन्दर स्वसंवेदन पाता है, लो! समझ में आया? यह तो उसकी स्थिति लक्ष्य में ले तो खबर पड़े। यह सब इन्द्रियाँ सब टूट गयी, छूट गयी, टुकड़े (हो गये हों)। आहाहा! ऐसे काल में भी अन्तरलक्ष्य करने से ज्ञायक त्रिकाल स्वभाव को कारण ग्रहण कर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान स्वसंवेदनज्ञान कर सकता है। समझ में आया? आहाहा! श्वास लेने की व्यवस्थितता न हो वहाँ तो। वह भी एकदम प्रतिकूल। भाई! मुझे श्वास तो लेने दे चैन का तो कुछ विचार करूँ। वह आवश्यकता वहाँ है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा! लोग कहते हैं न भाई! श्वास तो लेने दे, श्वास तो लेने दे। ऐसा हो तो मुझे कुछ विचार करने का अवकाश रहे। भगवान! तू इतना है न अन्दर, वह श्वास लेने का अवकाश न हो तो तू पर का आश्रय छोड़कर स्व के आश्रय से सम्यग्ज्ञान कर सकता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी आत्मा की सामर्थ्य है, ऐसा कहते हैं। वह ऐसा तेजहीन नहीं कि जिसे ऐसे हो तो ऐसा कर सके, ऐसा वह है नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह सब व्यवस्थित हो और यह सब हो तो उसे सम्यग्दर्शन हो और सम्यग्ज्ञान मति-श्रुत प्रत्यक्ष हो, ऐसा वह आत्मा है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु : शरीर की आवश्यकता नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर-फरीर की आवश्यकता नहीं और आँख की फूटने की... भले फूट गया और खून जाम हो गया हो, कोई आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवानजीभाई! आहाहा!

तीन लोक का नाथ सच्चिदानन्द प्रभु स्वयं है न! परमात्मा स्वयं है द्रव्यस्वभाव। उसे जहाँ अन्तर कारणरूप से ग्रहण किया, सब निपट गया। लाख उसकी प्रतिकूलता हो तो वहाँ कोई नुकसान नहीं करती। और आत्मा को प्रत्यक्ष सम्यग्ज्ञान होने के लिये बिल्कुल दूसरे की सहायता और अनुकूलता की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं।

आहाहा! समझ में आया? यह महाप्रत्यक्ष की बात आती है, वह अपने जितने स्वसंवेदन प्रत्यक्ष। अरे! जैन परमेश्वर वीतरागपना का प्रगटपना आत्मा के द्रव्य के आश्रय से होता है, ऐसा कहते हैं। धर्म वीतरागपने की पर्याय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान, वह सब वीतरागी पर्याय है। वीतरागी पर्याय तो त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से ही प्रगट हो सकती है। वह तो किसी के आश्रय से हो तो वह वीतरागी पर्याय ही नहीं हो सकती। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान होता है, वह भगवान की मूर्ति से होता है। यह दूसरा दिखाते हैं न सब? उससे होता है। बापू! वह वस्तु तुझे विचारनी पड़ेगी, बदलनी पड़ेगी। देखो! आहाहा! बदलनी पड़ेगी, दूसरे पक्ष में जाना पड़ेगा, कहते हैं।

आहाहा! गजब अमृतचन्द्राचार्य! ५८ गाथा। '**जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्खं**' वापस शब्द प्रयोग किया '**विण्णाणं**' भाई! यह पहले कहा था। विज्ञान शब्द प्रयोग किया है, हों! है न, पाठ में है न? '**जं परदो विण्णाणं तं तु परोक्खं ति भणिदमट्ठेसु।**' ओहोहो! वह पर उपदेश से हुआ ज्ञान, उसे विज्ञान कहा, परन्तु वह विज्ञान दुःखरूप परोक्ष ज्ञान है, लो! परोक्ष ज्ञान को विज्ञान कहा, दुःखरूप ज्ञान को विज्ञान कहा। भाषा देखो! समझ में आया?

भगवान शुद्ध बुद्ध... है न अन्दर है। शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव परमात्मा। है न श्रीमद् में आता है न, 'शुद्ध बुद्ध चैतन्यघन' जयसेनाचार्य में बहुत 'शुद्ध बुद्ध' आता है, देखो! इसमें है देखो ५८ में। अन्तिम लाईन में है। '**केवलाच्छुद्धबुद्धैकस्वभावात्परमात्मनः**' परमात्म। परमात्म का परमस्वरूप ऐसा। भगवान आत्मा शुद्ध बुद्ध केवल परमस्वरूप भगवान त्रिकाली अपना स्वभाव, उसे कारणरूप से ग्रहकर, उसे आश्रय देकर, उस सम्यग्ज्ञान को उसका आश्रय लेने से जो ज्ञान हो, वह अतीन्द्रियज्ञान वह सुखरूप, वह प्रत्यक्ष ज्ञान है, वह सुखरूप ज्ञान है। समझ में आया? बड़े दस-दस हजार के वेतनवाले बड़े टोपा रखकर ऐसे चलते हों। ऐई! कलेक्टर! यह कलेक्टर थे न, पोरबन्दर। यह कलेक्टर साहेब आये। बहुत बुद्धिवाले। यह कहते हैं, ऐसा होता है... ऐसा होता है... बड़ा करने का हो न, क्या कहे? यह रेल के नहीं बड़े थम्भे? लो!

वहाँ नहीं जयपुर में दो करोड़ की मशीन हैं न। दो करोड़ उपजे बारह महीने में। रामजी हंसराज कामाणी के लड़के। दो करोड़ का। इससे अभी दस करोड़ का उपजाना है। ऐसी बात करते हैं। ... मशीन अलग प्रकार की। ऐसे खम्भे रखे सब ऊपर-ऊपर। ... दूसरे बतावे। कितना विज्ञान है, ऐसा कहे। मूढ़ हो, ऐसा कहते हैं, जड़ हो, ऐसा कहते हैं। उस विज्ञान को मूढ़ कहा है। वह तो शास्त्र में यह बाहर का तो मूढ़ है, अचेतन है तेरा ज्ञान। समझ में आया? ऐई! मोहनभाई! क्या होगा यह सब? लो, इन महेन्द्रभाई को क्या करते होंगे? वहाँ सब चतुराई करते होंगे या नहीं? एक लड़के ने किया न। क्या कहलाये? कारखाना। एक करे यह। होशियार नहीं? ऐई! इसने भी कारखाना किया है थाणा में। लड़के भी उसकी देखरेख बिना इसका ... चले कुछ? करते होंगे अपने आप? किये। बापू के बिना चले नहीं कुछ। ऐई! भगवानजीभाई! यह क्या होगा सब? आहाहा!

परन्तु यह तो वह ज्ञान की जो उघाड़ दशा उस जाति की कि ऐसा और ऐसा, यह कहते हैं कि अचेतन है। आहाहा! तुझे सुख न दे, वह ज्ञान किसका? ऐसा कहते हैं यहाँ तो। वे ऐसा कहना चाहते हैं, तुझे शान्ति न दे, समाधान होकर आनन्द न आवे, वह ज्ञान किसका? आहाहा! वह तो यह... कलेक्टरपने की आकुलता वहाँ होगी? यह कलेक्टरसाहेब! कलेक्टरसाहेब! ऐसा करते हों बेचारे पोरबन्दर में। पोरबन्दर में कलेक्टर थे यह जेठालालभाई। पदवी हो, तब बड़ा मान दिखाई दे अन्दर। लो! फिर पदवी से नीचे उतरे तब और वापस हो गया। अरेरे! यह भारी भ्रमणा जगत की। सब स्वप्न के धुएँ के वाचका हैं, कहते हैं।

भाई! जो यहाँ विज्ञान शब्द प्रयोग किया है भगवान ने, हों! कुन्दकुन्दाचार्य ने। बापू! यह विज्ञान, वह अचेतन है, हों! वह मूर्त है, हों! वह दुःखरूप है, कहते हैं। आहाहा! उपदेश से सुना और वह ज्ञान हुआ, वह विज्ञान, वह दुःखरूप है, वह अज्ञान है, वह जड़ है, वह अचेतन। ... आहाहा! भगवान चिदानन्द प्रभु को स्पर्शकर जो ज्ञान हो, वह ज्ञान प्रत्यक्ष, वह ज्ञान सुखरूप, वह ज्ञान चेतन, वह ज्ञान आत्मा का। वह स्वद्रव्य का ज्ञान। उसको परद्रव्य कह दिया। ओहो! यह स्वद्रव्य है वह। चैतन्य का स्वसंवेदनज्ञान, वह स्वद्रव्य हुआ। स्वद्रव्य है न, भाई! समझ में आया? कहा न!

स्वद्रव्य, ज्ञान को स्वद्रव्य कहा। ... यह स्वद्रव्य ज्ञान है। जैसे अनुभूति को आत्मा कहा न? इसी प्रकार जो आत्मा के आश्रय से ज्ञान हुआ, वह स्वद्रव्य है। वह स्वद्रव्य ही है, वह ज्ञान। आहाहा! वस्तु स्वद्रव्य है, यह बाद में। समझ में आया? जैसे उसको परद्रव्य कह दिया न, वैसे यह स्वद्रव्य है। पर्याय—अनुभूति को आत्मा कहा न पूरा, ऐसा। यह तो परद्रव्य के सामने। जब वह परद्रव्य है तो इसके आश्रय से होकर हुआ तो स्वद्रव्य है। स्वद्रव्य के आश्रय से हुआ, वह स्वद्रव्य ही ज्ञान है। आहाहा! समझ में आया?

अभेदनय, ऐसा कहीं आया था न? वह तो उसमें आया था। ऐसा आया था। अभेदनय ... ऐसा कहते हैं। वह तो वहाँ आया था। वह तो उसमें कहा था भाई सवेरे। चौदह (गाथा समयसार)। अभेदनय पुरुष को भी, ऐसा कहा है। आता है न चौदह में, समयसार में यह आता है। पुरुष को कहा है न। चौदहवें में आया न, किसमें आया यह? देखो! चौदह। संस्कृत भी है देखो। समयसार में (है), इसमें नहीं। इसमें कहाँ है? वह है न संस्कृत... एक विचार हुआ था। एक समयसार जयसेनाचार्य की टीकावाला अब बहुत वर्ष हो गये, डाले तो दिक्कत नहीं। ऐसा हो गया था हों, कि साथ-साथ देखने में काम आवे। क्योंकि वह है तो अमुक प्रकार की शैली, परन्तु वह तो बहुत गढ़ गये हैं अब। यह भाई को पड़ना पड़ेगा हिम्मतभाई को वापस ... पड़े न। यह आया देखो। '**तं सुद्धणयं वियाणीहि**' चौदह में है न। '**तं पुरुषमेवाभेदनयेन शुद्धनयविषयत्वाच्छुद्धात्मसाधकत्वाच्छुद्धाभिप्रायपरिणतत्वाच्च शुद्धं विजानीहीति भावार्थः।**' पुरुष को शुद्ध जानना। चौदह में है भाई! चौदह की अन्तिम लाईन। संस्कृत बहुत अच्छा है, हों! इसलिए ऐसा विचार हो गया था। अब तो समयसार में डालना। अब तो सब जानते हैं। दो टीकावाला एक समयसार चाहिए नया, अच्छा, स्पष्ट। ऐई! देवानुप्रिया! चन्दुभाई के ऊपर आयेगा सब। चन्दुभाई करते हैं या नहीं? परन्तु सब स्पष्ट आवे। '**तं सुद्धणयं वियाणीहि**' शब्द है न भाई! चौदह में। इसका अर्थ किया है। '**तं पुरुषमेवाभेदनयेन**' पुरुष को ही उसे शुद्धनय कहना। '**शुद्धनयविषयत्वाच्छुद्धात्मसाधकत्वाच्छुद्धाभिप्रायपरिणतत्वाच्च शुद्धं विजानीहीति**' पुरुष को शुद्ध कहा है। बहुत अच्छी बात है। यह तो जानने की बात हो न।

मुमुक्षु : बहुत बातें हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत बातें वैसी है, इसलिए ऐसा विचार आया था यह पढ़कर।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : होवे वह क्या है ? अब बहुत वर्ष हो गये। यह तो प्रकाशित होता है। अब तो यह है न। परन्तु अब कोई और समयसार हो रहे। क्योंकि एक ही रहा है न। ... नियमसार का नहीं। पंचास्तिकाय का हुआ है ?

मुमुक्षु : अपने जो प्रकाशित किया है, उसमें है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अपने प्रकाशित किया है। इसलिए प्रवचनसार का आ गया। नियमसार में तो एक ही है। पंचास्तिकाय और समयसार दो का रहा। दो का रहा न ? पंचास्तिकाय... समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि वह ज्ञान **'प्रत्यक्ष' के रूप में जाना जाता है।** इसे महाप्रत्यक्ष और आनन्द का कारण कहा जाता है। लो!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ८, मंगलवार, दिनांक २९-१०-१९६८
गाथा - ५९, प्रवचन - ५०

गाथा - ५९

यह प्रवचनसार। ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है। ५९ गाथा है। ५० और ९। **अब, इसी प्रत्यक्षज्ञान को पारमार्थिक सुखरूप बतलाते हैं:**—क्या कहते हैं? जो आत्मा है, आत्मा, वह ज्ञानस्वरूप त्रिकाल चैतन्यस्वरूप है। ऐसा आत्मा अन्तर्मुख दृष्टि करके, सम्यग्दर्शन प्राप्त करके, शुद्ध आत्मा का अनुभव करके प्रतीति और ज्ञान और स्वरूप की स्थिरता करके विशेष उपशम अर्थात् साम्यभाव प्रगट करके उसका फलरूप केवलज्ञान प्राप्त होता है, वह केवलज्ञान कैसा है, उसकी बात चलती है।

यह अपना शुद्ध चैतन्य केवलज्ञान का तो पिण्ड ही है आत्मा। आत्मा अकेला ज्ञानस्वरूप पिण्ड चैतन्यपिण्ड है। उसकी अन्तर दृष्टि करके, ज्ञानस्वरूप का वेदन और श्रद्धा की प्रतीति करके, पश्चात् स्वरूप में स्थिरता उपशमभाव, साम्यभाव, शुद्ध उपयोग प्राप्त करके शुद्ध उपयोग द्वारा केवलज्ञान होता है। समझ में आया? वह केवलज्ञान होता है, उसकी बात चलती है। वह केवलज्ञान सुख का साधन है, आनन्द का कारण वह केवलज्ञान है। समझ में आया? अपना आत्मा भी ज्ञान है और आनन्द(स्वरूप) है और उसका ज्ञान करना, वह ज्ञान पूर्ण होना, वह आनन्द का कारण भी ज्ञान है। उसकी बात चलती है, देखो! पाँच बोल लेंगे, पाँच।

जादं सयं समंतं णाणमणंतत्थवित्थडं विमलं।
रहियं तु ओग्गहादिहिं सुहं ति एगंतियं भणिदं॥५९॥

इसमें नहीं है न हरिगीत? साथ में श्लोक नहीं है। बाद में है। ५९ है न?

स्वयं हुआ अरु सबमें विस्तृत, विमल समंत अहो यह ज्ञान।
अवग्रहादि बिन ऐकान्तिक सुखरूप इसे कहते भगवान॥५९॥

इस शब्द में अन्तर है न जरा। अवग्रह के बाद निर्मल डाला है। पाठ की शैली में अवग्रह अन्तिम है अन्तिम। देखो! टीका। उसकी टीका है न। **(१) स्वयं उत्पन्न होने से,...** क्या कहते हैं? आत्मा में केवलज्ञान है, वह स्वयं उत्पन्न होने से... कोई पर की अपेक्षा नहीं। अपना आत्मा आनन्द और ज्ञानमूर्ति है, उसका आश्रय करना, वह स्वयं उत्पन्न होता है। कोई इन्द्रियों की या पर की अपेक्षा उसमें है नहीं। **(१) स्वयं उत्पन्न होने से...** एक बोल। **(२) समंत होने से,...** नीचे स्पष्टीकरण है। **चारों ओर-सर्व भागों में वर्तमान; सर्व आत्मप्रदेशों से जानता हुआ; समस्त; सम्पूर्ण, अखण्ड।** वह दूसरे शब्द का अर्थ है। असंख्य प्रदेश से केवलज्ञान जानता आता है। असंख्य प्रदेश में केवलज्ञान व्याप्त है। समझ में आया? यह दो बोल।

(३) अनन्त पदार्थों में विस्तृत होने से,... कैसा है केवलज्ञान? अरिहन्त परमात्मा का केवलज्ञान। जो अपना साम्य शान्ति की अन्दर रमणता करने से केवलज्ञान उत्पन्न होता है। वह केवलज्ञान अनन्त पदार्थों में परिणित है, **अनन्त पदार्थों में विस्तृत होने से...** देखो! अनन्त पदार्थों में विस्तृत का अर्थ? अनन्त पदार्थ को जानता है। **(४) विमल होने से...** अत्यन्त निर्मल है। केवलज्ञान, अतीन्द्रिय ज्ञान आनन्द का कारण वह अत्यन्त निर्मल है। **और (५) अवग्रहादि रहित होने से...** उसे अवग्रह अर्थात् क्रम से जानना, क्रम से एक के बाद एक जानना, ऐसा है नहीं। केवलज्ञान में ऐसा है नहीं। एक समय में सारा केवलज्ञान में लोकालोक जानने में आता है।

प्रत्यक्षज्ञान ऐकान्तिक सुख है... देखो! परिपूर्ण। एकान्तिक का अर्थ यह किया है न? **परिपूर्ण; अन्तिम, अकेला; सर्वथा।** एक सुख का कारण है। भगवान आत्मा अपना ज्ञान त्रिकाल स्वरूप में एकाकार होने से जो ज्ञान की पर्याय पूर्ण प्राप्त होती है, वह एकान्त अर्थात् परिपूर्ण सुख है। उसमें आनन्द है और उसमें सुख है। वह इसमें ही आयेगा। वह कल नहीं कहा था? अनादि ज्ञानसामान्यस्वभाव। वह। उसका स्पष्टीकरण आयेगा। कल रात को आया था। **क्योंकि एकमात्र... ऐकान्तिक सुख है, यह निश्चित होता है, क्योंकि एकमात्र अनाकुलता ही सुख का लक्षण है।** भगवान आत्मा अनाकुल आनन्दस्वरूपी आत्मा है और ज्ञानस्वरूप आत्मा है। उसकी अन्तर में एकाग्रता होने से, पूर्ण एकाग्रता में प्राप्त होता है अनाकुल ज्ञान और अनाकुल सुख। वह अनाकुल ज्ञान है,

वह ज्ञान ही अनाकुल है, ऐसा कहते हैं। **एकमात्र अनाकुलता ही सुख का लक्षण है।** एक सुख वहाँ प्राप्त होता है।

(इसी बात को विस्तारपूर्वक समझाते हैं:-) (१) 'पर के द्वारा उत्पन्न' होता हुआ पराधीनता के कारण... अब उसके सामने बात लेते हैं। यह प्रत्यक्षज्ञान की बात है, अब परोक्ष ज्ञान की पहली बात करके प्रत्यक्ष की बात करेंगे। समझ में आया? यह इन्द्रियाँ और मन से जो ज्ञान होता है, वह परोक्ष है। समझ में आता है? अन्तर आत्मा से अन्दर प्रत्यक्ष होता है, उसका नाम सुखरूप ज्ञान है, आनन्द है। ये पाँच इन्द्रिय, मन, उसके लक्ष्य से, उसकी उपस्थिति में जो ज्ञान होता है, वह परोक्ष ज्ञान है। वह परोक्ष ज्ञान है, वह दु:खरूप है, दु:खरूप है। समझ में आया? वह आत्मा का स्वभाव नहीं। क्योंकि जड़ इन्द्रिय जो आत्मा का स्वभाव नहीं, उसकी अपेक्षा करके आत्मा ज्ञान करता है, तो वह ज्ञान परोक्ष है, दु:खरूप है, आत्मा का धर्मरूप ज्ञान नहीं। आहाहा! समझ में आया?

(१) 'पर के द्वारा उत्पन्न' होता हुआ पराधीनता के कारण... पाँच इन्द्रिय, मन जो जड़ है, जो आत्मस्वभाव से भिन्न है, ऐसी पर की अपेक्षा करके जो अन्तर में ज्ञान उत्पन्न होता है, वह पराधीन है। देखो! समझ में आया? आहाहा! पुण्य-पाप का भाव कषाय है, वह तो पराधीन है, दु:खरूप ही है। परन्तु यहाँ तो पाँच इन्द्रिय और मन द्वारा उत्पन्न होनेवाला ज्ञान भी पराधीन है। पराधीन वह करता नहीं, परन्तु ज्ञान पराधीन उत्पन्न होता है। समझ में आया? वह यह बनाया है न पुस्तक, थोड़ा वाँचा था आज। भेंट आया है न। कषायपाहुड़। कषायपाहुड़ है? कैसा वह? सुमेरचन्द दिवाकर ने प्रस्तावना लिखी है, गप्प-गप्प। जैसी पहले में लिखी थी। शुभभाव में संवर है, शुभभाव में निर्जरा है। सब जो पत्रों में आता है, ऐसा और ऐसा। आहाहा! व्यवहार से धर्म है, व्यवहार से पहले धर्म होता है, पश्चात् निश्चय होता है। कई बातें गप्प ही गप्प है। आहाहा!

आत्मा अन्तर आनन्द और ज्ञानमूर्ति निश्चयस्वरूप उसका है। उसके आश्रय से जो धर्म होता है, वह आनन्द और अनाकुल शान्ति देनेवाला है। प्रथम से सम्यग्दर्शन से। समझ में आया? वही धर्म है। पुण्य परिणाम धर्म नहीं। परन्तु यहाँ तो पाँच इन्द्रिय और

मन से उत्पन्न हुआ ज्ञान भी धर्म नहीं। धर्म अर्थात् अपना स्वभाव नहीं। समझ में आया? देखो! **पर के द्वारा उत्पन्न होता हुआ पराधीनता के कारण...** अन्तिम शब्द है उसका। अन्तिम है न। **परोक्ष ज्ञान अत्यन्त आकुल है;...** इस कारण से यह परोक्ष ज्ञान अत्यन्त अनाकुलता का कारण है। अन्तिम शब्द है। कहो, समझ में आया? आत्मा में तीव्र कषाय हो अशुभ, हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना, क्रोध, वह तो पाप है, दु:खरूप है, अधर्म है। परन्तु राग की मन्दता दया, दान, व्रत, परिणाम आदि उत्पन्न होता है, वह भी कषाय है, शुभ है, राग है। सूक्ष्म बात है भाई वीतराग की। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतरागदेव एक समय में तीन काल-तीन लोक जिसने देखा उसने ऐसा कहा, जैसा अनुभव में आया, वैसा कहा। सुन तो सही, प्रभु! तुम हो कौन? तुम तो आत्मा हो, और तेरे में तो आनन्द और ज्ञान भरा है। उसका आश्रय लेकर जो अन्तर ज्ञान और आनन्द उत्पन्न हो, वह धर्म है। परन्तु पर का आश्रय लेकर कषाय की मन्दता आदि जो हुआ पुण्यभाव, वह भी धर्म नहीं। वह तो (धर्म) नहीं, परन्तु पाँच इन्द्रिय और मन पर द्वारा पराधीन जो ज्ञान हुआ, वह आत्मा का स्वभाव नहीं। स्वभाव नहीं अर्थात् धर्म नहीं, धर्म नहीं है, वहाँ अधर्म है। आहाहा! समझ में आया?

पर के द्वारा उत्पन्न होता हुआ... उत्पन्न करके (पर के) लक्ष्य से। है ज्ञान अपनी चीज़, परन्तु अपनी चीज़ अपने से आश्रय उत्पन्न न करके इन्द्रिय जो जड़ है, मन जो जड़ है, जो आत्मस्वभाव से भिन्न तत्त्व है अजीवतत्त्व, उसके आश्रय से जो उत्पन्न होता है ज्ञान, वह पराधीनता के कारण दु:खरूप है। आहाहा! समझ में आया? **पराधीनता के कारण...** अन्त में लेना। **परोक्ष ज्ञान अत्यन्त आकुल है; इसलिए वह परमार्थ से सुख नहीं।** है अन्त में शब्द है? ऐई! भीखाभाई! कहाँ?

मुमुक्षु : अभी वाँचता हूँ।

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी वाँचता हूँ। उलझ जाते हैं एकदम देकर।

मुमुक्षु : परमार्थ से सुख नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह। यहाँ से लेना एक-एक बोल में से।

पर के द्वारा उत्पन्न होता हुआ पराधीनता के कारण परोक्ष ज्ञान अत्यन्त आकुल है; इसलिए वह परमार्थ से सुख नहीं। है न, अन्त में है न? आहाहा! अपना आत्मा अन्तर में से निश्चय ज्ञान प्रगट करके साथ में आनन्द हो, उस ज्ञान को सम्यग्ज्ञान और धर्मज्ञान कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? वीतरागी ज्ञान है, वह धर्म है, ऐसा कहते हैं, भाई! यह परोक्ष ज्ञान और रागवाला पराधीन ज्ञान है। वीतराग का मार्ग वीतराग से शुरु होता है। भगवान आत्मा, आत्मा जो है वह वीतराग विज्ञानघन है। वीतराग विज्ञानघन आत्मा है। वीतराग अर्थात् अकषाय ज्ञानघन है। उसके आश्रय से जो अकषाय वीतरागी ज्ञान जो उत्पन्न होता है, वह सुखरूप है, वह आनन्द का कारण है और वह धर्म है। आहाहा! समझ में आया? नागपुर में आये थे न एक भाई। कौन? धन्नालालजी आये थे। समझ में आया? धन्नालाल वहाँ आये थे।

असम्मत होने से... क्या कहते हैं? देखो, नीचे स्पष्टीकरण है असम्मत का अर्थ। असम्मत है न, तीन। **परोक्ष ज्ञान खण्डित है...** क्या कहते हैं? ये पाँच इन्द्रिय मन, वह तो जड़ है। उसके लक्ष्य से जो ज्ञान होता है, वह **परोक्ष ज्ञान खण्डित है अर्थात् वह अमुक प्रदेशों के द्वारा ही जानता है;...** अमुक पदार्थों के द्वारा ही जानता है। अमुक प्रदेश। **अमुक प्रदेशों के द्वारा ही जानता है; जैसे वर्ण-आँख जितने प्रदेशों के द्वारा ही...** वर्ण आँख जितने प्रदेशों के द्वारा ही **ज्ञात होता है; अन्य द्वार बन्द है।** आँख द्वारा वर्ण जाने, वर्ण जाने। इतना जाने। उस प्रदेश से—इतने प्रदेश से जानता है। पराधीन है।

इतर द्वारों के आवरण के कारण... लो! असम्मत अर्थात् परोक्ष ज्ञान खण्डित है, अमुक प्रदेशों के द्वारा ही जानता है। जैसे वर्ण अर्थात् रंग। **आँख जितने प्रदेशों के द्वारा ही इन्द्रियज्ञान से ज्ञात होता है; अन्य द्वार बन्द है।** जब ख्याल आया तो चार इन्द्रियों से जानने में आता नहीं। एक इन्द्रिय से जानने में आता है। ऐसा असम्मत पूर्ण नहीं। ऐसा ज्ञान पराधीन होने से, परोक्ष होने से दुःख का कारण है। आहाहा! कहो, समझ में आया कुछ? यह सुना हुआ ज्ञान दुःख का कारण है, ऐसा कहते हैं। यह जड़, यह तो मिट्टी जड़ है। मन भी जड़ है। आत्मा अरूपी चैतन्यघन आनन्दकन्द है। तो उसका ज्ञान अपने से जो हो, वह ज्ञान और सुख है। जितना पर की अपेक्षा रखकर ज्ञान होता है, वह दुःखरूप, आकुलता और परोक्ष है।

मुमुक्षु : शास्त्र की अपेक्षा रखकर ज्ञान होता है, वह ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शास्त्र की अपेक्षा रखकर ज्ञान करे, वह परोक्ष ज्ञान और दुःखरूप है।

मुमुक्षु : फिर शास्त्र कोई पढ़ेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पढ़े नहीं ? पढ़े बिना रहे नहीं। बात तो ऐसी है। शास्त्र तो पर है, जड़ है। यह तो जड़ है। ये क्या आत्मा है ? और सुनने में आता है शब्द, शब्द भी जड़ है। और वह कान की अपेक्षा (रखकर) आता है। इतने प्रदेश में ही जानने में आता है। समझ में आया ? तो असम्मत अर्थात् परिपूर्ण नहीं, खण्डित (है)। असम्मत अर्थात् परिपूर्ण नहीं, खण्डित है। और पहले कहा पाँच इन्द्रिय द्वारा (जानता है), इसलिए पराधीन है। समझ में आया ? वीतरागमार्ग अलौकिक है। आहाहा!

दिगम्बर आचार्यों ने वस्तु का स्वरूप जैसा है, ऐसा अनादि परम्परा से आया ऐसा कहा। अनादि... अनादि... अनादि... यही मार्ग है। समझ में आया ? भगवान! तेरा ज्ञान इन्द्रिय और मन की अपेक्षा रखे, वह भी पराधीनता है और इन्द्रिय मन की एक-एक इन्द्रिय का लक्ष्य करता है तो परिपूर्ण ज्ञान नहीं होता, तो खण्डित ज्ञान होता है। खण्डित ज्ञान है तो परोक्ष है, परोक्ष है तो आकुलता का कारण है। समझ में आया ? दो बोल हुए। असम्मत का अर्थ समझे ? परिपूर्ण नहीं, खण्डित। एक-एक इन्द्रिय से ज्ञान हुआ, दूसरी इन्द्रिय से बन्द। तीसरे में लक्ष्य जाये तो पहली इन्द्रिय का बन्द होता है। तो वह तो खण्डित ज्ञान है। अमुक प्रदेशों से जानने में आता है, खण्ड-खण्ड से, तो वह ज्ञान परिपूर्ण नहीं, और उस कारण से **ईतर द्वारों के आवरण के कारण है।** ईतर द्वार का आवरण का कारण है वहाँ। इसलिए वह दुःखरूप परोक्ष है।

तीसरा। **(३) मात्र कुछ पदार्थों में प्रवर्तमान होता हुआ...** क्या कहते हैं ? परोक्ष ज्ञान थोड़ा पदार्थ... थोड़ा समझे न ? बहुत थोड़ा पदार्थ। थोड़ा कहते हैं ? अल्प अल्प। अल्प पदार्थ को इन्द्रियज्ञान जानता है परोक्ष ज्ञान। परोक्ष ज्ञान थोड़ा पदार्थ, अल्प पदार्थ को जानता है। अल्प पदार्थ को जानता हुआ **अन्य पदार्थों को जानने की इच्छा के कारण...** थोड़ा जानने के कारण, अन्य जानने की इच्छा के कारण परोक्ष ज्ञान आकुलता

का कारण खेद है। कहो, समझ में आया? **मात्र कुछ पदार्थों में प्रवर्तमान...** थोड़ा पदार्थ में। थोड़ा लो न। कुछ आया न? थोड़ा पदार्थ में प्रवर्तमान होता हुआ **अन्य पदार्थों को जानने की इच्छा के कारण,...** इच्छा के कारण परोक्ष ज्ञान अत्यन्त आकुल है, इस कारण से सुख नहीं।

चौथा। **(४) समल होने से असम्यक् अवबोध के कारण...** मैल है। इन्द्रिय और मन से जानना हुआ (वह) परोक्ष ज्ञान मैलवाला है। **(-कर्ममलयुक्त होने से...)** रागमलयुक्त होने से **(संशय-विमोह-विभ्रम सहित जानने के कारण)...** समझे? विमल की व्याख्या की। विमल के सामने समल की। संशय रहे कि ये क्या होगा? समझे? विमोह-विपरीत हो जाये, विभ्रम-भ्रम पड़ जाये। ऐसा होने से परोक्षज्ञान इन्द्रिय और मन से होता हुआ दुःख का कारण, आकुलता का कारण है। आहाहा! वह धर्म का कारण नहीं है, ऐसा कहते हैं। पाँच इन्द्रिय, मन से ज्ञान होता हुआ खण्डित और... यहाँ क्या कहा? मलवाला ज्ञान है। मल अर्थात् भ्रमणा उत्पन्न हो कि क्या है? कैसे होगा? ऐसा संशय हो, विभ्रम हो, विमोह हो और मलवाला ज्ञान परोक्ष इन्द्रिय से होता हुआ दुःख का कारण है। आहाहा! अतीन्द्रिय ज्ञान सुख का कारण है और अतीन्द्रिय ज्ञान सम्यग्दर्शन से उत्पन्न होता है। मति-श्रुत अतीन्द्रिय ज्ञान है।

भगवान अखण्ड आनन्द ज्ञानमूर्ति ध्रुव का अवलम्बन लेने से, उसका आश्रय करने से जो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, वह अतीन्द्रिय ज्ञान ... सम्यग्दर्शन है, वह सुख का कारण है, सुखरूप है। और उसका पूर्ण सुख का और पूर्ण केवलज्ञान का वह कारण है। समझ में आया? देखो! कषाय की मन्दता, वह भी केवलज्ञान का कारण नहीं। वह परोक्ष इन्द्रिय से उत्पन्न हुआ ज्ञान भी केवलज्ञान का कारण नहीं। समझ में आया?

आत्मा अतीन्द्रिय भगवान आत्मा है, उसका अन्तर आश्रय करने से जो सम्यग्ज्ञान स्वसंवेदन होता है, साथ में आनन्द होता है, वह ज्ञान और आनन्द मोक्ष का मार्ग है और वह मोक्ष का कारण है। समझ में आया? आहाहा! देखो! ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य दिगम्बर मुनि दो हजार वर्ष पहले हुए। ऐसी बात। भगवान के समीप में आकर यह शास्त्र बनाया। भगवान के पास गये थे, सीमन्धर परमात्मा के पास। समझते हैं? वहाँ आठ दिन रहे थे और आकर यह समयसार, प्रवचनसार आदि बनाया है।

दुनिया को सन्देश, भगवान से लाया वह सन्देश देते हैं कि भगवान यह कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? चार बोल हुए।

(५) अवग्रहादि सहित होने से... परोक्ष ज्ञान। अवग्रह अर्थात् थोड़ा जानना, फिर सोचना, फिर निर्णय करना, फिर धारणा करना। ऐसा होने से **क्रमशः...** क्रम-क्रम से उत्पन्न होनेवाले **पदार्थग्रहण के खेद के कारण...** क्रम-क्रम से ग्रहण है तो **पदार्थग्रहण अर्थात् पदार्थ का बोध एक ही साथ न होने पर अवग्रह, ईहा इत्यादि क्रमपूर्वक होने से खेद होता है।** क्रम, क्रम से। एकदम जानने में नहीं आता, (इसलिए) खेद है, दुःख है। समझ में आया? ओहोहो! तो क्या यह सब केवली का ज्ञान कैसे होगा तुम्हारे? ऐई! हेमन्त! दुःख का कारण। आहाहा! वह तो दुःख का कारण है, इन्द्रिय और मन से पराधीन शास्त्र का ज्ञान होता है वह भी, कहते हैं कि एक के बाद एक थोड़ा हुआ, थोड़ा विषय जानने का खेद होता है, इस कारण वह ज्ञान भी दुःखरूप और दुःख का कारण है। आहाहा!

मुमुक्षु : उस समय दुःख उत्पन्न होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख ही, आकुलता के साथ खेद है। साथ में खेद है, ऐसा कहते हैं। साथ में खेद है। परोक्ष ज्ञान है तो साथ में खेद है। प्रत्यक्ष ज्ञान के साथ में आनन्द है। कहो, समझ में आया?

परोक्ष ज्ञान... पदार्थग्रहण के खेद के कारण (-इन कारणों को लेकर)... देखो! **परोक्ष ज्ञान अत्यन्त आकुल है; इसलिए वह परमार्थ से सुख नहीं।** वास्तव में सुख नहीं। मान्यता माने कि ज्ञान ऐसा किया, पाँच हजार का वेतन मिला, बहुत सुखी है। दुःखी है। समझ में आया? वह तो पाठ में तो स्वयंजातं केवलज्ञान की बात कही है। परन्तु अमृतचन्द्राचार्य महाराज ने उससे विरुद्ध परोक्ष ज्ञान की बात साथ में ली। अब पाठ में है, वह बात कहते हैं।

और यह प्रत्यक्ष ज्ञान तो अनाकुल है... भगवान आत्मा! यह महाप्रत्यक्षज्ञान की बात चलती है। नीचे स्वसंवेदन सम्यग्दर्शन में होता है, वह प्रत्यक्ष है। सम्यग्दर्शन में आत्मा की प्रतीति होकर, आत्मा का स्वसंवेदन का ज्ञान है, वह प्रत्यक्ष है, सुखरूप है,

परन्तु महाप्रत्यक्ष नहीं। महाप्रत्यक्ष केवलज्ञान है। समझ में आया? लोगों को ... ऐसी लगे साधारण मनुष्यों को। ऐसा लेख लिखा, पराधीन होंगे, आनाथी थशे, शुभथी थाय, शुभ से होता है। ऐसा दृष्टान्त देते हैं उसमें। उस जयधवला का, नहीं? शुभ... वह के वह दृष्टान्त सब। अरे... भगवान! क्या करते हैं? चैतन्यपुंज भगवान पूरा, ओहो! अनन्त सिद्ध भगवान विराजते हैं तेरे में तो। तुम तो अनन्त सिद्धस्वरूप आत्मा है। ओहोहो! ऐसे भगवान आत्मा का आश्रय लेकर जो ज्ञान और सुख और शान्ति और श्रद्धा उत्पन्न होती है, वही अनाकुल और वही सच्चा ज्ञान और धर्म है। समझ में आया?

और वह प्रत्यक्ष ज्ञान... यह परोक्ष ज्ञान की बात कही। अब प्रत्यक्ष ज्ञान जो पाठ में है न मूल श्लोक में (उसकी बात करते हैं)। **(१) अनादि ज्ञानसामान्यरूप स्वभाव पर महा विकास से व्याप्त होकर स्वतः ही रहने से स्वयं उत्पन्न होता है, इसलिए आत्माधीन है...** भाषा देखो! कहते हैं कि पर द्वारा उत्पन्न होता हुआ पराधीनता के कारण दुःखरूप है, ऐसा कहा था। पाँच इन्द्रिय का मन से ज्ञान हुआ, वह दुःखरूप है। यह केवलज्ञान अनादि ज्ञानसामान्य... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा जैसा अनादि-अनन्त है, ऐसा उसका ज्ञानस्वभाव भी अनादि-अनन्त है। आत्मा अनादि-अनन्त है, ऐसा ज्ञानस्वभाव सामान्य ध्रुव अनादि-अनन्त है।

वह **अनादि ज्ञानसामान्यरूप स्वभाव...** अनादि ज्ञानसामान्य अर्थात् सदृश्य ध्रुव, ऐसा जो आत्मा का अनादि महासामान्य ज्ञान। वह **स्वभाव पर...** स्वभाव पर। स्वभाव के ऊपर, स्वभाव तो ध्रुव है। आहाहा! **अनादि ज्ञानसामान्यरूप स्वभाव...** भगवान आत्मा अनादि-अनन्त है, ऐसा उसका ज्ञानस्वभाव अनादि का है। नया प्रगट करना ऐसा नहीं, वह तो ज्ञानस्वभाव है ही। ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... ज्ञान... जानन... जानन... जानन... जानन स्वभाव। जो सामान्यरूप ध्रुवरूप, सदृश्यरूप, एकरूप है। उस पर **महा विकास से व्याप्त होकर...** आहाहा! ध्रुव के ऊपर केवलज्ञान महा प्रत्यक्षज्ञान जो है... जो कि स्वसंवेदनज्ञान सम्यग्दृष्टि में जो होता है, वह भी महासामान्य के ऊपर ही पर्याय रहती है। समझ में आया? अनादि महासामान्य लो। महासामान्य कहते हैं। एकरूप सामान्य ऐसा। एकरूप उसकी दृष्टि करने से जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह अनादि ज्ञानसामान्य के ऊपर पर्याय है। समझ में आया? अनादि सामान्य और ऊपर ज्ञान, यह क्या होगा?

ऊपर अर्थात् पर्याय अन्दर ध्रुव में नहीं, ऐसा कहते हैं। ध्रुव जो अनादि ज्ञान है ध्रुव, सामान्य एकरूप उसके ऊपर पर्याय, उसके ऊपर पर्याय। देखो जानन... **महा विकास से व्याप्त होकर...** महाविकास। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान में आत्मा की पर्याय में विकास है। स्वभाव का आश्रय लेकर चिदानन्द भगवान ज्ञानसामान्य का आश्रय लेकर जो सम्यग्ज्ञान होता है धर्मी को, वह ज्ञानसामान्य के ऊपर ही रहता है, परन्तु महा विकास नहीं है। समझ में आया? क्या कहते हैं? कि आत्मा वस्तु है, उसमें सामान्यज्ञान त्रिकाल है त्रिकाल। तो उसका आश्रय करने से धर्मी को जो स्वसंवेदन मति-श्रुतज्ञान की पर्याय है, वह विकास तो है, सामान्यज्ञान का ही विकास है, पर्याय में परिणमित है। परन्तु यह केवलज्ञान तो महाविकास से व्याप्त है। आहाहा!

महाप्रत्यक्ष कहा था न पहले? यह महाविकास। शक्ति जो पूर्ण भगवान आत्मा की है, वह पर्याय में महाविकास हो गयी। समझ में आया? वह पर्याय भी इतनी स्वतन्त्र है। महाविकास... महाविकास... ध्रुव के ऊपर महाविकास... ध्रुव के ऊपर महाविकास। भाषा देखो! समझ में आया? ध्रुव तो ऐसा का ऐसा रहा, पर्याय में विकास हुआ। प्रगट प्रत्यक्ष पूर्ण हुआ, ऐसा जो ज्ञान **व्याप्त होकर...** प्रसर कर। अनादि भगवान उसमें ज्ञानस्वभाव जो अनादि है, उसमें पर्याय प्रगट व्याप्त ऊपर प्रसर गई है। ध्रुव के ऊपर प्रसरी है, व्याप्त है। **स्वतः ही रहने से...** व्याप्त होकर स्वतः कोई दूसरे कारण के बिना। ऐसा धर्म कैसा! ऐसी भाषा! जेठालालभाई!

अनादि ज्ञानसामान्यरूप... क्या कहते हो परन्तु यह? और स्वभाव, उसके ऊपर महाविकास से व्याप्त होकर स्वतः ही रहने से **स्वयं उत्पन्न होता है, इसलिए आत्माधीन है,...** समझ में आया? भगवान आत्मा वस्तु अनादि है। तो उसमें ज्ञान जो शक्ति है न, स्वभाव? वह भी अनादि है, सामान्य सामान्य है, एकरूप है। उसको प्रगट करना है या आवरण आता है, ऐसा कुछ उसमें है नहीं। ऐसा महासामान्य ज्ञान उसके अन्तर में एकाग्र होकर जो सम्यग्ज्ञान, मति-श्रुत धर्मरूपी ज्ञान प्रगट होता है, वह भी ध्रुव के ऊपर अल्प विकास होकर व्याप्त होकर स्वयं उत्पन्न होकर रहता है। समझ में आया?

सम्यग्ज्ञान। धर्म का पहला सम्यग्ज्ञान। मति और श्रुतज्ञान जो सम्यग्ज्ञान। वह भी अनादि सामान्यज्ञान जो वस्तु है आत्मा, उसको सामान्य अर्थात् एकरूप ज्ञान, ध्रुवरूप

ज्ञान, सदृश ज्ञान, ज्ञायकभावरूप ज्ञानरूप, भावरूप ज्ञान, उसके ऊपर मति-श्रुत की पर्याय धर्मी को मति-श्रुतज्ञान जो उत्पन्न होता है, वह महासामान्य ऊपर व्याप्त होकर-प्रसरकर अपने से स्वतः ही रहने से। ऐसा। अपने से रहने से। कोई कारण है नहीं। **स्वयं उत्पन्न होता है...** वह मति-श्रुतज्ञान भी स्वयं प्रत्यक्ष अपने से उत्पन्न होता है। उसमें कोई मन और इन्द्रिय का कारण नहीं। ऐसी बात है। कठिन बातें।

लो, यह प्रवचनसार—भगवान की दिव्यध्वनि का सार। भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ उनकी वाणी निकली ॐ ध्वनि। उसका सार। आहाहा! देखो! भगवान! भगवान! तुम तो महिमावन्त (हो), तेरा ज्ञानस्वभाव तो त्रिकाल है। उसका आश्रय लेकर; इन्द्रिय का नहीं, मन का नहीं, श्रवण का नहीं, कुछ नहीं। महा जो ज्ञानसामान्य स्वरूप त्रिकाल है (उसका आश्रय लेकर)। यहाँ क्यों महा शब्द आ जाता है? कि केवलज्ञान ने जब महाप्रत्यक्ष कहा (तो) यह तो महा... महा महासामान्य प्रत्यक्ष है। भाई! समझे? जब समय की पर्याय जो केवलज्ञान महाप्रत्यक्ष, केवलज्ञान महाप्रत्यक्ष विकास होकर व्याप्त (हुआ)... तब यह ज्ञान तो महा महा अन्दर पड़ा ही है उसमें। महा महा सामान्य एकरूप त्रिकाल पड़ा है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा भगवान आत्मा अपना ज्ञान जो सामान्य त्रिकाल है, उसके सन्मुख होकर स्व आश्रय से जो मति-श्रुतज्ञान होता है, वह अपने ध्रुव पर व्याप्त होकर स्वयं रहते हुए, स्वयं उत्पन्न हुआ आत्माधीन है। यह मति-श्रुतज्ञान भी आत्माधीन है। श्रवण से उत्पन्न हुआ है कि ऐसा नहीं। इन्द्रिय से, मन से उत्पन्न हुआ है, ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया? 'ऐसा मार्ग वीतराग का भासित श्री भगवान।' भगवान ने ऐसा कहा है। बाहर से इतना फँसा दिया न, अटककर अन्दर वस्तुस्थिति है उसे स्पर्श करने का अवसर ही नहीं रहता। बाहर से ऐसा होता है... ऐसा होता है... ऐसा नहीं होता है। वह तो सब पराधीन है, सुन न। समझ में आया? कषाय की मन्दता में ऐसा है। ऐसा दृष्टान्त देते हैं उसमें। अशुभ से निवर्ते इतना संवर होता है। परन्तु किसे? यह तो सम्यग्दृष्टि की बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु भाषा तो ऐसी आती है न। उसे संवर कहा है। परन्तु किसे? किसको? जिसकी दृष्टि ज्ञायक चिदानन्द पर पड़ी है और शुभ-अशुभ से रहित

शुद्ध की दशा प्रगट की है, उसको जितना वर्तमान में अशुभ से निवर्तन किया है, इतना शुभ संवर कहने में आता है व्यवहार से। है, यह शब्द है न। यह सब है। टीका में बहुत लिया है। जहाँ हो वहाँ डाला है। अरे! भगवान! परन्तु यहाँ तो ऐसा लेना है कि सम्यग्दर्शन-बर्शन चाहे जो हो। ये व्रत ले लो, क्रिया करो, संयम पालो, ये ... उसमें तुझे संवर होता होगा। धूल में भी नहीं होगा। समझ में आया? आत्मा भगवान सच्चिदानन्द प्रभु सर्वज्ञ परमेश्वर ने जो देखा है अन्दर, ऐसा सामान्यज्ञान ऐसा उसका आश्रय लिये बिना अंश भी धर्म तीन काल-तीन लोक में होता नहीं। समझ में आया? लो। पहला बोल लिया। उसमें कहा है न। **पर के द्वारा उत्पन्न होता हुआ पराधीनता के कारण...** परोक्ष दु:खरूप।

यहाँ **अनादि ज्ञानसामान्यरूप...** त्रिकाल स्वभाव, त्रिकाल स्वभाव। उसके ऊपर पर्याय। **महा विकास से...** जैसे प्रगट हुई ऐसे **व्याप्त होकर...** प्रसरकर **स्वत: ही रहने से...** अपने से वह पर्याय रहती है, ऐसा कहते हैं। विकास होकर अपने से पर्याय रहती है, द्रव्य के कारण से नहीं, ऐसा कहते हैं, लो। वह उत्पन्न हुई अपने से रहती है, ऐसा कहते हैं। देखो! स्वयं **स्वत: ही रहने से...** स्वत: ही रहने से। समझ में आया? इतनी पर्याय की स्वतन्त्रता। स्वयं ही रहने से ध्रुव के ऊपर एक समय की पर्याय पूर्ण विकासरूप स्वत: रहने से स्वयं उत्पन्न होता है। **इसलिए आत्माधीन है,...** आत्माधीन है, उस कारण से अनाकुल आनन्दरूप है। है न अन्तिम में? देखो!

इस प्रकार प्रत्यक्ष ज्ञान अनाकुल है। इसलिए वास्तव में वह पारमार्थिक सुख है। हिन्दी में है पीछे। ऐसे एक-एक बोल लेना। क्या? कि **अनादि ज्ञानसामान्यरूप...** त्रिकाल जो है उसके ऊपर **महा विकास...** करके जो ज्ञान उत्पन्न होकर स्वत: रहता है और स्वयं उत्पन्न होता है, इसलिए आत्माधीन है। **(और आत्माधीन होने से आकुलता नहीं होती)...** कहो, समझे? ठेठ ठिकाने डाला है। **इस प्रकार प्रत्यक्ष ज्ञान अनाकुल है। इसलिए वास्तव में वह पारमार्थिक सुख है।** सच्चा सुख तो वह है। आहाहा! इन्द्रियाधीन यह बाहर का सुख मानना तो भ्रम है। अज्ञानी मिथ्यादृष्टि मानते हैं। आहाहा! पाँच इन्द्रिय और मन से सम्बन्ध पर का होकर मुझे सुख होता है, वह मान्यता तो मिथ्यादृष्टि की है, भ्रम है। सम्यग्दृष्टि इन्द्रियों से, मन से सुख मानते नहीं। आहाहा!

इन्द्रिय से, मन से जो बाह्य का सुख तो मानते नहीं कि पैसा मिला, यह भोग है, यह खाने को मिला, रस मिला, वह तो नहीं। उसको दुःख मानते हैं, उसको सुख मानते नहीं ज्ञानी। और मन से ज्ञानादि उत्पन्न हुआ, वह भी पराधीन हैं, उसको भी सुख का कारण नहीं मानते, दुःख का कारण मानते हैं, हेयरूप जानते हैं। समझ में आया? अपना आत्मा कायमी स्वभाव ज्ञान का रखनेवाला असली कायम स्वभाव का आश्रय लेकर सामान्य पर जो व्याप्त होकर, पर्याय प्रगट होकर स्वतः रहती है, (वह) स्वयं उत्पन्न होती है, उस कारण आत्माधीन है। कहो, समझ में आया? आत्माधीन है, वह स्व आधीन है। कहो, पराधीन नहीं, वह स्व आधीन है। समझ में आया? ऐई! आत्माधीन है। और यह कहा। आत्मा अर्थात् अपने स्वरूप के आधीन है। पाठ में ऐसा है न? **स्वतः ही रहने से स्वयं उत्पन्न होता है...** स्वतः ही रहने से, ऐसा है न? इसलिए वह स्वतः स्वयं अपने स्वरूप के आधीन स्वयं अपने आत्माधीन स्वरूप। अपने स्वरूप के आधीन है। कहो, समझ में आया? भारी। केवलज्ञान का पर्याय स्वरूपाधीन, पोताना अर्थात् अपने आधीन है। पर्याय पर्याय के आधीन है। द्रव्य के आधीन कहने में आता है, पर का आश्रय नहीं है न, उस अपेक्षा से। समझ में आया? एक बोल हुआ।

यह तो अध्यात्म शास्त्र है। ऐसे जल्दी से पढ़ ले तो समझ में नहीं आता है। भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव के ज्ञान में आया कि सम्यग्ज्ञान किसको कहते हैं और मिथ्याज्ञान किसको कहते हैं, उसकी व्याख्या है यह। अरेरे! जिसको अभी बाह्य पैसे में और शरीर की सुन्दरता में और इन्द्रिय की विभूति में, पाँच इन्द्रिय सुन्दर की विभूति में, जो सुखरूप कल्पना मानता है, वह तो कहते हैं कि भाई! तुम बड़े मिथ्यादृष्टि हो। समझ में आया? चाहे तो फिर दया, दान, पूजा, भक्ति आदि करता हो, परन्तु जिसको बाह्य विभूति और बाह्य इन्द्रिय की विभूति, समझे? यह इन्द्रिय की विभूति सब, सुन्दर नाक, सुन्दर कान, सुन्दर होंठ, ऐसा सुन्दर... सुन्दर... ऐसी सुन्दरता लगकर जिसको आल्हाद अर्थात् उत्साह हो जाता है, वह दुःखरूप मिथ्या दशा है। समझ में आया? ओहो!

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा अपना ज्ञान त्रिकाल स्वभाव, उसके ऊपर जो पर्याय प्रगट होकर रहती है, वही सुखरूप और अनाकुल है और उसको प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

दूसरा बोल। **समंत...** समंत है न। उसमें असमंत था, खण्डित ज्ञान था। इन्द्रिय में खण्डित। एक इन्द्रिय को जाने (उस समय) दूसरा द्वार बन्द रहे। खुल्ला पड़े रहे ऐसा। पराधीन है, खण्डित ज्ञान है। आहाहा! स्पर्श। लो स्पर्श। तो स्पर्श को ऐसे जानते हैं, तब दूसरा शब्द, रूप का द्वार बन्ध रहे। उसको जानने की शक्ति रुक गयी है वहाँ। समझ में आया? उसका एकदम उपयोग बदल जाये। वह दृष्टान्त आया था न? कौआ-कौआ। कौअे की आँख में एक ही कीकी है। ऐसे-ऐसे फिरता है, ऐसे एकदम फिरे स्पर्श में, रस में, रूप में ऐसे देखे। तो मानों सबको मैं एकदम विषय करता हूँ। रूप को, स्पर्श को आदि। ऐसा है नहीं। खण्ड-खण्ड ज्ञान एक के बाद एक का ज्ञान करता है। यह ज्ञान समंत एकसाथ सबका ज्ञान करता है।

(२) समस्त आत्मप्रदेशों में परम प्रत्यक्ष ज्ञानोपयोगरूप होकर,... देखो भाषा! समझ में आया? **समस्त आत्मप्रदेशों में परम प्रत्यक्ष ज्ञानोपयोगरूप होकर,...** इतना कहना है। पहले प्रत्यक्ष है परन्तु परम प्रत्यक्ष नहीं। ज्ञान, मति-श्रुतज्ञान है वह अपने लिये तो प्रत्यक्ष ही है, परन्तु परम प्रत्यक्ष नहीं, इसलिए कहते हैं कि केवलज्ञान तो परम प्रत्यक्ष है। पूर्ण दशा प्रगट हुई, पूर्ण स्वभाव एक समय में (प्रगट हो गया)। आहाहा! ऐसा ज्ञान प्रतीत करे, एक समय में परम प्रत्यक्ष पूर्ण तीन काल-तीन लोक को अपनी पर्याय में प्रगट देखते हैं, ऐसे परम प्रत्यक्ष ज्ञानोपयोगरूप होकर। देखो! ज्ञान के व्यापाररूप, ज्ञान के परिणमनरूप होकर व्याप्त होने से... अपनी पर्याय में **व्याप्त होने से समंत है,...** देखो! केवलज्ञान को उपयोगरूप कहा। कहो, समझ में आया? प्रत्यक्ष ज्ञानोपयोगरूप होकर। उपयोग में कुछ देना नहीं है। उपयोग अर्थात् केवल परिणमन ही है। उपयोग शब्द लिया है। है न लिया है। ज्ञान उपयोग है न। केवलज्ञान को उपयोग कहते हैं।

समस्त आत्मप्रदेशों में... असंख्य प्रदेश में **परम समक्ष ज्ञानोपयोगरूप होकर,...** ज्ञान के परिणमनरूप होकर **व्याप्त होने से समंत है,...** अखण्ड है। **इसलिए अशेष द्वार खुले हुए हैं...** असंख्य प्रदेश से एकसाथ जानता है। अमुक से यहाँ जानता था और दूसरा बन्द है, ऐसा नहीं। असंख्य प्रदेश से जानता है। ओहो! उसके दिव्य दरबार में कितनी शक्ति है! ऐसा कहते हैं। उसका माहात्म्य न आवे और दूसरी चीज़ का माहात्म्य

आवे, मन, इन्द्रिय का, ज्ञान का माहात्म्य आ जाये तो वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

दूसरे को थोड़ा आता है और अपने को थोड़ा विशेष आता हो तो देखो! ऐसा है। देखो! ऐसा है ऐसा करके अपने में उसकी अधिकता, अधिकता, मन, इन्द्रिय के ज्ञान की अधिकता भासे, वह तो दुःखरूप ज्ञान की अधिकता भासे, वह तो दृष्टि मिथ्यात्व है। आहाहा! मर जाए तब होता है, ऐसा है, कहते हैं। बाहर से। समझ में आया? ज्ञान जो मन, इन्द्रिय से हुआ उस ज्ञान से भी मर जा। मैं ठीक हूँ, मैं अधिक हूँ, मुझे हुआ, यह ऐसी चीज़ नहीं। आहाहा! मैं आत्मा अखण्डानन्द ज्ञानस्वरूप हूँ, ऐसी अन्तर दृष्टि करने से जो ज्ञान प्रगट हुआ, वह ज्ञान है। कहो, समझ में आया? अपने अस्तित्व में ज्ञानप्रकाश हुआ, उसका नाम ज्ञान कहते हैं। गजब बात। **(और इस प्रकार कोई द्वार बन्द न होने से आकुलता नहीं होती)...** दो बोल की बात हुई। पाँच विशेषण हैं।

(३) समस्त वस्तुओं के ज्ञेयाकारों को सर्वथा पी जाने से... आहाहा! **समस्त वस्तुओं के ज्ञेयाकारों को सर्वथा पी जाने से...** उसमें अत्यन्त रखा है न, यहाँ सर्वथा। सर्वथा शब्द लिया है। आहाहा! '**प्रसभं निपीतसमस्तवस्तुज्ञेयाकारं**' '**प्रसभं**' है संस्कृत में। **समस्त वस्तुओं के ज्ञेयाकारों को...** तीन काल-तीन लोक का जो ज्ञेयाकार है उसको **सर्वथा पी जाने से...** ज्ञेयाकार को पी जाने से? सब ज्ञेयाकार का ज्ञान हो गया ऐसा... पी जाने से का अर्थ क्या हुआ? मुख बड़ा है और (ज्ञेय) थोड़ा है। यह मुख बड़ा है उसमें। सब पी गया। जितने तीन काल-तीन लोक के पदार्थ हैं, अपनी एक समय की पर्याय में पी गया सब। समझ में आया? ऐसी-ऐसी अनन्त केवलज्ञान की पर्याय का नाथ तुम हो। ऐसी अनन्त पर्याय तेरे पेट में पड़ी है—तेरे गर्भ में पड़ी है ध्रुव में। इसकी अधिकता उसको भासे (नहीं)। समझ में आया? हम पैसेवाले हैं, हमारा लड़का होशियार है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : घर में अच्छा लड़का हुआ हीरा जैसा तो। तुमको तीस रुपये का वेतन नहीं होता और वह दस-दस हजार पैदा करे। मंजिल मंजिल कब होती है? तुम्हार समय में कहाँ मंजिलें थीं? मंजिलें हुई, पैसा हुआ, और वापस... समझे न?

किसे होता है परन्तु ? क्या हो ? कहते हैं। तुझे क्या हुआ ? तेरी पर्याय में क्या हुआ ? तेरी पर्याय—अवस्था में क्या हुआ ? वह मेरा है और मैं उसका हूँ, ऐसा अवस्था में हुआ, वह तो मिथ्यात्वभाव है। आहाहा! समझ में आया ? जादवजीभाई! क्या करना इसमें ? भारी कठिन। कहाँ गया तुम्हारा लड़का ? कहो, समझ में आया ? आहाहा!

समस्त वस्तुओं के ज्ञेयाकारों को... समस्त वस्तु में कोई बाकी रहता होगा ? कोई पर्याय, कोई अनन्त काल की, कोई पहले की, कोई आगे की, आगे-पीछे की (बाकी रहे) ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! अनन्त अर्थात् सर्व है। सुन न। यहाँ सर्व कहा, देखो न! ज्ञेयाकार ने यहाँ '**प्रसभं**' कहा। '**प्रसभं**' '**प्रसभं**' का अर्थ अत्यन्त कहो, पूरा कहो, पूरा कहो, सर्वथा कहो, सब कहो, उसमें क्या है ? आहाहा! अरे! वस्तु का स्वभाव उसका क्या कहना। काल भले एक समय का और क्षेत्र भले असंख्य प्रदेश में व्यापकर हो, असंख्य प्रदेश में व्यापकर एक समय का केवलज्ञान (प्रगट हुआ)। उसका भाव का सामर्थ्य कितना ? अनन्त ज्ञेयाकारों को पी गया है। समझ में आया ?

परम विविधता में व्याप्त होकर... देखो! पदार्थग्रहण... परम विविधता। **समस्त पदार्थसमूह जो कि अनन्त विविधतामय है।** विविध तो है, विविध आ गया पीछे। विचित्र और विविध आ गया है न। विचित्र में अनेक प्रकार और विविधता में यह चैतन्य, जड़ इत्यादि इत्यादि। विविधता। एक समय की पर्याय निगोद की और एक समय की पर्याय सिद्ध की, यह सब केवलज्ञानी जानते हैं। विविधता को जानते हैं सब। ओहोहो! अनन्त निगोद के जीव, आलू, शक्करकन्द (उसमें) अनन्त जीव। उसका द्रव्य को पूर्ण जानते हैं, उसके ज्ञान को पूर्ण जानते हैं, उसकी पर्याय को जानते हैं। समझ में आया ?

सवेरे प्रश्न आया था या नहीं ? सिद्ध की पर्याय को वन्दन करते हैं कि उसके द्रव्य-गुण को ? सबको वन्दन करते हैं। सबको जानते हैं तो सबको वन्दन करते हैं। लो। ऐई! द्रव्य परिपूर्ण, गुण परिपूर्ण, पर्याय परिपूर्ण परमात्मा सिद्ध भगवान—सबको

मेरा नमस्कार। समझ में आया? **'वंदित्तु सव्व सिद्धे'** आहाहा! गजब। अनन्त सिद्ध हुए, उससे भी अनन्त-अनन्त ऐसी सिद्धपर्याय प्रगट होगी अपनी और दूसरे की, सबकी पर्याय को एक समय में जाननेवाली दशा, ऐसी अनन्त दशा आत्मा में पड़ी है। आहाहा! क्या कहा, समझ में आया? अनन्त सिद्ध हुए अब तक, तो उसको भी एक समय की ज्ञान की पर्याय जानती है। और भविष्य में अनन्त पर्याय उसकी होगी और अपनी भी होगी, वह भी एक समय में जानता है। ऐसी-ऐसी एक समय की पर्याय, ऐसी अनन्त-अनन्त पर्याय तो ज्ञान में पड़ी है और ऐसा अनन्त गुण का (स्वामी) द्रव्य है। ओहोहो! भगवान का दरबार बड़ा है। समझ में आया कुछ?

यहाँ कहते हैं कि सर्व ज्ञेयाकारों को पी जाने से। ओहोहो! सर्व सिद्धों की, सर्व संसार की क्या कहा? सर्व संसार की पर्याय, सिद्ध की पर्याय, निगोद की पर्याय सबकी। ओहोहो! भगवान की एक समय की पर्याय सब पी गया। **परम विविधता में व्याप्त होकर रहने से... परम विविधता में व्याप्त होकर रहने से अनन्त पदार्थों में विस्तृत है,...** उस अपेक्षा से। अनन्त पदार्थ को जानते हैं, उस अपेक्षा से विस्तृत है। **इसलिए सर्व पदार्थों को जानने की इच्छा का अभाव है (और इस प्रकार किसी पदार्थ को जानने की इच्छा न होने से आकुलता नहीं होती)...** ऐसा केवलज्ञान आनन्दरूप हैं। मति-श्रुतज्ञान भी आनन्दरूप हैं, इच्छा की इच्छा नहीं है तो उस अपेक्षा से आनन्द है। यह तो इच्छा ही नहीं बिल्कुल। सर्वथा आनन्दरूप है, वही केवलज्ञान प्राप्त करने की, उपादेय करने की चीज़ है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल ९, बुधवार, दिनांक ३०-१०-१९६८
गाथा - ५९-६०, प्रवचन - ५१

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार। प्रवचनसार। क्या कहते हैं, देखो! प्रत्यक्ष ज्ञान को पारमार्थिक सुखरूप बतलाते हैं। आत्मा में जब केवलज्ञान होता है, केवलज्ञान आनन्दरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द उसमें है, ऐसा बताते हैं। पर में आनन्द नहीं आत्मा का, तीव्र कषाय में नहीं सुख, पुण्य के परिणाम में सुख नहीं, पुण्य से मिली ऋद्धि में सुख नहीं, मन से और इन्द्रिय से ज्ञान होता है, उसमें नहीं सुख। समझ में आया? सुख अपने आत्मा में है तो अतीन्द्रिय ज्ञान करके अन्तर में आनन्द का अनुभव होना, उस ज्ञान के साथ में आनन्द आता है, वह ज्ञान आनन्द का कारण है। यहाँ परिपूर्ण ज्ञान की बात है। परन्तु पहले से आत्मा, ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। तो उस आत्मा का अन्तरलक्ष्य करके अतीन्द्रिय निज स्वरूप है, तो अतीन्द्रिय का ज्ञान करके जो आनन्द आता है, वह ज्ञान आनन्द का कारण है। दूसरी कोई चीज़ आनन्द का कारण नहीं। समझ में आया? ज्ञानी अपने ज्ञान में आनन्द मानता है, धर्मी अपने ज्ञान में आनन्द मानता है।

अज्ञानी मानते हैं, मानते हैं तो क्या सुख है? अज्ञानी पैसे में, इज्जत में, कीर्ति में, शरीर, इन्द्रियों की विभूति। विभूति अर्थात् शोभा। इन्द्रियों की विभूति है न सब? पाँच इन्द्रिय रूपवान सुन्दर आकृति उस विभूति में सुख माने वह तो अज्ञान है। धूल में सुख है? समझ में आया? धर्मी की दृष्टि अपने चैतन्य आनन्द और ज्ञान के ऊपर होने से अतीन्द्रिय ज्ञान जो प्रगट हुआ, उसमें धर्मी आनन्द मानता है। समझ में आया? कहो, भगवानजीभाई! पैसे-बैसे में आनन्द तो नहीं, परन्तु मन और इन्द्रिय से ज्ञान हुआ, वह भी आनन्द नहीं, दुःख है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : दुःख है या नहीं? दुःख है तो दुःख है, (ऐसा) बताते हैं।

दु:ख है या नहीं? मनसुखभाई! इन्द्रिय और मन से ज्ञान होता है, वह दु:ख है। आहाहा! आकुलता है। सुख और शान्ति अथवा धर्म; धर्म कहो या सुख-शान्ति कहो, वह तो अपना आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने जैसा देखा, वैसा अतीन्द्रिय आत्मा का ज्ञान करने से और उसमें आनन्द आता है, वह धर्म, वह ज्ञान और सुख। वह सुखी। बाकी सब प्राणी दु:खी। बराबर है? भगवानजीभाई! दु:खी? यह सब पैसेवालों को—तुमको सुख कहते हैं लोग।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अब उसको ऐसा लगता है कि खोटा माना है। नहीं?

मुमुक्षु : सच्चा सुख था ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा सुख खोजने जाता ही नहीं तो, वहाँ हो तो। बात सच्ची। समझ में आया?

यहाँ तो भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा-केवलज्ञानी ऐसा फरमाते हैं वही सन्त फरमाते हैं कि यह आत्मा का आनन्द कहाँ है? कि आत्मा अपना निज स्वरूप शुद्ध आनन्द और ज्ञान है, उसकी अन्तर्मुख, अन्तर्मुख स्वभाव की अन्तर्मुख दृष्टि करके जो ज्ञान हुआ, उसमें आनन्द है। धर्मी को कषाय की मन्दता का परिणाम आता है, परन्तु उसमें आनन्द मानते नहीं। विषय की वासना का विकल्प होता है, उसमें सुख मानते नहीं। पैसे की सामग्री... ज्ञानी को चक्रवर्ती का राज होता है बाहर में, इन्द्र का पद होता है, धर्मी सम्यग्दृष्टि उसको सुख मानते नहीं। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं। परमार्थ सुखस्वरूप प्रत्यक्षज्ञान को सुखरूप कहते हैं। तीन बोल आ गये हैं, चौथा बोल है।

(४) सकल शक्ति को रोकनेवाला कर्मसामान्य (ज्ञान में से) निकल जाने से... चौथा है न? चार। **सकल शक्ति को रोकनेवाला कर्मसामान्य (ज्ञान में से) निकल जाने से (ज्ञान) अत्यन्त स्पष्ट प्रकाश के द्वारा...** अन्तर में ज्ञानस्वरूप भगवान अत्यन्त स्पष्ट प्रकाश होता है। **प्रकाशमान (-तेजस्वी) स्वभाव में व्याप्त होकर...** अपना निजस्वभाव पर्याय में प्रकाश में व्याप्त होकर **रहने से विमल है...** भगवान आत्मा

में से जो केवलज्ञान प्रगट हुआ, वह विमल है, मल है नहीं। **इसलिए सम्यक्रूप से (-बराबर) जानता है (और इस प्रकार संशयादि रहितता से जानने के कारण आकुलता नहीं होती)...** लो। समझ में आया? यह वास्तविक तत्त्व को जनाते हैं। ज्ञानतत्त्व बताते हैं न? कि आत्मा है, यह आत्मा है वस्तु, उसमें ज्ञानतत्त्व है ज्ञानभाव त्रिकाली। तो त्रिकाली ज्ञानभाव जो है, उसमें से पर्याय निर्मल जो स्वसम्यक्-ज्ञान-दर्शन सहित जो उत्पन्न हुई, वह पर्याय ज्ञान है और उस ज्ञान में आनन्द है। समझ में आया? दुनिया तो गहल-पागल है। पैसेवाले को सुखी मानती है। पैसेवाले सुखी हैं और धर्मी बाह्य में निर्धन हो, संयोग न हो, कुँवारा हो, बांझ हो और अपने स्वरूप की अन्तर दृष्टि का भान हो, फिर भी वह धर्मी सुखी है। समझ में आया? उसको दुनिया देखे नहीं (कि) अन्तर चीज़ क्या है।

भगवान सच्चिदानन्द प्रभु! सिद्ध समान परमेश्वर जो केवलज्ञानी तीर्थंकरदेव उसने जो आत्मा देखा, वह ज्ञान और आनन्दमय देखा है। ऐसा देखनेवाला आत्मा जो ज्ञान अन्दर में हुआ, वह ज्ञान और वह आनन्द है। कहो, समझ में आया? भाई! चार बेटे हो तो सुख है। दुनिया नहीं कहती? पहला सुख वह निरोगी शरीर। निरोग शरीर हो तो सुखी। मूढ़ है? निरोग शरीर तो जड़ है। उसमें तुझे क्या आया? समझ में आया? उल्टी गति है यहाँ तो।

एक जगह आता है न? दूसरी कोई गति नहीं। नहीं आता संस्कृत में? उसमें यह लगाया था। '**ध्रुवमचलमणोवमं गदिं पत्ते**' शब्द है न गति। दूसरी जगह आता है कहीं। ... कोई गति नहीं, ऐसा आता है। टीका में आता है न कहीं। गति अर्थात् कोई दूसरी स्थिति नहीं, दूसरी कोई पद्धति नहीं, ऐसा। यह आता है संस्कृत में कहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा सुख के लिये दूसरी कोई पद्धति और दूसरी कोई गति नहीं। धर्म हो या सुख हो, दोनों एक ही चीज़ है। धर्म होता है और आनन्द न आवे तो वह धर्म ही नहीं। आहाहा! समझ में आया?

तो कहते हैं कि केवलज्ञान को पाता है भगवान आत्मा, तब पहले तो उसको आत्मा का आनन्द और ज्ञान का अनुभव सम्यग्दर्शन में होता है। समझ में आया? मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द... अतीन्द्रिय आनन्द, हाँ! पर का आनन्द है नहीं, वह तो आनन्द है

नहीं, दुःख है। अतीन्द्रिय अतीन्द्रिय आनन्द प्रभु आत्मा नित्यानन्दस्वरूप है, ऐसा भगवान ने देखा है, ऐसा भगवान ने कहा है। ऐसा ज्ञानी अन्तर को देखते हैं। धर्मी कहो या ज्ञानी कहो। ज्ञानी कोई दूसरा होता है और धर्मी कोई नीचे होता है, ऐसी चीज़ नहीं है। ज्ञानी तो बहुत जाने, वह ज्ञानी कहलाये और धर्मी तो साधारण परन्तु धर्मी हो। ऐसा नहीं। दोनों समान हैं?

यहाँ तो कहते हैं कि भाई! यह आत्मा वस्तु है न, वस्तु है न अन्दर? पदार्थ। यह (शरीर) तो मिट्टी है। कर्म मिट्टी है, धूल है, वाणी आदि मिट्टी है। अन्दर पुण्य-पाप का भाव होता है, वह विकार दुःख है। उससे रहित जो आत्मा है, उसमें तो अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान सत्रूप शाश्वत् पड़ा है। उसकी अन्तर दृष्टि करके, स्पर्श करके ज्ञान और आनन्द पर्याय में प्रगट करे, उसको सुख होता है और उसको धर्म होता है। कठिन बात। और केवलज्ञान उसमें से हुआ, स्वरूप की दृष्टिपूर्वक और साम्यभाव समता, समता वीतरागता पर्याय प्रगट करके चारित्र—साम्य शुद्ध उपयोग, शुद्ध उपयोग के प्रताप से पीछे केवलज्ञान जब होता है, तो शुद्ध उपयोग में भी आनन्द है, और पूर्ण केवलज्ञान में अनन्त आनन्द है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन में थोड़ा आनन्द है, चारित्र में विशेष आनन्द है और उसका फल केवलज्ञान में अनन्त आनन्द है। कहो, समझ में आया कुछ? पाँच लाख हो तो थोड़ा सुख है, पच्चीस लाख हो तो ज्यादा सुख है, करोड़ हो तो ज्यादा सुख है, ऐसा आँकड़ा नहीं है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में भी नहीं। क्या है? करोड़ हो तो पाँच करोड़ हो, फिर भी अन्दर जलती है कषाय-अग्नि। ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... इच्छा... इच्छा... इच्छा... इच्छा... 'क्या इच्छत खोवत सबै, है इच्छा दुःख मूल।' इच्छा उत्पन्न होती है, वही दुःख है, आकुलता है। इच्छा रहित भगवान आत्मा शुद्ध चिदानन्द की दृष्टि करके जो आनन्द आता है, उसका नाम धर्म और आनन्द है। चारित्र जो स्वरूप की रमणता करते हैं, उसको बहुत आनन्द है। उसका नाम चारित्र कहते हैं। चारित्र क्या? क्रियाकाण्ड, केवल नग्नपना, वह चारित्र नहीं। स्वरूप जो दृष्टि में पहले आया था कि मैं तो ज्ञान और आनन्द हूँ, उसमें रमणता, चरना, रमना, जमना, भोजन करना। जमना

अर्थात् लीन होना और जमना अर्थात् आनन्द का अनुभव करना, उसका नाम चारित्र है। कहो, समझ में आया? जमना (अर्थात्) रोटी खाता है, वह जमना नहीं। वह तो दुःख खाता है। समझ में आया?

आत्मा आनन्दस्वरूप में लीन होना, दृष्टि पहले करके पश्चात् उसमें लीन-लीन होना वह चारित्र है। वह चारित्र अतीन्द्रिय आनन्दसहित है। उस चारित्र में दुःख है नहीं। समझ में आया? और उस चारित्र का फलरूप जो है, उस अतीन्द्रियज्ञान की बात चलती है। समझ में आया? यह चारित्र के फल की बात चलती है। कुन्दकुन्दाचार्य अपने निज स्वरूप की बात कहते हैं। दिगम्बर मुनि थे, जंगल में रहते थे। भगवान के ५०० वर्ष बाद हुए। अभी से दो हजार वर्ष पहले। आत्मा का अतीन्द्रिय आनन्द जो पहले अनुभव में आया, बाद में साम्य शुद्ध उपयोग ग्रहण किया चारित्र। शुद्ध उपयोग। दया, दान, व्रत, विकल्प, वह शुद्ध उपयोग नहीं; वह तो राग है, विकार है। ऐसा शुद्ध उपयोग अंगीकार करके कहते हैं कि हमारा शुद्ध उपयोग का फल केवलज्ञान है। वह केवलज्ञान अतीन्द्रिय आनन्दसहित है। समझ में आया?

सकल शक्ति को रोकनेवाला... (उसका) नाश हुआ है। **इसलिए सम्यक् प्रकार से जानता हुआ है (इस प्रकार) संशयादि रहितता से...** सुखरूप है। **आकुलता नहीं होती तथा (५) जिनने त्रिकाल का अपना स्वरूप युगपत् समर्पित किया है...** सामने लिया सब। ज्ञेय-ज्ञेय। भगवान आत्मा जो सर्वज्ञ परमेश्वर हुए, केवलज्ञानी परमात्मा अरिहन्त आदि, सिद्ध आदि, तो उसमें जो केवलज्ञान हुआ तो केवलज्ञान में अपने जानने की शक्ति तो पूर्ण है, परन्तु सब ज्ञेय जितना है न, ज्ञेय अनन्त, वह सब केवलज्ञान में ज्ञात होते हैं। वह प्रमेय सब अर्पण करते हैं, जैसा स्वरूप है, ऐसा सब जानने में आता है।

जिनने त्रिकाल का अपना स्वरूप युगपत् समर्पित किया है... देखो! एक-एक द्रव्य की त्रिकाल पर्याय और गुण आदि **(-एक ही समय बताया है) ऐसे लोकालोक में व्याप्त होकर रहने से अवग्रहादि रहित है...** भगवान का ज्ञान अवग्रह आदि नहीं, पहला थोड़ा पकड़े, पीछे विचार करे, फिर निर्णय करे, फिर धारे ऐसा है नहीं। लोकालोक एक समय में जानते हैं। तीन काल-तीन लोक सब ज्ञेय एक समय में जानने

में आता है। **क्रमशः होनेवाले पदार्थ ग्रहण के खेद का अभाव है।** (छद्मस्थ) तो एक के बाद एक ग्रहण करे तो खेद होता है। थोड़ा हो और पीछे नहीं जाने तो खेद होता है। भगवान को ऐसा है नहीं। पूरा देखने में आया, सारा तीन काल-तीन लोक एक समय में देखने में आता है।

इस प्रकार (उपरोक्त पाँच कारणों से) प्रत्यक्ष ज्ञान अनाकुल है। देखो! यहाँ सिद्ध किया। जिसको आनन्द चाहिए, उसको केवलज्ञान प्रगट करना। और केवलज्ञान चारित्र से प्रगट होता है और चारित्र, सम्यग्दर्शन-ज्ञान से होता है और सम्यग्दर्शन और ज्ञान आत्मा के आश्रय से होता है। समझ में आया? **इसलिए वास्तव में वह पारमार्थिक सुख है।** लो! है न अन्तिम में? वास्तव में तो भगवान आत्मा अपना निज ज्ञान चैतन्य प्रकाश सूर्य वह चैतन्य का सूर्य है और आनन्द की मूर्ति आत्मा है। अतीन्द्रिय आनन्द हाँ! अतीन्द्रिय रस आनन्द की अन्तर्मुख दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है और शुद्ध उपयोग करने से चारित्र होता है। और पश्चात् उसके फल में परमार्थ सुख का कारण ऐसा केवलज्ञान होता है। लो यह करना है। धर्मी को यह करना है, दूसरा करने से ज्ञान होता नहीं। कहो, समझ में आया?

भावार्थः-क्षायिकज्ञान-केवलज्ञान... क्षायिकज्ञान कहो या केवलज्ञान कहो। **एकान्त सुखस्वरूप है।** समझ में आया? अब थोड़ा विशेष लेते हैं। **अब, ऐसे अभिप्राय का खण्डन करते हैं कि केवलज्ञान को भी परिणाम के द्वारा खेद का संभव होने से...** थकावट, समता, दुःख। क्या कहते हैं थोड़ा? आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञानपूर्वक जो चारित्र हुआ और चारित्र के बाद जो केवलज्ञान हुआ, तो कहते हैं कि केवलज्ञान तो परिणाम है, पलटता है, बदलता है, परिणाम है, तो परिणाम में परिणमन से कोई खेद है कि नहीं उसको? कहाँ लेते हैं देखो! ओहो! कितनी स्पष्टता करते हैं! केवलज्ञान पर्याय है, केवलज्ञान गुण नहीं। गुण तो त्रिकाली ज्ञानगुण है आत्मा में। त्रिकाल ज्ञानगुण है। उसमें से सर्च लाईट पड़ती है न? ऐसे प्रगट हुआ केवलज्ञान। तो केवलज्ञान, वह पर्याय है। मनसुखभाई! पर्याय है, गुण नहीं। तो कहते हैं कि पर्याय है तो परिणमना है, परिणमना है तो परिणाम है तो खेद है या नहीं? परिणमना... परिणमना... परिणमना तो खेद है या नहीं? एकरूप रहना है नहीं। समझ में आया? वह परिणमन स्वयं ही

सुखरूप है। खेद कहाँ? वह तो आनन्दरूप परिणमन है उसका। परिणमन समझे? पर्याय में परिणमन होना। द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है। द्रव्य वस्तु और उसकी शक्ति त्रिकाल। पर्याय का परिणमन होना, वह दु:खरूप है? कि नहीं। वह परिणमना दु:खरूप नहीं, वह परिणमन तो सुखस्वरूप ही है। वह कहते हैं, देखो!

★ ★ ★

गाथा - ६०

ऐसे अभिप्राय का खण्डन करते हैं कि केवलज्ञान को भी परिणाम के द्वारा खेद का सम्भव होने से केवलज्ञान एकान्तिक सुख नहीं है :— उसको भी परिणमना पड़ता है, बदलना पड़ता है। हे नाथ! आप तो समय-समय में बदलते हो, हमारा तो असंख्य समय में उपयोग बदलता है। आता है कहीं, भजन में—भक्ति में आता है नहीं? कहीं आता है। आप तो समय-समय में बदलते हो और हम तो असंख्य समय में उपयोग बदलते हैं, आपकी अस्थिरता तो बहुत है। यह आता है कहीं। एक जगह आता है, स्तवन में आता है कहीं, स्तवन में आता है या कहीं। स्तवन मंजरी में कहीं आता है। लक्ष्य में हो, सब कुछ याद होता है? तुम तो समय-समय बदलते हो भगवान। मैं तो, असंख्य समय में मेरा उपयोग बदलता है। मेरा तो असंख्य समय में उपयोग बदलता है। आप तो समय-समय बदलते हो और हम बड़े हैं। हमारा तो असंख्य समय में बदलता है, हमारा उपयोग असंख्य समय में चलता है, आपका एक समय में चलता है। एक समय में चलता है, वही सुखरूप है। अपना निज स्वरूपरूप परिणमन है, उसमें क्या दु:ख है कुछ? समझ में आया?

यह क्या कहते हैं? भाई! थोड़ा जानना उसमें भी लोक के दस लोग हों, उसको जाने तो भी उपाधि है। तो ये तो लोकालोक को जाने और परिणमे। लोकालोक को जाने और परिणमन करे तो खेद नहीं? भगवान! लोकालोक को जानना और परिणमना, वह तो पर्याय का स्वभाव है। वह तो स्वाभाविक वस्तु है, वह कोई दु:खरूप नहीं। यह ६० में कहते हैं।

जं केवलं ति णाणं तं सोक्खं परिणमं च सो चेव।
खेदो तस्स ण भणिदो जम्हा घादी खयं जादा॥६०॥

यह तो हिन्दी है न हिन्दी? हिन्दी में यह नीचे है। कितने कहा? ६०।

'केवल' संज्ञावाला ज्ञान, वही सुख और वही परिणाम।
घातिकर्म के क्षय से उसमें, 'खेद नहीं' कहते भगवान॥६०॥

विनष्ट छे। यह तो गुजराती है। क्या कहते हैं? ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्य ने केवलज्ञान को पहले ज्ञान में भी वर्णन किया, सुख का अधिकार लिया, उसमें भी केवलज्ञान का वर्णन स्पष्ट करते हैं। ऐसा कहने पर तेरी केवलज्ञान की पर्याय वह तेरा शृंगार, वह तेरी विभूति और वह तेरी शोभा है। समझ में आया? भगवान की—इस आत्मा की पूर्ण केवलज्ञान की एक समय की पर्याय वह तेरी शोभा, वह तेरी विभूति, वह तेरी लक्ष्मी और वह तेरा सर्वस्व सुख है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लोग तो बाहर में मिथ्या प्रयास करते हैं विचारा चारे कोर। देखो न, यहाँ से छोड़कर मुम्बई और मुम्बई से छोड़कर मोची... मोची और मुम्बासा... कहाँ के कहाँ भटकते हैं। अमेरिका भी जाते हैं न। उनका पुत्र गया था न भटकने। मोची, मोची यह तो गाँव है। मोची न? मोची। मोची गाँव है। वह मोची के तो कितना धन्धा करते हैं। कितने चमड़े का धन्धा करे। आहाहा! मुम्बई में भी कितने ऐसा धन्धा करते हैं। गोरा आदि लेने आवे न, तो माँस के डिब्बे हों डिब्बे। सभी चीज में थोड़ा माँस न हो तो ले नहीं। अंक लिखा हो २५-३० चीज़, तो वह भी है या नहीं? वह नहीं है। तो न ले। वह हो तो ले। बनिये भी कितने ही रखते थे व्यापार में वह माँस का डिब्बा। समझ में आया? भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : नहीं करने का करते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करने का करते थे। हमने सब सुना है। क्योंकि वह ३० चीज़ लेकर आये उसमें से एक-दो चीज़ माँस के डिब्बे या मछली का न हो तो, हमें कहाँ जाना? लाओ भाई! समझ में आया? ऐसा आवे। अळसिया को क्या कहते हैं? ... बादशाही। ये अळसिया होता है न, अळसिया। छोटा नहीं बारिश में। क्या कहते हैं उसको? उसमें से वीर्यवर्धक औषधि होती है। तो वह भी एक दवा है। वह दवा यदि

कहीं मिलती हो तो दूसरी चीज ले, अन्यथा न ले। उस कारण से एक बनिया कहता था कि हमें रखना पड़ता था। अरे! ऐसा धन्धा पाप का। समझ में आया? दुनिया मरती है बाहर में पैसा कैसे मिले। दुःख है, केवल दुःख है। समझ में आया? सुख तो तेरे आत्मा में है। और सुख है वहाँ उसकी प्रतीति नहीं, विश्वास नहीं। क्योंकि अव्यक्तपना है आत्मा अन्दर, पर्याय व्यक्त है। उसके साथ सारी चीज़ अन्दर है। परन्तु दिशा बाहर है पर्याय की। अन्दर तो जाता नहीं। तो अन्दर क्या चीज़ है, वस्तु क्या है, (उसकी) खबर नहीं। आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द और पूर्ण ज्ञान, आनन्द आदि भरा है अन्दर में। समझ में आया? उसका आश्रय लेने से जो कुछ केवलज्ञान हुआ, वह सुखरूप परिणमन है, दुःखरूप है नहीं। वह बताते हैं देखो!

अन्वयार्थ :- जो 'केवल' नाम का ज्ञान है... पर्याय केवलज्ञान है न? देखो! **'केवलं इति ज्ञानं' 'केवल' नाम का ज्ञान...** ऐसा लिखा, देखो! इति का अर्थ। **'तत् सौख्यं' वह सुख है...** ओहो! पूर्ण आनन्द, पूर्ण आनन्द। जहाँ जानने की कमी रही नहीं और जानने की चीज़ कोई बाकी रही नहीं, सब भगवान आत्मा एक समय में पूर्ण जाने, वह ज्ञान सुखरूप है। समझ में आया? वह **परिणाम भी वही है...** ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं? केवलज्ञान का ज्ञान, वह सुख है और वही परिणाम है, ऐसा। परिणाम वही है। दूसरा परिणाम कोई है नहीं। पलटना वह ज्ञान, वही सुख है और सुख, वही परिणमन है। समझ में आया? जो केवलज्ञान है, वही सुख है और सुख है, वही परिणाम है। सुख तो परिणाम है, पर्याय है, परिणाम है। दूसरा कोई परिणाम है और खेद है, ऐसा कोई नहीं।

उसे खेद नहीं कहा है (अर्थात् केवलज्ञान में सर्वज्ञदेव ने खेद नहीं कहा है)... देखो! केवलज्ञान में सर्वज्ञदेव ने खेद नहीं कहा। परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा जिसने एक समय में तीन काल जाना, उसने केवलज्ञान में खेद कहा नहीं। किस कारण? कि सुखरूप उसका परिणमन है, उस कारण से। **क्योंकि घातिकर्म क्षय को प्राप्त हुआ है।** ऐसा कहते हैं। घातिकर्म है ज्ञानावरणीय आदि, वह तो नाश हुआ है। विघ्न करने में कोई निमित्त है नहीं।

टीका :- यहाँ (केवलज्ञान के सम्बन्ध में), खेद क्या,... समझ में आया?

व्यापार करते हैं, करते-करते थक जाये, लो! थोड़ा समय बैठे तो थक जाये, कितनी सिरपच्ची सवेरे से शाम। भले पाँच सौ-हजार रुपये, पाँच-पाँच हजार मिल जाये किसी समय एक दिन में, परन्तु खेद हो, थकान और थोह हो जाये अन्दर। आहाहा! अब सोने दो कहे। लो। दुःख, कमाने में दुःख, फिर दुःख। सोने में भी दुःख है। प्रमाद है न वह राग है। यह तो परमात्मा अपनी चीज़ में... परम आत्मा अर्थात् परम स्वरूप जो आत्मा उसकी अन्तर दृष्टि करने से जो परिणमन हुआ, वह सुखरूप परिणमन है। वह सुखरूप परिणमन है, वह स्वभाव है। स्वभाव में खेद कहाँ? घातिकर्म का तो निमित्त का तो अभाव हो गया है। सर्व पर्याय पूर्ण प्रगट हो गयी है। परिणाम क्या? ऐसा कहते हैं। खेद क्या और परिणाम क्या? और दूसरा परिणाम क्या? ऐसा कहते हैं। वही परिणाम है।

(३) केवलज्ञान और सुख का व्यतिरेक (-भेद) क्या,... ऐसे। केवलज्ञान और सुख में जुदाई क्या? केवलज्ञान का एक समय का परिणाम उसमें और सुख में जुदाई क्या? **कि जिससे केवलज्ञान को एकान्तिक सुखत्व न हो?** ओहोहो! कितना केवलज्ञान! एकान्त सुख! अनेकान्त नहीं रहता है उसमें। केवलज्ञान में पूर्ण सुख—एकान्त सुख। समझ में आया? एकान्त का अर्थ क्या है या नहीं कहीं? पहले ऐसे आ गया था, नहीं? परिपूर्ण, हाँ, बस यह आ गया है पहले, पहले आ गया है। एकान्तिक किया है देखो, सामने है। **परिपूर्ण; अन्तिम, अकेला; सर्वथा।** है, यह गाथा है।

यहाँ क्या कहते हैं? भगवान! तेरा आनन्द और ज्ञान तेरे घर में पड़ा है। तुम बाहर शोधने जाते हो, वह तेरा भ्रम है। समझ में आया? तेरे आत्मा में आनन्द और सुख पड़ा है। आहाहा! तेरी कीमत तुझे होती नहीं। समझ में आया? तेरी चीज़ ही ऐसी है कि जो शरीर आदि से रहित और आनन्द ज्ञान से सहित है। समझ में आया? तेरी चीज़ ही यह है, ऐसा कहते हैं। तुम यह हो। शरीरादि राग से रहित और ज्ञान और आनन्द सहित तुम ही ऐसे हो। खबर नहीं। आहाहा! वह कहते हैं, देखो!

(१) खेद के आयतन (-स्थान) घातिकर्म हैं,... क्या कहते हैं? दुःख का निमित्त घातिकर्म है। घातिकर्म है न? ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय। **केवल परिणाममात्र नहीं।** केवल बदलनेमात्र नहीं। बदलनेमात्र नहीं। घातिकर्म का निमित्त हो तो दुःख है। बदलना, परिणाम होना, वह दुःख है नहीं। आहाहा! एक नहीं

कहते ? वह देरिया। पर्याय तो वहाँ भी चिपकी अभी ? बेचारे को खबर नहीं। जैन में जन्मा। पर्याय क्या चीज़ है ? पर्याय तो अपना स्वरूप है। जैसा द्रव्य-गुण त्रिकाली स्वरूप है, ऐसा पर्याय वर्तमान स्वरूप है। पर्याय सिद्ध में भी... क्या कहा ? पीछा नहीं छोड़ती ? पर्याय सिद्ध में भी पीछा नहीं छोड़ती ? परन्तु पर्याय तो अपना स्वभाव है। आहाहा! ऐसे के ऐसे। जैन में जन्मे हों, उसे अभी तत्त्व के नाम की खबर न मिले, उसे धर्म कहाँ से हो ? फिर सामायिक करके, प्रोषध करके बैठे, और धर्म की श्रद्धा का भान न मिले। समझ में आया ?

कहते हैं कि खेद का—दुःख का स्थान तो घातिकर्म है। उसमें से यह ले, देखो! दुःख का कारण घातिकर्म है, भाई! स्पष्ट (लिखा है)। वह तो ऐसा कहते हैं कि दुःख होता है, तब घातिकर्म का निमित्त है। वह निमित्त तो है नहीं। यहाँ दुःख है नहीं और निमित्त भी है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : घातिकर्म ही परिणाम करते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो भाषा तो निमित्त से ज्ञानप्रधान कथन है।

घातिकर्म महा मोह के उत्पादक होने से धतूरे की भाँति... लो ठीक! **घातिकर्म महा मोह के उत्पादक होने से...** ठीक! निमित्त से बात आयी। घाति निमित्त है। मिथ्यात्वभाव होता है, क्या मिथ्यात्वभाव ? कि पर में सुख है, पुण्यभाव में सुख है, पापभाव में मजा है, अनुकूल चीज़ में मुझे ठीक होता है, प्रतिकूल चीज़ में मुझे ठीक नहीं होता है, ऐसा मिथ्यादृष्टि का मिथ्यात्वभाव। उसमें घातिकर्म, नोकर्म निमित्त हैं। समझ में आया ? **घातिकर्म महा मोह के उत्पादक...** महामोह यहाँ मिथ्यात्व का लिया है। **धतूरे की भाँति...** धतूरा पीया हो न, तो सब चीज़ पीली दिखे। सफेद भी पीली दिखे। दृष्टि में अन्तर है न ? होता है न रोग, क्या कहते हैं ? पीलिया पीलिया। पीलिया रोग होता है न पीलिया नहीं ? सफेद भी पीला दिखे। पदार्थ पीला नहीं है, यह तो उसकी दृष्टि में ऐसा है। उसी प्रकार अज्ञानी को मिथ्यात्वभाव से जिसमें सुख नहीं उसमें सुख भासित होता है। जिसमें अपनापना नहीं उसमें अपनापना मानते हैं। जिसमें ज्ञान होता नहीं उसमें ज्ञान का कारण मानते हैं; जिसमें सुख नहीं, उसमें सुख का कारण मानते हैं।

धतूरे की भाँति अतत् में तत् बुद्धि धारण करवाकर... लो! **वस्तु जिस स्वरूप**

नहीं होती उसस्वरूप होने की मान्यता; जैसे कि—जड़ में चेतनबुद्धि (अर्थात् जड़ में चेतन की मान्यता) दुःख में सुखबुद्धि वगैरह। क्या कहते हैं? कि घातिकर्म का निमित्त हो तो वहाँ महामोह उत्पन्न होता है। वह महामोह मिथ्यात्व है। तो महामिथ्यात्व क्या मनाता है? जो सुख नहीं वहाँ सुख मानता है। अतत् में तत्बुद्धि। अतत्—नहीं है ऐसे तत् उसमें बुद्धि। दुःख में सुखबुद्धि। कहो, समझ में आया? शरीर में निरोगता ठीक है। वह अतत् में सुख (माना)। उसमें सुख है? ठीक कहाँ से आया? वह तो जड़ है, मिट्टी है। समझ में आया? अनुकूलता बाहर की हो...

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कर्म निमित्त है न। ज्ञानप्रधान कथन है न। करता है महामोह वह, तब निमित्त कर्म मोह है। महामोह नहीं तो निमित्त हट गया। भगवान को निमित्त है नहीं। सम्यग्दृष्टि को भी जितना अनुभव हुआ आत्मा का, इतना मोह का नाश हुआ। तो पर में सुख धर्मी मानते नहीं। चक्रवर्ती के राज में पड़ा हो, इन्द्र के पद में पड़ा हो समकिती। फिर भी वह पर में सुख मानता नहीं। समझ में आया? महामोह जिसका नाश हुआ है।

घातिकर्म महामोह के उत्पादक होने से धतूरे की भाँति अतत् में तत् बुद्धि धारण करवाकर आत्मा को ज्ञेयपदार्थ के प्रति परिणमन कराते हैं;... लो! भाषा देखो! आत्मा को ज्ञेयपदार्थ के प्रति, परपदार्थ के प्रति परिणमन कराते हैं। परपदार्थ में नहीं परन्तु परपदार्थ ठीक-अठीक है, ऐसी बुद्धि करते हैं तो उसमें घातिकर्म निमित्त कहने में आता है। समझ में आया? पद-पद में तकरार ले, नहीं समझे यह। आहाहा! 'अपने को आप भूलके हैरान हो गया।' दूसरा कोई हैरान करनेवाला नहीं। तू तेरे को भला और तू तेरे को दुःखी करता है, दूसरा कोई करनेवाला है नहीं। दूसरे के दोष निकालने की आदत हो गई है उसकी अनादि से। दूसरे के दोष निकालते हैं, क्या करे भैया! कर्म का ऐसा हमारे उदय है, ऐसा लड़का, ऐसा... समझ में आया?

लो, एक व्यक्ति अपने आया था। अरे... महाराज! चारों ओर दुःख है। दुःख किसका? प्रतिकूलता का। समझ में आाय? गुप्त-गुप्त बात करता हूँ। बाहर में ठीक कहलाये। पैसावाला कहलाये, बाहर ठीक कहलाये परन्तु अन्दर में... वह स्त्री है उसे

पक्षघात हुआ है, स्त्री को। और उसकी प्रकृति ऐसी है कि घर में कुछ ठीक न हो तो कहा ही करे, वह... पानी कैसे इकट्ठा नहीं किया? फलाना नहीं किया। अब स्त्री को सुहाये नहीं। मुफ्त की बैठी हो। स्त्री ऐसी है। अरे! परन्तु उसमें तुझे क्या अवरोधक है उसमें? स्त्री ऐसी। लड़का पैसा—वेतन लाता है अच्छा। परन्तु माँ-बाप को तोछडाई करे। लड़के की बहू ऐसी है कि हमें घर में दो घण्टे बैठना हो तो मुँह बन्द करके बैठना। बोले तो तोडी नाखे अेवी। वह बेचारा एकान्त में कहा था। उसका नाम नहीं देते। समझ में आया? स्त्री ऐसी, पुत्र ऐसा, बहू ऐसी, पुत्र का एक पुत्र है चार वर्ष का। वह उसे पहले से रोग होता है यहाँ। हालता-चालता पेशाब और हालता-चालता दिशा (दस्त) हो जाये। ठीक! एक लड़की है तो ऐसा स्वभाव है कि पति उसे छोड़कर परदेश में अमेरिका चला गया। लड़की हमारे वहाँ वापस आयी। सब सरखाई है। ऐई! मोहनभाई! आहा!

कहा, भाई! यह तो प्रतिकूल संयोग है। यह तो तेरी मान्यता के आधार से है। प्रतिकूल क्या है? वह तो जानने की चीज़ है। लोग ऐसा माने कि आहाहा! स्त्री ऐसी, पुत्र ऐसा, पुत्र की बहू ऐसी, पुत्र का पुत्र ऐसा, पुत्री ऐसी। सब समान। पुत्री को पति छोड़कर चला गया, हमें पालना पड़ता है और प्रकृति ऐसी है कठोर। नरम व्यक्ति है। स्वयं नरम व्यक्ति है। स्वयं को नौकरी करके वापस कमाना। समझ में आया? एकान्त में लोग बातें करे अन्दर। इसलिए आता हूँ यहाँ वर्ष में, दो वर्ष में जरा शान्ति लेने। बाकी कहीं (सुख) नहीं। यहाँ सुने तब जरा शान्ति होती है। बाहर का होनेवाला हो वह होगा, अब छोड़ न। भगवानजीभाई! बाहर में दिखता है कि यह सुखी, और अन्दर में हो दाह। हीनाधिक लो, ठीक। आहाहा! बात सच्ची है। किंचित् फेरफार थोड़ा-बहुत हो, परन्तु सब पराधीन वस्तु है। पराधीन में स्वप्न में सुख नहीं। माने, अनुकूल स्त्री हो या पुत्र हो, वह सुख है? वे दुःख के निमित्त हैं। इनका पुत्र कैसा, देखो न! वह लड़का आठ हजार वेतन लावे। रोटियाँ घर की (खाने को मिले नहीं)। हलवाई की बाई के हाथ की रोटियाँ खाये। क्या तब परन्तु विवाह करके किया क्या उसमें? सुखी दिखता है? पराधीन है। यहाँ हो तो भी क्या और न हो तो भी पर के कारण से क्या है? मानता है अज्ञानी। धर्मी नहीं मानता। आहाहा! चाहे तो सातवें नरक का प्रतिकूल संयोग हो। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन है, आत्मा का भान है, सुखी है। प्रतिकूल है उसमें कोई दुःख नहीं है। हमारी कमजोरी से जरा कषाय आता है, वह दुःख है, वह तो हमारी कमजोरी है। प्रतिकूल (संयोग) से हमको दुःख है, ऐसा समकिती मानते नहीं।

सातवाँ नरक, रव-रव नरक। अहाहा! यह दुःख की व्याख्या भगवान करे, सुनकर कायर भाग जाये, उसका कलेजा (फट जाये)। इतना दुःख, इतना दुःख। आहाहा! अनन्त बार गया है। अनन्त बार उसमें गया है। परन्तु वहाँ जाने के बाद किसी को समकित हो गया, तो प्रतिकूलता मानते नहीं। वह है। मेरा ज्ञान का ज्ञेय है। मैं तो आनन्द हूँ। ऐसी प्रतिकूलता, जहाँ एक दाना खाने को नहीं मिले, पानी का बूँद नहीं, सोने के लिये गद्दा नहीं, रहने का घर नहीं, ओढ़ने का कपड़ा नहीं, कुछ नहीं और जन्म से सोलह रोग। ऐसी शरीर की दशा। परन्तु अन्दर में सम्यग्दर्शन से अहो! मैं तो पर से भिन्न हूँ। मेरे में राग भी नहीं। मेरे में तो आनन्द है। मैं तो आनन्दस्वरूपी हूँ। मेरा आनन्द कोई बाहर में है नहीं। ऐसी अन्तर दृष्टि करने से सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में भी अपने को सुखी मानते हैं। कहो, समझ में आया? ऐसा मानता है और सुखी है। अज्ञानी उसको देख सके नहीं। अरे! और उसकी दया करे।

मुनि होते हैं न। देखो! बेचारे को बाघ खाता है। अरे! तुझे भान नहीं। किसकी दया खाता है तू? अन्दर में आनन्द है उसको। आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करता है। समझ में आया? सन्त साधु होता है, सच्चे साधु होते हैं, वह तो आनन्द का अनुभव करते हैं। सत् साधु। अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव उभरा... उभरा समझे? उभरा क्या कहते हैं? उफान-उफान आता है। लोग ऐसा देखें, अरे! देखो न बेचारा गजसुकुमार। अग्नि। उसकी माँ, वह सियालिनी होकर खाती है। तुझे भान नहीं। तेरी दृष्टि में देखने को तेरा चश्मा उल्टा है। वह तो अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद लेते हैं। अतीन्द्रिय आनन्द को चूते हैं। समझ में आया? दुःख किंचित् नहीं। अन्तर भगवान आत्मा अतीन्द्रिय... वह है न आपकी कुल्फी। कुल्फी नहीं आती? चूसते हैं न लड़के, चूसता ऐसे एकाकार हो जाये। माखी आवी जाय तो ई पण आवी जाय भेगी। मिठास के कारण इतनी लीनता। सामुं न जोवे, उसके स्वाद में आँख... मिठास खाने में मक्खी आ

जाये सूक्ष्म, तो ऐसे-ऐसे हो जाये इकट्ठी। आँख देखे कि यह... स्वाद में लक्ष्य है, वहाँ देखे कहाँ उसे ? ऐसे भगवान आत्मा अन्तर्मुख दृष्टि करने से धर्म जहाँ हुआ, सम्यग्दर्शन-ज्ञान हुआ तो आनन्द का अनुभव करते हैं धर्मी। उस आनन्द को चूसते हैं, उसका नाम धर्म है। धर्म कोई क्रियाकाण्ड या बाहर की चीज में धर्म है नहीं। समझ में आया ?

तो कहते हैं, **आत्मा को ज्ञेयपदार्थ के प्रति परिणमन कराते हैं;...** कराते हैं। भाषा देखी ? 'कराते हैं' आता है न। स्वयं करता है तो कराते हैं ऐसा कहते हैं। यह आता है न, गोम्मटसार में नहीं पहले उपोद्घात में ? गोम्मटसार में पहले उपोद्घात में आता है, कर्म कराते हैं, कराते हैं ऐसा शब्द आता है। कराते हैं। पहला शब्द शुरुआत में आता है। टोडरमलजी ने लिया है। समझ में आया ? वह तो कथन की पद्धति है। अपने स्वरूप को भूलकर अज्ञानी महामिथ्यात्व के कारण दुःखी है तो उस दुःख में निमित्त कौन है ?—कि घातिकर्म है बस इतना। वह घातिकर्म जड़ है, वह आत्मा को दुःख कराते हैं, ऐसा है नहीं।

इसलिए वे घातिकर्म, प्रत्येक पदार्थ के प्रति परिणमित हो-होकर थकनेवाले आत्मा के लिये खेद के कारण होते हैं। एक पदार्थ को जाने, फिर उसको छोड़कर दूसरे को जाने, दूसरे को छोड़कर तीसरे को जाने... खेद... खेद... खेद... है अन्दर में। समझ में आया ? सर्वज्ञ भगवान को ये है नहीं। पूर्ण ज्ञान जहाँ हुआ, खेद है नहीं। एक पदार्थ को जानना, (फिर) दूसरे को जानना ऐसी जानने की इच्छा रहे तो खेद है। जानने का तो पूर्ण हो गया। पूर्ण ज्ञान में कोई खेद है नहीं, आनन्द है। **उनका (घातिकर्मों का) अभाव होने से केवलज्ञान में खेद कहाँ से प्रगट होगा ?** परमात्मा ऐसा कहे, अरे! पच्चीस लोगों का ज्ञान करता है, घर में रहता है तो दुःख है, तो तीन काल-तीन लोक को जाने तो कितना दुःख होगा ? तुझे हिसाब करना नहीं आता। वह तो ज्ञान तो अपनी पर्याय का स्वभाव है। पूर्ण जाने... पूर्ण जाने... पूर्ण जाना तो जानने की इच्छा रही नहीं तो दुःख है नहीं, सुखी है। परमात्मा सर्वज्ञ परमेश्वर सुखी है। अरिहन्तदेव पूर्ण केवलज्ञान में सुखी है। समझ में आया ?

देखो, साधु को कितना दुःखी मानते हैं। वे बेचारे देखो न! नंगे पैर चलना, अन्न-पानी (नहीं)। वे कहते थे तुम्हारे नहीं ? अमृतलाल गोण्डलवाले। क्या कहलाये ?

कोठारी न? मगजफेर था। महिला अच्छी हो, ... बेचारी महिला। ऐ... इसको बेचारे को देना देना कुछ। ऐसा कहते थे। अरे... भगवान! मुझे खबर नहीं। फिर महिला ने कहा, महाराज! मस्तिष्क अस्थिर है। महिला होशियार थी। महाराज! इसका मस्तिष्क अस्थिर है। ... ऐसा कोई भी साधु आवे तो कहे, उसे बेचारे को देना, देना कुछ। मस्तिष्क अस्थिर। और यह साधु भी कितनी भिक्षा के लिए नग्न मुनि निकले तो कहे, आहाहा! क्यों दु:खी! वस्त्र नहीं, पात्र नहीं, आहार नहीं, मकान नहीं। अरे.. भगवान! ऐसे तू न देख। आहाहा! मुनि धर्मात्मा तो उसको कहते हैं, अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द को चूसते है। चलते-चलते भी अतीन्द्रिय आनन्द आता है। आहाहा! चारित्र किसको कहना? वे लोग मानते हैं, वह चारित्र नहीं, हाँ! दुनिया तो अज्ञानी है अचारित्र को चारित्र मानते हैं। अन्तर स्वरूप में आनन्द का अनुभव होकर लीन होना, अतीन्द्रिय आनन्द में जम जाना, उसका नाम चारित्र परमात्मा कहते हैं। यह चारित्र आनन्दरूप है। क्लेशमरूप माने। आता है न? छहढाला में नहीं? छहढाला में। वैराग्य और ज्ञान। वह छहढाला में आता है, छहढाला है न! संवर में भूल। संवर में तो आनन्द है। तो ये तो कहे वैराग्य और ज्ञान करना। आहाहा! समझ में आया?

एक महिला कहती थी। दीक्षा लेने को... अरे! यह दीक्षा ली फिर उसे कुछ न मिले, इसलिए अभी अपने अच्छा-अच्छा करके खिलाओ। ऐसे और ऐसे, भानरहित। अभी दीक्षा किसे कहना उसकी तुझे खबर नहीं। दीक्षा वस्त्र बदलकर बैठे वह दीक्षा है? दीक्षा तो भगवान आत्मा अन्तर्मुख में अपना अनुभव किया आनन्द का ज्ञान में, बाद में स्वरूप में रमणता करने को दीक्षा होती है, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? वह सुखी है। समझे न? वृद्ध व्यक्ति हो न, उसे ऐसे हो जाये कि फिर खाने को मिलेगा नहीं। यह मैसूर और सर्दी का समय हतुं ने। यह कहा न। ऐसा था। अमारा बापनी मा हता नवा। डोशी बेचारी वृद्ध। वहाँ थोड़े दिन रहे थे न। अरे! कानजी दीक्षा लेने के बाद यह कहाँ मिलेगा? इसलिए मोहनथाल बनाया। बेचारी को कुछ खबर नहीं होती। वृद्ध थीं, हमारे पिता की नयी मां, नयी मां थीं। बेचारी भोली। कुछ खबर नहीं होती। अरे! पालेज हो तब तो सब साधन हो, अब यहाँ हम साधारण घर में। हम यहाँ तीन जन वृद्ध। अब उसे दीक्षा लेनी और यहाँ रहे इसलिए कुछ कर रखो। ऐसे के ऐसे बेचारे।

ऐ... भगवानजीभाई! आहाहा! कुछ खबर नहीं होती (कि) क्या चीज़ है। समझ में आया?

आत्मा अपना स्वरूप साधन करे उसमें दुःख है या सुख है? सुख है। परन्तु लोगों की मान्यता दुःख है। आहाहा! देखो बेचारे कितने दुःखी हैं! आहाहा! सिर पर अग्नि। अग्नि नहीं, शीतलता है अन्दर। समझ में आया? शीतलता में प्रवेश किया है। देखो सुकुमाल मुनि! शीतल कुण्ड में फब्बारे में पड़े हैं अन्दर आनन्द... आनन्द... आनन्द... उसका नाम चारित्र है और उसका फल केवलज्ञान है। दुःख का फल केवलज्ञान है? दुःख सहन करना, भाई बहुत दुःख सहन करना फिर केवलज्ञान होगा उसमें से। दुःख का फल केवलज्ञान है? दुःख तो आर्तध्यान है। लोगों को कुछ खबर नहीं। तत्त्व की क्या चीज़ है, जीव क्या? संवर क्या? आस्रव क्या? दुःख क्या? सुख क्या? अजीव क्या? अन्धे अन्धा। लोक में होशियारी करे दुनिया में, यहाँ धर्म के नाम पर कुछ भान नहीं। जादवजीभाई! आहाहा!

खेद कहाँ से प्रगट होगा? (२) और तीन काल रूप तीन भेद जिसमें किये जाते हैं, ऐसे समस्त पदार्थों की ज्ञेयाकाररूप (विविधता को प्रकाशित करने का स्थानभूत केवलज्ञान, चित्रित् दीवार की भाँति, स्वयं)... देखो! तीन काल-तीन लोक की पर्याय है, वह सब ज्ञान में आ गयी है। कोई बाकी नहीं रहा। समझ में आया? **केवलज्ञान, चित्रित दीवार की भाँति, स्वयं) ही अनन्तस्वरूप स्वयमेव परिणमित होने से...** एक समय में अनन्त स्वरूप केवलज्ञान स्वयमेव परिणमित होता है। **इसलिए केवलज्ञान ही परिणाम है।** ऐसा। थोड़ा परिणाम, फिर विशेष परिणाम, ऐसा है नहीं। एक साथ अनन्त परिणाम को जानता है केवलज्ञान।

केवलज्ञान ही परिणाम है। इसलिए अन्य परिणाम कहाँ हैं... देखो! दूसरा परिणाम कहाँ है? बदलना कहाँ है कि पहले इतना जाना, बाद में विशेष जाने। अनन्त परिणाम, अनन्त पदार्थ को एक साथ जानने में आता है। ऐसा केवलज्ञान **परिणाम कहाँ है कि जिनसे खेद की उत्पत्ति हो?** भगावन के केवलज्ञान में खेद है नहीं। **(३) और, केवलज्ञान समस्त स्वभावप्रतिघात के अभाव के कारण...** लो! विघ्न, रुकावट, हनन, घात। भगवान के ज्ञान में **स्वभावप्रतिघात के अभाव के कारण निरंकुश अनन्त शक्ति**

के उल्लसित होने से... भगवान का केवलज्ञान तो एक समय में उल्लसित होने से। देखो! प्रगट होने से **समस्त त्रैकालिक लोकालोक के-आकार में व्याप्त होकर कूटस्थतया अत्यन्त निष्कम्प है,...** कूटस्थ हो गया केवलज्ञान। कूटस्थ अर्थात् वही जितना जानना, अनन्त ज्ञेय को जानना इतना जानना रहा। पहले थोड़ा जानना पश्चात् विशेष जानना ऐसा है नहीं। कूटस्थ अर्थात् है तो परिणमन हाँ, परन्तु सदृश एक जाति का परिणमन है तो उसको कूटस्थ (कहने में आया)। नीचे लिखा है न? नीचे लिखा है देखो! **सदा एकरूप रहनेवाला; अचल (केवलज्ञान सर्वथा अपरिणामी नहीं है, किन्तु वह एक ज्ञेय से दूसरे ज्ञेय के प्रति नहीं बदलता—सर्वथा तीनों काल के समस्त ज्ञेयाकारों को जानता रहता है, इसलिए उसे कूटस्थ कहते हैं)** केवलज्ञान है तो पर्याय, अवस्था, परिणाम। परन्तु कूटस्थ कहने में आया। एकरूप दशा हो गयी आत्मा की। ओहो! जैसा स्वभाव था ऐसा पर्याय में प्रगट हो गया। ऐसा आत्मा का सामर्थ्य है। ऐसा आत्मा कर सकता है। वह अपने स्वभाव का आश्रय करे तो सुख है, आनन्द है। उसका धर्म पूर्ण प्रगट हो गया। कहो, समझ में आया?

इसलिए आत्मा से अभिन्न ऐसा सुख-लक्षणभूत अनाकुलता को धारण करता हुआ... आत्मा से एकरूप सुख-अभिन्न सुख लक्षणभूत अनाकुलता। **केवलज्ञान ही सुख है,...** केवलज्ञान ही सुख है। समझ में आया? केवलज्ञान ही सुख है। ज्ञान तो ज्ञान है। साथ में सुख है तो केवलज्ञान सुख है, ऐसा कहा। ज्ञान है, वह तो ज्ञान है, आनन्द है वह दूसरा है, परन्तु केवलज्ञान में आनन्द प्रगट होता है, उस कारण से केवलज्ञान को आनन्द कहने में आता है। वह भी विवाद करे। एक बार श्लोक आया था। ऐसा कि, आता है न? छहढाला में नहीं आता? ज्ञान सुख को कारण। ज्ञान समान न आन... परन्तु वह ज्ञान कौन? वह ज्ञान केवल जानपना शास्त्र का, वह नहीं। ज्ञान चिदानन्दस्वरूप आनन्दमूर्ति अपना उसका ज्ञान, उस ज्ञान में आनन्द है तो 'ज्ञान समान न आन (जगत में) सुख का कारण।' छहढाला में आता है। छहढाला है न दौलतरामजी की? लौकिक ज्ञान नहीं, दुनिया का ज्ञान नहीं। ये वकालात का, डाक्टरी का, फलाने का, मोटर का, पार्ट का। यहाँ तो मन और इन्द्रिय से ज्ञान हुआ, वह भी ज्ञान नहीं। आहाहा! ज्ञान जिसका हो उसमें से आना चाहिए न? जिसमें नहीं, उसमें से कहाँ से आता है? मन, इन्द्रिय में ज्ञान है? तो उसके लक्ष्य से भी ज्ञान कहाँ से आता है। ऐसा कहते हैं। अपने

स्वरूप में ज्ञान है अन्तर चिदानन्द भगवान प्रकाशमूर्ति, उसका आश्रय करने से ज्ञान और आनन्द का कारण है। समझ में आया? उस ज्ञान में धर्म है और आनन्द है। धर्म अर्थात् स्वभाव है और आनन्द है।

इसलिए केवलज्ञान और सुख का व्यतिरेक कहाँ है? ऐसा। केवलज्ञान और सुख में भिन्नता कहाँ है? व्यतिरेक अर्थात् (जुदाई)। केवलज्ञान दूसरा और सुख दूसरा, ऐसा है नहीं। अहो! भगवान आत्मा अन्तर में भी ज्ञान और आनन्द से अविनाभावी एकसाथ है। ऐसी जहाँ शक्ति की व्यक्तता हुई प्रगट, तो जैसा केवलज्ञान वैसा आनन्द भी साथ में है। आनन्द और ज्ञान में कोई भिन्नता नहीं। समझ में आया? **इससे, यह सर्वथा अनुमोदन करने योग्य है...** देखो! ओहो! आत्मा की एक समय की ज्ञान पूर्ण अवस्था, वह सम्मत करनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। **(-आनन्द से सम्मत करनेयोग्य है) केवलज्ञान एकान्तिक सुख है।** ओहो! यह आत्मा, उसका ज्ञानगुण त्रिकाल और उसकी एक समय की पर्याय पूर्ण केवलज्ञान आनन्द से सम्मत करनेयोग्य है। तो उसको आनन्द से सम्मत कब होगा? कि द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि देने से जिसमें से वह पर्याय प्रगट हुई, ऐसा जो द्रव्यस्वभाव है, उसको मानने से केवलज्ञान को आनन्द से माना, ऐसा कहने में आता है। आहाहा! भारी बातें, भाई! समझ में आया? आहाहा!

सर्वथा अनुमोदन करनेयोग्य है। सर्वथा अनुमोदन करनेयोग्य है। आहाहा! आत्मा की एक समय की पर्याय, पर्याय अर्थात् अवस्था। ऐसा ज्ञान, वही आनन्द का कारण। ऐसा केवलज्ञान सर्वथा प्रशंसनीय, अनुमोदनीय, आदरणीय, प्रगट करनेयोग्य है। समझ में आया? कैसे प्रगट होगा? अपने आत्मा की अन्तर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होगा और स्वरूपस्थिरता करने से केवलज्ञान होगा। ऐसे प्रगट होता है। चारित्र के कारण से केवलज्ञान कार्य होता है, ऐसा कहते हैं। परन्तु चारित्र की व्याख्या लोग दूसरी करते हैं। ये व्रत लेना, अव्रत छोड़ना, बाह्य की क्रिया, वह चारित्र है ही नहीं। चारित्र तो स्वरूप का अनुभव (होने के बाद) अन्दर चरना, चरना अर्थात् रमना। आनन्द में, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव करना, उसका नाम चारित्र है। उस चारित्र के फलस्वरूप केवलज्ञान को आनन्द से मानना ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भावार्थ बाद में कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १०, गुरुवार, दिनांक ३१-१०-१९६८
गाथा - ६०-६१, प्रवचन - ५२

यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है। आत्मा ज्ञानस्वरूप ही पूरा पमरभावस्वरूप गिना है। आत्मा वस्तु है, यह परमभाव से गिनो तो वह ज्ञानस्वरूप ही आत्मा है। भले उसके साथ अनन्त गुण हों। तो यह ज्ञान का, तत्त्व का सामर्थ्यभाव, भाव का सामर्थ्य कितना? ऐसा इसकी प्रतीति में तो आया होता है कि यह आत्मा ज्ञान है तो अकेला ज्ञान का पिण्ड ही है। और ज्ञान का पुंज है, इसलिए वास्तव में वह ज्ञ-स्वभाव अर्थात् सर्वज्ञस्वभाव अर्थात् ज्ञानस्वभाव ही वस्तु है। ऐसा प्रथम सम्यग्दर्शन में स्वसन्मुख होकर प्रतीति जो हुई हो अनुभव में, उसी प्रतीतिपूर्वक स्वरूप में शुद्ध रमणता हो, तब वह ज्ञान की पर्याय पूर्ण प्रगट होती है। वह पूर्ण कैसी प्रगट होती है, उसे बहुत विशेष से वर्णन किया है।

एक समय की केवलज्ञान की पर्याय कितनी सामर्थ्यवाली और परिणमन होने पर भी, वह परिणमन होने पर भी—बदलती होने पर भी वह दु:खरूप नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? क्योंकि ज्ञानस्वरूप ही आत्मा है, उसका परिणमन होना, वह सुखरूप ही है। समझ में आया? वस्तु स्वयं ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। तो उसके साथ ज्ञान की जहाँ एकाग्रता हुई और केवल (ज्ञान) हुआ, वह आनन्दसहित ही उस केवलज्ञान का परिणमन है। समझ में आया? आगे तो लेंगे कि ऐसा जो ज्ञान आनन्दरूप है, उसे जो यह पिछली गाथायें कही उसे, सुनकर श्रद्धा न करे, वह अभव्य है। आता है न? स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा में। हाँ वह। ६२। ... घातिकर्म ... बोले थे न वे? प्रश्ननारद। ... घातिकर्म।

देखो न, इतनी बात वर्णन की, वह वस्तु की स्थिति का वर्णन है यह। यह ऐसा का ऐसा कपोलकल्पित अथवा साधारण बात की तरह बात नहीं है। एक-एक गाथा में गहरा मर्म है। लोगों को ऐसा लगता हो कि यह तो वह की वह बात चली आती है। ऐसा नहीं। उसे ऐसा लगता हो (परन्तु) उसे ज्ञान की महिमा की पर्याय से समस्त

पृथक्-पृथक् आती है। इसकी इसे खबर नहीं। समझ में आया?

भावार्थ :- केवलज्ञान में... यह तो मानो केवलज्ञान की बात बहुत जगह आती है तो वह की वह आती है। ऐसा नहीं, ऐसा यह। इसकी विशिष्टता और खास इसकी भिन्नता केवलज्ञान की क्या है और उसमें आनन्द क्या है, उसे विधविध प्रकार से उसे सिद्ध करते हैं। **केवलज्ञान में भी परिणाम होते रहने से वहाँ भी थकान लगेगी...** क्या कहा? आत्मा अपने आनन्द और ज्ञानस्वरूप की अन्तर दृष्टि करके जो एकाग्र होकर केवलज्ञान हुआ तो वह अभी परिणमता तो है। कहीं कूटस्थ नहीं, एकरूप रहता नहीं। कूटस्थ भी कहा था एक न्याय से। क्योंकि वह की वह दशा रहती है। जानने के ज्ञेय में पलटना नहीं पड़ता। अनन्त को एक समय में केवलज्ञान इतना पूरा जानकर परिणमता है, इसलिए उसे कूटस्थ भी कहा। तथापि वह परिणमता है, बदलता है। केवलज्ञान गुण नहीं। क्या कहा अब यह? केवलज्ञान हो तो भी गुण नहीं। मनसुखभाई! केवलज्ञान हो तो गुण नहीं? तो गुण अभी पूरा हुआ नहीं?

मुमुक्षु : पर्याय है वह।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय है। पर्याय है तो गुण पूरा कब होगा तब गुण नहीं तो? गुण पूरा होगा या नहीं कभी? या ऐसा का ऐसा अधूरा ही रहा करे?

मुमुक्षु : गुण तीनों काल पूर्ण ही होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : गुण तो तीनों काल पूरा होता है। ऐई! देवानुप्रिया! आहाहा! यहाँ तो पर्याय परिपूर्ण है, उसे गुण की पर्याय कहा जाता है। वह गुण नहीं। तब कोई कहे कि भाई! यह पर्याय है, तब अब उसका गुण पूरा कब होगा? ऐसा यह तो द्रव्य, गुण और पर्याय तीन की व्याख्या है। यह तो यह गाथा आती है न। ऐसा कि द्रव्य परिणमता है, गुण तो परिणमता नहीं। आती है न गाथा ज्ञेय अधिकार में। द्रव्य परिणमता है, पूरा द्रव्य परिणमता है। ऐसा है न। तब गुण इकट्ठे हैं, तो द्रव्य पूरा परिणमे। गुण परिणमे, ऐसा नहीं, वह तो द्रव्य परिणमता है, इसलिए गुण इकट्ठा परिणमता है। आहाहा! समझ में आया? बात वीतराग की द्रव्य-गुण-पर्याय की बात अलौकिक है। समझ में आया? यह अलौकिक वस्तु की स्थिति ऐसी है, भगवान ने कुछ किया नहीं।

जैसा है, वैसा भगवान ने जाना है। जाना और जैसा था, वैसा कहा और वैसा वस्तु का स्वरूप है। द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान ही अभी घट गया। समझ में आया? देखो, जवाब देते देते फें... फें... हो गया। गुण पूरा कब होगा? पूरा ज्ञान हो तब।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अब आया। पहले कहाँ था? गुण व्याप्य नहीं। परन्तु वह बराबर अन्दर व्यवस्थित नहीं इसलिए....

देखो! आत्मा है, वह द्रव्य है। द्रव्य अर्थात् कि अनन्त गुण और पर्याय का पिण्ड, वह द्रव्य। गाथा आयेगी ९३ में। '**अत्थो खलु दव्वमओ**' अर्थ जो वस्तु है, वह द्रव्य-वस्तु है और द्रव्य है वह '**गुणप्पगाणि**' गुणस्वरूप है। वह द्रव्य है तो गुण त्रिकाल स्वरूप है, हों! त्रिकाल। जैसे द्रव्य त्रिकाल है तो उसके गुण त्रिकाल हैं। वह गुण प्रगटता नहीं, गुण आवृत होता नहीं। समझ में आया? परन्तु जो पर्याय होती है द्रव्य, गुण के—उभय के आश्रय से पर्याय होती है। पहली गाथा लेंगे ९३। ज्ञेय अधिकार। ज्ञेय ही ऐसा है। आत्मा ज्ञेय, ज्ञान में ज्ञात हो, ऐसा ज्ञेय स्वयं और पर सब। उसका स्वरूप ही ऐसा है कि यह आत्मा वस्तु है। यह शरीरादि वस्तु है, दूसरी चीज़ है, वह पर है। वह भी एक अर्थ है। यह परमाणु है, वह अर्थ है, उसका द्रव्य है और उसके गुण वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, वे उसके गुण हैं और उसकी हरी, लाल, काली, कोमल आदि पर्याय है। वह पर्याय... आत्मा में द्रव्य अर्थात् वस्तु, उसके ज्ञानादि अनन्त गुण। वह गुण कभी आवृत नहीं होता, गुण कभी प्रगटता नहीं, गुण तो एकरूप रहता है। गुण में से पर्याय जो प्रगटी, परिणमन हुआ, वह पर्याय का ज्ञान का पूरा रूप केवलज्ञान है। ज्ञानतत्त्व है न। वह पर्याय पूरी प्रगटी है। गुण कब पूरा होगा? यह प्रश्न वहाँ है नहीं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान न रखे। कहो, ...भाई! ऐसा कि केवलज्ञान हुआ, परन्तु वह तो केवलज्ञान पर्याय हुई। समझ में आया? परन्तु गुण पूरा कब होगा? भगवानजीभाई! इसे कुछ खबर नहीं। यह बात यहाँ वर्णन करते हैं कि द्रव्य अर्थात् आत्मा और ज्ञानादि गुण, वह तो त्रिकाल पूरा-पूरा ही है। उसमें अधूरा, कम, पूरा प्रगटेगा, ऐसा कुछ है

नहीं। प्रगटे क्या, वह तो वस्तु त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया? यह केवलज्ञान, वह पर्याय है, परन्तु वह गुण की पूरी पर्याय है। गुण का परिणमन पूरा है। अब उसे कुछ बाकी रहा है, परिणमन बाकी है, ऐसा है नहीं। इसलिए उसे गुण पूरा प्रगट हुआ, ऐसा कहा जाता है। वह पर्याय प्रगट हुई, उसे गुण पूरा प्रगट हुआ, ऐसा कहा जाता है। गुण तो है, वह है। अरे! गजब बात! समझ में आया? यह तो इसके घर की बात है, उसकी इसे खबर नहीं होती, कहो अब। आहाहा! लकड़ी और लोहा और दूसरे की सब खबर हो घर की, बाहर की। इस घर की नहीं, बाहर की। परन्तु यह घर क्या है? कहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि **केवलज्ञान में भी परिणाम होते रहने से...** आत्मा में सम्यग्दर्शन और ज्ञान और चारित्र—स्वरूप की एकाग्रता प्राप्त करके जो केवलज्ञान होता है। क्योंकि मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, यह वर्णन करते हैं मूल तो। मोक्षमार्ग सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र। और इस मोक्षमार्ग का फल मोक्ष। अर्थात् केवलज्ञान। तो यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह आत्मा त्रिकाल शुद्ध अखण्ड अभेद है, उसके सन्मुख की दृष्टि, ज्ञान और रमणता का नाम मोक्ष का मार्ग, उसका नाम धर्म और उस धर्म का पूर्ण फलरूप से केवलज्ञान। वह केवलज्ञान भी परिणाम है, कहते हैं। समझ में आया? छोटाभाई! यह तो सुना न हो, छोटाभाई! वहाँ कहाँ निवृत्ति हो? आहाहा! दुनिया के लिये (समय मिले) परन्तु आत्मा के लिये क्या है, इसकी निवृत्ति नहीं होती।

कहते हैं कि आत्मा वस्तु है प्रभु तू। उसमें ज्ञानगुण तो परिपूर्ण शक्ति पूरी-पूरी पूर्ण शक्ति है, उसका परिपूर्ण ही रूप है। परन्तु अन्तर की एकाग्रता की रमणता द्वारा... चारित्र कहा न? केवलज्ञान जो ज्ञान की पर्याय पूर्ण हो, वह पर्याय है, वह परिणाम है, अवस्था है, दशा है, अंश है। केवलज्ञान भी एक अंश है। ठीक! पर्याय को अंश कहा है। आगे आयेगा। है न आगे? पर्याय को अंश कहा है। वह केवलज्ञान भी अंश है। समझ में आया? गुण पूर्ण है, द्रव्य पूर्ण है। उसमें से केवलज्ञानदशा हुई अरिहन्त परमात्मा को, वह अन्तर स्वरूप के ध्यान की रमणता द्वारा हुई है। कोई क्रियाकाण्ड द्वारा देह की क्रिया और कोई व्रत के परिणाम शुभ आदि से वह केवलज्ञान होता नहीं। वे तो बन्ध का कारण हैं व्रतादि परिणाम तो। समझ में आया?

ऐसा जो केवलज्ञान भी... ऐसा है। **केवलज्ञान में भी परिणाम होते रहने से वहाँ भी थकान लगेगी...** बदलना पड़े न? थकान लगे न! बदलाबदल... बदलाबदल... बदलाबदल करना। **और इसलिए दुःख होगा, अतः केवलज्ञान ऐकान्तिक सुख कैसे हो सकता है?** शिष्य का प्रश्न। परिणाम है, परिणाम बदलते हैं, बदले तो थकान लगे, थकान लगे तो उसमें ऐकान्तिक सुख किस प्रकार हो सकता है? यह प्रश्न है। समझ में आया? **ऐसी शंका का समाधान यहाँ किया गया है—(१) परिणाम मात्र थकावट या दुःख का कारण नहीं है,...** पहला सिद्धान्त। यह कल आ गया है। बदलना, परिणमना, वह कहीं दुःख का कारण नहीं। क्योंकि परिणाम तो... देखो! कहेंगे आगे, हों! दूसरे बोल में कहेंगे। **परिणाम मात्र थकावट या दुःख का कारण नहीं है, किन्तु घातिकर्मों के निमित्त से होनेवाला परोन्मुख परिणाम थकावट या दुःख का कारण है,...** घातिकर्म का निमित्त उसके सन्मुख होते जो विकारी परिणाम होते हैं, पुण्य-पाप के विकारी परिणाम होते हैं, वे शुभ-अशुभ विकारी परिणाम होते हैं, वह थकान है, वह अविश्राम है, वह दुःख है। आहाहा! समझ में आया?

यह तो ६०वीं चलती है। ६२ में लेंगे यह। टीका में लिया है (जयसेनाचार्य ने)। वह मत्स्य का दृष्टान्त। मत्स्य है न, मत्स्य? मछली। वह पानी में रहे, तब तक उसे अनुकूल है, परन्तु पानी में से स्थल में आवे स्थल में। है उसमें दृष्टान्त। ६२ में है। उसका वापस आधार दिया है। पद्मनन्दि में से दिया है, ऐसा लगता है। देखो! संस्कृत टीका में है, हों! '**मत्स्यानां स्थलगमनमिवाग्निप्रवेश इव वा, निर्विकारशुद्धात्म-सुखाच्च्यवनमपि दुःखं प्रतिभाति।**' यह जयसेनाचार्य की टीका में है। १०९ पृष्ठ पर है। क्या कहते हैं? आत्मा का ज्ञानस्वरूप त्रिकाल, उसका ध्यान करके, एकाग्र होकर जो केवलज्ञान प्रगट हुआ, उस परिणाम में थकान नहीं, क्योंकि वह परिणाम विकारी नहीं। विकारी परिणाम यदि हो, घातिकर्म के लक्ष्य से हुए शुभ या अशुभभाव हो, वह थकान है, दुःख है, अविश्राम है, आकुलता है। आहाहा! समझ में आया?

वहाँ दृष्टान्त दिया है कि आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसकी दृष्टि हुई धर्मी को, तथापि उसे विषयवासना की वृत्ति आती है न? कहते हैं, यह वासना उसे अंगारे जैसी लगती है। अशुभ वासना ज्ञानी को अंगारे जैसी (लगती है)। अंगअंगारो शब्द पड़ा है

न अन्दर ? '**किमङ्ग पुनरङ्गमङ्गराः**' ऐसा शब्द है न अन्तिम ? क्या कहते हैं ? यह तुमको न सूझे उसका कुछ नहीं। ऊपर से अर्थ लो न। यह तो संस्कृत है। आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसका भान हुआ सम्यक् दृष्टि में धर्म का, तब फिर उसे जो शुभभाव हो वह, जैसे मछली स्थल में—जमीन के ऊपर आवे, ऐसा दुःख लगता है। और वह ज्ञानानन्द का भान हुआ (कि) मैं तो अतीन्द्रिय आनन्द हूँ, पश्चात् जो अशुभभाव हो, वह अंगारे जैसा लगता है। आहाहा! कहो, भगवानजीभाई! यह सुख मानते हैं न धूल में ? वह धर्मी आत्मा के आनन्द में सुख मानते हैं। वह आनन्द में आत्मा में सुख है। इसलिए धर्मी को शुभभाव हो—भक्ति, पूजा, दान, दया, व्रत का हो, परन्तु वह मछली जैसे स्थल में आवे जमीन के ऊपर और दुःख हो, वैसा दुःख लगता है उसे। आहाहा! भगवानजीभाई! वे कहे धर्म होता है।

और आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, ऐसा भान होने से, उस आनन्द को धर्मी तुलना करता है कि इस आनन्द के समक्ष शुभभाव, वह जमीन में मछली आने जैसा दुःख है और अशुभभाव आवे वह अंगारे जैसा दुःख लगता है। कषाय-अग्नि है न! आहाहा! देखो, यह धर्म की दृष्टि। धर्मी की दृष्टि तो आत्मा आनन्द है, ज्ञान है, उसके ऊपर होती है। उसकी दृष्टि पुण्य-पाप के विकल्प और निमित्त के ऊपर होती नहीं। आवे सही भाव, परन्तु उस धर्मी को वे भाव दुःखरूप लगते हैं। आहाहा! अज्ञानी को वे भाव हितकर लगते हैं। समझ में आया ? आहाहा! अज्ञानी को शुभ और अशुभभाव हितकर, इष्ट लगते हैं। ज्ञानी को शुभ-अशुभभाव अनिष्ट लगते हैं। आहाहा! इतना अधिक अन्तर। समझ में आया ? अभी धर्म की दृष्टि होने से वे शुभ-अशुभ परिणाम अनिष्ट लगते हैं। समझ में आया ? कहेंगे न अन्दर, कहेंगे आगे। अनिष्ट दुःखं अज्ञानं... अनिष्ट का नाश हुआ और इष्ट की प्राप्ति हुई।

भगवान केवलज्ञानी को पुण्य-पाप आदि विकल्प अज्ञानरूप जो हैं, वे सर्व अनिष्ट हैं। उनका नाश होकर, इष्ट ऐसा आत्मा का पूर्ण ज्ञान और आनन्द (की) प्राप्ति हुई। सम्यग्दृष्टि को पूर्ण स्वभाव शुद्ध ध्रुव आनन्द है, उसका भान होने से आनन्द का अंश और प्रतीति और सम्यग्ज्ञान हुआ। परन्तु जितना भाव शुभ आवे, उसे दुःख लगे और अशुभ तो अग्नि जैसा लगे। आहाहा! कठिन बातें, भाई! इसका नाम धर्मदृष्टि है।

धर्मदृष्टि कहीं ऐसे के ऐसे यह कर डाला धर्म, ऐसा नहीं भाई! यह तो वीतरागमार्ग है। वीतराग परमात्मा ने, परमेश्वर ने, केवलज्ञानी ने आत्मा को ज्ञान और आनन्दरूप देखा है। ऐसा जिसने सम्यग्ज्ञान में देखा कि सम्यक्त्व ज्ञान और आनन्दरूप है। ऐसी जहाँ धर्मी को धर्म की रुचि से सम्यग्ज्ञान और आनन्द प्रगट हुआ, उसके समक्ष शुभ और अशुभ परिणाम उसे दुःखरूप, हेय दुःखरूप लगते हैं। कहो, समझ में आया? आहाहा! दृष्टि बदलने से पूरी सृष्टि बदल जाती है। अज्ञानी की दृष्टि शुभ और अशुभभाव जो विकल्प, राग विकार, वहाँ है। इसलिए उसकी दृष्टि में विकार की ही सृष्टि उत्पन्न होती है। समझ में आया?

भगवान अन्तर्मुख चिदानन्द प्रभु सच्चिदानन्द आत्मा शाश्वत् आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, ऐसा भान होने से आत्मा में आनन्द है, वह कहीं आनन्द उसे भासित नहीं होता। चक्रवर्ती के राज हों, इन्द्र की इन्द्राणी हो करोड़ों। समझ में आया? यह तो सब धान के पिण्ड हैं, यह सब। परन्तु वे तो वैक्रियकशरीर। यहाँ दो दिन खाये नहीं तो शरीर सूख जाये, ऐसा हो जाये, फलाना हो जाये, ढींकणा हो, मुख टेढ़ा हो जाये। उनको तो हजारों-हजारों वर्ष तक उनकी स्थिति प्रमाण आहार न हो तो भी वैक्रियकशरीर सुन्दर (होता है), ऐसे इन्द्राणी के सुख के विकल्प को दुःखरूप मानता है। आहाहा! उसका नाम धर्मदृष्टि है। क्योंकि तत्त्व जो विकल्प उठा, वह पापतत्त्व है। समझ में आया? उसे ज्ञानी पापरूप से जानता है, उसे दुःखरूप से जानता है, उसे सुखरूप से जाने तो तत्त्वदृष्टि है नहीं। कहो, समझ में आया? मनसुखभाई!

नौ तत्त्व की श्रद्धा है न सच्ची धर्मी को, तो उसका अर्थ क्या? कि आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनन्द है, ऐसी प्रतीति में, श्रद्धा में आनन्द आत्मा में भासता है। पापतत्त्व में दुःख भासता है, वह पापतत्त्व भासता है। हिंसा, झूठ, चोरी, विषयवासना, क्रोध, मान और दया, दान, व्रत, वह पुण्यतत्त्व है। वह पुण्यतत्त्व भी आनन्द के समक्ष दुःखरूप है। समझ में आया? ऐसे तत्त्व को इस प्रकार से जाने, तब उसे सम्यग्दर्शन हुआ कहलाता है। कहो, चन्दुभाई! बिना भान के हाँका है अनादि से। इसे कहनेवाले ऐसे मिले कि उसमें से हटना सुहाता नहीं। वस्तु की ही खबर नहीं, क्या मार्ग है और कहाँ जाता हूँ। बराबर है? छोटाभाई! यह आवे वापस तो कभी आवे, इसलिए यह सब सूक्ष्म तो सुनने को मिलता नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसमें? यह पुण्य अर्थात् राग और राग अर्थात् जहर। वह बात तो चलती है यह।

मुमुक्षु : किसके लिये?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह धर्मी के लिये। अज्ञानी के लिये मिठास माने। जहर को मिठास माने ऐसा। अज्ञानी माने, इसलिए कहीं वस्तु बदल जाये? शुभभाव है, वह आत्मा के आनन्द से उल्टी अवस्था है। धर्मी उसे जहररूप से देखता है। आहाहा! गजब बात में अन्तर! बहुत अन्तर! धर्मी को अपने स्वभाव के ऊपर दृष्टि है। तो स्वभाव तो ज्ञान और आनन्द है। उस ज्ञान और आनन्द के समक्ष विभाव जो पुण्य-पाप के विकल्प राग हैं, वह धर्मी को दुःख लगता है, खेद लगता है।... भाई! आहाहा! अज्ञानी को तत्त्व की खबर नहीं। आनन्द आत्मा में है, पर में नहीं, वह शुभभाव में भी आनन्द नहीं। छोटाभाई! दुःख है।

मुमुक्षु : कम दुःख तो है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कम दुःख किस अपेक्षा से? उस तीव्र कषाय की अपेक्षा से। बाकी उसे सुख मानना, वह मिथ्यात्वसहित तीव्र दुःख है। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं, देखो!

घातिकर्मों के निमित्त से होनेवाला परोन्मुख परिणाम थकावट या दुःख का कारण है,... यह उसकी व्याख्या की। समझ में आया? आहाहा! भगवान आत्मा अपना ज्ञान और आनन्दस्वभाव, उसके आश्रय से होकर जो ज्ञान के परिणाम और आनन्द के करे, वह तो दुःखरूप नहीं, वह तो सुखरूप है। परन्तु घातिकर्म जड़ के लक्ष्य से अपना लक्ष्य छोड़कर पर के लक्ष्य से जो कुछ पुण्य और पाप के भाव करे, वह परसन्मुख परिणाम है। परसन्मुख में दोनों आये, शुभ और अशुभ। आहाहा! शुद्ध परिणाम हो, वह स्वसन्मुख से होते हैं। भगवान चिदानन्द आत्मा भगवान केवलज्ञानी ने देखा ऐसा। ऐसा आत्मा अन्तर (में) देखकर एकाग्र होने से उसे शुद्ध परिणाम होते हैं, वे शुद्ध परिणाम उस आनन्द का कारण है अथवा आनन्दरूप है। परन्तु परसन्मुख के भाव शुभ और अशुभ थकान है, दुःख है, उपाधि है, मल है, विभाव है। समझ में आया?

केवलज्ञान में घातिकर्म अविद्यमान होने से... लो, ठीक! भगवान आत्मा को केवलज्ञान वहाँ हुआ, तब घातिकर्म के निमित्त का तो अभाव है, वहाँ थकान या दुःख नहीं। भगवान को ज्ञान में परिणमन होने पर भी समय-समय में ज्ञान परिणमे। समझ में आया? भगवान! हमारा उपयोग तो असंख्य समय में बदले, परन्तु तुम्हारी पर्याय तो समय-समय में बदले। और हम (भगवान) सुखी। ऐई! भक्त भजन भक्ति इस प्रकार से स्तुति करते हैं। नाथ! तेरा उपयोग एक समय का है, हमारा उपयोग असंख्य समय का है। हम असंख्य समय में बदलते हैं, तुम समय-समय में बदलते हो। और फिर हम (भगवान) बड़े और सुखी। बापू! ऐसा ही है।

मुमुक्षु : जानकर बात करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानकर बात करते हैं। ... भक्त ऐसी बात करे, हे नाथ! आपका केवलज्ञान एक समय का होता है। समय-समय में परिणाम बदलते हैं और हमारे असंख्य समय में बदले, प्रभु! और फिर भी आप बड़े और सुखी। ठीक! ऐसा करके भक्ति करते हैं।

मुमुक्षु : भगवान के केवलज्ञान के सुख को याद करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। समझ में आया? यह आती है स्तुति, स्तवन में आता है कहीं। सब याद थोड़े ही रहता है? आहाहा! क्या परन्तु यह परिणमन क्या और पर्याय क्या? वस्तु त्रिकाल ज्ञायक चेतन द्रव्य, उसके गुण का पिण्ड उसकी पर्याय में, अवस्था में, हालत में बदले अंश, वह परिणाम है, परन्तु उसमें घातिकर्म की अविद्यमानता है, इसलिए पर के लक्ष्य से परसन्मुख के परिणाम का उसमें—केवलज्ञान में अभाव है। स्वसन्मुख का केवलज्ञान का परिणमन सदा हुआ करता है। इसलिए वह केवलज्ञान थकान और दुःख का कारण नहीं। यह अरिहन्त का आत्मा कैसा है, उसकी पहिचान कराते हैं यहाँ तो अभी। अरिहन्त-अरिहन्त करे, परन्तु अरिहन्त के आत्मा की पर्याय कैसी, उसकी खबर न हो। णमो अरिहंताणं। क्या परन्तु णमो अरिहंताणं? अरिहन्त भगवान को केवलज्ञान, अनन्त आनन्द आदि चतुष्टय पर्याय प्रगट हुई है। वह उनका केवलज्ञान कैसा? कि समय-समय में परिणमता है, तथापि वहाँ घाति (कर्म) की अविद्यमानता के कारण भगवान को बदलने से थकान और परिणमना, इसलिए खेद हो

जाये, ऐसा है नहीं। समझ में आया? गजब बात की। ओहोहो! एक पर्याय को सिद्ध करने के लिये। एक बोल हुआ।

(२) केवलज्ञान स्वयं ही परिणमनशील है;... देखो! वह केवलज्ञान बदलने के स्वभाववाला है। द्रव्य और गुण वस्तु जो त्रिकाल है, वह अपरिणामी है। समझ में आया? वे बदलते नहीं, परन्तु जो केवलज्ञान (है, वह) तो परिणमनशील है, पलटने का स्वभाव है। यहाँ भी रागादि पलटते हैं, मतिज्ञानादि पलटते हैं परन्तु वह अधूरा ज्ञान है। वहाँ आगे पूरा ज्ञान परिणमनशीलस्वरूप है, पलटने का उसका स्वभाव ही है। वह कोई विभाव और उपाधि, पराधीन नहीं। परिणमनशील ही उसका स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

परिणमनशील है; परिणमन केवलज्ञान का स्वरूप ही है,... भगवान आत्मा जो ज्ञानगुण की पूर्ण अवस्थारूप से परिणमा, वह परिणाम तो उसका स्वरूप ही है। वह स्वरूप कोई अपूर्ण है या उपाधि है या निमित्ताधीन हुआ है, ऐसा नहीं। **उपाधि नहीं। यदि परिणाम का नाश हो जाये तो केवलज्ञान का ही नाश हो जाये।** क्या कहते हैं? यदि बदलना, केवलज्ञान की एक समय की पर्याय, वह बदलना नाश हो तो परिणाम बदलते नाश हो तो वस्तु का, केवलज्ञान का नाश हो जाये। समझ में आया? परिणमना वह तो उसका स्वरूप है। परिणमने का यदि अभाव हो जाये तो केवलज्ञान का अभाव हो जाये। क्या कहते हैं यह? धर्म की स्थिति सिद्ध करते हैं। ओहोहो!

भगवान आत्मा सामान्यज्ञान के ऊपर विशेषरूप से केवलज्ञान होकर व्याप्त हुआ है। कहते हैं कि वह तो परिणमन बदलने का स्वभाव है। न बदले तो केवलज्ञान का नाश हो जाये, क्योंकि उसका परिणमने का स्वभाव है। **इस प्रकार परिणाम केवलज्ञान का सहज स्वरूप होने से...** परिणाम अर्थात् वह पर्याय है, केवलज्ञान अवस्था है। वह **परिणाम केवलज्ञान का सहज स्वरूप होने से केवलज्ञान को परिणाम के द्वारा खेद नहीं हो सकता-...** समझ में आया?

(३) केवलज्ञान समस्त त्रैकालिक लोकालोक के आकार को... भगवान का ज्ञान केवलज्ञान तो तीन काल-तीन लोक को एक साथ जानता है। एक के बाद एक जानता है? भगवान का ज्ञान तो तीन काल-तीन लोक को एक साथ जाने। जितने पदार्थ

हैं अनन्त, उन्हें एक समय में जान जाता है। इसलिए जानने का बाकी नहीं कि जिससे उससे खेद और दुःख हो। समझ में आया? आहाहा! देखो! **केवलज्ञान समस्त त्रैकालिक लोकालोक के आकार को...** पूरे। **(-समस्त पदार्थों के त्रैकालिक ज्ञेयाकारसमूह को)...** जितने तीन काल के द्रव्य-गुण, आत्मा हैं, उनसे पर्यायसहित। **सर्वदा अडोलरूप से जानता हुआ...** केवलज्ञान की एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक को कंप बिना अडोलरूप से परिणमकर जानती हुई, उसे दुःख होता नहीं।

अत्यन्त निष्कम्प— केवलज्ञान तो अत्यन्त निष्कम्प है। समझ में आया? लाख या करोड़ रुपये का रत्न हो रत्न ऐसे। ऐसे झबक... झबक... झबक... झबक... होता है या नहीं उसमें? वह तो परिणमन उसका स्वरूप है, वह कहीं दूसरी चीज़ नहीं।... ऐसे चमक... चमक... चमक... चमक... चमक... चमक... (होता है)। ऐसे केवलज्ञान की पर्याय वह उसका परिणमन, उसकी झबक, उसकी चमक उसका स्वभाव है। उस धूल के रत्न जिसे लाख और करोड़ हो तो वह क्षेत्र बदलता है? इतना रत्न हो, इतना हो लाख-करोड़ का। ऐसी लगे झबक झबक। क्या क्षेत्र बदलता है? वह क्षेत्र में बाहर आ जाती है उसकी चमक? वहीं की वहीं परिणमन की चमक लगती है। इसी प्रकार आत्मा में केवलज्ञान की पर्याय उसी और उसी के क्षेत्र में उसकी चमक और सामर्थ्य लगती है। अनन्त को एक समय में जानने का चमत्कार है। आहाहा! द्रव्य, गुण और पर्याय का ज्ञान घट गया। द्रव्य-गुण-पर्याय। कितने ही कहे, पर्याय क्या? ऐसा जाने। और २५-२५ वर्ष से सामायिक और प्रौषध....

मुमुक्षु : यह वाँचा हुआ नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वाँचे नहीं। बस, निवृत्ति नहीं मिलती। सच्चा समझने की दरकार नहीं होती। पर्याय किसे कहना? लो, एक बार पूछा था।

मुमुक्षु : साधु को भी खबर नहीं होती।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे कब खबर है साधु को? भान कब है? कहा न! एक साधु को पूछा, महाराज! सामायिक, वह त्रस या स्थावर? स्थानकवासी साधु था। बहुत वर्ष की बात है, हों! त्रस या स्थावर? वह कहे, मुझे गुरु ने सिखाया नहीं। बहुत अच्छी बात। जैन में क्या वीतराग मार्ग है (उसकी खबर नहीं होती)। सामायिक क्या होगी

कहा सामायिक ? कहाँ रहती होगी ? वह द्रव्य होगी, गुण होगी या पर्याय ? अपने को कुछ खबर नहीं पड़ती। हम करते हैं सामायिक। धूल में सामायिक है तेरी, सुन न अब। कहो, मयाचन्दभाई! क्या होगा यह ?

सामायिक तो उसे कहते हैं कि आत्मा जो त्रिकाली ज्ञायक वस्तु, उसके आनन्द और ज्ञान में श्रद्धा और अनुभव करके स्थिर हो, वीतरागी पर्याय और आनन्द का अन्दर परिणाम का अनुभव आवे, उसे सामायिक कहते हैं। भगवान उसे सामायिक कहते हैं। आहाहा! समझ में आया ? यह तो लड़के कर डाले सामायिक एक आसन पर और आठ। आठ आना दो, रुपया दो, चलो भाई। धूल में भी सामायिक नहीं। एक समय की सामायिक जन्म-मरण का नाश करे, ऐसी सामायिक भगवान कहते हैं। आहाहा! भगवान तो परमात्मा पूर्ण तू है, भाई! आत्मा का आनन्द है तुझमें, उसकी अन्तर दृष्टि करके लीनता-लीनता, जमावट हो, वह आनन्द की लहर उपजे अन्दर, उसे भगवान वीतराग पर्याय को सामायिक कहते हैं। सामायिक है न ? सम-आय (अर्थात्) समता का लाभ। तो समता किसे कहते हैं ? वीतरागता। वीतरागता का लाभ, उसे सामायिक कहते हैं। तो वीतरागता का लाभ कहाँ से होगा ? मैं ऐसा करूँ... ऐसा करूँ... पर के ऊपर के— (पर) सन्मुख के परिणाम में वीतरागता होगी ? कहो, समझ में आया इसमें ? यह तो पहले कहा, नहीं ? परसन्मुख परिणाम वह थकान और दुःख का कारण है। शुभ-अशुभ परिणाम परलक्ष्य से उत्पन्न होते हैं और सामायिक के परिणाम जो शुद्ध हैं, वे आत्मा अखण्डानन्द का भान होकर अन्तर के आश्रय से सन्मुख होकर परिणाम उत्पन्न होते हैं। वे वीतरागी परिणाम होते हैं, उनमें आनन्द होता है और ज्ञान की निर्मलता होती है। उसे भगवान सामायिक कहते हैं। कहो, समझ में आया ? ऐ... छोटाभाई! यह सामायिक लो! वे भड़कें तुम्हारे सब बड़े बुजुर्ग। हमने यह सामायिक की, वह खोटी ? खोटी कौन कहता है ? है ही नहीं न, फिर खोटी कौन कहे ? कहो, समझ में आया ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कौनसी ६२ इसकी ? टीका आयेगी अब। आयेगी, कल आयेगी।

सर्वदा अडोलरूप से जानता हुआ... भगवान आत्मा सामायिक में भी समता परिणाम जिसे हो, उसे समता—वीतरागी समता, हों! ऐसे कषाय मन्द की समता, वह

समता नहीं। जिसे अभी आत्मा ज्ञानानन्द कौन है, उसकी खबर न हो तो स्थिर कहाँ हो? और समता आवे कहाँ से? ऐसी समता के फलरूप से केवलज्ञान आवे, वह अकम्प है, कहते हैं। **अत्यन्त निष्कम्प-स्थिर-अक्षुब्ध-अनाकुल है;...** इतने शब्द प्रयोग किये हैं। **अनाकुल होने से सुखी है-सुखस्वरूप है, क्योंकि अनाकुलता सुख का ही लक्षण है।** अनाकुलता सुख का स्वरूप है। **इस प्रकार केवलज्ञान और अक्षुब्धता - अनाकुलता भिन्न नहीं होने से...** ऐसा। **केवलज्ञान और सुख भिन्न नहीं है।** केवलज्ञान और अक्षुब्धता, अक्षुब्ध अर्थात् क्षोभ नहीं और अनाकुलता अर्थात् आकुलता नहीं। अनाकुलता और अक्षुब्धता अलग नहीं, इसलिए केवलज्ञान और अक्षुब्ध भिन्न नहीं। भगवान का ज्ञान, वह अतीन्द्रिय आनन्दमय है, उसमें दुःख और थकान नहीं। ऐसे अरिहन्त की पर्याय का ज्ञान ऐसा है। समझ में आया? णमो अरिहंताणं करे, परन्तु अरिहन्त का क्या अर्थ है? उनके क्या गुण हैं शक्ति, उसकी कुछ खबर नहीं। भगवान अरिहन्त हो गये कोई, लो! अरिहन्त कौन हो गया? राजा हो गया कोई?

अरि अर्थात् जिसने आत्मा के अन्तर के ध्यान द्वारा अज्ञान और राग-द्वेष का नाश करके वीतराग और विज्ञानदशा जिसे प्रगट हुई, उसे अरिहन्त कहा जाता है। आहाहा! उसे पहिचानकर यह कहते हैं कि हे नाथ! तेरी दशा ऐसी है, मेरी दशा अपूर्ण है। मैं आपको वन्दन और बहुमान देता हूँ। मुझे भी यह दशा प्रगट करनी है, ऐसा कहते हैं। आता है या नहीं उसमें? 'सिद्धा सिद्धि ममं दिसंतु'। आता है न लोगस्स में? हे सिद्ध भगवान! मुझे सिद्धपद दो। तो दे देते होंगे? सिद्ध उनके पास है पद? दिसंतु अर्थात् आपका जैसा सिद्धपद है, वैसा मुझे मेरे ज्ञान में और अनुभव में आवे, वह मेरी प्रार्थना है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? 'सिद्धा सिद्धि ममं दिसंतु' नहीं आता? आता है। उसके अर्थ की खबर नहीं होती। जय भगवान! हांक रखे गाड़ा। छोटाभाई! शब्द के अर्थ की खबर नहीं होती।

इस प्रकार (१) घातिकर्मों के अभाव के कारण,... ज्ञान आनन्दरूप है, ऐसा कहते हैं। **(२) परिणमन कोई उपाधि न होने से और (३) केवलज्ञान निष्कम्प-स्थिर-अनाकुल होने से केवलज्ञान सुखस्वरूप ही है।** लो! यह इतना सिद्ध किया।

★ ★ ★

गाथा - ६१

अब, पुनः 'केवल (अर्थात् केवलज्ञान) सुखस्वरूप है' ऐसा निरूपण करते हुए उपसंहार करते हैं :— ६१ (गाथा)।

णाणं अत्थंतगयं लोयालोएसु वित्थडा दिट्ठी।
णट्ठमणिट्ठं सव्वं इट्ठं पुण जं तु तं लद्धं॥६१॥

आहाहा! देखो! भगवान अरिहन्त परमात्मा को सर्व अनिष्ट नाश हो गया है, और इष्ट सब प्रगट हो गया है। देखो! इष्ट और अनिष्ट की व्याख्या। इष्ट-अनिष्ट समझ में आता है? अज्ञान और राग-द्वेष का भाव, वह अनिष्ट है और ज्ञान तथा वीतरागता और आनन्द, वह इष्ट है। कोई प्रतिकूल चीज़ अनिष्ट है, अनुकूल वह इष्ट है—ऐसा नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप, उससे विरुद्ध जो मिथ्यात्वभाव और पुण्य-पापभाव, वह अनिष्ट है, अनिष्ट है और आत्मा आनन्द और ज्ञानस्वरूप इष्ट है और उसके कारण ईष्टता प्रगट होती है। पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द प्रगट हो, वह इष्ट है। मिथ्यात्व और राग-द्वेष अनिष्ट, उसका नाश होकर इष्ट की पूर्ण प्राप्ति होती है। इष्ट की (प्राप्ति) अर्थात् कोई प्रिय मिलते हैं और अप्रिय नाश होते हैं, ऐसा नहीं। अनिष्ट का नाश और इष्ट की प्राप्ति अर्थात् असज्जन का नाश और सज्जन का मिलाप, ऐसा होगा इसमें? वह इष्ट-अनिष्ट है ही नहीं। बाहर की चीज़ कोई इष्ट-अनिष्ट है ही नहीं। कहो, समझ में आया?

अरे! पुत्र ऐसा जगा, पुत्री ऐसी जगी, स्त्री ऐसी मिली, दुकान में भागीदार ऐसा मिला। समझ में आया? वे कहते थे, भाई, क्या? मोरबी नहीं? मोरबी में यह माँडी न, सामने उसने। मोरबो मांडा है सामने ... ठिकाने। एक मोरबी की दुकान थी, उसके सामने मांडी दूसरे ने मोरबी की। मोरबो मांडा कहे सामने। मोरबीवाले ने मोरबो। ऐसा बोले थे भाई। समझ में आया? यह क्या कहलाता है वह धनबाद का? जरीया में। वह जरीया में दुकान थी। मोरबीवाले की एक दुकान। उसके भाग की... सामने मांडी दुकान। मोरबीवाले ने मोरबा मांडा सामने। मोहनभाई! मोरबो अर्थात् मोर्चा ऐसा वापस। वापस भाषा ऐसी ली थी कि मोरबो मांडो। भाई! सामने मोरबो कोई नहीं।

अनिष्ट कोई चीज़ है नहीं। अनिष्ट कोई चीज़ ही नहीं और इष्ट कोई बाहर चीज़ नहीं। आत्मा में विकारीदशा होना, वह अनिष्ट है और निर्विकारीदशा आत्मा में से होना, वह इष्ट है। बाकी कोई इष्ट-अनिष्ट है नहीं। आहाहा! कहो, समझ में आया इसमें?

अरे! यह महिलायें रोवे न जब प्रतिकूलता हो तब? ऐसे मोर्यो कहलाये न क्या कहलाये वह? हाँ, ऐसा सब सुना हुआ। जब से मोर्यो मांडा, तब घर में आये वहाँ चैन नहीं, ऐसा बोले। चैन बाहर में होगा धूल में। क्योंकि बहुत साधारण महिला हो। मोर्यो हो न जब से घर में आये, तब से कुछ चैन नहीं। आर्थिक दशा ठीक नहीं घर, ऐसा कहे। खाने में अनाज में व्यवस्थितता नहीं मिलती, गहनों में व्यवस्थितता नहीं मिलती, इज्जत में व्यवस्थितता नहीं मिलती, कपड़े में व्यवस्थितता नहीं मिलती। यह अनिष्टता होगी? आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा कहते हैं कि भाई! तेरी दशा में राग-द्वेषभाव (हो), वह अनिष्ट है। त्रिकाली आनन्द और ज्ञानमूर्ति की श्रद्धा, ज्ञान, और स्थिरता की रमणता हो, वह इष्ट है। इष्ट की प्राप्ति। '**लद्धं**' है न? इष्ट मिल गया और अनिष्ट चला गया। उत्पाद-व्यय बताते हैं। आहाहा! ... है। नीचे इसका हरिगीत है।

ज्ञान सकल ज्ञेयों में पहुँचा, दर्शन विस्तृत लोकालोक।
सर्व अनिष्ट विनष्ट हुए, जो इष्ट सभी वे प्राप्त अहो!॥६१॥

इसका अन्वयार्थ लेते हैं पहले। **ज्ञान पदार्थों के पार को प्राप्त है...** केवलज्ञान की एक समय की पर्याय अनन्त पदार्थों को जानने के पार को पा गयी है। **और दर्शन लोकालोक में विस्तृत है;...** दर्शन भी लोकालोक को देखता है। ऐसा विस्तृत का अर्थ यह। समझ में आया? '**लोकालोकेषु विस्तृता**' भाषा है न? **सर्व अनिष्ट नष्ट हो चुका है...** देखो! भगवान परमात्मा केवलज्ञान पाये, उन्हें सब अनिष्ट का नाश हो गया है। कोई अनिष्ट रहा नहीं। आहाहा! **और जो इष्ट है, वह सब प्राप्त हुआ है। (इसलिए केवल अर्थात् केवलज्ञान सुखस्वरूप है।)** इष्ट तो केवलज्ञान और आनन्द है, वह प्राप्त तो हुआ है। वह केवलज्ञान और केवल आनन्द, वही आत्मा को इष्ट है। समझ में आया?

कहो, यह तो इष्ट पुत्र, इष्ट स्त्री और इष्ट पुत्री और इष्ट पति। समझ में आया?

कोई इष्ट नहीं, भाई! ये तो जगत के ज्ञेय हैं और जगत की पदार्थ की चीज़ें ज्ञान में ज्ञेय हैं। जैसे भगवान को ज्ञान में ज्ञेय है, वैसे वास्तव में तो तेरे ज्ञान में वे ज्ञेय हैं। वह ज्ञेय तेरा नहीं, तेरा ज्ञान ज्ञेय का नहीं। अर्थात् ज्ञेय जाननेयोग्य कोई इष्ट-अनिष्ट है नहीं। वस्तु के स्वरूप को जाने बिना जो मिथ्यात्व उत्पन्न हो, वह अनिष्ट है। जानने के पश्चात् भी सम्यग्दर्शन में जो कुछ राग-द्वेषादि उत्पन्न हों, वे भी अनिष्ट हैं। ओहोहो! शुभ-अशुभभाव अनिष्ट है, ऐसा कहते हैं। भगवानभाई! विकल्प उठे, वह अनिष्ट है। आहाहा! निर्विकल्प वीतरागदशा प्रगट हो, वह इष्ट है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा कि इष्ट-अनिष्ट के भाग बाहर करता है। यह ठीक है और अठीक है।

मुमुक्षु : पर के ऊपर लक्ष्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। पर में... पर में इष्ट-अनिष्ट कैसा? वह तो एकरूप है। यह ज्ञायक है, ज्ञेय है, प्रमेय है, ज्ञान में ज्ञात होनेयोग्य है। इसमें इष्ट-अनिष्ट कोई है नहीं। आत्मा को भूलकर मिथ्यात्वभाव हो वह महा अनिष्ट है। सम्यग्दर्शन के भान के पश्चात् भी जितने राग-द्वेष हों, व्यवहार आवे, वह व्यवहार अनिष्ट है, ऐसा कहते हैं। ले! ऐई! व्यवहार अनिष्ट है। व्यवहाररत्नत्रय, वह अनिष्ट है। आहाहा! परसन्मुख के परिणाम हैं न! अनिष्ट है। स्वसन्मुख के हुए परिणाम, वे इष्ट हैं, हितकर हैं।

टीका :- सुख का कारण स्वभावप्रतिघात का अभाव है। देखो! महासिद्धान्त। है न टीका? ६१ गाथा की टीका। **सुख का कारण...** आत्मा के आनन्द का कारण **स्वभावप्रतिघात का अभाव है।** स्वभाव के नुकसान करनेवाले का अभाव, स्वभाव को घात करनेवाले का अभाव। समझ में आया? अब इसका अर्थ करते हैं। यह तो सिद्धान्त कहा। **सुख का कारण स्वभावप्रतिघात का...** घात होना, स्वभाव का घात होना। समझ में आया? उसका अभाव होना, वह सुख का कारण है। स्वभाव का घात हो, उसका अभाव होना, वह सुख का कारण है। समझ में आया?

आत्मा का स्वभाव दर्शन-ज्ञान है;... अब इसकी व्याख्या करते हैं। आत्मा का स्वभाव क्या है? जानना-देखना। त्रिकाल जिसका स्वभाव जानना-देखना स्वभाव है। **क्योंकि दर्शन लोकालोक में विस्तृत होने से...** पहली व्याख्या की। वह ज्ञान है पहले में पाठ में। है न? **ज्ञान पदार्थों के पार को प्राप्त है और दर्शन लोकालोक में विस्तृत**

है;... अर्थ में पहले दर्शन (लिया है)। सामान्य है न इसलिए। **आत्मा का स्वभाव दर्शन-ज्ञान है; (केवलदशा में) उनके (-दर्शन-ज्ञान के) प्रतिघात का अभाव है,...** केवलज्ञान और केवलदर्शन में प्रतिघात अर्थात् घात करने का उसमें अभाव है। **क्योंकि दर्शन लोकालोक में विस्तृत होने से...** दर्शन तो भगवान का दर्शन तो लोकालोक को जानता है। **और ज्ञान पदार्थों के पार को प्राप्त होने से वे (दर्शन-ज्ञान) स्वच्छन्दता पूर्वक...** देखो! यह भगवान का केवलज्ञान, अरिहन्त का ज्ञान और उनका दर्शन स्वच्छन्दरूप से—स्वतन्त्ररूप से। स्वच्छन्द की व्याख्या यह है। **(-स्वतन्त्रतापूर्वक, बिना अंकुश, किसी से बिना दबे)...** किसी से दबाये बिना **खिले हुए हैं।** जैसे कमल की पंखुड़ी संकुचित हो और फिर खिले, उसी प्रकार भगवान का केवलज्ञान अन्तर में से खिल गया है। समझ में आया? **स्वच्छन्दतापूर्वक विकसित हैं (इस प्रकार दर्शन-ज्ञानरूप स्वभाव के प्रतिघात का अभाव है)....** उसके घात का उन्हें अभाव है। दर्शनघातपना है नहीं। **इसलिए स्वभाव के प्रतिघात का अभाव जिसका कारण है,...** स्वभाव के घात का अभाव जिसका कारण है। **ऐसा सुख अभेदविवक्षा से केवलज्ञान का स्वरूप है।** समझ में आया? क्या कहा इसमें, समझ में आया?

कि केवलज्ञान सुखस्वरूप है, ऐसा सिद्ध करना है। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, वह भी आनन्दस्वरूप है अन्दर। उसका अनुभव होकर केवलज्ञान जो प्रगट हुआ, वह केवलज्ञान आनन्दरूप है, ऐसा कहते हैं। क्यों? कि केवलज्ञान अर्थात् ज्ञान और दर्शन उसका स्वभाव है, वह परिपूर्ण प्रगट हुआ है। स्वच्छन्दरूप से—स्वतन्त्ररूप से दर्शन-ज्ञान परिपूर्ण है। उसके स्वभाव के घात का कारण वहाँ है नहीं। स्वभाव के घात का अभाव होने से वह दर्शन और ज्ञान का स्वभाव परिपूर्ण प्रगट हुआ है, इसलिए वह ज्ञान, वह सुखरूप है, वह ज्ञान, वह आनन्दरूप है। समझ में आया?

स्वभाव के प्रतिघात का अभाव जिसका कारण है, ऐसा सुख अभेदविवक्षा से केवलज्ञान का स्वरूप है। एक बोल लिया, एक भाग लिया। दूसरे प्रकार से उसी और उसी में है टीका में, हों! यह भी टीका में है। **(प्रकारान्तर से केवलज्ञान की सुखस्वरूपता बतलाते हैं:-) और, केवल अर्थात् केवलज्ञान सुख ही है,...** अब कहते हैं। आहाहा! भगवान आत्मा की दशा जहाँ पूर्ण प्रगट हो गई ज्ञान, आनन्द ही है, उसे आनन्द पूर्ण है।

क्योंकि सर्व अनिष्टों का नाश हो चुका है... पहले स्वभावप्रतिघात के अभाव की एक व्याख्या की, स्वभाव के प्रतिघात के अभाव की व्याख्या की। अब इष्ट-अनिष्ट। समझ में आया? मूल पाठ में ऐसा है न? '**णामं अत्थंतगयं लोयालोएसु**' पूर्ण स्वभाव प्रगट हुआ है, इसलिए स्वभाव प्रतिघात का उसमें अभाव है, यह निकाला। दो पद में। ज्ञान सबमें व्याप गया है, दर्शन सब देखता है। इसलिए उसके स्वभाव के प्रतिघात का उसमें अभाव है। स्वच्छन्दरूप से स्वभाव अपना परिणम रहा है। इसलिए वह ज्ञान, वह सुखरूप है।

अब दो पद की व्याख्या करते हैं। **और, केवल अर्थात् केवलज्ञान सुख ही है, क्योंकि सर्व अनिष्टों का नाश हो चुका है...** अनिष्ट अर्थात् अज्ञान और राग-द्वेष परिणाम। समझ में आया? यह अज्ञान जैसा कोई दुःख नहीं और राग जैसा दुःख बाद में। वास्तविक तो अज्ञान, वह दुःख है। समझ में आया? उस अज्ञान का भगवान को नाश हुआ है। अज्ञान में राग-द्वेष भी आ जाते हैं। राग-द्वेष के परिणाम भी अ-ज्ञान है। अज्ञान अर्थात् उनमें ज्ञान नहीं। इसलिए अज्ञान का नाश, समझ में आया? **सर्व अनिष्टों का नाश हो चुका है...** लो! भगवान को सर्व अनिष्ट का नाश हो गया। इतना अनिष्टपना रहा होगा (कि) उस धर्मास्तिकाय से आगे नहीं जा सकते, नहीं? सिद्ध भगवान ऊपर विराजते हैं। तो धर्मास्तिकाय नहीं तो आगे नहीं जा सकते। यह सुना है या नहीं? तो इतनी उनकी परतन्त्रता होगी या नहीं उन्हें? नहीं, नहीं। वह तो पूर्ण दशा पूर्ण स्वतन्त्र सुखरूप दशा प्रगट हो गयी है। वही उनका वहाँ रहने का ऐसा स्वभाव है। सुखरूप ऐसा वहाँ ही रहने का स्वभाव है। समझ में आया?

सम्पूर्ण इष्ट की प्राप्ति हो चुकी है। अनिष्ट का नाश हुआ है। सर्व। अब इसमें सर्व लगाने से कथंचित् अनिष्ट का नाश, कथंचित् इष्ट की प्राप्ति, ऐसा कहे तो अनेकान्त होगा या नहीं? ऐसा होगा नहीं अनेकान्त। अनेकान्त तो पूर्ण अनिष्ट का नाश, इष्ट की प्राप्ति। भगवान अरिहन्त परमात्मा को केवलज्ञान में पूर्ण इष्ट की प्राप्ति, अनिष्ट का नाश हुआ है। समझ में आया? कथंचित् अनिष्ट का नाश और कथंचित् इष्ट की प्राप्ति तो अनेकान्त उनका होता नहीं। तो सर्व लागू पड़ा यहाँ तो। **केवल-अवस्थायें, सुखोपलब्धि के विपक्षभूत दुःखों के...** भगवान के केवलज्ञान की दशा में सुख उपलब्धि, सुख का जो अनुभव, उसके विपक्षभूत जो दुःख **उसके साधनभूत अज्ञान का सम्पूर्णतया नाश हो**

जाता है... देखो! देखो, आचार्य स्वयं कहते हैं। **अज्ञान का सम्पूर्णतया नाश हो जाता है...** मिथ्यात्व, राग-द्वेष, वह सब अज्ञान है, वह ज्ञान नहीं। उसमें ज्ञान का अभाव है। आहाहा! समझ में आया? वह शुभभाव भी अज्ञान है, ऐसा कहते हैं। क्योंकि उसमें ज्ञान का अभाव है। शुभभाव में ज्ञान कहाँ है? वह तो राग है। आहाहा! समझ में आया?

केवल-अवस्थायें, सुखोपलब्धि... अर्थात् सुख का अनुभव (उसकी) प्राप्ति। उसके **विपक्षभूत दुःखों के साधनभूत अज्ञान का सम्पूर्णतया नाश हो जाता है...** उस दुःख का साधन अज्ञान, दुःख का कारण अज्ञान, मिथ्यात्व और राग-द्वेष दुःख का कारण, वह अज्ञानभाव है। आहाहा! दुःख का कारण यह बाहर की प्रतिकूलता, ऐसा नहीं कहा यहाँ। कोई निर्धनता, वह सब दुःख का कारण। वह कब? वह तो परवस्तु है। तो तुझे दुःख का कारण क्या है? भगवान आत्मा अपने को भूलकर अज्ञान और राग-द्वेष करे, वह सब अज्ञान है। अज्ञान अर्थात् उसमें ज्ञान नहीं। वह **सम्पूर्णतया नाश हो जाता है...** भगवान को अज्ञान सब नष्ट हुआ है। वीतरागविज्ञान हो गये, अकेले वीतरागी केवलज्ञान हो गये।

और सुख का साधनभूत परिपूर्ण ज्ञान... देखो भाषा! सुख के साधनभूत परिपूर्ण ज्ञान, सुख के कारणरूप परिपूर्ण ज्ञान, सुख के कारणरूप परिपूर्ण ज्ञान **उत्पन्न होता है,...** भगवान को तो इष्ट का, सुख का साधन तो ज्ञान उत्पन्न हुआ है। **इसलिए केवल ही सुख है।** इसलिए केवलज्ञान ही सुख है अथवा अकेला ज्ञान ही सुख है। **अधिक विस्तार से बस होओ। 'सौख्यमित्यलं प्रपञ्चेन'** विस्तार से। प्रपंच अर्थात् विस्तार। आहाहा! भगवान आत्मा में आनन्द है और ज्ञान है आत्मा में, ऐसी एकाग्रता करके जो केवलज्ञान और आनन्द प्रगट हुआ, वह ज्ञान ही स्वयं आनन्द है, कहते हैं। बहुत विस्तार किया। 'अलं' अब कहते हैं, पूरा होओ अब। समझ में आया? पूरा होओ अर्थात् समझे न? पूरा हो गया। ऐसा। **विस्तार से बस होओ।** लो, केवलज्ञान, वह आनन्दरूप है—ऐसा सिद्ध किया। समझ में आया? फिर उसकी श्रद्धा कराते हैं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १२, शुक्रवार, दिनांक ०१-११-१९६८
गाथा - ६२-६३, प्रवचन - ५३

यह ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन अधिकार। ज्ञान के साथ सुख होता है, यह सिद्ध करते हैं। क्योंकि आत्मा में ज्ञानस्वभाव है, वह त्रिकाल परिपूर्ण भरा हुआ है। तथा उसके साथ आनन्द—अतीन्द्रिय आनन्द भी त्रिकाल उसके साथ अविनाभाव पड़ा है। इसलिए जिसे सम्यग्ज्ञान हो, उसे आनन्द तो साथ में होता है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? ज्ञान हो और दुःख रहे, ऐसा नहीं होता। यहाँ तो पूर्ण की बात है, तो भी जहाँ सम्यग्ज्ञान चैतन्यस्वभाव अन्तर दृष्टि से पकड़ा तो आनन्द भी साथ ही होता है, भले थोड़ा (हो)। जिसे ज्ञान की दशा पूर्ण स्वभाव पड़ा है, उसमें से एकाग्र होकर पूर्ण प्रगट किया, उसे तो अनन्त आनन्द साथ में होता ही है। कहो, समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ६२

अब, ऐसी श्रद्धा कराते हैं कि केवलज्ञानियों को ही पारमार्थिक सुख होता है:— श्रद्धा कराते हैं। देखो, ६२ (गाथा)।

णो सद्दहंति सोक्खं सुहेसु परमं ति विगदघादीणं।
सुणिदूण ते अभव्वा भव्वा वा तं पडिच्छंति॥६२॥

नीचे इसका हरिगीत है।

घाति क्षीण हैं जिनके उनका, सुख ही सर्व सुखों में श्रेष्ठ।
किन्तु अभव्य न श्रद्धा करते, भव्यजनों को है श्रद्धेय॥६२॥

अन्वयार्थ :- 'जिनके घातिकर्म नष्ट हो गये हैं, उनका सुख (सर्व) सुखों में परम अर्थात् उत्कृष्ट है'... अर्थात् कि नीचे सुख है सही चौथे, पाँचवें (गुणस्थानों)

आदि में। यह सर्वोत्कृष्ट, ऊँचा सुख, पूर्ण सुख। '**सुहेसु परमं**' कहा है न? अज्ञानी के इन्द्रिय के सुख तो सुख है ही नहीं। परन्तु अतीन्द्रिय ज्ञान के साथ जो पूर्ण सुख है, वह परम सुख है, पूर्ण सुख है। समझ में आया? इसका अर्थ यह हुआ कि पहले आत्मा आनन्द, ज्ञानस्वरूप, उसकी अन्तर दृष्टि और अनुभव करने से उसके साथ अतीन्द्रिय आनन्द ज्ञान के साथ होता ही है, परन्तु केवली को अतीन्द्रिय ज्ञान के साथ पूर्ण सुख होता है। समझ में आया? आहाहा!

सुख नहीं इन्द्रिय के विषयों में, सुख नहीं मन के ज्ञान में। मन से होता ज्ञान और इन्द्रिय से होता ज्ञान, उसमें भी सुख नहीं। समझ में आया? यह आगे कहेंगे। वह आता है न ६३ में। '**रमंति विसएसु रम्मेसु**' यह '**रम्मेसु**' का अर्थ ही किया '**रम्येषु**'। समझ में आया? '**रम्याभासेषु**' संस्कृत में जयसेनाचार्य में। '**रम्मेसु**' शब्द रखा है न। रम्याभास है। जयसेनाचार्य की टीका में। '**रम्मेसु**' कहा न तुमने इन्द्रियों के सुख में? अरे! रम्याभास है। रमणीक कैसा सुख? वह दुःख है। आहाहा! भगवान आत्मा परसन्मुख देखकर विकल्प से सुख माने, वह तो दुःख है। कहो, समझ में आया? कहो, यह पैसा-बैसा में कितना सुख होगा? कामदार! जरा भी नहीं? दुनिया तो पैसेवाले को सुख कहती है। दुःखी कहे कोई? दुःखी ही है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : लूटने न आवे तो भी परसन्मुख की वृत्ति है कि यह पैसे मेरे, वह दुःख है। सुख कब था धूल में? सुख तो आत्मा में है। पर में सुख है, ऐसा माने वह मिथ्यादृष्टि मूढ़ है। अपने स्वभाव का घात करता है। समझ में आया? आहाहा! यह आता है अन्दर में, देखो न! उसमें ही आता है न सब वह?

'**सन्निरूपरागस्वात्मोत्थसुखमलभमानः सन् सरागसम्यग्दृष्टिरात्मनिन्दादिपरिणतो हेयरूपेण तदनुभवति।**' जयसेनाचार्य में है। सम्यग्दृष्टि को विषय की वृत्तियाँ हों, परन्तु वह दुःखरूप अनुभव करता है। कोई गधे पर चढ़ावे, तब चढ़े स्वयं। समझ में आया? और काला मुख करके, परन्तु वह प्रसन्न है नहीं। उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि धर्मी को आत्मा में आनन्द की रुचि और दृष्टि हुई है। समझ में आया? इसलिए उसे कहा है अन्दर देखो वह '**सन्निरूपरागस्वात्मोत्थसुखमलभमानः**' अनुभव स्थिरता न हो, ऐसा उसका अर्थ।

'**सरागसम्यग्दृष्टिरात्मनिन्दादिपरिणतो हेयरूपेण तदनुभवति।**' रागवाला है। देखो, अन्दर कहा है। '**तलवरस्थानीयचारित्रमोहदयेन मोहितः**' समझ में आया? धर्मी जीव को दृष्टि आत्मा के आनन्द के ऊपर होती है। कहीं भी यदि आनन्द सुख पैसा आदि—लक्ष्मी में माने तो वह धर्मबुद्धि नहीं रहती।

मुमुक्षु : धन्धा तो करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ करता ही नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : .... राज चलाता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : कुछ करता नहीं। होता है, उसे जानता है। कहो, समझ में आया?

जिसे अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद आया है अनुभव में, उस स्वाद के समक्ष दुनिया के विषय जिसे जहर जैसे लगते हैं। वृत्ति आती है, वह काले नाग जैसी लगती है। समझ में आया? इसका नाम धर्म की दृष्टि और सम्यक् है। राग का भाव... कहा नहीं था कल? मत्स्य को स्थल में (-जमीन पर) आना, वह दुःख लगता है, तो मछली को अग्नि में जाना, वह तो अंगारा जैसा लगता है। इसी प्रकार शुभ में आना, वह दुःख है तो अशुभ में आना, वह तो अंग जलता है अन्दर। आत्मा की शान्ति अंग, शान्तिरूपी अंग अशुभरूपी अंगारों से जलता है। समझ में आया? है न उसमें? श्लोक किसका है वह? पद्मनन्दि का होगा लगभग। पद्मनन्दि में आता है। ऊपर से इसका दृष्टान्त आता है। परन्तु वह श्लोक कहाँ का है, खबर नहीं। उसमें यह आता है। मत्स्य का दृष्टान्त आता है वहाँ पद्मनन्दि में। शुभ में आवे तो स्थल जैसा दुःख लगे और उसमें मत्स्य का दृष्टान्त है। फिर कुछ मिलाया नहीं। परन्तु वह आता है न, देखो! '**स्थलमपि दहति झषाणां किमङ्ग पुनरङ्गमङ्गराः**' है न? संस्कृत है अन्दर। गुजराती में है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं होगा। यह दृष्टान्त भी फेरफार लगता है पहला। दृष्टान्त आता है, परन्तु यह श्लोक ऐसा शब्द नहीं, चाहे जो हो। पूरा भी एक जगह से है। यह शब्दों की शैली पद्मनन्दि की नहीं। क्योंकि उसमें ऐसे शब्द आते नहीं। कहीं होगा अवश्य।

क्या कहा? देखो! यह धर्म अर्थात् कि दुर्लभ है धर्म और सरल है धर्म। परन्तु धर्म की दृष्टि होना, वह महादुर्लभ है। भगवान आत्मा चिदानन्द आनन्दस्वरूप है, ऐसी अन्तर दृष्टि होकर आनन्द का भान होना और आनन्द का स्वाद आना, उसमें प्रतीति और उसका ज्ञान (होता है), उसे सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहते हैं। समझ में आया? विषयवासना में सुखबुद्धि रहे और धर्म करे, ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया? ऐसा धर्म है, भाई! सम्यग्दृष्टि, क्षायिक सम्यग्दृष्टि हो, छियानवें हजार स्त्रियाँ हों घर में, परन्तु उसकी वृत्ति जो उठती है, वह दुःखदायक लगती है। दुःखवाली लगती है ऐसे। अंगारे ज्वाजल्यमान हों और जैसे शरीर को स्पर्श करें, ऐसे दुःख लगता है। कब यहाँ से छूटूँ। कमजोरी के कारण आता अवश्य है, परन्तु उसमें सुखबुद्धि, हितबुद्धि, उपादेयबुद्धि होती नहीं। ऐसी बात है। समझ में आया?

कहते हैं, जिसके घातिकर्म नष्ट हुए हैं, उनका सुख तो परम उत्कृष्ट है। यह उसमें से जरा निकाला। सम्यग्दृष्टि को भी उत्कृष्ट सुख नहीं, परन्तु सुख है सही। समझ में आया? मिथ्यादृष्टि को सुख जरा भी नहीं। चाहे तो छह खण्ड के राज पड़ा हो या इन्द्र के इन्द्रासन में हो, इन्द्र तो समकिती है, परन्तु यह बड़ी पदवी हो लो न! अहमिन्द्र की ३१ सागर की नौवें ग्रैवेयक, दुःखी है वह। भगवान आत्मा के अन्तर पक्ष में चढ़ा नहीं, इसलिए दुःखी है। निमित्त के पक्ष में चढ़ा हुआ दुःखी है। समझ में आया? कहते हैं, भगवान आत्मा केवलज्ञान प्राप्त... शुद्ध उपयोग के फलरूप से केवलज्ञान प्राप्त, उन्हें उत्कृष्ट सुख है।

ऐसा वचन सुनकर... ऐसा वचन सुनकर, सुनकर जीव उसकी श्रद्धा नहीं करते, वे अभव्य हैं। अभव्य अर्थात् वर्तमान धर्म के योग्य नहीं हैं। समझ में आया? तब अब कितने ही कहें, यह तो कुन्दकुन्दाचार्य की ऐसी कड़क वाणी है कि अभव्य कहते हैं। समझ में आया? उसमें लिखा है। '**वर्तमानकाले सम्यक्त्वरूपभव्यत्वव्यक्ति-परिणतास्तिष्ठति**' जयसेनाचार्य में है पहली लाईन। है, है, सब ठीक स्पष्टीकरण किया है। जयसेनाचार्य की टीका प्रकाशित होती है, हों, यह समयसार की। जयसेनाचार्य की टीका समयसार की प्रकाशित होती है वहाँ अजमेर। अजमेर में प्रकाशित होती है। पुस्तक बाहर लिखा है। ... बाहर प्रकाशित होगी। समयसार की।

यहाँ कहते हैं, अरे! सर्वज्ञपर्याय में सुख नहीं मानता, सुख है, ऐसा मानता है वह तो ठीक, परन्तु नहीं मानता, वह अभव्य है, नालायक है। उसे आत्मा की दृष्टि नहीं और आत्मा की दृष्टि हो तो केवलज्ञान में सुख माने बिना रहे नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसने नमूना देखा नहीं, इसलिए केवलज्ञान में अनन्त सुख है, ऐसा मानता नहीं। समझ में आया? अभव्य जीव... मिथ्यादृष्टि तो सही परन्तु अभव्य, नालायक। जिसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञानस्वरूप भव्यभाव का पाक जिसे नहीं। क्योंकि अभव्य है वह तो। भव्यभाव का पाक हुआ, ऐसा जो समकिती, उसे उस आत्मा का आनन्द है वह आंशिक, तो केवलज्ञानी को अनन्त आनन्द है, ऐसा भव्यजीव श्रद्धा करता है। समझ में आया? अभव्य को श्रद्धा नहीं। भव्य-अभव्य दो जाति के होते हैं न जीव? एक गोरडुं मूँग जैसे। गोरडुं समझ में आता है न? गोरडुं समझते हो? सीझता नहीं, ऐसा होता है न मठ-मूँग? मठ-मूँग। पानी से भी नहीं सीझता—नहीं चढ़ता। क्या कहते हैं भाषा तुम्हारी? स्पष्ट भाषा नहीं होती। ठोठ जैसी भाषा सब। स्पष्ट क्या भाषा ऐसी?

मुमुक्षु : पकता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पकता नहीं परन्तु उसकी भाषा क्या? कोरडुं हमारे गुजराती में कहते हैं। हिन्दी में उसकी भाषा होगी या नहीं? हिन्दी में भाषा है। यह सब ऐसे... ऐसे... सब समझने जैसे। हिन्दीवाले को इसकी खबर नहीं होती और अपने को... कहो, समझ में आया? वह मूँग-मठ होते हैं न (जो) जल से सीझते नहीं-पकते नहीं। ऐसा अभव्य जीव है, वह सर्वज्ञ को आनन्द है, उसे मानता नहीं। देखो! यहाँ तो अभव्य ठहराया।

आत्मा में आनन्द है। भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव केवलज्ञान पाये, उन्हें अनन्त आनन्द है, अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द। सुखी, वे पूर्ण परमात्मा हैं। लक्ष्मी आदि साधन नहीं, इसलिए दुःखी हैं और हमको यह सब साधन हैं पैसे, गर्म-गर्म रोटी सीधे (आवे)। क्या कहलाये तुम्हारी? तवे में से पड़े सीधे थाली में गर्म-गर्म गरमागरम। और राँधण हो न गर्म वह? चूल्हे की अग्नि में। भठ्ठी के राँधण और दाल। मूँग और दाल और चावल। उन्हें—कहीं भगवान को है ऐसा कुछ? आहाहा! वे दुःखी

होंगे ? अरे ! सुन न मूर्ख ! उस बाहर की चीज़ से तुझे सुख कब था ? वह तो कल्पना का दुःख था। भगवान को तो सर्वज्ञपद प्रगट हुआ है। अनन्त... अनन्त... अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द पूर्ण प्रगट हुआ है।

कहते हैं कि श्रद्धा न करे, वह अभव्य है और भव्य उसे स्वीकार करते हैं, ऐसी संक्षिप्त भाषा कर डाली। उसमें जयसेनाचार्य ने दो भाग किये। अमृतचन्द्राचार्य दो भाग करेंगे। लो, यह तो कड़क भाषा है। श्रद्धा नहीं करे, वह अभव्य और श्रद्धा करे, वह भव्य। दो ही बात। समझ में आया ? क्या होगा यह सब पैसेवाले और सब रूपवान और सब सामग्री क्या घर में कैसी होगी तुम्हारे सब ? फर्नीचर। लाख-दो लाख का फर्नीचर ऐसे झगझगाट होती हो। काँच और भात अन्दर मोर-फोर, वह होते हैं न तुम्हारे क्या कहलाते हैं वे ? तोरण होते हैं और मोर अन्दर रचे हों आकार में। अलमारी के अन्दर में मोर रंगे हुए। आहाहा ! ऐई ! मोहनभाई ! यह उसमें बैठा हो कुर्सी में ठीक से। स्त्री, पुत्र बैठे हों तो चक्रवर्ती का राज आया मानो। धूल भी नहीं, सुन न ! वह विष्टा की कचहरी में बैठा है। समझ में आया ? आहाहा !

आता है न श्लोक आता है। 'चक्रवर्ती की सम्पदा और इन्द्र सरीखे भोग, कागवीट सम मानत है सम्यग्दृष्टि लोक।' समझ में आया ? यह तो तुम्हारी हिन्दी भाषा है। 'चक्रवर्ती की सम्पदा...' जिसे सोलह हजार तो देव सेवा करे, ३२ हजार तो जिसे देश के नीचे राजा हो। समझ में आया ? ९६ हजार तो जिसे पद्मिनी जैसी स्त्रियाँ हों, ऐसे भोग 'चक्रवर्ती की सम्पदा और इन्द्र सरीखे भोग, कागवीट सम मानत है।' कौवे की विष्टा है, ऐसा समकिती मानता है। कहो, समझ में आया ? अज्ञानी को तो थोड़ा (हो), वहाँ तो आहाहा ! अपने तो ओहोहो ! २५-२५ लाख की आमदनी, ५-५ करोड़ की पूँजी और धूल धड़ाका। हमारे जैसा सुखी कोई नहीं। ऐई ! जादवजीभाई ! धूल में भी सुखी नहीं, सुन न ! तेरी धूल में।

सम्यग्दृष्टि चौथे गुणस्थान में 'चक्रवर्ती की सम्पदा और इन्द्र सरीखे भोग, कागवीट सम समानत है।' कौवे की विष्ट, कौवे की विष्टा। मनुष्य की विष्टा तो अभी खाये भी सही शूकर। कौवे की विष्टा तो निकलते ही कठोर होती है कठोर... कठोर। कुछ काम नहीं आती। खाद में भी जाये नहीं। क्योंकि स्वयं कठोर हो। इसी प्रकार

सम्यग्दृष्टि आत्मा में जिसने सम्यक् धर्म देखा है। समझ में आया? ऐसी दृष्टि में अपने को सुख अपने में मानता है, पर में सुख नहीं। ऐसा परम सुख भगवान को होता है, इसलिए भव्य अर्थात् समकिती उस सुख को मानता है। कहो, समझ में आया?

टीका :- इस लोक में मोहनीय आदि कर्मजालवालों के... देखो! '**मोहनीयादि-कर्मजालशालिनां**' '**कर्मजालशालिनां**' कर्मजालवाले ऐसा। जिसे मोहनीयादिकर्म-जालवाले। जाल। वह मोहनीयकर्म की जाल। आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उस जालवाले को उसे तो कहा जाता है। निमित्त है न वह मोहनीयजाल? भाव अपना उल्टा है।

मोहनीय आदि कर्मजालवालों के स्वभावप्रतिघात के कारण... मोहनीयकर्म तब ही उसे कहा गया कि उसमें जुड़ा। तब मोहनीयकर्म जालवाला है, ऐसा कहा गया है। **स्वभावप्रतिघात...** भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाव और आनन्दस्वभाव का वहाँ प्रतिघात है—नाश है। **और आकुलता के कारण...** दो बातें। मोहनीयकर्म की जालवाले जीव, उन्हें भगवान आत्मा में ज्ञान और सुख है, इसकी खबर नहीं। ऐसे जीव **स्वभावप्रतिघात के कारण और आकुलता के कारण सुखाभास होने पर भी...** वह सुखाभास—सुख जैसा आभास है। **होने पर भी उस सुखाभास को 'सुख' कहने की अपारमार्थिक रूढ़ि है;....** झूठी रूढ़ि है। जादवजीभाई! लो, पैसेवाले सुखी हैं, ऐसी झूठी रूढ़ि है, ऐसा कहते हैं। धूल में भी सुख नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : रूढ़ि तो है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : रूढ़ि का अर्थ क्या? मूढ़ जीव यह कहते हैं, ऐसा कहते हैं। मूढ़ जीव ऐसा कहते हैं अज्ञानी। कहो, समझ में आया? रूढ़ि अर्थात्? कहने की एक अज्ञानियों की पद्धति है, मूढ़ लोगों की पद्धति है पागल की, ऐसा कहते हैं। कहो, भीखाभाई! सत्य होगा यह?

मुमुक्षु : सच्चा प्रभु, आप कहो उसमें क्या....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा दूसरा हो तो भी कैसे बोला जाये? इसका अर्थ ऐसा हुआ।

मुमुक्षु : ऐसा अर्थ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा अर्थ नहीं, यह तो एक बात है। ऐसा अर्थ तो आता कहाँ है तुमको?

यहाँ कहते हैं कि **स्वभावप्रतिघात के कारण और आकुलता के कारण...** दो प्रकार लिये। एक तो मोहनीयकर्म की जाल में जो चिपटा है, उसे स्वभावप्रतिघात है, स्वभाव का घात है। घात है और आकुलपने के कारण **सुखाभास होने पर भी उस सुखाभास को 'सुख' कहने की अपारमार्थिक रूढ़ि है;...** लो, समझ में आया? यह ऊपर से निकाला। **और जिनके घातिकर्म नष्ट हो चुके हैं,...** ऐसा कहना है। समझ में आया? वह तो न्याय समझाया। **जिनके घातिकर्म नष्ट हो चुके हैं,...** अहो! भगवान आत्मा ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अन्तराय, उसे जिसने क्षय किया है, अपनी अल्पज्ञता और विरुद्ध अवस्था का नाश किया है, इसलिए इसके चार कर्म भी नाश हो गये हैं।

ऐसे केवली भगवान के,... आहाहा! जिन्हें तीन काल-तीन लोक का ज्ञान एक समय में, तथापि वह ज्ञान उपाधिरूप, दुःखरूप (नहीं) और परिणमन है, इसलिए खेदरूप नहीं, ऐसा कहते हैं। कितनी बात सिद्ध की है, देखो न! **केवली भगवान के, स्वभावप्रतिघात के अभाव के कारण...** अज्ञानियों को स्वभावप्रतिघात था, ज्ञानी को स्वभावप्रतिघात के अभाव के कारण। उसको आकुलपने के कारण, इनको अनाकुलपने के कारण **सुख के यथोक्त कारण का और लक्षण का सद्भाव होने से...** सुख का यथोक्त कारण। है न? सुख का कारण स्वभावप्रतिघात का अभाव। और लक्षण सुख का लक्षण अनाकुल। ओहोहो! सर्वज्ञ परमेश्वर पूर्ण अनाकुल आनन्द को प्राप्त हैं। स्वभाव के प्रतिघात का जिन्हें अभाव है और आकुलता का अभाव होकर जिन्हें अनाकुलता प्रगट हुई है। पूर्ण अनाकुल स्वरूप पूर्ण। स्वभाव एक समय का पूर्ण प्रगट हो गया है। पूर्ण अनाकुल है। केवली जैसे सुखी जगत में कोई नहीं। **पारमार्थिक सुख है**—देखा! उसके सुखाभास को सुख कहने की अपारमार्थिक रूढ़ि है अज्ञानियों की और यह वास्तव में सुख है, **ऐसी श्रद्धा करनेयोग्य है।**

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किसे पूछना परन्तु ? कहते हैं। उसके आत्मा को पूछना किसको ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु श्रद्धा में कब कहलाये ?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु जिसका भास ही नहीं कि यह आनन्द है, उसके बिना पूर्ण आनन्द की श्रद्धा करेगा कौन ? ऐसा कहते हैं। जो नमूना देखा नहीं तो उसे बिना पूरी चीज़ ऐसी होती है, यह निर्णय कौन करेगा ? कहो, समझ में आया ? भव्य श्रद्धा करता है, इसका अर्थ यह है कि उसे आत्मा का ज्ञान है और श्रद्धा में आनन्द है, वह श्रद्धा करता है, ऐसी श्रद्धा करता है। आहाहा ! जिस वस्तु का ख्याल ही आया नहीं, जो वस्तु कहीं वेदन में आयी नहीं, उसके बिना यह अनन्त आनन्द भगवान है, ऐसा मानेगा कैसे ? समझ में आया ? ऐसा कहते हैं यहाँ।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का पिण्ड है, पूर्णानन्द प्रभु है। उसका जहाँ अनुभव होता है तो उसे आनन्द का भान है। वह भान अंश में है। ऐसा आनन्द भगवान को पूर्ण हो, ऐसी श्रद्धा करता है, ऐसा कहते हैं। श्रद्धा, किसकी परन्तु श्रद्धा ? जिसका कुछ भास ही आया नहीं, ख्याल ही आया नहीं, वह श्रद्धा किसकी करेगा ? समझ में आया ? ऐसी बातें है, भाई !

अभी आये थे एक ब्राह्मण। यह यज्ञ में आये हैं न। लगभग तीन हजार ब्राह्मण आये हैं, आ गये हैं। पाणसणा के आये थे। तीन आये थे। कहा होगा न। यहाँ देखने आये थे। मैंने कहा, देखो भाई ! आत्मा के ज्ञान बिना सब विद्या और सब क्रिया खोटी है। आत्मा का ज्ञान, वह विद्या और वह आत्मा का ज्ञान वह सुख और वह धर्म। बाकी सब क्रियाकाण्ड थोथा है। वे तो सुनते थे। यहाँ उत्साह से आये थे न। पाणसणा के हैं। बहुत ब्राह्मण आये हैं। अभी कोई आया था। करेगा... आहाहा ! यहाँ बेचारे देखने आये थे और सुनने। वह नहीं लींबड़ी... प्राणभाई आते हैं न। ...वृद्ध आते हैं न वृद्ध न्यालचन्द। उनके पुत्र आये हैं पाणसणा के। लींबड़ी रहते हैं। उन्होंने कहा होगा कि

भाई देखो वहाँ लींबड़ी... वहाँ आये थे बेचारे खास। मैं सो रहा था वहाँ। यहाँ बैठे थे... फिर आये थे। आये थे यहाँ यज्ञ में। कहा, परन्तु यह आत्मज्ञान बिना की क्रिया और आत्मज्ञान बिना की विद्या, वह विद्या नहीं। आत्मा की विद्या, वह विद्या। विद्या समझे? बाकी सब थोथा थोथा। उसे ऐसा कि यह यज्ञ करूँ तो ... धूल भी नहीं, कहा, वहाँ। यज्ञ तो आत्मा का यज्ञ करे, वह समझे। उसका तो भान नहीं होता। समझ में आया? यह यहाँ कहते हैं, देखो!

ऐसी श्रद्धा करनेयोग्य है। जिन्हें ऐसी श्रद्धा नहीं है वे—मोक्षसुखरूपी के सुधापान से दूर रहनेवाले अभव्य—आत्मा में पूर्ण दशा प्राप्त और आनन्द-सुख नहीं, ऐसा माननेवाले, उसे सुख का वर्तमान भी अनुभव जरा भी नहीं। **मोक्षसुखरूपी के सुधापान...** अमृत का पेय। मोक्ष का सुख, वह अमृत का पेय है, अमृत का पेय। आहाहा! समझ में आया? सुधारस, आनन्दरस, अतीन्द्रिय आनन्दरस, वीतरागी रस ऐसे पान से दूरवर्ती। देखो, ऐसा कहा यह। **ऐसी श्रद्धा नहीं है वे—मोक्षसुख के सुधापान से दूर रहनेवाले अभव्य—मृगतृष्णा के जलसमूह को ही देखते हैं;...** मृगजल को पानी देखते हैं। इसी प्रकार पर में सुख देखते हैं। मृगजल में सुख देखते हैं। आहाहा! ऐसा।

पहले की अपेक्षा तो अभी कुछ पहुँचे पैसे, पुत्र ने विवाह अच्छा (किया), सब प्रकार से अभी तो बादशाही है, कहते हैं। मूढ़ है, कहते हैं। अभव्य है, ऐसा कहते हैं। लो! यहाँ तो यह कहते हैं। उसे अभव्य कहते हैं अभी। भले भव्य हो। समझ में आया? भगवान में अनन्त आनन्द है, ऐसे मोक्षसुख के सुधापान से दूरवर्ती है। उसे भान नहीं, कहते हैं। मोक्ष में सुख और मोक्ष की पर्याय में आनन्द, इसकी उसे खबर नहीं। **सुधापान से दूर रहनेवाले अभव्य—मृगतृष्णा के जलसमूह को ही देखते हैं;...** देखो! समझे न? मृगजल में पानी देखते हैं। धूल में भी नहीं पानी वहाँ। मर-मरकर पैर टूट जाये, ऐसा दिखाई दे कि ऐ... पानी... ऐ... पानी... परन्तु दो-चार-छह-आठ कोस, दस कोस आया तो भी पानी दिखता नहीं। पानी भी आता नहीं। ऐ... पानी हो तो कुछ हवा भी आनी चाहिए न ठण्डी? यह तो वह का वह दिखता है, ऐसा का ऐसा। क्या यह दिखता है? समझ में आया? ऐसा अनेक विषयों की तृष्णा में झंपापात करते हुए कहीं सुख दिखता नहीं। तथापि मृगतृष्णा के समूह में उसे सुख अनुभव करता है। जैसे उसमें

पानी अनुभव करता है, वैसे दुःख में सुख है, ऐसा अनुभव करता है। आहाहा! शुभ-अशुभ विकल्प हैं, वे दुःख हैं, उसमें वह सुख मान रहा है, कहते हैं। मृगजल की भाँति पानी नहीं और पानी मानता है। उसमें सुख नहीं और सुख मानता है, (वह) अभव्य है, कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? बाह्य कोई भी अनुकूल चीज़ उसकी सुन्दरता की, वैभवता की विभूति उसे भासित होने पर उसे कुछ होता है कि हाँ, मुझे कुछ ठीक है। कहते हैं कि मूढ़ है। मृगजल में जल मान रहा है। आहाहा! कहो, समझ में आया?

और जो उस वचन को इसी समय स्वीकार (-श्रद्धा) करते हैं,... अमृतचन्द्राचार्य ने जरा इसका अर्थ वह किया है। वहाँ तो यही (कहते) हैं (कि) श्रद्धा करे, वह भव्य है और श्रद्धा न करे, वह अभव्य है, जाओ। तब वह कहता था न प्रोफेसर हीरालाल। कुन्दकुन्दाचार्य के वचन ऐसे कड़क कि उनका माने वह भव्य और न माने वह अभव्य। अब सुन न! उनका माने नहीं, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। कुन्दकुन्दाचार्य कहीं घर का कहते हैं? ऐसा कि कुन्दकुन्दाचार्य देखो! उनका न माने उसे अभव्य। परन्तु उनका न माने अर्थात् वे कहते हैं वास्तविक वीतरागमार्ग। उस वीतरागमार्ग को न माने, वह अभव्य, नालायक है, उसमें क्या है? वह भटककर निगोद में जायेगा चार गति में। तू जीव तुझे तो नहीं माने परन्तु तू जीव है, यह तुझे खबर नहीं रहेगी। आहाहा! निगोद में जाने पर... निगोद समझे न? बटाटा / आलू, कन्दमूल। दूसरे तो जीव नहीं माने, परन्तु तुझे नहीं रहे कि मैं जीव हूँ, ऐसी खबर नहीं रहे, ले। तूने खोटे आरोप दिये हैं। जिसमें सुख नहीं, उसमें सुख माना है। बहुत जगह यह आता है। अभव्य भोग में सुख मानता है, अभव्य भोग के लिये धर्म करता है।

कहते हैं, **जो उस वचन को इसी समय स्वीकार (-श्रद्धा) करते हैं, वे शिवश्री के (-मोक्षलक्ष्मी के) भाजन-...** वह शिवश्री—मोक्षरूपी लक्ष्मी। लो! लक्ष्मी आयी इसमें। भगवानजीभाई! मोक्षरूपी शिव स्त्री। **(-मोक्षलक्ष्मी के) भाजन-आसन्नभव्य हैं,...** इससे अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त करेगा। आसन्न भव्य भव्य में भी निकट भव्यता है। उसकी भव्य में भी निकट भव्यता है। अल्प काल में केवलज्ञान प्राप्त करके अनन्त आनन्द को प्राप्त करेगा। समझ में आया? उसे ऐसा कहते हैं कि भगवान को पूर्ण आनन्द है, ऐसा आनन्द मुझमें है, ऐसा उसने जाना है। वे जीव आसन्नभव्य हैं। समझ

में आया? यह उसे किसी को पूछने जाना नहीं पड़ता, ऐसा कहते हैं। वह तो स्वयं उसे विश्वास है कि अहो! अल्प काल में अब हम मुक्त होनेवाले हैं। समझ में आया? केवलज्ञान पाकर सिद्ध होनेवाले हैं। क्योंकि पूर्ण सिद्ध का आनन्द, वह हमारे आनन्द के अंश में हमने माना है वह। समझ में आया? नमूने से पूरी चीज़ को देखा-जाना है। यह सुख ऐसा, परमात्मा को पूरा सुख है। पूर्ण घातिकर्म का नाश होकर अनाकुलता का आनन्द पूर्ण है और स्वभाव के घात का बिल्कुल अभाव है। हमारे अभी स्वभाव का थोड़ा घात है, तथापि वस्तु का भान है कि आत्मा ज्ञान और आनन्द है, ऐसी प्रतीति करता है, वह शिवश्री के लक्ष्मी को आसन्नभव्य अल्प काल में मुक्ति पायेगा। समझ में आया? आहाहा!

यह तो भाई! जन्म-मरण के अभाव की बात है। एक भी भव करना, वह कलंक है। चाहे तो स्वर्ग का भव हो। समझ में आया? भगवान अरूपी आनन्द का सरोवर प्रभु, यह माँस और हड्डियों में दिखाई दे, यह वह कहीं शोभा है? समझ में आया? भगवान अरूपी चैतन्यघन अनाकुल आनन्द का कन्द आत्मा है, वह इन माँस और हड्डियों के मध्य में दिखाई दे जेल में। नीचे कहेंगे। आहाहा! समझ में आया? कहो, जादवजीभाई! उसके बदले वह बैठा हो मकान के महल में, चारों ओर यह सब... आहाहा! बादशाही है, हों, तुम्हारे तो। वह भी प्रसन्न हो। कामदार! दूसरे कहे, तुम्हारे बादशाही लगती है। बहुत वैभव, ओहोहो! विभूति! विभूति-राख। विभूति-विपरीत भूति अर्थात् राख। भगवान आत्मा की विभूति, वह वास्तविक लक्ष्मी। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, जो जीव सर्वज्ञपर्याय में आनन्द पूर्ण है, ऐसी जो श्रद्धा करते हैं, वे भव्यजीव वर्तमान ही आसन्नभव्य हैं। अल्प काल में उनकी मुक्ति अर्थात् मोक्ष होगा, ऐसा वे भाजन हैं। मोक्ष होगा, ऐसी उनकी योग्यता है। आहाहा! **और जो आगे जाकर स्वीकार करेंगे, वे दूरभव्य हैं।** अभव्य तो स्वीकार करेंगे नहीं। भव्य के दो प्रकार। जो वर्तमान स्वीकार करेंगे, वे अल्प काल में मुक्ति पायेंगे और जो भविष्य में बहुत काल में स्वीकार करेंगे, वे दूरभव्य हैं। समझ में आया? ऐसे तीन भेद किये। आचार्य ने दो भेद किये थे। उसमें भव्य के दो भेद कर दिये अमृतचन्द्राचार्य ने। संक्षिप्त शब्दों में हो न! अन्दर उसका विस्तार आ जाये।

जिसके सन्मुख देखने से जिसमें आनन्द है, वह आनन्द जिसका उफने, उसकी पूर्णानन्द दशा का क्या कहना, कहते हैं। ऐसी पूर्णानन्द की दशा का उसे श्रद्धान आता है। समझ में आया? जिसमें आनन्द है, उस चीज़ को जाना नहीं, देखा नहीं और स्वीकार किस प्रकार करे? इसलिए नहीं स्वीकार करनेवाला अभव्य है अथवा वर्तमान वह मोक्ष के लिये योग्य नहीं। भविष्य में स्वीकार करेगा, तब योग्य है तो उसे दूरभव्य कहा जाता है।

भावार्थ :- 'केवली भगवान के ही पारमार्थिक सुख है'... वास्तविक सुख तो परमेश्वर केवलज्ञान प्राप्त ज्ञान की पूर्णता, वे सुखी हैं, ऐसा कहना है। उस ज्ञान की पूर्ण दशा में सुख है। सम्यग्ज्ञान के अंश में भी सुख है और पूर्ण ज्ञान में पूर्ण सुख है। समझ में आया? **ऐसा वचन सुनकर जो कभी इसका स्वीकार—आदर—श्रद्धा नहीं करते,...** कभी उसका स्वीकार, आदर और श्रद्धा करते नहीं, **वे कभी मोक्ष प्राप्त नहीं करते; जो उपरोक्त वचन सुनकर...** देखो! वे वचन सुनकर, ऐसा। कान में वचन पड़े। यह भगवान केवलज्ञानी पूर्ण आनन्द है, ऐसे वचन कान में पड़े। **अन्तरंग से इसका स्वीकार—आदर—श्रद्धा करते हैं,...** देखो, भाषा! समझ में आया? अन्तर से वे स्वीकार-आदर-श्रद्धा करते हैं। **वे ही मोक्ष को प्राप्त करते हैं। जो वर्तमान में श्रद्धा करते हैं, वे आसन्नभव्य हैं...** अभी माने वे निकट के मोक्ष के लिये योग्य हैं। **और जो भविष्य में श्रद्धा करेंगे वे दूरभव्य हैं।** लो! ओहोहो! एक ज्ञान के साथ सुख का वर्णन करते हुए कितना विस्तार और स्पष्टीकरण किया है, देखो! ज्ञान, वह आत्मा का और सुख भी आत्मा का। उसका ज्ञान होने से सुख और ज्ञान दोनों साथ में होते हैं। भगवान को पूर्ण ज्ञान होता है, पूर्ण आनन्द होता है। इसके अतिरिक्त कहीं सुख है नहीं। पर में नहीं, परन्तु पुण्य और पाप के विकल्प में भी सुख नहीं। समझ में आया? मिथ्या प्रयास करते हैं बेचारे, देखो न! देश छोड़कर परदेश में जाते हैं, परदेश में भटकते हैं। ऐई! वीरचन्दभाई!

मुमुक्षु : रुपयों के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : रुपये तो होनेवाले हों तो होते हैं। होते हैं अर्थात्? दिखते हैं, दूसरा क्या? वहाँ कहाँ उसके हैं रुपये? और उसके पास आते कहाँ है?

मुमुक्षु : तो किसके पास जाते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जाये, जड़ के पास जाते हैं। जड़, जड़ के पास जाता है। जड़ आत्मा के पास आवे ? भगवानजीभाई !

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : खाता कब था वहाँ, उसके पिता का वहाँ खाता कहाँ था ?

मुमुक्षु : बैंक में होता है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : बैंक बैंक की है, खाता खाते का है। आहाहा ! कहो, समझ में आया ? प्रसन्न हो कि मेरे एक करोड़ बैंक में पड़े हैं।

मुमुक्षु : ऐसे के ऐसे पड़े हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसे के ऐसे पड़े हैं। मर जाये, फू होकर चला जाये। जाये... बैंक में पड़े हों और चला गया। समझ में आया ? एक व्यक्ति कहे, परन्तु बैंक में इतने लाख रुपये पड़े हैं तो दो लाख क्यों नहीं निकालते ? परन्तु निकाले कहाँ से ? ममता घटे तो निकाले न। ऐई ! आहाहा ! यह बैंक में तो अनन्त आनन्द की लक्ष्मी पड़ी है आत्मा में, ऐसा कहते हैं। धर्मी की बैंक खुल गयी है। अज्ञानी की बैंक में ताला लगाया है। जिसने राग और स्वभाव को एक माना है, उसकी तिजोरी बन्द है, उसमें से लक्ष्मी निकलती नहीं। समझ में आया ? और राग तथा स्वभाव को भिन्न किया है, उसकी तिजोरी खुल गयी है। अन्तर के ज्ञान और आनन्द की लक्ष्मी खुल गयी। जितना एकाग्र हो, उतना आनन्द और ज्ञान बढ़ता जाता है। ज्ञान भले विशेष न हो परन्तु वह ज्ञान स्व को पकड़ने के लिये बढ़ता जाता है। समझ में आया ? यह लक्ष्मी है। आहाहा ! गजब परन्तु इस दुनिया में मोह बड़ा। आहाहा ! करोड़पति, दो करोड़पति जहाँ नाम सुने, वहाँ मनुष्य का अभिमान चढ़ जाता है। मुझे हो तो ठीक, हों ! ऐसा होता है। क्या तुझे हो तो ठीक ? दुःख ? धूल तो है धूल में।

आत्मा की लक्ष्मी, कहते हैं कि आत्मा में पड़ी है। देखो, कहा न ? **शिवश्री के भाजन...** होते हैं। मोक्षलक्ष्मी के भाजन। ओहो ! मैं स्वयं ही आत्मा अनन्त आनन्द और ज्ञान की मूर्ति ही हूँ। पूर्ण मेरा स्वभाव है। ... पूर्ण ... हुए बिना रहता नहीं। पूर्ण की

प्रतीति हो उस पर्याय में आनन्द न आवे, वह पूर्ण की प्रतीति है कहाँ? और पूर्ण ज्ञान और पूर्ण आनन्द प्रगट हुआ वहाँ तो पूर्ण दशा पूरी हो गयी। वह तो अरिहन्त परमात्मा सर्वज्ञदेव। परन्तु उन सर्वज्ञ को माननेवाले वे ऐसा कहते हैं कि सर्वज्ञ को माननेवाले कैसे होते हैं? कि उसे सर्वज्ञ का ज्ञान और पूर्ण आनन्द का जरा अनुभव होता है। समझ में आया? यह ज्ञान पूर्ण स्वरूप है, (ऐसा) अनुभव होने पर केवलज्ञान की श्रद्धा हो जाती है कि यह तो अकेली केवलज्ञान की मूर्ति ही है, आनन्द की मूर्ति ही आत्मा है। उसमें दुःख नहीं, उसमें कहीं कल्पना ऐसी चीज़ ही नहीं। ऐसी दृष्टि और ज्ञान होने पर वह पूर्ण ज्ञान और आनन्द की श्रद्धा करता है, वही भगवान का भक्त और सुखी है। कहो, समझ में आया? यह सब पोटला के पोटला दिखते हों उठाने के मजदूर सब दुःखी हैं, कहते हैं। मजदूर हैं या नहीं? कहाँ ले जाते हैं एक भी पाई साथ में? सब बड़े मजदूर। उस बड़े को बड़ी मजदूरी बहुत। पैसा हो अधिक ऐसे व्यवस्थित करना, दो लाख यहाँ डालना और पाँच लाख यहाँ डालना। करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़ हो, उसे अधिक बड़ी मजदूरी। आहाहा!

मुमुक्षु : उसके बिना चलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके बिना ही चलता है। एक द्रव्य दूसरे द्रव्य के बिना ही निभ रहा है। समझ में आया? एक तत्त्व दूसरे तत्त्व के अभाव में टिका है। दूसरे तत्त्व के आधार से टिका नहीं। दूसरा दूसरे से, स्व स्व से (टिकता है)। आहाहा! गजब बात, भाई! भाई! धर्म की श्रद्धा बड़ी है। वह कहीं ऐसी की ऐसी श्रद्धा, ऐसा नहीं। धर्म की श्रद्धा तो ऐसा स्वभाव पूर्ण स्वरूप, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द के सन्मुख होकर उसकी प्रतीति और भान (हो), वह धर्म की श्रद्धा। जिसकी सुखबुद्धि सबसे उठ गयी है। पूरी दुनिया से सुखबुद्धि उठ जाती है और सुखबुद्धि एक आत्मा में रहती है। कहो, समझ में आया? यह ६२ कहीं।

यह सरागसमकिती और वीतरागसमकिती, ऐसे भेद किये हैं, उसमें अन्दर जयसेनाचार्य में। भेद किये हैं। सरागसमकितदृष्टि ऐसा कि जरा सुखबुद्धि... वह आती है न विषयवासना। वीतराग समकिती को नहीं होता, ऐसा कहते हैं।

★ ★ ★

गाथा - ६३

६३ (गाथा) **अब, परोक्षज्ञानवालों के अपारमार्थिक इन्द्रियसुख का विचार करते हैं :-** अब भगवान का ज्ञान पूर्ण बताया। अपारमार्थिक ऐसे अज्ञानी परोक्षज्ञानवाले के इन्द्रियसुख का विचार करते हैं।

मणुआसुरामरिंदा अहिद्दुदा इन्दिएहिं सहजेहिं।
असहं ता तं दुक्खं रमंति विसएसु रम्मेसु॥६३॥

आहाहा! देखो! हमको आचार्य को भी '**रम्मेसु**' शब्द रखना पड़ा है। है तो '**रम्मेसु**' (अर्थात्) रम्याभास। संक्षिप्त शब्द करने हैं न इतने क्या (हो)?

सुरपति असुर नरेन्द्र सभी, पीड़ित हैं सहज इन्द्रियों से।
सह न सकें वे इस दुख को तो रम्य विषय में हैं रमते॥६३॥

अन्वयार्थ :- मनुष्येन्द्रों,... मनुष्य के इन्द्र—चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव इत्यादि। **असुरेन्द्रों,...** नीचे भवनपति के देव इन्द्र। **सुरेन्द्रों...** वैमानिक के देव। तीन लोक के देव इन्द्र आ गये। मनुष्य में इन्द्र अर्थात् बड़े चक्रवर्ती राजा आदि इत्यादि। नीचे असुरेन्द्र और वैमानिक के सुरेन्द्र। **स्वाभाविक (परोक्षज्ञानवालों को जो स्वाभाविक है ऐसी) इन्द्रियों से...** समझ में आया? जिनकी एक निजरस से ही स्वभाव से ही मैत्री वर्तती है, ऐसा। ऐसी स्वाभाविक है, ऐसी इन्द्रियाँ, **पीड़ित वर्तते हुए...** इन्द्रियों की नजर में उसे पीड़ा होती है कुछ भोग के लिये, इज्जत के लिये, रूप देखने के लिये इत्यादि। कहते हैं कि वे पीड़ित वर्तते हुए... पीड़ा होती है, अन्दर सहन नहीं होता। **उस दुःख को सहन न कर सकने से रम्य विषयों में रमण करते हैं।** गिर पड़ते हैं, करे न। जैसे नहीं जूनागढ़ में? वह बड़ा पत्थर है, नीचे लिखा है मरना हो वह वहाँ ऊपर चढ़कर पड़े-मरे। जम्पापात का पत्थर है उस ओर। अलग दिखता है पहले से। वहाँ चढ़कर मरे नीचे पड़कर मर जाये। उसी प्रकार यह विषयों की पीड़ा सहन नहीं होती तो पड़ता है ऐसे भू होकर। समझ में आया?

मुमुक्षु : मौज मनाता है न। आप कहते हो, पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या होगा यह ? भगवानजीभाई ! वे कहीं हम मौज मनाते हैं, लो ! मक्खन और मिठाई चढ़ाते (खाते) हों। यह कहते हैं कि परन्तु मक्खन और मिठाई में पड़ा, तुझे वेदना हुई न कि यह लूँ। उस वेदना में कूदता है तू, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया ? फीका साटा शक्कर के होते हैं न मीठे साटा। मीठे साटा और उसमें घी ऊँचा गाय का हो। डुबो-डुबोकर खाये, लो ! वह सुखी है या नहीं ? आहाहा ! क्या कहलाता है वह ? साटा कहते हैं न। बड़े-बड़े इतने बड़े। राजकोट के। वे सब साटा ही कहलाते हैं। बड़े साटा। वे दरबार गुजर गये। दरबार गुजर गये तो पूरे गाँव को, साटा इतने बड़े-बड़े पूरे गाँव को जीमाया था। जामनगर। बड़े-बड़े थे। बड़े बहुत लोग हो न ! दरबार के पीछे पूरा गाँव जीमाया साटा का। यह तो उससे पहले दरबार गुजर गये थे। समझ में आया ? वे तो राजा हो न, उन्हें क्या ? वहाँ लाख-दो लाख का खर्च। वे दुःखी हैं परन्तु कहते हैं। खानेवाले भी दुःखी, खिलानेवाले भी दुःखी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु वह जब जाति जीमती हो और लड्डूओं की... हो ठीक सी। सामने वह पाटा पड़ा हो और उसमें सब बैठे हों बड़े-बड़े पगड़ीवाले। सामने आगे बैठें या नहीं जाति में ? जादवजीभाई ! जाति के बड़े बैठें सामने। फिर ऐई ! गप्पा मारे आढ़े-टेढ़े। बड़ी जाति हो दो हजार, तीन हजार, पाँच हजार लोग। वे आवे-जाये, देखते जाये कि यह फलाना है और बातें करते हों। अपने घर में जाति जीमती है। धूल में भी सुख नहीं, सुन न ! मूढ़ है। जाति कब तेरी थी और वस्तु कब तेरी थी ? उसे ऐसा कि पाँच हजार खर्च किये, दस हजार खर्च किये सफल-सफल हुए। गजब भाई यह ! मोहजाल भूत की।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ले ! खर्च किये का दुःख कहाँ है ? खर्च किये तो जड़ खर्च हुए हैं। भाव का दुःख है, ऐसा कहते हैं। देखो न, क्या कहा यह ?

उस दुःख को सहन न कर सकने से... कहते हैं कि विषय की वासना। एक विषय भोग की नहीं, परन्तु रूप की, इज्जत की, सूँघने की, रस चखने की, विषय स्पर्श

करने की ऐसी जो वृत्ति उठती है, तब वह दु:ख सहन होता नहीं, इसलिए कूदता है ऐसा। समझ में आया? कच्चा कफ हो न इतना बड़ा मक्खी चाटने जाये तो चिपक जाये। दो पंख से चिपक जाये, उड़ने का रहे नहीं कुछ। इसी प्रकार पर में... करके दु:ख में कूदता है। '**रम्मेसु**' अर्थात् रम्याभास हों, ऐसा। '**रम्याभासेषु**' रम्य जैसा लगता है, है नहीं। समझ में आया?

टीका :- प्रत्यक्ष ज्ञान के अभाव के कारण... देखो! अब आया। पहले उससे दूसरा बताते हैं। **प्रत्यक्ष ज्ञान के अभाव के कारण परोक्ष ज्ञान का आश्रय लेनेवाले इन प्राणियों को...** प्रत्यक्ष ज्ञान भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप प्रत्यक्ष मति-श्रुत से होना चाहिए या केवलज्ञान से होना चाहिए, ऐसे **ज्ञान के अभाव के कारण परोक्ष ज्ञान का आश्रय लेनेवाले...** देखो! यह तो मन और इन्द्रिय के ज्ञान का आश्रय करने से **इन प्राणियों को उसकी (-परोक्ष ज्ञान की) सामग्रीरूप इन्द्रियों के प्रति...** परोक्ष ज्ञान की सामग्री तो इन्द्रियाँ हैं। उनके प्रति **निजरस से ही (-स्वभाव से ही) मैत्री प्रवर्तती है।** स्वभाव ही ऐसा इसका है। क्योंकि साधन यह माना है। वहाँ सहज मैत्री प्रवर्तती है, इन्द्रियों में प्रवर्तती है। **प्रति निजरस से ही (-स्वभाव से ही)...** वह पाठ था न वहाँ। '**इंदिएहिं सहजेहिं**' इसका अर्थ किया है यह। **निजरस से ही (-स्वभाव से ही) मैत्री प्रवर्तती है।** यह आत्मा के ज्ञान के अभाव में इन्द्रियाँ सामग्री परोक्ष ज्ञान की है, इससे अज्ञानी को इन्द्रियों के प्रति मैत्री वर्तती है। आत्मा के प्रति मैत्री वर्तती नहीं। आहाहा! आत्मा का शत्रु हुआ है, कहते हैं। **मैत्री प्रवर्तती है।** इन्द्रियाँ सर्वस्व है उसे। परोक्ष ज्ञानवाले वहाँ जाते हैं। प्रत्यक्ष ज्ञान का तो अभाव है, अन्तर ज्ञान का तो अभाव है, इसलिए उस ज्ञान में इन्द्रियाँ सामग्री है तो वहाँ प्रीति जाती है, वहाँ मैत्री जाती है।

इन्द्रियों के प्रति मैत्री को प्राप्त... इन्द्रियों के प्रति मैत्री एकत्वबुद्धि प्राप्त **उन प्राणियों को, उदय प्राप्त महामोहरूपी कालाग्नि ने ग्रास बना लिया है,...** लो! मिथ्यात्वरूपी भाव, महामोहरूपी कालाग्नि। महामोह मिथ्यात्वरूपी काल-अग्नि ग्रास कर गयी, खा गयी उसे। पूरे आत्मा को ग्रास कर गयी। **तप्त लोहे के गोले की भाँति (-जैसे गरम किया हुआ लोहे का गोला पानी को...) अत्यन्त तृष्णा उत्पन्न हुई है;...** तृषा अर्थात् चाहे जो पानी डालो शोषित होता है। **अर्थात् वह शीघ्र ही पानी को सोख लेता**

है... देखो! उस तपे हुए गोले को तृषा हुई। जितना पानी डालो चूस जाता है ऐसा। इसी प्रकार अज्ञानी को इतनी तृष्णा आयी कि चाहे जितने साधन विषय के हों, परन्तु उसे पूरा होता नहीं, तृप्ति होती नहीं।

अत्यन्त तृष्णा उत्पन्न हुई है; उस दुःख के वेग को सहन कर सकने से... तृष्णा उत्पन्न हुई, ऐसा कहते हैं। यह चाहिए... यह चाहिए... यह चाहिए... यह चाहिए। आहाहा! **दुःख के वेग को सहन कर सकने से उन्हें व्याधि के प्रतिकार के समान (-रोग में थोड़ा सा आराम जैसा अनुभव करानेवाले...)** वह विषयवासना रोग है और उसका वह प्रतिकार मानो मैं दवा करता हूँ, ऐसा लगे घड़ीभर। **(उपचार के समान) रम्य विषयों में....** माने वे अनुकूल विषयों में **रति उत्पन्न होती है। इसलिए इन्द्रियाँ व्याधि समान होने से...** वे इन्द्रियाँ रोग हैं। आहाहा! **और विषय व्याधि के प्रतिकार समान होने से...** उपचार है उसका। **छद्मस्थों के पारमार्थिक सुख नहीं हैं।** छद्मस्थ को वास्तविक सुख नहीं, छद्मस्थ शब्द से यहाँ संसारी, संसारी शब्द से मिथ्यादृष्टि यहाँ लेना। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि है, वह संसारी नहीं, ईषतसिद्ध है अथवा जीवनमुक्त है। आहाहा! समझ में आया? परमेश्वर पूर्ण मुक्त है। समकिती ईषतमुक्त है, संसारी मिथ्यादृष्टि पूरे बन्धन में है। ऐसा कहते हैं, देखो! समझ में आया? **छद्मस्थों के पारमार्थिक सुख नहीं हैं।** जयसेनाचार्य ने '**संसारिणां वास्तवं सुखं नास्ति।**' ऐसा कहा। संसारसुख तो चौदहवें गुणस्थान तक कहलाता है। वह नहीं। संसारी शब्द से जिसका संसार ही प्रिय है। ऐसे राग को प्रिय मानकर, ऐसे संसारी को जरा भी सुख है नहीं। ज्ञानी को सुख है और पूर्ण ज्ञानी को पूर्ण सुख है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १३, शनिवार, दिनांक ०२-११-१९६८
गाथा - ६४, प्रवचन - ५४

ज्ञानतत्त्व अधिकार, प्रवचनसार। यहाँ टीका ऐसी चलती है कि परोक्ष ज्ञान में इन्द्रिय जैसे जीवित है, उसे आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं। आत्मा स्वयं अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। उसका जहाँ ज्ञान और आनन्द नहीं, उसे—परोक्षज्ञानवाले को तो इन्द्रिय... उसका लक्ष्य इन्द्रिय के ऊपर है, पर विषय के ऊपर है। समझ में आया? **जहाँ तक इन्द्रियाँ हैं,...** अर्थात् इन्द्रियाँ जीवित हैं। जीवित अर्थात्? कि जिसके ऊपर रति है। इन्द्रियों के विषयों में प्रेम है, तब तक इन्द्रियाँ जीवित हैं। **वहाँ तक स्वभाव से ही दुःख है,...** सहज ही उसे भाव से दुःख है। किसी जीव से या साधन से, ऐसा कुछ है नहीं। उसके भाव से वह दुःखी है। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप है। उसका अतीन्द्रिय ज्ञान नहीं हुआ और उसे जीवित नहीं देखा, जीवित नहीं जाना और इस परोक्ष ज्ञान में इन्द्रियाँ जीवित जानी, उसके विषय में जिसे ... यह स्वभाव से-भाव से दुःखी है। किसी निमित्त से दुःखी है, ऐसा नहीं।

★ ★ ★

गाथा - ६४

ऐसा न्याय से निश्चित करते हैं :—

जेसिं विसएसु रदी तेसिं दुक्खं वियाण सब्भावं।
जइ तं ण हि सब्भावं वावारो णत्थि विसयत्थं॥६४॥

जिनको विषयों में रति होती, उनको दुख स्वाभाविक हो।
यदि स्वाभाविक दुख नहिं हो तो, विषयों में व्यापार न हो॥६४॥

यहाँ कहते हैं कि जीवित इन्द्रियाँ अर्थात् जिसे इन्द्रियों के विषय के प्रति रति है,

उसे इन्द्रियाँ जीवित हैं, उसे पर ज्ञान ही सब भासित हुआ है। परोक्ष ज्ञान जो है दुःखरूप है, वही सर्वस्व है, ऐसा भासित हुआ है।

अन्वयार्थ :- जिन्हें विषयों में रति है, उन्हें दुःख स्वाभाविक जानो; क्योंकि यदि वह दुःख स्वभाव न हो तो... उसके भाव में यदि दुःखरूप भाव न हो **तो विषयार्थ में व्यापार न हो।** तो पर को देखने को विषय का व्यापार वह नहीं करे। विषय की ओर के झुकाव में घिसकर जाता है, वह हो नहीं सकता। दुःखी है। समझ में आया? निर्धनता, इसलिए दुःखी है; सरोग, इसलिए दुःखी है; शरीर कट जाये, इसलिए दुःखी है—ऐसा नहीं है। जिससे पर में प्रीति है, वह भाव ही दुःखरूप है। समझ में आया? स्वभाव की रुचि की प्रीति नहीं, अपना आनन्द-ज्ञानस्वभाव, अपनी निज निधि, उसका जिसे प्रेम नहीं, उसे इन्द्रिय के विषय में प्रेम वर्तता है और उसके कारण स्वभाव से दुःखी है। यह अर्थ विस्तार से करेंगे।

टीका :- जिनकी हत इन्द्रियाँ जीवित (-विद्यमान) हैं,... इन्द्रियाँ विद्यमान हैं। इन्द्रियाँ तो विद्यमान हैं केवली को भी। इसका अर्थ कि जिसने इन्द्रियों के प्रति प्रीति की है, उसे इन्द्रियाँ जीवित हैं। समझ में आया? भगवान अणीन्द्रिय आत्मा, जड़ इन्द्रिय का स्वभाव जड़ है, वह आत्मा के स्वभाव से भिन्न है, तथापि जिसे इन्द्रियों के प्रति प्रीति है, रुचि है, वह स्वभाव से दुःखी है। संयोग प्रतिकूल से दुःखी है, ऐसा नहीं। समझ में आया? कठिन बात! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। उसकी जो रुचि और प्रीति हो, तब तो आत्मा में वह आनन्द माने। अज्ञानी को उस आत्मा का आनन्द और ज्ञान, वह मैं हूँ, ऐसा भान नहीं। प्रत्यक्ष जो अतीन्द्रिय है, उसका भान नहीं; इसलिए इन्द्रियों के प्रति ही उसका झुकाव है। अर्थात् मन और इन्द्रियों से होता ज्ञान, उसके प्रति की इन्द्रियों के प्रति की वृत्ति, वह वर्तमान दुःखी है। इसलिए वह विषयों की तरफ कूद पड़ता है।

अरे! **हत इन्द्रियाँ जीवित हैं,...** भाषा इतनी डाली आचार्य ने अधिक। अरे! निकृष्टता जड़ इन्द्रिय और भाव इन्द्रिय वह जीवित है, **उन्हें उपाधि के कारण दुःख नहीं है...** उनको दुःख शरीर में रोग आया, निर्धनता है या पुत्र नहीं, बांझ है, अविवाहित है, रहने को घर नहीं, सोने के लिये मकान नहीं, ओढ़ने को कपड़ा नहीं, इससे दुःखी नहीं।

उसे परसन्मुख के इन्द्रिय के विषय का प्रेम है, वह दुःख है, बस हो रहा। समझ में आया? आहाहा! अज्ञानी को पर के प्रति रुचि है। धर्मी को इन्द्रियाँ जीवित नहीं। धर्मी को तो आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानमय आनन्द है, उसके प्रेम में इन्द्रिय का प्रेम छूट गया है। इन्द्रिय के विषय में रतिपना ज्ञानी को, धर्मी को छूट गया है। समझ में आया? उसे धर्मी कहते हैं। ऐसे धर्मी-धर्मी धर्म करते हैं, परन्तु उससे क्या?

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का पिण्ड प्रभु है आत्मा। सच्चिदानन्द सत्-शाश्वत् ज्ञान और आनन्द है वह। उसका जिसे प्रेम है, उसे इन्द्रिय के विषय का प्रेम जल गया है। समझ में आया? और जिसे इन्द्रिय के विषय का प्रेम और रति जीवित इन्द्रियाँ हैं, उसका आत्मा अतीन्द्रिय मर गया है। मर गया अर्थात्? उसकी दृष्टि में उसका विद्यमानपना भासित नहीं होता। समझ में आया? बड़े-बड़े महात्मा भी, कहते हैं, क्रोध, मान, माया, लोभ लेने के लिये मर पड़ते हैं, वे बेचारे इन्द्रिय के विषय के प्रेमी दुःखी हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? अपनी कीर्ति सुनने के कामी, रूप देखने के कामी, दूसरे महत्ता दे, उसे देखने में तड़फड़िया मारता हो, तलसता हो उसे... कहाँ जायेगा? यह जिसे ऐसा प्रेम है, उसे इन्द्रियाँ जीवित हैं, वह बेचारा दुःखी है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसकी महत्ता? बाहर की या अन्दर की? कैसी होगी वीरचन्दभाई? बाहर की महत्ता है। मैं बड़ा... आहाहा! यह इन्द्रियाँ जीवित, परोक्ष ज्ञान जीवित है, चैतन्य को मार डाला है। यह सहज दुःखी ही है। स्वाभाविक सहज दुःखी है। उसे संयोग नहीं या संयोग अनुकूल हो, इसलिए दुःखी है या दुःखी नहीं, यह व्याख्या लागू नहीं पड़ती। उसे तो अतीन्द्रिय आनन्द का जीवन जहाँ नहीं, भगवान अतीन्द्रिय ज्ञानमूर्ति प्रभु है, उसकी जहाँ प्रीति और रुचि से जीवित देखा, जाना, अनुभव किया नहीं... समझ में आया? वह विषय के प्रेम में कूदता है वह। विषय शब्द से अकेला अशुभ, ऐसा नहीं। दृष्टान्त अशुभ का देंगे, भाई! नीचे शुभ-अशुभ दोनों में कूदा है। अन्तर विषय छोड़ा है, इसलिए पर के शुभाशुभ के परिणाम विषय जितने, वहाँ कूद पड़ता है वह। समझ में आया?

जिनकी हत इन्द्रियाँ... अरे! निंद्य और निकृष्ट और हल्की ऐसी इन्द्रिय जिसे

भावेन्द्रिय अथवा द्रव्येन्द्रिय **जीवित हैं, उन्हें उपाधि के कारण (बाह्य संयोगों के कारण, औपाधिक) दुःख नहीं है...** बाह्य संयोग के कारण औपाधिक नहीं, परन्तु स्वाभाविक दुःखी है। अन्दर में कषाय अग्नि से सुलग रहे हैं। समझ में आया? ... मेरी महत्ता दिखाई दे। स्त्री कहाँ उसे थी? अन्दर जो पर में कूदता है, रति करता है, वह टीका (आलोचना) करे तब दुःखी है। प्रीति है अर्थात् पर में प्रेम करे और वह मानो विषय मेरा रोग का... यह सब उपचार है। रोग का भी औषध उपचार है न? इसी प्रकार यह रति करता है, उसे यह विषय छोड़ने का उपचार करे, उसे उपचार मानता है। यह उपचार भी सच्चा नहीं और रति भी सच्ची नहीं। सच्ची नहीं अर्थात् आत्मा का स्वरूप नहीं, ऐसा। रति, रतिरूप से जीवित और सच्ची है। समझ में आया?

धर्मी को इन्द्रियाँ जीवित नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवान आत्मा ज्ञान और चैतन्य और आनन्द का पिण्ड प्रभु है। उसकी जिसे अन्दर प्रीति, रुचि से आत्मा का स्वीकार करके आत्मा को प्राप्त किया है, इन्द्रिय के विषय का प्रेम धर्मी को होता ही नहीं। समझ में आया? यह कीर्ति अनुकूल सुनकर प्रसन्न हो, ऐसा ज्ञानी को नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह विषयभोग में वासना में पड़ा सुखी है, ऐसा मानता नहीं। देखो, धर्म की यह पद्धति है। धर्म अर्थात् ऐसा का ऐसा बाहर छोड़ना और बैठ जाना और इस शरीर से विषय नहीं लिया, इसलिए धर्म हुआ, ऐसा नहीं। जिसने अणीन्द्रिय भगवान आत्मा दृष्टि में, स्वीकार में, सत्कार में लिया नहीं, उसे यह इन्द्रिय के विषय की ओर का कूदना छूटता नहीं। वहाँ रति में झुकाव हो गया है, ऐसा कहते हैं। अरेरे! ... उसमें वह जीवित है। उसे स्वाभाविक दुःख ही है। समझ में आया?

नौवें ग्रैवेयक गया ग्यारह अंग को पढ़नेवाला, नौ पूर्व को पढ़नेवाला, अट्ठाईस मूलगुण पाले, वह भी दुःखी होगा? वहाँ इन्द्रियज्ञान होगा? समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं कि भाई! भगवान आत्मा आनन्द की, ज्ञान की मूर्ति अरूपी चिद्घन अनादि-अनन्त। शुद्ध सच्चिदानन्द प्रभु है, उसकी जिसे प्रीति है, उसे विषय की प्रीति नहीं होती और उसकी जिसे प्रीति नहीं, रुचि-दृष्टि हुई नहीं, उसे पुण्य-पाप और इन्द्रिय के विषय में सुख (दिखता है, परन्तु) वह सुखी नहीं। वह नौवें ग्रैवेयक गया हो परन्तु इन्द्रिय के विषय में ही उसे प्रेम है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! हजारों रानियाँ छोड़ी हों। समझ में

आया? जंगल में नग्न मुनि रहता हो। परन्तु भाई! भगवान आत्मा का पक्ष छोड़ दिया। मात्र इन्द्रिय के ओर का झुकाव का ही उसे विकल्प का भाव है। इसलिए उसमें कूद पड़ता है, दु:खी है... दु:खी है। आहाहा! समझ में आया?

क्योंकि उनकी विषयों में रति देखी जाती है। बाह्य पदार्थ में उसे प्रेम देखने में आता है। अन्तर में प्रेम देखने में आता नहीं। **ऐसे स्वाभाविक**—अब दृष्टान्त देते हैं। दृष्टान्त तो स्थूल है सब, हों! उसमें तो नहीं तो वह नौवें ग्रैवेयक में मिथ्यादृष्टि गया, उसे भी इन्द्रियाँ जीवित हैं वास्तव में तो। अतीन्द्रिय ज्ञायकमूर्ति की जहाँ दृष्टि का अस्तिपना भासित नहीं हुआ, इसलिए वहाँ ही उसका जीवितपना उपजकर परोक्ष ज्ञान का जीवितपना है। वह परोक्ष ज्ञान ही इन्द्रिय और मन को होता और उसकी ओर झुकाववाला भाव, वह प्रेम, वह दु:ख ही है। आहाहा! समझ में आया?

उनकी विषयों में रति देखी जाती है। ऐसे स्वाभाविक—जैसे-हाथी हथिनीरूपी कुट्टनी के शरीर-स्पर्श की ओर,... झुकते हैं। हाथी है, वह हथिनी के शरीर का स्पर्श करने को झुकता है। समझ में आया? **हाथी हथिनीरूपी कुट्टनी...** देखो! कुट्टनी हो या अनुकूल ... रस करने। लकड़ी का बनावे और कपड़ा का बनाकर डालते हैं न खड्डे के ऊपर। उसके ऊपर स्पर्श करने को झुकता है। कहते हैं, उसे **शरीर-स्पर्श की ओर,... दौड़ते हुए दिखाई देते हैं,...** ऐसा है न अन्त में? इसी प्रकार भगवान में से तो हट जाता है। वहाँ झुकता है। शरीर को स्पर्श करने के लिये झुकता है, कूद पड़ता है, तड़फन डालता है। आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की खान होने पर भी उसकी इसे खबर नहीं। इसलिए जीवित इन्द्रियों के विषयों में दौड़ता है। उसे जीवित मानो वे ही हैं, ऐसा। यह अतीन्द्रिय आनन्द हूँ, वह हूँ नहीं। समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि को ऐसा नहीं होगा? नहीं। इन्द्रियों की ओर वह झुकता ही नहीं। समझ में आाय? विकल्प आदि होता है और वे क्रियायें होती हैं, वे सब जड़ की हैं, विकल्प में जिसे रुचि और प्रेम नहीं। जिसे आत्मा अतीन्द्रिय आत्मा भगवान परमेश्वर ने कहा हुआ, वह आत्मा ज्ञान में लेकर जिसे आनन्द का प्रेम है, उसे यह इन्द्रिय की ओर का झुकाव है ही नहीं, ऐसा कहते हैं। ओहो! छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में चक्रवर्ती दिखाई देता है, वह भोग में दिखता है न! बापू! वह (नहीं) भाई! उसकी ओर

रुचि नहीं इसलिए उसकी ओर वे झुके नहीं। भगवान आत्मा की दृष्टि होने से आनन्द में झुके हुए हैं। समझ में आया? बहुत कठिन भाई! दुनिया के साथ तो कुछ मिलान खाये, ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया?

हाथी हथिनीरूपी कुट्टनी... कुट्टनी अर्थात् ऐसे जीवित हो या खोटी वह बनायी हुई, उसके **गात्र के स्पर्श...** करने के लिये झुकता है। **मछली (मछली को पकड़ने के लिये रखे हुए लोहे के) बंसी में फँसे हुए माँस के स्वाद की ओर,...** झुकता है। काँटे में रहा हुआ कोई ललचाने के लिये रखी हुई खाने की वस्तु। आटे के गोले डालते हैं अभी। आटा हो न आटा, उसकी लोई बनावे और लोहे का खांचा हो न, उसमें डाले।... मछली आवे खाने तो काँटा घुस जाये। वहाँ हमारे पालेज में देखा हुआ है। तालाब है न वहाँ पानी ... मुसलमानों का गाँव है, मुसलमान आवे वहाँ। फिर आटा डालकर पकड़ ले।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, परन्तु यह तो माँस को तो रखे, उसकी अपेक्षा यह तो आटा रखे, ऐसा मेरा कहना है। वह तो रखे। यहाँ तो समुच्चय लिया है न। आमिष अर्थात् खाने की वस्तु। कोई भी एक सड़ा हुआ टुकड़ा डाले, रोटी का डाले, पूड़ी का डाले, मिर्ची का डाले, कोई भी एक टुकड़ा लो, या माँस का टुकड़ा। माँस तो घर-घर में कहाँ से हो साधारण को। गरीब मनुष्य हो, मछलियाँ मारने तो जाता हो। समझ में आया?

कहते हैं कि **(मछली को पकड़ने के लिये रखे हुए लोहे के) बंसी में फँसे हुए माँस के...** कोई खाने की मिठासवाली चीज़ के स्वाद की ओर झुकते हैं। मर जायेगा ऐसा, उसे खबर नहीं। परन्तु वह प्रेम में ऐसे खाने जाता है, वहाँ काँटा घुस जाता है।... खाने जाये वहाँ सिर घुस जाये, चुभ जाये। यह तो दृष्टान्त है, हों! जगत में कोई... अरे! अतीन्द्रिय आनन्द का खीला—धाम भगवान, उसमें से छूटकर यह विषय में घुस जाता है, कहते हैं। समझ में आया? वह स्वाद में पर के स्वाद में उसे नुकसान हो जाता है। ... और वहाँ अन्दर झुक जाये। मिर्ची... फीकी मिर्च के भुजिया हो, लड्डू दूध के बनाये हुए हों, क्या कहलाये? समझे न? दूध के क्या कहलाते हैं तुम्हारे? रसगुल्ला। वे रसगुल्ला सब। आहाहा! क्या है परन्तु? यह तो मिट्टी, धूल है।... मिलते हैं वे ...

दिखता है कि जड़ की पर्याय है, दूसरा क्या? जड़ की पर्याय है। पर्याय उसका रूप है उस समय। किसी समय विषय (रूप) वह तो सब पर्याय का रूप है। समझ में आया? .... आवे न ऊँचे बहुत मीठे। यह भाई है न... ये वहाँ ठिकाने ... वे लोग बेचारे बहुत... खाये। अच्छे में अच्छी खजूर हो, अच्छे में अच्छी। यह तो लाखों के व्यापारी हैं। अच्छे में अच्छी खजूर हो। खजूर और घी। ... खारेक नहीं? साकरी खारेक। खारेक की भी बहुत जाति (होती है)। इनके पास तो सब जातियाँ हैं। बड़े व्यापारी हैं न। साकरी खारेक भरी थी और बर्तन में दूध था। ... काँच की बरणी अलग-अलग प्रकार की। साकरी खारेक... आहाहा! ऐसा कहते ही इसे मिठास आवे। साकरी खारेक। ... स्वयं ... मछली की भाँति झुके। गजब ... बापू! वह तो जड़ है न। तुझे इन्द्रिय के विषय का प्रेम हो गया। प्रेम का अर्थ कोई ऐसा नहीं कि माँस ही खाये तो इन्द्रिय के विषय हैं। समझ में आया? ऐसे पदार्थ के प्रति जिसे प्रेम, उसकी इन्द्रियाँ जीवित हैं इसलिए दु:खी हैं।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : .... यह इसका कहाँ है? ... है अन्दर। समझ में आया?

भ्रमर बन्द हो जानेवाले कमल के गन्ध की ओर,... झुकता। लो, वह स्वाद की ओर झुकता है। भँवरा-भँवरा। वापस दृष्टान्त कैसा? देखो, भँवरा। वह दृष्टान्त दिया था पहला स्पर्श का, दूसरा दिया था रस का, तीसरा देते हैं रूप का। समझ में आया? यह गन्ध का। गन्ध का। **संकोचसन्मुख...** वापस किस प्रकार है कि कमल होता है न अरविन्द, भँवरा बैठे अन्दर। ऐसा सुन्दर। शाम को ऐसे संकुचित होने की तैयारी हो। बन्द हो जाये। उस काल में आकर कमल हो इकट्ठा... जाता है। भँवरा ... जाता है इकट्ठा। **भ्रमर बन्द हो जानेवाले कमल...** ऐसा। जो कमल है, वह ऐसे संकोच होने की तैयारी हो ऐसी जरा। उसमें गन्ध के स्वाद में। कोई ऐसी गन्ध की ओर **बन्द हो जानेवाले कमल के गन्ध की ओर,...** लो! ऐसे गन्ध हो न सुगन्ध बहुत। गया तो मर गया। समझ में आया? वृक्ष होता है न फूलझाड़ और उसमें प्रवेश करे वहाँ आहाहा! कूदता है। मुझमें अतीन्द्रिय आनन्द है, उसे भूल जाता है। यहाँ आनन्द है, वे सब उसकी इन्द्रियाँ जीवित हैं। दु:खी है वहाँ। समझ में आया? समझ में आया?

पतंग... यह रूप आया। **पतंगा दीपक की ज्योति के रूप की ओर...** झुकता है।

लो! पतंगा दीपक की ज्योति ऐसे मानो सोने का कलश हो, ऐसा जगमग होता है। रूप, स्पर्श। **दीपक की ज्योति के रूप की ओर...** झुकता है। यदि दुःखी न हो तो ऐसा कैसे करे? ऐसा कहते हैं। यह **कुरंग...** कुरंग अर्थात् हिरन। **हिरन शिकारी के संगीत के स्वर की ओर दौड़ते हुए दिखाई देते हैं,...** हिरन ऐसे आवे न। वीणा लेकर बैठा शिकारी। उसके ऊपर उसका ध्यान हो संगीत सुनने में। परन्तु अभी मारेगा। बैठा हो बराबर ठीक से और संगीत के ऊपर ध्यान गया ठीक से उसका। ... जाये। उस ओर उसका ध्यान नहीं। कहो, समझ में आया? यहाँ ज्ञानतत्त्व अधिकार में प्रत्यक्ष ज्ञान का जहाँ अतीन्द्रिय आनन्द का अभाव है, उसे इन्द्रिय और मन की ओर झुकने से परोक्ष ज्ञान में दुःख है, ऐसा सिद्ध करना चाहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

स्वर। वह **स्वर की ओर दौड़ते हुए दिखाई देते हैं,...** इसी प्रकार यह इज्जत, कीर्ति, अभिनन्दन। अभिनन्दन के ग्रन्थ और अभिनन्दन के पत्र। पत्र अर्थात् यह कागज। अभिनन्दन पत्र। अन्दर से गलगलिया हो। बाहर में ऐसा कि तुमने हमको यह पुरस्कार दिया है, इतनी इसकी जरूरत नहीं, परन्तु तुम्हारी इसमें महिमा है, ऐसा करके स्वयं उसे दे देवे। आहाहा! स्वयं को जन्मजयन्ती मनाने का हर्ष हो, यह सब उसकी महिमा हो न, वह वहाँ कूद पड़ा है वह। आहाहा! समझ में आया? अरे! भाई! यह क्या है? यहाँ भगवान आत्मा विराजता है चैतन्य प्रभु, उसकी समीपता छोड़कर यह दूर कहाँ वर्तता है? दूर कहाँ वर्ता? समझ में आया? यह दूर वर्तने में तो अकेला दुःख है, भगवान! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? ... इसे लगता नहीं। प्रसन्न हो जाता है। आहाहा! ... आया है न! जन्मजयन्ती को क्या कहा जाता है यह सब? जाता हो तब उसे विदाई समारोह, ढींकणा समारोह, बीस वर्ष यहाँ काम किया अब जाये तो उसका समारोह। इकट्ठे होकर, ऐई! शीघ्रता करते होते हैं। दूसरे न करते हों तो दो व्यक्ति खड़े करे अन्दर से। सम्बन्धी हो और खड़े करे। ... आहाहा! दुःखी है बेचारा। ऐसा कहते हैं यहाँ तो। जेठाभाई! वह दुःखी है बेचारा, इसलिए ऐसे उपाय करता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! ...भाई!

लातीवाले बड़े कहलाये वहाँ... में। लो! ...भाई! लातीवाले हैं बड़े व्यापारी हैं। कहाँ गये ललितभाई आये हैं न? आये हैं। कहो, समझ में आया? वहाँ तुम्हारी बहुत बड़ी महिमा करते हैं लोग। लो! अमुलखभाई तो ऐसे। वृत्ति उस ओर चली गयी न

इसलिए। तीन गाँव में लाती का व्यापार। वढवाण, कांप और जोरावर (में)। आमदनी बड़ी अच्छी है और ऐसा है और वैसा है, ऐसी लोग बातें करे। यह तो अमुलखभाई बैठे हैं न, ठीक! लाख-दो लाख के लकड़े, ऐ... बड़े। क्या है भाई! पर में वहाँ कल्पना, बापू! उसमें कूद गया वह, चैतन्य के जीवन की ज्योति आनन्द की, वह आवृत हो गयी। आहाहा! चेतना का आनन्द जो भगवान, वह फीका पड़ गया, प्रभु! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और बाहर के तेज में तुझे सब तेज लगता है, बापू! तुझे धर्म की दृष्टि नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जादवजीभाई! 'ऐसा मार्ग वीतराग का भासित श्री भगवान।' भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा परमेश्वर ने ऐसा मार्ग वीतरागदेव ने कहा है। भाई! तू अतीन्द्रिय आनन्द की वीतराग विज्ञान प्रभु मूर्ति है न तू। अरे! उसका प्रेम छोड़कर तुझे यह प्रेम कहाँ से? समझ में आया? तेरी जीवन्त ज्योति को जीवित रखा नहीं और मर गयी हुई हत इन्द्रियों को जीवित रखा, ऐसा कहते हैं, देखो न! निन्द्य... निन्द्य... निन्द्य, निकृष्ट, मर गयी है वे तो सब। आहाहा! देखो! ज्ञानतत्त्व के प्रज्ञापन में किस प्रकार से देखते हैं यह धर्म और अधर्म की बात। कुन्दकुन्दाचार्य की शैली ही कोई अजब-गजब की बात है। चैतन्यतत्त्व में से धर्म-अधर्म दो बात निकालकर रखते हैं। अब ज्ञानतत्त्व में अधर्म ज्ञान और धर्म ज्ञान दो निकाले अन्दर से। समझ में आया?

कहते हैं, **स्वर की ओर दौड़ते हुए दिखाई देते हैं,...** स्वर आया न यह? उसमें स्वर अर्थात् शब्द, इज्जत, कीर्ति, सुनना ... बेचारा। किसी भी प्रकार से जलसा करना, ऐसा करना, वैसा करना। जीमण करना। बैठक करके जीमण करे माँ-बाप के मर जाने के बाद। मृत्युभोज करे फिर ढोंग करे। बाहर में ऐसा कि अच्छा करना है। आहाहा! और माँ-बाप को पीपल से नीचे उतारे भाई, ऐसा कहना है। सुना है यह? सुना नहीं होगा भगवानभाई ने। मर गये हों और मृत्युभोज न किया हो, दाडो समझे न? भोज। तुम्हारे तो करते हैं। तो वहाँ तक पीपल पर चढ़ाये कहलाये उसे। नीचे उतारे अब मृत्युभोज किया तो। दुनिया की यह भाषायें सब यहाँ तो जानी हुई हैं न, सब सुनी हुई है न, इस देश की।

हमारे आणन्दजी के पिता गुजर गये, तब कुछ नहीं था। फिर अभी मृत्युभोज किया बाद में। तब १२ रुपये महीने की नौकरी थी। नागरभाई ... की। महीने में १२।

फिर मृत्युभोज क्या करे ? फिर अभी कुछ ... होगा तो मृत्युभोज किया, तीन हजार खर्च किये। ओहोहो ! माता को पीपल से नीचे उतारा। वरना चढ़े थे। वे तो बेचारे कहाँ चले गये होंगे चार गति में भटकने। दुनिया को उसकी मिठास सुनना सुहाती है उसे। हमको अच्छा कहते हैं, हों ! हमने पिता का मृत्युभोज अच्छा किया। उजला किया। ऐई ! जादवजीभाई ! अपने ऐसा कहते हैं या नहीं ? उजला बहुत किया, भाई !

मुमुक्षु : शाम का करे तो

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, शाम का करे तो ब्राह्मण ... बहुत करते। शाम का भोज करे तो, क्या कहलाता है ? श्रीमाली ब्राह्मण। प्रत्येक को रुपया-रुपया दे। अभी और बढ़ गया। अब वह ब्राह्मण कहाँ रहे ? परन्तु तब था। अरेरे ! मर गया परन्तु, कहते हैं कि बाहर की प्रशंसा और इज्जत में। वे शब्द सुनकर वह ... दुःख न हो तो वहाँ सुनने में रुके कैसे ? कहते हैं, समझ में आया ? उसे दुःख न हो और रति न हो तो वह रुका कैसे उन्हें सुनने ? यहाँ क्यों रुका है ? वहाँ क्यों नहीं गया अन्दर ? समझ में आया ? देखो ! इस प्रकार से भी अधर्म होता है और स्वरूप के धर्म को भी भूलता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा !

उसी प्रकार—दुर्निवार इन्द्रियवेदना के वशीभूत होते हुए... यह तो एक दृष्टान्त साधारण था, हों ! उसी प्रकार दुर्निवार—निवारण न किया जा सके, ऐसी **इन्द्रियवेदना के वशीभूत होते हुए...** इन्द्रियों की वेदना में अन्दर आकुलता हुई राग की... राग की... राग की... **यद्यपि विषयों का नाश अति निकट है...** क्या कहते हैं ? यह विषय तो क्षणिक है। बदल जायेंगे क्षणिक में। इज्जत बदले, शरीर बदले, भोग बदले, स्त्री का शरीर क्षण में बदले, जीवांत पड़े, घड़ीक में बदले। समझ में आया ? उसके उस शरीर में मक्खन जैसा अच्छा लगता हो, उसी और उसी में चुडैल जैसी स्त्री लगे वह सब चमड़ी सूख जाये। क्षणिक वस्तु है, वह कहाँ त्रिकाली है ? समझ में आया ?

कहते हैं **दुर्निवार इन्द्रियवेदना के वशीभूत होते हुए वे यद्यपि विषयों का नाश अति निकट है...** अर्थात् ? वे विषय तो क्षणिक हैं। यह रूप का देखना, शब्द का सुनना, कीर्ति, खाने का रस आदि, वह तो क्षणिक है। क्षण में गिरेंगे। **तथापि, विषयों की ओर दौड़ते दिखाई देते हैं।** ऐसे क्षणिक विषयों की ओर दौड़ते, घिसते, लिपटते, पड़ते दिखाई देते हैं। देखो न, कितनी बात की है ! समझ में आया ? **और यदि 'उनका दुःख**

स्वाभाविक है' ऐसा स्वीकार न किया जाये तो... जो अब यह कहते हैं। **यदि 'उनका दुःख स्वाभाविक है'...** पाँचों इन्द्रिय के शुभ-अशुभ ... में झुकाव करने से प्रेम वर्तता है और दुःखी है। और यदि दुःखी न हो। **ऐसा स्वीकार न किया जाये तो...** दृष्टान्त देते हैं।

जैसे—जिसका शीतज्वर उपशान्त हो गया है,... वह शीत ज्वर मिट गया। **वह पसीना आने के लिये उपचार करता देखने में नहीं आता...** शीत ज्वर जाने के पश्चात् गोदड़े ओढ़ता होगा कोई? हटाओ... हटाओ। शीत (ज्वर) आवे तब डालो-डालो। ... पंखा कोई चलाना नहीं वापस, हों! ऐसा कहे। ... निकालो। वस्त्र निकालो। रजाई डाली हो मजबूत। हवा न आवे उसमें से। कहते हैं, यदि वह दुःख स्वाभाविक पाँच इन्द्रिय की ओर के रति के प्रेम में उसे सहज-स्वाभाविक सद्भाव दुःख न हो तो, जैसे जिसे शीत ज्वर मिट गया, फिर पसीना आवे, ऐसा उपचार करता हुआ दिखाई नहीं देता। फिर आवे? पसीना आवे पसीना। यह वस्त्र ढाँको रे वस्त्र ढाँको, पसीना आता है। परन्तु वह तो गर्म हो तब। वह शीत हो तब। एकदम जहाँ आवे तो कहे निकाल डालो। ऐसा कि उपचार करता हुआ दिखाई नहीं देता। वहाँ तो उपचार करता हुआ देखने में आता है। इन्द्रिय के विषय का उपचार करता हुआ देखने में आता है, इसलिए दुःखी है, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इसका अर्थ ऐसा नहीं कि यह भोग और विषय और स्त्री-पुत्र छोड़ दिये, इसलिए उसका विषय छोड़ा, ऐसा इसका अर्थ नहीं है। इसे अन्दर में इन्द्रिय और मन का परोक्ष ज्ञान है, उसमें जिसे प्रेम है, उसे इन्द्रिय जीवित है, उसे अतीन्द्रिय आत्मा का भान नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? इसलिए ऐसा मानो त्यागो तब अपने छोड़ दो। क्या छोड़े? बाहर का छोड़ना कहाँ है अन्दर? अन्दर में इन्द्रिय के विषय में प्रेम है, वह भले बाहर के विषय छूट गये हों तो भी अन्दर में ... रागरूपी पड़ी है, वह इन्द्रिय का विषय ही उसे ... है। और इसलिए सुनना, इज्जत, कीर्ति का झुकाव उसे भोग में से भ्रम करता है, ऐसा आता है न। वहाँ उसकी रति विकार के ऊपर है। समझ में आया?

भगवान आत्मा अणीन्द्रिय अनाकुल आनन्द का कन्द प्रभु है, उसमें उसे प्रीति नहीं। उसे यह इन्द्रिय के विषय में प्रीति, नग्नमुनि हुआ हो तो उसे प्रीति है अन्दर में।

अभिप्राय के कषाय का प्रेम है, उसे इन्द्रिय के विषय का प्रेम है। समझ में आया? आहाहा! कठिन बात, भाई! कीर्ति के लिये डोलता फिरे, यह खाने के लिये डोलता फिरे। ... होता है। समझे न? ... अच्छा हो तो पहुँच जाये। ... पहुँच जाये। वैश्या नाचती हो। वैश्या नाचती हो ... वहाँ ... में बहुत। कोई विवाह करे तो वैश्या को लावे। वैश्या को लावे विवाह में, तब अच्छा विवाह किया करे। वैश्या नाचे। मुम्बई से आवे। तब उसे, आहाहा! नखरे करे। उस समय पैसे माँगे। पैसे दे उसे २५, ५० रुपये। छोटाभाई! है तुम्हारे, जूनागढ़ में था? ... यह तो सब देखा हुआ है वापस। देखने गये थे न वहाँ देखने कि यह क्या? ... गाँव साथ में है न पालेज। वैश्यायें नाचे। यह कहते हैं कि वह यदि दुःखी न हो तो शीतज्वर जाने के बाद पसीना आवे, ऐसा कोई उपचार करता होगा? इसी प्रकार इन्द्रिय के विषय में दुःखी न हो तो वह व्यापार करे किसलिए?

दाह्यज्वर उतर गया है,... देखो! दाहज्वर। **वह काँजी से शरीर के ताप को उतारता...** कांजी समझे न? ... पराश पराश। छाछ हो न पतली? पट्टी रखे। पराश हो न, उसे रखे। वह मिट गया हो तो पट्टी रखते होंगे? इसी प्रकार विषय की वासना यदि न हो तो पर में झांवा किसलिए डालता है? उपचार किसलिए करता है? यदि दुःख न हो तो उपचार करता किसलिए है? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आचार्यों ने एक गाथा में कितना-कितना निकाला है, देखो! अमृतचन्द्राचार्य ने। **उतारता तथा जिसकी आँखों का दुःख दूर हो गया है, वह वटाचूर्ण (शंख इत्यादि का चूर्ण) आँजता दिखाई नहीं देता...** आँख दुःखना मिट गयी हो तो फिर आंजता होगा? आंजो। बूँद-बूँद आंजो। क्या है परन्तु अब? समझ में आया? इसी प्रकार यदि विषय के सुख में इसकी प्रीति न हो तो तड़फन विषय के उपचार करे किसलिए? वह तो यह दुःखी है। यह विषय की वासना सुनने की, देखने की, वे सब दुःखी हैं। आहाहा! इसलिए सब उपचार सुनने के, भोग आदि के करते हैं। समझ में आया इसमें? ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन में यह अधिकार क्या? तो यही अधिकार है मन और इन्द्रिय में जिसका लक्ष्य है, उसका विषय में ही लक्ष्य है। पर के ऊपर ही उसका लक्ष्य है। स्व का लक्ष्य नहीं।

वटाचूर्ण (शंख इत्यादि का चूर्ण) आँजता तथा जिसका कर्णशूल नष्ट हो गया हो वह कान में... बहुत वह हुआ हो, फिर बकरे का मूत डाले अन्दर। **कर्णशूल**

नष्ट हो गया हो वह कान में फिर बकरे का मूत्र डालता दिखाई नहीं देता... यह उसका उपचार है। बहुत वह (दर्द) होता हो न, अपने साधारण तेल डाले। तेल गर्म करे और रुई से ऐसे बूँद डाले। परन्तु दु:ख मिट गया, वह बूँद डलवाता होगा? आचार्य को सब औषध की भी खबर है। आहाहा! **आँजता तथा जिसका कर्णशूल नष्ट हो गया हो वह कान में फिर बकरे का मूत्र डालता दिखाई नहीं देता और जिसका घाव भर जाता है, वह फिर लेप करता दिखाई नहीं देता...** यह स्पर्श का आया वापस। समझे न? यह फोड़ा भर गया हो, फिर लेप करता हुआ देखने में आता है? लगाओ, चुपड़ो, चुपड़ो। समझ में आया?

इसी प्रकार उनके विषय व्यापार देखने में नहीं आना चाहिए;... इसी प्रकार अज्ञानी को, विषय के प्रेम में वहाँ जुड़ जाता है उपचार करने, वह होना नहीं चाहिए। इसलिए दु:खी है। सुख का रोग उसे है, इसलिए उपचार करने के लिये मिथ्या प्रयास करता है। कहो, बराबर है? कठिन बात, देखो! अब इसमें धर्म क्या आया परन्तु इसमें? समझ में आया? परन्तु इसमें तुम्हें बताना क्या है ऐसी बात करके? कि भाई! जिसे इन्द्रियाँ की ओर के मनवाले ज्ञानवाली और पर में रतिवाला भाव, वह दु:खरूप है, इसलिए उसे छोड़ और अतीन्द्रिय, आनन्द, ज्ञान की रुचि और दृष्टि कर। तो तुझे पाँच इन्द्रिय के विषय का प्रेम छूट जायेगा। आसक्ति रहेगी, उसकी गिनती यहाँ नहीं। समझ में आया? आहाहा!

इसी प्रकार उनके विषय व्यापार देखने में नहीं आना चाहिए;... ऐसा कहते हैं। नहीं आना चाहिए। जैसे उसको उपचार करता हुआ देखने में नहीं आता। तो उसे इन्द्रिय के विषय का व्यापार देखने में नहीं आना चाहिए। **किन्तु उनके वह (विषयप्रवृत्ति) तो देखी जाती है।** रूप को देखे, भोग में भटके, रस के स्वाद में। खबर हो कि परन्तु यह खाने से मर जायेगा। दु:ख होगा। अरे! क्षय लागू पड़ा है, अब यह रहने दे चूरमा लड्डू खाना। तो भी वह रस का मारा दु:खी होता है। थोड़ा खा लूँ, थोड़ा खा लूँ। समझ में आया? उसमें था न क्षय का। एक व्यक्ति क्षय (टी.बी.) में बहुत समय रहा वहाँ। फिर अच्छा हो गया। सवेरे जाना था घर। वहाँ कोई रात्रि में ... गड़बड़ की। समझ में आया? एक महिला काम करती थी और उसे प्रेम हो गया दो, चार, छह, आठ महीने रहकर।

... हो गया। फिर दूसरे दिन जाना था घर। गया घर में। सवेरे उठा तो क्या हो गया यह ? हो गया। दु:खी... दु:खी... दु:खी... है। मर गया। सवेरे श्मशान में। घर में जाना था। आज्ञा दे दी थी। ऐसे मरण को देखे तो भी पर के प्रति प्रेम छोड़ता नहीं और आत्मा का प्रेम करता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

इससे (सिद्ध हुआ कि) जिनके इन्द्रियाँ जीवित हैं... देखो ! अन्तिम शब्द है न यह ? '**जीवदिन्द्रियाः परोक्षज्ञानिनः**' है न मूल पाठ में है। संस्कृत में है। **जिनके इन्द्रियाँ जीवित हैं - ऐसे परोक्षज्ञानियों के दु:ख स्वाभाविक ही हैं।** लो ! ऐसा सिद्ध करना है। **जिनके इन्द्रियाँ जीवित हैं - ऐसे परोक्षज्ञानियों के...** देखो, योगफल लाये यह। आहाहा ! मति-श्रुतज्ञान स्व के लिये प्रत्यक्ष है। समझ में आया ? मति-श्रुतज्ञान स्व के लिये प्रत्यक्ष है। ज्ञान में आनन्द का वेदन, ऐसा उसे भान है। उसे परोक्षज्ञान नहीं। पर के लिये भले परोक्ष हुआ हो तो भी उसे पर के प्रति रुचि होती नहीं। क्या कहा, समझ में आया ?

जिसने मति और श्रुतज्ञान प्रत्यक्ष... आया था अपने सवेरे। पर की अपेक्षा नहीं, उस मति-श्रुत से अपने को अनुभव-जानने में पर की अपेक्षा नहीं। इसलिए उसे प्रत्यक्ष कहा गया है। अथवा उस ज्ञान के स्व को जानने के लिये पर का आश्रय है नहीं। स्वसंवेदन सीधे है। इसलिए मति, श्रुत को अणीन्द्रिय प्रत्यक्ष कहा गया है। अणीन्द्रिय ज्ञान है वह। समझ में आया ? चौथे गुणस्थान में मति-श्रुतज्ञान स्व के लिये प्रत्यक्ष है। उस ज्ञान में कोई निमित्त, राग की अपेक्षा नहीं। स्वसंवेदन। स्व को सं-प्रत्यक्ष वेदन है। इसलिए उस धर्मी को पर के विषयों में, इन्द्रियों में उसकी रुचि है नहीं। उसे इन्द्रियों के प्रति प्रेम है ही नहीं। आहाहा ! इन्द्रियाँ मर गयी हैं। आहाहा ! समझ में आया ? छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा हो परन्तु इन्द्रियाँ मर गयी हैं, कहते हैं। वह मर गया है बाहर से। अन्दर से जीवित है। यह इन्द्रिय के विषय के रूपीवाले अन्दर से मर गये हैं आत्मा में से। इन्द्रियों को जीवित देखा है। आहाहा ! परन्तु किस प्रकार से ? धर्म और अधर्म की पद्धति और कला कहते हैं, साधारण समाज को सुनना मिलता नहीं, उसका विवेक करने का समय कहाँ से आये उसे ? समझ में आया ? ओहोहो ! इस प्रकार से अज्ञान है और इस प्रकार से ज्ञान है, इस प्रकार से मिथ्याबुद्धि है, इस प्रकार से

सम्यक्बुद्धि है, ऐसे विवेक की जिसे खबर नहीं और ऐसा सुनने को जिसे मिलता नहीं। वह किस प्रकार विवेक करे? समझ में आया?

कहते हैं, बहुत सरस बात की है, हों! यह जब तक इन्द्रियों को जीवित रखी परोक्षवाले ने... मर गयी हैं इन्द्रियाँ। जिस ज्ञान में इन्द्रियाँ और मन निमित्त है, वह इन्द्रियों की ओर के घसारे में उसमें यह आया, यह आया। समझ में आया? यह वाँच लूँ, देख लूँ, सुन लूँ—ऐसे अन्दर कूद पड़ता है, वह दुःखी है, उसका उपचार करते हैं। वरना वह उपचार किसलिए करे? इसलिए जिसको इन्द्रियाँ जीवित हैं, ऐसे परोक्षज्ञानवाले को दुःख तो स्वाभाविक है ही। आहाहा! समझ में आया?

भावार्थ : परोक्षज्ञानियों के स्वभाव से ही दुःख है,... स्वभाव से दुःख अर्थात् किसी संयोग के कारण दुःख नहीं, उपाधि के कारण दुःख नहीं। क्या करें, अभी व्यापार-धन्धा ... इतना भरा है, इसलिए दुःखी हैं, ऐसा नहीं। जिसका पर में प्रेम, उस मन में सहज दुःख वर्तता है। समझ में आया? **क्योंकि उनके विषयों में रति वर्तती है;...** यहाँ आनन्द में प्रेम नहीं अपने आनन्द में, इसलिए वहाँ उसका प्रेम गया है। वास्तव में वहाँ प्रेम गया है तो आत्मा के प्रति उसे द्वेष है। आत्मा के आनन्द के प्रति तो उसे द्वेष हो जाता है। समझ में आया? शब्द, रूप, रस, गन्ध में दौड़ जाता है एकाकार। उसे भगवान आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के प्रति द्वेष है। आहाहा! और वहाँ प्रेम है।

धर्मी जीव को भगवान आत्मा वस्तु यह करने का और यह कार्य है। यह सुनाकर यह कहना चाहते हैं। भाई! परोक्षज्ञान जीवित इन्द्रिय में उस रतिवाले जीव को है। रति में जीवन है, दुःखी है। आत्मा उन इन्द्रिय और इन्द्रिय के मन से जो ज्ञान, उससे भिन्न है। भगवान अतीन्द्रिय आत्मा है, ऐसे आत्मा को तू देख, जान और एकाग्र हो, वहाँ शान्ति है, वहाँ धर्म है, वहाँ वह सुखी है, वह दुःख से मुक्त है। समझ में आया?

कभी-कभी तो वे, असह्य तृष्णा की दाह से... असह्य-सहन न की जा सके ऐसी तृष्णा खड़ी होती है न, तृष्णा। उसके कारण **(तीव्र इच्छारूपी दुःख के कारण) मरने तक की परवाह न करके...** खबर पड़े कि यह नहीं खाया जाता, ...यह इस समय भोग नहीं लिया जा सकता। समझ में आया? शरीर जीर्ण हो गया है यह ... यह वस्तु नहीं होती। खबर पड़े कि मर जाऊँगा, तो भी ... पड़ता है, कूदे। आहाहा! समझ में

आया ? **मरने तक की परवाह न करके क्षणिक इन्द्रियविषयों में कूद पड़ते हैं।** देखा! **यदि उन्हें स्वभाव से ही दुःख न हो तो विषयों में रति ही न होनी चाहिए।** उस पर में उसे प्रेम नहीं होना चाहिए।

जिसके शरीर का दाह-दुःख नष्ट हो गया हो,... जिसे शरीर में गर्मी की दाह—उष्णता का दुःख नष्ट हुआ हो **वह बाह्य शीतोपचार में रति क्यों करेगा ?** कहो, समझ में आया ? शीत ज्वर हो, वह कहे कि मुझे अच्छी पानी की पट्टी रखो। ऐसा होगा ? शीत ज्वर में ऐसा कि छाछ, पराश लेकर रखो। बर्फ तो लेने जाना पड़े। और छाछ घर में हो। छाछ तो पहले थी न। पराश हो। खाते समय जरा हिलाकर खाये। परन्तु खाकर बैठा हो फिर दो सेर-पाँच सेर (छाछ) पड़ी हो, उसमें पराश वळी जाये। ऊपर से ले लेवे। अभी तो सब हिलाकर खाये न, तब पराश न रहे। समझ में आया ? पराश कहते हैं, समझ में आया ? तुम्हारे क्या कहते हैं ? छाछ के ऊपर होती है पराश-पराश। हिन्दी में क्या कहते हैं हिन्दी में ? ऐई! रतलाम! तुम्हारे हिन्दी में पराश कहते हैं ? यह तो ... परन्तु हिन्दी में क्या कहते हैं ? ऐई! सुजानमलजी!

मुमुक्षु : आस कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आस। यहाँ हमारे पराश। पराश। इतना शीत ज्वर आवे, वह पराश माँगे ? ऐसा कहते हैं। इसी प्रकार जिसे विषय का प्रेम न हो, वह विषय का उपचार करे ? ऐसा कहते हैं। आहाहा!

इससे सिद्ध हुआ कि परोक्षज्ञानियों के... योगफल यहाँ लेना है। मन और इन्द्रिय के ज्ञान में वर्तता है, ऐसे जीवों को दुःख का सद्भाव है। ओहोहो! किस प्रकार कहते हैं, देखो न! मन और इन्द्रियों की ओर का ज्ञान का जिसे झुकाव है न, उसे पर के प्रति ही प्रेम है, बस! समझ में आया ? यह ६४ गाथा हुई। अणीन्द्रिय आत्मा की श्रद्धा और ज्ञान और अनुभव नहीं और जिसे इन्द्रिय का प्रेम है, वह चाहे तो भगवान के रूप को देखे या भगवान की वाणी को सुने, वह तो उसे विषय के प्रति ही उसका राग है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? यह ध्येय स्वविषय को छोड़कर परविषय में प्रेम है, वे सब इन्द्रियों को जीवित रखनेवाले हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! भाई! जब भगवान ने देखा, तब तो उसे परोक्ष ज्ञान नहीं न ? तब अतीन्द्रिय ज्ञान है ? समकिती भी देखता है

न? भगवान को सुनता है न? अपना ज्ञानस्वरूप आनन्द है, उसे भूलकर वह सुनता नहीं। उसे जीवित रखकर सुनने का विकल्प होता है, परन्तु उस विकल्प से और परोक्ष ज्ञान से वह भिन्न है। आहाहा! समझ में आया? अज्ञानी अपने अतीन्द्रिय ज्ञान से भिन्न है। वह शब्द से उत्पन्न हुआ ज्ञान और उसके झुकाव में ही अपना सर्वस्व माना है। कहो, समझ में आया? अब यह तो दृष्टान्त और दलील। यह सब समझ में आये ऐसी बात है अभी।

★ ★ ★

गाथा - ६५

अब, मुक्त आत्मा के सुख को प्रसिद्धि के लिये,... क्या कहते हैं? भगवान का आत्मा जो परमात्मा-परमेश्वर मुक्त हुए, उन्हें शरीर नहीं, इन्द्रियाँ नहीं, लाडी, वाडी, गाड़ी, घोड़ी कुछ नहीं। तो भी वे सुखी हैं या नहीं? और यहाँ तो बाग-बगीचा ओहोहो! देखते-देखते खाने का गर्म मिले, पीने का ठण्डा-गर्म पानी, सोने के समय ऐई! मलमल के वस्त्र गर्मी में मिले, सर्दी में रजाई मिले। ... मिले ... मन कुछ नहीं, शरीर नहीं, इन्द्रियाँ नहीं, उन्हें उपचार नहीं। तो वे सुखी होंगे या नहीं? साधन तो कुछ नहीं। शरीर सुख का साधन होने से... शरीर सुख का साधन नहीं, सुन न! साधन तो आत्मा है। समझ में आया? यह आगे कहेंगे। यहाँ अज्ञानी को भी शरीर होने पर भी विषय उसे कुछ भी नहीं करते। यह कल्पना है उसे सुख की, वह कल्पना दुःखरूप है। उसे विषय कुछ करते हैं, ऐसा है ही नहीं। तो फिर भगवान को शरीर नहीं, इसलिए सुख नहीं, ऐसा है नहीं। संसार में भी सुख की कल्पना तो ... पड़ी है। वर्तमान आनन्द अपने आश्रय से आनन्द प्रगट किया है। उस आनन्द के लिये किसी शरीर या साधन की आवश्यकता नहीं। शरीर बिना भी सुख होता है भगवान को। **यह बात स्पष्ट समझाने के लिये, संसारावस्था में भी शरीर सुख का-इन्द्रियसुख का-साधन नहीं है, ऐसा निश्चित करते हैं)** - यहाँ भी यह शरीर सुख का साधन नहीं। इसकी कल्पना है। यह बात विशेष करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १४, रविवार, दिनांक ०३-११-१९६८
गाथा - ६५, प्रवचन - ५५

गाथा (६५)। यह प्रवचनसार है। भगवान परमात्मा की दिव्यध्वनि। दिव्य अर्थात् प्रधान आवाज। वीतराग होने के पश्चात् इच्छा बिना वाणी निकलती है, उसे दिव्यध्वनि कहते हैं। वह दिव्यध्वनि कहो या प्रवचनसार कहो। उस प्रवचन का सार इसमें कहा जाता है। देखो! ऊपर है पहला।

अब, मुक्त आत्मा के सुख को प्रसिद्धि के लिये,... क्या कहते हैं? कोई कहे कि भाई! इस शरीर रहित जब आत्मा सिद्ध-परमात्मा हो, उसे सुख क्या होगा? शरीर तो नहीं वहाँ। **मुक्त आत्मा...** अर्थात् सिद्ध आत्मा। शरीररहित परमात्मा हो न 'णमो सिद्धाणं।' शरीर बिना आत्मा जब पूर्ण पद को प्राप्त करे, तब शरीररहित दशा उसकी हो जाती है। अशरीरी। यह सुखी है या नहीं? शरीर तो है नहीं। लाडी, वाडी, गाड़ी, घोड़ी, खाना, पीना, पैसा-बैसा, धूल-बूल नहीं वहाँ कुछ। तो यह कहते हैं कि सुखी होगा या नहीं? उस मुक्त आत्मा को सुख की प्रसिद्धि के लिये... उसे आत्मा का सुख है अन्दर। सिद्ध परमात्मा मुक्त को प्राप्त हुए हैं, उन्हें आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, वह आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है, सच्चिदानन्द—सत् अर्थात् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द की मूर्ति आत्मा है, वह अन्तर का आनन्द जो है, वह अन्तर के ध्यान और मुक्त द्वारा अपनी पर्याय में पूर्ण आनन्द को प्राप्त होते हैं। उस आनन्द के लिये शरीर और इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं। ऐसा आत्मा में अन्दर में आनन्द पड़ा हुआ है। उस आनन्दरूप से परिणम जाते हैं, हो जाते हैं। उस आनन्द के लिये शरीर और इन्द्रियों की आवश्यकता नहीं, इस बात को सिद्ध करते हैं।

शरीर का सुख साधन होने की बात का खण्डन करते हैं। समझ में आया? कि भाई! सुख का कारण शरीर, इन्द्रियाँ हैं? नहीं। शरीर और इन्द्रियाँ सुख का साधन नहीं। **(सिद्ध भगवान के शरीर के बिना भी सुख होता है, यह बात स्पष्ट समझाने के लिये,**

संसारावस्था में भी शरीर सुख का-इन्द्रियसुख का-साधन नहीं है, ऐसा निश्चित करते हैं) - लो! क्या कहते हैं अब? यहाँ भी यह शरीर और इन्द्रियाँ, इस संसार की कल्पना का जो सुख है, उस सुख में भी शरीर और इन्द्रियाँ बिल्कुल काम नहीं करतीं। शरीर, इन्द्रियाँ तो जड़ हैं, यह तो मिट्टी है। भगवान आत्मा तो अन्दर ज्ञान की मूर्ति अरूपी चिद्घन है। इसलिए संसार की सुख की कल्पना के लिये भी शरीर और इन्द्रियाँ कुछ कार्यकारी नहीं हो सकती, यह बात सिद्ध करते हैं। समझ में आया? मूल ६५ श्लोक है, देखो!

पप्पा इट्ठे विसए फासेहिं समस्सिदे सहावेण।
परिणममाणो अप्पा सयमेव सुहं ण हवदि देहो॥६५॥

इसका हरिगीत है, देखो!

इन्द्रिय जिनका आश्रय करतीं, ऐसे इष्ट विषय पाकर।
जीव स्वयं सुखरूप परिणमे, देह नहीं है सुख का घर॥६५॥

इसका **अन्वयार्थ : स्पर्शनादिक इन्द्रियाँ जिनका आश्रय लेती हैं, ऐसे इष्ट विषयों को पाकर (अपने शुद्ध) स्वभाव से परिणमन करता हुआ...** क्या कहते हैं? यह शरीर मिट्टी, यह इन्द्रियाँ जो जड़ हैं, वह जब आत्मा उनका लक्ष्य करता है, तब अन्दर में राग-द्वेष और अशुद्धरूप से आत्मा परिणमता है। अशुद्धभाव विभावरूप से होता है। वह विभावरूप से होता है, वह उसमें उसे सुख की कल्पना (होती है)। वह विभावपना सुखरूप मानता है, वह शरीर और इन्द्रियों के कारण से नहीं। समझ में आया? पहिचान बताते हैं, देखो! कि **(अपने शुद्ध) स्वभाव से परिणमन करता हुआ आत्मा स्वयं ही सुखरूप (इन्द्रियसुखरूप) होता है देह सुखरूप नहीं होती।** यह तो मिट्टी है। क्या कहा इसमें, समझ में आया? यह देह, पैसा, लक्ष्मी आदि कीर्ति, उसमें यह मानता है कि मुझे यह सुख, वह कल्पना की परिणति में सुखरूप परिणमता है। है दुःख। उस सुख के भाव में इन्द्रियाँ और शरीर कुछ काम करते नहीं, वे तो जड़ हैं। वह स्वयं आत्मा इन्द्रिय में सुख है, पर में सुख है—ऐसी कल्पना के जाल में मिथ्या भ्रान्तिरूप से अज्ञानरूप से सुख है, ऐसा परिणमता है। शरीर और इन्द्रिय बिल्कुल इसके सुख में, सांसारिक सुख कल्पना का, उसमें भी शरीर और इन्द्रियाँ कुछ काम

करती नहीं—अकिंचित्कर हैं। समझ में आया? अज्ञानी मानता है उसमें।

धर्मी तो पर इन्द्रियों के विषयों में सुख है, यह तो मानता नहीं। धर्मी जिसे कहते हैं वह तो, आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द है, अतीन्द्रिय भगवान आनन्द की मूर्ति आत्मा है, उसकी दृष्टि होने के कारण धर्मी जीव को अपने अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद होने से इन्द्रिय के विषय की ओर सुखबुद्धि ज्ञानी को होती नहीं। न्याय समझ में आता है? न्याय/लॉजिक से बात चलेगी, परन्तु धीरे-धीरे समझना पड़ेगा।

धर्मदृष्टिवन्त को... धर्म ऐसी कोई चीज़ नहीं कि वह शरीर और वाणी द्वारा हो जाये। धर्म, वह आत्मा का आनन्दस्वभाव... धर्मी को धर्म कैसे होता है? कि इस शरीर के कारण या इन्द्रियों के कारण या पैसा खर्च करने से धर्म नहीं होता। क्योंकि वह तो परचीज़ है। आत्मा अन्दर में सच्चिदानन्दस्वरूप है, अनादि-अनन्त। आनन्दकन्द शाश्वत् वस्तु है। उसमें ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द पड़ा है, उसकी अन्तर में दृष्टि करने से, एकाग्र होने से उसमें धर्म अर्थात् अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद और अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव होता है, यह उसे धर्म कहते हैं। धर्मी इन्द्रिय के विषय में सुख नहीं मानता। समझ में आया?

अज्ञानी जो मानता है, उसे भी अशुद्ध उपादान मलिनरूप से परिणमता, यह मुझे सुखरूप है या यह मुझे दुःखरूप है, ऐसी कल्पनारूप से स्वयं परिणमता है, यह होता है। उस कल्पना में शरीर और इन्द्रियाँ अकिंचित्कर हैं। कहीं सुख की कल्पना मानने में अशुद्ध उपादानरूप से परिणमता आत्मा, उसे शरीर, इन्द्रियाँ कुछ काम करते नहीं। समझ में आया? बराबर होगा, ऐई! डॉक्टर! न्याय समझ में आता है कुछ? कि यह तो जड़ शरीर है, मिट्टी-धूल है। आत्मा तो अरूपी है, ज्ञानघन है। ज्ञान—समझण का पिण्ड और अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति वस्तु है वह तो। अब वह आत्मा अपने अतीन्द्रिय आनन्द को भूलकर शरीर और इन्द्रियों में सुख और पैसे में सुख, स्त्री में सुख, भोग में सुख, कीर्ति में सुख—ऐसी कल्पनारूप से होता है, उस कल्पनारूप होने में इन्द्रियाँ और शरीर कुछ काम नहीं करते। समझ में आया? ये तो जड़ हैं, इसलिए अकिंचित्कर हैं। सुख की अज्ञानी की मान्यता में भी शरीर और इन्द्रियाँ अकिंचित्कर—कुछ कर नहीं सकते। न्याय समझ में आता है कुछ? धन्नालालजी! यह वस्तु नहीं, कहते हैं—ऐसा कहते हैं। है, देखो!

टीका : वास्तव में इस आत्मा के लिये सशरीर अवस्था में भी... ऐसा। सिद्ध परमात्मा जब मुक्ति को पावे आत्मा, तब तो अपनी आनन्द और ज्ञानरूपी जो शक्ति स्वभाव है, उसकी परिणति में निर्मल दशा अन्तर स्वभाव के कारण से प्रगट हो जाती है, तब अकेला ज्ञान और आनन्द की दशा रह जाती है। उसका नाम मुक्ति और उसका नाम सिद्ध और उसका नाम परमात्मा। अर्थात् परमात्मा को भी शरीर की अवस्था हो तो सुखी हैं, ऐसा है नहीं। यह सिद्ध करने के लिये सशरीर को भी, वह अवस्था सिद्ध करने के लिये सशरीरवाले को भी शरीर सुख का कारण नहीं, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! न्याय समझ में आया?

वास्तव में इस आत्मा के लिये सशरीर अवस्था में भी शरीर सुख का साधन हो, ऐसा हमें दिखाई नहीं देता;... समझ में आया? कहो, भीखाभाई! बराबर होगा? आत्मा माने कि यह मुझे हीराभाई सुखरूप है, अनुकूल है, कमाऊँ हुआ है या ढींकणा है, उसमें इस कारण कुछ नहीं, कहते हैं। ऐसा कहते हैं। यह शरीर सुन्दर हो और उसमें लड्डू, दाल, भात, स्त्री आदि का विषय लेता हो तो कहते हैं कि उसमें सुखरूप की दशा—कल्पना जो होती है जीव में, उस दशा के परिणमन अर्थात् दशा में शरीर और इन्द्रियाँ कुछ काम नहीं करते। उसकी दशा की भ्रान्ति होकर उसे सुखरूप होता हूँ, ऐसा मानता है। न्याय समझ में आया? वे कहे, हम धर्म करते हैं। धर्म करते हैं परन्तु धर्म क्या है, इसकी खबर नहीं होती और अधर्म कैसे करते हैं, इसकी खबर नहीं होती।

यहाँ तो कहते हैं कि अज्ञानी पर में सुख है, ऐसी मान्यता से कल्पनारूप से सुख की बुद्धिरूप होता है। ऐसे सुखरूपी अर्थात् मिथ्यात्वभाव... कल्पना का सुख है दुःख; सुख नहीं परन्तु सुखी होता हूँ, परिणमता हूँ, ऐसे परिणमन के लिये शरीर और इन्द्रियाँ कुछ कार्यकारी है नहीं। है? **वास्तव में इस आत्मा के लिये सशरीर अवस्था में भी शरीर सुख का साधन...** अर्थात् कारण **हो, ऐसा हमें दिखाई नहीं देता;...** कहो, आचार्य कहते हैं, संसार में भी इस सुख की मान्यतावाला जीव, उसे शरीर सुख का कारण होता है, ऐसा हम जानते और देखते नहीं। न्याय समझ में आया? कहो, बराबर है? यह धर्म की दृष्टि कराने को बात करते हैं कि भाई! शरीर हो तो भी तेरी मान्यता के सुख का वह कारण नहीं। तू अशुद्ध उपादानरूप से, मलिन दशारूप से शुद्ध स्वभाव को छोड़कर

अशुद्ध स्वभावरूप परिणमता है, वह तुझे सुखरूप की कल्पना का कारण तुझे होता है। नहीं कि शरीर और इन्द्रियाँ कोई कारण होते हैं। समझ में आया?

क्योंकि तब भी,... इस शरीर की अवस्था के काल में भी **मानों उन्मादजनक मदिरा का पान किया हो ऐसी...** इन्द्रियों की ओर दौड़ता है, ऐसा कहते हैं। मदिरा पीये हुए है न। **उन्मादजनक मदिरा का पान किया हो ऐसी प्रबल मोह के वश वर्तनेवाली,...** इन्द्रियाँ भाव में। **प्रकृष्ट=प्रबल; अतिशय।** मोह के वश, भ्रमणा के वश, अज्ञानवश वर्तनेवाली। यह विषय हमको इष्ट है, '**यह (विषय) हमें इष्ट है**'... यह भोग, यह इज्जत, यह कीर्ति, यह पैसे, मकान इत्यादि। **इस प्रकार विषयों की ओर दौड़ती हुई इन्द्रियों के द्वारा...** यह विषयों की ओर दौड़ता है कल्पना , इन इन्द्रियों द्वारा **असमीचीन परिणति का अनुभव करने से...** झूठी विकार की दशारूप अनुभवता हुआ। है? **असमीचीन परिणति का अनुभव करने से...** अपने आनन्दस्वभाव को भूलकर अज्ञानी। **असमीचीन = असम्यक्; अठीक; अयोग्य।** विकार की अवस्थारूप होता है, उसमें शरीर कुछ इस अवस्था को करता नहीं। लो, यह निमित्त अकिंचित्कर ठहराते हैं यहाँ। निमित्त तो है या नहीं? निमित्त तो है या नहीं शरीर और इन्द्रिय? निमित्त है अर्थात्? निमित्त कर्ता नहीं। निमित्त तुझे सुख की कल्पना कराता नहीं। तू अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभाव, भगवान आत्मा अतीन्द्रिय मूर्ति प्रभु है, उसे तू भूलकर तेरी दशा में दुःख की कल्पनारूप की सुख की परिणति अवस्थारूप से तू होता है। इन्द्रियाँ और शरीर कहीं तुझे उस परिणति होने में कारण है नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

असमीचीन परिणति का अनुभव करने से... क्या कहते हैं? आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द और सच्चिदानन्द प्रभु हूँ, ऐसा जिसे—अज्ञानी को भान नहीं, उसे शरीर और इन्द्रियों के निमित्त में विषय की दृष्टि जो जाती है, वह अशुद्धरूप से, असम्यक्रूप से, अयोगरूप से, विकाररूप से परिणमता जीव सुखरूप होता है। सुखरूप दशा के परिणमन अर्थात् दशारूप होता है। वह इन्द्रियाँ और शरीर, वे सुख की कल्पनारूप नहीं होते। न्याय समझ में आया? देखो, अन्दर लिखा है, हों! यह सब। '**अनन्तसुखोपादानभूत-शुद्धात्मस्वभावविपरीतेनाशुद्धसुखोपादानभूतेनाशुद्धात्मस्वभावेन परिणममान।**' जयसेनाचार्य की टीका में है। संस्कृत टीका में है यह। अनन्त सुख उपादान। क्या कहते

हैं? क्या कहते हैं, देखो! भगवान आत्मा तो अनन्त सुख का कारण है। आत्मा तो अनन्त आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द सच्चिदानन्द, आनन्द सत्–शाश्वत् ज्ञान और आनन्द, वह अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का वह आत्मा कारण है। ऐसे कारणरूप नहीं मानता, ऐसे कारण की श्रद्धा नहीं करता। यह कहते हैं, देखो!

'**अनन्तसुखोपादानभूतशुद्धात्मस्वभाव**' इससे '**विपरीतेनाशुद्धसुखोपादानभूतेन**' शुद्ध आनन्दस्वरूप भगवान, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप ऐसा अपना उपादान अर्थात् अपना स्वरूप है, उसे नहीं मानता, उसे नहीं परिणमता, उस ओर दृष्टि नहीं करता अज्ञानी अशुद्ध उपादानरूप से पर्याय में—अवस्था में इन्द्रियों और शरीर की ओर उसकी मोहवृत्ति दौड़ती है, वह मोहरूप से स्वयं अज्ञानी अपने से परिणमता है, होता है, उसे इन्द्रियाँ और शरीर कुछ नहीं करते। न्याय समझ में आया? आहाहा! कहो, समझ में आया? यह विषय के निमित्त स्त्री का सुन्दर शरीर, लड्डू, दाल, भात, मौसम्बी, गन्ने का रस या साठा, वह सब चीज़ ऐसे पड़ी है, कहते हैं और यह शरीर एक मिट्टी है। अब इसमें सुख है, ऐसी कल्पना के लिये अज्ञानी अपने शुद्ध उपादान को भूलकर, त्रिकाल स्वभाव आनन्द है, उसे भूलकर उसकी पर्याय अर्थात् अवस्था में अशुद्ध उपादानरूप से, विकाररूप से स्वयं अज्ञानी परिणमता है। उसमें इन्द्रियाँ और शरीर या बाह्य चीज़ कुछ काम नहीं करती। जादवजीभाई! आहाहा! यह तो अधर्म कैसे करता है, उसकी बात करते हैं। अधर्म करने में भी शरीर और इन्द्रियाँ कुछ कार्य नहीं करते। धर्म को भूलकर (अशुद्धरूप से स्वयं परिणमता है)। शुद्ध चिदानन्द आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय अमृत का कुण्ड आत्मा है। परमात्मा, जो आत्मा सिद्ध परमात्मा होता है, वह अन्दर में स्वभाव है, उसे शुद्धरूप से परिणमकर होता है। वह धर्म कहीं बाहर से नहीं आता। समझ में आया?

कहते हैं, '**अशुद्धसुखोपादानभूतेनाशुद्धात्मस्वभावेन**' देखो! भाषा ऐसी ली है, भाई! अशुद्ध आत्मस्वभाव। पाठ ऐसा लिया है न। मूल में है सही न! स्वयमेव सुखरूप होता है, ऐसा कहा है न! जीव परिणमता हुआ स्वयमेव सुखरूप होता है। स्वयमेव कौन से सुखरूप? कि दुःखरूप नहीं अशुद्ध परिणति वह। फिर से। आत्मा त्रिकाली आत्मा तो ज्ञान और आनन्द का स्वभाव उसका ध्रुव है। आत्मा जैसे शाश्वत् वस्तु है,

वैसे उसे ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द इकट्ठा शाश्वत् है त्रिकाल। ऐसे अतीन्द्रिय आनन्द और ज्ञान की मूल शक्ति को भूलकर अज्ञानी जीव अशुद्ध उपादान अर्थात् उसकी वर्तमान दशा में मोहरूप से भ्रमणारूप से दुःख की, सुख की कल्पनारूप स्वयं होता है। उसमें इन्द्रिय और शरीर कहीं अकिंचित्कर है। निमित्त अकिंचित्कर है, ऐसा सिद्ध करते हैं। जादवजीभाई! पैसा सुख का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। शरीर सुख का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कितने प्रतिशत?

पूज्य गुरुदेवश्री : सौ-सौ प्रतिशत। और कितने प्रतिशत क्या?

क्योंकि आत्मा अपने शुद्ध त्रिकाली आनन्दस्वरूप को भूलता है, वह भूलरूप से परिणमता है। शुद्ध त्रिकाली आनन्द ज्ञानमूर्ति प्रभु है स्वयं। अनादि का स्वरूप ही उसका शुद्ध और आनन्द है। उसे भूले तब भगवान अपनी पर्याय में भूलरूप से परिणमता है। उस परिणमने में इन्द्रियाँ और शरीर अकिंचित्कर है, बिल्कुल कार्यकारी नहीं। उसे सुख की कल्पना की दशा में इन्द्रियाँ, शरीर कुछ कार्यकारी नहीं। बराबर है? थोड़े प्रतिशत तो होगा या नहीं? अच्छे लड़के हों, विलायत में जाये, और सुने कि मेरा लड़का यहाँ है। लो! तो सुख की कल्पना में इतना कार्यकारी होगा या नहीं वह? ऐई! चिमनभाई! क्या होगा यह? कल्पना का सुख सही, परन्तु कल्पना करने में बाह्य चीज़ कुछ कार्यकारी है या नहीं? कि व्यर्थ मुफ्त की पड़ी है वह? यह कहते हैं। तेरे सुख की मान्यता के लिये और सुख की कल्पना के लिये बाह्य चीज़ तो तेरे लिये एकदम व्यर्थ है। कहो, बराबर समझ में आता है इसमें? यह तो अधर्म कैसे होता है अज्ञानी को, उस अधर्म की बात करते हैं। आहाहा! अब अधर्म कैसे हो, इसकी खबर न हो, वह धर्म करे कब? समझ में आया?

भाई! क्या करना? मुझे तो कुछ नहीं परन्तु यह सब स्त्री, पुत्र, पैसे ऐसा घेरा डाला है न कि मुझे यह करना पड़े इनके कारण। ऐसा होगा? बिल्कुल नहीं। ऐसा कहते हैं। शुद्ध भगवान आनन्द सच्चिदानन्द प्रभु (तू) स्वयं त्रिकाली है, उसे अनादि से भूलकर अपनी वर्तमान दशा में, पर में सुख है—ऐसी कल्पना की भ्रान्तिरूप से तू स्वयं

होता है। उस होने में परचीज़ कुछ कार्यकारी है नहीं। आहाहा! समझ में आया? कहो, भगवानजीभाई! कहो, यह सब कहते हैं लड़के और सब क्या तुम्हारे कहा जाता है? परन्तु मूर्खाई में बाह्य चीज़ कुछ कार्यकारी नहीं, ऐसा कहते हैं। मूर्खता तेरी सही। समझ में आया? परन्तु उस मूर्खाई में बाह्य चीज़ कुछ भी सहायता करे, कार्यकारी में आंशिक आवे, ऐसा है नहीं। आहाहा! कहो।

मुमुक्षु : उल्टे की मजे की बात आयी, आनन्द की बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो परमेश्वर सन्त ऐसा सिद्ध करते हैं कि भाई! यह शरीर, सुख का साधन नहीं, संसार में भी। जब सिद्ध आत्मा मुक्ति पावे, तब शरीर नहीं, इसलिए उसे सुख का साधन गया, इसलिए सुख कुछ नहीं होगा, ऐसा नहीं। समझ में आया? आत्मा स्वयं जब आत्मा के आनन्द-शरीर का भान करके, आनन्द-शरीर अपना आनन्द-शरीर है, यह धूल शरीर कहाँ है इसका? यह आनन्द और ज्ञानरूपी शरीर अपना त्रिकाली है, उसका अन्तर में अनुभव करके, सम्यग्दर्शन-ज्ञान की प्राप्ति करके पूर्ण निर्मल दशा को जब आत्मा प्राप्त होता है, तब वह अशरीरी सिद्ध कहलाता है, वह परमात्मा मोक्ष कहलाता है। कहते हैं कि मोक्ष में आनन्द है या नहीं? कि शरीर नहीं और आनन्द है? या शरीर साधन है ही नहीं। मोक्ष के लिये शरीर साधन है नहीं। क्यों? सशरीरी में भी शरीर साधन नहीं तो अशरीरी को शरीर साधन है, ऐसा है नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **असमीचीन परिणति का अनुभव करने से...** देखो! आत्मा अपने ज्ञानस्वरूप ज्ञातापना, चिदानन्द प्रज्ञाब्रह्म—प्रज्ञा और आनन्द—ऐसा उसका स्वरूप है, उसे भूलकर असमीचीन—अयोग्य—अलायक विकार की भ्रान्ति—पर में सुख है—ऐसा मानने की भ्रान्तिरूप से स्वयं होता है। वह होने की दशा मलिन है, असमीचीन है, अयोग्य है, अलायक है, परन्तु होती है स्वयं। जयन्तीभाई! बराबर होगा? अन्तर नहीं पड़ता होगा? अच्छा शरीर हो, रूपवान शरीर हो, एक-एक अवयव अच्छे हों तो कुछ अन्तर पड़े, ऐसा नहीं होगा? और कुबड़ा-बुबड़ा व्यवस्थित न हो तो भले सुख में कल्पना न करावे। ऐई! परन्तु शरीर के अवयव प्रत्येक सुन्दर, नाक, आँख, कान, मुख चन्द्रमा जैसा, शरीर ऐसा, हाथ-पैर केले के जैसे समझे न यह सब। छाती भी बड़ी

मजबूत कोठी जैसी। ऐसे सब सुन्दर अवयव हों, वे कहीं आत्मा को सुख की मान्यता— मिथ्या भ्रान्ति में कुछ कार्यकारी है या नहीं? नहीं। तू भ्रान्ति खड़ी करे, वह तेरे परिणमन में तेरी है, पर के कारण से कुछ है नहीं। आहाहा! तो फिर धर्म भी तेरे कारण से होता है, उसमें शरीर और फरीर कुछ साधन है नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सुख के लिये....

पूज्य गुरुदेवश्री : ये संसार के सुख के लिये भी जब यह साधन नहीं, परन्तु तू मान्यता करता है इतनी। ऐसे धर्म करता है आत्मा। धर्म अर्थात्? आत्मा अखण्ड आनन्दमूर्ति ज्ञान सच्चिदानन्दस्वरूप, ऐसी दृष्टि करने से, उसका ज्ञान करने से जो धर्म होता है, उस धर्म में भी शरीर, इन्द्रियाँ और विकल्प कोई साधन है? बिल्कुल नहीं। समझ में आया? ओहोहो! गजब!

धर्म अर्थात्? धर्म अर्थात् कोई बाहर की चीज़ नहीं। आत्मा अनन्त ज्ञान और आनन्द का स्वभाव है जिसका। वस्तु है न प्रभु आत्मा। तो वस्तु में बसी हुई शक्तियाँ हैं या नहीं? वस्तु अर्थात् वस्तु। उसकी शक्ति बसी हुई है। शक्ति कहो, स्वभाव कहो, गुण कहो। तो उसमें बसी हुई गुण-शक्ति क्या है? ज्ञान, आनन्द, शान्ति इत्यादि। ऐसी अनन्त शक्तियाँ हैं। ऐसी शाश्वत् अनन्त शक्ति का पिण्ड आत्मा, उसके ऊपर दृष्टि करके धर्म की परिणति प्रगट करे, उस धर्म की दशा में शरीर, इन्द्रियाँ, शरीर की मजबूती या शुभ-अशुभ विकल्प जो शुभराग, वह कुछ भी कार्यकारी है या नहीं?—कि नहीं। जयन्तीभाई! गजब धर्म भाई! कहो, यह धर्म में यात्रा करना, पूजा करना, वह कोई धर्म के साधन में साधन है या नहीं? ऐसा कहते हैं। ऐई! यह बीच में भले आवे अशुभ से बचने, परन्तु धर्म के अन्तर शुद्ध चैतन्य के परिणमन दशा के लिये वे कोई भी कार्यकारी नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! चिल्लाहट मचा जाये ऐसा है न। कहो, भगवानजीभाई! यह ऊपर ९९ यात्रा करे, नीचे और ऊपर चढ़े। उसमें शुभभाव हो, उसमें राग की मन्दता का। क्योंकि परलक्ष्यी है न वह वस्तु? परन्तु उस आत्मा के स्वलक्ष्य के साधन में परलक्ष्यीभाव कुछ साधनरूप होता नहीं। ऐसी बात बैठाते हैं। आहाहा! कठिन काम! कहो, समझ में आया या नहीं? ऐ... प्रवीणभाई!

तब फिर किसलिए करना? परन्तु वह आवे, अलग बात है, परन्तु अन्तर वस्तु

भगवान आत्मा ध्रुव चिदानन्द प्रभु शाश्वत् वस्तु आत्मा, उसकी अन्तर दृष्टि करके जो धर्म निर्मल, निर्दोष वीतराग पर्यायरूप से आत्मा होता है, वह धर्म है। उस धर्म के लिये शरीर, इन्द्रियाँ, पैसा दिया-लिया या विकल्प उठा, वह कुछ साधन नहीं होता। समझ में आया? तो फिर मुक्तदशा में शरीर सुख के लिये साधन है, यह है नहीं। शरीर नहीं तो भी उन्हें आनन्द का परिणमन परमात्मा को पूर्ण है। समझ में आया, भाई? यह तो सुनने का किसी दिन मिले ऐसा है। वहाँ तो ऐसे करो और यह करो और फलाना करो, यह करो, विधि से काम करो, विधि से करो तो धर्म (होगा)। धूल भी नहीं सुन न अब। जितना शुभविकल्प उठे न दया, दान, व्रत, भक्ति, यात्रा का, वह शुभराग है। वह राग आत्मा के अन्तर त्रिकाल धर्म की दृष्टि करने में और अन्तर के स्वरूप में धर्म परिणमने में वह राग बिल्कुल साधन नहीं नहीं है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

क्यों?—कि संसार सशरीरी में भी पर में सुख की मान्यता के तेरे भाव में शरीर और इन्द्रियाँ अकिंचित्कर अर्थात् कुछ कार्यकारी नहीं। तू भाव कर, ऐसा होता है। समझ में आया? ऐसी कठिन बातें, भाई यह! वे तो वहाँ सुने धमाधम लगे, विवाद करे, हों! ऐई! वह कहे कि ९९ यात्रा करो तो ऐसा होगा, ढींकणा करो तो होगा। वह तो शुभराग है। परद्रव्य के सामने देखना, वहाँ कहाँ धर्म था? सुन न! होता है, अशुभ से बचने के लिये पाप न हो तब पुण्यभाव (आता है), परन्तु वह पुण्यभाव आत्मा के धर्म के लिये साधन है, वह यहाँ इनकार करते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? और न्याय से कहते हैं न? वह तो विकल्प है, राग है और तेरा शुद्धस्वभाव जो त्रिकाल है, उसकी अन्तर दृष्टि और अनुभव करने में वह राग बिल्कुल अकिंचित्कर है। कुछ भी कार्य करने में स्वभाव की शान्ति प्राप्त करने में साधन है नहीं।

जैसे कि संसार की शरीर अवस्था में भी सुख की परिणति की मान्यता करने में शरीर और इन्द्रियाँ कुछ कार्यकारी नहीं, इसी प्रकार आत्मा की धर्म परिणति करने में शरीर, इन्द्रियाँ और राग कुछ कार्यकारी नहीं। आहाहा! कैसी बात की है, देखो न!

यह ज्ञानतत्त्व, ज्ञानतत्त्व अधिकार है न! आत्मा ज्ञानस्वरूप है। ज्ञान चिदानन्द चैतन्यसूर्य है वह तो। चैतन्य सूर्यप्रकाश। चैतन्य का प्रकाश है, उस चैतन्य के प्रकाश को अन्तर प्रगट करने के लिये अन्तर साधन है। अन्तर दृष्टि करना और अन्तर्मुख होना,

वह साधन है। उसे पुण्य का विकल्प या इन्द्रिय शरीर अच्छा हो तो धर्म होता है, ऐसा कुछ है नहीं। जयन्तीभाई! ठीक होगा यह? परन्तु बहुत वहाँ मुम्बई में लकड़े दूसरे अधिक हों, उसमें मुश्किल-मुश्किल से कभी सुनने को मिले। आहाहा!

न्याय से सत्य क्या है, उसे सिद्ध करते हैं। सर्वज्ञ परमात्मा, वे '**न्यावयम**'—मार्ग है, वह न्याय है। तो न्याय क्या है? भाई! तेरे संसार की दशा में लाख, करोड़ सुन्दर शरीर हो, मक्खन के पिण्ड जैसा शरीर ऐसे रूपवान अच्छा, ऐसे इन्द्रियाँ सब कान कुण्डल जैसे, आँख हिरण की उस जैसी, नाक गरुड के उस जैसा, मुख चन्द्र के उस जैसा, शरीर हाथ और पैर केले के उस (स्तम्भ) जैसे, वे आत्मा को सुख मनाने में कुछ कार्यकारी हैं या नहीं? ऐई! नहीं? स्त्री का शरीर सुन्दर हो, पूरे अवयव सुन्दर हों, लो प्रत्येक अवयव। तो फिर कुछ भी यहाँ मिथ्याभ्रान्ति करने में सुख में उसका कारण है या नहीं? या दो-पाँच-दस प्रतिशत करो न? दस प्रतिशत उसके और नब्बे प्रतिशत इसके, ऐसा होगा या नहीं? ऐई! हीरालालजी! एक प्रतिशत नहीं। तेरी विपरीतता से अस्वभावरूप से अर्थात् अशुद्धभावरूप से तू होता है। उसमें परचीज़ का कुछ कार्यपना, कारणपना बिल्कुल नहीं। आहाहा! यह तो समझ में आये ऐसा है, हों! साधारण भाषा है परन्तु वस्तु तत्त्व क्या है, यह बात सादी भाषा में आती है परन्तु इसे जरा ध्यान रखना चाहिए। अनन्त काल से इसने भूल की है, उसमें दूसरा कारण नहीं, ऐसा जहाँ जानने में न आवे, उसे भूल मिटाने का धर्म में भी दूसरा कोई साधन नहीं। भगवान आत्मा आनन्दकन्द सच्चिदानन्द प्रभु है, उसकी अन्तर शरण लेने से साधन स्वयं होता है। उसे पुण्य का विकल्प शरीर, इन्द्रियाँ अच्छी हों तो धर्म होता है, शरीरआद्यं खलु धर्म साधनं। कहते हैं न लोग? धूल भी नहीं, यह कहते हैं यहाँ। शरीरआद्यं। शरीर निरोगी हो, स्फुरणा रहे। किसकी स्फुरणा रहे? धूल की? वह तो राग की है। और राग की स्फुरणा में भी शरीर कुछ काम नहीं करता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? चन्द्रकान्तभाई! कहो, समझ में आया या नहीं यह?

पाँच हजार, दस हजार का वेतन हो, टोपा-बोपा पहना हो, रूपवान शरीर हो, हाथ में लकड़ी हो। लकड़ी हो, उसमें वापस स्वर्ण का वह हो, क्या कहते हैं उसे? खोळ (कवर)। ऐसे चलता हो। पधारो साहेब वे कहे। तो ऐसे उसके राग में सुख की

कल्पना में वे कुछ कारण हैं या नहीं ? यह पधारो-बधारो कहा वह। भाई ! धारासभा में जहाँ जाते होंगे तब आओ... आओ, पधारो... पधारो करते होंगे या नहीं ? दिल्ली में धारासभा में थे न ? वहाँ धारासभा में पधारो... पधारो साहेब, लो ! हम गये थे न देखने सब दिल्ली में। वे साथ में थे। सब देखने गये थे। उन सब राजाओं को बैठाकर। सब हो न कुर्सी-बुर्सी सब। सब देखने गये थे अन्दर। वे साथ में थे। जब दिल्ली गये थे न पहले दिल्ली, हों ! अब तो... (संवत्) २०१३ के वर्ष। १२ वर्ष हुए। परन्तु कुछ... कुछ... कुछ है या नहीं ? उसमें उत्साह आवे, उसमें बाहर के कारण कुछ हैं या नहीं ? और प्रतिकूलता कुछ हो, उसमें दुःख की कल्पना हो, वह बाहर के कुछ कारण हैं या नहीं ? नहीं। ऐसा कहते हैं। तू स्वतन्त्ररूप से तेरे स्वभाव को भूलकर विकार और विभावरूप से तू स्वयं आप होता है। उसमें पर का कुछ कार्य है नहीं। आहाहा ! समझ में आया ?

जिसकी शक्ति की उत्कृष्टता (परम शुद्धता) रुक गई है... भाषा देखो ! क्या कहते हैं ? **इन्द्रियसुखरूप परिणमन करनेवाले आत्मा की ज्ञान-दर्शन-वीर्यात्मक स्वभाव की उत्कृष्ट शक्ति रुक गयी है, अर्थात् स्वभाव अशुद्ध हो गया है।** क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा ऐसे चैतन्यप्रभु ज्ञान और आनन्द जिसका स्वभाव है, उसरूप पर्याय में परिणमन होना चाहिए, वह स्वभाव शक्ति रोक दी है। अपना ज्ञान और आनन्दस्वभाव भगवान आत्मा का अनादि है, उसके ओर की शक्ति का विकास होना चाहिए, वह शक्ति का विकास जहाँ रुंध गया है। परसन्मुख की कल्पना में सुखबुद्धि में... सुखबुद्धि में, सुखबुद्धि के परिणमन में उत्कृष्ट शक्ति जो है प्रगट होने की, वह रुक गयी है। देखो, अपने कारण से रुक गयी है। कर्म-फर्म के कारण से नहीं। समझ में आया ? आहाहा ! गजब !

भगवान आत्मा शक्ति की उत्कृष्टता रुक गयी है। किसकी ? पर्याय की बात है यह, हों ! उत्कृष्ट शक्ति तो त्रिकाल है। समझ में आया ? क्या कहा ? भगवान आत्मा वस्तु है न आत्मा पदार्थ है न ? अविनाशी है न ? अकृत्रिम है न ? किसी से बना हुआ नहीं। है, है, है। तीनों काल वस्तु है। तो वस्तु है, ऐसा तीनों काल रहनेवाला, उसमें ज्ञान और आनन्द त्रिकाल है। ऐसी तो शक्ति एकरूप त्रिकाल है। अब उसके ओर की जो एकाग्र होकर शक्ति की उत्कृष्टता प्रगट होनी चाहिए, उसके बदले राग और पुण्य में सुख है,

पर में सुख है, ऐसी बुद्धि में उत्कृष्ट पर्याय की शक्ति वहाँ रुक गयी है। पर्याय में प्रगट होने की पर्याय वहाँ रुक गयी है, ऐसा कहते हैं। फिर से। समझ में आया इसमें?

भगवान आत्मा द्रव्यस्वरूप वस्तु, वह तो त्रिकाल। अब उसके गुण जो हैं ज्ञान-आनन्द वह त्रिकाल वस्तु अनादि-अनन्त। है। अब उसकी ओर का जो परिणमन, वह सुखरूप आनन्द हूँ मैं, ऐसी अन्तर दृष्टि होकर पर्याय अर्थात् अवस्था में शक्ति का जो विकास होना चाहिए, वह शुद्ध विकास हो। अब जहाँ वह शुद्ध विकास अन्तर दृष्टि का जहाँ अभाव है और पर में सुखबुद्धि जो परिणमी है, उसके अशुद्ध परिणमन, अशुद्ध भाव के कारण शुद्ध की शक्ति का विकास वहाँ रुंध गया है, अटक गया है, रुक गया है। आहाहा! समझ में आया? यह बातें तो भाई परमसत्य की हैं। अभी तो भाई बाहर की गड़बड़ गड़बड़ बाहर की चलती है। इसलिए यह समझने के लिये जरा योग्यता प्रगट करनी चाहिए। अनन्त काल से इसने सत्य को समझने की दरकार ही नहीं की। ऐसे बिना भान के जिन्दगी व्यतीत कर मर गया अनन्त बार। समझ में आया?

जिसकी शक्ति की परमशुद्धता रुक गयी है। **ऐसे भी (अपने) ज्ञान-दर्शन-वीर्यात्मक स्वभाव में जो कि (सुख के) निश्चयकारणरूप है - परिणमन करता हुआ...** वह विकाररूप से, हों! विकारपने की बात है। वहाँ ऐसे भी... क्या कहते हैं? कि अपना स्वभाव जो शुद्ध आनन्द है ध्रुव चिदानन्द, उसकी ओर का परिणमन, उसके झुकाव का परिणमन चाहिए धर्म का, वह अज्ञानी को नहीं। अज्ञानी को तो वह पर में सुखबुद्धि के परिणमन में जो शक्ति का विकास जो विशेष निर्मल होना चाहिए, वह शुद्धि रुक गयी है, इसलिए अशुद्धरूप से परिणमा है, मलिनरूप हुआ है, मलिनरूप पर्याय हुई, वह अधर्म है। उस अधर्म में भी धर्म की शक्ति का उत्कृष्ट विकास शुद्धि होना चाहिए, उसे स्वयं ने रोका है। समझ में आया? गजब! प्रवचनसार है यह।

ऐसे भी (अपने) ज्ञान-दर्शन-वीर्यात्मक स्वभाव में... ये उल्टे, हों! ज्ञान-दर्शनस्वभाव अर्थात् सुलटा वह नहीं। अशुद्ध। उसका ज्ञान भी राग में रुक गया, दर्शन राग में रुक गया, वीर्य भी वहाँ रुका। ऐसे विभावस्वभाव से **कि जो सुख के निश्चय-कारणरूप है—** सुख का निश्चय कारण अर्थात् कल्पना। सुख यह अतीन्द्रिय आनन्द की यह बात नहीं। शरीर और इन्द्रियों में, पर में सुख है—ऐसे परिणमन में सुख के

निश्चय कारणरूप है। कौन? उसकी पर्याय। **परिणमता हुआ...** अपनी विकारी पर्यायरूप—सदोष विकारीरूप—अशुद्धतारूप परिणमता हुआ, **यह आत्मा स्वयमेव सुखत्व को प्राप्त करता है,...** अपने आप स्वभाव से भूलकर, अपने स्वभाव में अर्थात् भाव में विकाररूप स्वयं स्वयं से होता है। वह विकारपना होने में दूसरी चीज़ कुछ कार्यकारी है नहीं। समझ में आया?

....सिद्ध करना है। समझ में आया? कि आत्मा अकेला रहे, अपनी शुद्धदशा को प्रगट करके, सिद्धदशा जिसे मुक्तदशा, जिसे मोक्ष कहते हैं। तो मोक्ष में तो आत्मा अकेला है, वहाँ शरीर नहीं तो उसे सुख कैसे होगा? कि भाई! शरीर सुख का साधन तो तुझे भी नहीं अभी। तेरी कल्पना में वह निमित्त है, परन्तु कार्यकारी है नहीं। तो वहाँ तो शरीर नहीं और अकेला आत्मा का आनन्द अनुभव करना, उसका नाम मुक्ति और मोक्ष कहा जाता है। संसार में विकारी पुण्य-पाप के विकारभाव की अशुद्ध परिणति को अनुभव करना, वह संसारदशा। उस अनुभव में परचीज़ कुछ कार्यकारी है नहीं। उस अशुद्ध परिणति का नाश करके, स्वभाव-सन्मुख की शुद्ध परिणति, शुद्धदशा प्रगट की, उसे भी शरीर और इन्द्रियाँ कुछ सहायता नहीं करती। इसलिए उनके बिना भी परमात्मा सुखी हैं। मुक्तदशा में आत्मा सुखी है। समझ में आया? कितनी बात हुई!

मुक्ति में सुख है। लाडी नहीं, वाडी नहीं, गाड़ी नहीं, घोड़ी नहीं, ओसामण नहीं, गर्म-गर्म ओसामण नहीं, गर्म-गर्म रोटी नहीं। ऐसे तवे में से निकले और एकदम पड़े घी में डुबोकर। कुछ नहीं होता और सुखी। अब सुन न! वह कुछ नहीं हो, वही सुखी है, कहते हैं। और आत्मा पूरा परमात्मा स्वयं है, उसका अवलम्बन लेकर शुद्धदशा की अवस्थारूप से स्वयं हो गया। स्वयमेव हुआ है, स्वयमेव हुआ है। शक्ति का विकास करके परिणति निर्मल स्वयमेव हुई है। ऐसी मुक्तदशा में शरीर, इन्द्रियादि नहीं होने पर भी आनन्दरूप है। उस आनन्द में बाह्य (चीज़) कुछ साधन है नहीं।

जैसे कि तेरी सशरीर अवस्था में परवस्तु तेरी सुख-दुःख की कल्पना के परिणमन में बाह्य चीज़ कुछ काम नहीं करती, तो परमात्मा में तो नहीं तो कुछ काम नहीं करती। समझ में आया? यह तो जँचे ऐसा है, हों! इसके ख्याल में तो आवे कि ऐसा कहना चाहते हैं इतना। फिर और श्रद्धा तथा पहिचान करे वह बाद में। परन्तु ऐसा

कहना चाहते हैं, ऐसा तो ख्याल में आना चाहिए या नहीं ? यह धर्म की और अधर्म की यह पद्धति है। दुनिया ने कल्पित की है ऐसी नहीं। आहाहा! समझ में आया ?

हिंसा के परिणाम, झूठ के परिणाम, विषय के परिणाम, भोग आदि के परिणाम, वे परिणाम तुझमें होते हैं, उनमें बाह्य चीज़ कुछ काम नहीं करती, यह सिद्ध करते हैं। तेरा शुद्ध स्वभाव जो त्रिकाल, उसे शुद्धरूप से न परिणमाकर अशुद्धरूप से तू स्वयमेव स्वयं से होता है। इसलिए तुझे सुखरूप आत्मा भासित होता है। दुःखरूप है, उसे सुखरूप भासित होता है। कहो, चिमनभाई! क्या होगा अब इसमें ? अच्छे लड़के हों, अच्छे पैसे हों कमाऊँ, दो करोड़, पाँच करोड़ रुपये हों। शरीर अच्छा रहे सरस ऐसे। ८०-८० वर्ष की उम्र, ९० की, लो। परन्तु शरीर ऐसे पुष्ट हो, वह कल्पना सुख में कुछ सहायक नहीं वह ? ऐई! मलूकचन्दभाई! परन्तु तेरी पर्याय तू करे उसमें पर क्या करे तुझे ? समझ में आया ? तब तो ऐसा हो कि स्थूल-मोटा शरीर हो, उसे अधिक दुःख का कारण परिणमन हो। छोटा शरीर, उसे कम दुःख का परिणमन, ऐसा कुछ है ? बाहर के कारण हैं ? उसी अपनी उल्टी दशा, विपरीत दशा कितने प्रमाण में करता है, उस प्रमाण में उसे सुख-दुःख की कल्पनारूप होता है। पर के कारण से कुछ है नहीं। समझ में आया ?

ज्ञान, दर्शन, वीर्य, देखो! तीन लिये। उल्टा ज्ञान, उल्टी मान्यता और वीर्य वहाँ स्फुरित हो स्वभाव विभावरूप से। स्वभाव अर्थात् विभाव। ऐसे स्वभाव अर्थात् देखो यहाँ स्वभाव कहा उसे। विकारी परिणमन को ज्ञान, दर्शन, वीर्य का स्वभाव कहा। स्व अर्थात् अपना भाव। ऐसे भाव से **जो कि सुख के निश्चयकारणरूप है-...** कौन सा ? वह भाव कल्पित सुख की मान्यता का वास्तविक कारण है। क्या कहा ? यह पर में सुख है, ऐसी मान्यता के कारण में तेरा वास्तविक कारण है। पर कारण कुछ है नहीं। आहाहा! सुख कारणरूप **परिणमन करता हुआ यह आत्मा स्वयमेव सुखत्व को प्राप्त करता है,...** सुख अर्थात् ? यह सांसारिक सुख हों! कल्पना का। इन्द्रियाँ और शरीर में मुझे ठीक है अभी, मुझे मजा है अभी।

मुमुक्षु : तबीयत बहुत अच्छी रहती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, तबीयत बहुत अच्छी रही। तबीयत अच्छी, वह तो शरीर

है, उसमें तुझे क्या ? वह तो जड़ है मिट्टी। वह तबीयत अच्छी है, इसलिए मुझे मजा है, ऐसा जो मिथ्यादृष्टि के मिथ्यात्व का परिणमन (उसमें) तबीयत बिल्कुल उसे कार्य नहीं करती। मनसुखभाई! अकिंचित्कर है। अकिंचित्कर, वह यहाँ ऊपर आ गया न! अब आयेगा वहाँ। समझ में आया ? अकिंचित्कर है, देखो! ६७ में आयेगा। वह तो यहाँ से उठाया है न। कुछ नहीं। न्याय से—लॉजिक से तो बात सिद्ध करते हैं। परवस्तु यदि सुख-दुःख की कल्पना का कारण हो तो वस्तु जितनी अधिक हो तो अधिक मैल अशुद्धरूप से होना चाहिए। परन्तु ऐसा तो है नहीं। थोड़ी वस्तु हो और मलिनपने तीव्र है तथा अधिक हो और मलिनपने थोड़ा (होता है), वह तो अपनी स्वतन्त्रता है, परचीज़ के कारण से है नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

और शरीर तो अचेतन ही होने से... लो, देखो! भाई! यह शरीर, इन्द्रियाँ, वे तो अचेतन हैं और तेरी मान्यता में मैं सुखी हूँ—ऐसी कल्पना के परिणमन में वास्तविक कारण तो तेरा ही है। यह इन्द्रियाँ और शरीर तो अचेतन होने से **सुखत्वपरिणति का निश्चयकारण न होता हुआ...** सुख की अवस्था में निश्चय कारण नहीं होता। निश्चय कारण नहीं होता, तब व्यवहार कारण होता है ? परन्तु व्यवहार कारण का यह अर्थ है कि है नहीं, उसे कहना, उसका नाम व्यवहार कारण। वापस इसमें से निकाले, भाई! ऊपर दो बातें कही कि (कल्पना) सुख के निश्चयकारणरूप परिणमता हुआ विकाररूप और पर सुख का निश्चय कारण नहीं होता हुआ **किञ्चित्मात्र भी सुखत्व को प्राप्त नहीं करता।** शरीर सुख की दशा की कल्पनारूप से शरीर किंचित् भी नहीं होता। तेरी अवस्था में तुझमें होता है। न्याय से बराबर है या नहीं ? यह तो जड़ है, अचेतन है और मैं सुखी हूँ, ऐसी अज्ञानदशा का परिणमन, वह तो चेतन की अवस्था में है। वह कहीं जड़ में नहीं और जड़ के कारण से नहीं। बराबर है ? आहाहा! अभी तो भूल कैसे करता है, इसकी खबर नहीं होती। वह मानो भूल करता हूँ, वह यह है, इसलिए करता हूँ, यह (है इसलिए) करता हूँ। अभी इसी बात में भूल। इसलिए फिर उसे छोड़ो, इसे छोड़ो। परन्तु भूल उसके कारण से कब हुई है, वह उसे छोड़े (तो) भूल मिटे ? समझ में आया ? यह अधिक चीज़ है छोड़ो, त्याग करो, त्याग करो, छोड़ो, छोड़ो। परन्तु उसके कारण से भूल हुई है कब ? कि छोड़ और ग्रहण ऐसा आवे तुझमें। आहाहा!

मुमुक्षु : महासिद्धान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : त्रिकाल सिद्धान्त है, सत्य सिद्धान्त है यह।

मुमुक्षु : ....सुना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सुना नहीं? यह कहते हैं। बापू क्या कहते हैं? सुना नहीं। कहो, समझ में आया इसमें? आत्मा कहाँ बालक और वृद्ध, युवक है? आत्मा तो आत्मा है। यह तो शरीर उसके कारण से... छोटा और कोमल उसे बालक कहते हैं, कठिन माँस और हड्डियाँ उसे जवान कहते हैं, हड्डियाँ और इन्द्रियाँ ढल जाये उसे वृद्ध कहते हैं। यह तो हड्डियों की दशा का नाम है, आत्मा में कहाँ है वृद्ध और युवक? समझ में आया? और वृद्ध के कारण वहाँ दुःख है और जवानी के कारण सुख की कल्पना, ऐसा है? ऐसा कहते हैं। नहीं। युवक शरीर, इसलिए यहाँ सुख की कल्पना में कारण हो वह? नहीं। तेरी पर्याय में निश्चय कारण तू ही है। सुख की कल्पना, हों! सुख अर्थात् सुखरूप होता है, इसका अर्थ? सुख की कल्पनारूप। है तो वह कल्पना दुःखरूप। परन्तु माना है न कि हम सुखी हैं। अभी पैसे-टके से सब प्रकार से व्यवस्थित है, ऐसा कहते हैं न! धूल भी नहीं। पैसे-टके से लड़के सब प्रकार से हमारे व्यवस्थित है। ऐई!

वे सेठ कहते थे अभी, नहीं? सेठिया। आये थे न सरदारशहर। वे स्वयं कहे, देखो ऐसा कुछ सुख नहीं, ऐसा तो अनन्त बार हुआ है। लड़के अच्छे, लड़कियाँ अच्छी, लड़की का विवाह किया, (वह) दामाद अच्छे, घर में पैसा, लड़के अच्छे, लड़के की बहू आवे वह सब अच्छी। यह भाई आये थे न अभी सेठिया, दीपचन्द सेठिया। वे कहते थे तीन-चार वर्ष पहले। सब व्यवस्थित। चक्रवर्ती का बहुत होगा, यह थोड़ा परन्तु सब एक-एक अंश में व्यवस्थितता है। परन्तु वह व्यवस्थितता क्या? धूल की। वह अनन्त बार आयी। वह व्यवस्थितता किसकी कहना? समझ में आया? आहाहा!

और नारकी के जीव को कितनी प्रतिकूलता बाहर की। तथापि वह प्रतिकूलता उसके दुःख के कारण के लिये नहीं। आहाहा! उसकी अपने स्वभाव की दृष्टि भूलकर,

चैतन्य ज्ञाता-दृष्टा को भूलकर मुझे दु:ख होता है, ऐसी कल्पना का परिणमन स्वयं करता है। उसमें बाह्य चीज़ है, वह अकिंचित्कर है। आहाहा! कितना निमित्त को अकिंचित्कर सिद्ध करके स्वतन्त्र कार्य होता है, दु:ख का और विकार का भी, ऐसा सिद्ध करते हैं। आहाहा! बात विचार में आती नहीं, सुनने को मिलती नहीं। वह तो बाहर से धमाधम और धमाधम। यह करो और यह करो, यह करो और यह करो। करो... करो... करो... करो, यह तो विकल्प है, राग है। समझ में आया? और राग है, वह तो धर्म से विरुद्ध भाव है। समझ में आया?

धर्म परिणति में अपना स्वभाव भगवान शुद्ध आनन्दस्वरूप, उसकी अन्तर दृष्टि करने के लिये ज्ञान और रमणता करने में बाह्य चीज़ें बिल्कुल कार्यकारी है नहीं। स्वत: साधन है, वह आत्मा में साधन हो जाता है। ऐसे दु:खरूप से संसार की सुख की कल्पना के भाव में भी बाह्य की चीज़ें अर्थात् शरीरादि कुछ भी कार्यकारी नहीं। वह तो निमित्तरूप से दूसरी चीज़ है। निमित्त अर्थात् कि कार्य करे नहीं, उसे निमित्त कहा जाता है। कार्य करने में सहायक नहीं, उसे निमित्त कहा जाता है। समझ में आया?

और शरीर तो अचेतन ही होने से सुखत्वपरिणति का... जड़ को, मैं सुखी हूँ, ऐसी कल्पना का परिणमन जड़ को होगा? मिट्टी को होगा? उसे ज्ञान है? आत्मा ज्ञान है और जानता है, ऐसे जानते हुए 'यह ठीक है' ऐसी कल्पनारूप से ज्ञान स्वयं अटका हुआ काम करता है, नहीं कि अचेतन शरीर उसे दु:ख की परिणतिरूप सुख की कल्पना कराता है। समझ में आया? यह नौ तत्त्व का क्या प्रत्येक भाव स्वतन्त्र है, यह सिद्ध करते हैं। यह खबर नहीं और फिर करो धर्म, कहते हैं। करो अपवास, हो गया धर्म। किसका परन्तु? अपवास अर्थात् क्या? यह रोटियाँ नहीं आयी, वह अपवास हो गया? रोटियाँ तो जड़ हैं, वे तो नहीं आयी थी। नहीं आयी, इसलिए वह परिणाम धर्म हुए? उसमें शुभ विकल्प किया हो, वह भी वह तुझसे हुआ है। यह रोटियाँ नहीं आयीं, इसलिए शुभ परिणाम हुए, ऐसा भी नहीं। समझ में आया? आठम का अपवास, इसलिए रोटियाँ नहीं खायीं, रोटियाँ नहीं आयीं, इसलिए शुभ परिणाम हुए, ऐसा है? शुभपरिणाम तो तेरे तू परिणमित हुआ था, उसमें वह चीज़ कुछ कार्यकारी है नहीं। वे शुभ परिणाम भी पुण्य है, धर्म नहीं। आहाहा! समझ में आया? कठिन काम!

मूल बात को समझने के लिये अभी इतनी अधिक विपरीतता हो गयी न। प्ररूपणा पूरी बदल गयी, इसलिए यह बात सुनते हुए इसे ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं यह वे ? ऐसा मार्ग वीतराग का होगा ? जैन परमेश्वर ऐसा कहते होंगे ? दूसरा सुना हो, इसलिए ऐसे जैन परमेश्वर कहते हैं ? यह जैन परमेश्वर ऐसा कहते हैं, सुन न! समझ में आया ? जैन परमेश्वर कोई वाड़ा नहीं, वस्तु का स्वरूप है। परमात्मस्वरूप चिदानन्द वीतरागमूर्ति आत्मा है। क्योंकि वीतरागता प्रगट होती है, वह कहाँ से आती है ? अन्दर में से आती है या बाहर से आती होगी ? शान्ति और आनन्द आवे, वह कहाँ से—बाहर से आता है ? प्राप्त की प्राप्ति है। तो अन्दर में पड़ी हुई वस्तु है, उसे एकाग्र होने पर प्रगट करता है। उसे वह प्रगट करने में बाह्य चीज़ बिल्कुल सहायक—साधन-फाधन है नहीं। आहाहा!

किञ्चित्मात्र भी सुखत्व को प्राप्त नहीं करता। भाषा क्या है ? कौन ? यह शरीर। पर में सुख है, ऐसी कल्पना के परिणमन में जीव स्वयं कारण है। परन्तु उस परिणमन में शरीर किंचित् भी सुखरूप से परिणमता नहीं। जड़ को क्या हो परन्तु सुखपने परिणमे ? इसलिए वह कुछ भी सुख की कल्पना के भाव में काम नहीं करता। आहाहा! बहुत सिद्धान्त इसमें सिद्ध करते हैं।

भावार्थ : सशरीर अवस्था में भी... ऐसा। शरीर बिना, भगवान आत्मा को पूर्णानन्द प्राप्त हो, उसे तो शरीर की आवश्यकता नहीं। **सशरीर अवस्था में भी आत्मा ही सुखरूप (इन्द्रियसुखरूप) परिणति में परिणमन करता है,...** पर्याय। शब्द में, रूप में, गन्ध में, रस में, स्पर्श में वह तो जड़ है। परन्तु 'उसमें मुझे ठीक पड़ता है' ऐसी कल्पनारूप से आत्मा परिणमता है। वह इन्द्रिय के विषय उसे परिणमाते नहीं। **देह नहीं...** यह देह नहीं। आहाहा! **इसलिए सशरीर अवस्था में भी सुख का निश्चय कारण आत्मा ही है...** देखो! सुखकारण आत्मा। उस विभाव का सुखरूप से परिणमन का कारण आत्मा। यह उपादान-निमित्त का बड़ा विवाद लेते हैं न, बड़ा झगड़ा। निमित्त है, परन्तु निमित्त कार्यगत करता नहीं। इसका नाम निमित्त। वरना निमित्त रहता नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। आहाहा! बहुत स्पष्टीकरण है इसमें, देखो!

अर्थात् इन्द्रियसुख का भी वास्तविक कारण आत्मा का अशुद्ध स्वभाव है।

मलिन भाव है। **अशुद्ध स्वभाव में परिणमित आत्मा ही स्वयमेव इन्द्रियसुखरूप होता है।** अपने आप इन्द्रिय के सुखरूप मैं सुखी हूँ, ऐसा मानता है, स्वयं परिणमता है। **उसमें शरीर कारण नहीं है;...** देह बिल्कुल कारण नहीं। आहाहा! **क्योंकि सुखरूप परिणति और शरीर सर्वथा भिन्न होने के कारण...** क्या कहते हैं? आत्मा में, मैं सुखी हूँ बाहर से, ऐसी कल्पना की मान्यता में, परिणमन में और देह अत्यन्त भिन्न है। देह अत्यन्त भिन्न चीज़ और यह दु:खरूप परिणमता हूँ, अर्थात् सुखरूप मान्यता, वह परिणति-अवस्था अत्यन्त भिन्न है। (ऐसा) **होने के कारण सुख और शरीर में निश्चय से किञ्चित्मात्र भी कार्यकारणता नहीं है।** कहो, समझ में आया? ऐसा यदि निर्णय करे तो मेरी भूल से ही मैं परिणमता हूँ, नहीं कि कोई भूल कराता है। अपनी भूल से सुख मानता हूँ, ऐसा यदि माने तो अपने स्वभाव के आश्रय से वह भूल टले। मैं ज्ञानानन्द चैतन्य हूँ, मेरा आनन्द मेरे पास है, ऐसी दृष्टि करके पर में सुखबुद्धि का नाश होता है। तब उसे धर्म होता है, तब वह जन्म-मरण का नाश करे। यह विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक शुक्ल १५, सोमवार, दिनांक ०४-११-१९६८
गाथा - ६६-६७, प्रवचन - ५६

गाथा - ६६

६५ गाथा हुई। ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। ६६।

एगंतेण हि देहो सुहं ण देहिस्स कुणदि सग्गे वा।
विसयवसेण दु सोक्खं दुक्खं वा हवदि सयमादा॥६६॥

जानो यह सिद्धान्त, स्वर्ग में भी तन सुखी नहीं करता।
किन्तु विषयवश होकर चेतन, ही सुख-दुख भोगा करता॥६६॥

क्या कहते हैं? यह ज्ञानतत्त्व अधिकार चलता है। तो ज्ञानतत्त्व अपना आनन्दस्वभाव है और ज्ञान शुद्ध जानना-देखना वह स्वभाव है। वह पर के सम्बन्धी लक्ष्य करके पर में सुख है, ऐसी बुद्धि करता है अथवा ऐसा भाव करता है, उस भाव के लिये परपदार्थ बिल्कुल कारण नहीं। समझ में आया? अपना शुद्धस्वभाव ज्ञायक ब्रह्म आनन्दस्वरूप, उसका अन्तर आचरण करना, उस परिणमन में भी कोई बाह्य साधन है नहीं। ऐसी उस वस्तु को भूलकर, ज्ञानतत्त्व भूलकर, ऐसा कहते हैं न। ज्ञानतत्त्व जो है, ज्ञानस्वरूप है, ब्रह्मानन्दस्वरूप है, उसे भूलकर राग और द्वेषरूप परिणमना विषयरूप से, उस परिणमन में बाह्य चीज़ कोई कारण नहीं। उसका आत्मा ही उस विकाररूप से व्यभिचाररूप से परिणमता है। समझ में आया?

ज्ञानस्वरूप आत्मा अपने ज्ञान में एकाग्र होकर परिणमे, उसमें कोई कारण विकल्प या निमित्त या शरीर का साधन नहीं। समझ में आया? वह वास्तविक ब्रह्मचर्य है। ब्रह्म अर्थात् आत्मा ज्ञानस्वरूप, उसमें एकाग्र होना, वह ब्रह्मचर्य। उसमें कोई बाहर के कारणों की आवश्यकता नहीं, ऐसा कहते हैं। और पर में आनन्द मानना, ऐसी मान्यता के परिणमन में भी कोई बाह्य कारण की आवश्यकता नहीं। समझ में आया? वह व्यभिचार है। पर में सुख मानना, ऐसा जो भाव, वह आत्मा के ज्ञानतत्त्व से विरुद्ध

व्यभिचार है। तो यहाँ कहते हैं कि व्यभिचाररूपी परिणमन के लिए भी कोई निमित्त कुछ कारण है ही नहीं। और ज्ञान तत्त्व के—शुद्ध स्वरूप है वस्तु उसके परिणमन के लिये भी कोई बाह्य कारण है नहीं। समझ में आया?

अन्वयार्थ :- एकान्त से अर्थात् नियम से स्वर्ग में भी शरीर शरीरी (- आत्मा को) सुख नहीं देता... क्या कहते हैं? निश्चित है कि स्वर्ग में भी, मनुष्य में तो ठीक, परन्तु स्वर्ग में वैक्रियकशरीर है और उसे भी देह अर्थात् वैक्रियिक देह, देही अर्थात् आत्मा को सुख नहीं करता। सुख अर्थात्? यह आत्मा के सुख की यह बात नहीं। आनन्द को भूलकर पर में सुख है, ऐसा जो भाव, उस भाव को वैक्रियिकशरीर कुछ नहीं करता। समझ में आया? **परन्तु विषयों के वश से...** बस, यह बात है। अपना भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द और ज्ञान की मूर्ति प्रभु आत्मा है, उसके वश न होकर परवस्तु की अनुकूलता आदि में यह मुझे ठीक है, ऐसी जो भाव की परिणति, वह आत्मा पर के वश होकर स्वतन्त्र करता है। समझ में आया?

विषयों के वश से... शब्द पड़ा है न? '**विसयवसेण**' मूल में है न? '**वसेण**' भगवान आत्मा अपना स्वभाव तो ज्ञान और आनन्द है। यहाँ ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन है न! ज्ञानतत्त्व, वह तो स्वरूप है सुखरूप और आनन्द। ऐसे ज्ञान के आनन्द की रुचि को छोड़कर, उसके आनन्द की रुचि को छोड़कर... उसकी यहाँ बात है। बाह्य पदार्थ में इज्जत, कीर्ति, शरीर, भोग, विषयवासना, यह जो खड़ी करता है, वह बाह्य कारण से खड़ी नहीं करता, कहते हैं। वह अपने व्यभिचार विकाररूप परिणाम विषय के वश होकर उत्पन्न करता है। उसमें पर वस्तु बिल्कुल अकिंचित्कर है। समझ में आया? कोई सुन्दर शरीर और सुन्दर शृंगार और सब विभूति बहुत अनुकूल हो, वह उसे ललचाती है और राग कराती है, ऐसा नहीं। तथा प्रतिकूलता की चीज़ें उसे हैरान करके दुःख देती हैं, ऐसा नहीं। कहो, भगवानजीभाई! कुछ भी जरा भी कुछ प्रतिशत नहीं हो बाहर का? अब भाई! आहाहा! प्लास्टिक का बड़ा जो वह होता है, उसमें बैठा हो, लड़के वहाँ बैठे हों। कुछ है या नहीं उसका कारण? आहाहा! भाई! तेरी चीज़ भिन्न है न, कहते हैं। तेरी चीज़ भिन्न है। भगवान आत्मा तो ज्ञानमूर्ति है। यहाँ तो ज्ञानतत्त्व है न, तो ज्ञानस्वरूप है, ज्ञाता-दृष्टा है। स्वभाव तो उसका वह है। उस स्वभाव के वश हो तो ज्ञानी को तो

ज्ञान का आनन्द और वह शुद्ध परिणमन हो, वह भी अपने आधार से है। वह कहीं पर के कारण से नहीं कि भाई कर्म कुछ मन्द पड़ गये, कुछ अनुकूलता आयी। कहो, भीखाभाई!

मुमुक्षु : नहीं, नहीं प्रभु! वह तो साधन ही नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं? वाणी... वाणी... वाणी अनुकूल साधन?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा! उसका कारण है। ज्ञानतत्त्व का परिणमना, उसका परिणमना, वह तो परिणमनशील उसका स्वभाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? वस्तु भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चिद्घन चैतन्यसूर्य आत्मा है, उसका परिणमना, वह तो उसका स्वरूप है। अब यदि स्वभाव के वश होकर परिणमे तो सुखरूप परिणमे और ज्ञानतत्त्व होकर रहे और पर के वश होकर रहे तो अज्ञानतत्त्वरूप विकाररूप परिणमे, व्यभिचाररूप परिणमे, वह स्वतन्त्र है। समझ में आया?

कहते हैं कि वह **सुख अथवा दुःखरूप स्वयं आत्मा होता है।** अन्वयार्थ में। है न मूल स्वयं शब्द है न? '**स्वयं आत्मा भवति**' देखो न, कितना स्पष्ट किया! स्वयं।

मुमुक्षु : स्वयं का अर्थ अलग करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : करते हैं न अलग। स्वयं अर्थात् परिणमता है वह, ऐसा। परन्तु यह तो स्वयं परिणमता है, ऐसा कहना है यहाँ। आहाहा!

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति चैतन्यप्रभु है वह तो, सच्चिदानन्द है। ऐसी यदि अन्तर दृष्टि करे, तब तो उसे आनन्द और ज्ञान का परिणमन, वह भी स्वयं करता है। उसे आत्मधर्म के परिणमन में किसी चीज़ की अपेक्षा नहीं। निरपेक्ष पर्याय है वह, ऐसा कहते हैं। ऐसे व्यभिचार (अर्थात्) स्वरूप को भूलकर कहीं भी सुखबुद्धि होना, ऐसे मिथ्यात्व की परिणति विषयवश होकर स्वयं आत्मा करता है। समझ में आया?

उसमें एक आया है। ... अमर भारती एक। ऐसा कि यह विवाह है, यह मूल उठा कहाँ से? मूल तो ब्रह्मचर्य में से। ऐसा कि विशेष जो वृत्ति जाती हो, उसे रोकने

के लिये यह विवाह भी एक ब्रह्मचर्य का अंग है। वापस अध्यात्म की ऊँची बात करे, पढ़ा तो बहुत है। और एक ओर यह डाले। अरे! परन्तु वह तो व्यभिचार उत्पन्न करता है, वह दूसरे की वृत्ति हटाने के लिये है या अपनी वृत्ति नयी खड़ी करता है? किस प्रकार लोगों को बहलाते हैं न!

यहाँ तो कहते हैं कि अपना आत्मा है, वह तो ज्ञान और दर्शन और आनन्द। ज्ञानतत्त्व है न। वह तो ज्ञानतत्त्व ज्ञानभावस्वरूप आत्मा है। अब उस ज्ञानभावस्वरूप को भूले तो व्यभिचार के किसी भी विकल्परूप परिणमना, वह स्वतन्त्र स्वयं से स्वयं परिणमता है। फलाने के कारण से ऐसा हुआ, ढींकणे के कारण से, ऐसा उसमें कुछ है नहीं। समझ में आया? आहाहा!

टीका : यहाँ यह सिद्धान्त है कि शरीर, भले ही दिव्य वैक्रियिकता प्राप्त हो... यह सिद्धान्त, नियम है, सिद्धान्त है। नियम कहा न। एकान्त से, ऐसा कहा न? एकान्त कहो, नियम कहो या सिद्धान्त कहो। ऐसा सिद्धान्त अर्थात् निश्चितरूप नियम और यथार्थता है कि **शरीर, भले ही दिव्य वैक्रियिकता प्राप्त हो...** वैक्रियिकशरीर सुन्दर... सुन्दर... सुन्दर... सुन्दर... देव का शरीर वैक्रियिक होता है। समझ में आया? **तथापि सुख नहीं दे सकता;...** वह जड़ शरीर वैक्रियिक धूल है, मिट्टी का पिण्ड है। भले रूपवान, परन्तु वह जड़ है न? वह जड़ कहीं सुख की परिणति में परिणमे? सुख की परिणति वह करावे? सुख की परिणति अर्थात् पर में सुख है, ऐसी मान्यता की परिणति, ऐसा। समझ में आया? क्या होगा इसमें? अमुलखभाई!

मुमुक्षु : ....सब अज्ञान से करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ अज्ञान से ही करता है, यह बात लेनी है यहाँ। अपना ज्ञानस्वभाव चैतन्य है, शुद्ध आनन्दस्वरूप है, उसे भूले तो भी वह स्वयं और भूल को मिटावे तो भी स्वयं। उसमें दूसरा कोई कारण-फारण नहीं। निमित्त कहो, वह दूसरी बात है, परन्तु वास्तव में वह कारण नहीं या उसके कारण से इसमें होता है, ऐसा है नहीं।

दिव्य वैक्रियिकता प्राप्त हो तथापि सुख नहीं दे सकता;'... समझ में आया? कहो। ऐसे रेशमी गद्दे कोमल हों और अन्दर में गर्मी लगी हो शरीर में, उसमें स्वयं रखते

हो पतले फर्स्ट क्लास छाछ के और पवन सिर पर डाले, पगचम्पी करते हों अन्दर, लो! कोमल शरीर ऐसा। कुछ भी वह कारण है या नहीं यहाँ राग में? वह ललचाता है या नहीं कुछ? स्वयमेव आत्मा होता है। स्वयं-ऐव। स्वयं आप ही आत्मा विकाररूप परिणमता है। दुःख की दशारूप या सुख की कल्पनारूप। परवस्तु कोई उसे कुछ कराती नहीं। खबर भी नहीं होती तत्त्व की (कि) क्या करता हूँ और कहाँ हूँ, अब उसे किस प्रकार से धर्म होता है?

तत्त्व का क्या स्वरूप है, ऐसा यहाँ कहते हैं। वह विकार के परिणाम तत्त्व है पुण्य और पाप। समझ में आया? उन परिणामरूप परिणमना, वह स्वयं तेरी स्वतन्त्रता है। अबन्धस्वभाव को भूलकर, भगवान आत्मा चैतन्यस्वरूप अबन्धस्वरूप को भूलकर बन्ध के परिणामरूप परिणमना, वह पर के वश होकर तुझसे स्वतन्त्र होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? यह बन्ध के परिणाम कोई दूसरे के कारण से होते हैं, ऐसा नहीं है। यहाँ नोकर्म की बात है। परन्तु कर्म के कारण भी नहीं होते।

भावार्थ : शरीर सुख-दुःख नहीं देता।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनिष्ट वह करता है? लो! यह व्याधि। हथियार पड़ा, उसमें बिच्छू ने काटा, वह शरीर दुःख करता है? परन्तु बिच्छू काटने के समय दुःख क्यों होता है तब? उस समय क्यों दुःख होता है? उससे पहले दुःख नहीं होता था। पहले क्यों होता नहीं था? परन्तु बिच्छू काटा वहाँ आहाहा! चिल्लाहट मचा जाये। समझ में आया? एक बाई पाटे पर बैठी और पाटे पर पतला वस्त्र। पकाने के समय, वैष्णव है न, बहुत पतला वस्त्र पहना हुआ। पाटा हो पाटे में जरा छिद्र हो न। दो लकड़ियाँ व्यवस्थित मिली न हो उसमें नीचे बिच्छू। आहाहा! चिल्लाहट... चिल्लाहट। अब वहाँ बतावे कैसे? बहुत छुआछूत... छुआछूत करती थी, वस्त्र पतला पहनकर। अब इस प्रकार से बिच्छू ने काटा। कठोर बिच्छू। बैठक में काटा और चिल्लाहट... चिल्लाहट... मर जाती हूँ रे... यह पकाने का पड़ा रहा सब। उसके कारण दुःखी हुई? कैसे होगा?

मुमुक्षु : .... पकाने का पड़ा रहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पकाने का पड़ा रहा, वह तो नहीं होने का था। परन्तु उसके कारण से दुःखी नहीं है, ऐसा कहते हैं। आया नहीं ऊपर? इष्ट-अनिष्ट के वश। आया या नहीं ऊपर? उसके आधीन हो जाता है। अरे..! यह मुझे हुआ, अरे! मुझे हुआ। ऐसे द्वेषभाव से परिणमन तेरे कारण से स्वतन्त्र होता है। समझ में आया? यह निर्धनता दुःख का कारण नहीं, ऐसा कहते हैं। सधनता, वह सुख का कारण नहीं। सुन्दर शरीर सुख का कारण नहीं। सुख अर्थात् कल्पना अज्ञानी की। और कुबड़ा शरीर, एकदम काला और यह सब शीतला निकली हो और एक आँख फूट गयी हो और एक आँख बताने के काम भी न हो फूटती हो ठीक सी। क्यों मगनभाई, नहीं? गये? बुखार आया? यह तो याद आया आँख का वह। जरा फीके पड़कर आये थे। एक आँख में वह कहा न, नस सूखती है थोड़ी, ऐसा करके। अब होना हो वह होता है, क्या है परन्तु? हाय... हाय... ऐसा कि एक आँख गयी और अब एक आँख में सूखने लगा। छह इंजेक्शन देंगे, इतने कहे परन्तु अन्दर में से ... हो जाये। आँख जायेगी? आँख भी कब थी, वह जाये? उसे आँख थी ही कब आत्मा को? वह आँख आत्मा का अवयव है? वह तो जड़ का अवयव है। जड़ के अवयव में फेरफार हो, उसमें आत्मा को क्या है?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो यहाँ कहा। पाठ में है। विषय के वश, विषय वश। विषय शब्द से इष्ट और अनिष्ट, अनुकूल और प्रतिकूल। चाहे जो अनुकूल-प्रतिकूल आदि हो। समझ में आया? रात्रि में सब्जी खाने बैठा हो और उसमें छोटा बिच्छू इतना हो और वह सब्जी में आया और वह काटा बराबर यहाँ जीभ के ऊपर। सब्जी में आ जाये बिच्छू आ जाये। छोटा बिच्छू हो और सब्जी में आ गया। उसमें यहाँ जीभ में काटा। आहाहा! ... कुछ है। क्या है? उसके कारण से दुःख है? अरेरे!

उस समय तेरे आनन्द के ज्ञानतत्त्व को भूलकर तू पर को ज्ञेय करके वश हो जाता है, उसमें वह तेरा परिणमन स्वतन्त्र है। यह शरीर बिल्कुल तुझे सुख-दुःख का कारण नहीं। आहाहा! भारी कठिन बात! तत्त्व की ही खबर नहीं होती। एक तत्त्व का परिणमन दूसरे तत्त्व से हो, कैसे बने? यह यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया? वह तो दूसरा जड़ तत्त्व है। जड़ की अवस्था चाहे जो हो, वह तुझे दुःख का कारण, सुख

का कारण कहाँ से आया तुझे ? समझ में आया ? ऐसे (अपने को) धर्मी कहे, हम धर्म करते हैं। और वापस कहे, इसके कारण से मुझे दुःख हुआ। धर्म कहाँ रहा तेरा ? मिथ्यादृष्टि हुआ वह तो। अधर्म हुआ। पर के कारण से मुझे दुःख है, यह मान्यता मिथ्यादृष्टि की है। समझ में आया ? ऐसा कहे कि हम धर्म करते हैं, धर्मी हैं, लो!

मुमुक्षु : भ्रमणा में पड़ा।

पूज्य गुरुदेवश्री : भ्रमणा में पड़ा है। और कहे हम धर्मी। बापू! धर्म तो किसे कहे ? तेरा धर्म तो आत्मा ज्ञानस्वरूप है, उसकी सम्हाल करने से, सावधान होकर उसमें एकाग्र होने से जो दशा परिणमे, वह भी स्वतन्त्र, वह धर्म है। और शरीर आदि की प्रतिकूलता को देखकर, उसके वश होकर मिथ्या परिणाम से सुख-दुःख कल्पना कर, वह अधर्म है। वह अधर्म भी तुझसे स्वतन्त्र होता है।

लो, यह तो आया वह ६२वीं गाथा। पंचास्तिकाय। वहाँ वर्णीजी के पास बात चली थी न। विकार का कारण (कौन) ? कहा, विकार का कारण निश्चय से स्वतन्त्र आत्मा। कर्म नहीं। ऐई! खलबलाहट हो गयी। ऐसी बात में खलबलाहट। अब यह साधारण बात। समझ में आया ? यह तो साधारण बात थी कि भाई! नहीं... नहीं... नहीं। विकार तो पर से ही होता है, निमित्त हो तो ही होता है। यहाँ तो इनकार करते हैं। परन्तु विकार तो परिणमन अविकारी (निजस्वरूप को) भूलकर विकार तू करे तो होता है या वे करावे तुझे ? समझ में आया ? यहाँ वही बात सिद्ध करते हैं, देखो न! दुःखरूप स्वयमेव आत्मा होता है। वश। कहो, समझ में आया ? जिसे तत्त्व का यथार्थ भिन्नता का भान नहीं, उसे भेदज्ञान नहीं होता और भेदज्ञान हुए बिना आत्मा में एकाग्र नहीं हो सकता। भटकता है, उसकी बुद्धि यहाँ जहाँ-तहाँ। आहाहा! यह विकार का परिणमन कैसे होता है ? चैतन्य आनन्द का कैसे होता है ? पर का परिणमन कैसे होता है ? ऐसे तत्त्वों की जड़ की, आस्रव-बन्ध की और आत्मा की अर्थात् संवर-निर्जरा की, वह सब तत्त्व आ गये या नहीं इसमें ? समझ में आया ?

शरीरादि के और जड़ादि के परिणमन-अवस्था भी स्वतन्त्र उसके कारण से है और उस परिणमन के कारण यहाँ राग-द्वेष का परिणमन है, ऐसा है नहीं। वह आस्रव, पुण्य, पाप और बन्ध, तीनों इकट्ठे आते हैं न ? पुण्य-पाप, आस्रव और बन्ध, इन चारों

का ही परिणमन स्वतन्त्र अपने से है, ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया? लो! पुण्य-पाप दोनों आस्रव हैं और दोनों बन्ध हैं। वह कहते हैं कि पर के वश होकर तू करता है। अबन्धभाव स्वभाव है, (उसे) भूलकर बन्धभाव, आस्रवभाव, दुःखरूप भाव या सुखरूप कल्पना, वह तू परिणमता है। स्वयमेव आत्मा परिणमता है, इतना तो सिद्ध किया है अब। समझ में आया?

पहले क्यों नहीं था? पर्याय बदलती है या नहीं? पहले क्यों नहीं थी? पर्याय एकरूप रहे? परन्तु पहले की पर्याय दूसरी थी, अभी की पर्याय दूसरी है। पर्याय है या नहीं? पर्याय की एकरूप स्थिति है? यह आ गया है अपने समयसार के श्लोक में। पर्याय की एकरूप स्थिति है? तब कहे, यह निमित्त बदला, इसलिए स्थिति बदली, ऐसा है? निमित्त बदला, इसलिए स्थिति बदली—ऐसा नहीं है। पर्याय की स्थिति बदली, इसलिए स्थिति, ऐसा है। पर के कारण से नहीं। गजब बात बैठना कठिन जगत को। ऐसी दृष्टि पर के ऊपर (हो गयी है।) यह बात यहाँ कहते हैं, भगवान! तू तो ज्ञान है न भाई! जाननेवाला-देखनेवाला है। यह राग हो तो भी उसका जाननेवाला स्वसन्मुख में जाननेवाला है और परसन्मुख होकर न जाने तो भी तेरा परिणमन तो स्वतन्त्र तुझसे है। यह आस्रव, बन्ध तथा पुण्य-पाप का परिणमन परतत्त्व के कारण से नहीं। क्योंकि पर तो अजीवतत्त्व है, यह तो जीवतत्त्व भिन्न है। और तेरा तत्त्व का परिणमन भिन्न है और उससे ज्ञायकतत्त्व भी भिन्न है। समझ में आया?

भावार्थ : शरीर सुख-दुःख नहीं देता। लो! यह लड्डू और दाल, भात सुख-दुःख कराता नहीं। भूख लगे अन्दर और मिले ऐसे प्यास लगी हो, मोसम्बी का ठण्डा पानी, गर्मी के दिन। कुछ भी कल्पना हो सुख, उसमें कुछ कारण है या नहीं? कहते हैं। कामदार! परन्तु तृषा (के कारण से) गला ऐसे सूख गया हो। गला न? आत्मा कहाँ सूखता है वहाँ? वह तो जड़ है, वह तो मिट्टी है। उसमें पानी आया वह तो पर है, उसका परिणमन पर है, गले का पर है, उसमें उसके कारण तुझे वहाँ पानी आया इसलिए सुख की कल्पना हुई उसके कारण? कहे चैन! ऐसा होता है या नहीं? चैन! ऐसा नहीं होता?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। होशियार व्यक्ति है। कहो, समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि उसमें सुख है या नहीं? लो! इसमें सुख हो तो यह सुखरूप परिणमना चाहिए। ऐसा कहना है यहाँ तो। शरीर का आ गया न जड़? वह कहाँ परिणमता है? होता है तू और तू कहता है कि यह मुझे (सुख करावे), यह मुझे दुःख करावे। तेरी भ्रान्ति-भ्रम है। मिथ्या श्रद्धा का भ्रम तुझे खड़ा हुआ है। आहाहा! अरे! शरीर को भी ऐसा तेल कढाई में हो धगधगता, उसमें हाथ डाले तो? कोई पकड़कर डलाते हैं। पहले क्यों नहीं था? अभी क्यों हुआ? इसलिए उसे शरीर की उष्णता के कारण अन्दर दुःख हुआ। गरम में से दुःख हुआ। यहाँ इनकार करते हैं। नहीं, नहीं, ऐसा नहीं। ले। ऐई! भगवानजीभाई! कहो, भगवानजीभाई! 'तत्त्वार्थश्रद्धानं' परन्तु तत्त्वार्थ श्रद्धा, ऐसी करनी चाहिए इसे। पर का परिणमन पर के कारण, सुख-दुःख की अवस्था स्व की भूल के कारण अज्ञानी को। यहाँ ज्ञानी की भूल गिनी नहीं। समझ में आया? ज्ञानी तो अपना ज्ञानस्वभाव है, उसकी दृष्टि के कारण उसे राग होता है, उसे वह जानता है, जानता है। वह रागरूप परिणमता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

शरीर सुख-दुःख नहीं देता। देवों का उत्तम वैक्रियिक शरीर सुख का कारण नहीं है और नारकियों का शरीर दुःख का कारण नहीं है। लो! क्षेत्र भी दुःख का कारण, नहीं आता चिद्विलास में? नारकी का स्वयं क्षेत्र ही दुःख का स्थान है, ऐसा कहा। आता है चिद्विलास में आता है। एक शब्द आता है। ऐई! है न चिद्विलास में? स्वभाव से क्षेत्र। इसी प्रकार आत्मा के प्रदेश स्वभाव से सुख का कारण है ऐसा। आत्मा के प्रदेश हैं वे आनन्द का कारण हैं। नरक के प्रदेश, स्वर्ग के प्रदेश उस सुख का निमित्त है और यह दुःख का। कहते हैं, यह तो निमित्त से बात है। बाकी वस्तु है, वह उससे होती है, ऐसा है नहीं। नारकी में प्रतिकूलता के ढेर पड़े हैं, इसलिए उसे दुःख होता है, ऐसा नहीं। आहाहा! यह लोहे की ऐसी पुतली करके ऐसे जलावे नारकी को परमाधामी। ले, तू प्रेम करता था न परपदार्थ में? और बहुत मिठास लगती थी न तुझे? ले यह पुतली। जो यह स्त्री है, यह देख। बराबर इसके आकार देख। हाय.. हाय... पर का ऐसा स्पर्शना पड़ता है, इसलिए दुःख होता है या नहीं? वरना फिर मगदल मारे वह परमाधामी। कहते हैं कि उसके कारण से दुःख नहीं, शरीर के कारण से नहीं और उस पुतली के

कारण से नहीं। लो! आहाहा! समझ में आया?

नारकियों का शरीर दुःख का कारण नहीं है। आहाहा! यह तो कितनी स्पष्टता बतायी है। निमित्त कारण उड़ा देते हैं पूरा। रवरव नरक का शरीर, पाँच सौ धनुष का देह ब्रह्मदत्त अभी पड़ा है, लो! चक्रवर्ती अपरिठाणे नारकीये। ३३ सागर। और अभी तो थोड़े वर्ष व्यतीत हुए हैं। अभी तो असंख्य अरब के अरब वर्षों के वर्ष व्यतीत होंगे। आहाहा! कहते हैं कि वह दुःख है या नहीं, वह क्षेत्र और संयोग? शरीर ऐसे अग्नि में जलकर लाल-लाल हो जाये, तो वह शरीर दुःख के परिणमन में बिल्कुल कारण नहीं। तेरी पर्याय दुःखरूप से होती है, वह निश्चय कारण तो वह है। व्यवहार कारण अर्थात् आरोपित कहो, उससे होता नहीं। आहाहा! वाह! शरीर सुन्दर वैक्रियिक।

आत्मा स्वयं ही इष्ट-अनिष्ट विषयों के वश होकर... स्वयं ही इष्ट-अनिष्ट विषयों के वश होकर, **सुख-दुःख की कल्पनारूप में परिणमित होता है।** देखो! सुख-दुःख की (कल्पना)। मैं सुखी हूँ, यह दुःखी हूँ—ऐसी कल्पना के जालरूप से मोहवश होकर मोह की जाल में परिणमता है। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द से भिन्न रह जाता है। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ६७

अब, आत्मा स्वयं ही सुखपरिणाम की शक्तिवाला होने से... सुख परिणाम की शक्तिवाला अर्थात् दोनों प्रकार से, हों! सुलटा या उल्टा दोनों। दोनों हैं। दोनों डालेंगे अब। **स्वयं ही सुखपरिणाम की शक्तिवाला होने से...** देखो! भगवान आत्मा स्वयं ही अतीन्द्रिय आनन्द के परिणमन की शक्तिवाला होने से और अतीन्द्रिय आनन्द को भूलकर इन्द्रिय के वश में आकुलतारूप सुखरूप स्वयं परिणमनेवाला होने से **विषयों की अकिञ्चित्करता बतलाते हैं:-** देखो भाषा! शरीर और विषय, शब्द, रूप और गन्ध। लोग नहीं कहते कि यह काँटे जैसे शब्द आये निन्दा के। ऐसे शब्द! बिच्छू के डंक जैसे भाई! सहन नहीं होते। अब बैठ-बैठ अब रहने दे तू। ऐई! मोहनभाई! कठोर शब्द हों न कठोर। शब्द कठोर किसे कहना? यह विषय अकिंचित्कर है, तुझे राग

उपजाने के लिये या द्वेष उपजाने के लिये (अकिंचित्कर हैं)। तुझे भान नहीं।

स्वयमेव आनन्द के परिणामरूप से धर्म के और पाप के, सुख के परिणामरूप से शक्तिवाला होने से, इस पर्याय का शक्तिवाला, हों! **विषयों की अकिञ्चित्करता बतलाते हैं** - शरीरादि पाँच इन्द्रिय के विषय अनुकूल या प्रतिकूलता के ढ़ेर पड़े हों, वे आत्मा को कुछ करते नहीं। आहाहा! यह दृष्टि करे तो पूरी समा जाये, पर से भिन्न पड़ जाये। समझ में आया? ६७ (गाथा)।

तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कायव्वं।
तह सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वंति॥६७॥

आहाहा! देखो! '**किं तत्थ कुव्वंति**' नहीं करता। अकिंचित्कर उसमें ही पड़ा है, हों! कुछ करे नहीं, ऐसा। वह अकिंचित्कर इसमें से निकाला है।

नेत्र तिमिर-नाशक हों नर के, तो दीपक है व्यर्थ अहो!।
जीव स्वयं सुख भोगे तो क्या, कर सकते हैं विषय कहो॥६७॥

'**दीवेण**' एक ही डाला है।

अन्वयार्थ लेते हैं **अन्वयार्थ :- यदि प्राणी की दृष्टि...** यह होता है न रात्रि में घुवड़ और देखनेवाले, बिल्ली और उसकी दृष्टि ऐसी होती है। चोर लोगों की दृष्टि बहुत ऐसी होती है। **तिमिरनाशक हो...** तिमिर अर्थात् कि उसे अन्धकार कुछ अवरोधक नहीं। आँख में भी देख ले बिल्ली। यदि चूहा यहाँ जाये, ऐसा देख ले। अन्धेरे में अन्धेरे में चूहा जाता हो, पकड़ ले एकदम अन्धेरे में कहीं कौने में और अलमारी के नीचे, पीछे घुसकर पकड़ ले। देखे बराबर। कहते हैं, **प्राणी की दृष्टि तिमिरनाशक...** अन्धकार का नाश करनेवाली होती है **तो दीपक से कोई प्रयोजन नहीं है,...** उसे दीपक की कुछ आवश्यकता नहीं। **अर्थात् दीपक कुछ नहीं कर सकता, उसी प्रकार जहाँ आत्मा स्वयं सुखरूप परिणमन करता है...** भगवान आत्मा अपना आनन्दस्वभाव है, वह आनन्दरूप परिणमता है तो भी कोई चीज़ उसे काम की नहीं और आनन्द को छोड़कर सुख-दुःख की कल्पनारूप से विभावरूप, विकाररूप, मिथ्यात्वरूप, सुखरूप मिथ्यात्व में परिणमता है तो कोई कारण उसे है नहीं। ओहोहो! उसकी पर्याय स्वतन्त्र है, ऐसा सिद्ध करते हैं। **सुखरूप परिणमन करता है वहाँ विषय क्या कर सकते हैं?।**

टीका :- जैसे किन्हीं निशाचरों के... निशा अर्थात् रात्रि। **रात्रि में घूमनेवाले...** निशा(चर) अर्थात् रात्रि में चरनेवाले, फिरनेवाले। कौन? **घुवड़, सर्प, भूत इत्यादि।** लो! भूत-भूत होते हैं न देव के? वे निशाचर कहलाते हैं। रात्रि में चरनेवाले। सर्प रात्रि में निकले खुराक लेने के लिये। भूत रात्रि में निकले अन्धेरे में। इसी प्रकार यह उल्लू। उन **निशाचरों के नेत्र स्वयमेव अन्धकार को नष्ट करने की शक्तिवाले होते हैं।** लो! उन्हें अन्धकार बाधक नहीं। समझ में आया? देखो! कहते हैं, उनकी आँख अन्धकार को नाश करती है या नहीं? और ऐसा कहे। आँख तो, कहते हैं कि उसके प्रकाश के लिये किसी प्रकाश की आवश्यकता नहीं। उसे अन्धकार भी बाधक नहीं। ऐसा सिद्ध करना है। शब्द-शब्द में विवाद उठाया।

मुमुक्षु : वह परपदार्थ करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह देखो कहे, उसकी आँख उस अन्धकार को नाश करती है, देखो! ऐसा कहते हैं कि जहाँ अन्धकार हो परन्तु प्रकाशित करनेवाला नेत्र है, उसे अन्धकार क्या करे? ऐसा कहते हैं। अन्धकार उसे कहीं अवरोधक नहीं। समझ में आया?

अन्धकार नाशक स्वभाववाले दीपक-प्रकाशादि से कोई प्रयोजन नहीं होता,... कितना दृष्टान्त देकर कितना तो सिद्ध तो करते हैं। **(उन्हें दीपक-प्रकाश कुछ नहीं करता);...** किसे? जिसकी आँख बलवान प्रकाश (वान) होती है उसे। चोर लोग भी ऐसे होते हैं न, ऐसे अन्धेरे में सन्दूक में कहाँ हो वह आँख मारकर (लगाकर) अन्धेरे में देख लेते हैं। वहाँ कहाँ बत्ती-बत्ती थी। यह तो अभी तुम्हारे यह हुआ। यों ही चोर लोग... वह कहीं पहले ऐसा कुछ नहीं था। अब तो चोर लोग भी साथ में रखते हैं। क्या कहलाती है तुम्हारी? बैटरी-बैटरी, वे भी रखे गुप्तरूप में। वे तो चोरी करने जाये तो कौने में पड़ा हो, उसे देख ले एकदम ऐसे प्रकाश से या फलाना से या फलाना से। कहते हैं कि ऐसे दीपक और प्रकाश की उसे कोई आवश्यकता नहीं।

इसी प्रकार यद्यपि अज्ञानी... है न? शरीर में सुखबुद्धि है, वह मिथ्यादृष्टि को है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! पूरा जमा हुआ टुकड़ा लोकालोक का उथल-पुथल कर डाला। परवस्तु में सुखबुद्धि मानना, वह मिथ्यात्व है, कहते हैं। धर्मदृष्टि में, तीन काल-तीन लोक में पर में सुख है, ऐसा है नहीं। आत्मा में सुख है, आत्मा में सुख है। बस।

समझ में आया ? **अज्ञानी 'विषय सुख के साधन हैं'...** देखो ! बाहर के अनुकूल निमित्त, विषय सुख के साधन हैं। **ऐसी बुद्धि के द्वारा व्यर्थ ही विषयों का अध्यास (आश्रय) करते हैं,...** अध्यास करे। सब साधन डाल रखे। देखो ! बिच्छू काटे तो एक टुकड़ा रख देना उसका, क्या कहलाता है ? रिकॉर्ड का। काला। ढींकणा हो तो यह रखना, फलाना हो तो यह गोली रखना। साधन रखते हैं या नहीं ? गोली के बहुत प्रकार अब आते हैं। इसकी यह गोलियाँ। अब बड़ी पूरी अलमारी भरी हो अब तो। उसके ऊपर यह दवा... इसके ऊपर यह दवा... इसके ऊपर यह दवा... इसके ऊपर यह साधन। ... मेरी नाश हुई है। अब तुम मुझे रोक सको ? उस समय रोकते थे , ऐसा भी नहीं था। तुम मुझे रोकते थे कि यह अनुकूल सब करते हैं, हा...हो... करते हैं। आहाहा ! इसलिए तुम मुझे रोकते, ऐसा नहीं। मेरी आसक्ति के परिणाम के कारण मैं रुका था। वह मेरी आसक्ति मोह, मर गया है। तुम क्या करोगे अब ? मेरे पीछे चोटियाँ तोड़कर जंगल में आओगे ? क्या करोगे तुम ? ... ऐई ! भगवानजीभाई !

यह मुर्दे को जलाने जाये, फिर खड़े रहते होंगे न अमुक तक। स्त्रियाँ तो कहीं ठेठ श्मशान में तो नहीं जाती हो। आदमी जाये। महिलायें जायें कहीं ? ऐसा कि आदमी श्मशान तक जाये लकड़ियाँ और बकड़ियाँ। परन्तु महिलायें जायें वहाँ ? महिलायें तो अमुक से वापस मुड़े। अब बस करो। हम जहाँ आत्मा के आनन्द के लिये एकान्त आत्मा में जाते हैं, तुम रोक नहीं सकोगे। हम तेरे लिये रुकते नहीं। भगवानजीभाई ! ऐसा शान्तिनाथ (पुराण में) आता है। हे स्त्रियों ! तुम्हारे कारण से मैं अटका था और तुम्हारी अनुकूलता की लालच से लोभित होकर अटका था—यह बात थी नहीं। भगवान आत्मा मेरा आत्मा आनन्द में है, उसका तो हमको भान है। परन्तु हमको आसक्ति का राग था, इसलिए हम अटके थे। अब वह आसक्ति हमारी रही नहीं। समझ में आया ? आहाहा !

यह बहुत से ऐसा कहते नहीं ? बहुत हमारे भाव हो परन्तु अब लड़कियाँ बड़ी हुई, लड़के बड़े हुए, उनका विवाह... विवाह किये बिना हमारे अकेले किस प्रकार निकलना ? फिर उनका सहारा कौन ? ऐसा होगा ? भगवानजीभाई ! नहीं ? तेरे राग के कारण से है। मुफ्त का आरोप दूसरे के ऊपर डाले, तेरी भ्रमणा मिथ्याश्रद्धा है, ऐसा

कहते हैं। तेरी श्रद्धा झूठी है, मान्यता झूठी, ऐसा यहाँ तो कहते हैं। तेरा अज्ञान है। यह क्या कहे? सर्वत्र इतने पड़े हैं, उन्हें छोड़कर जाना कैसे? तड़फता हो। अरे! हम दुःखी होंगे, हम तेरे बिना दुःखी होंगे।

भर्तृहरि जब दीक्षा लेते हैं न, तब उनकी पुरानी, उनकी पुरानी की पुत्री है न, वह पुकार करती है। नाटक में देखा था। मर गयी है माँ, सौतेली माँ। आता है। उसमें गायन-बायन आता है ऐसा। पिता! सहारा किसका है? सौतेली माँ। हे पिताजी! तुम दीक्षित होते हो, माता मर गयी है, माता सौतेली है, मैं किसे... मेरी बड़ी अवस्था हुई है। पिताजी! मेरा क्या होगा? मेरी जवान अवस्था हुई, पिताजी जाते हैं, माता मर गयी है, माता नयी है, सौतेली है। बेटी! मैंने दीवान को शिक्षा दी है। मेरे कारण अब इसमें रहूँ नहीं कुछ अब। मुझे इसमें राग है नहीं। मैं तो दीक्षित होता हूँ। बाबा होते हैं उनके साथ चले जाते हैं। साधु हुए बाबा। तत्त्व की तो वस्तु की खबर नहीं। वैराग्य आया, बाबा हो जाये। परन्तु वह बाबा भी मिथ्यादृष्टिरूप से होता है। क्योंकि अन्दर राग से रहित चैतन्य कौन है, उसकी दृष्टि बिना, मैं यह त्यागता हूँ, यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा! समझ में आया? जहाँ अभी मिथ्यात्व का त्याग स्वभाव की दृष्टि से हो, ऐसी जहाँ खबर नहीं, उसे मैं यह त्यागता हूँ और मैं बाबा होता हूँ, वह सब मिथ्यात्व की ही पुष्टि है। आहाहा! समझ में आया? और मानता है कि हमने त्याग किया। त्याग तो था ही। त्याग कब त्याग किया? बाहर ही है। वे चीज़ें कहीं तेरे पास आयी नहीं और तू उनके कारण से अटका नहीं था और वे जाते हैं, इसलिए तुझे राग मन्द पड़ेगा, उनके कारण राग घटेगा, यह भी है नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, यह विषय का अभ्यास उसे **संसार में या मुक्ति में स्वयमेव सुखरूप परिणमित...** या मुक्ति में। दोनों है न? मोक्ष में—आत्मा के आनन्द परिणमन में भी सुखरूप से परिणमते आत्मा को बाह्य की चीज़ें निमित्त क्या करे? कहो, यह संहनन मजबूत और यह और यह ऐसा कि अच्छा यह शरीर, परम औदारिक या मजबूत शरीर, वह केवलज्ञान परिणमने को कुछ भी सहायता करे, ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया? शरीर की मजबूताई, हड्डियाँ मजबूत, शरीर बराबर ठीक हो तो धर्मध्यान हो सकता है और मोक्ष का उपाय हो सकता है। नहीं। कुछ नहीं, बापू! परवस्तु से कुछ

(नहीं)। धर्म है, वह पर के कारणान्तर रहित है। पर के कारण से रहित है। समझ में आया? उसमें भी अभी मानना है उसे। परन्तु बापू! तू वस्तु है या नहीं? तुझमें सम्पदा चैतन्यमूर्ति आनन्दस्वरूप है। पूर्ण-पूर्ण ब्रह्म आत्मा परमस्वरूप है। उसकी दृष्टि करना और स्थिर होना, वह तेरे कारण से है, उसमें कोई दूसरा कारण नहीं। पंचम काल है, इसलिए ऐसा नहीं होता, फलाना है, इसलिए नहीं होता—ऐसा कुछ है नहीं, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : कोई बाधक नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कोई बाधक नहीं और कोई सुविधा देता नहीं, ऐसा कहते हैं। बाधक भी नहीं और सुविधा देता भी नहीं। आहाहा! कैसे होगा, भगवानजीभाई!

यहाँ तो कहते हैं, पर्याय में राग-द्वेष हो, वह भी तेरा नहीं, ऐसी दृष्टि हुए बिना तुझे धर्म होता नहीं। तो और यह मेरे हैं और... तेरे थे कहाँ से? आहाहा!

भावार्थ :- संसार में या मोक्ष में... संसार शब्द कहाँ आया? एकेन्द्रिय से लेकर सब। लो! एकेन्द्रिय। सब द्रव्यलिंगी मुनि। संसार में एकेन्द्रिय से वे पंचेन्द्रिय, नारकी से वे नौवें ग्रैवेयक सर्वत्र। जहाँ-जहाँ इस संसार में परलक्षी परोक्ष ज्ञान में इन्द्रिय के वश होकर यह पुण्य-पाप के परिणाम करता है, वे तेरे अपने अज्ञानभाव के परिणाम हैं। समझ में आया? लो, भाई! काललब्धि पकी नहीं, इसलिए हुए, ऐसा भी नहीं यहाँ तो, कहते हैं। लो! भाई! काललब्धि पके तो मोक्ष हो। वह भी तेरे पुरुषार्थ की जागृति हुई, वहाँ काललब्धि पक गयी। सुन न अब। आहाहा! समझ में आया? संसार में या मुक्ति में। देखो! दोनों शब्द पड़े हैं, हों! '**नक्तंचरजनस्य**'।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : है न। यह तो वह '**नक्तंचरजनस्य**' कहा। '**नक्तं**' शब्द पड़ा है न। '**नक्तं**' नहीं? संस्कृत में जयसेनाचार्य में। '**नक्तं**' अर्थात् क्या? निशा। रात्रि ऐसा है न? '**नक्तं**' '**नक्तं**' निशा। चर, वह तो चरनेवाले। '**नक्तं**'। आहाहा! यह तो दोनों शब्द पड़े हैं। '**निर्विषयामूर्तसर्वप्रदेशाह्लादकसहजानन्दैकलक्षणसुखस्वभावो निश्चयेनात्मैव, तत्र मुक्तौ संसारे वा विषयाः किं कुर्वन्ति,...**' संसारदशा में एकेन्द्रिय से लेकर निगोद

या यह नौवें ग्रैवेयक के नारकी या पंचेन्द्रिय मनुष्य, चक्रवर्ती राजा या रंक उसे, कहते हैं कि सुख-दुःख की कल्पना की परिणति में परवस्तु कुछ काम नहीं करती। कहो, यह तो सब निमित्त उड़ा दिया। निमित्त उड़ाया नहीं, हों! निमित्त है। निमित्त है, परन्तु निमित्त कार्यकारी नहीं, ऐसा कहते हैं यहाँ। तब उसे निमित्त कहा जाये न? कार्यकारी हो तो निमित्त कहाँ हुआ? समझ में आया? उपादान-निमित्त के झगड़े। अभी उपादान-निमित्त, अपने उपादान-निमित्त का ऐसा कि पण्डितों का काम, विद्वानों का काम। ऐसा करके बचाव करते हैं।

मुमुक्षु : लोगों का नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, कैलाशचन्दजी ऐसा लिखते हैं। भाई! उपादान-निमित्त का काम विद्वानों का है। पहले हम भूल में थे और नहीं जँचा था और अब यह जँचाने जैसा, ऐसा नहीं। विद्वानों का काम... जिसे-जिसे सत्य का निर्णय करना हो, उन सबका काम है। विद्वानों का काम अर्थात् क्या? आत्मा ज्ञानस्वरूप विद्वान ही है। समझ में आया?

देखो! यह कितने सिद्ध करते हैं यहाँ। संसार के किसी भी एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय प्राणी के या दुःख के भाव में शरीरादि कुछ नहीं कर सकते। निमित्त कर्ता नहीं, ऐसा तो यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया? कि यह विद्वानों को ही यह सुनने का है? सर्व प्राणी सब भगवान हैं। सुना भाई! ज्ञान का क्षयोपशम है पंचेन्द्रिय में। उस क्षयोपशम में तो यह समझने जैसी बात है।

स्वयमेव। फिर वहाँ निकाले भूल। स्वयमेव। वह तो स्वयं परिणमता है, परन्तु स्वयं से परिणमता है, वह कहाँ से निकाला? ऐसा वे कहते हैं। ऐई! पण्डितजी! परिणमता है, परन्तु स्वयं से ही स्वयं स्वतन्त्र परिणमता है, ऐसा कहाँ से निकाला? यह स्वयमेव शब्द पड़ा है न। 'स्वयं से ही' ऐसा शब्द है। कितना स्पष्ट है! अरे! जीव को स्वयं को स्वयं के ठिकाने पड़ना नहीं न, इसलिए जहाँ-तहाँ विवाद निकालकर खड़ा रहता है। **इस आत्मा का विषय क्या कर सकते हैं?** बाहर की चीज़ें उसे कुछ नहीं कर सकती।

भावार्थ :- संसार में या मोक्ष में आत्मा अपने आप ही सुखरूप परिणमित होता है;... मोक्ष में आनन्द के—अतीन्द्रिय आनन्द के सुखरूप और संसार में सुख की कल्पनारूप। समझ में आया? ऐसे सुख अर्थात्। सुख है नहीं। **उसमें विषय अकिञ्चित्कर**

हैं... परचीज़ कुछ करती नहीं। **कुछ नहीं कर सकते। अज्ञानी, विषयों को सुख का कारण मानकर...** अज्ञानी विषयों और बाहर के पदार्थों को सुख का कारण मानकर **व्यर्थ ही उनका अवलम्बन लेते हैं।** ऐसा आया था न? अध्यास करता है, आश्रय करता है, अवलम्बता है। उनका आश्रय करता है। यह मुझे सुख, यह मिला सुख, ऐसा। आहाहा! परन्तु बुखार बहुत चढ़ गया हो और बराबर फिर आवे मुख में स्पर्श करे, ऐसे ऊँचे ढोकला हो, ऊँचे भजिया हो तो राग करावे या नहीं? रूखा हो गया हो मुख।

मुमुक्षु : आप तो इनकार करते हो न।

पूज्य गुरुदेवश्री : लो! परन्तु यह मुख रूखा नहीं हो जाता? बहुत रूखा हो जाये न और सवा महीने, महीने का बुखार आया हो। कभी ऐसे मूँग का पानी देखे नहीं। उसमें से उसे जरा वैद्य कह दे, कुछ दिक्कत नहीं। इसे मूँग की दाल के गर्म-गर्म भुजिया देना। आहाहा! तो वह कुछ सुख का कारण, कल्पना में सुख का कुछ न कुछ प्रतिशत हो या नहीं? वे जीवनधरजी कहते थे पचास प्रतिशत इसके और पचास प्रतिशत इसके। उसने कहा नाथूलाल ने। पचास प्रतिशत निमित्त के कार्य में और पचास प्रतिशत उपादान के। ऐई! भगवानजीभाई! बड़े-पढ़े हुए ऐसा कहते थे। आहाहा! यहाँ तो एक भी प्रतिशत इनकार करते हैं।

आत्मा के सुख-दुःख के परिणमन में विषय एक प्रतिशत भी कार्य नहीं करते। सौ में सौ प्रतिशत स्वयं अपनी विपरीतता में काम करता है और सुलटे में भी स्वयं ही अपना काम करता है। बिल्कुल कोई करता नहीं। समझ में आया? उसका इसे सच्चा निर्णय करना पड़ेगा या नहीं? सच्चे निर्णय बिना, वह स्वसन्मुख किस प्रकार हो सकेगा? खोटे निर्णय में स्वसन्मुख होने का इसे अवसर नहीं। क्योंकि अभी निमित्त करेगा... निमित्त करेगा, वहाँ तो परसन्मुख की दृष्टि है। दृष्टि में विपर्यास है। आहाहा! समझ में आया? निमित्त कुछ करता नहीं, ऐसा कहे कि (कर्म के निमित्त से होता है) और हम ज्ञाता-दृष्टा रह सकेंगे, ऐसा हो नहीं सकेगा, कहते हैं। आया है न, जैनतत्त्व मीमांसा में आया है एक जगह। जैनतत्त्व मीमांसा में। ऐसा कोई कहे, बहुत बातें करे अपने ज्ञाता-दृष्टा हैं... ज्ञाता-दृष्टा हैं। परन्तु ज्ञाता-दृष्टा हो और फिर कहो कि कर्म के निमित्त से होता है। तुझे दोनों का मिलान कहाँ आया? एक आता है, एक जगह।

जैनतत्त्व में लिखा है सामने कहीं। इसे उसका परिचय हो गया था न बहुतों का। उसके ऊपर से उसने लिखा है। ऐसा तो कहे कि हाँ, आत्मा ज्ञाता-दृष्टा है, ज्ञाता-दृष्टा है। परन्तु ज्ञाता-दृष्टा है, ऐसा तू कहने जा और एक ओर कहे कि कर्म के निमित्त बिना विकार होता नहीं। समझ में आया? पर के बिना विकार होता नहीं। तो पर ने अभी विकार कराया है, वहाँ ज्ञाता-दृष्टापने तू किस प्रकार रह सका? समझ में आया? नहीं न फूलचन्दजी?

अज्ञानी, विषयों को सुख का कारण मानकर व्यर्थ ही उनका अवलम्बन लेते हैं। व्यर्थ कार्य उनसे कुछ नहीं तो भी उनका अवलम्बन करता है। देखो! यह तत्त्व की यथार्थ दृष्टि कराने को यह बात करते हैं। भगवान आत्मा ज्ञानतत्त्व है, भाव ज्ञानभाववाला सामर्थ्य है। उसे भूलकर स्वयं यह भाव सुख-दुःख की कल्पना संसार के लिये करता है, जहाँ हो वहाँ। अनुकूल देखे तो महिमा दे या अभिनन्दन दे। समझ में आया? अच्छा कहे, उसकी जन्मजयन्ती मनावे वहाँ, ऐसा हो। आहाहा! क्या है परन्तु यह तुझे? यह बाहर का कारण उसे सुख की कल्पना करता होगा? है ही नहीं बाहर कारण, बिल्कुल नहीं। तू तेरे ज्ञाता-दृष्टा के भान को भूलकर पर में सुखबुद्धि की कल्पना करे तो स्वतन्त्र तेरा मिथ्यात्व परिणाम है, ऐसा यहाँ कहते हैं। व्यभिचार सेवन करता है, हों! व्यभिचार भी तू स्वतन्त्र करनेवाला है। समझ में आया?

एक व्यक्ति ने और अभी लिखा है किसी ने जैनसन्देश में (लिखा है) कि महावीर जयन्ती के बदले अहिंसा जयन्ती बाहर प्रसिद्ध करो अब। अहिंसा जयन्ती अर्थात् सब मिल सके। महावीर जयन्ती के बदले अहिंसा जयन्ती। परन्तु अहिंसा जयन्ती, अहिंसा की व्याख्या क्या? राग की उत्पत्ति न होना और अरागी चैतन्यस्वभाव की उत्पत्ति होना, उसका नाम अहिंसा। वह महावीर जयन्ती कहो या अहिंसा की जयन्ती, वह है।

मुमुक्षु : पुरुषार्थसिद्धि उपाय में।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुरुषार्थसिद्धि अर्थात् पुरुषार्थ की सिद्धि करे, उसमें हो। समझ में आया? राग की उत्पत्ति चाहे तो दया, दान, व्रत के विकल्प भी वे हिंसा हैं। चिल्लाहट मचा जाते हैं वे लोग। अरेरे! इसे—दया को हिंसा? परन्तु वह तो व्यवहार

दया और हिंसा एक ही है। व्यवहार दया कहो या निश्चय हिंसा कहो। निश्चय जो दया है, बापू! वह तो ज्ञानतत्त्व है, उसकी अन्तर की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, वह निश्चय दया है, वह तेरी दया है। कहो, समझ में आया? पर की दया कौन कर सकता है? समझ में आया? सेवा करो, और उसने लिखा, सेवा धर्म। उसमें भी लिखा है। एक व्यक्ति ने भी लिखा है। किसी ने पूछा होगा कि सेवा? कि सेवा सबकी करना। ऐसा कुछ लिखा है।

'सेवा के सम्बन्ध में एक प्रश्न किया जाता था कि सेवा किसकी करे और किसकी नहीं? मैं पूछता हूँ, पानी किसको पिलाना चाहिए?' उत्तर दिया है। ऐसी भाषा में ऐसे भ्रमित करे जगत को। 'पानी किसको पिलाना चाहिए? आपका उत्तर होगा कि प्यासे को। प्यासे को। बस, इसी पर से सेवा का प्रश्न भी हल हो जाता है। सेवा उसकी करनी चाहिए कि जिसको सेवा की जरूरत है।' ठीक न? कहीं मिलान? ऐसा शुभभाव आवे। सेवा कौन करे? कौन कर सकता है पर का? और शुभभाव, वह आत्मा की असेवा है। पर की सेवा तो कर सकता नहीं, परन्तु (करने का भाव) अपनी असेवा है। आहाहा! ऐसा मार्ग।

'पापी से पापी रोगी की भी सारसम्हाल करनी चाहिए, वह सेवा है।' समझे न? 'अवैध सन्तान को जन्म देनेवाली' यह क्या? अवैध। विरुद्ध रीति से। 'अवैध सन्तान को जन्म देनेवाली व्यभिचारिणी स्त्री की भी प्रसूति गृहादि में योग्य देखभाल रखनी चाहिए, वह सेवा है।' बातें कहाँ की? कहाँ सेवा और किसकी करे? भाई! ऐसा शुभभाव हो उसे। परन्तु उस शुभभाव से कहीं पर की सेवा की जा सकती है? कहो, यहाँ तो इनकार करते हैं। किंचित्कर पर की परिणति में कार्य करता नहीं। उसकी परिणति उसके कारण से है। उसमें तेरा कुछ भी किंचित् तेरा शुभभाव, उसे सेवा में मदद करता है, ऐसा है नहीं। ऐसा होगा या नहीं कमलचन्दजी! थोड़ी सहायता करे या नहीं? निमित्त उड़ जाता है? निमित्त सिद्ध होता है। 'कि कार्य में निमित्त कुछ करता नहीं, अपनी पर्याय में कार्य करता है।' लो! विशेष.... (कहेंगे)।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १, मंगलवार, दिनांक ०५-११-१९६८
गाथा - ६८-६९, प्रवचन - ५७

गाथा - ६८

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, प्रवचनसार। ६८ (गाथा)। **अब, आत्मा का सुखस्वभावत्व दृष्टान्त देकर दृढ़ करते हैं :-** आत्मा में आनन्द है, विषयों में आनन्द नहीं। अज्ञानी व्यर्थ पर में भटका करता है, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। सुख, ज्ञान और देव स्वयं आत्मा ही है। समझ में आया? आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है और दिव्य शक्तिवाला देव स्वयं ही है। उसके सुख के लिये बाहर के विषयों के व्यर्थ-फोगट अवलम्बन लेता है। जिसमें आनन्द है, उसका अवलम्बन नहीं लेकर (परविषयों का अवलम्बन लेता है)। धर्मी जीव तो जिसमें आनन्द है, उसका अवलम्बन लेता है। अज्ञानी आत्मा में आनन्द है, उसका अवलम्बन न लेकर, विषय का अवलम्बन लेकर उसमें सुख है, ऐसा मानता है। समझ में आया? ६८ (गाथा)।

सयमेव जहादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि।
सिद्धो वि तहा णाणं सुहं च लोगे तहा देवो॥६८॥

इसका हरिगीत।

जैसे नभ में सूर्य स्वयं ही, तेज उष्ण अरु देव स्वरूप।
वैसे जग में सिद्धप्रभु भी, ज्ञान सौख्य अरु देव स्वरूप॥६८॥

अन्वयार्थ : जैसे आकाश में... सूर्य का दृष्टान्त पहले देते हैं। **सूर्य अपने आप ही तेज,...** प्रकाश। **उष्ण और देव है,...** देव नामप्रकृति का उदय है न? है तो देव नाम की प्रकृति का उदय, उसके (विमान में) रहे हुए देव को, परन्तु यहाँ उसे लक्ष्य कर कहा है। वरना तो सूर्य है, वह तो पृथ्वीकाय का उदय है उसे। समझ में आया? परन्तु अन्दर समुच्चय देव गिने। लोग मानते हैं न देव? सूर्यनारायण। सवेरे उठकर दाँतुन करके वन्दन नहीं करते? सूर्य उगे और वन्दन करते हैं, जय भगवान! मूल तो चक्रवर्ती सवेरे

वन्दन करते हैं, उसमें जिनमन्दिर है। उन्हें सवेरे उठते हैं, तब उनकी नजर में भगवान पड़ते हैं। नजर बहुत लम्बी है, दीर्घ। वे चक्रवर्ती सवेरे भगवान के दर्शन करते हैं। फिर लोगों में चला कि कोई सूर्यनारायण लगते हैं, इनके भगवान। राजा उनके दर्शन करते हैं। राजा सूर्य के दर्शन करे। इसलिए उन्हें देव कहा जाता है। इस अपेक्षा से बात कही गयी है।

आकाश में सूर्य अपने आप... अर्थात् कारणान्तर बिना, किसी के कारण बिना सूर्य स्वयं स्वत:सिद्ध तेजवाला है। **उष्ण और देव है, उसी प्रकार लोक में सिद्ध भगवान भी...** देखो! दृष्टान्त तो वह दिया सूर्य का। परन्तु यह सिद्ध का एक दृष्टान्त है, एक न्याय से। आत्मा में यह सब है, जैसा सिद्ध है, वैसा आत्मा है। **सिद्ध भगवान भी (स्वयमेव) ज्ञान...** है। सिद्ध भगवान अपने से ही केवलज्ञानमय स्वरूप है, आनन्दस्वरूप है **और देव हैं।** समकिती के हृदय के स्तम्भ में उत्कीर्ण हो गया है भगवान आत्मा अथवा सिद्ध भगवान, उनकी स्तुति धर्मी के ज्ञान के हृदय में उनकी स्तुति होती है।

टीका : जैसे आकाश में अन्य कारण की अपेक्षा रखे बिना... कोई कारण बिना स्वयमेव सूर्य अनादि का प्रकाशरूप है, तेजरूप है। कोई कारण है इसे? उसके प्रकाश के लिये कोई दूसरा कारण है? स्वयमेव **अन्य कारण की अपेक्षा रखे बिना ही सूर्य (१) स्वयमेव अत्यधिक प्रभासमूह से चमकते हुए स्वरूप के द्वारा विकसित प्रकाशयुक्त होने से तेज है,...** वह सूर्य पुष्कल प्रभासमूह... देखो! **भास्वर = तेजस्वी; झलकता। ऐसे स्वरूप के द्वारा विकसित प्रकाशयुक्त...** प्रगट प्रकाशवाला **होने से तेज है,...** सवेरे तो अभी सूर्य उगा न हो। समझ में आया? वहाँ चन्द्र धुँधला ऐसा खाखरा के पत्ते जैसा लगे। सूर्य की उगने की तैयारी हो वहाँ। उगे वहाँ तो हो गया। इतना उसका—सूर्य का प्रकाश है। समझ में आया?

चमकते हुए स्वरूप के द्वारा विकसित प्रकाशयुक्त... प्रगट हुआ है प्रकाश, ऐसा कहना है। **तेज है,...** तेज। **(२) कभी उष्णतारूप परिणमित लोहे के गोले की भाँति...** लोहे का गोला किसी समय गर्म परिणमित होता है, ऐसे **सदा उष्णता-परिणाम को प्राप्त होने से उष्ण है,...** इस लोक में उष्ण किरण है न? उसे उष्ण कहते हैं न। किरण उष्ण है, इसलिए उसे गर्म कहा जाता है। वरना वहाँ देव बसते हैं अन्दर तो। गर्म

हो तो देव बस नहीं सकते। ठण्डा है। परन्तु उसकी किरणें बाहर में सर्दी में ठण्डी लगे, गर्मी में गर्म लगे, इस अपेक्षा से उसे उष्ण कहा जाता है।

और (३) देवगतिनामकर्म के धारावाहिक उदय के वशवर्ती... देखो! यह सूर्य का बिम्ब जो है, वह तो पृथ्वीकाय है। परन्तु उसमें बसे हुए ज्योतिष देव हैं। **और (३) देवगतिनामकर्म के धारावाहिक उदय के वशवर्ती स्वभाव से देव है;...** यह तो जरा उपमा देनी है। वरना उसमें कुछ नहीं। सूर्य है वह तो पत्थर है, स्फटिकमणि का तत्त्व है। और जो नामकर्म का उदय है, वह तो अन्दर में रहे हुए ज्योतिष के देवों को है। परन्तु इकट्ठा सूर्य और बसनेवाले दो गिनकर इकट्ठा कहा गया है। समझ में आया?

इसी प्रकार लोक में अन्य कारण की अपेक्षा रखे बिना ही भगवान आत्मा स्वयमेव ही... देखो! भगवान आत्मा भी। देखो! पाठ उसमें लिया। समझ में आया? सिद्ध को कहना है, परन्तु यह भगवान आत्मा ही ऐसा है। कोई कारणान्तर बिना ज्ञान की मूर्ति चैतन्य आत्मा है। चैतन्यसूर्य है, चैतन्यसूर्य वस्तु अन्तर। अन्तर (में) देखे तो चैतन्यसूर्य है। नजर उसकी पर्याय के ऊपर और बाहर है, इसलिए चैतन्यसूर्य है, ऐसा देखता नहीं। परन्तु वह तो चैतन्यसूर्य है अकेला। प्रकाश का बिम्ब आत्मा। सिद्ध भगवान ऐसे हैं अकेले केवलज्ञानरूप से परिणमित चैतन्यरूप से। उसी प्रकार आत्मा भी अकेला ज्ञान का पिण्ड ही है प्रभु। समझ में आया? उसमें राग नहीं, अल्पज्ञपना नहीं, विकार नहीं। अकेला चैतन्य सूर्यबिम्ब भगवान। स्वभाव द्वारा... समझे न?

भगवान आत्मा स्वयमेव ही... ऐसा। **(१) स्व-पर को प्रकाशित करने में समर्थ ऐसी...** स्व को प्रकाशित करे और पर को जाने। **ऐसी निर्वितथ (-सच्ची)...** वितथ। तथ—सच्ची। (वितथ)=वि-विपरीत, तथ्य, निर-(नहीं)... विपरीत तत्त्व निर अर्थात् सच्चा तत्त्व, ऐसा। **(-सच्ची) अनन्त शक्तियुक्त सहज संवेदन के साथ तादात्म्य होने से ज्ञान है,...** भगवान आत्मा ज्ञान के साथ तादात्म्य ऐसे एकमेक है। जैसे शक्कर के साथ मिठास एकमेक है, जैसे अग्नि और उष्णता एकमेक है, उसी प्रकार भगवान आत्मा और चैतन्यप्रकाश तादात्म्य एकरूप है। और सिद्ध को तो संवेदनरूप पर्याय पूर्ण एकमेक हो गयी है। समझ में आया?

अनन्त शक्तियुक्त सहज संवेदन के साथ... अर्थात् ज्ञान के साथ। **तादात्म्य होने**

से ज्ञान है,... भगवान आत्मा यह वस्तु है। जैसे अग्नि है, वैसे वस्तु है, तो (जैसे) अग्नि और उष्णता तादात्म्य एकरूप है। उसी प्रकार आत्मा और ज्ञान, स्वसंवेदनज्ञान एकरूप है। समझ में आया? ऐसा आत्मा है, ऐसा कभी इसने सुना नहीं। छगनभाई! दूसरी बाहर की बातें। तू कौन है? तेरा स्वरूप क्या है? श्रीमद् ने कहा न इसलिए पहले १६ वर्ष में यह। 'मैं कौन हूँ? आया कहाँ से? और मेरा स्वरूप क्या?' मैं कौन हूँ? कहाँ से आया? मेरा वास्तविक स्वरूप क्या है? वास्तविक। वास्तविक स्वरूप तो ज्ञानानन्द— ज्ञान और आनन्द इसका वास्तविक स्वरूप है। कहो, समझ में आया?

ज्ञान है, (२) आत्मतृप्ति से उत्पन्न होनेवाली जो परिनिर्वृत्ति है;... लो, यह पूर्ण लेने का है। आत्मतृप्ति से, शान्ति और आनन्द से परितृप्ति से उपजती परिनिवृत्ति। **मोक्ष; परिपूर्णता; अन्तिम सम्पूर्ण सुख (परिनिर्वृत्ति आत्मतृप्ति से होती है अर्थात् आत्मतृप्ति की पराकाष्ठा ही परिनिर्वृत्ति है।)** आत्मा की पराकाष्ठा, पूर्ण आनन्द की तृप्ति, ऐसा परिणमन, वह आत्मा का आनन्दरूप परिणमन सिद्ध को है। ऐसा ही यह आत्मा है। आत्मा में ज्ञान तादात्म्य चैतन्य अनन्त ज्ञान से भरपूर है, ऐसे अनन्त आनन्द से भी भरपूर है। समझ में आया? यह इसे करने का है, कहते हैं। ज्ञान और आनन्द परिपूर्ण है, उसमें दृष्टि देकर एकाग्र होनेयोग्य है।

मुमुक्षु : पहले आप ऐसा कहते थे, अभी भी ऐसा कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह का वही है, तब बात दूसरा क्या हो? इसके लिये तो यह बात करते हैं। ज्ञानतत्त्व का अधिकार है। ज्ञान के साथ जरा आनन्द मिलाते हैं। ज्ञान की व्याख्या तो पहली हो गयी। फिर तो आनन्द मिलाकर बात करते हैं। भाई! ज्ञान में आनन्द है। सिद्ध भी ज्ञानरूप से परिपूर्ण परिणमित हुए हैं और अतीन्द्रिय आनन्दरूप परितृप्त... तृप्त... तृप्त हो गये हैं। ऐसा ही तेरा स्वभाव है। समझ में आया?

गर्म-गर्म यह पूरणपोली का दृष्टान्त दिया था या नहीं? चन्द्रकान्तभाई ने दिया था सवेरे रास्ते में। कि गर्म-गर्म रोटी रसबोळ हो न, ऐसा यह तत्त्व आता है अभी रसबोळ। यह आत्मा आनन्द में रसबोळ है। गर्म-गर्म होती है न पुरणपोली गर्म-गर्म निकले और थाली में घी भरा हो थाली में बराबर ठीक सा। उसमें डालकर डाले फिर गर्म गर्म तो पकड़ में नहीं आये तो वह होती है समझे न? क्या? चिमटा। चिमटे से अच्छा चिमटा

चुस्त हो। वह अग्नि पकड़ने कहा नहीं। अग्नि पकड़ने का चिमटा हो, और अलग ऐसे -ऐसे डालने का। ऐसा नहीं, ऊँचा... ऐसे एकदम डाले। ऊपर डाली गर्म डुबोकर एकदम डाले। पहले ऐसा था भाई! जवान व्यक्ति मर जाये और सुखड़ी (गुजराती मिठाई) नहीं खिलाते। परन्तु यह गर्म-गर्म रोटी घी में गजब उठे। गरीब साधारण मनुष्यों का तो थड निकल जाता हो। सब नजरों से देखा था। यह सब १२-१३ वर्ष की बात है। ११ वर्ष। समझे? ऐई! जादवजीभाई! भाई, सुखड़ी नहीं खिलायी जाती अपने मेहमान को। छोटी उम्र २८ वर्ष की उम्र, २७ वर्ष की। परन्तु यह सुखड़ी का बाप करता है यह घी का थोथा उड़ाता है।

मुमुक्षु : घी अच्छा परन्तु मिठाई....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु मिठाई... आहाहा! अच्छे प्रकार से घी की तपेली भरकर रखनी पड़े और वह गर्म-गर्म रोटी हो। उसमें पुरणपोली डालकर दे। वरना कहेंगे, मेहमान को सम्हाला नहीं। यह देखो न बनिये भी।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : घी परोसना। यह और होगा। यह यहाँ नहीं, उसमें नहीं। उसमें तो इतना कहना है। यह तो घर में देखा हुआ है न। हमारे बड़े भाई गुजर गये न, दीपचन्दभाई गुजर गये थे। आठ वर्ष के विवाहित। छोटी उम्र २८ वर्ष की थी। मेहमान आवे तो घी का सराबोर उठे। परन्तु यह क्या होगा? तब तो छोटी उम्र—११ वर्ष की थी। ५७ के वर्ष है, संवत् १९५७। और रोटी में घी उड़े। आहाहा! वे किस प्रकार के मेहमान? सुखड़ी खाये नहीं और यह घी की रोटी उड़ावे। ऐई! भगवानजीभाई! तुम्हारे रिवाज तो होगा न वहाँ ऐसा? सर्वत्र ऐसा ही होता है न! चूल्हे में तो राख ही होती है न सर्वत्र। आहाहा!

कहते हैं कि सराबोर तो यह है।

मुमुक्षु : आत्मा में सराबोर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आत्मा आनन्द से तरबोळ भरा हुआ है अन्दर से। दृष्टि करे तो आनन्द नितरे, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

इसी प्रकार यह आत्मा वस्तु सूर्य समान और उसका तेज अविनाभावी और उसके साथ आनन्द। सिद्ध को ज्ञान की पर्याय और आनन्द की परितृप्त—तृप्त पूर्ण दशा हुई है। वह आत्मा में ज्ञान और आनन्द परिपूर्ण पड़ा हुआ ही है प्रत्येक भगवान आत्मा में। उसमें दृष्टि डाले और एकाग्र हो तो वह आनन्द और ज्ञान नितरे। सराबोर पर्याय में आनन्द हो, उसे भगवान आत्मा कहते हैं। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। राग-द्वेषरूप हो और परिणमे दु:खरूप, वह आत्मा नहीं। आहाहा! समझ में आया? शुभ-अशुभरूप से हो, विकल्प शुभ-अशुभरागरूप हो। यहाँ तो विषय की वासना की बात ली है कि विषय में ऐसे दौड़ता है, पर में (आनन्द) नहीं वहाँ। मुफ्त का भटकता है। (जहाँ) है वहाँ देखता नहीं। धर्म जहाँ स्वभाव आनन्द है, वहाँ देखता नहीं। जहाँ नहीं वहाँ भटका-भटक अनादि का भटकाऊ... कहो, भीखाभाई! ऐसे भटक रहा है, कहते हैं। अरेरे! भाई! तू स्वयं ज्ञान और आनन्द से तो भरपूर है न! रसबोळ, सराबोर आत्मा है। उसकी अन्तर दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में, स्वसंवेदन में आत्मा की शान्ति और आनन्द वेदन में आता है, उसे आत्मा कहते हैं। कहो, समझ में आया?

देखो! **आत्मतृप्ति से उत्पन्न होनेवाली जो परिनिर्वृत्ति...** आत्मा के आनन्द की तृप्ति से परिनिर्वृत्ति अर्थात् परिपूर्णता निपजे, ऐसा। निर्वाण—मोक्ष। अथवा **आत्मतृप्ति से उत्पन्न होनेवाली जो परिनिर्वृत्ति...** ऐसा। मोक्ष। आत्मा की आनन्द और ज्ञान की परिपूर्ण दशा का नाम निर्वाण, उसका नाम मोक्ष। समझ में आया? और वह आत्मा उसे कहते हैं ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द परिपूर्ण भरा हुआ, उसे आत्मा कहते हैं। कहो, समझ में आया? देखो! यह ज्ञानतत्त्व की श्रद्धा करो, ऐसा कहते हैं। ज्ञानतत्त्व और आनन्दतत्त्व से भरपूर आत्मा की प्रतीति और अनुभव करो, वह धर्म है। आहाहा! समझ में आया?

प्रवर्तमान अनाकुलता में सुस्थितता के कारण सौख्य है,... अनाकुल से सु-विशेष स्थित भगवान पर्याय में है, वह सिद्ध भगवान सुखरूप है। ऐसा आत्मा अनाकुल से सुस्थित ऐसा भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूप त्रिकाल आनन्द है। कहो, समझ में आया? कहते हैं कि नमूना मिले बिना हमारे परिपूर्ण मानना कैसे? परन्तु नमूना तो करे, तब होता है या अपने आप आता है? कहो, समझ में आया? वस्तु परिपूर्ण आनन्द और

ज्ञान है, उसकी अन्दर दृष्टि कर तो नमूना आवे तुझे कि यह तो ज्ञान और आनन्द का ही अकेला सागर और भण्डार है। आत्मा तो ज्ञान और आनन्द का भण्डार है। उसमें नहीं संसार, नहीं राग-द्वेष, नहीं उदय, विकल्प या दुःख कुछ नहीं। ऐसा आत्मा धर्मी को दृष्टि में लेना और उसमें तृप्तिरूप से रहना। परितृप्तिरूप से सिद्ध रहते हैं। समझ में आया?

आत्मतृप्ति से उत्पन्न होनेवाली जो परिनिर्वृत्ति... है न। परिनिवृत्ति—पूर्ण मोक्ष। उसे परिनिर्वाण—पूर्ण निर्वाण है। धर्मी जीव को अपना ज्ञान और आनन्द से भरपूर भगवान में अन्तर्मुख नजर डालने से जो शान्ति और आनन्द की अवस्था झरे, परिणमे, वह उसकी तृप्ति है। उससे आनन्द की तृप्ति होती है। बाकी विषय से तृप्ति-बृप्ति होती नहीं। अग्नि में लकड़ियाँ डालो तो अग्नि बढ़ती ही जाती है। उसी प्रकार विषय सेवन करने से कहीं विषय की तृप्ति हो, (ऐसा) तीन काल-तीन लोक में नहीं।

मुमुक्षु : ब्रह्म-आनन्द आवे न।

पूज्य गुरुदेवश्री : ब्रह्मा, वह और विपरीतता डाली। उसका उल्टा आया है, हों, स्थानकवासी में आया है। आहाहा! वह कहते हैं न, ब्रह्मानन्द जैसा विषय में आनन्द। अरे! भगवान! क्या कहा उसने यह हृदय को। यह तर्क करके निकाला क्या ऐसा? थोड़ी खलबलाहट तो हो गयी है सर्वत्र। परन्तु अब वह तो वापस बदल डालेगा सारी भाषा। परन्तु यह आया कहाँ से? ऐसे तर्क उठे कहाँ से? आहाहा! ब्रह्मानन्द और विषयानन्द दोनों समान हैं, ऐसा कहता है वह रजनीश। सुननेवाले जैन कितने ही बिना भान के चल निकलते हैं। बिना अक्ल के। भाषा की छटा, दिखाव में बाल बड़े, आँख ऐसी हो। विषय का आनन्द और ब्रह्मानन्द दोनों एक है और योग का साधन निकला होगा, वह शुरुआत यहाँ से हुई है, ऐसा कहता है, लो! आहाहा!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : सब होंगे वहाँ हाँ... हाँ... करनेवाले होंगे न सब। नहीं थे? तुम्हारे जैनवाले वहाँ थे कितने ही।

मुमुक्षु : जैन का ही था न।

पूज्य गुरुदेवश्री : संवत्सरीका था। वे परमाणन्दभाई बैठे थे सभी। किसी ने सामने देखा? किसी ने पूछा उस समय कि यह बन्द करो, यह क्या करते हो तुम? कुकर्म की बातें। ऐसे भाव हृदय में आये कहाँ से? परसन्मुख के अशुभभाव की वासना में ब्रह्मानन्द वेदन में आता है। दूसरे विकल्प घट जाये न, इसलिए वहाँ ब्रह्मानन्द। अरे! कुकर्म। वहाँ दुःख वेदन में आता है, सुन न! आहाहा! विषय की तृष्णा का विकल्प है, वह तो जहर है जहर। काले नाग जैसा जहर है वह तो। आहाहा! शुभभाव भी जहर है, यह तो अशुभभाव। भाई! वहाँ सुख नहीं। ब्रह्मानन्द कहाँ से धूल में आया? आहाहा! उसे सुननेवाले भी निकलते हैं, लो! भगवानजीभाई! दस-दस हजार लोग ऐसे, ओहोहो! क्या परन्तु? आचार्य! क्या आचार्य बात करते हैं! उसे प्रार्थना करो कि यह न कहे। परन्तु यह उलटा आया कहाँ से अब तेरा? ऐसी श्रद्धावाले को सुनने जाते हो, तुम मूर्ख हो या नहीं? वह तो उसके पास रहा। समझ में आया?

देखो! यह तृप्ति आत्मा के आनन्द में है। यह विषय के अशुभभाव में तो नहीं, परन्तु शुभभाव में भी नहीं। अरे! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बाँधे, उसमें तृप्ति नहीं, ऐसा कहते हैं। वह तो दुःख है। उसके बदले विषय की वासना दुःख है, दुःख है। जहर है, जहर कालकूट जहर है। समझ में आया? कहते हैं, **आत्मतृप्ति से उत्पन्न होनेवाली जो परिनिर्वृत्ति...** देखा! आत्मतृप्ति से उपजती परिनिवृत्ति। निर्वाण होता है तो आत्मा के आनन्द की परितृप्ति से निर्वाण होता है। समझ में आया? इसी प्रकार आत्मा में धर्म होता है, वह भी आत्मा के ज्ञान और आनन्द की एकाग्रता से उसकी तृप्ति से होता है, तृप्ति से होता है। परिनिवृत्ति परितृप्ति पूरी सिद्ध को होती है। समझ में आया? आहाहा!

मूल सर्वज्ञ भगवान का जिसने आसरा लिया नहीं और कल्पना से अन्ध होकर बातें करे, वे सब ऐसी ही होती है। सर्वज्ञ परमात्मा... आत्मा सर्वज्ञ, वह तो यहाँ सिद्ध करते हैं, देखो न! आत्मा ज्ञानस्वरूप अर्थात् सर्वज्ञस्वरूप है और पूर्ण आनन्द नित्यानन्द स्वरूप है। ऐसा आत्मा ही है। ऐसा आत्मा जिसे पर्याय में प्रगट हुआ, उसने जो जानकर, देखकर कहा, वह आगम है। उसके बिना के कल्पना के घोड़े दौड़ाकर बातें करे, वे खोटे, खोटे। पहले से खोटा और सब खोटा। समझ में आया? पहले से आत्मा वह तो सूर्य समान चैतन्यप्रकाश कारणान्तर की अपेक्षा रखे बिना अकेला ज्ञान से

परिपूर्ण है और अनाकुल सुस्थित आनन्द से परिपूर्ण है। सिद्ध पर्याय में परिपूर्ण है, यह वस्तु के स्वभाव से परिपूर्ण है। वस्तु दोनों समान ही हैं। उनको प्रगट है, इसे शक्तिरूप से है। ऐसा आत्मा है, उसकी अन्तर में दृष्टि, उसके सन्मुख होना, उसमें से प्रगट होना आनन्द और ज्ञान, उसे आत्मा कहते हैं। वह संवर-निर्जरा की दशा वीतरागी, उसे आत्ममार्ग और मोक्षमार्ग कहते हैं। कहो, समझ में आया? तब उसने आत्मा को माना, ऐसा कहा जाता है। आत्मा को रागवाला, दुःखवाला, पुण्यवाला और पुण्य से लाभ होता है, पाप से लाभ होता है, ऐसा माननेवाले आत्मा को मानते नहीं। समझ में आया? आहाहा! पहले अपनी मान्यता में ही बड़ा विवाद। दो बात हुई।

तीसरी। **जिन्हें आत्मतत्व की उपलब्धि निकट है...** अब जिन जीवों को अल्प काल में केवलज्ञान होना है, ऐसे गणधर आदि सन्त, मुनि आदि ज्ञानी। **जिन्हें...** यह देव की व्याख्या करते हैं। पहली ज्ञान की की, आनन्द की की, अब देव। **जिन्हें आत्मतत्व की उपलब्धि...** आत्मा की उपलब्धि अर्थात् पर्याय में पूर्णानन्द की प्राप्ति **निकट है...** अल्प काल में केवलज्ञान और पूर्ण आनन्द होने की तैयारी है। आसन्नभव्य जीव है गणधर आदि, देवेन्द्र आदि समकिती। अन्दर है अन्दर। '**देवेन्द्रादीनां चासन्नभव्यानां**' है न जयसेनाचार्य की टीका में? है। '**गणधरदेवादिपरमयोगिनां देवेन्द्रादीनां चासन्नभव्यानां**' समकिती से लेकर गणधर। जिन्हें आत्मा ज्ञान और आनन्दरूप से दृष्टि में उत्कीर्ण हो गया है, ऐसे जीव को दृष्टि में, हृदय में स्तुति करनेयोग्य देव विराजमान हैं। धर्मी के ज्ञान में भगवान आत्मा विराजते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा वह देव है। आहाहा! सिद्ध भगवान उत्कीर्ण हैं, यह ठीक। परन्तु स्वयं ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, ऐसी वर्तमान पर्याय में वह वस्तु है, वह उत्कीर्ण हो गयी है। इससे उसकी पर्याय में उसकी स्तुति करनेवाला है, इसलिए स्तुति करनेयोग्य ज्ञानी को वह आत्मा देव है। कहो, समझ में आया? कहो, यह भगवान स्तुति करनेयोग्य, वह सब व्यवहार की, विकल्प की बातें हैं, ऐसा कहते हैं। ऐई! भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या?

मुमुक्षु : भगवान साक्षात् हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : तो भी स्तुति करनेयोग्य व्यवहार का विकल्प है। वह यहाँ अनन्त आनन्द का, ज्ञान का समुद्र भगवान आत्मा उछल रहा है चैतन्य। छलाछल ज्ञान और आनन्द से भरपूर स्वयं ही है। यह उसकी स्तुति करनेयोग्य, दृष्टि और ज्ञान में उसकी स्तुति करनेयोग्य है। समझ में आया? यह होता है व्यवहार, पूर्ण न हो तब तक ऐसा विकल्प आवे, परन्तु उसका वजन कितना? पुण्यबन्ध जितना। उसमें कुछ अबन्ध का अंश है नहीं। ऐसी बात है। इससे न हो, ऐसा नहीं। वह पूर्ण वीतराग न हो, तब तक ऐसा भाव शुभराग आता है, होता है। परन्तु होता है, इसलिए वास्तविक वह आत्मा का कल्याण है और मोक्ष का वह मार्ग है, ऐसा नहीं। समझ में आया? तो मोक्ष का मार्ग नहीं, इसलिए आवे ही नहीं, ऐसा भी नहीं। आहाहा! समझ में आया? स्वरूप में आनन्द में स्थिर न हो सके, तब अशुभ से बचने के लिये अथवा उस-उस काल में उस-उस प्रकार का भक्ति आदि का विकल्प आये बिना रहता नहीं। व्यवहार विकल्प वास्तव में तो दुःखरूप है। समझ में आया? तीव्र पाप हो, वह विशेष दुःखरूप है। यह थोड़े दुःखरूप, परन्तु है तो दुःख की जाति। उसमें आनन्द की जाति नहीं।

भगवान आत्मा... कहते हैं, अहो! जिसे आत्मतत्त्व की उपलब्धि, उपलब्धि अर्थात् सिद्धपना अल्प काल में होना है, ऐसे जीवों को उसके ज्ञान की अन्दर में यह आत्मा आनन्द और ज्ञानरूपी उत्कीर्ण हो गया है। वह उत्कीर्ण हो गया है, रागादि आता नहीं। आहाहा! समझ में आया? आत्मा कितना कैसा उसने सुना नहीं। दूसरे की बड़ी बातें। ऐसा राजा, ऐसी रानी, ऐसा फलाना, ऐसा वस्त्र। ओहोहो! मैसूर में नहीं, क्या कुछ है नहीं? कितने कमरे न। हैदराबाद। कमरे। फलाने कमरे में फलाने कमरे। गये थे देखने गये थे। अलग-अलग प्रकार। वस्त्र की अलग जाति, हथियार की अलग जाति, फलाने की ढाल की अलग जाति। ओहोहो! क्या है परन्तु यह? किसके शृंगार? समझ में आया? बापू! तुझमें भरा हुआ भगवान ज्ञान और आनन्द, वह तेरी शृंगार की चीज़ है। समझ में आया? उससे तेरी शोभा है। तेरे बँगले में भगवान स्वयं विराजता है। आहाहा! घर के भगवान को देखना नहीं और किसी के भगवान को देखने जाये, वहाँ हाथ आता नहीं। जादवजीभाई! ऐसा है, भाई! आहाहा!

तब अब वह उड़ावे, देखो! इनकार करते थे या नहीं? करनेयोग्य नहीं या नहीं?

इसलिए.... भाई! करनेयोग्य नहीं, तथापि वह शुभभाव आये बिना रहता नहीं। उसका नाम ही व्यवहार है और व्यवहार है, वह बन्ध का कारण है। आता है। पूर्ण अबन्ध के परिणाम न हो, तब उस जाति के परिणाम हुए बिना रहते नहीं। ऐसा स्याद्वाद वीतराग का मार्ग है। समझ में आया?

आत्मतत्त्व की उपलब्धि अर्थात् समीपरूप से जिसकी प्राप्ति केवलज्ञान की हो गयी है। **निकट है - ऐसे बुधजनों के (ज्ञानीजनों के) मनरूपी शिलास्तम्भ में...** देखो! है न पत्थर का स्तम्भ। **जिसकी अतिशय द्युति...** द्युति अर्थात् दिव्यता... दिव्यता। उस ज्ञान की पर्याय में ज्ञानी को आत्मा की 'दिव्यता; भव्यता; महिमा।' भासित होती है। **(गणधरदेवादि बुधजनों के मन में शुद्धात्मस्वरूप की दिव्यता का स्तुतिगान उत्कीर्ण हो गया है।)** इतना अर्थ किया नीचे। उसमें देवेन्द्र आदि लिये हैं। समझ में आया? जरा उसके सामने दोनों टीका हो न सामने-सामने देखने का मजा ठीक पड़े कि इसमें कौन सा अर्थ किया है। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा! कितने गीत गाना, कहते हैं तेरे? विकल्प के गीत से पार पड़े, ऐसा तू नहीं, ऐसा कहते हैं। वह आनन्दमूर्ति प्रभु ज्ञान के तेज का कारणान्तर से दूसरे कारण बिना भरपूर स्वयं। वह ज्ञान फलाना हो तो ज्ञान होता है, इन्द्रियाँ हों तो ज्ञान होता है, मन हो तो ज्ञान होता है, ऐसा वह ज्ञान है ही नहीं, कहते हैं। समझ में आया? और सिद्ध को भी ज्ञान होने का हो तो होता है, वह भी नहीं। और आत्मा का ज्ञान होने के लिये भी यह साधन हो तो ज्ञान हो, ऐसा वह आत्मा नहीं। समझ में आया?

ऐसा दिव्य आत्मस्वरूपवान होने से... दिव्य आत्मस्वरूप, देखो! आहाहा! बाहर के सुन्दर वैक्रियिकशरीर के रूप और धूलधाणी... घड़ीक में फू होकर चले जायेंगे। समझ में आया?

ऋषभदेव भगवान बैठे थे न सिंहासन में। उसमें इन्द्र ने देवियों को रखा। देवियाँ नृत्य करती थीं। एक देवी का आयुष्य वहीं पूरा होने का (था)। उस जगह नाचते... नाचते... देवी सुन्दर... सुन्दर... सुन्दर... यह तो सब धान के पिण्ड। समझे न? धान दो टाईम न खाये तो। जरा प्यास लगी हो और पानी न मिले तो ऐसे गला सूख जाये। वह तो वैक्रियिकशरीर। ऐसे देवियों को नृत्य के लिये रखी। उसमें एक देवी का आयुष्य

पूरा हो गया। एकदम चली गयी दूसरे भव में। वहाँ दूसरी रख दी। भगवान के ज्ञान में आया कि ओहो! इस देवी का आयुष्य पूरा हो गया। ओहो! ऐसा अस्थिरपना! सम्यग्दर्शन-ज्ञान और तीनों ज्ञान हैं। परन्तु वैराग्य होने में जातिस्मरणज्ञान हुआ। तात्कालिक उपयोग बिना ज्ञात हो, ऐसा। आहाहा! यह अनित्यता! देवी यहाँ नाचती है, नाचते-नाचते एक पैर ऐसे हुआ, उड़ गयी। झपकारे की भाँति शरीर समाप्त हो गया। जादवजीभाई! आहाहा! ऐसे अनित्य शरीर, वैक्रियिकशरीर जिसके उसमें सुख कहाँ था? सुख तो भगवान, तेरे आत्मा में दिव्यता भरी है, देखो! देव है।

दिव्य आत्मस्वरूपवान होने से देव है। सिद्ध देव हैं और तू भी देव है। आहाहा! **इसलिए इस आत्मा को सुखसाधनाभास...** देखो, यह योगफल लाते हैं। **इसलिए इस आत्मा को सुखसाधनाभास (जो सुख के साधन नहीं हैं...** यह पाँच इन्द्रिय के विषय, वे सुख के साधन नहीं। **परन्तु सुख के साधन होने का आभासमात्र...** दिखावमात्र अज्ञानी को लगते हैं। **जिनमें होता है - ऐसे) विषयों से बस हो।** लो! है न? पर्याप्त। '**भासैर्विषयैः पर्याप्तम्**' अलम् नहीं कहा परन्तु '**पर्याप्तम्**'। आहाहा! यहाँ विषय शब्द से बाहर की ओर के झुकाव के भाव से अब बस होओ। समझ में आया?

भगवान आत्मा अकेला चैतन्य और आनन्द जिसमें स्वभाव है, उसे विषय बना अर्थात् ध्येय बना, ध्यान में उसे ध्येय बना, बस वह तेरा कर्तव्य है। ... विषय के वश होओ अब। आत्मा के आनन्द की दृष्टि करो, फिर आसक्ति रहे, वह अस्थिरता है। वह कहीं उसमें रुचि नहीं रहती। ज्ञानी को विषय की वासना का विकल्प होता है, परन्तु उसकी रुचि नहीं। उसमें दुःख लगता है। समझ में आया? जैसे चमड़ी निकल गयी हो, (खुल्ला) माँस हो और फिर नमक छिड़के न? नमक छिड़के, नमक। ऐसा हो जाये। वह ऊपर ऊपर हुआ था न, नारणभाई के पुत्र को, नहीं? छोटा नगीन। पैर में हुआ था नीचे। बराबर नीचे ऐसा हुआ था। नमक छिड़कना पड़े। तब उसे ... बहुत वर्ष की बात है। नारणभाई नहीं? राणपुर। नीचे पैर में ऊपर से नीचे। ऐसा सड़ा था कौन जाने कि ऐसे नमक डालना पड़े। चिल्लाहट मचाये लड़का। इसके बिना रुंझाये, ऐसा नहीं था नमक के बिना। आहाहा! इसी प्रकार विषय की वृत्तियाँ माँस के ऊपर जैसे नमक डाले, वैसा ज्ञानी को दुःख लगे। समझ में आया? इसलिए पर की रुचि छोड़ और आत्मा के

आनन्द की रुचि कर। उससे बस होओ अब। अब बस होओ, अनन्त काल हुआ, कहीं सुख मिला नहीं। इन्द्रों में मिला नहीं, राज में मिला नहीं, कहीं धूल में भी नहीं। यह इज्जत-कीर्ति में कहीं सुख मिला नहीं। मुफ्त का हैरान हो गया, लो!

मुमुक्षु : सुख था कहाँ, वह मिले?

पूज्य गुरुदेवश्री : दो-चार सब सेठिया बैठावे, राजा बुलावे। पाँच लाख दिये हों, लो! वह पाँच लाख इक्यावन हजार। सब एकड़ा लिखो, सब पाँचड़ा लिखो। ऐसा होता है कि आहाहा! बहुत उदार भाई! सब उसके सामने देखे, लो! सब उसके सामने देखे। ओहोहो! परन्तु सब सामने तो देखे।

मुमुक्षु : परन्तु उसमें उसे क्या लाभ?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसे लाभ पाप का। उसे ऐसा जरा गलगलिया हो कि आहाहा! सब मेरे सामने देखते हैं। पाप है तुझे, सुन न! समझ में आया? वह दुःख में जल गया है। जलता है दुःख में। आहाहा! कहो, कैसे होगा इसमें? कामदार!

विषयों से, परसन्मुख के झुकाव से बस होओ, ऐसा कहते हैं मूल तो, हों! यह तो वह विषय की तो बात ली बाहर की। भगवान आत्मा जो यह ज्ञान और आनन्द से भरपूर भगवान, उसे विषय बना, ध्यान में ध्येय कर। ध्येय कर कहो या विषय कर कहो। समझ में आया? पर विषयों की ओर के झुकाव से अब पूरा करो।

भावार्थ : सिद्ध भगवान किसी बाह्य कारण की अपेक्षा के बिना अपने आप ही स्व-परप्रकाशक ज्ञानरूप हैं,... सिद्ध परमात्मा शरीर न होने पर भी, इन्द्रियाँ न होने पर भी अकेला ही आत्मा परमात्मा को है। ऐसा कहते हैं न मूल? शरीर के बिना भी सिद्ध सुखी हैं। वह विषय है न, यह बताते हैं। **सिद्ध भगवान किसी बाह्य कारण की अपेक्षा के बिना अपने आप ही स्व-परप्रकाशक ज्ञानरूप हैं,...** स्व-परप्रकाशक ज्ञानरूप हैं। **अनन्त आत्मिक आनन्दरूप हैं...** लो! सिद्ध को आनन्द। अनन्त आत्मिक आनन्दरूप है। **और अचिन्त्य दिव्यतारूप हैं।** अचिन्त्य दिव्यता। ओहोहो! सिद्ध भगवान की पर्याय में अनन्त सिद्ध ज्ञात हों तो भी जिसे ज्ञान में अनन्त गुण जाने, ऐसी सामर्थ्य, ऐसी दिव्यज्ञान शक्ति और उसका उन्हें आनन्द है।

सिद्ध भगवान, समझे न ? लो ! सिद्ध भगवान जैसा ही सर्व जीवों का स्वभाव है। लो आया। 'सिद्ध समान सदा पद मेरो।' पर्यायबुद्धि छोड़, द्रव्यबुद्धि कर, ऐसा कहते हैं। जिसमें सिद्ध भगवान जैसा तेरा स्वभाव है। सर्व जीवों का स्वभाव है। अनन्त निगोद आदि सब जीव भगवान हैं। पूर्णानन्द के नाथ स्वयं अनन्त आत्मायें लोक में ठसाठस भरे हैं। पर्याय का लक्ष्य छोड़ दे, तेरा और उनका। सब पूर्णानन्द और ज्ञान से पूरा लोक ठसाठस भरा है। अनन्त सिद्ध लोकालोक पूरे लोक में भरे हैं, कहते हैं। पर्याय का लक्ष्य छोड़ दे, तू द्रव्य से देख। तुझे द्रव्य से देख तो उन्हें भी द्रव्य से देख। तुझे जब देख तो पर्याय से नहीं, पूरा द्रव्य है। तो उन्हें भी वह देख। उन्हें अंश से न देख, उन्हें अंशी से देख। वह भी पूर्णानन्द सिद्ध स्वभाव से भरपूर है। कहो, यह उसे श्रद्धा, ज्ञान में लेकर स्थिर होनेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। यह आचरण करनेयोग्य और यह मोक्ष का मार्ग है। आहाहा !

इसलिए सुखार्थी जीवों को... इसलिए सुख के प्रयोजनवाले जीव **विषयालम्बी भाव छोड़कर निरालम्बी परमानन्दस्वभावरूप परिणमन करना चाहिए।** लो ! पर के विषयवाले भाव को, पर के ध्येय को लक्ष्य में लेनेवाले भाव को छोड़ दे, कहते हैं। निरालम्बी परमानन्दस्वभाव, उसे परिणमो, लो ! **इस प्रकार आनन्द-अधिकार पूर्ण हुआ।** ज्ञान और आनन्द दो बातें ही अधिक वर्णन करते हैं। ज्ञानी भी भगवान आत्मा परिपूर्ण आनन्दरूप है। सिद्ध भगवान पर्याय में ज्ञान और आनन्द से परिपूर्ण हो गये। कहो, समझ में आया ? अब उसे कुछ परिपूर्ण है, उसमें कुछ दुःख होगा थोड़ा ? सिद्ध भगवान ऊपर नहीं जा सकते, इतना तो परतन्त्र दुःख होगा या नहीं उन्हें ? परन्तु इतना पराधीन नहीं ? ऊपर धर्मास्तिकाय नहीं तो जा नहीं सकते, लो ! यही उनका स्वतन्त्र और इतना और उस प्रकार का स्वभाव है। पूर्ण स्वतन्त्र और पूर्ण सुखी हैं। परतन्त्रता का एक अंश नहीं। समझ में आया ? कथंचित् स्वतन्त्र, कथंचित् परतन्त्र—ऐसा कहो सिद्ध को। और ऐसा कहते हैं। अनेकान्त ऐसा करो, लो ! उसमें डाला है खानिया में। खाडिया नहीं, क्या कहलाता है ? खानिया (तत्त्वचर्चा)। खाडिया तो अपने अहमदाबाद, नहीं ? अहमदाबाद मन्दिर खडिया का है न ? खाडिया है न ? वह खानिया। आहाहा ! सिद्ध भगवान भी जब अभी परतन्त्रता, अब तब स्वतन्त्रता किसे पूरी हो ? आहाहा ! वह भी

सादि-अनन्त परतन्त्रता! बिल्कुल परतन्त्र नहीं। पूर्णानन्द नाथ। जिन्हें पूर्ण दशा ज्ञान और आनन्द आदि स्वतन्त्र सब पर्याय परिपूर्ण सुखरूप दशा हुई है। ज्ञान का आनन्द, सुख का आनन्द, श्रद्धा का आनन्द, चारित्र का आनन्द, वीर्य का आनन्द, सब जितनी शक्तियाँ सबका आनन्द। समझ में आया? कोई शक्ति-योग्यता नहीं आगे जाने की, इसलिए वह दुःख है, ऐसा है नहीं। फिर जयसेनाचार्य ने यह सर्वज्ञ की बात को डाला है, दो श्लोक डाले हैं।

यहाँ शुभपरिणाम का अधिकार प्रारम्भ होता है। लो, अब। यह दो बात करके अब शुभ परिणाम जो बन्ध का कारण है, जो आत्मा के स्वभाव में साधकपना नहीं हो सकता, ऐसे शुभ की बात करते हैं। **इन्द्रियसुखस्वरूप सम्बन्धी विचार को लेकर,...** इन्द्रिय के सुख के स्वरूप सम्बन्धी का विचार **लेकर, उसके (इन्द्रियसुख के) साधन का (शुभोपयोग का) स्वरूप कहते हैं** - इन्द्रियसुख शुभ उपयोग से मिलता है। सुख अर्थात्? यह मानते हैं न लोग। मानते हैं, उसमें मिलता क्या है? कि यह पैसा, कीर्ति, शरीर अनुकूलता शुभ उपयोग से मिलते हैं। परन्तु वह हेय है। इसके लिये तो बात करते हैं।

मुमुक्षु : भले हेय रहा, परन्तु उसे रखने में क्या बाधा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : जहर माने... सर्प का बच्चा रखे जेब में तो क्या दिक्कत आवे? कहो, छोटा होता है न सर्प का वह, क्या कहलाता है वह? कणो-कणो (सर्प का छोटा बच्चा)। ऐसे फण मारता हुआ। छोटा परन्तु नाग। समझ में आया? उसे लेकर नाक में रखे थोड़ी देर तो क्या दिक्कत है? उसे नाक में क्या कहलाता है उसका? नाग का हो सर्प का बिल बिल। बिल में जाये न सर्प तो उसे बिल बनावे तो दिक्कत क्या? हाथ में पकड़कर उसका मुख रखे यहाँ। परन्तु मर जायेगा वहाँ। समझे? उस हाथ में रखे तो त्राड डाले ऐसा है अन्दर से। छोटा परन्तु नाग, छोटा भी राजा। समझ में आया? उसकी छेड़खानी करना नहीं। ऐसा आता है, भाई! राजा छोटा परन्तु राजा है न। छोटा भी नाग है। ऐसे तीन बोल हैं कुछ। धर्मी भले छोटा बालक हो, परन्तु वह धर्मी है, मुनि है, छेड़खानी करना नहीं। समझ में आया?

★ ★ ★

गाथा - ६९

शुभ परिणाम वह बाह्य के विषय के सुख का कारण है, उसकी बात करते हैं।

देवजदजदिगुरुपुजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा॥६९॥

देव-यति-गुरु पूजा एवं, दान-शील में लीन रहे।
उपवासादिक में भी रत, आत्मा को शुभ-उपयोग कहें॥६९॥

इसमें से बात यह है मिथ्यादृष्टि को बतलाने का, परन्तु सम्यग्दृष्टि को यह शुभ उपयोग बन्ध का ही कारण है। उसमें से निकालते हैं, यह तो मिथ्यादृष्टि की बात है, सम्यग्दृष्टि की नहीं। भाई! इसमें ऐसा कहते हैं। इस श्लोक में से कहते हैं न, खबर है। बात सच्ची है। यह ... शुभ उपयोग का वर्णन है। वस्तु का सिद्धान्त एक ही लागू पड़ता है। अन्तर इतना कि उससे रक्त है, ज्ञानी शुभ उपयोग में रक्त नहीं। इतना अन्तर है। शुभ उपयोग होता है, परन्तु उसमें एकाकार एकत्व नहीं, बस। अज्ञानी को शुभ उपयोग में एकत्वबुद्धि है, इतना अन्तर है। बाकी शुभ उपयोग तो ज्ञानी को भी बन्ध का कारण है, अज्ञानी को बन्ध का कारण है।

अन्वयार्थ : देव, गुरु और यति की पूजा में,... लो! समझ में आया? **दान में एवं सुशीलों में...** यह दान के भाव, वह शुभ उपयोग है, ऐसा कहते हैं। पाँच-पच्चीस लाख देना या पाँच-पचास हजार देना या सौ-दो सौ-पाँच सौ, उसमें राग की मन्दता हो तो वह शुभभाव है, वह कहीं धर्म है नहीं। तथा देव। समझे न? इनके अर्थ किये हैं सब। किये हैं न अन्दर आयेंगे। ... उसमें किये हैं, हों! देवता निर्दोषी परमात्मा। है न नीचे अपने किया है। भावार्थ में किया है। '**इन्द्रियजयेन शुद्धात्मस्वरूपप्रयत्नो यतिः**' जयसेनाचार्य में है। देव, गुरु और यति, ऐसे तीन हैं न? '**स्वयं भेदाभेदरत्नत्रयाराधक-स्तदर्थिनां भव्यानां जिनदीक्षादायको गुरुः**', फिर ऐसा शब्द कहा है। समझ में आया? आचार्य, उपाध्याय आदि गुरु। देखो! यह समकिती, ज्ञानी, धर्मात्मा उनकी भी पूजा और स्तुति और दान का भाव, वह शुभ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

देव, गुरु और यति की पूजा में, दान में एवं सुशीलों में... कषाय की मन्दता के

आचरण सब सरलता आदि राग मन्द के ऐसे आचरण, वह शुभभाव है। उन **उपवासादिक में लीन...** उपवास, एकासन, आम्बेल, यह उपधान आदि अपवास करते हैं न। एक-एक दिन के, महीने-महीने के सब। उसमें वह आत्मा शुभ उपयोगात्मक है। वह शुभपरिणाम है वह, धर्म नहीं। कहो, अब यह उपवास करे, वे सब तप हैं और तप है वह निर्जरा है। भगवानभाई! ऐसा कहते हैं न? खोटा कहते हैं? और देव, गुरु, यति की पूजा। समझ में आया? दान। कहो ठीक है? वह सब शुभोपयोग है।

टीका : जब यह आत्मा दुःख की साधनभूत ऐसी द्वेषरूप तथा इन्द्रिय विषय की अनुरागरूप अशुभोपयोग भूमिका का उल्लंघन करके,... लो! कहते हैं कि अशुभ उपयोग करता नहीं। अशुभ उपयोग की व्याख्या क्या की? कि दुःख के साधनरूप द्वेषरूप परिणमता नहीं। और इन्द्रिय के विषय के अनुराग अशुभरूप होता नहीं। तब देव, गुरु और यति की पूजा। देखो, शुभ उपयोग कहते हैं इसमें तो। श्वेताम्बर में तो आता है कि मिथ्यादृष्टि आहार देनेवाला, भगवान आहार लेनेवाले और मुनि, समकिती आहार लेनेवाले, उन्हें दे तो परितसंसार हुआ, उसमें पाठ है। सुबाहुकुमार। ऐसा पाठ है। विपाक में दस अध्याय है सुबाहुकुमार के विपाक में। सुबाहुकुमार था मिथ्यादृष्टि, परन्तु बहुत पुण्यशाली। सिंहासन के ऊपर बैठा हो तो... उसमें महामुनि आये। समझे न? नीचे उतर गया। पधारो... पधारो... पधारो... बहुमान से आहार दिया, परितसंसार किया। संसार तोड़ डाला। ऐसा पाठ विपाकसूत्र के अन्दर बत्तीस सूत्र में ४५वाँ सूत्र है। यह कहते हैं कि वह बात खोटी है, ऐसा कहते हैं। ऐई! छगनभाई! तुम्हें तो कुछ खबर नहीं होगी, ऊपर कहे वह सुनना और जय महाराज। वह तुम्हारे क्या कहलाते हैं आठ दिन के पर्यूषण में? बारसा। बारसा सुनना। चिल्लाहट किये जाये वह कुछ सुनाई दे नहीं। सामने थोड़ा सुने पीछे तो कोलाहल चलता हो।

यहाँ तो कहते हैं कि देव की भक्ति और पूजा वह भी शुभभाव है। देव की भक्ति से निर्जरा-संवर मानता है, वह दृष्टि मिथ्यात्व है। कहो मानता है या नहीं (कि) यह भगवान की भक्ति से समकित होगा? लो! निद्धत, निकाचित (कर्म) छूट जाये। यहाँ कहते हैं कि देव की भक्ति से शुभभाव होगा।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा। शास्त्र क्या कहे? एक ओर गप्प मारे और एक ओर सच्चा कहे, ऐसा होगा शास्त्र? वह तो शस्त्र है। देव। लो! तीन लोक के नाथ देव निर्दोष परमात्मा। उन्हें तो आहार देने का होता ही नहीं। परन्तु पूजा की बात है न। पूजा, उनके प्रति पूजा है न? देव के प्रति पूजा है। देव, गुरु और यति की पूजा। देव की पूजा तो होती है न। तो भावपूजारूपी शुभविकल्प और द्रव्यपूजा की क्रिया वाणी आदि की, उन सबमें शुभ उपयोग है, आत्मा नहीं उसमें। ओहोहो! और विशाल मन्दिर बनावे। ऐई! अमुलखभाई! इन अमुलखभाई ने तो वापस पंचकल्याणक किया। वढवाण में नहीं, कांप में नहीं, ऐसा जोरावर (नगर) में किया।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह शुभभाव होता है, ऐसी वस्तु होती है। और हुआ है उसके कारण से। कहीं शुभभाव था, इसलिए हुआ है, ऐसा है नहीं। कहाँ गये ललितभाई? कहो, समझ में आया इसमें? यह तुम्हारे पिता वहाँ जोरावर में कर्ता-हर्ता, लो! यह सब पंचकल्याणक कैसा किया, ओहोहो! मलूकभाई की प्रमुखता में। कहते हैं कि वह तो होनेवाला हो वह हुआ। भाव अन्दर से राग की मन्दता का शुभ है। देव की भक्ति, मन्दिर की पूजा। देव आते हैं न भाई सात प्रकार के? सात प्रकार के नहीं? नौ-नौ। यह नौ देव की पूजा का शुभभाव है यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! जिनप्रतिमा, मन्दिर, अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु और जिनवाणी (जिनधर्म)। समझ में आया? इन सबकी भक्ति, पूजा शुभभाव है। तब कहे, सम्यग्दर्शन... नहीं। नहीं ऐसा नहीं भाई! मिथ्यादृष्टि को उसमें एकताबुद्धि है, सम्यग्दृष्टि को एकताबुद्धि नहीं, इतना अन्तर है। बाकी परिणाम का फल तो शुभबन्ध ही है। समझ में आया?

कलशटीका में तो स्पष्ट लिखा है, वहाँ कर्मधारा और ज्ञानधारा में। वे समकिती हों, मिथ्यादृष्टि हों, वह शुभ परिणाम है, वह बन्ध का ही कारण है। इसलिए उनको सुहाता नहीं। नहीं, नहीं, यह अर्थ सच्चे नहीं। अब सुन न! आहाहा! परसन्मुख के आश्रयवाला भाव किसी प्रकार से संवर और निर्जरा और परित संसार का कारण नहीं हो सकता। एक ही सिद्धान्त। देव-देव। कहो, समझ में आया? कहा न? और फिर गुरु। लो! गुरु की भक्ति। मुनि को आहार देना, मुनि के गुणगान गाना, मुनि की स्तुति

करना, मुनि का विनय करना, गुरु का विनय करना, देव का विनय करना, लो! समझ में आया? यह सब पूजा आदि का भाव शुभभाव है।

और यदि की पूजा। यति कहा न? यति मुनि है मूल तो। '**इन्द्रियजयेन शुद्धात्मस्वरूपप्रयत्नो यतिः**' यह स्पष्टीकरण आयेगा अन्दर, अन्दर में आयेगा भावार्थ में। यति की पूजा। यति अर्थात् यह जतड़ा और जति नहीं, हों! इन्द्रियों का जय करके अपने स्वरूप में परायण-तत्पर रहे, '**शुद्धात्मस्वरूपप्रयत्नो**' शुद्धात्मस्वरूप में प्रयत्नवान तत्पर। ऐसे मोक्षमार्गी मुनि, यतियों की पूजा, उन्हें आहारदान देना, वह सब शुभभाव है। कहो, ऐसी तो स्पष्टता है इसमें। तब वे कहे, यह तो मिथ्यादृष्टि को है वह, ऐसा लोग कहते हैं। सम्यग्दृष्टि के शुभ उपयोग का फिर वर्णन है, देखो। चरणानुयोग (सूचक चूलिका) में। उससे तो परम्परा से मोक्ष होगा। ऐई! देवानुप्रिया! आता है या नहीं चरणानुयोग में? २५४ (गाथा)। श्रावक को शुभभाव से परम्परा से मोक्ष होगा। मिथ्यादृष्टि... अरे! भगवान! सुन न! परम्परा अर्थात्? परम्परा मुक्ति तो शुद्ध से ही होती है। यह तो वह निमित्त टलेगा, अशुभ टला और शुभ टलेगा। इसलिए (कहा)। शुभ से होता होगा कभी तीन काल में? बन्ध के भाव से मोक्ष के भाव को सहायता मिले, ऐसा तीन काल में नहीं।

कहो, **देव-गुरु-यति की पूजा, दान,...** दान-दान। दान देना। मुनि को दान देना। भगवान को तो होता नहीं। साधु को दान देना, यतियों को, मुनियों को दान देना। उस दान में शुभभाव होता है। **शील...** पालन करना। ब्रह्मचर्य पालन करना व्यवहार अथवा कषाय मन्दता का स्वभाव। **और उपवासादिक...** कहो, यह उपवास करना, ऊनोदर करना, आम्बेल करना, अठ्ठाई करना, सोळभठ्ठा करना, एक महीना मासखमण करना, अपवास आदि। यह रस का त्याग। इतने रस नहीं खाना, इतना खाना, फलाना। वह सब कषाय की मन्दता है तो शुभभाव है। आत्मा के आनन्द के रस बिना बाहर के रस के त्याग में शुभ उपयोग, वह बन्ध का कारण है। उपवास आदि उसमें सब आया देखो! अनशन, ऊनोदर, वृत्तिसंक्षेप इत्यादि। प्रीति। उनमें प्रीति, देखा! प्रीति शब्द प्रयोग किया है।

देव-गुरु-यति की पूजा, दान, शील और उपवासादिक के प्रीतिस्वरूप धर्मानुराग

को अङ्गीकार करता है,... है धर्मानुराग अर्थात् शुभ धर्म का (अनुराग)। **तब वह इन्द्रियसुख की साधनभूत...** इन्द्रिय सुख के साधनभूत। **शुभोपयोगभूमिका में आरूढ़ कहलाता है।** समझ में आया? यहाँ बात की है अज्ञानी की, उसके शुभ उपयोग का साध्य वहाँ है। ज्ञानी को साध्य तो आत्मा है। उसमें शुभ उपयोग बीच में आ जाता है। वह उसका साध्य नहीं, उसका ध्यान नहीं, उसका फल चाहता नहीं अथवा उसका फल इन्द्रिय का सुख है, उसकी भावना नहीं तो उसके फल की भावना नहीं। अज्ञानी को शुभ के ऊपर दृष्टि है तो उसका साधन विषयों का साधन है वह, आत्मा का साधन वह है नहीं। आरूढ़ कहलाता है। लो! इसका भावार्थ लेंगे। यह शुभभाव है, छोड़नेयोग्य है। शुद्ध का आदर करनेयोग्य है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण १, बुधवार, दिनांक ०६-११-१९६८
गाथा - ६९-७०-७१, प्रवचन - ५८

ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन, प्रवचनसार। यहाँ ऐसा कहना चाहते हैं कि ज्ञानस्वरूप जो आत्मा है, उसका जो व्यापार है शुद्ध, वह तो वास्तविक व्यापार है। क्योंकि आत्मा ज्ञान है, शुद्ध है। ज्ञान है, वह शुद्ध है। उसका जो शुद्ध व्यापार है, वह शुद्ध उपयोग, वह तो बराबर वास्तविक है। परन्तु उस ज्ञान में शुद्ध उपयोग से विरुद्ध ऐसा जो शुभ उपयोग, वह हेय है, दुःखरूप है, उसका फल भी दुःख है, ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। ज्ञानतत्त्व अधिकार है न! भगवान ज्ञानस्वरूप, चैतन्यस्वरूप ध्रुव शुद्ध है। तो उसका शुद्धपना जो है, पर्याय में शुद्धपना होता है, वह तो बराबर उचित है और वह तो मोक्ष का कारण है। परन्तु शुद्ध उपयोग अथवा शुद्धभाव से विरुद्ध भाव शुभ या अशुभ, दोनों अशुद्ध हैं, वे आदरणीय नहीं। दुःखरूप है, इसलिए हेय है, ऐसा सिद्ध करना चाहते हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि वह शुभ उपयोग कहाँ-कहाँ होता है? वह समस्त ही शुभ उपयोग छोड़नेयोग्य है, ऐसा कहते हैं। **सर्व दोषरहित परमात्मा...** ६९। (गाथा) ६९ का भावार्थ। **सर्व दोषरहित परमात्मा...** वापस परमात्मा कैसे? कि वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर, ऐसा। परमात्मा सर्वज्ञदेव वीतराग निर्दोष परमात्मा। भाषा इसलिए प्रयोग की है। समझ में आया? वीतराग परमात्मा के बदले निर्दोष—दोषरहित परमात्मा। क्योंकि जितने राग-द्वेष, अज्ञान है, वे सब दोष हैं। है संस्कृत में। भाई का जयसेनाचार्य का। **'देवता निर्दोषिपरमात्मा',** नीचे अन्तिम लाईन जयसेनाचार्य में। यह निर्दोष परमात्मा अर्थात् वीतराग परमात्मा। अर्थात् कि जिन्हें राग और द्वेष का और अज्ञान का कण नहीं, परन्तु पूर्ण दशा जिन्हें वीतराग निर्दोष प्रगट हुई है, ऐसे परमात्मा। उन परमात्मा की व्याख्या कही। ऐसे परमात्मा की पूजा, भक्ति, स्तुति भी शुभभाव है, पुण्यभाव है; धर्मभाव नहीं। समझ में आया? जो वीतराग निर्दोष परमात्मा से विरुद्ध है, ऐसे देव को मानने से तो अशुभभाव है, परन्तु ऐसे परमात्मा की भक्ति और पूजा से भी शुभभाव है। एक बात।

दूसरी। **भेदाभेद रत्नत्रय के स्वयं आराधक...** गुरु। आचार्य और उपाध्याय लेना है। भेदाभेद रत्नत्रय अर्थात् जिन्हें निश्चय दृष्टि ज्ञानस्वरूप आनन्द ऐसा आत्मा निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान, निश्चय चारित्र, वह आत्मा वीतरागस्वरूप के आश्रय से निश्चय दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ है और उसमें कुछ राग बाकी है, इसलिए उसे देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का भी राग है। तो वह निश्चय और व्यवहार अथवा भेदाभेद रत्नत्रय के जो आराधक हैं, ऐसे जो आचार्य और उपाध्याय गुरु, उनकी पूजा और स्तुति से भी शुभभाव होता है। समझ में आया? वह शुभ पुण्य है। ऐसे आचार्य और उपाध्याय सर्वज्ञ वीतराग मार्ग के निश्चय और व्यवहार के धर्म के अन्तर आराधक, ऐसे जीवों की सेवा, पूजा, भक्ति, वह भी शुभभाव है; धर्म नहीं, शुद्ध उपयोग नहीं। समझ में आया?

तीसरा। **इन्द्रियजय करके शुद्धात्मस्वरूप में प्रयत्नपरायण वे यति हैं।** यह मुनि लिये हैं। उसमें देव, अरिहन्त आदि लिये। इसमें (दूसरे में) लिये आचार्य, उपाध्याय, इसमें मुनि। मुनि तो स्वयं शुद्धात्मस्वरूप में प्रयत्नपरायण है। इन्द्रियजय करके। साधु तो अपने स्वरूप में इन्द्रियजय (करके) अतीन्द्रिय में तत्पर, अतीन्द्रिय आनन्द में तत्पर हैं। समझ में आया? साधु। ऐसे साधु जो प्रयत्न आत्मा के आनन्द और ज्ञानमूर्ति में साधते हैं, स्वरूप का साधन करते हैं, ऐसे यति। यति अर्थात् स्वरूप में यत्न करनेवाले, स्वरूप की रक्षा करनेवाले। स्वरूप आत्मा के आनन्द की रक्षा करनेवाले। उनकी भक्ति, पूजा भी शुभभाव है। समझ में आया? अथवा ऐसे साधु या वे आचार्य, उपाध्याय उन्हें भी आहारादि देने से शुभभाव होता है। समझ में आया? कहो, भीखाभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : गिरनार। जूनागढ़। वहाँ वे कहते थे कि हमारा हेतु तो भगवान की भक्ति का वीतरागता का है। परन्तु तुम्हारा हेतु, भक्ति करो, वह भाव ही शुभ है। वीतराग कहाँ से आ गयी वहाँ? वीतरागता तो आत्मा के आश्रय से प्रगट होती है। इसलिए हम इसमें कल्याण मानते हैं। वह मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। हाय... हाय..! तब चर्चा हुई थी वहाँ अपने बहुत उन भाई—नेमिचन्दभाई के साथ। वे डॉक्टर के भाई। वीरचन्दभाई के भाई। आप कहते हो कि शुभभाव है, शुभभाव पुण्य है। परन्तु हमारे कहाँ शुभभाव चाहिए है? हम तो भगवान से माँगते (हैं), वीतरागभाव है हमारा। परन्तु

यह भगवान की भक्ति और स्मरण, वही शुभभाव है। वहाँ वीतरागता आयी कहाँ से? आहाहा! समझ में आया?

यहाँ शुभभाव की स्थिति बताते हैं कि इतने-इतने स्थान में शुभभाव होता है, वह सब पुण्यबन्ध का कारण है। स्वर्गादि के सुख मिलें, वह भी वहाँ दुःख है। स्वर्ग के सुख, वह सुख नहीं, ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। समझ में आया? ऐसे शुभभाव में पुण्य बँधता है, पुण्यबन्ध में ऐसे स्वर्ग आदि के सेठाई के पैसे आदि मिलें और वहाँ दुःखी होगा बेचारा, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : .... छोड़ देना चाहिए। आप कहते हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टि में उसका आश्रय छोड़कर आत्मा का आश्रय करना।

मुमुक्षु : उसमें कुछ समझ में नहीं आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा भाव होता है परन्तु वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। उससे हित नहीं। वह शुभभाव पुण्य बँधता है, पुण्य का अस्तित्व है, ऐसा सिद्ध करेंगे। उसके फलरूप से इन्द्रादि के सुख मिलें, परन्तु वह कहाँ सुख है? वह तो दुःख है, आकुलता है। शरीर को पोसता है, इन्द्रियों को पोषे, वह तो सब आकुलता है। उसमें अशुभ से भिन्नता रहती है कहाँ? ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया? आहाहा!

भगवान! यहाँ तो ज्ञानतत्त्व अधिकार है। ज्ञानतत्त्व अर्थात् चैतन्य ज्ञानस्वरूप है। उसका अन्तर में ज्ञानतत्त्व का आश्रय करके जो ज्ञानपने की श्रद्धा, ज्ञान का ज्ञान और ज्ञान की रमणता, वह उसका भाव सही। समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! जगत दूसरा करना चाहे, इससे कहीं दूसरा हो, ऐसा नहीं है। परमात्मा तीन लोक के नाथ वीतराग परमेश्वर ऐसा कहते हैं कि भाई! हमारी जो भक्ति और पूजा, उसे भी हम (तेरा) शुभभाव कहते हैं। हमारे सामने देखने से तुझे शुद्धभाव प्रगटेगा नहीं। कहो, समझ में आया? ऐसा मार्ग है। 'ऐसा मार्ग वीतराग का भासित श्री भगवान।' आहाहा! समझ में आया?

आराधना के अर्थी अन्य भव्य जीवों को जिनदीक्षा देनेवाले वे गुरु हैं;... ऐसा। वे आचार्य-उपाध्याय डाले हैं न। अन्य जीवों को **भव्य जीवों को जिनदीक्षा देनेवाले...** देखो! जिनदीक्षा अर्थात् वीतराग दीक्षा। ऐसे गुरु की भक्ति और पूजा, वह भी शुभभाव

है। और मुनि की यत्ना, यह बात आ गयी। **ऐसे देव-गुरु-यति की अथवा उनकी प्रतिमा की पूजा में,...** जयसेनाचार्य में है प्रतिमा। ऐसे देव जो वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा निर्दोष, जिन्हें दोष जरा भी नहीं और गुरु कि जो आचार्य और उपाध्याय जो दूसरे को शिक्षा-दीक्षा देनेवाले, शिक्षा-दीक्षा देनेवाले... समझ में आया? और यति। **इन्द्रियजय करके शुद्धात्मस्वरूप में प्रयत्नपरायण वे यति हैं।** समझ में आया? देखो! अन्तर किया दोनों में। वे मुनि आचार्य-उपाध्याय दीक्षा-शिक्षा देनेवाले हैं। मुनि को यह कुछ है नहीं। मुनि तो अपने स्वरूप का आराधन करते हैं, बस।

और ऐसे **देव-गुरु-यति की अथवा उनकी प्रतिमा...** देखो! उनकी प्रतिमा का अर्थ तीनों की प्रतिमा हुई, भाई! आहाहा! देव की प्रतिमा, आचार्य-उपाध्याय की प्रतिमा और गुरु-साधु की भी प्रतिमा-मूर्ति होती है। समझ में आया? यह पूजा में... उस प्रतिमा की पूजा, देव-गुरु आदि की भक्ति आदि वह सब शुभभाव है। भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा की या पंच परमेष्ठी की प्रतिमा की पूजा, वह भी शुभभाव है; संवर-निर्जरा नहीं। समझ में आया? कहो, लखतर! क्या नाम? कंचनलाल! यह ऐसा है कंचन। सोना को दाग नहीं होता, उसी प्रकार शुद्ध स्वरूप में ऐसा भाव है, वह दाग है, दोष है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! वीतरागमार्ग तो ऐसा है, भाई! उसे इसने श्रद्धा में लिया नहीं। भाव होता अवश्य है, परन्तु वह भाव बन्ध का कारण है, पराश्रय से जितने विकल्प उठें, वे सब ही बन्ध कारण हैं। आत्मा के हित के कारण जरा भी नहीं, लो! आहाहा! समझ में आया?

'**आहारादिचतुर्विधदानं**' ठीक! साधु, आचार्य, उपाध्याय, उन्हें आहार देना, पानी, आता है न औषध इत्यादि। उस दान में भी शुभभाव है। कोई कहे कि मुनि को धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि आराधक शुद्ध चैतन्य के आराधक, सच्चे साधु को आहार देने से भी संसार परित होता है। यह बात सत्य नहीं (कि) संसार घटे, थोड़ा तो घटे। कहो, समझ में आया? आहाहा! गजब! श्वेताम्बर शास्त्र में यह ऐसा बहुत आता है। मिथ्यादृष्टि देनेवाला हो और समकिती आराधक सच्चे साधु हों, उन्हें आहार-पानी दे तो संसार को तोड़ डाले। ऐसे शास्त्र के पाठ बहुत हैं। विपाक (सूत्र) पूरा। वह शास्त्र वीतराग के कहे हुए नहीं। आहाहा! समझ में आया?

जो परद्रव्य को देने से कुछ संसार (परित) अर्थात् अभाव होता है, (ऐसा कहे), वह बात वीतराग के घर की नहीं। वह बात खोटी है। उत्साह नहीं रहे फिर इसमें। ऐई! भाव होता है, परन्तु वह परद्रव्य आश्रय से भाव है, भाई! अन्तर के आश्रय का भाव है, उसमें यह बात अन्तर विघ्न है। होता अवश्य है परन्तु वह पुण्यबन्ध का कारण है, शुभभाव है। उससे पुण्य होगा और उससे संयोग मिलेंगे। उसे स्वभाव नहीं मिलेगा। स्वभाव में साधन भी वह हो नहीं सकेगा। ऐसी बात है। समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पुण्य में अन्तर इतना कि यह शुभ है, इसलिए अनुकूल साधन मिले। कहो, पुण्य में दूसरा अन्तर क्या? पुण्य दोनों समान। शुभ और अशुभ दोनों समान, यहाँ तो ऐसा कहते हैं। वह शुभ और अशुभ दोनों समान। दोनों संयोग देते हैं और दुःखी होगा, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

मुमुक्षु : संयोग अच्छे।

पूज्य गुरुदेवश्री : संयोग अच्छे की व्याख्या क्या?

मुमुक्षु : .... सुनने का मिला।

पूज्य गुरुदेवश्री : वाणी आदि तो संयोग है, वह कहीं आत्मा को शुद्धता का कारण है?

मुमुक्षु : न सुने तो वह शुद्धता का कारण है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सुने, वह शुद्धता का कारण नहीं। सुनने में भी शुभ उपयोग है। कहो, पूर्व के पुण्य के कारण मिले, वह अलग वस्तु है, परन्तु सुनने का भाव है, वह शुभ है। सुनने का मिला, इसलिए वहाँ सम्यग्दर्शन होता है? कहो। कुछ चले ऐसा नहीं इसमें कहीं।

मुमुक्षु : न्याय है....

पूज्य गुरुदेवश्री : न्याय है परन्तु हमारे... ऐसा वापस। आहाहा!

सच्चिदानन्दस्वरूप स्वयं ज्ञानानन्द ज्ञानभाव, आनन्दभाव। ज्ञानतत्त्व अधिकार है

न। तो ज्ञानतत्त्व जहाँ राग में रुकता है, ज्ञान ज्ञान में रुके, वह तो वास्तविक है, वह तो मोक्ष का कारण है, ऐसा कहते हैं। ज्ञानस्वरूप भगवान अपने स्वरूप में रुके, वह तो मोक्ष का कारण है, परन्तु वह ज्ञानतत्त्व जो परज्ञेय हैं, उनमें रुके और उसमें शुभभाव हो, वह मोक्ष का कारण नहीं। यह प्रवचनसार और इसमें ज्ञानतत्त्व अधिकार। समझ में आया? व्यवहार से विशेष है, हों! ऐसा कहेंगे अन्दर संस्कृत में। चेतनजी! परमार्थ से कोई अन्तर नहीं। भेद कहा जाता है न, भाषा तो कही जाती है न। कहो, समझ में आया? यह व्यवहार से भेद है। परमार्थ में एक ही वस्तु है। शुद्ध उपयोग से विरुद्ध भाव, वह सब एक ही भाव है।

ऐसे देव-गुरु-यति की और उनकी प्रतिमा की पूजा। कोई ऐसा कहे कि भगवान की मूर्ति की श्रद्धा-दर्शन करने से आत्मा को सम्यग्दर्शन होता है, उससे होता है, उसके सामने देखने से होता है, यह बात सच्ची नहीं है। यह शास्त्र लिखना या शास्त्र वाँचना, शास्त्र में सुधार करना, उस भाव में कहीं आत्मा को संवर-निर्जरा हो, यह बात जरा भी नहीं है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? परवस्तु है, वह शास्त्र। अब उसमें शास्त्र अपने सुधारते हैं, प्रभावना का हेतु है और उसमें से निर्जरा होगी। धूल भी नहीं होगी, ऐसा कहते हैं। आहाहा! जितनी परद्रव्य आश्रय की प्रवृत्ति, उसमें आत्मा को संसार का अभाव, उसमें से होगा नहीं। एक ही सिद्धान्त। चाहे तो सम्मेदशिखर हो या चाहे तो भगवान का समवसरण हो। देखो न, कितना स्पष्ट किया है!

आहारादिक चतुर्विध दान में,... लो! समझ में आया? वापस अब विशेष स्पष्टीकरण करते हैं। **आचाराङ्गादि शास्त्रों में कहे हुए शीलव्रतों में...** ठीक! वीतराग परमेश्वर ने व्यवहार जो शास्त्र है, उनमें कथित। है न? शील अर्थात् स्वभाव प्रकृति आदि होती है न? वे चार अणुव्रत और महाव्रत। व्रतों में और उनके साथ यह क्या कहा जाता है? आठ व्रत। सातवाँ और आठवाँ व्रत आदि है न, वे सब शीलव्रत कहलाते हैं। उन शील और व्रतों में जो भाव होता है, आचारांग आदि शास्त्र में। देखो! पाठ में अन्दर है, हों! '**आचारादिकथितशीलव्रतानि**' लो, संस्कृत में है। शील अर्थात् पाँच व्रत और ऊपर यह जो सात है न, छठवाँ, सातवाँ, आठवाँ, नौवाँ, वे सब शीलव्रत कहलाते हैं। गुणव्रत, शीलव्रत आता है न। वे सब श्रावक के बारह व्रत हैं और मुनि के पंच महाव्रत

आदि जो आचारांग शास्त्र में भगवान ने कहे हुए, वे भी शुभ उपयोग है, शुभराग है। समझ में आया?

आचाराङ्गादि शास्त्रों में... देखो, उसमें से कहना है। **शीलव्रतों में तथा उपवासादिक तप में...** लो! उपवास करना, एक अपवास, दो अपवास, तीन अपवास, चार अपवास, महीने के अपवास, सोलह भठ्ठा अपवास, आठ-आठ दिन के चारों आहार के त्यागरूप अपवास। वह सब शुभभाव है। अपवास, वह धर्म नहीं। भगवानजीभाई! तो यह अपवास है, वह तो तप है और तप है, वह निर्जरा है।

मुमुक्षु : निर्जरा कहलाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहलाती है। कहते हैं अभी। यह अपवास-बपवास निर्जरा नहीं, ऐसा कहते हैं। आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञानानन्द ज्ञानतत्त्व ज्ञानस्वरूप, उसमें एकाकार होकर शुद्धता प्रगट करे, वह निर्जरा है। यह अपवास करूँ एक, दो, तीन, पाँच, पच्चीस, महीने, दो महीने के, देखो न, यह संवत्सरी के कितने अपवास किये होंगे उन लोगों ने। धमाधम चली है। शोभायात्रा निकालना, ओहोहो! तपस्यायें की इन्होंने। वह तो दृष्टि तो मिथ्यात्व है, परन्तु उसके साथ वह भाव है जो राग की मन्दता हो तो मिथ्यात्वसहित पुण्य बाँधे। समझ में आया? धर्म माने। मनानेवाले ऊपर बैठनेवाले मनावे। ओहोहो! तुमने तो बहुत किया। अपवास किये, तुम्हारे निर्जरा हो। यह कहनेवाले और करनेवाले दोनों मिथ्यादृष्टि हैं। कहो, समझ में आया?

आचाराङ्गादि शास्त्रों में कहे हुए शीलव्रतों में तथा उपवासादिक... अर्थात् ऊनोदरी, रसपरित्याग, कायक्लेश इत्यादि-इत्यादि। उसमें **प्रीति का होना, वह धर्मानुराग है।** उसका झुकाव है न उसमें, इसलिए प्रीति, वह धर्मानुराग है। धर्मानुराग अर्थात् पुण्य। धर्मानुराग अर्थात् धर्म का प्रेम। **जो आत्मा, द्वेषरूप और विषयानुरागरूप अशुभोपयोग को पार करके...** लो! जो कोई आत्मा द्वेषभाव को छोड़कर विषय का अशुभभाव भी छोड़कर इस **धर्मानुराग को अङ्गीकार करता है, वह शुभोपयोगी है।** शुभभाववाला है, पुण्यभाववाला है। कहो, समझ में आया?

मुमुक्षु : दुःखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह परिणाम ही दु:खरूप है। अरे.. अरे! भारी कठिन बात! यह स्पष्टीकरण जयसेनाचार्य की टीका का है। मूल पाठ में तो अपने आ गया है। यह सब शुभ उपयोग के साधन की बात की। वे सब शुभ उपयोग हैं। आहाहा!

★ ★ ★

गाथा - ७०

अब, इन्द्रियसुख को शुभोपयोग के साध्य के रूप में... भाषा देखो! **(अर्थात् शुभोपयोग साधन है और उसका साध्य इन्द्रियसुख है ऐसा) कहते हैं** - शुभ उपयोग से तो इन्द्रिय के संयोग मिलते हैं। उसमें कहीं आत्मा को शान्ति मिले या आत्मा को सुख मिले या सम्यग्दर्शन (हो, ऐसा) तीन काल में होता नहीं। आहाहा! समझ में आया? जो आत्मा **इन्द्रियसुख को शुभोपयोग के साध्य के रूप में...** इन्द्रियसुख है, ऐसा कहते हैं अर्थात् बताते हैं। (गाथा) ७०।

जुत्तो सुहेण आदा तिरिओ वा माणुसो व देवो वा।
भूदो तावदि कालं लहदि सुहं इंदियं विवहं॥७०॥

आत्मा शुभ-उपयोग युक्त हो, मनुज-देव-तिर्यंच बने।
जबतक आयु रहे इन्द्रिय सुख, विविध भाँति के प्राप्त करे॥७०॥

इसका **अन्वयार्थ :- शुभोपयोगयुक्त....** ऊपर कहे, वे सब परिणाम। देव की, गुरु की, शास्त्र की भक्ति प्रतिमा इत्यादि। यह पंच कल्याणक के भाव इत्यादि... इत्यादि... समझ में आया? वह सब शुभभाव है। कहो, यह मन्दिर बनाने में, उसमें पैसा देने में, दान करने में, वह सब शुभभाव है।

मुमुक्षु : बहुत मन्दिर हुए हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत मन्दिर हुए हैं तो किसी ने किये हैं? अभी तो यह होते हैं न। होनेवाले हैं न दो तो अभी। मुम्बई। मलाड का तो मुहूर्त हो गया कार्तिक शुक्ल छठवीं को। यह मागसर बारस को होगा। यह तो होने की क्रिया होती है। उसमें जो किसी का भाव हो शुभभाव, तो वह पुण्यबन्ध का कारण है। निश्चय का भान होने पर

भी जब तक अन्तर में स्थिर नहीं हो सकता, तब उसमें उसे हेयबुद्धि से ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। तथापि वह आचरण करनेयोग्य है और आत्मा के हित के लिये है, ऐसा नहीं। आहाहा! इसलिए कोई उसे उत्थापे कि वह होता ही नहीं, ऐसा शुभभाव होता ही नहीं। क्योंकि आदरनेयोग्य नहीं, इसलिए किसलिए शुभभाव? परन्तु ऐसा भाव होता है। समझ में आया? उसका अस्तित्व सिद्ध करेंगे। अस्तित्व है। यह तो दूसरे प्रकार से सिद्ध करेंगे। उसके पुण्यफल ऐसे हैं, यह सिद्ध है। उससे क्या है? समझ में आया?

सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के भान के काल में भी ऐसा शुभभाव होता है व्यवहार से। जब तक निश्चय स्वभाव का आश्रय पूरा हुआ नहीं, तब तक ऐसा भाव होता है। परन्तु वह भाव है, वह हेय, दुःखरूप और हेय है। इसलिए कोई ऐसा माने कि वह भाव है, वह मोक्ष का कारण है, वह खोटा और कोई ऐसा माने कि यह तो खोटा हेय है, इसलिए मुफ्त के ऐसे भाव में जुड़ता है। परन्तु वह भाव आये बिना रहता नहीं। इसलिए वह भी अभी खोटा है। जो समझते नहीं उसकी भूमिका को। यहाँ तो इनकार करते हैं और फिर कहे कि करे। करे कौन? सुन न! वह भाव शुभभाव उसकी भूमिका के योग्य होता है, आता है। न ही आवे, जिसे देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का प्रेम आदि, वह शुभभाव आता नहीं तो उसे धर्म की दृष्टि का भान ही नहीं। समझ में आया? अल्प काल हो और न आवे और चला जाये, परन्तु बहुत काल रहे, अशुभभाव बहुत आवे और उसे कहे कि नहीं, नहीं ऐसा भाव होता नहीं, तो वह वस्तु को समझता नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **शुभोपयोगयुक्त आत्मा तिर्यञ्च,...** में जाये। लो! वह जुगलिया हो जुगलिया बड़ा अच्छा। पल्योपम के आयुष्यवाला, दो पल्योपम के यहाँ है न। वह बड़े हाथी नहीं होते अमेरिका में दो-दो लाख के। उनके ऊपर डॉक्टर बड़े-बड़े होते हैं, लो! वे सब पुण्य के फल हैं शुभ उपयोग। समझ में आया? डॉक्टर जाँच करे, हों! बड़े दो-दो लाख के घोड़े, तीन-तीन लाख के घोड़े होते हैं न वे, क्या कहलाते हैं? रेस के-शर्त के घोड़े दो-दो लाख के, तीन-तीन लाख के। उनके ऊपर तो बड़े डॉक्टर हों, उनकी उसमें (देखभाल में) दौड़कर आवे तब कितना हुआ? दौड़ने जाये तब कितनी अनुकूलता है, उस मनुष्य की नाड़ी देखे और ऐसा वह सब देखे। कहो, कितना पुण्य! कहते हैं, उस शुभभाव के फल में ऐसा ढोर होगा।

मुमुक्षु : पहला ही ढोर?

पूज्य गुरुदेवश्री : पहला ढोर लिखा है इन इसमें? तिर्यंच पहले लिखा है। परन्तु वह शुभभाव है, उसे सुविधा, परन्तु उससे आत्मा को क्या उसमें? समझ में आया?

मनुष्य... होता है। पैसावाला आदि, अच्छे पुण्य के फल। **अथवा देव...** होता है, लो! नारकी तो पाप से होता है। **देव होकर, उतने समय तक...** ऐसा वापस। '**तावत्कालं**' इतना काल। जितनी पुण्य की स्थिति बँधी होती है, उतना काल। **उतने समय तक विविध इन्द्रियसुख प्राप्त करता है।** लो, यहाँ तो सुख पाता है, ऐसा कहा शास्त्रकार ने, लो! इतना काल।

मुमुक्षु : अनेक प्रकार का।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनेक अर्थात् अनन्त प्रकार का। विविध का अर्थ अनन्त प्रकार है। उसमें अनन्त प्रकार है। ७० है न!

मुमुक्षु : '**देवत्वभूमिकानाममन्यतमां**' १२२ पृष्ठ पर पहली लाईन।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, वह तो है उसमें। अनेक प्रकार का कहीं है। '**विविहाणि**' का अर्थ है न कहीं। ख्याल में था। 'विविध' ७० में है न? ७० में। पूर्वोक्त शुभ उपयोग ठीक उसमें नहीं। कहीं है अवश्य। '**विविहाणि**' अनेक प्रकार की, लो! समझ में आया?

मुमुक्षु : हिन्दी में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हिन्दी में होगा। है अवश्य कहीं शब्द आया है। आयेगा। विविध प्रकार के इन्द्रिय के सुख।

टीका :- यह आत्मा इन्द्रियसुख के साधनभूत शुभोपयोग की सामर्थ्य से... देखो! इन्द्रियसुख के कारणरूप शुभ उपयोग है। आत्मा के अतीन्द्रिय आनन्द के सुखरूप से कारण नहीं। है न? यह अनन्त भेद है कहीं। कहीं है अवश्य। यह ... लो यह। '**विविहाणी स्वकीयानन्तभेदेन बहुविधानि**' है, १२६ पृष्ठ पर है। जयसेनाचार्य की टीका का अन्तिम शब्द। '**विविहाणि स्वकीयानन्तभेदेन बहुविधानि**' नीचे की लाईन है अन्तिम। है। पीछे के अर्थ में है। ७४ गाथा है न वह तो। ७४ में आता है न? '**विविहाणि**' अन्तिम शब्द है न। वहाँ '**विविहाणि**' आता है। उसका अर्थ किया है।

क्या कहते हैं? तिर्यंच में बैल हो, घोड़ा हो पुण्य के फल में। जुगलिया हो। जुगलिया बड़े हैं न। उसमें हो शुभभाव के फल में। इतना काल जरा सुविधा माने, देखे। मनुष्य हो। देखो न, यह पैसे कितने ही ऐसा कहते हैं न कि यह अमेरिका में सब ऐसा कैसे? ऐसी बहुत बातें करते हैं कितने ही। और यह अपने हिन्दुस्तान में,... वहाँ तो बड़े अरबोंपति, वहाँ तो ऐसा, आयुष्य बड़ा। ८०-८० वर्ष में तो लो ऐसे समझे न जवान मनुष्य जैसे दिखाई दें। अपने काठियावाड़ में क्यों नहीं? हिन्दू तो ऐसा कितने ही पूछते हैं। अब ऐसे शुभ परिणाम का योग ऐसे स्थान में वहाँ उत्पन्न हुए हैं, बाहर के स्थान ऐसे हों कोई, परन्तु उसमें क्या है? विविध प्रकार कहे न? अनेक प्रकार के होते हैं। वहाँ ऐसा कि अपने यहाँ थोड़ा, वहाँ आयुष्य बड़ा। एक व्यक्ति कोई कहता था। वहाँ आयुष्य बड़ा है। साधन बराबर होंगे, इसलिए या नहीं? अपने यहाँ साधन नहीं। वहाँ तो साधन... ८०-८० वर्ष के, ७०-७० वर्ष के तो विवाह करते हैं। कौन?

मुमुक्षु : अनार्य।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अलग बात है। वह और अलग बात है। यह तो ऐसा कि ऐसे शरीर निरोगी। समझे न? कौन कहता था? कोई कहता था। ऐसा है वहाँ। वहाँ का जानेवाला कोई कहता था विलायत का बाहर का। वहाँ ऐसा दिखता है। वहाँ तो ऐसा होता है... ऐसा होता है... क्या है परन्तु अब कहा उसमें? उस जाति के पुण्य का योग विविध प्रकार का है तो वहाँ पुण्य के कारण से शुभभाव में ऐसी स्थिति होती है। किसी को मनुष्य की स्थिति होती है, पैसा होता है, कीर्ति होती है, ८०-८० वर्ष तक रोग न हो। ऐसा हो। विविध प्रकार के पुण्य के अनेक प्रकार हैं, परन्तु उससे आत्मा को क्या? समझ में आया? यहाँ आहार करके घूमते थे और उसमें कोई बोलता था। परदेश जानेवाला।

मुमुक्षु : वे भाई आये थे न, वे कहते थे।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ वे। वह कोई कहे नीति बहुत हो। वह यहाँ आहार के समय कहते थे। नैतिक काम हो। कोई किसी का छुए नहीं, फलाना, ढींकणा। कौन कोई था। यह सच्ची बात है। वह आहार के समय। ऐसा वहाँ होता है। क्या है परन्तु? कहा, तुझे कितनी महिमा करनी है इसमें? उसे ऐसा, आहाहा! वहाँ तो नैतिक, कोई

छूए नहीं, चोरी करे नहीं, फलाना करे नहीं, ढींकणा करे नहीं। समझ में आया? ८०-८० वर्ष के मनुष्य....

मुमुक्षु : गोलियों से मार डालते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : उड़ा देते हैं। वह बड़ा कैसा? प्रमुख को उड़ा दिया एकदम। अब वहाँ क्या है परन्तु? और जहाँ तक लगे जरा शरीर अच्छा लगे, बड़े घोड़े जैसा लगे। हाथ में लकड़ी न! ओहोहो! कहते हैं कि विविध प्रकार के शुभभाव हैं, अनेक प्रकार के पापानुबन्धी पुण्य बाँधा हो (तो) उसे कोई ऐसा प्रकार मिले। समझ में आया?

इन्द्रियसुख के साधनभूत शुभोपयोग की सामर्थ्य से... देखो! शुभ उपयोग के सामर्थ्य। **उसके अधिष्ठानभूत (इन्द्रियसुख के स्थानभूत-आधारभूत ऐसी) तिर्यञ्च, मनुष्य और देवत्व की भूमिकाओं में से...** देखो! वापस इन **भूमिकाओं में से किसी एक भूमिका को प्राप्त करके...** श्रीमद् भी यह लिखते हैं, जब कोई फलाने देवादि की भूमिकायें बहुत हैं, उनमें किसी भूमिका को प्राप्त हुए। कहो, समझ में आाय? **भूमिकाओं में से किसी एक भूमिका को प्राप्त करके...** बहुत प्रकार मनुष्य में, तिर्यंच में, देव में, भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिषी आदि। समझ में आता है? ऐसे शुभभाव की भूमिका पाकर **जितने समय तक (उसमें) रहता है, उतने समय तक अनेक प्रकार का इन्द्रियसुख प्राप्त करता है।** उसमें आत्मा को क्या हुआ उसमें? इन्द्रियसुख का संयोग हो तो उसकी ओर लक्ष्य जाता है, वह तो पापभाव है। समझ में आया? तृष्णा के उत्पन्न करनेवाले है, ऐसा कहेंगे आगे। वह पुण्यभाव तृष्णा उत्पन्न करे। आत्मा को शान्ति देनेवाला नहीं।

जितने समय तक (उसमें) रहता है, उतने समय तक अनेक प्रकार का इन्द्रियसुख प्राप्त करता है। उसमें आत्मा की शान्ति कहाँ आयी? ऐसा कहते हैं। आत्मा की शान्ति तो आत्मा आनन्दमूर्ति की अन्तर दृष्टि करके स्थिर हो, उसमें शान्ति है। उसका नाम धर्म है। बाकी यह शुभभाव से बाहर अनेक भूमिका मिले, उसमें आत्मा को क्या? साधन अच्छे मिलें। लो! ...भाई! साधन अच्छे मिलें कहना किसे? समवसरण मिले, भगवान की वाणी मिले। यह तो कहते हैं न, उसकी तो बात आ गयी। परसन्मुख के लक्ष्यवाला परोक्ष ज्ञान भी दुःखरूप है। कहो। भारी कठिन बात! साधन हो शुभभाव की भूमिका के उस प्रकार के साधन हों। उस परसन्मुख का लक्ष्य करता हुआ जो ज्ञान करता है, वह

ज्ञान परोक्ष ज्ञान है और परोक्ष ज्ञान, वह दुःखरूप है, हेय है। उस ज्ञान से भी आत्मा को कुछ लाभ नहीं। यह वाणी मिली और उसमें से ज्ञान हुआ अपने से पर्याय में। उससे भी आत्मा को लाभ नहीं, ऐसा कहना है। आहाहा! ज्ञानतत्त्व अधिकार है न। वह ज्ञान यह नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा!

भगवान आत्मा चैतन्य आनन्दस्वरूप है, उसका अन्तर आश्रय करके जो ज्ञान और आनन्द प्रगटे, वह वास्तविक ज्ञान और वास्तविक आनन्द वह धर्म। समझ में आया? बहुत देशाटन करते हैं। करते हैं न? विविध बुद्धि आवे बड़ी। पाँच-पाँच लाख खर्च करके नहीं बड़ा निकालते हैं। लड़के २००-३००-४००-५०० एक साथ हजार-हजार। क्या कहलाये तुम्हारी रेल को? पर्यटन करे। देशाटन—घूमे तो बुद्धि बढ़े। भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्य, भिन्न-भिन्न जाति की भाषा, भिन्न-भिन्न प्रकार के क्षेत्र, भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग, वस्त्र ऐसा सब देखे। बोलनेवाले उसका संग करे तो विविध बुद्धि हो। धूल में भी नहीं होती, सुन न अब। वह भी तेरा उघाड़ हो, उतना होगा, वह भी दुःखरूप है। इतना काल है न। काल तो अमुक है न, वहाँ कहाँ काल शाश्वत है? वह तो २५-५०-१००-५००-१००० वर्ष या अमुक लाख-करोड़ या दो सागरोपम लो न देव के। सागरोपम तक वह प्रकार मिले, उसमें आत्मा को क्या? दुःख की आकुलता के फोड़े हैं वे सब। आहाहा!

किसी एक भूमिका को प्राप्त करके जितने समय तक (उसमें) रहता है, उतने समय तक अनेक प्रकार का इन्द्रियसुख प्राप्त करता है।

★ ★ ★

गाथा - ७१

इस प्रकार इन्द्रियसुख की बात उठाकर, अब इन्द्रियसुख को दुःखपने में डालते हैं - पहले कहा सही, इन्द्रियसुख (ऐसी) भाषा की। आहाहा!

सोक्खं सहावसिद्धं णत्थि सुराणं पि सिद्धमुवदेसे।
ते देहवेदणट्टा रमंति विसएसु रम्मेसु॥७१॥

पहले भी यह '**रम्मेसु**' आ गया था अपने। यह भी '**रम्मेसु**' में आचार्य तो अर्थ

में ऐसा कहे '**रम्मेसु**' रम्याभासी। वहाँ भी रम्याभासी था जयसेनाचार्य में। आहाहा! '**रम्मेसु**' क्या संक्षिप्त शब्दों में कहना है इन्हें।

देवों को भी नहिं स्वभावमय सौख्य श्री जिनदेव कहें।
देह-वेदना से पीड़ित वे, रम्य विषय में सदा रमें॥७१॥

अन्वयार्थ :- (जिनेन्द्रदेव के) उपेदश से सिद्ध है कि... देखो! '**उपदेशे सिद्धं**' सर्वज्ञ वीतराग परमात्मा त्रिलोकनाथ के उपदेश में यह सिद्ध है कि **देवों को भी...** अब दूसरों की बात तो क्या करें? ऐसा कहते हैं। ऐसा। **देवों के भी स्वभावसिद्ध सुख नहीं है;...** समझ में आया? इसलिए इन देवों को नहीं, अर्थात् समकिती को नहीं, ऐसा नहीं, यहाँ तो सामान्य बात करनी है। समझ में आया? इन्द्रिय का सुख है, उसका निषेध करने के लिये सामान्य संसारी को सुख नहीं, ऐसा कहना है। समझ में आया? बाकी सम्यग्दृष्टि हैं, वे वास्तव में संसारी नहीं, यह बात अपने आ गयी है। नहीं? ईषतसिद्ध हैं। उसमें लिया है न यह? कि संसारी को नहीं। है न? ७१ है न? देखो! लेंगे यह। आगे लेंगे आगे। आगे लेंगे यह बाद में। उन संसारी को सुख नहीं। सब संसारी प्राणी कहलाते हैं। है कहीं है अवश्य। संसारी। बहिर्मुख संसार जीवानाम है, लो! यह ७४ में है।

'**देवेन्द्रप्रभूतिबहिर्मुखसंसारिजीवानामिति**' है। जयसेनाचार्य में है। ७४, ७४ गाथा में। यह १२७ पृष्ठ पर। '**बहिर्मुखसंसारिजीवानामिति**' चौथी लाईन है बीच में। क्या कहते हैं? देखो, इसमें अपेक्षा समझनी चाहिए। कहते हैं कि शुभ परिणाम के फलरूप से मिले, ऐसे (संयोगों में) संसारी जीवों को सुख नहीं, ऐसा कहना है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि है तो नरक में या पशु में या मनुष्य में या देव में वह अपना अन्तर स्वरूप जाना-अनुभव किया है, वह तो अतीन्द्रिय सुख तो उसे है। अतीन्द्रिय सुख है, परन्तु जो शुभ उपयोग के रूप से है, वह सुख संसारी को सच्चा है नहीं। ऐसी बात सिद्ध की है। ऐसा सिद्ध किया है।

संसारी प्राणी चाहे तो देव भी हो, स्वर्ग भी हो, परन्त शुभ परिणाम के उपयोगरूप का जो पुण्य बँधा और उसके फलरूप से है, उन सब जीवों को सुख है नहीं। ऐसा सिद्ध करना है। वापस इसमें से कोई ऐसा निकाले कि देखो, समकिती है और उसे अतीन्द्रिय सुख नहीं। यह यहाँ बात कहाँ करनी है? यहाँ तो शुभ उपयोग के फलरूप से है, वह

सुखी नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। कहीं का कहीं (लगा दे)। क्या करे? ऐसा कि छठवें गुणस्थान में ही सुख होता है। मुनि को हो, तब उन्हें सुख होता है अथवा शुद्ध उपयोग होता है आठवें में (तब सुख होता है।) अरे! भगवान! क्या करता है?

यहाँ तो क्या अपेक्षा सिद्ध करनी है? कि आत्मा जो है, वह शुद्ध आनन्दकन्द ज्ञानमूर्ति है, उसका अन्तर में दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो दशा हुई, वह तो आनन्दरूप है। अरे! चारित्र न हो परन्तु दर्शन-ज्ञान का स्वरूपाचरण भाव हो तो वह सुखरूप है। वह तो अतीन्द्रिय सुख है। समकिती नरक में हो, स्वर्ग में हो, पशु में हो। समझ में आया? परन्तु वह चार गति में... यहाँ तो सुख का वर्णन तो तिर्यंच, मनुष्य और देव में कहा। नारकी में तो है नहीं। इसलिए... उसमें भी—देव में भी प्राप्त सामग्री में पुण्य के फलरूप से, उसमें कुछ सुख नहीं। वह सुख संसारी को नहीं, ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि जीव हैं इन्द्र अभी। इन्द्राणी है समकिती, पहले देवलोक की इन्द्राणी। दोनों एकावतारी हैं, मोक्ष जानेवाले हैं, यहाँ अन्तिम देह मनुष्यपना पाकर दोनों जन—पति-पत्नी। उन्हें अतीन्द्रिय आनन्द का सुख है, परन्तु शुभभावरूप के जो यह साधन मिले, उनमें उन्हें सुख है नहीं, ऐसा कहना है। समझ में आया?

ज्ञानतत्त्व का जो आराधन किया है, वस्तु स्वरूप का अन्तर, इतना तो सुख सबको है। चाहे तो नारकी हो। परन्तु ज्ञानतत्त्व का आराधन छोड़कर जितना शुभभाव किया है, उस शुभभावरूप के इन्द्रिय के सुख में सुख है नहीं। समझ में आया? देखो न, कितना स्पष्टीकरण करते हैं! भाई! इतने तो सुखी हैं न देव। रोग नहीं जिन्दगी में, कितने हजारों वर्ष में आहार ले, श्वास भी कितने पखवाड़े में, ऐसा कुछ है न? पखवाड़े में श्वास ऊँचा लिया। श्वास ऊँचा लिया। देखो! सुखी हैं या नहीं? धूल भी नहीं, सुन न! शुभभाव पूर्व में किये थे, उनके फलरूप से यह मिला, परन्तु उसकी ओर का लक्ष्य करके है तो आकुलता वेदन, दुःख का वेदन है। समझ में आया?

(जिनेन्द्रदेव के) उपेदश से सिद्ध है कि देवों के भी स्वभावसिद्ध सुख नहीं है;... (किसमें)? उस शुभभावरूप से पुण्य मिला उसमें। समझ में आया? **वे (पञ्चेन्द्रियमय) देह की वेदना से पीड़ित होने से...** देखो यहाँ तो। '**देहवेदनार्ताः**' '**देहवेदनार्ताः**' राग होता है और शुभ परिणाम के फलरूप से राग हो। आर्त-पीड़ित है।

देह की वेदना से पीड़ित होने से रम्य विषयों में रमते हैं। रम्य आभास है, रम्य है नहीं। रम्य तो आत्मा रम्य है। भगवान आत्मा आनन्द का आराम का धाम है। उसमें अन्तर में एकाग्रता से रमे, वह आनन्द है। परन्तु यह रम्य जैसे दिखाई दे न बाहर में, ओहोहो! फूलझाड़, गलगलिया जैसा शरीर रूपवान, लाल एकदम लाल जैसा वैक्रियिकशरीर देखे तो ओहोहो! यह वह कौन है? अन्यमति को तो परमेश्वर जैसा लगे। वैकुण्ठ, वह सब देव। ऐसे देव का आयुष्य हो। असंख्य अरब वर्ष का आयुष्य हो। इसलिए तो उन्हें अमर कहा। परन्तु इतना काल न? वहाँ कहाँ (शाश्वत रहने का) है? आत्मा तो त्रिकाल है। इतना काल परसन्मुख के लक्ष्यवाला सुख है, वह दुःखी है। समझ में आया? कहो, भगवानभाई! ऐसी बात है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : ... में देव, उनका पर के ऊपर लक्ष्य जाता है, उतना शुभ का फल है सब। दुःख है वह। आत्मा के आश्रय से जितना आनन्द वर्तता है, वह सुख है। वह तो अतीन्द्रिय ज्ञान हुआ। वह तो परसन्मुख का झुकाव। मिथ्यादृष्टि को तो अकेला परसन्मुख का झुकाव है, इसलिए वह तो दुःखी, दुःखी और अकेला दुःखी है। समझ में आया? उसकी दृष्टि ही, आत्मा के स्वभाव का भान नहीं, पुण्य-पाप के ऊपर जिसकी दृष्टि है, विकल्प के ऊपर जिसकी दृष्टि है, वह तो अत्यन्त दुःखी, दुःखी और दुःखी। इन्द्रिय के अनुकूल पुण्य के फल मिले हों या न मिले हों तो भी दुःखी ही है वह तो। समझ में आया?

एक कहता था कि अब इतने देव के सुख तो भोगने दो। रामजीभाई थे वहाँ, नहीं? बोटाद। वह नागरका का। नागरका नहीं, क्या कहलाता है वह? नागलपर। बोटाद से दो कोस है न नागलपर विशाश्रीमाली। पहले सब थे। वह हड्डियों का काम नहीं करता था? सलोत। वे गुजर गये तो अब दूसरा है। एक थे। वे कहे कि, महाराज! तुम भी... शुभभाव यह करने से पहले स्वर्ग का सुख तो भोगेगा, फिर मोक्ष जायेगा। ऐसा कहते थे। और बोटाद संघाडा के वे पक्के श्रावक, हों! नागलपुर है वहाँ। पन्द्रह घर है वहाँ। सलोत सलोत कहलाता है वह। विशाश्रीमाली सलोत। हेमचन्द सलोत थे, वे गुजर गये और यहाँ वह एक बड़ा लड़का सलोत का लड़का।

मुमुक्षु : वर्धमान।

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्धमान नाम वह तो दूसरे का। वर्धमान तो दूसरे को कहा। वर्धमान! वह तो दूसरे को कहा। उसका नाम भूल गये। हेमचन्द सलोत से बड़े थे। दूसरा नाम था। मनुष्य खानदानी, हों! बहुत खानदानी मनुष्य नागरका के। बहुत बड़े थे, उनके पुत्र थे। वे हड्डियों का काम करते थे। आये थे व्याख्यान में एक बार। यह सुख तो भोगने दो देव को। कहो, देव का सुख। होली है वहाँ, सुन न! दुःख भोग यहाँ तो कहते हैं। वही कहा जाता है। इन्द्रिय के सुख की बात उठाकर इन्द्रिय के सुख को दुःख में डालते हैं। दुःखपने में डालते हैं। दुःख है, वहाँ सुख कब था? सुख तो आत्मा भगवान आनन्द से भरपूर आत्मा है। उस आनन्द का भरपूर, उसमें नजर डालने से जो आनन्द आवे, वह आनन्द है। बाकी सब दुःखी, दुःखी और दुःखी है। आहाहा! समझ में आया?

इसकी टीका। पंचेन्द्रियमय कहा। है इसमें शब्द पंचेन्द्रिय? '**देवादयो देहवेदनार्ताः पीडिताः कदर्थिताः सन्तो**' इतना। यह टीका में है? किसकी टीका? पंचेन्द्रिय? ठीक, इसलिए टीका में से लिया। देखो! **इन्द्रियसुख के भाजनों में प्रधान देव हैं;...** क्या कहते हैं? इन्द्रियसुख के स्थान में उत्कृष्ट तो देव हैं। ऐसा तो तिर्यंच और मनुष्य को भी होता नहीं। **उनके भी वास्तव में स्वाभाविक सुख नहीं है, उलटा उनके स्वाभाविक दुःख ही देखा जाता है;...** स्वाभाविक है न भाव उनका? सहज दुःखी हैं बेचारे। लाखों असंख्य देव। असंख्य देव हों उसे तो। एक-एक विमान में असंख्य देव होते हैं। खम्मा-खम्मा करते हों। ओहो! नाथ! आप बहुत पुण्य करके आये। ऐसा बोले वे देव, हों! दुःखी हैं, सुन न अब। पर इन्द्रिय की ओर उनका लक्ष्य जाता है। भगवान अतीन्द्रिय आनन्द है, उसका तो भान नहीं। और भानवाले को भी पर के ऊपर जितना लक्ष्य जाये, वह दुःखी है, ऐसा कहते हैं यहाँ पुण्यवाले को।

उनके भी वास्तव में स्वाभाविक सुख नहीं है, उलटा उनके स्वाभाविक दुःख ही देखा जाता है; क्योंकि वे पञ्चेन्द्रियात्मक शरीररूपी पिशाच की पीड़ा से... लो! आहाहा! पंचेन्द्रिय शरीर, सुन्दर आँख, सुन्दर कान, सुन्दर नाक, सुन्दर मुख, सुन्दर सब शरीर, हों! सुन्दर... सुन्दर... सुन्दर... सुन्दर... सुन्दर। समझ में आया? वह पंचेन्द्रियस्वरूप

शरीर, वह पिशाच की पीड़ा। शरीररूप पिशाच—भूत, यह शरीररूपी भूत। आहाहा! मिट्टी है हड्डियाँ है यह तो जड़। उसे वैक्रियिकशरीर होता है। **शरीररूपी पिशाच की पीड़ा से परवश होने से...** आहाहा! शरीर के विषय—ऊपर लक्ष्य जाता है न? रूप में, भोग में, गन्ध में। रस में उसे खाने का कहाँ है?

कहते हैं, **भृगुप्रपात के समान मनोज्ञ विषयों की ओर दौड़ते हैं।** भृगुप्रपात समान मनोज्ञ विषयों में दौड़ जाते हैं, ऐसे अन्दर। भृगुप्रपात है न? **अत्यन्त दुःख से घबराकर आत्मघात करने के लिये...** अपने यहाँ गिरनार में है। एक पत्थर इस ओर है और इस ओर में। बहुत ऊँचा अन्तिम। एकदम आधार रहित। किसी को मरना हो तो वहाँ जाकर गिरे तो तुरन्त मर जाये। यहाँ दिखता है दूर से। गिरनार में उस ओर में है। **अत्यन्त दुःख से घबराकर आत्मघात करने के लिये पर्वत के निराधार उच्च शिखर से गिरना।** गिरे अन्दर से। **भृगु = पर्वत का निराधार उच्चस्थान-शिखर;...** शिखर, लो! **प्रपात = गिरना; पछाड़।** ऊपर से पछाड़ मारे। इसी प्रकार यह मनोज्ञ विषय में पछाड़ मारे राग से। दुःखी है बेचारा। आहाहा! समझ में आया? शब्द, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वे सब मनोज्ञ पुण्य के फल में आये हों, पछाड़ खाता है। घात करके पड़े भू करके अन्दर। भगवान आत्मा क्या है, उसे भूल जाता है। ज्ञानी भी राग में आता है, परन्तु एकाकार नहीं होता। समझ में आया? उसका लक्ष्य जाये, वृत्ति जाये, परन्तु ज्ञानी उस वृत्ति से भिन्न रहते हैं। सम्यग्दृष्टि उस पाप के परिणाम से और पुण्य से भिन्न रहते हैं। समझ में आया?

और अज्ञानी तो उस पुण्य के फलरूप से देखकर कूद पड़ता है कि आहाहा! परमेश्वर ने दिया और अपने भोगो, भाई! और ऐसा कहे। परमेश्वर ने सब दिया। अज्ञानी ऐसा कहे। परमेश्वर ने यह सब पैसे दिये, हम खर्च करते हैं, बापू! ऐसा करके। तेरे खर्च करने में भी यदि शुभभाव हो तो पुण्य है और यदि अभिमान से करे कि हम खर्च करनेवाले हैं। दूसरे कौन हैं? अकेला पाप बाँधेगा। समझ में आया? यह तो शुभभाववाले की बात ली है। जिसने दान में पैसा (देने में) कषाय मन्द की होती है, स्वयं भाव किया होता है, उसके भावरूप से यदि इन्द्रिय के सुख मिले, उसमें भृगुप्रपात की भाँति गिरेगा वहाँ। विषय में कूदेगी दृष्टि, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहाहा!

भृगुप्रपात के समान मनोज्ञ विषयों... लो! ऐसे विषय, उसे कहा, समझ में आया? वह पत्थर के ऊपर से गिरे, ऐसे विषय कहे वह तो। आहाहा! इन्द्राणियाँ यह सब देखे न, सुन्दर... सुन्दर... सुन्दर... सुन्दर... कहाँ गये वे नहीं यहाँ? वह धर्मचन्दभाई। धर्मचन्दभाई हैं या नहीं? उन धर्मचन्दभाई के घर में ... व्यक्ति देखते। एक बार आये तो सब रूपवान। एक बार आये थे न, पूरा परिवार आया था। पूरा परिवार। उनकी वृद्धा रूपवान, स्वयं रूपवान, स्त्री रूपवान, लड़के सब गोरे (अंग्रेज) जैसे। यहाँ आठ दिन रहे थे एक बार। कहो, कंवरचन्दजी! खबर है? एक बार आठ दिन रहे थे। प्रेमचन्दभाई सब आये थे। फकीरभाई प्रायः। सब आये थे। सब सफेद चमड़ी रूपवान मानो। ओहोहो! और रावसाहेब का पद उनके पिता को। यहाँ रहे थे। आठ दिन रहे थे। क्या हुआ परन्तु उसमें? आहाहा!

मुमुक्षु : भाग्यशाली।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाग्यशाली है, भांग शाली। तम्बाकू चबाते हैं। गहरे-गहरे तम्बाकू से। समझ में आया? कहो, यह पुण्य के फल कैसे हैं, उसका वर्णन करते हैं। वह शुभभाव इन्द्रिय के सुख दे, परन्तु वह इन्द्रिय का सुख दुःख है, ऐसा अब सिद्ध करते हैं। समझ में आया? आँख जल जाये। चालीस करोड़ रुपये दशाश्रीमाली बनिया को। शान्तिलाल खुशाल। समझ में आया? आज बात निकली थी। भाई आये नहीं। धना लखा थे बोटाद में, नहीं? उसे पुत्री दी है न शान्तिलाल ने। धना लखा थे। ऐक्को का व्यापार करते थे। ऐक्को-ऐक्को रखते न। उसके पिता ऐक्को रखते थे। हमको खबर है। वे जाते थे। बोटाद से स्टेशन, स्टेशन माल लेकर। वे अभी गृहस्थ हो गये हैं। लोग अच्छे, हों! लोग अच्छे। बहुत व्यक्ति... स्थानकवासीरूप से, परन्तु विरोध न करे। उनके यहाँ इन शान्तिलाल ने पुत्री दी है न। रहते हैं परा में रहते हैं। लोगों को ऐसा कि आहाहा! शान्तिलाल खुशाल, चालीस करोड़ रुपये, उनकी पुत्री इनके यहाँ! आज कोई बात करता था। आहार के समय कोई करता नहीं था? फलाना? ओहो! क्या है परन्तु धूल? राग की पीड़ा है वहाँ। समझ में आया?

मुमुक्षु : घर में फलक भराय या न भराय?

पूज्य गुरुदेवश्री : किसका घर? लुटता है घर वहाँ। घर तो लुटता है निजघर।

फलक भराये अर्थात् धूल भराई उसमें तुझे क्या परन्तु? पड़ उसमें, ऐसा कहते हैं भृगुप्रपात की भाँति। पछाड़... पछाड़... मर जायेगा। आहाहा! अरे! अपना अतीन्द्रिय सुख-आनन्द स्वभाव, उसे भूलकर पुण्य के फल में कूदता है, मूढ़ मिथ्यादृष्टि सुख मानता है। आहाहा! समझ में आया? वह यहाँ वर्णन करना है। ज्ञानतत्त्व, भगवान आत्मा का ज्ञानतत्त्व जो ज्ञान सामर्थ्य है, वह तो आनन्दस्वरूप है। उसका सुख है उसमें एकाग्र (हो), वह सुख है। ज्ञानतत्त्व से बाहर निकलकर शुभ उपयोग है, वह स्वयं दुःख अभी और उसके फलरूप से दुःख है, ऐसा वर्णन करना है। आहाहा! समझ में आया? परम ज्ञानस्वभाव भगवान, परम ज्ञानस्वभाव का ज्ञान करे, तब तो आनन्द आवे। वह तो अन्तर की दृष्टि हुई और अन्तर का आश्रय हुआ। यह तो पर का आश्रय होकर शुभभाव हुए और उसके फलरूप से बाहर के सुख में जाये, वहाँ भी सुख नहीं परन्तु दुःख है, ऐसा सिद्ध करते हैं। क्योंकि वह गिरे, पछाड़ करके उसमें गिरे, विषय अच्छे देखकर कूद पड़े। स्त्री ऐसी अनुकूल मिले, पुत्र ऐसे गलगलिया बोले वहाँ कूदे वहाँ मूढ़ होकर। समझ में आया? फिर ऐसा कि आहाहा! हमारे स्त्री घर में है, ऐसी किसी को नहीं, हों! और ऐसा कहे। हमारे पुत्र हैं ऐसे किसी को नहीं। सब ऐसा ही कहे।

मुमुक्षु : उसके घर में हो तो दूसरे के घर में....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ से हो? परन्तु वह आत्मा और वह शरीर कहाँ से? परन्तु हमारे पुत्र और हमारी स्त्री। ओहोहो! ऐसे वापस स्वयं अपने गुणगान करे। भीखाभाई! यह सब लश्कर चलता है संसार का। कहते हैं कि वे सब दुःखी हैं। सब दुःख के मारे ऐसे कूद पड़ते हैं। आहाहा! भृगुप्रपात समान। कहो, समझ में आया? बस, यह ७१ गाथा हुई।

इस प्रकार युक्तिपूर्वक इन्द्रियसुख को दुःखरूप प्रगट करके, अब इन्द्रियसुख के साधनभूत पुण्य को उत्पन्न करनेवाले शुभोपयोग की, दुःख के साधनभूत पाप को उत्पन्न करनेवाले अशुभोपयोग से अविशेषता प्रगट करते हैं - दोनों समान हैं। चाहे तो शुभ हो या अशुभ, दोनों समान हैं। आत्मा के ज्ञान और दर्शन के भान बिना चाहे शुभ-अशुभ करे, दोनों समान हैं, दोनों में दुःख है। यह सिद्ध करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

कार्तिक कृष्ण २, गुरुवार, दिनांक ०७-११-१९६८
गाथा - ७२-७३, प्रवचन - ५९

गाथा - ७२

प्रवचनसार, ज्ञानतत्त्व प्रज्ञापन। यहाँ तो कहते हैं कि **युक्तिपूर्वक इन्द्रियसुख को दुःखरूप प्रगट करके,...** यहाँ तो ज्ञानतत्त्व जो आत्मा है, उसका शुद्ध व्यापार, वही वास्तविक सुख का कारण है। समझ में आया?

मुमुक्षु : वास्तविक सुख।

पूज्य गुरुदेवश्री : वास्तविक सुख। यह तो औपचारिक सुख अर्थात् दुःख है। वह तो यह कहते हैं। इन्द्रियसुख, वह दुःख है। वास्तविक सुख तो आत्मा ज्ञानतत्त्व है, उसका जो अन्तर व्यापार ज्ञानतत्त्व के ज्ञानभाव में, ऐसा जो भाव, वह शुद्धभाव, वह सुख का कारण और सुखरूप है। इन्द्रिय विषय शुभ उपयोग का फल है। फल, वह दुःखरूप है, यह कहते हैं, देखो!

युक्तिपूर्वक इन्द्रियसुख को दुःखरूप प्रगट करके,... इन्द्रिय के सुख, दुःख ही है, वह कहीं सुख है नहीं। **अब इन्द्रियसुख के साधनभूत पुण्य को उत्पन्न करनेवाले...** और पुण्य को उत्पन्न करनेवाला **शुभोपयोग का,...** दोनों समान हैं, दोनों में अन्तर नहीं। तब ऐसा कहते हैं बहुत से। आज प्रश्न आया है कि तुम जब ऐसा कहते हो कि यह व्रत और नियम और शुभभाव है, वे छोड़नेयोग्य हैं, तो हम कहते हैं कि सम्यग्दर्शन पहले शुभ व्यापारादि होते हैं न व्रतादि? तो हम कहते हैं कि सम्यग्दर्शन पहले तुम्हारा जानपना, शास्त्र स्वाध्याय, वह सब छोड़नेयोग्य है। तो किसलिए यह करते हो तुम? ऐसा प्रश्न किया है। आज आया है।

किसी ने (स्पष्टीकरण) किया होगा यहाँ से कि भाई! यह सम्यग्दर्शन बिना जितने शुभ व्रत, नियम आदि सब ही बन्ध के कारण हैं। वे कहीं आत्मा को लाभदायक नहीं। तो कहे, मैं प्रश्न करता हूँ। पण्डित कहे सामने। सम्यग्दर्शन पहले तुम्हारा यह

शास्त्र श्रवण, अध्ययन सब लाभदायक है या अलाभदायक है? व्यर्थ है। तो करते किसलिए हो? इसी प्रकार हमारे भी आये बिना रहता नहीं, ऐसा (वे) कहते हैं। परन्तु वे आते हैं साधनरूप से। तुम्हारे भी जैसे सम्यग्दर्शन से पहले शास्त्र श्रवण आदि साधनरूप से तुम मानते हो या नहीं? वह तो करे, वह तो होता है। हो, अलग बात है। उससे होता नहीं। श्रवण, मनन से कहीं सम्यग्दर्शन होता नहीं। भाई ने मँगाया है, शिवमार्ग पुस्तक है न? शिवमार्ग में आया है आज। कोई महेन्द्र पण्डित है। यहाँ की सब बात ली है दो-पाँच। अरे! भगवान! किस अपेक्षा से बात है? श्रवण, मनन तो होता है। तब कहे, उस प्रमाण जब तुझे श्रवण, मनन होता है और मेरे व्रत, नियम न हो तो तेरा पक्षपात है। ऐसा कहते हैं। ऐई! पण्डित हो तो तर्क तो करे न। उसमें पक्षपात है तुम्हरा। भाई! परन्तु श्रवण, मनन का तो आये बिना रहता ही नहीं। और व्रत के विकल्प तो जब स्वरूप की दृष्टि होने के बाद आवे, तब उसे चारित्र के निमित्तरूप से बाहर कहा जाता है। अब क्या हो? बहुत झगड़ा। कर्म का झगड़ा। सर्व द्रव्य स्वतन्त्र हैं। यह निश्चयनय से... परन्तु सर्वथा नहीं। दो बोल उठाये हैं। निश्चयनय से स्वतन्त्र है, वह भी सर्वथा नहीं। कथंचित् परतन्त्र है, कर्म के आधीन जीव है। अनादि से कर्म से भटकता है, भ्रमता है, भ्रमण है। प्रत्यक्ष दिखता है और तुम इनकार करते हो। भगवानजीभाई! ऐसा कहते हैं, लो! आहाहा! यहाँ यह कहते हैं, देखो!

यहाँ तो कहते हैं, **युक्तिपूर्वक इन्द्रियसुख को दुःखरूप प्रगट करके, अब इन्द्रियसुख के साधनभूत पुण्य को...** इन्द्रिय के सुख के साधन—कारणरूप पुण्य, उसे उत्पन्न करनेवाला शुभ उपयोग। वह **दुःख के साधनभूत पाप को उत्पन्न करनेवाले अशुभोपयोग से...** एकपना प्रगट करते हैं। अविशेष अर्थात् सामान्य—दोनों समान हैं। उनमें कोई अन्तर नहीं। ७२ (गाथा)।

णरणारयतिरियसुरा भजंति जदि देहसंभवं दुक्खं।
किह सो सुहो व असुहो उवओगो हवदि जीवाणं॥७२॥

नर-नारक-तिर्यंच-देव सब देह-जन्य दुख को भोगें।
तो जीवों का वह उपयोग, शुभाशुभ द्वयविध हो कैसे?॥७२॥

देखो! ... वह ... यहाँ के विरोध का सब लिखा हुआ आता है। खबर है अभी

के कितने ही वक्ता, पण्डित आदि ऐसा कहते हैं, परन्तु उनकी वह बात उचित नहीं, खोटी है। बहुत ... वहाँ महावीर में से लिखा है। जयपुर में है न हुकमचन्दजी। महावीर में से है। वहाँ से निकलता है न शिवमार्ग।

इसका (अन्वयार्थ) ७२ का। **मनुष्यों,...** नर-नारकी से उठाया है मूल पाठ में।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पहले उठाया है न। यह तो फिर अपने हरिगीत में जरा मिलान के लिये तिर्यंच से उठाया है।

बाकी **मनुष्य, नारकी, तिर्यञ्च और देव...** देखो! चारों ही गति ली। **यदि देहोत्पन्न दुःख को अनुभव करते हैं,...** देह के उत्पन्न से जो उत्पन्न हुआ दुःख, ऐसे पीड़ा आदि अनुभव करते हैं **तो जीवों का वह (शुद्धोपयोग से विलक्षण-अशुद्ध) उपयोग शुभ और अशुभ - दो प्रकार का कैसे हैं? (अर्थात् नहीं है।)** जब पुण्य के फलरूप से दुःख अनुभव करते हैं, पाप के फलरूप से दुःख अनुभव करते हैं। दुःख के अनुभव में कुछ अन्तर नहीं तो उनके कारण में अन्तर में कैसे अन्तर हो? ऐसा कहते हैं। कठिन बात है। समझ में आया? पाप के फलरूप से नारकी दुःख अनुभव करते हैं, पुण्य के फलरूप से विषयवासना में गति से दौड़ते, वे भी दुःख को अनुभव करते हैं। तो फिर जो दुःख का अनुभव करना, वह तो दोनों को एकसरीखा है। तू सुख किसे कहता है? ऐसा कहते हैं। वहाँ भी दुःख का वेदन है। और उसके कारण में तू अन्तर करे तो कारण में अन्तर कैसे होगा? दुःख का अनुभव करना एक कार्य है तो यहाँ उसका कारण भी एक ही प्रकार से है। शुद्ध उपयोग से विलक्षण अशुद्ध उपयोग एक ही प्रकार का है, चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो।

यह कुन्दकुन्दाचार्य ऐसी दलील सहित रखते हैं तो भी बात इसे (बैठती नहीं)। दूसरी जगह ले वापस कहीं से। शुभ उपयोग परम्परा मोक्ष का कारण है, फलाना है, ढींकणा है। भाई! यह तो परम्परा तो अभाव करके हो, उसकी बात है। उससे होगा? वह तो राग है। भगवान आत्मा तो वीतरागविज्ञान चिदानन्दस्वरूप है। उसके स्वरूप का साधन उस जाति का हो कि उससे विरुद्ध जाति का हो? समझ में आया? श्रद्धा में तो

अभी बैठाये नहीं और श्रद्धा में बैठे नहीं, तब तक उसकी गति स्वरूप की ओर के झुकाव में आ नहीं सकती। वहाँ कुछ है, वहाँ कुछ है, उसमें शुभ में कुछ है, अशुभ की अपेक्षा शुभ में है। तो वहाँ उसकी झुकाव की रुचि और गति तो वहाँ वीर्य की रहती है। शुभ और अशुभ दोनों परिणाम शुद्ध उपयोग से विरुद्ध अशुद्ध उपयोग है, ऐसी यदि रुचि करे तो उसे वहाँ से हटकर स्वभाव सन्मुख दृष्टि करे और उसका झुकाव करने का उसे अवसर रहे। परन्तु जहाँ इसमें भी है, उसमें भी है, उसमें भी है, (ऐसा झुकाव रहे) तो वह शुभ की रुचि हटकर इस ओर आ सकेगा नहीं। समझ में आया?

इसकी **टीका :- यदि शुभोपयोगजन्य उदयगत पुण्य की सम्पत्तिवाले देवादिक...** देखो भाषा! शुभ उपयोग जो शुभभाव है दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा इत्यादि। उसके उदय से पुण्य की सम्पदावाले। देखो! उससे पुण्य की सम्पदावाले देवादिक कहे। ऐसा पाठ तो अमृतचन्द्राचार्य का स्पष्ट है। है या नहीं? पुण्य की सम्पदा मिलती है, पुण्य से सम्पदा मिलती है। क्या कहा? पुण्य से सम्पदा मिलती है, ऐसा आया। कितने ही इनकार करते हैं। खबर है? उसे खबर है। **जो शुभोपयोगजन्य...** शुभ उपयोग से उत्पन्न होता उदयगत पुण्य, उसकी सम्पदावाले। पुण्य से देव की सम्पदा मिले, यह राजपने की। देव आदि कहा न? मनुष्य आदि। **(अर्थात् शुभोपयोगजन्य पुण्य के उदय से प्राप्त होनेवाली ऋद्धिवाले देव इत्यादि)...** देव। अरे! बड़े तिर्यंच जुगलिया, मनुष्य इत्यादि।

और अशुभोपयोगजन्य उदयगत पाप की आपदावाले नारकादिक— देखो! और पाप के भाव किये, उसके फल का उदय आया, तब नारकीपना, यह ढोरपना, यह निर्धनपना, मनुष्य में भी, देव में भी जरा हल्के देव होते हैं न दुःखी, **यह दोनों स्वाभाविक सुख के अभाव के कारण...** दोनों को स्वाभाविक आत्मा के सुख का जिसमें अभाव है। नारकी के जीव को दुःख का सद्भाव है और पुण्य के फलवाले ऐसे सेठिया, देव, राजा, वे भी पुण्य के फलवाले दुःखी ही हैं। कहो, भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : दोनों एक ही जाति का है।

पूज्य गुरुदेवश्री : एक ही जाति का? भाई! ऐसी सुविधा मिले उसमें कितनी! पैसेवाले की जहाँ हो वहाँ क्या कहलाये? सिफारिश पहुँचे। उसके पास करोड़ों रुपये

है, ऐसा है, वैसा है। इतनी सुविधा होती है या नहीं? जाने-आने की, जाने की, खाने-पीने की। परन्तु कहते हैं कि उस परसन्मुख का तेरा झुकाव दुःखवाला है। समझ में आया? अर्थात्? जैसे सम्पदावाले देव आदि और आपदावाले नारकादि, ऐसा। सम्पदावाले देवादि और आपदावाले दोनों समान हैं। दोनों को स्वाभाविक सुख का तो अभाव है। भगवान आत्मा... ज्ञानतत्त्व है न अधिकार। ज्ञानतत्त्व आत्मा है, उसका स्वभाव अन्दर में आनन्द है। ऐसे अतीन्द्रिय ज्ञानतत्त्व का आनन्द का नारकी की आपदावाले और मनुष्यादि देव की सम्पदावाले दोनों को अतीन्द्रिय आनन्द का अभाव है।

स्वाभाविक सुख के अभाव के कारण अविशेषरूप से (बिना अन्तर के) पञ्चेन्द्रियात्मक शरीर सम्बन्धी दुःख का ही अनुभव करते हैं,... पाँच इन्द्रियस्वरूप शरीर। यह उनकी इन्द्रिय का विषय है न पाँचों ही? ऐसा। शब्द, रूप, रस, गन्ध। समझ में आया? कीर्ति सुनता हो तो उसका लक्ष्य (शब्द के) ऊपर है, वह राग है, आकुलता है। आहाहा! सुख है नहीं। कीर्ति सुने तो खम्मा-खम्मा होती हो, लो! पाँच हजार, दस हजार मनुष्य इकट्ठे होकर उसे अभिनन्दन दे। तुमने महान काम किये, तुमने ऐसे किये, तुमने ऐसे किये, तुमने ऐसे किये। लो! तुम तो बहुत वे हुए। यह कान से सुनने पर इसे कुछ सुख होता होगा या नहीं?

मुमुक्षु : आप इनकार करते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, सुख होता है। क्या? कल्पना का दुःख। वह तो आकुलता है। ऐसे लक्ष्य जाये, वह तो राग है। समझ में आया? राग की आकुलता है। सुख कहाँ था वहाँ धूल में? आहाहा!

पञ्चेन्द्रियात्मक शरीर सम्बन्धी दुःख का ही अनुभव करते हैं,... अर्थात् पाँचों ही इन्द्रियों के जितने विषयों की ओर झुकाव जाता है, वह सब राग और दुःख का ही भाव है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? सुन्दर रूप देखने को मिले। तो क्या? देखने मिले तो लक्ष्य गया वहाँ आकुलता है। समझ में आया? अच्छा स्पर्श मिले, अच्छे लड्डू आदि मिले, अच्छी इज्जत मिले, फूलझाड़ ऐसे चारों ओर से ऐसे बैठा हो, वहाँ झाड़ रखे हों फूलझाड़ के, वे सूँघने को मिलें। खाते समय अनेक प्रकार की, विविध जाति की क्या कहलाती है? सामग्री। वानगी-वानगी कहे तुम्हारे। विविध जाति की

वानकी कहते हैं। वानगी अर्थात्? अलग-अलग जाति ऐसे। जलेबी, जामुन, बर्फी, पूड़ी, मीठा साट, फीका, देखो तो २५-५० की वानगी तो, आहाहा! कहो, कितने प्रकार की सामग्री। देखो, यह भाई अपने थे न जेतपुरवाले। कैसे? शामळजी खोडा सेठ। शामळजी खोडा थे। पैसा बहुत नहीं दो-चार लाख, परन्तु खाने बैठे तब कितनी सामग्री उनकी देखी थी हमने, हों! पहले (संवत्) १९७० में दीक्षा लेते समय। कितने प्रकार की चीज़ें! गड़बड़, रोटी गर्म, ढींकणा, पूड़ी हो, हलुवा हो, दाल हो, ढींकणा हो। सब गर्म-गर्म वानगी पड़ी हो। उसमें से उसे ठीक हो वह खाये। खाने का ऐसा (शौक)। घर-बाहर निकलने की मनाही थी सेठ को। शामळजी खोडा। उपाश्रय है न। देसाई नहीं? कामदार। कामदार होंगे? वे जमींदार का काम करते थे उस काठी का। परन्तु रूपवान मनुष्य। बैठा हो खाने के समय। खाने के समय बराबर मैं जा चढ़ा। ७० में। कामदार। दरबार का काम करता, उसमें से पैसे हुए। कितनी चीज़ें ऐसे पड़ी हो पाट पर चारों ओर। पापड़ और, पापड़ के क्या कहलाते हैं? वह खेरा। खेरा होता है न? क्या कहलाता है वह? खेरा वह पोचा।

मुमुक्षु : खेरा अलग, वडी अलग।

पूज्य गुरुदेवश्री : वडी अलग, खेरा अलग, पापड़ अलग। वानगी सब पड़ी हो थोड़ी... थोड़ी। लोग... आहाहा! भारी सुखी है। पैसे इतने अधिक नहीं थे परन्तु... उस समय तो बहुत... ७० के वर्ष। वर्ष हुए ५५। यह तो अर्ध शताब्दी हुई। अर्ध शताब्दी कहलाती है न पचास के ऊपर। ५५ लो। पाँच। ७० में दीक्षा हुई यह मागसर महीने में, वहाँ पहुँचे थे। पौष में या माघ कृष्ण में, मागसर कृष्ण में। सुखी कहे, आकुलता का पार न हो। वहाँ लक्ष्य जाता है, वह आकुलता है। नारकी को यहाँ ऐसे अग्नि की ओर लक्ष्य जाता है। उसे यहाँ जाता है। लक्ष्य जाता है, वह तो आकुलता है। कहो, समझ में आया?

पञ्चेन्द्रियात्मक शरीर सम्बन्धी दुःख का ही अनुभव करते हैं,... अर्थात् क्या कहते हैं? आत्मिक अतीन्द्रिय सुख नहीं। वहाँ पंचेन्द्रिय के शरीर सम्बन्धी दुःख को अनुभव करते हैं। समझ में आया? **तब फिर परमार्थ से शुभ और अशुभ उपयोग की पृथक्त्वव्यवस्था नहीं रहती।** लो! इस कारण से दोनों देहगत आकुलता को पुण्य के

फलवाले, सम्पदावाले और पाप के फलवाले आपदावाले दोनों दुःख को अनुभव करते हैं, पंचेन्द्रिय शरीर सम्बन्धी तो फिर उनके कारणरूप शुभ-अशुभ उपयोग की पृथक्ता, अनेकता, भिन्नता कुछ टिकती नहीं। दोनों एक ही प्रकार है। समझ में आया? अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव के अतिरिक्त विरुद्ध है, वह सब दुःख ही है।

भगवान आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान तत्त्व है न यहाँ। अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप है वस्तु... वस्तु। और वह अतीन्द्रिय ज्ञान है, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द है। वह अतीन्द्रिय आनन्द ज्ञान की एकता में वह आनन्द सही। उससे विरुद्ध शरीर सम्बन्धी के लक्ष्य में आकुलता है। कषाय की आकुलता है न वह? बस, वह शरीर पंचेन्द्रिय सम्बन्धी का दुःख ही है। शरीर सम्बन्धी दुःख है। आत्मसम्बन्धी सुख होता है। समझ में आया? कहो, चाहे जैसा सुन्दर शरीर मिला परन्तु उसके ऊपर लक्ष्य जाता है तो राग है। और कुबड़ा मिला नारकी का सोलह रोगवाला। तो उसके ऊपर लक्ष्य जाता है तो विकार है, दुःख है। समझ में आया? पाँच सौ धनुष का (देह) होता है न नारकी को। पाँच सौ धनुष का देह लो, सातवें (नरक के) नारकी को। सोलह रोग जन्मे तब से। काला कुबड़ा। देव जन्मे तब से दो घड़ी में सीधे सुन्दर जवान... जवान दो घड़ी में दिखाई दे। तुरन्त उत्पन्न हो। परन्तु उसका लक्ष्य आत्मा के अन्तर अतीन्द्रिय ज्ञान की ओर तो है नहीं। वह तो उस ओर है। इस ओर से उस ओर गया तो झुकाव सब वेग कषाय का है। समझ में आया? नारकी हो या देव हो, रंक हो या राजा हो, कंथवा हो या कुंजर हो, परन्तु उसे पंचेन्द्रिय शरीर... वह भगवान आत्मा तो पड़ा रहा। उसकी ओर झुकाव करके, उस अतीन्द्रिय ज्ञान का आनन्द लेना चाहिए, वह तो नहीं मिलता। इसलिए दोनों को शरीर सम्बन्धी दुःख का ही अनुभव है, ऐसा कहते हैं। कहो, समझ में आया? इसमें सेठिया और रंक दोनों को इकट्ठे डाला दुःखीरूप से।

मुमुक्षु : भले डाले।

पूज्य गुरुदेवश्री : भले डाले अर्थात्? हम इसमें नहीं आते हैं, ऐसा होगा?

मुमुक्षु : ज्ञानी नहीं आते।

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञानी न आवे नहीं, यह तो सेठिया और रंक परसन्मुख की अपेक्षा से दुःखी हैं। उसमें वह नहीं आते, ऐसा नहीं, परसन्मुख के झुकाववाला तो

आवे। ऐसा कि उसमें भले उन्हें डाला, परन्तु हम नहीं आते, ऐसा कोई कहे, हमारे तो सुख है। परन्तु तू पर के झुकाववाला है, वे दोनों पर के झुकाववाले दोनों दुःखी ही हैं। आहाहा! कैसे होगा यह? सब सुखी दिखते हैं न! सुखी... बहुत गाथायें आती हैं।

शुभ और अशुभ उपयोग की पृथक्त्वव्यवस्था नहीं रहती। कि इसका शुभ उपयोग, वह अच्छा और अशुभ उपयोग, वह खराब—ऐसे दो प्रकार उसमें नहीं लगते। क्योंकि शुभ उपयोग से पुण्य बँधता है और पुण्य से सम्पदा मिलती है और सम्पदा मिलने से पाँच इन्द्रिय के विषय की ओर उसका लक्ष्य जाता है। वह दुःखी। पाप के फल... अशुभरूप से पाप बँधता है, पाप के फलरूप से प्रतिकूल (संयोग मिलते हैं), उस ओर उसका लक्ष्य जाये तो दुःखी। दुःखी तो दोनों हैं। आहाहा! गले उतरना कठिन। कहो। छह खण्ड का राजा चक्रवर्ती छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा हो और उसका लक्ष्य जाये परन्तु वहाँ आकुलता है। सातवें नरक का नारकी प्रतिकूलता के पुंज में लक्ष्य जाये तो वहाँ आकुलता है। पंचेन्द्रिय के शरीर सम्बन्धी के अवयव हैं, उस ओर के जो विषय, वहाँ जाने से राग विकार ही है, दुःख है। समझ में आया?

ज्ञानतत्त्व अधिकार है। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप है, इससे वह अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। उस अन्तर के विषय को लक्ष्य में लेकर, विषय अर्थात् ध्येय उसमें लेकर जो एकाग्रता होती है, वह ज्ञान और आनन्द, वह सुखी है। बाकी यह सब दुःख है। दुःखी है तो उसके कारणरूप से दोनों परिणाम शुभ ठीक और अशुभ अठीक, ऐसी पृथक् व्यवस्था टिकती नहीं। दोनों एक प्रकार की व्यवस्था में सम्मिलित हो जाते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

परमार्थ से... ऐसा कहा है न? **शुभ-अशुभ उपयोग की...** यह दया, दान के परिणाम और हिंसा-झूठ के परिणाम। यह तो अधिक स्पष्ट करना चाहिए या नहीं? दया, दान और हिंसा और कंजूसाई के। समझ में आया? इन दोनों परिणाम के फलरूप से तो पाप और पुण्य बँधे और उसके फलरूप से बाहर की सम्पदा और आपदा (मिले)। उसके ऊपर लक्ष्य जाये तो दोनों का समान जाये। कषाय है वहाँ। तो यह पैसावाला कहे हम सुखी हैं। मूढ़ है, कहते हैं मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं यहाँ। मिथ्यात्व का पोषक है। ऐसा है और ऐसा कहते हैं। ऐई!

मुमुक्षु : पैसे कब थे?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसे भी इसने माने है न। हुकम हो एकदम हो लो वहाँ। वहाँ से आये और यहाँ थाणा में डाला। क्या कहलाता है वह? मशीन। प्लास्टिक की। लो, परन्तु पैसे थे तो वहाँ से यहाँ आकर यहाँ डाला, लो। लड़के को यहाँ व्यवस्थित किया। एक को यहाँ व्यवस्थित किया फलाना, ढींकणा। पैसेवाले हों तो व्यवस्थित करे, कहो। व्यवस्थित कर सकते होंगे? परन्तु कहते हैं कि पर के ऊपर लक्ष्य जाता है, वह सब आकुलता है। दृष्टान्त तो बड़े का दे, तब बैठे न इसे। यह बेचारा गरीब मनुष्य हो, उसके पास न हो तो उसका लक्ष्य यहाँ जाये, अरे! खाना नहीं। परन्तु वह पर के ऊपर (लक्ष्य गया), वह भी आकुलता है। कहो, समझ में आया?

यहाँ देखो न, यहाँ तो यह बात सिद्ध की है या नहीं? शुभ और अशुभ परिणाम के फलरूप से सम्पदा और आपदा में लक्ष्य जाने से दोनों दुःखी, शरीर सम्बन्धी दोनों दुःखी। तो फिर उसके कारणपने में कुछ अन्तर है, यह बात रहती नहीं, ऐसा कहते हैं। यह बात टिकती नहीं अर्थात् रहती नहीं। आहाहा! देखो न, शुद्ध उपयोग की रमत कराने को (यह बात करते हैं)। शुद्ध उपयोग, वह सुख का कारण है और उसके फलरूप से मोक्ष होता है। शुभ, वह सुख का कारण वर्तमान भी नहीं और उसका फल भी दुःख का कारण है, ऐसा कहते हैं। लोगों को ऐसा कठिन पड़े मानो... बाहर के संयोगों में अन्तर देखे न, इसलिए मानो... संयोग में अन्तर अर्थात् क्या परन्तु? उसमें स्वभाव में अन्तर क्या आया? स्वभाव से तो विपरीत विभाव का वेदन है। समझ में आया?

भावार्थ :- शुभोपयोगजन्य पुण्य के फलरूप में... यह शुभ उपयोग जो किया दया, दान, व्रत, परिणाम शुभ, उसके उत्पन्न से **पुण्य के फलरूप में देवादिक की सम्पदायें मिलती हैं,...** पुण्य के फलरूप से पैसा, लक्ष्मी आदि शरीर की सब अनुकूलता मिले। **और अशुभोपयोगजन्य पाप के फलरूप में नारकादिक की आपदायें मिलती हैं,...** सम्पदा और आपदा, इतना अन्तर है। सं और आ। पश्चात् 'पदा' तो है दोनों में। यह अन्तर है। सं-पदा, आ-पदा। ठीक! दोनों समान। **किन्तु वे देवादिक तथा नारकादिक दोनों परमार्थ से दुःखी ही हैं।** आहाहा! कहो, भीखाभाई! आहाहा! क्या परन्तु मंजिलें हों, ऐसे दूसरे देखे, आहाहा! किया है न, इसलिए ऐसा वापस, ऐसा कहे। परन्तु मंजिल

पर बैठा हो और ऐसे लड़का साथ में बैठा हो, भाई! भाई! भाई! ऐसा करता हो। भाई! मुझे तुम्हारा बहुत उपकार है। तुमने हमको बहुत बड़ा किया पढ़ा-पढ़ाकर। ठिकाने (लगाया), तुम्हारा प्रताप है, ऐसा कहे। आहाहा! वहाँ लक्ष्य जाये तो सुख हो या नहीं?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वहाँ भी लक्ष्य जाये, वहाँ लक्ष्य जाये वह आकुलता हो? या यहाँ लक्ष्य जाये, वहाँ अनाकुलता हो? आत्मा की ओर लक्ष्य जाये, तब अनाकुलता हो। वहाँ जाये तो आकुलता हो। लाख बात हो नहीं तेरे देव की, सेठिया की, चक्रवर्ती की सम्पदा की। समझ में आया?

यह यहाँ ज्ञानतत्त्व अधिकार में यह बात ली है, वह परसन्मुख के झुकाववाला भाव, वह पर की ओर की सम्पदा या आपदा देनेवाले दोनों एक जाति के भाव हैं, यह सिद्ध करने के लिये कहते हैं। भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चिदानन्द प्रभु, उसे भूलकर जितना भाव शुभाशुभ, वह सब अशुद्ध उपयोग है। अशुद्ध उपयोगरूप में शुभ और अशुभ में कोई अन्तर नहीं। उनकी अलग व्यवस्था अर्थात् पृथक्ता रहती नहीं। शुभ परिणाम ठीक और अशुभ अठीक, ऐसी पृथक्ता रहती नहीं। कहो, समझ में आया?

परन्तु वे दोनों दुःखी ही हैं। **इस प्रकार दोनों का फल समान होने से...** किसका? शुभ-अशुभ परिणाम का। **शुभोपयोग और अशुभोपयोग दोनों परमार्थ से समान ही हैं अर्थात् उपयोग में अशुद्धोपयोग में...** ऐसा। **शुभ और अशुभ नामक भेद परमार्थ से घटित नहीं होते।** आहाहा! अपना भगवान आत्मा शुद्ध ज्ञानानन्द का उपयोग अन्तर का, इसके अतिरिक्त उससे विरुद्ध चाहे तो शुभ या अशुभ कोई भी विकल्प हो, वह विकल्प सब ही अलग जाति का है अशुभ से शुभ (विशेष) ऐसा नहीं, शुद्ध से अलग जाति का है, इसलिए दोनों दुःखरूप हैं। समझ में आया? शुद्धभाव से अलग जाति का है, इसलिए दुःखरूप हैं। दोनों में फिर शुभ ठीक है और अशुभ अठीक है, ऐसी दोनों में एक जाति, एक जाति है, उसमें दो भाग करना, यह बात टिकती नहीं, प्रसिद्ध होती ही नहीं, साबित होती ही नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। शुभ-अशुभ परिणाम की दो जाति साबित होती नहीं। उसके फलरूप से दोनों दुःखी हैं, इसलिए उसके दुःख के कारण में भी अन्तर नहीं। आहाहा! कैसे होगा इसमें अमुलखभाई? दुःखी है। परन्तु वास्तव में

व्यवहार से सुखी है या नहीं? नहीं? वह व्यवहार अर्थात्? खोटी कल्पना से, ऐसा व्यवहार का अर्थ। अभूतार्थनय से वह सुखी है, अर्थात् खोटे बोलों से सुखी है। हमारे गाँव में खोटाबोला था। इसका अर्थ है खोटाबोला का। उमराला में। ... हों। खोटाबोला अर्थात् उसकी छाप ही खोटाबोला की। खोटाबोला, उसी प्रकार यह व्यवहारनय खोटाबोला है। खोटाबोलारूप से सुखी है, ठीक! भगवानजीभाई!

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, वह तो उनकी जाति में पहिचान थी। प्रागजी अमरशी नहीं? प्रागजी अमरशी। समझ में आया? ऐसे दो भेद वास्तव में, दो भेद वास्तव में घटित ही नहीं होते, ऐसा कहते हैं यहाँ तो। दो भाव वास्तव में घटित ही नहीं होते। शुभ और अशुभभाव दोनों एक ही अशुद्ध उपयोग की जाति एक ही है। चिल्लाहट मचाते हैं यह सब, हों! अरे! बहुत ऐसा है लेख आज सामने। इस शुभ में तो भाई साधन है। तुम भी श्रवण, मनन रखते हो—छोड़ देते हो? तो हमारे व्रत के परिणाम छोड़ देना? तुझे छोड़ना तो हम छोड़ेंगे। छोड़ दिया तूने? तब तो कहे हमारे तो यह करना पड़ता है, तब हमारे भी यह किये बिना चलता नहीं, ले।

मुमुक्षु : करो भ्रमणा।

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु तुम भ्रवणा किसलिए करते हो तब? श्रवण, मनन, वाँचन छोड़ते हो?! तुम ऐसा कहते हो कि उसमें सम्यग्दर्शन बिना का जो है, वह सब खोटा। भाई! यह तेरा ज्ञान भी खोटा? मिथ्याज्ञान है, बापू! मिथ्याज्ञान न? व्यर्थ न? तो भी वह करते किसलिए हो? यहाँ हमारे शुभ परिणाम तू कहता है कि खोटे। परन्तु हम कहते हैं। तू कर खोटा और वापस खोटा का साधन तो करते हो। ऐई! भगवान! सुन न, भाई! आहाहा! वे होते हैं, वह सुनने में भी वह लक्ष्य ऐसे करनेयोग्य है कि उस लक्ष्य से लाभ हो, ऐसा उसमें लक्ष्य करने योग्य नहीं, ऐसा कहते हैं। सुनने में भी शास्त्र वाँचन में भी यह उसमें से निकालना है, यह निकालना है यहाँ कि इस लक्ष्य से आत्मा का लक्ष्य नहीं होता। ऐसा इसे इसमें निर्णय करना है। आहाहा! व्रत के विकल्प तो कहाँ सम्यक्त्व के बाद होते हैं। अरे! उससे थोड़ा सा तो मिलेगा या नहीं? सम्पदा मिलेगी, सुखी तो होगा वहाँ तक। ऐसा कि यहाँ आया है न समाधिशतक में। अव्रतवाला दुःखी

है, धूप में खड़ा है। व्रतवाला सुखी है, वृक्ष की छाया में बैठा है। देखो! यह दृष्टान्त दे या नहीं? आता है या नहीं? उसमें भी आता है। अष्टपाहुड़ में आता है। वह तो किस अपेक्षा से कहते हैं? आत्मा की दृष्टि अनुभव है, परन्तु जब वह स्वयं व्रत में आ सकता नहीं, तब अव्रत के परिणाम होते हैं। तब वे अव्रत के परिणाम विशेष दुःखरूप हैं। और उनसे टलकर शुभ विकल्प आता है तो थोड़े दुःखरूप है। थोड़े दुःखरूप है, ऐसा कहा वहाँ। समझ में आया? छाया में बैठा है। वहाँ बात ऐसी ली है, भाई! ले तो लोग ऐसा बैठे न। फिर वह शुद्ध उपयोग की राह देखे। भाई! उस शुभ विकल्प में लक्ष्य तो वहाँ है। शुद्ध के ऊपर लक्ष्य जाता है। शुभ आया सही, होवे सही, परन्तु उसका लक्ष्य शुभ के ऊपर नहीं होता। अरे... भगवान! वाद-विवाद से पार न पड़े, ऐसी बात है।

★ ★ ★

गाथा - ७३

अब, **(जैसे, इन्द्रियसुख को दुःखरूप और शुभोपयोग को अशुभोपयोग के समान बताया है इसी प्रकार)...** ७३। क्या कहा? इन्द्रिसुख को दुःखरूप (दर्शाया)। यह चक्रवर्ती के और देव, इन्द्रों के सुख, वे दुःखरूप। आकुलता है पर में (लक्ष्य) जाये वह। लड्डू हो, मैसूर खाता हो, ऐसा फर्स्ट क्लास। परन्तु उसका लक्ष्य जाये वह क्या कषाय है या अकषाय है? कषाय-अग्नि है। आहाहा! इसी प्रकार यह नारकी को दुःख के ऊपर, प्रतिकूलता के ऊपर लक्ष्य जाये, वह कषाय-अग्नि है। आहाहा! यह चैतन्य का माहात्म्य कराते हैं और चैतन्य के अन्तर माहात्म्य के सुख बिना सुख किसी गिनती में गिना नहीं जाता।

(इन्द्रियसुख को दुःखरूप और शुभोपयोग को अशुभोपयोग के समान बताया है इसी प्रकार) अब, शुभोपयोगजन्य फलवाला जो पुण्य है, उसे विशेषतः दूषण देने के लिये (अर्थात् उसमें दोष दिखाने के लिये) उस पुण्य को (उसके अस्तित्व को) स्वीकार करके, उसकी (पुण्य की) बात का खण्डन करते हैं - पुण्य का स्वीकार है, कहते हैं। पुण्य के फलवाली बात है, पुण्य है, पुण्य का फल है, परन्तु वह आदरणीय नहीं है। ७३ (गाथा)।

कुलिसाउहचक्कधरा सुहोवओगप्पगेहिं भोगिहं।
देहादीणं विद्धिं करेंति सुहिदा इवाभरिदा॥७३॥

ओहोहो! क्या शैली लेते हैं! देहादि की पुष्टि के ऊपर लक्ष्य वहाँ। आत्मा की पुष्टि के ऊपर है वहाँ? ऐसा कहते हैं।

इन्द्र-चक्रवर्ती आदिक शुभ-मूलक विविध भोग भोगें।
तन-पोषण में लीन रहें वे, बहुत सुखी जैसे दिखते॥७३॥

देखो न, न्याय कितना रखा है!

इन्द्र-चक्रवर्ती आदिक शुभ-मूलक विविध भोग भोगें।

भगवान ज्ञानानन्दस्वभाव को भूलकर पुष्टि तो यहाँ करते हैं। देह की पुष्टि, देह को रखूँ, इन्द्रियों की पुष्टि करूँ, ऐसा करूँ, अंजण आंजुँ, ढींकणा करूँ, रस खाऊँ, मौसम्बी पीऊँ—यह सब भोग पंचेन्द्रिय की ओर के भोगों के विकल्प पुष्टि करते हैं। पर के लिये पुष्टि करने का भाव है। आहाहा!

तन-पोषण में लीन रहें वे, बहुत सुखी जैसे दिखते॥७३॥

सुखी जैसा दिखता है परन्तु तल्लीन है विषय और राग में, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

अन्वयार्थ :- वज्रधर... वज्रधर-वज्र के धरनेवाले इन्द्र। **और चक्रधर...** चक्र के धारक चक्रवर्ती / नरेन्द्र। बड़े लिये अब यहाँ तो। समझ में आया? वज्र हाथ में होता है इन्द्र। चक्रवर्ती, शकेन्द्र आदि। असंख्य देव जिसे ऐसे शोर मचाये यदि वज्र उठाये, किसी के ऊपर कोपायमान हो। वज्रधर। चक्रवर्ती से भी महासमर्थ और सम्पदा बहुत है जिसकी। असंख्य देव तो जिसके सेवक हैं। असंख्य देव। लो! पहला देवलोक शकेन्द्र है, ३२ लाख विमान। उसमें कितने ही विमानों में असंख्य देव, कितने ही विमानों में संख्यात। सबका एक स्वामी। वज्रधर वह किसी के ऊपर—देव के ऊपर कोपायमान हो। वज्र हाथ में ले, वहाँ अग्नि झरे। वज्र में से, हों! इतने पुण्यशाली। कहते हैं, परन्तु वे सब और चक्रवर्ती। वे कैसे हैं? चक्रवर्ती, लो! छियानवें हजार जिसे स्त्रियाँ, बत्तीस हजार राजा जिसके चंवर ढारे, सोलह हजार देव जिसकी तैनाती में

खड़े। दो हजार देव तो जिसके अंगरक्षक। वे भी मर गये वापस, हों! मर गये तो ठीक परन्तु वर्तमान में मर गये, ऐसा कहते हैं। उस भोग में देहादि की वृद्धि (पुष्टि) करते हैं। देखो!

शुभोपयोगमूलक (पुण्यों के स्वरूप) भोगों के द्वारा... लो! यह पुण्य के फल में प्राप्त सम्पदायें। ऐसी बात तो बहुत स्पष्ट है इसमें। तथापि क्यों नहीं? ऐसे लेख तो बहुत स्पष्ट हैं। शुभ उपयोग के फलरूप से भोगों द्वारा **देहादि की...** देखो! **पुष्टि करते हैं...** वाणी अच्छी मिले, देह की पुष्टि करे, बाहर के मकान, मकान। आहाहा! पुत्र, पुत्रियाँ, ओहोहो! बड़ी पलटन। जड़ की बड़ी पुष्टि करे। कहो, समझ में आया? छियानवें हजार स्त्रियों का लाडा ऐसे (बैठा हो), अन्दर छियानवें हजार बँगलें हों अलग, चारों ओर। बीच में अकेला। ऐसे दिखाव देखो (तो) सुखी... सुखी... सुखी... सुखी। कहते हैं कि वह तो देह की पुष्टि करनेवाले हैं। उसका बाह्य जड़ की पुष्टि का भाव है। उसमें आत्मा की पुष्टि का भाव है नहीं। लो! यह शुभ उपयोग के फलरूप से ऐसा करो, ऐसा करो, यह बनाओ, बँगला बनाओ, बाग बनाओ, यह करो, इतने लोग रखो। समझ में आया? श्रवण के लिये वाजिंत्र, रूप के लिये वेश्यायें इत्यादि... इत्यादि। फर्नीचर वापस। यह तो कहते हैं, देहादि बाहर की पुष्टि करते हैं। समझे न? पुण्य के फलरूप से यह रचाओ, यह बनाओ, यह बनाओ। चौका सब पाँच-पाँच हजार के, दस-दस हजार के चौका बिछाना नीचे। वज्र के बड़े हीरा के सिंहासन। मकान ३२-३२, चक्रवर्ती को ६४-६४ सरा के हार। पुष्टि... पुष्टि... पुष्टि जड़ की। शुभ उपयोग के फल में जड़ की पुष्टि है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

यह शुभ उपयोग के फलरूप से भोग, यह उसकी देहादि की वृद्धि करते हैं। देह की पुष्टि हो, यह विकल्प ऐसा होता है न उसे? कि ऐसा हो। और होता है पुण्य के फलरूप से। शरीर बढ़े, पुष्ट दिखायी दे। ओहोहो! लठ्ठ जैसा मोटा। देव के जैसा दिखाव। ऐसा हीरा, माणेक, रत्नों के ढ़ेर। समझ में आया? जिसकी शरीर की सामर्थ्य चक्रवर्ती की। करोड़ रुपये का हीरा हो, वह जैसे यह कंकु की डली ऐसे मसले, वैसे मसल डाले ऐसे एकदम। इतनी तो शरीर की मजबूताई। यह शुभ उपयोग के फलरूप

से। कहते हैं, उसके झुकाववाला भाव है, वह तो कषायवाला दुःख है। उसमें सुख कहाँ आया? आहाहा!

(इस प्रकार) भोगों में रत वर्तते हुए... पूरे दिन यह करो... यह करो... लो! चक्रवर्ती को तो ३६० तो रसोईया के अधिकारी होते हैं। रसोईया नहीं। एक दिन का उन्हें पकाने का हुकम करने का समय आवे। साहेब के लिये आज बारह महीने—३६० (दिवस) तक तैयारी की हो। यह पटणी से भी बड़े-बड़े उसके अधिपति होते हैं। ३६० (दिवस)—बारह महीने तक उसकी रसोई की तैयारी करे। एक दिन हुकम करने का अवसर आवे। हुकम करने का, हों! उसे पकाने का नहीं। रसोईया को कहे कि आज साहेब के लिये फलाना बनाना। ३६० के बड़े हौदेदार हों। कहो, कितना! आहाहा! सेव पोची-पोची सेव। जामुन, रसगुल्ला कितने प्रकार का बने। ऐई! मोहनभाई! जलेबी घी की मोड़ डाले चक्करवाली। उसका घी वापस। उसका घी वह कैसा! समझ में आया? विशाल गन्ने बोये हों हजारों-लाखों बीघा में। वह गन्ना ऐसा का ऐसा खिलावे गायों को और उन गायों का जो दूध आवे हजारों गायों का वह सबको पिलावे। सबका जो दूध आवे वह दस को पिलावे, उनका दूध आवे, उसमें से दही बनाकर घी निकाले। यहाँ तो तुम्हारे घी का भी ठिकाना नहीं होता। ऐसा घी ताजा-ताजा प्रतिदिन का देवो तैयार। कहो, चक्रवर्ती। सवेरे बोवे नौ बजे गेहूँ तैयार होकर आटा होकर घर में रोटी हो। ऐई! भगवानजीभाई! प्रतिदिन का सवेरे का ताजा वावण। बोबे तुरन्त, हों! नौ बजे तो गेहूँ तैयार, आटा तैयार। जो कहे वह रसोई तैयार। प्रतिदिन की प्रतिदिन। तुम्हारे लिये आटा रखना पड़े नहीं वहाँ उसमें। कहो, कितने सुखी! दुःखी हैं बेचारे। पर को माँगते हैं कि यह हो। माँगण भिखारी! यहाँ पड़ा है बादशाह आनन्दकन्द चिदानन्द प्रभु, उसकी नजर डालता नहीं और यह हो... यह हो... बाहर की पुष्टि करे। चैतन्य का तो अन्दर घात होता है। आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कितना... आहाहा! उसका—चक्रवर्ती का सुना या नहीं? ऐसे बत्तीस ग्रास का (आहार उसमें से) एक ग्रास छियानवें करोड़ सैनिक पचा नहीं सके। ऐसी भस्म सोने की, हीरा की भस्म। समझ में आया? पाँच सेर, दस सेर घी ताजा ऐसा,

हों, ऐसे ताजा सवेरे का। उसमें डालकर और ऐसे औषध हो, उसमें डाले। उसमें गेहूँ डाले सेर, पाँच सेर घी, पाँच सेर गेहूँ। पोढा होकर और उसकी बनावे रोटी और उसमें रोटी में भी वापस वह सराबोर घी। ताजा-ताजा आम का ऊँचा रस हों प्रतिदिन। तुम्हें कभी मिले नहीं, उसको बारह महीने प्रतिदिन आम का रस मिले।

मुमुक्षु : पक्का आम बारह महीने?

पूज्य गुरुदेवश्री : बारह महीने पक्का-पक्का। कच्चे का रस हो? यह तो अपने कितनी बात कर सकते हैं! बहुत अपार है उसमें। पुण्य, यहाँ तो यह कहा न पुण्य के फलरूप से। देखो!

भोगों में रत वर्तते हुए सुखी जैसे भासित होते हैं। (इसलिए पुण्य विद्यमान अवश्य है।) इतनी बात सिद्ध करते हैं। ऐसे देखे तो आहाहा! ऐसी लगे। धूल में भी नहीं, सुन न अब। वह तो जड़ और पर पूरा लोक पड़ा है, उसमें क्या है तुझे? तेरा लक्ष्य जहाँ परद्रव्य के ऊपर अनुभव करने के लिये जाता है, (वह) सब विकार और दुःख है। समझ में आया? आहाहा! ऐसा करके शुभ उपयोग के फलरूप से यह सम्पदा, वह शुभउपयोग स्वयं दुःखरूप है और यह भी दुःखरूप है, इसलिए इसे दृष्टि में से निकाल देने जैसी चीज़ है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? विद्यमान अवश्य है। लो, ऐसा वह काम। आहाहा! हीरा की भस्म पचावे कौन? उसकी रोटी हो। लाखों करोड़ों के मूल्यवान हीरा। उसे घी में तलकर और उसकी रोटी हो। वह रोटी। उस रोटी का ग्रास एक ग्रास छियानवें करोड़ (सैनिक) पचा नहीं सकते। वह यह पचावे, ऐसी जठर। परन्तु उस जठर को—जड़ को पुष्टि करते हैं, कहते हैं। वहाँ उसका विकल्प गया है। अहाहा! सुखी कहना किसे तुझे? ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? पुण्य है, बस इतनी बात है।

टीका :- शक्रेन्द्र और चक्रवर्ती अपनी इच्छानुसार प्राप्त भोगों के द्वारा... देखो, देखा! इच्छा प्रमाण। उसमें चार बोल लिये हैं न मोक्षमार्गप्रकाशक में, नहीं? पुण्य की इच्छा एक, दूसरी एक विषय की इच्छा, प्राप्त हुई... चार बोल हैं मोक्षमार्गप्रकाशक में। यह पुण्य की इच्छा होती है। इच्छा पुण्य की ... सर्दी में गर्मी, गर्मी में ठण्डी। जो चाहिए वह, हों! यह तुम्हारे तो करना पड़ता है न वह क्या कहते हैं? ठण्डा। वहाँ तो

उसके बँगले ही ऐसे होते हैं। ऐसे बँगले मकान के मकान... मकान के मकान... वहाँ सोवे तो गर्मी कहाँ है, वह खबर नहीं पड़ती। समझ में आया? और गर्मी में हवा चारों ओर की ठण्डी। बँगला जालीवाला, छिद्रवाला, बारीक हवा। ... टकराकर फिरते-फिरते ठण्डी आवे। ऐसी सामग्री का जिसे पार न हो। पुण्य है, कहते हैं। पुण्य है अवश्य, परन्तु दुःखरूप है।

मुमुक्षु : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : उसके लिये तो सिद्ध करना चाहते हैं यहाँ। यह पुण्य है, इसलिए अच्छा है, इसलिए सिद्ध करना चाहते हैं यहाँ? पुण्य है अवश्य एक विषय। इच्छा प्रमाण सब देखो तो ओहोहो! यह कहा न देखो न!

अपनी इच्छानुसार प्राप्त भोगों... ऐसा। इसके लिये यहाँ वर्णन करते हैं। इतना पुण्य... इतना पुण्य है। इच्छा ... यहाँ तो तुम्हारे दूध में पानीवाला दूध आवे। घी का कुछ ठिकाने बिना का घी आवे। चावल में कणकीवाले चावल सब समान न मिले सस्ते और महँगे देखो न, कितना होता है! कितना पुण्य कम होता है तुम्हारा। इसलिए दुःखी होंगे उसके कारण? उसके कारण दुःखी नहीं। वह मुझे ऐसा चाहिए, ऐसा भाव वह दुःखी है। यह उसे परन्तु ऐसा मुझे चाहिए और मिलता है, वह भी दुःखी है, ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु : इच्छा प्रमाण मिले, वह भी दुःखी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह भी दुःखी है। आहाहा! समझ में आया?

शरीरादि को पुष्ट करते हुए। जैसे, गोंच (जोंक) दूषित रक्त में अत्यन्त आसक्त वर्तती हुई... दृष्टान्त दिया आचार्य ने। जौंक होती है न जौंक? इतनी जौंक होती है न डॉक्टर रखे। यह फोड़े का वह हुआ हो न बहुत फोड़ा। उस जौंक स्वभाव है कि (खराब) रक्त चूस जाये रक्त और यह सब जो आते हैं न। वैद्य नहीं (घूमते?) यह दवा लेकर घूमते हैं, पेटियाँ लेकर। वे जौंक रखते हैं। था न तुम्हारे यहाँ? इसकी माँ को हुआ था। हमारे हेमचन्द को हुआ था। हेमचन्द को पहले हुआ था। २४... २४ वाँ... रखायी थी जौंक। ऐसा रोग हुआ था। अपने उपेन्द्र के पिता। बहुत पैसे खर्च किये थे,

ऐसा कुछ हो गया था। खून बिगड़ गया था। वह जौंक होती है। वह जौंक वहाँ तक मैला खून पीवे कि ऐसे फाट-फाट पेट हो तब तक। फिर ले लेवे दवा डॉक्टर, लेकर फिर दबाकर उसे निकाल डाले। मरे नहीं। और ऐसा का ऐसा रखे। फिर किसी का बिगड़ा हुआ आवे, वहाँ जाये। ऐसे बिगड़ा हुआ खून पीनेवाली जौंक हुई है, ऐसा कहते हैं। ऐई! छोटाभाई! क्या है यह? तुम्हारे पूनम को यह सब क्या न्याल को? बिगड़ा हुआ खून पीनेवाले हैं, कहते हैं। जौंक जैसे हैं, कहते हैं। वह जौंक जैसे हैं। वह खोटी बातें करते हों न।

गोंच (जोंक) दूषित रक्त में अत्यन्त आसक्त वर्तती हुई सुखी जैसी भासित होती है,... खून पीवे न। आहाहा! दु:खी है। पेट फटे, फिर डॉक्टर ले नहीं। निकालकर निचोड़कर ले ले वापस। वापस जीवित रखे और फिर दूसरा आवे उसका (दूषित) रक्त चूसावे। ऐसा करे जीवे तब तक। उसी प्रकार इस अज्ञानी को एक जहाँ इच्छा प्रमाण मिला, वह मलिन रक्त के ऊपर राग का अनुभव करे। मलिन रक्त जैसा है, कहते हैं। मैला, मैला अनुभवता है। **भोगों में अत्यन्त आसक्त वर्तते हुए सुखी जैसे भासित होते हैं;...** सुखी नहीं। समझ में आया? कल यह बात हो गयी थी न उस आहार के समय की। न्यालभाई कहते थे। बहुत महिमा करते थे इनके देश की। वहाँ ऐसे नैतिकवाले, ऐसे, फलाना। कहाँ तक तुम्हारे क्या करना है? कोई पड़ी हुई वस्तु हो, उसे ले नहीं। फलाना ऐसा है, वैसा है। परन्तु उसमें क्या हुआ? आत्मा उसमें सुखी क्या है? समझ में आया? बहुत महिमा करते थे। वहाँ रहे सही न और स्वयं पैसेवाले व्यक्ति, सब ऐसे अच्छे दिखाई दे उसे। गाँव को मार डालनेवाले हों और एकान्त में शस्त्र मारकर मार डालते हों, ऐसे दिखाई दे नहीं। वहाँ भी सब नहीं होता वहाँ? बाहर की अनुकूलता की सम्पदा देखे तो ऐसे मानो शरीर अच्छा, मोटर ऐसी कि पानी हिले नहीं और गाँव की सड़के ऐसी। यहाँ अपने जैसी नहीं होती, वह सब सीमेन्ट की। वहाँ तो संगमरमर की सड़कें बड़े शहरों में। क्या गाँव कहते हैं, नहीं? पेरिस। पेरिस के गाँव में संगमरमर की सड़क। संगमरमर, हों! पानी हिले नहीं। यह वह हिलता है या नहीं चलती, खबर न पड़े। कितने सुखी, देखो! आहाहा!

मुमुक्षु : चक्रवर्ती के पास तो कुछ हिसाब नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : चक्रवर्ती की धूल भी नहीं उसके पास। चक्रवर्ती को तो सोलह हजार देव सेवा करे। समझ में आया? बत्तीस हजार राजा बड़े तैनाती में खड़े हों ऐसे। खम्मा अन्नदाता। दु:खी है वह बेचारा। इन इन्द्रियों के विषयों को पुष्टि करे इन्द्रियों को। वह अतीन्द्रिय भगवान की पुष्टि करता नहीं, ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? सुखी जैसे भासित होते हैं।

इसलिए शुभोपयोगजन्य फलवाले पुण्य दिखाई देते हैं... इतनी बात करते हैं। उसे सिद्ध करके, फिर तिरस्कार करेंगे, हों! है अवश्य। आहाहा! देखो न! वह आया नहीं था? पोप-पोप। वहाँ से मोटर लाया था चार-पाँच लाख की। वापस यहाँ रख गया। उस जहाज में कितना माल ले गया न कितना, ओहोहो! कितने लाखों-करोड़ों रुपये का खर्च, करोड़ों का खर्च। मुम्बई में सरकार ने आदर दिया और सरकार ने कितने लाखों खर्च किये। देखो! पुण्य तो देखो! है या नहीं पुण्य? अस्तित्व है या नहीं इतनी बात। कितने करोड़ों, अनेक करोड़ों तो उसके पास पड़े हों। उनकी कुछ गिनती नहीं। बड़ा पोप है न। सुखी जैसा दिखता है, वह दु:खी है। **पुण्य दिखाई देते हैं...** वह **शुभोपयोगजन्य फलवाले पुण्य दिखाई देते हैं (अर्थात् शुभोपयोगजन्य फलवाले पुण्यों का अस्तित्व दिखाई देता है।)**

भावार्थ :- जो भोग में आसक्त वर्तते हुए इन्द्र इत्यादि गोंच (जोंक) की भाँति सुखी जैसे मालूम होते हैं,... लो! जौंक की उपमा दी। मलिन खून पीनेवाली जौंक, ऐसे सुखी हैं। आहाहा! मलिन के खानेवाले हैं, मैला विकार, उसे खानेवाले हैं। शुभभाव है, उसके फलरूप से मलिन, ऐसा कहते हैं। सब राग होता है न उसके ऊपर, राग मलिन खाते हैं। मलिन खाते हैं। समझ में आया? निर्मलानन्द भगवान की तो दृष्टि नहीं, अनादर करते हैं और यह सुखी किसे कहना? यह तो समकिती कितने। तो भी यहाँ तो दृष्टान्त यह देते हैं कि उस ओर के झुकाववाला है, वह दु:ख है, ऐसा कहते हैं।

वे भोग पुण्य के फल हैं;... लो, यहाँ तो स्पष्ट कहा है। वे भोग पुण्य के फल हैं। यह भी पाठ में है न! शुभजन्य फलवाले पुण्यों, शुभ उपयोगजन्य फलवाले पुण्यो। है या नहीं? पण्डितजी ने घर का कहाँ डाला है। ऊपर तो यह कहा है। समझ में आया? उसमें डाला है। पहले नहीं बताया था? यहाँ तो व्यवहार से और विशेष .... निश्चय से

कहा था पहले एक बार? दिखता है ऐसा बाहर में। परन्तु सब कोढिया और रूपवान दोनों दुःखी हैं। शरीर कोढी हो और शरीर सुन्दर सोने की अंगूठी जैसा हो। पर के ऊपर के लक्ष्य में दुःखी, दुःखी और दुःखी है। समझ में आया? पराश्रय का भाव ही अकेला आकुलता और अग्नि है, ऐसा कहते हैं। है, पुण्यफल है, हम कहाँ इनकार करते हैं? है तो सही। अस्ति सिद्ध करते हैं। इसलिए पुण्य की अस्ति है अवश्य।

(इस प्रकार इस गाथा में पुण्य की विद्यमानता स्वीकार करके आगे की गाथाओं में पुण्य को दुःख का कारणरूप बतायेंगे।) है। है, किसने इनकार किया? परन्तु है दुःखरूप। आहाहा! परन्तु ऐसी गले पड़ी है न। अरे! व्रत करेगा तो सुखी होगा, स्वर्ग में तो जायेगा। समझे न? वरना नरक में जाओगे तुम, ऐसा करोगे तो, अनादर करोगे, ढींकणा करोंगे तो। शुभ न करो, तुम्हारे सम्यग्दर्शन नहीं और हो तब फिर अशुभ करोगे तो क्या होगा तुम्हारा? लो, ऐसा लिखा है वापस। सुन न! उस शुभ का लक्ष्य छोड़ने... शास्त्र में से पढ़कर, सुनकर भी शुभ का लक्ष्य छोड़ने के लिये सुनता है वह। सुनने में भी शुभ का लक्ष्य छोड़कर यहाँ लक्ष्य करना, इसके लिये वजन है वहाँ। समझ में आया? तेरा वजन तो वहाँ है कि शुभ को ऐसा करूँगा... ऐसा करूँगा... ऐसा करूँगा... वहाँ से ऐसा होगा। धूल में भी नहीं होगा। दुःखी होगा, कहते हैं। आगे की गाथा में उसके तिरस्कार का वर्णन करेंगे, ७४ (गाथा) में।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)